दो शब्द

कल्पना कीजिए रूस के एक गांव की। दूसरा विश्व युद्ध अभी समाप्त हुआ है। कितनी ही नारियां विधवा हो गयी हैं, कितनी ही विधवा न होते हुए भी वैधव्य की स्थिति में हैं......

और इन्हीं में है अवदोत्या। कुछ समय पहले उसे समाचार मिला था कि उसके पति वासिली की युद्ध-मोर्चे पर मृत्यु हो गयी है; दुखी नारी को दुःखों का एक साझीदार मिल जाता है—स्तेपान। सहानुभूति प्रेम के अंकुरों को जन्म देती है; तभी वासिली ज़ीता-जागता लौट आ ता है......

किन्तु अवदोत्या के जीवन की समस्या केवल प्रेम-प्रणय की ही नहीं वरन् उस सामूहिक फार्म की भी समस्या है जिससे वह सम्बंधित है; और इसीलिए यह उपन्यास केवल अवदोत्या और वासिली के जीवन की कहानी न रह कर सोवियत संघ के किसानों, उनके सामूहिक फार्मों, कम्युनिस्ट पार्टी, और लोक जीवन की कहानी बन गया है। सोवियत संघ के ग्रामीण जीवन का सजीव चित्रण !

गालिना निकोलायेवा सोवियत संघ की ख्याति प्राप्त लेखिका हैं; यह उनका सबसे प्रसिद्ध उपन्यास है।

—प्रकाशक

फ स ल

गालिना निकोलायेवा

अनुवादक

यशपाल

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
आसफ अली रोड, नयी दिल्ली – १

तीसरा भाग

१. तीन

दो बरस से वासिली बोर्तनिकोव अस्पताल में पड़ा था। उसके सिर में लगे भयानक घाव की चोट दिमाग़ तक पहुँच गयी थी। बच्चे की सी असहाय अवस्था में वह निरंतर होनेवाली और गहरी पीड़ा के अंधे कुएं में लटक रहा था! उसने अपने घरवालों को कोई पत्र नहीं लिखा था। लिखता भी तो बेचारों को दुख और घबराहट ही होती।

वासिली की मुलाक़ात अपनी फ़ौजी टुकड़ी के एक सिपाही साथी से अस्पताल में हुई। उसने उसे बताया कि जिस टुकड़ी में वह था उसने उसे मर गया समझ लिया था और उसकी पत्नी अवदोत्या को भी यही सूचना भेज दी थी।

"तुम्हारे घर पत्र लिख दूं कि तुम जीवित हो?" वासिली के साथी ने उत्साह से पूछा।

"क्या होगा?..." वासिली ने दर्द से टीसते जबड़ों को कठिनाई से खोलकर उत्तर दिया—"वह रो-धो चुकी है... बस इतना काफ़ी है...।"

सन् १६४६ में बातुमी के एक डाक्टर ने कोई आशा न होने पर भी वासिली के दिमाग़ का खतरनाक आपरेशन कर ही डाला था।

आपरेशन क्या हुआ, जादू हो गया। स्वतंत्र गति के लिए लालायित उसके शरीर को पूर्ण स्वच्छंदता मिली; वासिली की अवस्था तेज़ी से सुधरने लगी। उसे देख कर लोगों को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं होता था।

स्वयं वासिली को अपने सौभाग्य पर आश्चर्य होता था। अस्पताल से छुट्टी मिलने पर घर पत्र लिखे बिना ही वह हवाई जहाज़ से मास्को पहुँच गया। दूसरे दिन वह रेल से अपने गांव की ओर चल दिया।

वासिली ज्यों-ज्यों घर के नज़दीक पहुँचता जाता, त्यों-त्यों बाल-बच्चों की चिन्ता और घर की याद और भी उत्कट होती जाती।

अब, जब कि वह फिर पहले जैसा हो गया था और अपने घर को लौट रहा था, घरवालों से मिलने की ऐसी प्रचंड अभिलाषा उसमें जाग उठी थी, ऐसा प्यार उसके हृदय में उमड़ पड़ा था, जैसा उसने पहले कभी अनुभव नहीं किया था।

अंतिम पड़ाव पर वासिली को पड़ोसी गांव के सामूहिक खेत का एक पुराना परिचित किसान मिल गया। जब उसने बताया कि वासिली की पत्नी और बेटी पिछले सप्ताह बाज़ार में आयी थीं तो वासिली ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। वह सभी कुछ जान लेना चाहता था—अवदोत्या कैसा कोट पहने थी, वह क्या ख़रीद रही थी, लड़की कितनी बड़ी हो गयी थी! लेकिन पड़ोसी किसान कहे जा रहा था—"सब ठीक है भाई। सब ज़िन्दा हैं और अच्छे हैं। अब तुम घर जा ही रहे हो! अपनी आंखों से देखोगे...।"

ख़ास बात पड़ोसी ने कुछ भी नहीं बतायी थी, पर वासिली की चिन्ता दूर हो गयी और घर लौटने की उमंग और भी प्रबल हो उठी।

चार ही दिन पहले वासिली बातुमी के धूप में खिलखिलाते बाज़ारों और गलियों में एक हलका सा कोट पहने चक्कर लगा रहा था। अब उसे रेल की खिड़की से दिखाई दे रही थी—बर्फ़ानी आंधी से झकझोर रात। गाड़ी ठहरने के स्थानों पर बर्फ़ की चादर ओढ़े जंगलों की डरावनी हुंकार सुनाई देती थी।

महीना अभी नवम्बर का ही था। बर्फ़ानी आंधियां साधारणतः इतनी जल्दी नहीं आतीं। जो भी हो, वासिली को न तो बर्फ़ानी आंधी और न घुप्प अंधेरी रात का भय था। वह हर स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर उतरता, आधे-अंधेरे में छिपे लोगों की आकृतियां देखता, पास से गुज़रने वाले लोगों से वह दो-चार बातें करता, बर्फ़ानी धुंद में से मकानों और स्टेशन की बाड़ों को देखने की कोशिश करता, और अंधकार में खड़े देवदार के प्रत्येक छोटे से छोटे वृक्ष को देख कर मन में प्रसन्न होता। उसे सभी कुछ सुहावना और प्यारा लग रहा था, सभी चीज़ों में अपनापन जान पड़ रहा था। ये आदमी, ये जंगल, ये गाड़ियां और ये पेड़—सब उसके अपने प्रदेश उक्रैन के थे।

वासिली एक छोटे से स्टेशन पर रेल से उतर गया। स्टेशन से उसका गांव—क्रुतोगोर्री—लगभग पांच किलोमीटर दूर था। गाड़ी में उसने चौथाई बोतल वोद्का भी चढ़ा ली थी। बहुत दिनों के परिवर्जन के बाद वोद्का पीने से उसके पांव लड़खड़ा रहे थे।

बर्फ़ीला अंधकार वासिली को चारों ओर से घेरे हुए था। न तो धरती और न आकाश दिखाई देता था। बस, एक धुंधला, तेज़ी से बढ़ता हुआ तूफ़ान और जंगल की अनवरत गरज—जिसकी ध्वनि कभी तो आगे बढ़ती उत्ताल तरंगों जैसी मालूम होती थी और कभी पीछे लौटते जल-प्रवाह जैसी।

जंगल साफ़ दिखाई नहीं दे रहा था। पर, दिखाई न देने पर भी उसका गहन अस्तित्व आसपास की हर चीज़ से अनुभव किया जा सकता था। रात का आकाश चीड़ के वृक्षों की सांय-सांय, देवदार वृक्षों की शाखाओं के आंधी से मुड़-मुड़ कर चड़चड़ाने और बर्फ़ जमने से कड़ी पड़ गयी भूर्ज वृक्षों की टहनियों की टकराहट की आवाज़ से भरा हुआ था।

कई जगह जंगल ऐसा घना और सड़क इतनी तंग थी कि किनारे के काले-काले देवदार वृक्ष पिछले पांवों पर खड़े, ऊपर झपटते हुए, रीछों जैसे जान पड़ते थे। वृक्षों की टहनियां वासिली के कोट की आस्तीनों और दामन पर ऐसे रगड़ जातीं मानों रीछ उसे अपने पंजों से पकड़ कर रोकने की चेष्टा कर रहे हों।

बर्फ़ानी आंधी भी जैसे उसे अकेला पाकर उसका पीछा कर रही हो! कभी तो वह बिलकुल चुप सी होकर वृक्षों के पीछे छिप जाती और कभी दुगने वेग से नाचती हुई दौड़ पड़ती और ढेरों बरफ़ वासिली के मुंह पर फेंक, उसे अंधा सा बना कर, चली जाती।

वासिली ने अपने कोट का कालर खड़ा कर लिया और टोपी को भौहों और कानों पर खींच लिया। अब उसके माथे का बहुत थोड़ा सा हिस्सा खुला रह गया था, जिस पर तीखे थपेड़े लग रहे थे; वे एक साथ ही गरम भी थे और सर्द भी। कानों में आंधी की गरज और तूफ़ान की हांव-हांव भर रही थी।

वासिली कंधे आगे झुकाये, लड़ने के लिए झपटते बैल की तरह, आंधी में धंसा चला जा रहा था—या, जैसे नाव बहाव के विरुद्ध लहरों को काटती जा रही हो। आंधी भी क्रुद्ध होकर उसे घेर रही थी और पैंतरे बदल-बदल कर उस पर चोटें कर रही थी। वासिली को वैसे ही लग रहा था जैसे युद्ध-क्षेत्र में अपनी टुकड़ी के घिर जाने पर वह दुश्मन की फ़ौज को चीर कर बाहर निकल रहा हो।

युद्ध, आंधी, घर और विजय—उसके दिमाग़ में सब कुछ घुल-मिलकर एक हो गये थे। शराब के नशे के पुट से उसे थकावट और आनन्द, दोनों का अनुभव हो रहा था। उसे अपना पूरा जीवन स्पष्ट रूप से और एक साथ दिखाई दे रहा था; इसी सड़क से वह युद्ध के लिए गया था और इसी सड़क से वह लौट रहा था; इस बीच का पूरा जीवन!

आंधी के झोंकों के विशेष तेज़ होने पर वासिली अपने कंधों को और आगे बढ़ा कर चुनौती देता :

"लौट आया हूँ! पहचान लिया न मुझे? और आजमाले अपना ज़ोर!"

सड़क पर गहरी बरफ़ होने के कारण कभी-कभी वह सड़क किनारे के गढ़ों में घुटनों तक धंस जाता।

ऐसी अवस्था में चलते जाना आसान नहीं था, पर वासिली को बहुत अच्छा लग रहा था।

सहसा देवदार की एक झाड़ी आगे बढ़कर राह रोके खड़ी दिखाई दी।

वासिली एक तरफ़ से बच कर निकलने लगा तो बरफ़ से भरे गढ़े में गिरते-गिरते बचा। उससे बचने की कोशिश की तो कांटों में उलझ गया, मानो कांटे उसे पकड़ने की प्रतीक्षा में ही थे।

"यह क्या दुश्मन की फ़ौज के घेरे से कुछ कम है?" कांटों को हटाते हुए उसने ज़ोर से कहा—"अब रास्ता कैसे पता लगे? काश, एक तारा ही आसमान में होता... बिलकुल घुप्प अंधेरा है...!"

वासिली आंखें फाड़-फाड़ कर देखने का प्रयत्न कर रहा था, पर तीखी ठंडी हवा से उसकी पलकें जम कर अकड़ गयी थीं। चारों ओर घना अंधेरा था। अंधकार में कुछ दूर पर उसे एक आभा सी दिखाई दी। उसे प्रकाश नहीं कहा जा सकता था; वह अंधकार की विरलता ही जान पड़ती थी।

वह उसी ओर बढ़ चला। राह रोके खड़ी देवदार की टहनियों को पीछे हटाता हुआ वह चढ़ाई पर चढ़ता गया। टीले की चोटी पर पहुँच कर वासिली हैरान रह गया। सामने कुछ दूर पर बिजली की बत्तियों के चमचमाते गोले से दिखाई दे रहे थे।

"बाबा रे! बिजली का स्टेशन?... वाह..." वासिली पहाड़ी के ढाल पर नीचे की ओर सरपट दौड़ पड़ा।

पहाड़ी से नीचे आंधी का ज़ोर कम था और चलने में आसानी हो रही थी। लगता था आंधी ने वासिली की ज़िद देख कर सोचा : "जाने दो"। बादलों की दरार में चांद दिखाई दिया। चांद की आड़ी-आड़ी किरणें सड़क पर टेढ़ा अर्धवृत्त बना रही थीं। वासिली अपने गांव की पहाड़ी की अन्तिम चढ़ाई तेज़ी से पार करने लगा। इसी आड़ी चढ़ाई के कारण उसके गांव का नाम क्रुतोगोरी (खड़ी पहाड़ी) पड़ा था।

गांव की गलियां सूनी थीं। जगह-जगह बिजली की बत्तियां छतों और लम्बे देवदार वृक्षों की टहनियों पर लटक रही थीं। कुछ खिड़कियों के भीतर प्रकाश के सफेद चतुर्भुज दिखाई दे रहे थे।

एक गली के मोड़ पर दो स्त्रियां दिखाई दीं। वासिली ने एक को पहचाना और पुकारा :

"ओ, क्सेनोफोन्तोवना !"

स्त्री ने वासिली की ओर देखा, उसे पहचाना, फिर एकदम डर सी गयी :

"हाय भगवान !... वासिली बोर्तनिकोव ! हम लोग तो समझे थे कि तू मर गया ?"

"तुझसे ज्यादा मुर्दा नहीं हूँ, क्सेनोफोन्तोवना !"

"हाय राम जी !" औरत चिल्ला उठी और उल्टे पांव भाग गयी।

"यह औरत बौरा गयी है !" वासिली ने पुकार कर कहा और फिर ज़ोर से हँस पड़ा।

बिजली से जगमगाती गांव की गलियों में बांहें फैलाये देवदार वृक्ष और बरफ़ के भंवर बनाती हवा वासिली को सुहावनी और सुन्दर लग रही थी। बरफ़ का तूफ़ान यहां चपलतापूर्ण और खुशमिजाज़ दिखाई देता था। हवा मानो गलियों को सहला रही हो। क्षण भर में छतों पर और बरफ़ पर लहरें सी बन जातीं और दूसरे ही क्षण साफ़ हो जातीं।

वासिली सोच रहा था : "मैं इसी दिन की प्रतीक्षा में...घर लौटने के दिन की प्रतीक्षा में...जीवित था।"

वासिली अपने घर की ओर बढ़ रहा था। उसके क़दम तेज़ होते जा रहे थे। अपने दरवाज़े पर पहुँचा तो सांस फूल गयी थी। खिड़कियों के वे ही पुराने नक्काशी किये सफेद चौखटे मौजूद थे; एक ओर वही दुशाखा ठूंठ भी खड़ा था जिसमें वासिली टाल से लौट कर अपना घोड़ा बांधा करता था।

वासिली ड्योढ़ी की सीढ़ियों पर चढ़ा। एक तख्ता अब भी वैसे ही चरचरा रहा था। बर्फ़ीला जंगला उसके हाथ से वैसे ही फिसल गया जैसे पहले फिसल जाया करता था। उसने दरवाज़ा थपथपाने के लिए हाथ उठाया, पर रुक गया। उसका दिल ज़ोर से धड़क रहा था और उसे सांस लेने में कठिनाई हो रही थी।

वासिली को भेड़ की खाल के अपने कोट की आस्तीन से चिरांध आती मालूम हुई। अंधेरे में सिगरेट जलाते समय थोड़ी सी आस्तीन झुलस गयी थी। बर्फ़ीली ठंडी हवा में यह चिरांध बड़ी तीखी जान पड़ी। सहसा उसे याद आ गया कि एक बार फ़ौजी पड़ाव पर आग के पास सोते-सोते उसके कोट की खाल झुलस गयी थी। पल भर को उसे जान पड़ा कि उसकी पूरी फ़ौज—तोपें-बन्दूकें, लारियां-लंगर, सभी कुछ लिये—उसके साथ घर लौट आई है और उसके पीछे खड़ी है।

वासिली ने पूरे ज़ोर से दरवाज़ा खटखटाया।

"भला करे भगवान!...कौन है रे?"

वासिली ने पहचाना। यह उसकी सास की आवाज़ थी। "अम्मा मैं हूँ, वासिली! घबराओ नहीं अम्मा, मैं ज़िन्दा हूँ! अभी अस्पताल से आ रहा हूँ!"

सास ने दरवाज़ा खोला। वह वासिली पर गिर सी पड़ी।

"वासेन्का, तू! क्या सचमुच तू ही है?...हे मेरे भगवान!"

वासिली ने उसके सूखे शरीर को अपनी बांहों में सम्भाल लिया। उसके हाड़ उसकी बांहों के नीचे हिल रहे थे। वासिली का गला रुंध गया।

भीतर से गोभी और खटाई की महक आ रही थी। जैसे ही वासिली कोठरी में घुसा, ताज़ी रोटी की गर्म सोंधी महक उसके मस्तिष्क में भर गयी। घर भर उसी गंध से रचा हुआ था।

वह तेज़ी से सामने की कोठरी में पहुँच गया। झीनी चांदनी के प्रकाश में उसे अवदोत्या दिखाई दी। अवदोत्या जागकर खाट पर बैठी हुई थी। उसने वासिली को पहचान लिया। "वासेन्का!"—वह चिल्लाई और उछल पड़ी। दौड़कर वह उससे लिपट गयी। उसका शरीर थरथर कांप रहा था।

"मेरे राजा! तुम आ गये। कहां थे तुम? तुमने चिट्ठी क्यों नहीं डाली?"

"मैं अस्पताल में था। दो बरस तक काठ की तरह बिलकुल बेजान पड़ा रहा। हाथ-पैर तक नहीं हिला सकता था। मैं तुम लोगों पर बोझा नहीं बनना चाहता था।"

अवदोत्या का कोमल, उष्ण, कांपता हुआ शरीर वासिली की बांहों में सिमटा हुआ था, जैसे वह किसी दूसरी स्त्री के शरीर की तरह उसके शरीर से पृथक न होकर वासिली के ही शरीर का भाग हो! प्रेम की तरलता में बिलकुल एकसात! उससे बिलकुल अविच्छिन्न! उसका अपना!

अवदोत्या ने वासिली को अपनी बांहों में जकड़ लिया। उसकी बांहें भी मानो वासिली की ही बांहें थीं। दोनों के कंधे मिलकर एक हो गये थे।

वासिली ने अवदोत्या को और भी दृढ़ता से लिपटा लिया। उसकी यह सुशीलता, उसकी यह उष्णता ही उसका घर थे,—उसका मधुर, कभी न बदलनेवाला घर थे।

कोई चीज़ जैसे उसके अन्दर एकदम ढीली पड़ी। जिस भयानक तनाव में उसका जीवन अब तक जकड़ा हुआ था, उससे वह मुक्त हो गया। वह शिथिल पड़ गया और अपना मुँह उसने अपनी पत्नी के कोमल कंठ में गाड़ दिया। आंसुओं की बूँदों से उसके गाल गीले हो रहे थे।

तभी उसने खाट की पाटी से लगे एक आदमी को देखा। उसे उसकी कनपटी, मूँछें और सफेद कमीज से ढंके, सँकड़े कंधे दिखाई दिये। उसने अपनी पत्नी को एक ओर फेंका और चिल्ला उठा : "रोशनी ! रोशनी !"

"वासेन्का !"—चिल्लाकर अवदोत्या फिर उससे लिपट गयी। किन्तु उसे अलग हटाकर वासिली फिर चीखा :

"रोशनी ! रोशनी करो !"

अवदोत्या की मां ने अंधेरे में बटन टटोलकर बिजली जला दी। अवदोत्या के बिस्तर पर बैठा आदमी खाट के नीचे पड़े जूते जल्दी-जल्दी पहन रहा था।

रोशनी होने पर वह सीधा होकर बैठ गया था। वासिली ने उसे पहचान लिया। वह था स्तेपान मोखोव, ट्रैक्टर ड्राइवर !

दुबला-पतला, दबे सीने वाला स्तेपान सफेद कमीज पहने था। उठकर वह खाट के पास खड़ा हो गया था। उसके गले के पास, हंसली के गढ़े की नस धक-धक कर रही थी।

कितनी ही बातें एक साथ वासिली की आंखों के आगे नाच गयीं,—अवदोत्या से उसकी पहली भेंट, पहली बार आमने-सामने की लड़ाई में दुश्मन को मार गिराना, और सबसे स्पष्ट, उसका ज़ख्मी होकर जंगल में गिर पड़ना, प्यास से व्याकुल होने पर बरफ़ चाटना, अवदोत्या से मन ही मन विदाई लेना, उसके लिए दुःख, प्यार और दया की भावना से अनुतप्त होकर सुबकना।

सिर पर गहरा घाव लगने के बाद से वासिली क्रोध आते ही आपे से बाहर हो जाता था। इस वक्त भी वह बदहवास हो उठा। उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया। दिमाग़ सुन्न पड़ गया।

वह स्तेपान की ओर झपटा। उसकी मुट्ठियां बड़ी और वज़नी हो गयी थीं। वह यह महसूस भी कर रहा था।

"वासेन्का !" अवदोत्या चीख उठी।

तार से लटका बिजली का बल्ब हिल रहा था और दीवारों पर परछाइयां नाच रही थीं। वे कभी छोटी हो जातीं और कभी फैल जातीं।

वासिली स्तेपान के पास पहुँचा। उसने अपना मुक्का ऊपर उठाया :

"ओफ़ ! तू !..."

स्तेपान ने बचाव के लिए हाथ तक न हिलाया। वह निश्चल खड़ा रहा। उसकी हल्की भूरी आंखें निर्भयता से वासिली को देख रही थीं। वासिली का घूंसा स्तेपान के कंधे पर बने टूटी हंसली के निशान के ऊपर आकर सहसा रुक गया। घाव का एक टेढ़ा-मेढ़ा निशान स्तेपानकी कनपटी से होता हुआ

हड्डी के पास आकर रुक गया था। हड्डी विद्रूप हो गयी थी और कमज़ोर तथा मुलायम जान पड़ती थी। वासिली का मुक्का हवा में उठा का उठा रह गया। वह टूटी हुई हंसली पर चोट न कर सका। नाज़ियों की गोली से बने उस घाव को दुखाने की शक्ति वासिली में नहीं थी।

घूंसा मारने के लिए उठी वासिली की बांह उठी ही रह गयी थी। उसके मुख पर क्रोध और दया का अद्भुत मिश्रण छा रहा था।

स्तेपान ने धीमे, किन्तु निडर स्वर में, कहा :

"क्या किया है मैंने, वासिली कुज़मिच! मैं तुम्हारे घर में चोर की तरह लुक-छिपकर नहीं घुसा..."

"वासेन्का!" अवदोत्या ने बिलखकर कहा, "मैंने तुम्हारी बहुत राह देखी। सच कहती हूं, वासिली!"

"कितनी देर राह देखी तूने मेरी? घंटे भर? एक दिन?..." अवदोत्या की ओर घूमकर क्रोध में वासिली ने कहा : "बच्चे कहां हैं?"

अवदोत्या ने दीवार के साथ लगे पालने की ओर झपट कर एक बच्चे को गोद में उठा लिया। वासिली की रीढ़ की हड्डी में सनसनी दौड़ गयी—छोटा, गुलाबी सा, नरम, परन्तु उसका अपना ही चेहरा उसकी आंखों के सामने था। कोयले सी काली-काली, अलग-अलग, भवें; वैसी ही नाक; सिर को ज़रा आगे बढ़ा कर एक ओर झुकाये रहने की वैसी ही आदत!

स्वयं अपने से उसका यह परिचय, अपने प्रथम निश्छल शिशुकाल से उसकी यह मुलाक़ात, इतनी मधुर और चकित कर देने वाली थी कि वासिली दुनिया की खैर-खबर भूल गया। अपने ही शरीर के इस छोटे से सजीव अंश, अपने ही प्रपंचहीन रूप, की ओर वह लपक कर उत्सुकता से बढ़ा।

"इसे मुझे दे दे!" उसने अवदोत्या से कहा।

किन्तु छोटी बच्ची दुन्याशा मुँह बनाकर रो उठी!

"नहीं, नहीं! हटो! हटो!" उसने मुँह फेर लिया और स्तेपान के पास जाने के लिए उसकी ओर बाहें पसार दीं।

दुन्याशा ने अपने छोटे-छोटे हाथों की मुट्ठियां बांध लीं और फिर हाथ खोलकर स्तेपान की ओर लपक कर चिल्ला उठी :

"अप्पा! ओ अप्पा!"

स्तेपान अपनी जगह चुप खड़ा रहा। उसके पास तक जाने की उसे हिम्मत नहीं हो रही थी।

"लेता क्यों नहीं इसे?" वासिली ने स्तेपान की ओर देखकर कहा।

बड़ी लड़की कात्या ने पिता को तुरन्त पहचान लिया। वह रसोई में तंदूर के ऊपर सो रही थी। पिता को देख वहां से कूदी और वासिली के पास

आकर बोली : "बप्पा !" कात्या अब काफी बड़ी हो गयी थी। मां ने उसकी चोटी शहर की लड़कियों की तरह संवार कर बांधी थी। वह वासिली से लिपट कर धीमे से बोली : "बप्पा !"

स्तेपान रसोई की ओर चला गया। वासिली खाट पर लेट गया। अवदोत्या ने खाट की पाटी पर बैठकर धीमे से कहा—"वासेन्का !" वासिली ने आंखें नहीं खोलीं, जैसे सो रहा हो ! भावावेग ने उसे थका दिया था। उसका सिर चकरा रहा था; कुछ सूझ नहीं रहा था; दिमाग़ जैसे पथरा गया हो ! कुछ भी सोचना, बोल सकना, अनुभव करना, उसके लिए सम्भव नहीं था ! अवदोत्या उठकर दीवाल के पास पड़ी बेंच पर जा लेटी। मूर्छना के कुहासे में से वासिली को रात भर अवदोत्या के सिसकने का स्वर सुनाई देता रहा।

सुबह होने तक वासिली का मन और मस्तिष्क कुछ ठिकाने आ गया। वह उठकर आंगन में जा बैठा।

स्तेपान लकड़ी फाड़ रहा था। वासिली को देखकर वह झेंप सा गया और आंगन के दरवाज़े से बाहर जाने लगा।

"जाओ नहीं !" वासिली ने पीछे से पुकारा।

आंगन के चारों ओर बाड़ में जगह-जगह नये लगे तख्ते दिखाई दे रहे थे। सुअरों के बाड़े में भी लकड़ी का नया फ़र्श लगा था। सब ओर मर्दाने हाथों की करामात के चिन्ह दिखाई दे रहे थे।

कोठार में एक भेड़ का शरीर सुखाने के लिए लटका हुआ था।

घर की अवस्था जानने के लिए वासिली ने आराम से चारों ओर का मुआयना सा किया और फिर भीतर चला गया।

सास को पुकार कर उसने कहा—"नाश्ते के लिए कुछ दो न, अम्मा !"

मां-बेटी मेज़ पर नाश्ता लगाने लगीं। पड़ोसियों को बहुत कौतूहल था। कोई इधर देखता हुआ घर के सामने से गुज़र जाता, कोई दरवाज़ा खटखटाकर अवदोत्या की मां को बाहर बुला कर बातचीत करता और फिर चला जाता। भीतर घुसने का किसी को साहस नहीं हो रहा था।

वासिली की मां, पिता और भाई, दो दिन से उग्रेन की मंडी में गये हुए थे। वे अभी लौटे नहीं थे। वासिली को खुशी थी कि इस झंझट के वक्त उनसे मुलाक़ात नहीं होगी।

मेज़ पर खाना लग गया। वासिली ने अवदोत्या की ओर देखकर कहा : "चल बैठ !" और फिर स्तेपान से कहा—"आओ स्तेपान, तुम भी बैठो !"

अवदोत्या का चेहरा पीला पड़ गया था और आंखें रो-रोकर सूज गयी थीं। वह दिन भर किसी न किसी काम में उलझी रही; हां, कभी-कभी कोई चीज़ हाथ में लिए वह चुप खड़ी फ़र्श की ओर देखती रह जाती थी।

वासिली ने एक तश्तरी अपनी तरफ़ खींची, साथ बैठे लोगों पर एक सरसरी नज़र डाली, फिर बोला :

"सामूहिक खेत में काम-काज का क्या हाल है?"

"हाल अच्छा नहीं है।" स्तेपान ने उत्तर दिया। "खेतों पर बरफ़ पड़ गयी है और ज़मीन ठंडी होकर सिकुड़ गयी है। दो साल से खाद भी नहीं पड़ी। मैं तो मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में काम करता हूं। लेकिन यहां के लोग कुछ नहीं कर रहे...।"

सामूहिक खेत के मसलों पर बात चलती रही। ऊपर से देखने में मालूम होता था कि सब ठीक-ठाक है। पर, तीनों की ही आंखें जैसे पथराई हुई और भावशून्य थीं। अवदोत्या तो बात करती-करती बीच में ही सकपकाकर चुप हो जाती थी।

"मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन का क्या हाल है?" वासिली ने पूछा।

"हाल बुरा ही है।" स्तेपान ने बताया। "ट्रैक्टरों से ठीक जुताई नहीं की गयी! यों ही धरती खुर्च कर डाल दी। ट्रैक्टर ड्राइवर नये और नातजुर्बेकार थे। मशीनें पुरानी थीं, कोई पुर्जा टूट जाये तो मिल नहीं पाता था...।"

स्तेपान के ढंग से जान पड़ता था जैसे अनिच्छा से, मजबूरी में, बातें कर रहा हो!

"अब कैसा हाल है?" वासिली ने पूछा।

"इस बरस तो कुछ अच्छा ही है।" स्तेपान ने कहा। "इस साल हम लोग फारों से जुताई कर रहे हैं। जहां-जहां बन पड़ा है, धरती की दूसरी परत पलट दी है। सामूहिक खेत में अभी गहरी जुताई नहीं की जा सकती। मिट्टी बंध नहीं पायी है, ढेले पड़ जायेंगे। खेतों में खाद पड़ी होती तो और बात थी। तब हम और गहरी जुताई कर सकते थे।"

स्तेपान की बातें सुनता वासिली मन ही मन सोच रहा था : "यह आदमी मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में है, तो अच्छा ही है; इसके ऊपर धरती को संवारने का भार आसानी से छोड़ा जा सकता है।"

"यहां के पार्टी संगठन में कितने कम्युनिस्ट हैं?" वासिल ने पूछा।

स्तेपान ने सिर हिलाते हुए कहा : "यहां कोई पार्टी संगठन नहीं है। ...तुम और मैं, बस दो कम्युनिस्ट हैं।"

वासिली खाना भूलकर खयाल में डूब गया। युद्ध ने जो नाश और ध्वंस रचा था, वह उसे मालूम था। उसके छोटे से और दूर देहात में बसे सामूहिक खेत से भी तीन कम्युनिस्ट—एक-एक आदमी हीरा—युद्ध में काम आ चुके थे। वह बड़े ही प्रत्यक्ष और स्पष्ट रूप से देख रहा था कि युद्ध कितना भयानक था, कि लोगों ने कितना सहा है! साथ ही, उसे उस जनता की वीरता का भी आभास हो रहा था जिसने इस युद्ध को जीता था।

"अलेक्सी लुकिच एल्ब में खेत रहा!" स्तेपान ने धीमे से कहा। "वहीं उसे मिट्टी भी दे दी गयी थी।"

"अलेक्सी लुकिच...!" वासिली ने श्रद्धापूर्ण भाव से सिर की टोपी उतारनी चाही। पर सिर पर टोपी थी नहीं। वह अचकचाकर बालों पर हाथ फेर कर रह गया।

सामूहिक खेत के पिता की आकृति उसकी आंखों के आगे नाच रही थी। उसे साफ़ दिखाई दे रही थीं—उसकी लम्बी-लम्बी मूछें और चमकती आंखें! उसे याद आ रहा था—लुकिच का बड़े कौशल से फ़ार्म का नियंत्रण करना और त्योहारों और मेलों-जलसों में उकड़ूं बैठे-बैठे नाचना...! वह उक्रेन में, रूस की भूमि और ज़लवायु में, जन्मा और फला-फूला था। उसका शरीर अब विदेश की धरती में दबा था और शायद उसकी समाधि पर लोग जर्मन बोल रहे हों!

"अलेक्सी लुकिच!" सहसा वासिली के मुंह से निकल पड़ा। वह उठ खड़ा हुआ और कमरे का एक चक्कर लगाकर बोला: "और दूसरे लोग?"

"कारपोव जीवित है!" स्तेपान ने उत्तर दिया। "लेकिन, उसकी टांग कोनिग्सबर्ग में कट गयी थी। अब बेचारा शहर चला गया है, मोची का काम कर रहा है। मित्रियेव फ़ौज में ही है। लोग कहते हैं, अब वह कप्तान बन गया है...।"

"अच्छा...।"

कोई कुछ नहीं बोला। वासिली खिड़की की ओर बढ़ गया। कमरे में उसके पीछे सन्नाटा था। वह कोहरा जमी खिड़की के धुंदले शीशों पर नज़र गड़ाये चुपचाप खड़ा रहा।

बाहर बरफ़ में धंसे मकान भी चुपचाप खड़े थे। वे वैसे ही थे जैसे युद्ध के पहले थे।

वासिली को फिर यूक्रेन के गांव कल्पना में दिखाई देने लगे। उसे उन दिनों की याद हो आई जब घायल अवस्था में उसे एक अस्पताल से दूसरे अस्पताल ले जाया जाता था। रास्ते में उसे जले हुए और कहीं नये बनते

मकान दिखाई देते थे। स्टेशनों पर ईंटों, चूने और इमारती सामान से लदी खड़ी गाड़ियां मिलती थीं।

"तुमने सामूहिक खेत की पंचवर्षीय योजना के सम्बंध में लोगों से बातचीत की है?"

"नहीं! लेकिन अभी हाल में ज़िला कमिटी ने किसानों से राजकीय योजना के सम्बंध में बात करने के लिए कहा था, उस बारे में बात की है...।"

"तो...!"

फिर सब चुप रह गये। सहसा स्तेपान उत्साह से बोला:

"बड़ी गज़ब की योजना है। इतनी बड़ी चीज़ हम लोगों ने कभी सोची भी नहीं थी!" उसकी आवाज़ ओजपूर्ण हो उठी थी।

तीनों उत्साह से योजना के सम्बंध में बातें करने लगे। पारिवारिक संकट इस उत्साह की बाढ़ में डूब सा गया। ऐसा ही होता भी है; घर का झगड़ा घर के भीतर बहुत बड़ा जान पड़ता है। परन्तु, उसे बड़ी सामाजिक समस्याओं की तुलना में ले आइये तो देखते ही देखते उसका आकार छोटा हो जाता है। वासिली फिर मेज़ के पास बैठ गया।

"कौमसोमोल (तरुण कम्युनिस्ट संघ) कैसा चल रहा है?"

"ठीक है।" स्तेपान ने बताया। "अलेक्सी लुकिच का बेटा अल्योशा उसका काम चला रहा है।"

"अल्योशा?" वासिली ने विस्मय से पूछा और उसे याद आया, गोल-गोल सा चेहरा, लुकिच की तरह की ही चमकती हुई आंखें।

"अरे, वह तो अभी छोटा सा था...!"

"अब बड़ा हो गया है। कम से कम उन्नीस बरस का होगा। समझदार लड़का है। बाप नहीं था यहां, फिर भी बिलकुल बाप पर गया है।"

फिर चुप्पी। सहसा वासिली ने सामने की तश्तरी हटाकर स्तेपान की आंखों में आंखें गड़ा कर पूछा:

"स्तेपान, इस मामले का क्या किया जाय?"

स्तेपान की आंखें फैल सी गयीं और वह सामने देखता रह गया, मानो अंधा हो गया हो। उसने अवदोत्या की ओर इशारा किया।

"बेहतर है, इनसे पूछो।... इन्हें ही बताना चाहिए..."

"नहीं!" अपनी मुट्ठी मेज़ पर दबाते हुए वासिली ने कहा, "इससे मैं कुछ नहीं पूछूंगा।"

अवदोत्या ने एक पलक में दोनों की ओर देखा। पहले तो विस्मय, फिर अपमान की श्यामलता उसके चेहरे पर छा गयी।

वासिली उसका पति था। अवदोत्या का मन वासिली के प्रति अपराधी अनुभव कर रहा था। जीवन में पहले-पहल उसने वासिली को ही प्यार किया था। वासिली ने उसके प्रति कोई अन्याय नहीं किया था। वह उसकी दोनों बेटियों का पिता और घर का मालिक था। वासिली का इस तरह रौब और अधिकार से बोलना उसे उचित और न्यायपूर्ण लगा। होनी और "न्याय" के सामने अपने को असहाय और निर्बल अनुभव करके वह चुप रह गयी।

किंकर्तव्यविमूढ़ और दबी-कुचली सी वह जैसे-तैसे घर का काम और बातचीत करती थी। उसे इसका ज्ञान भी नहीं था कि क्या कह और कर रही है। कभी-कभी उसका शरीर सिहर उठता और आंखों के आगे अंधेरा छा जाता। बड़ी कठिनाई से ही वह पैरों पर खड़ी रह पाती।

वासिली फिर कुर्सी से उठा। उसने कमरे में एक चक्कर लगाया। फिर, ठोकर से एक सन्दूक को खटखटा कर कहा :

"अवदोत्या, यह सन्दूक खाली कर दे।"

अवदोत्या की आंखें डबडबा आयीं। "क्यों? क्या करोगे, वासिली कुज़मिच?"

"चुप रह अवदोत्या, चुप रह... मैं कहता हूँ, सन्दूक खाली कर दे!"

सन्दूक खाली कर दिया गया। तब वह बोला :

"मेरा नीले रंग का कोट और पतलून अभी रखा है?"

"हां! है, वासिली कुज़मिच! पर करोगे क्या?"

"चुप रह अवदोत्या! सन्दूक में ये दो चादरें डाल दे... ये फटी हुई नहीं! अच्छी चादरें!"

"हे भगवान! वासिली कुज़मिच!... वासेन्का!... तुम करना क्या चाहते हो?"

"चुप रह अवदोत्या! दो अच्छे नये तौलिये भी रख दे।"

अवदोत्या के हाथ कांप रहे थे। पर, वासिली के कहे अनुसार वह सन्दूक में सामान रखे जा रही थी। उसकी आंखें सन्दूक से उठ कर वासिली को नहीं, बल्कि स्तेपान को ढूंढ़ रही थीं। उसकी आंखों में घबराहट की, अप्रकट आशा की और सन्निहित सुख की चमक कौंध गयी। इसे वासिली ने भी देखा।

स्तेपान निश्चल, परन्तु बिलकुल सीधा बैठा हुआ था। उसकी हल्की भूरी-भूरी आंखों में भी उत्सुकता, भय और कृतज्ञता नाच रही थीं।

"स्तेपान, तुम उस भेड़ के दो टुकड़े कर दो! आधा मांस छाल की चटाई में लपेट कर बंडल बना लो। और अम्मा, तुम खेत के अस्तबल से एक घोड़ा और गाड़ी ले आओ।"

"लेकिन वासेन्का, यह कर क्या रहा है तू? कहां जायेगा तू?"

"चुप रहो अम्मा ! बस जाकर गाड़ी ले आओ !"

वासिली ने जब देखा कि सब सामान और सन्दूक तैयार हो गया है, तो वह बैंच पर बैठ गया। दोनों हाथ मेज़ पर रख कर वह बोला :

"स्तेपान, मैं यहां रहूंगा। तुम अपना इन्तज़ाम कर लो...! हमारे दो बच्चे हैं। बच्चों के तो टुकड़े किये नहीं जा सकते। अपने बच्चे मैं नहीं दूंगा। मेरी तुम्हारी कोई दुश्मनी नहीं है। तुम्हारी मुझसे कोई दुश्मनी नहीं है। हम लोगों ने लड़ाई में एक साथ खून बहाया है; हम एक साथ खेतों में अनाज उपजायेंगे। घर की ये कुछ चीज़ें मैंने तुम्हारे लिए इकट्ठी कर दी हैं। अगर ये सब काफ़ी नहीं हैं और तुम्हें कुछ और चाहियें तो वे ले लो !"

अवदोत्या का चेहरा फक पड़ गया, मानो उसमें जीवन न रह गया हो। स्तेपान दौड़ कर उसकी बगल में जा पहुंचा।

वासिली को सम्बोधित करके उसने कहा—"वासिली, तेरा-मेरा ही तो मामला नहीं है !"

स्तेपान ने अवदोत्या का हाथ पकड़ लिया। लेकिन डर कर अवदोत्या ने अपना हाथ खींच लिया और परे हट गयी।

"नहीं स्तेपा !...यही एक तरीक़ा है ! बच्चे ! बच्चे भी तो हैं !..."

वासिली सिर झुकाये बाहर आंगन में चला गया ताकि स्तेपान और अवदोत्या विदा ले लें।

वह बहुत देर तक बाहर खिड़की के पास खड़ा रहा। बुढ़िया गाड़ी ले आई। एक छोटा सा हरे रंग का सन्दूक गाड़ी पर रख दिया गया। गाड़ी सड़क पर चल दी। दुबला-पतला स्तेपान बर्फ़ानी आंधी में सिर झुकाये गाड़ी के पीछे-पीछे चला जा रहा था।

वासिली भीतर जाने के लिए घूमा। दरवाज़ा खुला हुआ था। बर्फ़ानी आंधी के थपेड़े भीतर घुसे आ रहे थे। सन्दूक कोठरी के बीचो-बीच वैसे ही पड़ा था और उसके समीप ही छाल के टुकड़े पर भेड़ का आधा, ठंडा और निर्जीव शरीर भी पड़ा था।

अवदोत्या बेंच पर निश्चल बैठी थी। बाहें निष्प्राण सी झूल रही थीं। कंधे नीचे को झुके थे। वह अब रो नहीं रही थी। उसकी सांस रुक-रुक कर चल रही थी।

वासिली ने देखा, अवदोत्या स्तेपान को इतना प्यार करने लगी थी !

अपने को शान्त रखने के लिए समूची शक्ति बटोरते हुए उसने सोचा : "हां, दुन्या मामूली औरत नहीं है। यह नहीं कि पैसे के लिए ही किसी की हो रहे, या जिस किसी के साथ चल दे!...वह वैसी औरत थोड़े ही है !"

वासिली का मन उमड़ आया। वह बेंच पर अवदोत्या के पास बैठ गया। अपना हाथ उसने अवदोत्या के कंधे पर रखा!

अवदोत्या ने अपना सिर उसके कंधे पर टिका दिया और रो पड़ी।

"दुन्या, दूसरा कोई चारा भी तो न था। बच्चों का ख़याल तो करना ही था।"

उस समय वासिली के मन में अवदोत्या या स्तेपान के प्रति ज़रा सी भी द्वेष-भावना नहीं थी।

उसे याद आने लगीं—अपनी सगाई और शादी की बातें। पहला बच्चा होने वाला था, तब भी अवदोत्या दिन भर खेतों में काम करने के बाद शाम को उसके लिए गरम परौंठे और मक्खन लिए काफ़ी दूर खेतों में पहुंची थी। वह जानती थी, उसे परौंठे और मक्खन बहुत रुचते हैं। परौंठे ठंढे न हो जायें इसलिए उन्हें उसने अपने शॉल में लपेट लिया था।

उसे यह भी याद आया कि जब वह शहर जाती थी तो सभी के लिए कोई न कोई चीज़ लेकर आती थी। अपने वास्ते कोई चीज़ ख़रीदने के लिए ही उसके पास पैसे नहीं बचते थे। इस बात पर वासिली बिगड़ता तो वह बड़ी नर्मी से कहती : "अच्छा अगली बार अपने लिए ज़रूर लाऊंगी, वासेन्का!" कितनी ही बातें वासिली को याद आ रही थीं और वह जैसे एक बार फिर उन्हीं में से गुज़र रहा था।

"मैं जरा फ़ार्म के दफ्तर हो आऊं, दुन्या!" वासिली ने कहा और उठ खड़ा हुआ।

अवदोत्या भी उठ कर उसे तैयार होने में सहायता देने लगी। उसकी आंखों को देखने से मालूम होता था कि वह किसी आन्तरिक पीड़ा से त्रस्त है। वासिली को याद आ रहा था, ऐसी आंखें उसने उन लोगों की देखी थीं जिनके पेट या सीने में गोली लगी हो! हाथ-पांव में गोली लग जाने से यह बात नहीं होती थी। उसने उसे फिर अपनी ओर खींच लिया और कहा :

"हौसला करो, दुन्या! कुछ और किया भी तो नहीं जा सकता। बच्चों का ख़याल तो करना ही था!"

अवदोत्या ने अपना सिर उसके कंधे पर टिका दिया और बोली :

"मैं तो कुछ नहीं कह रही! कुछ कह रही हूं क्या?"

वासिली चुप रह गया। उसका मन भीतर ही भीतर कटा जा रहा था—अपने लिए, अवदोत्या के लिए, उन सभी के लिए जिन्हें युद्ध ने बरबाद कर दिया था!

"क्या यही देखने के लिए मैं बड़ी-बड़ी उमंगे लिए घर लौटा था?" उसने सोचा और उसका मन कड़वाहट से भर गया। पर इस कड़वाहट को दबा कर वह बोला:

"दुन्या, कोई बात नहीं! सब ठीक हो जायगा! क्या-क्या नहीं झेल लिया है हम लोगों ने!..." और वह बाहर चला गया।

२. सुबह

सूर्य ऊँचा उठ चुका था, पर अभी सुबह ही थी। खिड़की के कांच पर जमे कोहरे के चकत्ते गुलाबी-गुलाबी दिखाई दे रहे थे। कमरे में चमचमाती तेज़ रोशनी आ रही थी—जाड़ों के स्वच्छ नीले आकाश और नीचे श्वेत बरफ़ की चकाचौंध लिए धूप और भी चटख हो रही थी।

ऐसे समय विचारों के बांध टूट जाते हैं और वे स्वच्छन्द बहना चाहते हैं। दैनिक समस्याओं के चक्कर से अभी अछूता मस्तिष्क बड़ी सरल और सधी-बधी गति से अपना काम करता है और मनुष्य के विचार स्वच्छ एवं निर्बंध होते हैं।

मेज़ पर बिछे कांच के नीचे ज़िले का चितकबरा सा नक्शा फैला हुआ था। नक्शे पर 'पहली मई सामूहिक खेत' के लिए बने चिह्न पर पेंसिल का निशान था। इस खेत की अवस्था चिन्ताजनक थी। १६४३ और १६४४ में, जब युद्ध के समय परिस्थिति को सम्भालने के लिए और भी अधिक योग्यता और श्रम की आवश्यकता थी, एक काहिल, शराबी यहां का प्रधान बन गया था। फसलों को हेरी-फेरी से उगाने का सिलसिला बिगड़ गया, ज़मीन की तरफ़ लापरवाही बरती गयी। इससे बहुत नुकसान हुआ। खेत की इतनी बुरी हालत कभी नहीं हुई थी। खेत का वैसा ही हाल था जैसा जड़ें काट देने पर पेड़ का हो जाता है।

आन्द्रेई कुर्सी पर बैठा सोच रहा था: "सबसे कठिन ज़िले के सबसे कठिन क्षेत्र का सबसे ख़राब खेत!" नक्शे के ऊपर बिछे शीशे पर पहली मई खेत के चारों ओर वह पेंसिल से गोल-गोल निशान बनाता जा रहा था। "इस खेत को सम्भालना सचमुच बहुत कठिन है ...!"

आन्द्रेई कई बार इस खेत का दौरा कर चुका था। वहां की अवस्था देखकर वह सदा ही अपने साथ परेशानी और निराशा वापिस लाता था। उसे

लगता जैसे उसने कोई आकारहीन और कीचड़ जैसी चीज़ हाथ में उठाने की कोशिश की थी और वह उसकी उंगलियों से होकर बह गयी।

वह सोचता : "इसमें कहीं भी जान नहीं है। लेकिन, इसमें भी जान होगी, जैसे यहां है और यहां है।"

आन्द्रेई नक्शे पर बने लाल चिन्हों को देख रहा था।

लाल चिन्ह उन सामूहिक खेतों के सूचक थे जहां कम्युनिस्ट पार्टी के संगठन क़ायम हो चुके थे। बहुत ही कम खेत ऐसे थे जहां अभी तक पार्टी संगठन क़ायम नहीं हुए थे।

आन्द्रेई सिर झुकाये, शीशे पर पेंसिल से चक्कर बनाता हुआ, सोच रहा था : "सामूहिक खेत का नया प्रधान और मिखाइल बुयानोव—दो आदमी तो हो गये। तीसरा मोखोव हो सकता है। पर, मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में भी तो मोखोव की आवश्यकता है ...। मोखोव की मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन पर ज़रूरत है!" सख्ती से अपनी भौंह को रगड़ते हुए दो-तीन बार उसने मन ही मन दुहराया। वह अपने ऊपर झुंझला उठा, "मैं बार-बार यही क्यों सोचने लगता हूँ। सब कुछ तै कर चुका हूँ, फ़ैसला कर चुका हूँ ...। तै कर चुका हूँ, फ़ैसला कर चुका हूँ! पर, वह समझ पायेगी? समझेगी! जैसे और बातें समझ लेती है, इसे भी समझ जायेगी...!"

आन्द्रेई इस खयाल में डूब गया, करुणा की जैसे एक लहर आई और वह उसमें बह गया। पर, तुरन्त ही उसने अपने आपको सम्भाला। झेंप कर उसने चारों तरफ़ देखा, मानो जानना चाहता हो कि कोई उसके भावों को पढ़ तो नहीं रहा है। इस तरह की बातें सोचना? पार्टी सेक्रेटरी के दफ्तर में? दफ्तर में सन्नाटा था। हां, लकड़ी के पर्दे के दूसरी ओर से रात की ड्यूटी के आदमी की भर्राई हुई आवाज़ टेलीफोन पर बोलती सुनाई दे रही थी :

"मुलायम लकड़ी? कितनी लकड़ी? हलो! मुलायम लकड़ी...?"

"आन्द्रेई पेत्रोविच अन्दर हैं?" टेलीफोन पर बोलने वाले आदमी की आवाज़ से भिन्न बुयानोव की आवाज़ सुनाई दी।

आन्द्रेई की समझ में नहीं आता था कि लोग उसे उसके खान्दानी नाम पेत्रोविच से ही क्यों पुकारते हैं? रोब-दाब का यह तरीक़ा उसे बड़ा बोझिल मालूम होता था, अच्छा भी नहीं लगता था।

"हैं नहीं तो कहां चले जायेंगे?" रात की ड्यूटी वाले आदमी का उत्तर सुनाई दिया।

"मैं ज़रा मिल लूं?"

"हरगिज़ नहीं! कामरेड स्त्रेल्तसोव ने तुमसे मिलने के लिए आठ बजे का समय निश्चित किया है। बस, ठीक आठ बजे वह तुमसे मिलेंगे, उससे पहले नहीं।"

आन्द्रेई ने उठकर दरवाज़ा बन्द कर दिया और चटपट आकर अपनी मेज़ पर बैठ गया। अभी आठ बजने में बीस मिनट बाक़ी थे। लकड़ी भेजनेवाले विभाग को उसे एक बहुत ज़रूरी पत्र लिखना था।

पत्र लिखते-लिखते उसे लकड़ी-विभाग के लोगों की पिछली मीटिंग की याद हो आई। मीटिंग एक पुराने मठ में हुई थी। प्रतियोगिता में काम बढ़ाने के लिए एक इकरारनामा लिखा गया था। इकरारनामा महोगनी के नक्काशीदार एक सुन्दर चौखटे में मढ़ दिया गया था। यह चौखटा पहले देवी-देवताओं की छोटी-छोटी मूर्तियों को सजाकर रखने का था। आन्द्रेई को इस बात का ध्यान आया तो खुशी की मुस्कराहट उसके चेहरे पर नाच गयी।

"चौखटे बनानेवाला कोई पुराना श्रद्धालु यह देख पाता तो बौखला उठता।"

इस प्रान्त में दूसरे प्रान्तों से भिन्न बहुत सी चकित कर देनेवाली और निराली बातें थीं। इन विशेषताओं के कारण ही आन्द्रेई ने छः महीने पहले काम के लिए यह स्थान स्वयं चुना था।

युद्ध से पहले आन्द्रेई कुबान के एक ज़िले में ज़िला पार्टी कमिटी का मंत्री था। तब दूसरे साथी उसे ताने दिया करते थे:

"जी हां, आप पैदावार क्यों न बढ़ायेंगे—कुबान की काली धरती जो आपके हाथ में है।"

तभी आन्द्रेई ने मन ही मन निश्चय किया था कि मैं दूसरी जगह काम करके दिखा दूंगा कि सवाल उपजाऊ मिट्टी का नहीं है, बल्कि नेतृत्व के तरीक़े का है। उसने सोच लिया था कि प्रतिकूल परिस्थितियों में काम करके वह अपने को परखेगा। इसीलिए युद्ध से लौटने पर वह स्वयं इस अनुपजाऊ जगह में आया था। यहां की मिट्टी काली नहीं थी। उसे प्रान्तीय कमिटी में जगह मिल रही थी, परन्तु उसने ज़िद की कि वह देहात में ही जायेगा। अनुपजाऊ मिट्टी और खराब जलवायु वाले उग्रेन प्रान्त ने उसे वैसे ही आकर्षित किया था जैसे गठीला प्रतिद्वंदी अच्छे कुश्तीबाज़ को आकर्षित करता है।

उग्रेन की ऐतिहासिक विशेषताओं और यहां की प्राकृतिक विचित्रता के प्रति भी उसे आकर्षण था।

समाजवादी क्रान्ति से पहले उग्रेन में खेती नहीं के बराबर होती थी। लोग अपने यहां की धरती की उपज पर जीवन-निर्वाह नहीं करते थे। वे

परदेश जाकर मजूरी कर लेते थे। मास्को से साइबेरिया की व्यापारी राह यहां होकर निकलती है।

साल में एक मेला लगता था। साइबेरिया का सोना इसी राह से आता और मास्को से क़ैदी भी साइबेरिया इसी राह से भेजे जाते थे। स्थानीय ऐतिहासिक दस्तावेज़ व्यापारियों, छोटे-छोटे ज़मींदारों और मेले की ही बातों से भरे हुए थे।

ज़िले के इतिहास की एक और विशेषता थी। पीटर महान के काल से ही स्थानीय जंगल, निर्वासितों और अपने धार्मिक विश्वास की रक्षा के लिए भागे हुए लोगों से भरे रहे थे और विभिन्न सम्प्रदायों के सैकड़ों नाम यहां के पुराने बासिन्दों की ज़बान पर चढ़े हुए थे।

यहां आने से पहले ही आन्द्रेई को प्रांतीय कमिटी के दफ्तर में लोगों ने समझा दिया था : "अजीब इलाक़ा है वह और वहां काम करना भी आसान नहीं है।"

आन्द्रेई ने उत्तर दिया था : "अच्छी और आगे बढ़ी हुई जगहों में तो मैं काम कर चुका हूँ। मुझे उग्रेन ही जाने दो। वहीं के लिए मेरे कागज़ तैयार कर दो।"

आन्द्रेई को उग्रेन आये कई महीने हो चुके थे। कठिनाई, जितनी उसने कल्पना की थी, उससे अधिक ही सामने आई। परन्तु, वह निराश नहीं हुआ।

कठिनाइयों और उलझनों में फंस कर जब वह राह न खोज पाता तो कुबान की याद करता। उसके लिए वही उत्साह और आत्म-विश्वास का स्रोत था। उसे याद आते,—दृष्टि की सीमा तक फैले हुए खेत, और गेहूं की लहलहाती फसलें।

उसका मन छटपटाने लगता कि उड़ कर कुबान पहुंच जाये—वहां की गंध, और तीर की तरह सीधी मीलों फैली लम्बी सड़कें!

पर, सबसे अधिक याद आते उसे कुबान के निवासी। वह उनके घर का सा ही हो गया था। वहां के साहसी किसान; कितनी पैनी सूझ थी उन लोगों की! भिन्न-भिन्न टीमों के लोग इस तरह साथ मिल कर काम करते थे, मानो एक ही परिवार के सदस्य हों। वसन्त के आरम्भ में निरीक्षण के लिए जब ट्रैक्टर एक साथ पंक्तियों में निकलते तो जान पड़ता था जैसे मास्को के रेड-स्क्वायर में मई दिवस की परेड में टैंक चल रहे हों। हर खेत के कैम्प में टंगे कार्य-सूचक पत्रों और फसल काटने वाली मशीनों के लिए कार्य-निर्धारक पत्रों की बातें क़ानून की तरह अनुल्लंघनीय मानी जाती थीं।

"अपनी धरती, अपना घर! उन्हें छोड़ कर मैं यहां क्यों आ गया?" कभी-कभी आन्द्रेई के मन में चुभन सी उठ ही जाती। परन्तु तुरन्त वह अपने आपको सम्भाल लेता: "खुद मैंने ही तो यहां आने के लिए कहा था!... या, शायद साथियों का ही कहना ठीक था कि मैं काली उपजाऊ धरती के कारण जस पा रहा था!"

आन्द्रेई उठा और सामने दीवार पर लटके प्रांत के नक्शे के सामने जा खड़ा हुआ।

नक्शे के बीचो-बीच अब भी एक सड़क के लिए चिन्ह बना हुआ था; यह सड़क अभी तक बन नहीं पायी थी। रेलवे लाइन की दो शाखाओं के लिए जंगलों को चीरते हुए चिन्ह बने थे। नदी के किनारे सब फ़ार्मों को बिजली पहुंचाने वाले एक बहुत बड़े बिजली घर के लिए निशान बना था। उग्रेन के पास ही मरम्मत के सामान से लैस दूकानों वाला एक बड़े मशीन ट्रैक्टर स्टेशन का निशान बना था।

अन्द्रेई के माथे पर बल पड़ गये। "सभी कुछ बनेगा!" उसने निश्चय से कहा। "तीन चार बरस लगेंगे। तब हम कुबान से होड़ करने लगेंगे।"

आन्द्रेई ने जल्दी-जल्दी पत्र समाप्त किया और ठीक आठ बजे बुयानोव को भीतर बुलवा लिया (फ़ौजी ढंग की समय की पाबंदी आन्द्रेई को बहुत पसन्द थी)।

बुयानोव चुस्त, साफ़-सुथरा नौजवान था। बाल कंघी से संवारे, वह खूब साफ़ सूट पहने था। कमीज बरफ़ की तरह सफेद थी और कालर चिकना कलफ़दार था।

परन्तु उसके चेहरे की उद्विग्नता आन्द्रेई से छिप नहीं सकी।

"हूं, इसे मालूम है मैंने क्यों बुलाया है!" आन्द्रेई ने मन ही मन कहा। "चलो, अच्छा है। कम बातें कहनी पड़ेंगी। पर, जान पड़ता है आदमी कलफ़ किया हुआ। कोई भी कह देगा कि अपने ऊपर इसे गर्व है।"

"मिखाइल ओसिपोविच, मालूम है तुम्हें मैंने किस लिए बुलाया है?"

"सुना तो है मैंने, आन्द्रेई पेत्रोविच। पर मुझे यक़ीन नहीं आता।" बुयानोव के स्वर में खिन्नता थी।

"क्यों, ऐसी क्या बात है?"

"आन्द्रेई पेत्रोविच, तुम तो हमेशा न्याय का ध्यान रखते थे...।"

"तुम समझते हो, अब नहीं रखता?"

"क्या यही न्याय है?" बुयानोव की छोटी-छोटी आंखों से असंतोष प्रकट हो रहा था। "मैंने पढ़ लिख कर काम सीखा, सामूहिक क्षेत्र के इलेक्ट्रिक इंजीनियर का इम्तीहान इतने अच्छे नम्बरों से पास किया, अभी-

अभी काम शुरू किया—कि बस, यह लीजिए। मुझे किसी सड़े हुए खेत में टीम-लीडर बना कर भेजा जा रहा है। अच्छा खासा मज़ाक़ है!"

"क्यों! पहली मई फ़ार्म में भी तो जल-विद्युत स्टेशन है? छोटा सा गांव तो है नहीं जिसमें सिर्फ़ दस-बारह घर हों।"

"विद्युत स्टेशन!" ओंठ बनाकर बुयानोव ने उत्तर दिया, "पच्चीस किलोवाट ताक़त का बिजली घर! क्या कहने हैं विद्युत स्टेशन के!"

"हूँ, तो तुम्हें बड़ा बिजली घर चाहिए।" आन्द्रेई ने मुस्कराकर कहा। उसकी मुस्कराहट का अर्थ बुयानोव का समर्थन भी हो सकता था और हल्का उपहास भी।

बुयानोव चिढ़ कर बोला: "बड़ा चाहिए हो, चाहे छोटा! इसमें मज़ाक की क्या बात है, कामरेड पेत्रोविच? मैंने इंजीनियर का पूरा काम सीखा है। यहां, उग्रेन में, मैं कुछ करके दिखा सकता हूं ...! पहली मई फ़ार्म में कहीं मौक़ा मिलेगा? यह बात तो आपको कोई भी बता देगा।" बुयानोव ने बात कह कर अपने पतले ओंठ दाब लिए, मानो जो उसे साबित करना था वह उसने साबित कर दिया है।

"हूँ!" आन्द्रेई ने उत्तर दिया। "उग्रेन में तुम सैकड़ों किलोवाट बिजली सम्भाल रहे हो! ठीक है न? पर तुम करते क्या हो वहां? हुक्म दे दिया—इतने किलोवाट बिजली इस लाइन पर छोड़ दो, इतने किलोवाट उस लाइन पर! बिल पास करके दस्तख़त जड़ दिये! इसी को बड़ा काम कहते हो तुम? लेकिन, क्या अपने गांव के कृषि-क्षेत्र की हालत सुधारना वास्तव में ही बड़ा काम नहीं है? अपने घर-गांव से तुम्हें कोई मतलब नहीं क्या? क्यों?"

"घर-गांव? क्या उग्रेन मेरा घर-गांव नहीं है—वोलोकोलाम्स्क सड़क से लेकर इलाक़े की सीमा तक? सारा इलाक़ा ही मेरा घर है! जहां-जहां भी हमारा दस्ता गया है, हमारा घर-गांव है। तो क्या हम हज़ारों मील फुदकते फिरें? आदमी ने जो काम सीखा हो उसे ढंग से करने का मौक़ा मिलना चाहिए। बिजली के इंजीनियर को खेती के काम में टीम-लीडर बना देना हास्यास्पद है या नहीं?"

"वहां हम लोग तुम्हें इसलिए भेज रहे हैं कि तुम बिजली के इंजीनियर भी होगे और खेती के काम में टीम-लीडर भी!"

"अगर ऐसी ही बात है तो अस्तबल की सफ़ाई, दूध वाली का काम, मुंशी का काम भी मुझे ही सौंप दीजिए न।"

"हां, अस्तबल की सफ़ाई, दूध वाली का काम, मुंशी का काम—सभी सौंप रहा हूं। ज़िला पार्टी कमिटी तुम्हें कम्युनिस्ट की हैसियत से वहां भेज रही है, मिखाइल बुयानोव!" आन्द्रेई उठ खड़ा हुआ और उसके छोटे-छोटे दृढ़

हाथों की मुट्ठियां बंध गयीं। "हां, कम्युनिस्ट की हैसियत से। फ़िलहाल हम तुम्हें और किसी पद पर नियुक्त नहीं कर रहे हैं। तुम वहां खुद देखोगे कि कम्युनिस्ट की हैसियत से तुम्हें क्या करना है, और वह तुम करोगे।"

आन्द्रेई और बुयानोव एक-दूसरे को घूरते रहे, मानो एक-दूसरे को तौल रहे हों।

बुयानोव अब क्या उत्तर देता? अपने को वह "आत्म-निर्भर" व्यक्ति समझता था, क्योंकि हर चीज़ के बारे में उसने अपना स्पष्ट दृष्टिकोण बना लिया था।

मन ही मन उसने सोचा—"बड़ा तेज़ आदमी है। बात तो इसने बता दी, पर कभी-कभी अच्छी बातें खोखलापन छिपाने के लिए भी होती हैं। जो हो, इसकी बात पर सोचना तो चाहिए।"

अपनी बात रखने के लिए उसने पूछा :

"आन्द्रेई पेत्रोविच, और भी तो लोग हैं यहां। मैं ही अकेला तो नहीं हूं। मैं जानना चाहता हूं, तुमने मुझे ही क्यों चुना!"

"हां, तुम्हीं अकेले नहीं हो!" आन्द्रेई ने हामी भरी। "हम लोग बहुत से कम्युनिस्टों को उनके ज़िले के कामों से हटा कर कृषि-क्षेत्रों में भेज रहे हैं। पहली मई फ़ार्म में इस समय बोर्तनिकोव ही एक कम्युनिस्ट है। वहां पार्टी का संगठन बनना बहुत ज़रूरी है।"

"दो कम्युनिस्टों से पार्टी संगठन बन जायेगा?"

"तीसरा आदमी भी पहुंच जायेगा!"

"तीसरा आदमी कौन है?"

"तीसरा......" आन्द्रेई के माथे पर बल पड़ गये। मन ही मन झुंझला उठा कि तीसरा नाम लेते वह झेंपता क्यों है। "तीसरा भी पहुंच जायेगा," उसने कहा, "और लोगों को तुम वहां भरती कर लेना। वहां के आदमी अच्छे हैं। अब बात साफ़ हो गयी न, मिखाइल ओसिपोविच! बिजली घर का काम तो तुम पंद्रह दिनों में किसी आदमी को सिखा कर सौंप दो। बस, अब तो सब तै हो गया न?"

बुयानोव को लगा कि आन्द्रेई जो कह रहा है, वह सच है। लेकिन, आन्द्रेई के फ़ैसले के खिलाफ़ वह अपने क्रोध को इतने अर्से से पाल-पोस रहा था और इस फ़ैसले का विरोध करने की इतने लम्बे काल से तैयारी कर रहा था कि अब उससे एकदम हथियार न डाले गये।

"ख़ैर, मैं अपना एतराज़ लिख कर भेजूंगा।" उसने क्रुद्ध स्वर में कहा।

आन्द्रेई ने बुयानोव को देखा, मानो उसके दिल में पैठ रहा हो।

"मेरा तो ख़याल है, तुम नहीं भेजोगे!"

"कौन रोकेगा मुझे ?" बुयानोव ने बिना ढीले पड़े, किन्तु कुछ नम्र स्वर में कहा, "तुम, आन्द्रेई पेत्रोविच ?"

"मैं नहीं, तुम्हारी पार्टी-चेतना !" आन्द्रेई ने उत्तर दिया। "अच्छा, फिर मिलेंगे मिखाइल।"

बुयानोव बेबसी की खिन्नता लिए उठ कर चल दिया। उसके दुबले-पतले शरीर से क्रोध और खिन्नता बरस रही थी।

दरवाज़ा खोलते हुए वह एक बार फिर पीछे मुड़ा। सिर की टोपी को, जिसे उसने फिर लगा लिया था, झटके से उतार कर वह बोला :

"क्या मुसीबत है ! अभी-अभी एक उग्रेनी लड़की से शादी की है मैंने। आप लोग किसी को शादी के बाद चार दिन आराम भी नहीं करने देते, आन्द्रेई पेत्रोविच।"

"ओहो, अभी शादी की है तुमने ? बधाई, बधाई ! तभी बड़े बने-ठने दिखाई दे रहे हो ! मैं सोच रहा था, क्या बात है ! खैर, तो तुम एक सप्ताह और ले लो !"

बुयानोव के जाने के बाद आन्द्रेई मुस्कराने लगा। मगर तभी कोई विचार आकर उसके मस्तिष्क से टकराया। इस विचार ने सभी दूसरे विचारों को पीछे ठेल दिया। "हां, तो 'तीसरे आदमी' का मामला भी तय हुआ... ।" तीसरा नाम वह सोच तो कभी का चुका था, शायद उसे बदल भी देता। लेकिन, बुयानोव की अभी हाल की शादी की बात सुन लेने के बाद तीसरा नाम बदलने की गुंजाइश जाती रही।

"हां, हां, तय हो गया।" आन्द्रेई ने मन ही मन दोहराया। सामने दीवार पर टंगी घड़ी की ओर उसने देखा। आठ बजकर पच्चीस थे। उसने पहली मई सामूहिक खेत के नये प्रधान को साढ़े आठ बजे बुलाया था। इस आदमी से अभी तक आन्द्रेई की मुलाक़ात नहीं हुई थी।

साढ़े आठ बजे आन्द्रेई प्रधान को बुलाने के लिए घंटी का बटन दबाने को ही था कि दरवाज़ा खुला और एक भारी-भरकम व्यक्ति भीतर घुसा। आगन्तुक के बाल काले थे और आंखों से क्रोध सा टपकता था। आन्द्रेई अभ्यागत से मिलने के लिए उठ खड़ा हुआ।

सेक्रेटरी के कमरे में घुसते ही वासिली पल भर के लिए अचकचा गया।

ज़िला कमिटी के प्रथम सेक्रेटरी की बाबत उसने बहुत कुछ सुना था। सभी लोग आदर और स्नेह से उसे उसके खान्दानी नाम से 'पेत्रोविच' पुकारते थे। वासिली ने कल्पना की थी कि सामूहिक खेत के पुराने प्रधान एलेक्सी लुकिच की ही भांति ज़िला कमिटी का प्रधान मंत्री गम्भीर, अधेड़-उम्र और भारी-भरकम होगा; पकी मूंछें होंगी।

प्रधान मंत्री के कमरे में क़दम रखने पर वासिली को दिखाई दिया—छरहरे शरीर वाला एक नौजवान; माथा कुछ अधिक उभरा हुआ, चौड़ा गुलाबी चेहरा और ओजपूर्ण आकृति। वासिली को विश्वास न हुआ। उसने अपनी कल्पना के मंत्री को पाने के लिए दायें-बायें आंखें घुमायीं। जब वहां किसी और को न देखा तो भौंहें सिकोड़े, सिर झुकाये, कमरे में दाख़िल हुआ। वासिली बहुत गम्भीर और बड़ी-बड़ी बातें करने के लिए आया था और गम्भीर और बड़े आदमी से ही बातें करना चाहता था। सामने दिखाई दिया एक बड़ी-बड़ी चमकती आंखों वाला तगड़ा सा नौजवान, बल्कि कहा जाय "छोकरा", जो घनी भौंहों के नीचे से मुलुर-मुलुर ताक रहा था। वासिली का मन निराश सा हो गया। उसने बातें आरम्भ कीं तो ऐसे, जैसे किसी "छोकरे" से बातें की जाती हैं।

"कामरेड स्त्रेल्तसोव, ज़िला केन्द्र में यह क्या तमाशा चल रहा है? माना कि एक फ़ार्म पिछड़ा हुआ है, तो क्या आप उसे धिक्कारते ही जायेंगे?"

आन्द्रेई की भौंहें सिकुड़ गयीं। वासिली का कमरे में भड़भड़ाते हुए आने का ढंग उसे अच्छा नहीं लगा था। गम्भीर स्वर में उसने पूछा:

"आपका नाम कामरेड बोर्तनिकोव है?...हूं। आपके सामूहिक खेत को कौन धिक्कार रहा है?"

"ज़िले की कार्यकारिणी कमिटी और वह भी तुम्हारा नाम लेकर!" बोर्तनिकोव और भी झुंझला कर बोला।

"देखो कामरेड! यह ज़िला पार्टी का दफ्तर है। आप ज़रा धीरे-धीरे बोलिए तो मैं आपकी बात समझ सकूंगा।"

"धीरे क्यों बोलूं? हमारे सामूहिक खेत को तो ज़िला कमिटी ऐसे समझती है जैसे सौत का बेटा हो। हमारी किसी बात की यहां परवाह नहीं की जाती।" वासिली की आंखें लाल हो रही थीं।

"किस बात में आपके सामूहिक खेत की परवाह नहीं की गयी?"

"क्यों? ज़िला कमिटी में मड़ाई और चिराई की तीन बिजली की मशीनें आई हैं। ये मशीनें पहले किन फ़ार्मों को मिलनी चाहिए थीं? जहां काम-लायक आदमी कम हैं और काम पिछड़ा है, उनका पहला हक़ होना चाहिए था। और मशीनें दी किन्हें गयी हैं? उन फ़ार्मों को जहां काम अच्छा-भला चल रहा था। पिछड़े हुए फ़ार्मों की मदद ऐसे ही की जायेगी?"

"जो कुछ कहना था आप कह चुके, कामरेड बोर्तनिकोव? अभी नहीं? अच्छा कहिए, मैं सुन रहा हूं।" वासिली चुप हो गया। "तो बस! और कुछ नहीं कहना? अच्छा सुनिये, मशीनों के तीन जोड़े आये थे। अगले सप्ताह बारह जोड़े और आने वाले हैं। ये तीन जोड़े उन सामूहिक खेतों को

दिये गये हैं जो तुरन्त इन मशीनों को काम में ला सकते हों। आपका बिजलीघर ठीक काम नहीं कर रहा है। आपने अभी तक लकड़ी का अपना कोटा पूरा नहीं किया है, आपके हिस्से का सन भी तैयार करके नहीं भेजा गया है। मैंने हिसाब लगाकर देखा कि आप अभी एक सप्ताह तक मशीनों को काम में नहीं ला सकते। अगर यह बात सही नहीं है और आपको मशीनों की तुरन्त ज़रूरत है, तो मुझे बताइये। लेकिन, शोर मचाकर नहीं, धीमे-धीमे बात कीजिए।" आन्द्रेई के बात करने के ढंग, खेत के मामलों की जानकारी और फ़ैसले पर फिर से बहस करने और उसे बदलने की तैयारी का वासिली पर तुरन्त ही असर यह हुआ कि उसका पारा उतर गया।

"सन न भेज सकने का भी उलाहना दे गया।" मन ही मन वासिली ने सोचा और झिझकते-झिझकते उत्तर दिया :

"हां...तो...ख़ैर! अगर सप्ताह भर की ही बात है तो...तो...हम ही इंतज़ार कर लेंगे।"

कुछ देर दोनों चुप रहे।

फिर, आन्द्रेई ने पूछा :

"आपने काम संभाल लिया है?... शुरू कहां से करेंगे?"

"शुरू तो कर दिया है", वासिली ने कहा, "कल एक सभा भी की थी। लोगों के दल बनाकर काम भी बांट दिया है। मैं सलाह करने आया हूँ। कुछ मदद भी चाहिए। बक़ाया के बारे में बात करनी है। कर्ज़ की भी ज़रूरत पड़ेगी।... राज्य के प्रति हमारा बहुत सा बक़ाया हो गया है। इसी बरस पूरी अदायगी कैसे हो सकती है? बहुत मुश्किल है! हम लोग पिछला तो धीरे-धीरे, कुछ समय बाद ही, चुका सकेंगे; हमारी हालत आप जानते ही हैं। हमें कर्ज़, रुपया हो या अनाज... राज्य की ओर से कुछ मिल सकता है? सभी जानते हैं, ज़िले भर में हमारे फ़ार्म की अवस्था सभी से ख़राब है। सहायता की हमें नहीं तो और किसे ज़रूरत है?"

"तुम्हारे फ़ार्म को सरकारी सहायता मिलेगी तो ज़रूर, पर किस तरह, और कितनी, यह मैं अभी नहीं कह सकता। पिछड़े हुए फ़ार्मों को सहायता देने के बारे में प्रांतीय दफ्तर में विचार किया जा रहा है। पूरी और पक्की बातें मैं समझता हूं, एक महीने तक तुम्हें बता सकूंगा। कोई और बात?" आन्द्रेई ने पूछा।

"हां, हमारे यहां बीज के लिए अच्छा अनाज नहीं है। हमारा बीज बहुत ख़राब रहा है। बीज के लिए हम अनाज बदलवाना चाहते हैं।"

"हमने उसके लिए भी इन्तज़ाम कर दिया है। जितनी भी हो सकेगी हम तुम्हारी सहायता करेंगे। ख़ास चीज़ यह है कि तुम्हें हम समझदार और

अनुभवी आदमी देंगे। अभी हम दो कम्युनिस्ट, दो विशेषज्ञ, तुम्हारे यहां भेज रहे हैं।"

"कौन-कौन दो?"

"एक तो बिजली का इंजीनियर बुयानोव है। दूसरे का नाम अभी नहीं बता सकता...अभी मैं इस सम्बंध में आदमी भेजने वाले अधिकारियों से बात नहीं कर पाया। खैर, तुम्हारे यहां दो आ जायेंगे।"

एक-दूसरे से बिलकुल अपरिचित इन दोनों आदमियों में इतनी बातचीत बिलकुल व्यावहारिक ढंग से ही हुई। एक-दूसरे के सम्बंध में दोनों क्या सोच रहे थे, यह उनके शब्दों से प्रकट नहीं हुआ। परन्तु दोनों ही एक दूसरे के बिना चल नहीं सकते थे, यह वे खूब जानते थे। और, दोनों ही अपरिचित, आपस में एक दूसरे को खूब समझ भी रहे थे। दोनों को ऊपर से देखने में कोई कुछ भी नहीं भांप सकता था, पर वे बड़ी बारीकी से और बड़ी तल्लीनता से एक दूसरे को परख रहे थे।

एक की आंखें स्वच्छ, शान्त और पैनी थीं, दूसरे की भारी भौंहों के नीचे दबी, गहरी आंखों में चिनगारी मौजूद थी।

इस नौजवान के प्रति वासिली के मन में उपेक्षा और निराशा का वह भाव अब नहीं रह गया था जो पहले था।

वासिली शान्त हुआ तो उसके चौड़े चेहरे पर और उज्ज्वल आंखों में चिन्ता और थकावट के चिन्ह प्रकट हो गये। माथे पर भौंहों के बीच घाव के चिन्ह की तरह की एक सीधी रेखा, आंखों के चारों ओर काली सी छाया, आपस में सटे ओंठ—उसके अनुभवी होने और परिश्रम से न कतराने वाला व्यक्ति होने की गवाही देते थे।

मन ही मन उसने सोचा—"पेत्रोविच! इसकी उम्र ज़्यादा नहीं है। यह आदमी ढंग का जान पड़ता है...तभी तो लोग इसे आदर से पेत्रोविच कहते हैं...!"

आन्द्रेई ने भी वासिली के बारे में सोचा—"आदमी तो काम का जंचता है। परन्तु पार्टी से न जाने इसका कैसा सम्बंध है...?"

कुर्सी पर शरीर ढीला छोड़ते हुए उसने अपना सिगरेट-केस वासिली की ओर बढ़ा दिया और बात बदलते हुए दोस्ताना अन्दाज़ में पूछा:

"वासिली कुज़मिच, तुम्हारा मकान पहली मई फ़ार्म में ही है न?..."

"हां, मैं वहीं पैदा हुआ और वहीं पला-पनपा हूँ।"

"युद्ध से पहले तो फ़ार्म की हालत अच्छी थी?"

दबी सी मुस्कराहट वासिली के चेहरे पर फिर गयी। मुंह के बन्द रहने से यह मुस्कराहट कुछ कठोर और विचित्र सी मालूम होती थी। पर उसकी

काली आंखों में नरमी आ गयी और उसके चेहरे पर उत्साह तथा स्फूर्ति, विनम्रता तथा सद्भावना के चिन्ह एक साथ प्रकट हुए।

"युद्ध से पहले की क्या बात है!...हमारे प्रधान अलेक्सी लुकिच का नाम नहीं सुना आपने?"

"हां, हां! क्यों नहीं? मैं उन्हें खूब जानता था।"

"क्या खूब आदमी थे वह! बहुत समझदार! बड़ी दूर की देखते थे। उनके ज़माने में हमारे फ़ार्म को देखा होता! अस्तबल ही लीजिए—फ़र्श साफ़, दीवारें पुती हुईं। घोड़े क्या थे—जैसे गुलाब के फूल; हर घोड़ा! मालिश से चमकते पुट्ठे। पूंछें भी चोटी की तरह कंघी की हुईं। सब की जीनें साफ़, अलग-अलग अलमारियों में रखी हुईं, रोगन और पालिश से चमकती हुईं।" बोर्तनिकोव की आंखें चमक रही थीं और ओठों पर मुस्कराहट नाच रही थी। हर बात पर वह अपने लम्बे, सांवले हाथ हिलाहिला कर ज़ोर दे रहा था। उसका स्वर उमग-उमग पड़ता था: "खेतों में जाते—चरागाह के पीछे वाली ढलवान तो जानते हैं न—तो वहां फसल की दीवार खड़ी होती थी; क्या मजाल कि खेत में खड़ा ट्रैक्टर दिख जाय। कटाई की मशीन पर चढ़ कर चलिए तो मालूम होता था कि खेत समुद्र की तरह हहर-हहर करता लहरें मार रहा है। आंधी सी आती मालूम होती थी। पच्चीस-तीस मन अनाज एक-एक एकड़ से काटा है हमने... । किसानों को ग्यारह-बारह सेर अनाज हर दिन की पगार के तौर पर बंटता था।"

वासिली खिड़की से बाहर देखता हुआ, जाने किस याद में खो गया!

"फिर तुम्हारे फ़ार्म की हालत इतनी बिगड़ कैसे गयी?"

वासिली जैसे स्वप्न से जागा।

"वह तो होना ही था! सब कम्युनिस्ट तो युद्ध-मोर्चों पर चले गये। जितने भी अच्छे-अच्छे आदमी थे, सभी लड़ाई पर चले गये। फ़ौज को हमने बीस घोड़े दिये! मुसीबत का समय था; काम को नये ढंग से संगठित करने की ज़रूरत थी। लेकिन बदक़िस्मती से जो आदमी प्रधान बना, उसके कहने ही क्या! जब काम निकम्मों के पल्ले पड़ेगा, अपने-आप सब कुछ चौपट हो जायगा। कुछ लोगों ने अपना अलग तरीक़ा निकालना चाहा, पुराने ढर्रे पर चलने की सोची। कुछ खेती का काम छोड़ रस्सी-वस्सी बट कर गुज़ारा करने के लिए छाल की तलाश में चक्कर लगाने लगे।"

"हूँ! तो अब आगे तुम फ़ार्म का काम किस तरह सम्भालोगे?"

"कैसे सम्भालेंगे?"—ज़रा आगे झुककर अपना सांवला, कड़ा माथा आगे बढ़ाकर वासिली बोला—"हमें जुताई में और बीज में आपकी सहायता मिल जाय तो पहली फसल के समय ही हम यह झंझट की हालत ख़तम कर

दें। दूसरी फसल तक हम दूसरे औसत फ़ार्मों जैसे हो जायेंगे और तीसरी फसल के बाद अगर हम किसी से पीछे रह जायें तो मेरा नाम बदल देना।..."
बोर्तनिकोव ने अपने कोट के भीतर की जेब से एक कापी निकाली। "देखो! सब हिसाब तैयार है। कितनी खाद चाहिए, कहां चाहिए। खाद कैसे जायगी, घोड़ों पर, या हाथ गाड़ी से! दूध का हिसाब! किस गाय से कितना दूध मिलना चाहिए और किन स्त्रियों की यह ज़िम्मेदारी होगी कि ये गायें इतना दूध दें। पूरी योजना तैयार है।"

पहली मई फ़ार्म के प्रधान बोर्तनिकोव की बातें आन्द्रेई ध्यान से सुन रहा था। उसका आत्म-विश्वास और भरोसा, पिछली बातें करते समय फसल और फ़ार्म के जानवरों के प्रति उसका गर्व, मज़दूरी और पगार की बातों पर कोई खास ज़ोर न देना,—सभी बातों को आन्द्रेई ने मन ही मन नोट किया था। आन्द्रेई को पार्टी के काम और कम्युनिस्टों के ढंग का काफी अनुभव था। बोर्तनिकोव के हर शब्द से उसका कम्युनिस्ट होना प्रकट होता था।

आन्द्रेई के मन में वासिली के प्रति सहसा एक ऐसा भाव जागा जो मित्रता या रिश्तेदारी के सम्बंध से कहीं अधिक दृढ़ और घनिष्ठ होता है। यह क्या था, इसकी आन्द्रेई व्याख्या नहीं कर सकता था। यह कहना कठिन था कि इसका आधार उद्देश्य की एकता, विचारों की समता या भविष्य में समान लक्ष्य था; या, जीवन-मरण की बाज़ी में एक साथ हो जाने वालों की भावना थी; या, ये सभी बातें एक साथ थीं। ऐसी आत्मीयता की तुलना संसार के किसी भी दूसरे सम्बंध से नहीं की जा सकती। इस भावना की कोई व्याख्या आन्द्रेई नहीं कर सकता था। वह इसे 'पार्टी की भावना' ही कहता था। उसे इसी भावना का भरोसा था और इसी की खोज भी उसे रहती थी।

आन्द्रेई के चेहरे पर विमुग्ध बालकों का सा भाव छा गया। इस भाव ने उसके चेहरे का रंग बदल दिया, लेकिन यह रंग उसे बहुत फबता था।

आन्द्रेई और वासिली एक दूसरे के सामने बैठे थे। एक था—छरहरे बदन वाला, खूबसूरत बालों वाला और चंचल; दूसरा था—लम्बा, सांवला और कुछ गम्भीर। प्रकट भेद और भिन्नता के बावजूद दोनों बातें करते-करते समता और अपनत्व के सूत्र में बंध गये थे।

"काम है मुश्किल", आन्द्रेई ने कहा, "कम से कम शुरू में तो कठिन होगा ही। लेकिन, आप जानते हैं इस काम का सबसे रोमांचकारी और विशेषतापूर्ण अंग कौन सा होगा? इसके विकास की गति की तीव्रता! हवाई जहाज़ में तो सफ़र किया है न?...हवाई जहाज़ ज़मीन पर खड़ा रहता है तो विस्मय होता है कि यह पहाड़ सी भारी चीज़ हिल भी पायेगी? पर, वह चलना शुरू करता है। पहले घचर-घचर करता हुआ ज़मीन पर लुढ़कता चलता है।

फिर, सहसा वह ऊपर उठता है, ऊपर उठता ही जाता है, तेज़ी पकड़ता है, उसकी चाल सधती जाती है। मैंने कितने ही सामूहिक खेतों को, अच्छा नेतृत्व मिलने पर, इसी तरह उन्नति करते देखा है। जिस चीज़ से सदा ही विस्मय होता है, वह यह है कि इतनी जल्दी कैसे इतना परिवर्तन हो जाता है। यह सच है कि जितने फ़ार्म मैंने अब तक देखे हैं, उन सभी से तुम्हारे फ़ार्म की हालत खराब है। पर यह पक्की बात है कि वह सुधरेगी भी बहुत तेज़ी से।"

आन्द्रेई को खयाल आया कि वह बातों ही में फंस गया। उसने सोचा, अब काम की चर्चा होनी चाहिए।

आवश्यक कार्यों सम्बंधी वार्तालाप, पार्टी सेक्रेटरी के काम का आवश्यक अंग था। इस तरह का वार्तालाप उसे बहुत ही प्रिय और रोचक लगता था। लेकिन, उस पर ध्यान केन्द्रित करना और उसे लाभदायक धाराओं में मोड़ना बहुत ज़रूरी था। पहली मई सामूहिक खेत के प्रधान की खूबियों को आन्द्रेई भांप चुका था। लेकिन यही सब कुछ नहीं था। उसे उसकी कमज़ोरियां भी तो जाननी थीं! उसने वासिली के मन की गहराइयों को नापते हुए प्रश्न किया :

"जो लोग खेती का काम छोड़ रस्सी बटने या दूसरे कामों में लग गये हैं उनका क्या करोगे, वासिली कुज़मिच?"

वासिली की पतली ऊँची नाक के नथुने ज़रा फूल उठे। उसने उत्तर दिया :

"फ़िक्र न करो! मैं सबको ठीक कर लूंगा, आन्द्रेई पेत्रोविच। सबकी अकल ठीक कर दी जायेगी। कुछ को तो समझ आ गयी है। जिन्हें समझ नहीं आयेगी, उन्हें हम ठीक कर लेंगे।"

वासिली की बात आन्द्रेई को खटकी। उसने तुरन्त सावधान होकर पूछा :

"'ठीक कर लेंगे' का क्या मतलब? ज़बर्दस्ती तुम्हारे मुंह में कोई हलवा भी ठूँसे तो क्या अच्छा लगेगा?"

"क्यों नहीं अच्छा लगेगा?" लापरवाही से हँसते हुए वासिली ने कहा, "खूब अच्छा लगेगा!" वह इस तरह हँसा मानो उसने यह बात मज़ाक में कही हो; परन्तु उसके विचार की कठोरता स्पष्ट थी।

"यह मामला टेढ़ा है।" आन्द्रेई ने सोचा। "यह आसानी से नहीं समझेगा। ऐसे काम नहीं चलेगा।"

आन्द्रेई ने समझाया : "इससे कोई फ़ायदा नहीं होने का। तुम ज़बर्दस्ती करोगे तो एक के बदले में दस दूर जा खड़े होंगे। फ़ार्म चलेगा कैसे? तुम अकेले तो चला नहीं लोगे? सुना नहीं तुमने : गाड़ी के बिना गाड़ीवान क्या, पर गाड़ीवान के बिना गाड़ी तो गाड़ी ही है। दुश्मन हों तो उन्हें खदेड़

भगाया जा सकता है, यातनाएं दी जा सकती हैं। परन्तु, सोवियत के आदमी को तो तुम्हें समझाना ही पड़ेगा। उससे ज़बर्दस्ती तो की नहीं जा सकती।"

दोनों चुप रह गये।

आन्द्रेई उठ कर कमरे में चहलक़दमी करने लगा था। कमरे में सन्नाटा था। बस, आन्द्रेई के जूतों की आवाज़ आ रही थी।

वासिली के सामने खड़े होकर वह बोला :

"लोगों को समझाने की, उनमें विश्वास और उत्साह जगाने की ज़रूरत है ताकि वे तुम्हारा साथ दे सकें। तुम्हें रास्ता दिखाना होगा। लेकिन चलना होगा लोगों को साथ लेकर ही। उनके बिना कुछ नहीं होगा। लेकिन तुम बात करते हो लोगों को 'ठीक कर देने' की! ऐसे कैसे चलेगा, वासिली कुज़मिच?"

वासिली पलकें झुकाये सुनता रहा।

"मेरा मतलब यह नहीं था... ऐसे ही कह दिया था...।"

"नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए!" आन्द्रेई बोला। "तुम सामूहिक खेत के प्रधान हो, गांव की सोवियत के सदस्य हो! तुम्हारे मुंह से निकली बात चार गांवों में फैलेगी! तुम सोवियत सरकार के प्रतिनिधि हो। तुम्हारी बात सोवियत सरकार की बात मानी जायगी, वासिली कुज़मिच!" आन्द्रेई घूमकर अपनी कुर्सी पर जा बैठा और पूर्व-परिचित कामकाजी ढंग से बोला, "मैं तुम्हें एक पत्र दे रहा हूँ। तुम जाकर बीज के लिए अनाज बदलवाने का प्रबन्ध करो! तीन बजे तुम फिर यहां आओ। मैं चलने-फिरनेवाले पुस्तकालय के लिए तुम्हें कुछ पुस्तकें दूंगा और एक प्रचारक भी तुम्हारे यहां भेजूंगा। तुम अपने साथ ले जा सकते हो। तुम्हारी गाड़ी में इतनी जगह होगी?... आये कैसे हो?... छोटी बरफ़गाड़ी में या बड़ी बरफ़गाड़ी में?..."

आन्द्रेई के मुंह से इतनी गम्भीर बातों को सुनने के बाद बरफ़गाड़ी की बात सुनकर ताज्जुब होता था।

"बड़ी है!" वासिली ने अपने विचारों को कठिनाई से राह पर लाते हुए धीरे से उत्तर दिया।

"तो फिर क्या है? सभी के लिए उसमें काफी जगह होगी।... अच्छा, अब तुम अपना काम कर आओ, वासिली कुज़मिच!"

मंत्री ने खड़े होकर वासिली का हाथ अपने छोटे-छोटे हाथों में लिया और उसे दबाकर झकझोर दिया।

वासिली उठकर खड़ा हुआ, अपने कंधे सीधे किये और सिर को इस तरह का झटका देकर अपने को अब तक के तनावपूर्ण वातावरण से मुक्त किया कि बालों का एक गुच्छा उसके माथे पर लटक आया।

दरवाज़ा खोलकर वह इतने धीरे-धीरे और सावधानी से बाहर निकला मानो डरता हो कि फ़र्श पर फिसल न जाय। अब भी आन्द्रेई उसकी ओर एक-टक देख रहा था।

"आदमी निभा तो ले जायेगा। पर, जब तक तजुर्बा नहीं हासिल करता तब तक, काम का तरीक़ा समझाते रहने के लिए, इस पर बराबर ध्यान रखना पड़ेगा। स्वभाव में ज़रा ज़रूरत से ज़्यादा आत्म-विश्वासी, अक्खड़ और बेसबरा है। पर, जाने क्यों मुझे आदमी अच्छा लग रहा है। खैर, इस पर ध्यान तो रखना ही होगा।

आन्द्रेई फिर कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। उसने एक सिगरेट सुलगाई, छोटी खिड़की खोली और बरफ़ से ढंकी गली की ओर देखता खड़ा रहा। बरफ़ से ढंकी, ज्योतिस्नात गली को देखकर उसे जाने क्यों वालेंतिना की याद आ गयी। वालेंतिना कुछ दिनों में वहीं काम पर आने वाली थी। उसे खयाल आया, तब शायद ऐसे खिड़की खोलने पर वालेंतिना सामने दिखाई दे जाया करे! आन्द्रेई कुछ देर इसी खयाल में डूबा रहा।

खिड़की से कमरे में भीगी, बर्फ़ानी हवा भर आई।

ड्योढ़ी में एक देहाती बरफ़गाड़ी खड़ी थी। गाड़ी में एक छोटी सी बादामी रंग की घोड़ी जुती थी और गाड़ी में फूस बिछाकर गांव की सोवियत का प्रधान और दो स्त्रियां बैठी थीं।

"निस्संदेह यह घोड़ी सोवियत की उपज है। कितनी प्यारी लगती है।"

बोर्तनिकोव खटखट करता हुआ ड्योढ़ी की सीढ़ियों पर से उतर गया।

बाहर चलता-फिरता वह वैसा भारी-भरकम और बेडौल नहीं लगा जैसा कमरे में कुर्सी पर बैठा दीख रहा था। वह चुस्त और फुर्तीला लग रहा था। उसका भेड़ की खाल से ढंका और चौड़ी पेटी से कसा लम्बा-चौड़ा शरीर इस समय बरफ़ भरी गली और सामने के चमकते बर्फ़ानी मैदान में भद्दा नहीं दीख रहा था। इतनी देर कुर्सी पर बैठना और बातें करते रहना ही बेचारे के लिए मुश्किल हो गया था। खुली हवा और बरफ़ में निकल कर जैसे उसे मुक्ति मिली हो। बोर्तनिकोव ने सुस्ती दूर करने के लिए अपने चौड़े कंधे फैला कर बाहें झटक लीं।

बोर्तनिकोव ने खम्भे में फंसाई घोड़ी की रास खोल ली और एक छलांग में बरफ़गाड़ी पर सवार हो गया। अपना खूबसूरत सिर ज़रा पीछे डालकर वह खड़े-खड़े ही घोड़ी को हांकने लगा। घोड़ी मुंहजोर हो रही थी। सड़क से इधर-उधर भागना चाहती थी।

बोर्तनिकोव ने रास तान कर उसे डांटा:

"होश कर! सोवियत सरकार का अफ़सर चला रहा है तुझे!"

वोर्तनिकोव अकड़ दिखा रहा था, गर्व अनुभव कर रहा था और अपना ही मज़ाक भी उड़ा रहा था। गाड़ी में बैठे लोग ज़ोर से हंस पड़े। आन्द्रेई भी अपने दफ्तर में खिड़की के पीछे खड़ा पहली मई फ़ार्म के इस प्रधान की ज़िन्दादिली देख कर हंस पड़ा :

"असली अतामान है!" मन ही मन आन्द्रेई कह रहा था, "आदमी सचमुच काम का है! ज़रा तेज़ है, मगर अच्छा है। ज़िन्दादिल है, हौंसलेदार भी है!"

घोड़ी तेज़ दुलकी दौड़ने लगी। सड़क पर जमी बरफ़ उसके सुमों से टूट-टूट कर उड़ रही थी।

आन्द्रेई ने खिड़की बन्द कर ली।

ज़िले की अवस्था में सुधार की सम्भावनाएं प्रकट हो रही थीं; पिछड़े हुए पहली मई सामूहिक खेत का प्रधान भरोसे का और उपयुक्त आदमी था। जल्दी ही वालेंतिना के आने की आशा थी; प्रभात भी उज्ज्वल और सुहावना था; आन्द्रेई का मन उत्साह से उमग उठा।

घड़ी ने नौ बजाये।

आन्द्रेई ने अपने दफ्तर का दरवाज़ा खोला। ज़िला पार्टी कमिटी के दफ्तर के काम-काज की नित्य की परिचित गूंज सुनाई दी। मेहमानों के कमरे में कई मिलने के लिए आये लोग बैठे थे। साथ के कमरे से टाइपराइटर की खट-खट सुनाई दे रही थी। आन्द्रेई की सेक्रेटरी टेलीफोन पर मुँह लगाये ज़ोर-ज़ोर से बोल रही थी :

"कार्पोवका! लाइन फिर कट गयी। हलो! केन्द्रीय! कात्या, तुम ज़िला पार्टी कमिटी की लाइन ठीक क्यों नहीं करतीं? लाइन बार-बार कट रही है। हां! कार्पोवका! सुनो, कल एक प्रचारक तुम्हारे यहां भेज दिया जायगा। समझीं! हलो... !"

दूसरी ओर भेड़ की खाल का कोट पहने एक व्यक्ति दूसरे आदमी से बड़े उत्साह से कह रहा था—"हम लोगों ने अपना लकड़ी का कोटा तो क़रीब-क़रीब सवाया पूरा कर दिया। लकड़ी ढोने के काम में तीन दल होड़ पर लगे हुए हैं।"

एक कोने से आवाज़ आई—"चार सौ टन सुपरफासफ़ेट, अव्वल दर्ज़े की खाद!... क्या कहना है फसल का!"

छोटे से कमरे में जीवन की चिर-परिचित ध्वनियां गूंज रही थीं। आन्द्रेई दरवाज़े पर ऐसे रुका जैसे नदी में कूदने से पहले तैराक रुकता है।

उसे अपने बचपन की उड़ती सी याद आई। ओका नदी का किनारा, और वह। खूँटे जैसे सिरवाला लड़का—वह लहरों से जूझा करता था।

उसके मन में उमंग उठ रही थी कि ज़िला पार्टी के काम में वह सिर के बल कूद पड़े और भार को अपने वश में करके सब कामों को पूरा कर दे।

आन्द्रेई ने मिलने की प्रतीक्षा करते लोगों को एक सरसरी नज़र से देखा। अभ्यस्त नज़र ने भांप लिया कि सबसे ज़रूरी काम वाला कौन है। आगे बढ़कर लकड़ी का काम करनेवालों के प्रतिनिधि की ओर इशारा कर, मुस्कराकर उसने पुकारा :

"आओ न, सर्गी सर्गेईविच!"

ज़िला पार्टी कमिटी के दफ्तर की दिनचर्या ज़ोरों से शुरू हो गयी।

३. डोर

वासिली जब भी अपने सामूहिक खेत का चक्कर लगाकर लौटता, उसका मन खिन्नता से भर जाता। वह सोचता—"मेरे अस्पताल के साथी जब पत्र लिखते हैं, अपने खेतों की तारीफ़ें लिख भेजते हैं; वे खेत फल-फूल रहे हैं, उन्नति कर रहे हैं। पास-पड़ोस के जिस खेत को देखो, आगे बढ़ता चला जा रहा है। मोर्चे पर था तो मैं भी दिन-रात स्वप्न देखता था : हमारे खेत में यह हो रहा होगा, वह हो रहा होगा! यहां कम्बख्त सब चौपट पड़ा है ...।"

लड़ाई से पहले पहली मई सामूहिक खेत के पशुओं का ज़िले भर में नाम था। अब देखो तो घोड़ों और गायों की हड्डियां निकल रही थीं।

अस्तबलवाले प्योत्र मातवेयेविच ने वासिली से कहा : "मैं तो शरम के मारे अपने घोड़ों को लोगों की नज़र से बचाये रहता हूँ—जैसे बदन पर फोड़ा हो जाय तो छोकरियां ढांके रहती हैं।"

मन के क्षोभ के मारे प्योत्र लम्बी टांगें फैलाये अपनी सफ़ेद दाढ़ी नोचता खड़ा रह गया।

प्योत्र का घर पड़ोस के गांव तेम्ता में था। तेम्तावालों को इस बात का गर्व था कि उनके पूर्वज 'स्त्रेलत्सी' लोग थे, पुराने कर्मकांडी नहीं। स्त्रेलत्सी लोगों के विद्रोह के बाद उन्हें देश-निकाला देकर उग्रेन के जंगलों में भेज दिया गया था। तेम्तावाले खूब कद्दावर और हृष्ट-पुष्ट आदमी थे। प्योत्र पर तो खास तौर से नज़र पड़ती थी—विशेषकर उसकी दाढ़ी पर, जो गर्दन और छाती को ढंके थी, जो खूब घनी, घुंघराली, सुनहरी और बीच से दायें-बांयें बटी हुई थी।

वासिली के मन में प्योत्र के सशक्त शरीर के लिए बहुत ईर्षा थी और आदर भी। अपनी जवानी में वह प्योत्र की तरह चलने और उसी की तरह गम्भीरता से धीरे-धीरे बातें करने की कोशिश करता था। अब प्योत्र के झुके कंधे और उतरा चेहरा देखकर वासिली का मन पीड़ा से क्षुब्ध हो उठता था।

वासिली सोचता—"घोड़ों की तरह बेचारे बुढ़ऊ की हालत भी ख़राब होती जा रही है।"

"हो क्या गया है?" वह अपने से तथा और सब लोगों से बीसों बार पूछता।

अपनी दाढ़ी नोचते-नोचते प्योत्र कहने लगा:

"यह सब वालकिन की करतूत है! शुरू में बहुत से लोग उससे खुश थे। चुप्पा सा आदमी, मुंह का बड़ा मीठा ...। जब देखो, 'मेरे प्यारे, मेरे दोस्त' कहता रहता था; यह उसका तकियाक़लाम था। काम की पगार में सब को पूरा-पूरा अनाज देता था! अच्छा क्यों न लगता? औरतें तो और भी खुश थीं। लेकिन, जब बोवाई का समय आया, अहा हा! बोने के लिए अनाज का एक दाना नहीं। यह थी करतूत 'मेरे प्यारे' की। तो भैया, बीज के लिए हमने किसानों से अनाज इकट्ठा करना शुरू किया...। मुझे भी इस काम में जोत दिया गया।" मातवेयेविच का मन तलखी से भर उठा। "मुझसे बोला—'तुम्हें लोग बहुत मानते हैं, तुम बीज के लिए अनाज जमा करने में हमारी मदद करो।' मांग-तांगकर हम लोगों ने कुछ अनाज इकट्ठा किया। अनाज क्या, कूड़ा ज्यादा इकट्ठा हो गया। वालकिन को निकाल दिया गया। पर, इससे फसल थोड़े ही खड़ी हो जाती। घास के लिए छोड़े हुए खेत बे-जुते रह गये। उन्हें जोतना नयी धरती पर हल चलाने से कम मुश्किल नहीं था। खेतों में झाड़ियां पड़ गयीं। फसल की बदली का सिलसिला टूट गया; एक बार बिगड़ा तो बिगड़ता ही गया। इसी से यह हालत हुई। ज़मीन मानो ठिठुरकर जम गयी। खाद की बात लो। फुदकी तक खेत में बीट नहीं करती! फुदकी वहां जाये भी तो पाये क्या? इसी से हमारा खेत ज़िले भर में बदनाम हो गया। पहले लोग हमारे खेत को 'पिछड़ा हुआ' कहते थे, तो हमें बुरा लगता था। फिर इसकी भी आदत पड़ गयी। पहली मई सामूहिक फ़ार्म की जगह हमारा नाम ही 'पिछड़ा हुआ' फ़ार्म पड़ गया। जहां ज़िले की कान्फ्रेंसों में किसी ने 'पिछड़ा हुआ' फ़ार्म कहा, समझ लिया हमारी ही बात है। अपना सिर खुजला कर रह जाते थे।"

बस, भेड़ों के बाड़े की हालत ही अच्छी थी। वहां जाता तो वासिली खुशी से खिल उठता। यहां गड़बड़ी का कोई चिन्ह नहीं था। सच पूछो तो इसकी हालत युद्ध से पहले की अपेक्षा भी अच्छी थी। जब वासिली युद्ध पर

गया था तब यहां दोगली जाति की भेड़ें ही भरी हुई थीं। बस, दो बढ़िया, बड़े-बड़े सींगों वाले मेढ़े नये खरीद कर लाये गये थे—बड़सींगा और धौरा। इन मेढ़ों के बाल बरफ़ जैसे सफेद और घुंघराले थे।

वासिली भेड़ों का बाड़ा देखने गया। दादी वासिलिसा भेड़ों के बाड़े की मालकिन थी। उसने बाड़ा दिखाया तो वासिली खुशी से नाच उठा। बाड़े की नीची बाड़ के ऊपर से खूब बड़ी-बड़ी, मोटी-मोटी भेड़ें, चमकदार काली-काली आंखों से ताक रही थीं। मेमनों के लिए बाड़ में छोटे-छोटे दरवाज़े छोड़ दिये गये थे। दादी वासिलिसा की आवाज़ सुनकर सफेद ऊन की गठरियों जैसे मेमने लुढ़कते-फुदकते दौड़कर आये और दादी को घेर लिया।

"मैं जानती हूँ तुम मेरी तारीफ़ करोगे!" उसकी चमकती हुई आंखें कह रही थीं। "तुम तारीफ़ किये बिना नहीं रह सकते, और मैं गर्व अनुभव किये बिना नहीं रह सकती।"

गर्व से मेमनों की ऊन पर हाथ फेरते हुए दादी ने झेंपते हुए फिर कहा—"देखो तो कैसे शहद की मक्खियों की तरह आ लिपटते हैं मुझसे! मैं दावे से कह सकती हूँ कि ऐसे प्यारे नन्हे-नन्हे मेमने तुम्हें बहुतेरे फ़ार्मों में नहीं मिलेंगे। सफेद, नन्हे-नन्हे, झब्बेदार—नीले आसमान में सफेद बादलों के टुकड़े जैसे।"

एक भारी-भरकम मेढ़ा अपने बलखाये सींग आगे को करके बाड़ के पीछे से वासिली की ओर झपटा।

दादी ने मेढ़े के प्रदर्शन पर प्रसन्न होते हुए बताया: "यह डर रहा है कि तुम मेमनों को उठा न ले जाओ! उनकी रखवाली करता है। यह बड़ा चौकस है! इससे होशियार रहना। ज़रा चूके नहीं कि इसने मारा!"

वासिली ने मुस्कराकर 'चौकस' मेढ़े की तरफ़ अपना हाथ बढ़ा दिया। मेढ़े ने हाथ को तिरछी निगाह से देखा और फिर अपने सींगों की नोक हाथ की सीध में करके एक चोट मारी।

"देखा कितना गुस्सेबाज़ है!" दादी वासिलिसा अभिमान से बोली। "गर्मियों में हम लोग इन्हें चराने के लिए पहाड़ियों पर ले गये थे। चरवाहे के साथ मैं खुद भी गयी थी। आसपास की सभी चरानें हम लोगों ने छान डालीं। भेड़ें बेचारी खाती ही कितना हैं? आजकल फिर दुबली हो चली हैं।"

वासिली भेड़ों के बाड़े से लौटा तो सोच रहा था—"देखो न, जहां लोगों में सामूहिक-खेत वाली भावना हो, वहां बुरा प्रधान भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता? मान लिया, प्रधान निकम्मा था, फ़ार्म के दफ्तर के लोग काम नहीं करते थे; पर तुम कहां थे?" वासिली कल्पना में खेत के किसानों से बातें कर रहा था। "जब समय अच्छा होता है तब तो तुम लोग सहयोग

के लिए तैयार रहते हो ! लेकिन मुसीबत आई नहीं कि सब लोग अपने-अपने बिलों में घुस जाते हो और बिलों का मुंह बन्द कर लेते हो।"

एक दिन वासिली दोपहर की छुट्टी के बाद अस्तबल गया। आंगन में अच्छी-खासी भीड़ थी। लोग खेतों या जंगल में अपने-अपने काम पर जाने के लिए गाड़ियों की तलाश में जमा थे।

अस्तबल में अंधेरा सा था। घोड़े अपने थानों पर सुम पटक-पटककर हिन-हिना रहे थे। अधखुले दरवाज़े से ठंडी सुर्ख रोशनी की पट्टी से प्रकाश भीतर आ रहा था। मातवेयेविच, पुराने प्रधान का गुलाबी गालोंवाला लड़का अल्योशा, और लुबावा बोल्शाकोवा दरवाज़े के पास भूसे के ढेर पर बैठे जीन और साज़ों की मरम्मत कर रहे थे।

युद्ध से पहले लुबावा के चेहरे पर खूब जवानी और रौनक थी। वह स्वभाव की खुशमिजाज़ और बड़बोली थी। युद्ध में उसका पति खेत रहा था। बेचारी के पांच बच्चे थे और वह विधवा हो गयी थी। इस शोक ने उसके चेहरे और मन, दोनों को झुलसा दिया। कठिनाई ने उसके स्वभाव को और कड़ा बना दिया; साथ ही उसके चेहरे को और ही एक छवि भी दे दी। अब वह पत्थर की तराशी हुई मूर्ति जैसी लगती थी।

"चलो अब काम चल जायेगा"—एक साज़ को समेटते हुए लुबावा बोली। वासिली को उसके स्वर में एक अपरिचित कटुता सी खटकी। लुबावा उठी और एक धुंधले काले रंग के घोड़े को थान से खींच लायी।

घोड़ा अड़ता हुआ आ रहा था। उसकी सूखी-सूखी टांगें अपने ही बोझ से फैली जा रही थीं। पसलियां कमचियों की तरह बाहर निकली पड़ती थीं। उसकी सूजी-सूजी आंखों से थकावट और अवसाद झलक रहा था।

"लानत है ऐसे लोगों पर !" वासिली के मुंह से निकल पड़ा। "क्या हाल कर दिया है बुलानी का ! ये सामूहिक खेत के लोग हैं ? आदमियों की तो बात क्या, जानवरों को भी मुंह दिखाने लायक नहीं हो तुम लोग !"

लुबावा का मुंह झटके के साथ ऊपर उठ गया :

"किससे कह रहे हो ?"

"क्यों ? चोर की दाढ़ी में तिनका ?"

लुबावा के हाथ से रास गिर पड़ी। वह वासिली के सामने आ खड़ी हुई।

दरवाज़े के भीतर के धुंधले प्रकाश में लुबावा का सांवला, क्रोध से तमतमाता, गाल धंसा चेहरा, तनी हुई भौंहों के नीचे चमकती काली आंखें—यह सब वासिली को कुछ ऐसा सुन्दर और विचित्र लगा कि उसके मुँह से बोल ही न निकल पाया। वह एकदम पीछे हट गया।

"ऐसे लफ्ज़ अभी धरती, समुद्र या आसमान पर बने नहीं हैं जिनका तुम मेरे खिलाफ़ प्रयोग कर सको।" कड़े स्वर में लुबावा बोली। "तुम्हें एक दुबले घोड़े पर तो दया आती है, लेकिन तुम्हें यह नहीं मालूम कि युद्ध काल में हम लोगों ने कैसे अपने बच्चों के मुंह का ग्रास छीन-छीनकर सिपाहियों का, और प्रधान जी, आपका पेट भरा था। तुम सबको एक ही लाठी से हांकते हो! माना कि दो-चार निकम्मे आदमी हैं। पर, उन्हें तो हम खुद ही लानत भेजते हैं।"

"लड़ाई के पहले सालों में तो हमारे फ़ार्म ने अपने कोटे से भी ज्यादा अनाज दिया था"—किसी लड़की की महीन, पर ऊंची, आवाज़ सुनाई दी। कौमसोमोल की सदस्या, गोल-गोल चेहरे वाली तातिआना, अस्तबल के परले सिरे से बोल रही थी।

लुबावा वासिली की ओर एक क़दम और बढ़ आई—"हां! तब हमने योजना से अधिक काम किया था या नहीं?"

लुबावा का क्रोध से तमतमाता चेहरा उसके बिलकुल पास आ गया।

"क्या समझते हो! ऐसी धरती से, और सन '४२ की सर्दी में, योजना से अधिक पैदावार कर देना खेल था? जानते हो क्या हालत थी? मर्द सब के सब लड़ाई पर जा चुके थे। बढ़िया घोड़े भी हमने फ़ौज में भेज दिये थे," लुबावा का गला रुंधने लगा था पर वह कहती गयी, "और... हम विधवाओं की आंखों से आंसू बह रहे थे।" उसके कंधे जैसे किसी भार से झुक गये। सहारा लेने के लिए वह दीवाल से टिक गयी। लगता था वासिली उसके सामने नहीं है और वह कहीं दूर देख रही है; वासिली से ज्यादा अब वह अपने से बात कर रही थी: "महीने भर की बारिश के बाद उस दिन धूप निकली थी। उसी दिन मुझे पति की मृत्यु की खबर मिली...। जौ की कटाई अभी पूरी नहीं हुई थी...। मैं कटाई करती जा रही थी, पर मुझे दिखाई कुछ नहीं दे रहा था। आंखों से आंसू बह रहे थे। हंसिया मेरे हाथ में था, पर मुझे कुछ पता नहीं था कि मैं क्या काटती जा रही हूँ, क्या कर रही हूँ। मुझे कुछ नहीं मालूम था कि क्या हो रहा है। बस हाथ चल रहा था। तभी प्रास्कोवा ने चिल्लाकर मुझे रोका—'क्या कर रही है री? कितना खून बह गया है? सारी ज़मीन खून से तर हो गयी है।' रुककर मैंने देखा। मेरे कपड़े खून से तर थे और मेरी टांगें हंसिये के घावों से जगह-जगह जख्मी हो रही थीं।" लुबावा खामोश हो गयी। वह चुप हुई तो सभी चुप हो गये; घोड़ों ने भी हिनहिनाना और सुम मारना बन्द कर दिया। "मैं कुछ कहना नहीं चाहती थी!" लुबावा फिर बोली, "पर तुम्हीं ने पहले डंक मारा। सभी को एक बांट से तौलने का मतलब? अरे, तुम अपनी अवदोत्या को ही देखो! वह न होती तो

आज एक गाय ज़िन्दा न दिखाई देती। इस अल्योशा को देखो, चौदह बरस की उम्र से पूरे जवान मर्द का काम कर रहा है। दादी वासिलिसा को देखो, भेड़ों का बाड़ा लड़ाई के पहले से भी बेहतर हालत में है। तुम सभी को दोषी समझते हो; सबको एक ही लपेट में लपेटते हो। नहीं; अभी ऐसे शब्द नहीं बने हैं जिनसे तुम हमें दोषी ठहरा दो और खुद बड़े क़ाबिल बनते फिरो! कुछ समझे, प्रधान महोदय! हटो! रास्ता छोड़ो!"

लुबावा के चले जाने के बाद दूसरे किसानों ने वासिली को घेर लिया। वे सभी एक साथ बोलने लगे।

"तुम हमें दोष देते हो कि हमने फसलों की अदला-बदली का सिलसिला बिगाड़ दिया!" उस खेत के अत्यंत सम्मानित बुजुर्ग पिमेन यासनेव ने कहा। "अच्छा भाई! हमने ही बिगाड़ दिया! पर असल बात क्या थी? यूक्रेन के काली मिट्टी के सभी खास-खास इलाके नाज़ियों के हाथ में चले गये और गल्ला पैदा करने का पूरा बोझ हम लोगों के सिर आ पड़ा। हर तरफ़ से गल्ले की मांग! देश भर के लिए गल्ला! सेना के लिए गल्ला! लड़ाई के पहले वर्षों में इतना ज्यादा गल्ला हमने दिया कि शायद ही कभी पहले इतना दिया हो। हां, ध्यान रहे—इतना ज्यादा! सभी काम तेज़ी से हो रहा था। लेकिन, क़िस्मत की बात! इसी कठिन समय में आ बैठा एक निकम्मा प्रधान! बस गड़बड़ी शुरू हुई। अरे, किसान तो अच्छे-बुरे सभी तरह के होते हैं; मतलब यह कि हम लोग खामियों से बरी नहीं हैं। हम लोगों ने फ़ार्म के नेतृत्व के बारे में कमज़ोरी दिखलाई, और अब हम लोग भुगत रहे हैं। पर, लुबावा जैसों को निकम्मों में मिला देना तो शर्म की बात है न?"

ठिगना, गठीला यासनेव अपनी बात धीरे-धीरे समाप्त करके वासिली की ओर उलाहना भरी कठोर दृष्टि से देख रहा था।

"बार-बार युद्ध की बातें करने से क्या फायदा?" वासिली ने उत्तर दिया। "माना कि युद्ध के दिनों में फ़ार्म के लोगों ने बहुत काम किया था; पर, अब क्या हो गया है? अब भी तो तुम अपने सामूहिक खेत के मालिक हो—तुम प्योत्र मातवेयेविच और तुम पिमेन इवानोविच!"

जवाब देने को तो वासिली किसानों को निरुत्तर कर आया था। परन्तु उस रात बहुत देर तक उसे नींद नहीं आई। लुबावा का क्रुद्ध चेहरा बार-बार उसकी आंखों के सामने आ जाता था और उसे सुनाई देता मानो वह कह रही हो: "कुछ समझे, प्रधान महोदय?"

वासिली के मन में बार-बार खटक रहा था कि उससे कुछ चूक हो गयी है। उसे लगता ग़लती खेत और पार्टी के काम में ही नहीं हुई, घर में भी हुई है। अपना पारिवारिक जीवन भी उसे असफल लगता। प्रकट में न तो

कोई झगड़ा था, न तू-तू मैं-मैं। पर, खुशी और उमंग भी नहीं थी। घर में जैसे तनाव की चुप्पी छाई रहती हो।

एक शाम की बात है। वासिली को ज़िला पार्टी के दफ्तर से लौटे कुछ ही अरसा हुआ था। मेज़ पर पड़े कागज़ों को समेटते हुए झुंझलाकर वह बोला :

"बहुत हुआ! इस मनहूस खेत की प्रधानी से भर पाया। कभी तो हम भी साधारण आदमियों की तरह सांझ के समय चैन करें...! ज़रा घूम-फिरकर ही मन हल्का करें। चलो दुन्या, आज सांझ बप्पा के घर हो आयें।"

वासिली तैयार हो गया। अवदोत्या अभी कपड़े बदल रही थी। कभी एक ब्लाउज पहनती, कभी दूसरा।

"कितनी देर लगेगी पोशाक सजाने में? कौन ब्याह शादी में जा रही हो?"

"अम्मा बुरा मान जाती हैं। कपड़े ठीक से न पहनो तो टोक देती हैं।" अवदोत्या ने उत्तर दिया।

अवदोत्या ने गहरी-नीली साटिन का ब्लाउज पहना और गाढ़े रंग का रूमाल सिर पर बांध लिया। उसके चेहरे का पीलापन और भी उभर आया। बड़ी-बड़ी आंखों में थकावट और चिन्ता झलक रही थी। मालूम होता था—किसी छोटी सी, थकी, और डरी हुई लड़की पर किसी ने भारी परिवार का बोझ डाल दिया था।

वासिली के मन में आ रहा था कि वह अवदोत्या की कमर में बांह डाल ले। पर उसने मन मार लिया। अनबन की एक अदृश्य सी दीवार उन लोगों के बीच बनी ही रहती थी, जैसे कांच का एक पर्दा हो जो दिखाई न देने पर भी अलंघ्य ही रहता है। जब भी वासिली के मन में पत्नी के लिए प्यार उमड़ता, उसे अवदोत्या का स्तेपान से हाल का सम्बंध याद आ जाता और उसका मन ठंडा पड़ जाता। ऐसा ही इस समय भी हुआ। वासिली ने पत्नी की ओर बढ़ती बांह रोक ली। पर, उसकी आंखों का भाव अवदोत्या से छिप न सका। उसके चेहरे पर हल्की सी लाली दौड़ गयी। अपने खुश्क ओठों को सिकोड़ कर उसने एक गहरी सांस ली। उसे जान पड़ा कि अपने कंधों को दबाने वाला बोझ क्षण भर के लिए उसने फेंक दिया है।

वासिली ड्योढ़ी पर जाकर अपनी पत्नी की प्रतीक्षा करने लगा।

ऊपर, नीले कांच की पटिया की तरह स्वच्छ आकाश में टंका हुआ हल्का बादल का टुकड़ा सूर्यास्त की किरणों में सुनहरा दिखाई दे रहा था। वासिली का मकान पहाड़ी की ढलवान पर था। ड्योढ़ी में खड़ा वह दाहिनी ओर फैले घने जंगलों को देख रहा था।

बाईं ओर दिगन्त तक खेत फैले हुए थे। सब ओर जमकर कड़ी पड़ गयी बर्फ़ पर सूर्य की तिरछी किरणों से अबरक जैसी गुलाबी-झलक आ गयी थी। चारों ओर फैली सफेदी में खेतों को चीरती सिर्फ़ सड़क की नीली रेखा दिखाई पड़ रही थी। सड़क से नीचे ढलवान पर सूर्यास्त की छाया आ चुकी थी।

वासिली ने सीना फुलाकर एक गहरी सांस ली। ठंडी हवा की ताज़गी से उसके शरीर में फुरफुरी दौड़ गयी।

अवदोत्या जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाती हुई आकर वासिली के पास खड़ी हो गयी। वह खाल का अस्तर लगा बालदार नीला कोट पहने थी और कंधों पर सिलेटी रंग की ऊनी शॉल लपेटे थी।

वासिली ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। निश्चल खड़ा वह बर्फ़-छाये मैदानों पर दृष्टि जमाये रहा।

अवदोत्या की आंखें सूर्य की किरणों और बरफ़ की चमक से चौंधिया रही थीं। पल भर वह उसी ओर देखती रही, फिर बोली : "ओह, कितना सुन्दर लग रहा है!"

सामने फैले विस्तार पर आंखें जमाये वासिली बोला : "दुन्या, याद है खाई के परे का वह खेत जो बप्पा को मिला है? यह खाई पहले पावलोविच की थी। खाई से परे का छोटा सा टुकड़ा कोनोपातोव का था।" वासिली ने मुंह बनाकर कहा—"तब हम लोग मक्खी जैसे ज़रा-ज़रा से टुकड़ों को 'खेत' कहा करते थे! और हम लोग सचमुच उन्हें खेत मानते भी थे—उन पर वैसी ही मेहनत भी करते थे।"

आज उसके लिए यह सोचना भी मुश्किल था कि ये खेत विभाजित हो सकते हैं, अलग-अलग पट्टियों में बंट सकते हैं।

खेतों से परे, जहां जंगल शुरू होते थे, वासिली को कोई छोटी सी चमकदार चीज़ हिलती दिखाई दी।

"देखो, देखो, दुन्या! लोमड़ी!"

संध्या के सुनहले प्रकाश में लोमड़ी आग की सिन्दूरी लपट जैसी दिखाई दे रही थी। बहुत दूर होने के कारण वह बिल्ली के बच्चे के बराबर लग रही थी। परन्तु उसकी पतली-पतली टांगें, खूब फूली हुई भारी सी पूंछ, उसका चपल-फुर्तीला शरीर—सब साफ़ दिखाई दे रहे थे।

लोमड़ी दौड़-दौड़ कर चक्कर लगा रही थी। दौड़ते-दौड़ते वह सहसा अगले पांव उठाकर खड़ी हो जाती। कभी वह कुछ दूर तीर की तरह सीधी दौड़ जाती और फिर चक्कर काटने लगती। उसकी उठी हुई, फूली हुई पूंछ बहुत सुन्दर लग रही थी।

वासिली लड़कों की तरह किलक उठा—"अरे, देखो, देखो! चूहे पकड़ रही है!"

प्रकाश के पुंज सी चपल और चंचल लोमड़ी बरफ़ के मैदान में चौकड़ी भरती चली जा रही थी। दौड़ते-दौड़ते पेट को बरफ़ पर बिलकुल चिपका कर वह क्षण भर को लेट गयी और फिर सहसा उछल कर दौड़ लगाने लगी। वासिली की आंखें विस्मय से फटी जा रही थीं; वह सांस साधे खड़ा था।

लोमड़ी ने अपनी थूथनी बरफ़ में गाड़ दी। पूंछ को झंडे की तरह खड़ा किये वह पंजों से जल्दी-जल्दी बरफ़ खोदने लगी—जैसे बरफ़ में दबी हुई कोई चीज़ निकाल रही हो।

बरफ़ में खेलती इस छोटी सी लोमड़ी को देख कर वासिली का मन गदगद हो उठा। उसे लगा—चारों ओर, सभी तरफ़, प्रसन्नता और सुख उमड़ा पड़ रहा है! बस उसे जितना चाहो समेटने की ज़रूरत है।

चरागाह के पास, छोटी पहाड़ी के पीछे से एक आदमी सड़क पर आता दिखाई दिया। आदमी एक छोटा सा ठेला लिये आ रहा था। ठेले पर लकड़ी के छोटे-छोटे कुन्दे लदे थे। वासिली ने पहचाना। प्योत्र मातवेयेविच जंगल से कुन्दे ला रहा था। वासिली भन्ना उठा:

"यह भी दूसरों से कम नहीं है! यह वक्त है खेतों में खाद डालने का और इसे जंगलों से छाल बटोरने की पड़ी है।"

छाल की रस्सी और डोरी अच्छे दामों बिक जाती थी। इसलिए सामूहिक खेत के किसान प्रायः खेत का काम छोड़ कर पेड़ों के कुन्दे काटने के लिए जंगल चले जाते थे। कुन्दों को पानी में गला कर वे उनकी छाल उतार लेते थे। उससे रस्सी और डोर बना लेते थे।

शुरू में तो वासिली ने इस पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया। सोचा, डोरी रस्सी बटते हैं तो बटने दो, उससे खेती के काम में क्या फ़र्क पड़ता है! पर, जब किसानों को रस्सी की बटाई के ही काम में लगे देखा तो वह परेशान होने लगा।

वासिली ने किसानों को सलाह दी कि रस्सी-बटाई का काम भी सामूहिक खेत के कामों में जोड़ लिया जाय। उसकी मज़दूरी भी खेती की मज़दूरी के साथ मिला ली जाय। लेकिन, किसानों ने यह सुझाव नहीं माना। उन्होंने इस विचार की खिल्ली उड़ाते हुए कहा:

"पहले सामूहिक खेत की हालत किसी लायक हो जाय तब देखा जायगा? वाह वाह! रस्सी का तो यह है कि बटकर बाज़ार में ले गये और खरे दामों बेच आये।"

वासिली को डोरी-रस्सी के नाम और सूरत से भी चिढ़ हो गयी। सड़क पर चलते-चलते रस्सी का टुकड़ा मिल जाय तो वह उसे क्रोध से ठोकर मारे बिना नहीं रहता था।

वासिली ने यह कभी नहीं सोचा था कि रस्सी की बीमारी इतनी बढ़ जायगी। पर, मातवेयेविच जैसे आदमी को भी जब रस्सी में उलझे देखा तो वह बौखला उठा :

"खाद खेतों में ढोने को पड़ी है, औज़ारों की मरम्मत बाक़ी है, और ये लोग हैं कि रात-दिन डोरी-रस्सी बटने में लगे हैं। अच्छी मुसीबत हो गयी यह डोरी-रस्सी!"

"नाराज़ क्यों हो रहे हो, वास्या? लोग कुछ पैसा बना लेते हैं तो उससे क्या जाता है?"

"क्या कहना है", वासिली और भी बिगड़ा, "समूहिक खेत से और खेती से पेट नहीं भरेगा? बस इस छाल की रस्सी-डोरी से ही निर्वाह होगा? मुझे तो डर है कहीं यह रस्सी सामूहिक खेत के गले की फांसी न बन जाये।"

वासिली के पिता का मकान—जहां वासिली पला-पनपा था—खूब ऊंची बाड़ से घिरा था। इतनी ऊंची बाड़ गांव के और किसी मकान की नहीं थी।

भेड़िया की सी शक्ल का भूरे रंग का एक कुत्ता ज़ोर से भौंकता हुआ वासिली पर झपटा। वासिली की सौतेली मां भेड़ों के बाड़े में थी। कुत्ते को धमकाने के लिए वह एक फावड़ा घुमाती हुई दौड़ी।

"चुप हो! चुप हो, अधरमी!"

स्तेपनिदा लम्ब-तड़ंग और सुडौल स्त्री थी। उसका चेहरा-मोहरा मर्दाने ढंग का था। उसकी भूरी सी निष्ठुरतापूर्ण आंखों पर पलकें सदा अधमुंदी सी रहती थीं।

"मेरा मन कह रहा था कि आज तुम आओगे। इसीलिए मैंने खुम्बे भरकर परौठे बनाये हैं। दुन्या को बहुत भाते हैं!"

मेहमानों का हाल-चाल पूछ कर स्तेपनिदा आगे-आगे मकान को चली।

स्तेपनिदा ऐसे चलती थी जैसे शांत जल पर तैरती नाव का मस्तूल खड़ा हो। उसके सिर का एक बाल भी नहीं हिलता था। पीछे-पीछे चलता

हुआ वासिली सोच रहा था—"गिलास में पानी भर कर इसके सिर पर रख दो; क्या मजाल है कि एक बूंद पानी गिर जाय!"

भीतर के कमरे में शहरी ढंग का क़ीमती फर्नीचर था। खिड़कियों में सुन्दर पौदों के गमले रखे हुए थे। वासिली का पिता दोनों छोटे लड़कों के साथ वहीं बैठा था। एक मेहमान—गांव की तरुण अध्यापिका—भी बैठी थी। कोने में मूर्तियों के सामने एक दीपक जल रहा था।

उक्रेन में अब भी कुछ ऐसे लोग थे जो पुराने धार्मिक संस्कारों को निभाये जा रहे थे। वासिली के माता-पिता भी उन्हीं में से थे।

बाहर से तो लोगों को यही मालूम पड़ता था कि घर में वासिली के पिता की ही चलती है। स्तेपनिदा पति का सम्मान करती थी और उसकी बात कभी नहीं टालती थी। पर वास्तव में घर में राज उसी का था।

स्तेपनिदा जवानी में शोख और सुन्दर थी। उसके माता-पिता की आर्थिक स्थिति भी अच्छी थी। वासिली की मां के मर जाने के बाद स्तेपनिदा वासिली के पिता से प्रेम करने लगी। माता-पिता ने उसका विरोध किया। पर, वह मानी नहीं और वासिली के पिता से शादी कर ली। तभी से वासिली का पिता स्तेपनिदा का बहुत आदर और प्यार करता था।

स्तेपनिदा मालकिन बनी। घर सम्भालने में उसने अद्भुत "गुणों" का परिचय दिया। वह पड़ोसियों से सस्ते दामों में सौदा खरीद लेती और बाज़ार में जाकर तिगुने मुनाफ़े पर बेच आती। दूध में पानी और मक्खन में आटा मिला कर भी वह गाहकों को समझा देती थी कि उसी का माल बाज़ार में सबसे बढ़ कर है। स्तेपनिदा ने देख लिया था कि उसके पति में इस तरह के "व्यापार" की समझ नहीं है—वास्तव में ऐसे कामों से बेचारे कुज़मा को डर ही लगता था। इसलिए स्तेपनिदा पति को ये बातें बता कर परेशान नहीं करती थी। वह बेचारा तो समझ ही नहीं पाता था कि घर में इतना सामान चला कहां से आ रहा है!

वासिली का पिता कड़ी मेहनत करके भी जैसे-तैसे पेट ही भर पाता था। स्तेपनिदा आई तो घर में लक्ष्मी बरसने लगी। इस चमत्कार को देख कर कुज़मा फूला नहीं समाता था। दोनों ने विचित्र ढंग से अपने-अपने काम बांट लिए थे और दोनों की खूब निभ रही थी। कुज़मा का काम था "आर्थिक स्रोतों" तथा "अचल पूंजी" की देखभाल करना, अर्थात् घर के बाहर काम करना, गल्ला और पशुओं के लिए चारा लाना आदि। और स्तेपनिदा का काम था, इस पूंजी के उचित संचलन से मुनाफ़ा बटोरना।

स्तेपनिदा कहा करती थी: "रोटी तुम कमाओ; मक्खन का ढंग मैं कर लूंगी।"

धीरे-धीरे उनके जीवन में परिवर्तन आया। वे लोग सामूहिक खेत में सम्मिलित हो गये। कुज़मा की आय भी खूब बढ़ गयी। ऐसा भी एक समय आया, जब कुज़मा ने गाड़ियों अनाज और ढेरों दूसरा सामान अपने घर ढोया। इस आमदनी की तुलना में स्तेपनिदा के बाज़ारी कारोबार की क्या औक़ात थी? कुज़मा अकेला ही रोटी और मक्खन कमाने लगा। फिर भी, बूढ़े कुज़मा के मन में इतने दिनों बाद भी यही विश्वास बना रहा कि उसकी सुख-सम्पदा स्तेपनिदा के भाग्य से है; स्तेपनिदा न होती तो वह बेचारा बच्चों को लेकर ग़रीबी में अकेले रंडुये की ज़िन्दगी बिता देता। टूटी-फूटी झोपड़ी में नन्हें वासिली के साथ निराशा भरे सूने-सूने दिन बिताता!

स्तेपनिदा ने सौतेले बेटे वासिली और अपने बच्चों में कभी कोई भेद-भाव और पक्षपात नहीं किया। परन्तु, वासिली की सौतेली मां से नहीं निभ पायी। दोनों में ही अकड़ थी। और, जैसा कि वासिली कहता था, दोनों की अपनी-अपनी "राह" अलग-अलग थी।

वासिली ने जब पहली बार ट्रैक्टर देखा तभी ठान लिया कि चाहे जो हो मैं ट्रैक्टर-ड्राइवर बनूंगा! माता-पिता के विरोध के बावजूद वासिली ट्रैक्टर चलाने का काम सीखने लगा और मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में भरती हो गया। वासिली को गांव-गांव का दौरा करना पड़ता था। वह जहां भी जाता, लोग कौतूहल और उत्साह से उसका स्वागत करते; उसकी खूब खातिर होती। बच्चे उसके ट्रैक्टर को घेर लेते। गांव की लड़कियां उसके पीछे-पीछे घूमतीं। थोड़े ही दिनों में ज़िले भर में उसका नाम हो गया। वह सबसे अच्छा ट्रैक्टर-ड्राइवर माना जाने लगा।

कम उम्र में ही इतना नाम हो जाने से वासिली पर अपने काम और नाम दोनों का ही नशा छाया रहता था। सब ओर से बरसने वाले आदर से उसकी उमंगें और भी लहलहा उठीं। वह प्यार के गीत गुनगुनाता; ज़रा सी उपेक्षा से वह खिन्न हो जाता और आहें भरने लगता।

ट्रैक्टर-ड्राइवरी के उत्साह भरे दो बरस बिताने के बाद वासिली को कुछ महीनों के लिए जब अपने घर में रहना पड़ा तो उसे सभी तरफ़ अड़चन और परेशानी जान पड़ी। वासिली चाहता था स्वतंत्रता से अपने मन की उमंगें पूरी करना। पर स्तेपनिदा को यह सब कहां बर्दाश्त था? उचित बहाना मिलते ही वासिली माता-पिता से अलग हो गया।

कुछ और बरस बीत गये तो आपसी मतभेद और झगड़े वासिली को भूल गये। उसे याद रह गयीं घर की प्यार भरी बातें: आंगन में लगे रसभरी के झाड़, जिन्हें वासिली बचपन में रहस्य भरे दुर्गम जंगल समझा करता था; वह दिन, जब पिता ने पहले पहल उठा कर उसे घोड़े की पीठ पर बैठा

दिया था; और वे दिन, जब सुबह की मीठी-मीठी धूप में वह खेतों में फिरते पाटे के पीछे-पीछे ठुमक-ठुमक कर चलता था।

अपने पिता के लिए वासिली के मन में बहुत प्यार था। कुज़मा चुप्पा, परन्तु मन का बहुत दयालु और गज़ब का मेहनती आदमी था। वह हाथ का भी बहुत सधा हुआ था। खेत की जुताई, ज़रूरत पड़ने पर लुहार-बढ़ई या मोची के काम में भी चुस्त। कुज़मा काम भी ऐसी चतुराई और लगन से करता था कि उसके साथ काम करने में वासिली को लगता जैसे खेल खेल रहा हो।

वासिली ने बेंच पर रखे फूलों के गमलों को एक ओर हटा दिया और पिता के पास बैठ गया। कमरे में चमड़े की गंध फैल रही थी। वासिली को यह गंध अच्छी लगती थी।

कुज़मा के सिर के बाल चांदी की तरह उजले हो गये थे, पर भौंहें अभी काली थीं। उसका चेहरा सांवला पड़ गया था, जो सफेद बालों के कारण और भी सांवला लगता था। वह सिर झुकाये जूते का ऊपर का भाग कलबूत पर कस कर सी रहा था। उसके रूखे कड़े हाथ बार-बार वासिली के शरीर से छू जाते थे।

वासिली का सबसे छोटा भाई प्योत्र, जिसकी उम्र सत्रह साल की थी, खिड़की के पास एक नीची तिपाई पर बैठा दूसरे पांव के कलबूत पर जूता सी रहा था। खिड़की में रखे जिरेनियम के फूलों की टहनियां और दूसरे गमले से लटकते चौड़े-चौड़े पत्तों से उसकी गर्दन और कंधे छिपे हुए थे। प्योत्र सबसे छोटा था, इसीलिए मां उसे 'छोटे' कह कर पुकारती थी। प्योत्र की आंखें और भौंहें पिता की तरह काली थीं, परन्तु रंग मां की तरह गोरा चिट्टा था और सिर पर बड़े-बड़े बाल थे। वह हरफ़नमौला और शैतानियों की पुड़िया था। अपने भाइयों में वही अकेला था जिसे कुज़मा ने दो बार काठी का तंग लेकर उधेड़ा था।

स्तेपनिदा और उसकी बहू अनफीसा, दोनों बैठी कुछ सी रही थीं। वासिली से छोटा, भूरे बालों और दोहरे बदन का फिनोगेन अध्यापिका से बातें कर रहा था।

फिनोगेन लकड़ी के दफ्तर में काम करता था। वह अपने को शहरी आदमी समझता था और अपनी ठुड्डी पर उसने छोटी सी नोकीली दाढ़ी भी रख ली थी।

फिनोगेन कुर्सी की पीठ से पीठ लगाये, ज़रा बड़प्पन की भावना से पर सच्ची गम्भीरता से, बातें कर रहा था। बातचीत पुस्तकों के बारे में चल रही थी। कुज़मा के घर के लोग ऊंचे-ऊंचे मसलों पर बातचीत करना बहुत पसन्द करते थे। बातें सुनते हुए सभी लोग फिनोगेन की विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता पर प्रसन्न हो रहे थे और गर्व अनुभव कर रहे थे। वह गोंचारोव के उपन्यास "पहाड़ी ढलवान" के बारे में बातें कर रहा था।

"सचमुच अव्वल दर्जे की किताब है," उसने कहा, "मैंने एक बार खतम करके दुबारा फिर पढ़ी। वीरा है तो चतुर लड़की पर मुंहज़ोर है—जैसी बिगड़ैल औरतें पहले हुआ करती थीं। मारफिंका वैसी बुरी नहीं है; ज़रा कंजूस है और...क्या नाम...कुछ अस्थिर भी......" ज़रा सिर तिरछा करके फिनोगेन ने कहा, "कुछ कहा नहीं जा सकता, मारफिंका का भविष्य कैसा होगा? वैसे कोई कम उम्र लकड़ी तो वह है नहीं; बीस-बाइस के लगभग होगी। मार्क दूसरे आदमियों जैसा साधारण आदमी है। जो चाहता था, वह उसे मिल गया है और वह संतुष्ट है। रेस्की को तो गोंचारोव ने बिलकुल लफंगा दिखाया है। आजकल भी ऐसे आदमियों की कमी नहीं है। सचमुच रेस्की बहुत गंदा आदमी है। और बुढ़िया! वह तो पूरी छबीलो है। पड़ोसी के साथ जवानी के दिनों में चाहे जो खेल खेलती रही हो, पर रोब क़ायम रखे है। उसकी उम्र पन्द्रह बरस कम कर दो—बस, किसी की भी बहू बन जा सकती है।"

"किताबों में बहू ढूंढा करते हो?" स्तेपनिदा ने पूछा। "पर, किसके लिए? क्या और एक व्याह करोगे? बाबा, आजकल के लड़कों का क्या ठिकाना?"

"नहीं, प्योत्र के लिए ढूंढ रहा हूँ।" हंसते हुए फिनोगेन ने कहा।

प्योत्र ने जिरेनियम के फूलों की डाल के पीछे से सिर उठाकर देखा। उसके होठों पर एक हलकी सी मुस्कान फिर गयी; बिलकुल वासिली जैसी।

"अच्छा है, भैया! तुम्हारी मदद के बिना मुझे वह मिल भी तो नहीं सकती!"

"अरे तू इसी चिन्ता में गला जा रहा है!" स्तेपनिदा ने त्यौरियां चढ़ाकर उसकी ओर देखा और फिर अध्यापिका को प्यार से सम्बोधित करके बोली: "बेटी एलेना, तू व्याह क्यों नहीं कर रही? तेरी जैसी सुन्दर, पढ़ी-लिखी लड़की को लड़कों की क्या कमी? कपड़े भी कैसे सजते हैं तेरे बदन पर? तुझ से व्याह करने को तो बहुत से लड़के दौड़ते होंगे? तुझे तो अपनी ज़िन्दगी बड़ी सूनी-सूनी लगती होगी?"

" अम्मा ! यह इंतज़ार कर रही है कि मैं ज़रा और बड़ा हो जाऊं ! " पत्तियों के झुरमुट के पीछे से ही दांत निकाल कर प्योत्र बोला।

" हुंह, तेरे जैसे चन्डूल से ब्याह करेगी ? " स्तेपनिदा ने उत्तर दिया। " उसके लिए भले चंगे जवानों की कमी है ? "

स्तेपनिदा ने यह बात यों ही कह दी थी। वह जानती थी कि अध्यापिका अभी व्याह के चक्कर में नहीं है। उसने यह बात कुछ तो कौतूहलवश चलाई थी, कुछ चुटकी लेने के लिए। अध्यापिका के प्रति उसे मन ही मन कुछ ईर्षा भी होती थी : क्या लेडियों की तरह मजे की ज़िन्दगी है; न घर की चिन्ता, न खसम की फिकर, न कोई झंझट।"

अध्यापिका ने कुछ शर्माते हुए मुस्कराकर कहा :

" लड़ाई के दिनों में मुझे इन बातों की फ़ुर्सत ही कहां थी, स्तेपनिदा एकिमोवा ? अब सोच रही हूं अध्यापकों के कालिज की एक और परीक्षा पास कर लूं। नई पंचवर्षीय योजना के मुताबिक लड़ाई से पहले के मुक़ाबले और बहुत से स्कूल खुलने वाले हैं। सभी अध्यापकों को विश्वविद्यालय की शिक्षा मिलने वाली है। मैं ही क्यों पीछे रहूं ? "

अध्यापिका उठकर जाने लगी तो स्तेपनिदा ने बहुत ज़ोर डालते हुए रुकने का आग्रह किया :

" वाह, अभी से क्यों चली जा रही हो ? अभी ठहरो न, खा-पीकर जाना। हम लोग तुम्हारे जितने पढ़े-लिखे नहीं हैं। लेकिन, तुम्हारी ख़ातिरदारी में कमी थोड़े ही होने दे सकते हैं ! "

अध्यापिका चली गयी तो स्तेपनिदा ने थूक कर कहा :

" छीः ! कैसी तंग कुर्ती पहनती है ! सारा बदन दिखाई पड़ता है; जैसे नंगी हो। "

" बनी है अध्यापिका ! " कुज़्मा ने भी असंतोष प्रकट करते हुए कहा। " पहनावा तो देखो ! घुटनों तक टांगें दिखाई देती हैं। दूसरों को क्या पढ़ाती होगी यह ? "

इन बातों से एक बार फिर वासिली को उस सड़ांध भरे वातावरण की याद हो आई जिससे ऊब कर वह घर छोड़ कर भागा था।

" क्यों खिल्ली उड़ा रहे हो उस बेचारी की ? " वासिली की त्यौरियां चढ़ गयीं। " वह तो बेचारी निष्कपट भाव से यहां आती है और तुम लोग......तुम लोगों की बातें ज़हरीले धुएं जैसी होती हैं। मैं आज लुबावा बोल्शाकोवा के यहां गया था। विधवा है बेचारी। देखभाल करने को पांच बच्चे हैं। मुसीबत में दिन काट रही है। मगर फिर भी, उसके यहां बैठना

इस घर में बैठने से ज्यादा अच्छा लगता है। तुम लोगों के घर में घुसो तो जैसें अंधे कुएं में आ गये हो!"

"तू तो खामखा बात का बतंगड़ बना देता है!" स्तेपनिदा बोली। "लोग क्या कभी ज़रा हंसी मज़ाक भी नहीं करते! सुनो तो इसकी बातें! कहता है: 'अंधा कुआं', 'ज़हरीला धुआं'! चुपचाप बैठ कर खाना खा। बाप के सामने बहुत बड़बड़ाना अच्छा नहीं लगता।"

स्तेपनिदा ने मेज़ पर रसेदार गोश्त का बहुत बड़ा सा कटोरा, रोटी और चम्मच रख दिये।

"अब बैठो...भगवान से प्रार्थना करो...।" सब लोग एक-एक चम्मच लेकर एक ही कटोरे से शोरवा पीने लगे। सब क़ायदे से अपनी बारी पर ही कटोरे में चम्मच डालते थे। सभी बड़ी गम्भीरता से, धीरे-धीरे, और श्रद्धापूर्ण ढंग से भोजन करते थे, मानो कोई बहुत महत्वपूर्ण काम कर रहे हों। कुज़मा के यहां खाना खाते-खाते बात करने का क़ायदा नहीं था। बस, एक-दो शब्द कभी सुनाई दे जाते:

"धन्य है भगवान!"

"रोटी इधर बढ़ाना!"

शोरवा चुक जाने पर बूढ़े ने कटोरे को अपने चम्मच से ठनकार कर कहा:

"लो न!"

सब लोग कटोरे से मांस के टुकड़े ले-लेकर खाने लगे। मांस के बाद उबले हुए आलू मक्खन लगाकर खाये गये। फिर, पन-खटाई में बनाया हुआ खीरा, और फिर खुम्ब भर कर बनाये हुए परोंठे खाये गये। चीजें बहुत सी थीं। पर, कोई भी चीज़ पूरी समाप्त नहीं हुई। सब चीज़ों में से थोड़ा-थोड़ा लेकर खा लिया गया। कुज़मा के यहां ऐसा ही रिवाज़ था।

खाना हो जाने पर स्तेपानिदा ने समावार लाकर मेज़ पर रख दिया और मेहमानों की ख़ातिरदारी के लिए तीन तरह का मुरब्बा निकाल लायी।

भोजन समाप्त होने के बाद बहू ने मेज़ साफ़ कर दी। स्तेपनिदा बोली:

"हाथ पर हाथ रख कर बैठना मुझे अच्छा नहीं लगता। ला बहू, रस्सी ले आ! हम तुम बटते जायेंगे!"

"भाड़ में जाय यह रस्सी!" वासिली बोल उठा, "यहां भी रस्सी!"

अध्यापिका के लिए कही गयी बातों पर वह पहले ही झल्ला रहा था।

"रस्सी बटने में क्या बुराई है?"

"अम्मा! पहली बात तो यह है कि रस्सी छाल से बटती हो। यह छाल तुम्हारी अपनी चीज़ नहीं है। यों तो तुम भगवान का भजन करती हो; मगर जंगल से छाल की चोरी करने में नहीं हिचकिचातीं!"

वासिली कहने को तो कह गया, पर तुरन्त ही उसने अनुभव किया कि उसके मुंह से कड़ी बात निकल गयी है। करता भी क्या; उसका स्वभाव ही खरी बात कहने का था, जो कभी-कभी बहुत कड़वी भी हो जाती थी। वह चाहता तो शांत रहना था, पर अपने को रोक नहीं पाता था। अभी भी बात कह कर वह अपने ही मन में खिन्न हो रहा था। मां पर भी उसे खीझ आ रही थी। गुस्सा उसकी काली आंखों में स्पष्ट झलक रहा था।

स्तेपनिदा के माथे पर भी बल पड़ गये। वह झगड़ा नहीं करना चाहती थी। पर चुप रह कर चोर भी कैसे बन जाती?

"जंगल किसी के बाप के नहीं हैं! वे भगवान की देन हैं।"

"तुम्हारी बारी में उगी गोभी भी तो भगवान की देन है। तोड़ तो ले कोई बिना तुम्हारी इजाज़त के!"

"न कोई जंगल में पेड़ लगाने गया था और न किसी ने सींचा था उन्हें!... तुम्हारे मां-बाप जंगल से थोड़ी सी छाल ले आये तो वही तुम्हें खल गया?"

वासिली के भाई और पिता चुप रहे। पर, छोटे भाई की पत्नी बोल उठी :

"छाल का क्या है। हम नहीं लायेंगे, तो दूसरे ले आयेंगे। हम नहीं लेंगे, दूसरे ले लेंगे!"

भाभी की बात सुन कर प्योत्र हंस पड़ा। जिज्ञासा भरी दृष्टि से उसने अपने पिता की ओर देखा। कुज़मा बिलकुल निश्चल बैठा हुआ था; उसकी आंखें उसकी छप्पर जैसी भौंहों के नीचे छिपी हुई थीं।

बहू ने फिर कहा—"थोड़ा बहुत पैसा बन जाय तो किसे बुरा लगता है?"

"तुम्हें पैसे की कौन सी दिक्कत है? मुझे तो नहीं दिखाई देती!" वासिली ने तड़ाक से जवाब दिया।

"अब ज़रा हालत सुधरी है। पर कैसे-कैसे दिन बिताये हैं हम लोगों ने? अब जाकर तुम्हारे पिता जी को पनचक्की का काम मिला है। लड़ाई के दिनों में अस्तबल में मेहनत करते-करते बेचारे की वह दुर्गति हो गयी थी कि क्या कहना!"

स्तेपनिदा की यह बात वासिली के तीर सी लगी।

"यह जानती भी हैं कि क्या कह रही हैं?" वह सोच रहा था।

पहले की सुनी हुई बहुत सी बातें और ताने उसे एकसाथ याद आने लगे। बैठे रहना अब उसके लिए मुश्किल हो गया, उसका दम घुटने लगा। कुर्सी पीछे फेंक कर वह झटाके से उठ खड़ा हुआ। वासिली आपे से बाहर हो गया था और बिना यह सोचे कि क्या कह रहा है, वह बोल उठा :

"पनचक्की का काम मिल गया तो क्या! खेतों और अस्तबल में काम करने वालों को क्या उतनी ही पगार नहीं मिल रही है?"

कमरे में खामोशी छा गयी। यह खामोशी इतनी तनाव भरी और गहरी थी कि बूढ़े की सांसों की आवाज़ और घड़ी की टिक-टिक साफ़ सुनाई दे रही थी।

फिनोगेन ने सिर झुका लिया। बहू उठ कर मेज़ का कपड़ा ठीक करने लगी। सिर्फ़ प्योत्र ने हाथ का काम बन्द कर दिया। वह तीव्र जिज्ञासा से कभी पिता की ओर और कभी वासिली की ओर देखता।

स्तेपनिदा का रुख और भी कड़ा हो गया :

"क्या मतलब है तुम्हारा? अपने मां-बाप पर इल्ज़ाम लगा रहे हो? तुम्हें तो हमारा जस मानना चाहिए कि सन् बयालीस में तुम्हारे बच्चों को हमी ने यहां लाकर पाला-पोसा। भगवान जानता है कि हमने कोई कसर नहीं रखी।"

वासिली के मस्तिष्क में कुछ अजीब से सन्देह उभर आये। मां क्या कह रही है, यह उसने नहीं सुना।

वह सोच रहा था : यह नया बड़ा आईना! मकान की यह नयी बाड़! चाय के साथ तीन-तीन तरह के मुरब्बे! पिछले साल तो सामूहिक खेत की हालत अच्छी नहीं थी। बहुत कम पगार लोगों को मिली थी...! इस घर में यह सब सामान आया कहां से?

कुज़मा अपनी जगह से उठा। जाकर वह वासिली के सामने खड़ा हो गया। उसके चेहरे पर न तो क्रोध था, न घबराहट! हां, एक अजीब तरह का तनाव और दयनीयता अवश्य थी।

वासिली ने पिता के झुर्रियों भरे चेहरे को देखा। उसका पितृ-स्नेह उमड़ आया, वैसे ही जैसे पिता से विदा होते समय उमड़ आता है। "बप्पा... जिन्हें कड़े श्रम से इतना प्यार था। इन्होंने खुद जीवन भर कठिन श्रम किया है और हम लोगों को भी कठिन श्रम करना सिखाया है। अब क्या करेंगे? क्या इस तरह तौहीन करने पर नाराज़ होकर मुझे घर से निकाल देंगे? या... शायद इससे भी बुरा... शायद? क्या मुझे ये बातें बकनी चाहिए थीं?

बूढ़े के ओंठ कांपे, मगर उसने कुछ कहा नहीं।

"ज़रा सोचो, क्या बके जा रहे हो तुम!" फिनोगेन ने ऊंचे स्वर में कहा। "साठ के पार हो चुके हैं यह और अब भी बैल की तरह जुएं में कंधा दिये हैं। पूरी पनचक्की इन्होंने अपने हाथ से नयी बनायी है। फ़ार्म में सब

लोग इनकी इज्ज़त करते हैं। किसी ने इनकी बात कभी टाली नहीं। तुम्हें शर्म आनी चाहिए...!"

पड़ोस के मकान से एक औरत घर में आई; वासिली की जान बची

घर ऐसा हो गया जैसे कुछ हुआ ही न हो। इस घर का यह एक अलिखित, किन्तु अनुल्लंघनीय, नियम था कि घर के झगड़े बाहर वालों के सामने कभी न खोले जायें।

अवदोत्या और वासिली घर जाने के लिए उठ खड़े हुए।

बरौठे में रस्सी का एक पिंडा पड़ा हुआ था। पिंडे को देख कर वासिली ने ज़ोर से उसमें ठोकर मारी।

"इस रस्सी का एक छोर पकड़ा नहीं कि देखते ही देखते गले में लिपट जायेगी।"

उस रात वासिली को नींद नहीं आई। वह करवटें बदलता रहा।

"पिता की मैंने तौहीन की है। अच्छा हुआ कि ज़्यादा मुंह नहीं खोला; जो कुछ कहा इशारे से ही कहा। मेरे दिमाग़ में भी कौन सा कीड़ा घुस गया था? वह लोग बड़ी होशियारी से घर चलाते हैं, बस। लोग उनसे जलते इसलिए हैं कि उन्हें ईर्षा है! फिनोगेन लकड़ी के महक़मे में काम कर रहा है। बप्पा और अनफीसा फ़ार्म में काम करते हैं। उनकी घर की कछियारी है, अपने गोरू हैं। सौदा करने में अम्मा दुनिया भर के कान काटती हैं, खरे दाम तो उन्हें दुकन्दारी के अपने तरीक़े पर ही मिल जाते हैं; ऊपर से मोची का, बढ़ई का काम भी होता है। घर के सभी प्राणी कुछ न कुछ करते हैं, कभी किसी को खाली बैठे नहीं देखा। इनकी हालत अच्छी नहीं होगी, तो किस की होगी?"

इन बातों से वासिली को कुछ तसल्ली हुई। लेकिन, नींद फिर भी नहीं आई। अंधेरे में उसे सुनाई पड़ा कि छोटी लड़की दुन्याशा नींद में मुंह चला रही है। सब ओर ख़ामोशी और शांति थी। यदि कहीं शांति नहीं थी तो वासिली के मन में! स्पष्टता नहीं थी तो वासिली के दिमाग़ में!

पिता के यहां शाम को हुई बातों की कड़वी चरपराहट अब भी उसके मुंह में थी। लेकिन इतने पर भी, लुबावा का ताना उसे याद आ रहा था। "देखने में तो सब कुछ सीधा सादा और साफ़ है, पर हर चीज़ की तह में पहुँचना आसान नहीं है; यह जानना आसान नहीं है कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है," वासिली के मन में विचार उमड़ रहे थे, "सोचा था चलो पिता के यहां हो आयें, ज़रा दिल बहल जायेगा। उल्टे मुसीबत गले बांध लाये। लगता है, न जाते तो अच्छा रहता। कल लुबावा ने कैसी फटकार बतायी। पर उसकी हर बात की मैं क़द्र करता हूं। आन्द्रेई ने भी तो यही कहा था...।

उसकी बात मानी होती तो अपने फ़ार्म के लोगों की ऐसी फटकार न सुननी पड़ती !"

वासिली ने गहरी सांस लेकर करवट बदल ली।

"क्या है वास्या, .नींद नहीं आ रही क्या ?" धीमे से अवदोत्या ने पूछा। "तकिया तो नहीं गड़ रहा ? रुई कड़ी पड़ गयी है इसकी। तुम मेरा तकिया ले लो न।"

"न, न, यह ठीक है...।"

कुछ देर दोनों चुप रहे। फिर अवदोत्या ने कहा :

"बछड़ोंवाले बाड़े का फ़र्श नया करवाना पड़ेगा, वास्या।"

"दुनिया के और भी कामों के बारे में तो सोचना है...बछड़ों का बाड़ा अभी रुक सकता है..." वासिली ने उलट कर जवाब दिया। वह कुछ बहुत ज़रूरी बातों के बारे में सोच रहा था। अवदोत्या के बीच में बोल पड़ने से विचारों का तांता टूट गया था। खोपड़ी में भरे विचार कुलबुला रहे थे; वे कभी एक ओर को, तो कभी दूसरी ओर को भागते थे।

उसे चारों ओर से घिरी समस्याओं को समझ लेना ही काफ़ी नहीं था, इन समस्याओं को उचित रूप से सुलझाना भी था। वह सोचता : "सामूहिक जीवन को सफल ढंग से चलाने की ज़िम्मेदारी मुझ पर है। लेकिन, अपने काम और व्यवहार से मुझे खुद संतोष नहीं है। लोगों को डांटे-डपटे बिना कैसे ठीक राह पर चलाया जाय ? क्या किया जाय कि वे मेरे नेतृत्व को मानें ? लोगों के सामने पार्टी का कार्यक्रम किस ढंग से रखा जाय ? मैं चाहता तो हूं सब ठीक से करना, पर मुझे तजुर्बा नहीं है।"

वासिली सोचने लगा कि युद्ध से पहले सब ठीक चल रहा था। अलेक्सी लुकिच और दूसरे कम्युनिस्टों का संगठन खूब मज़बूत था। एक स्थानीय पार्टी संगठन था और सब लोग एक सुदृढ़ परिवार की तरह काम करते थे। "बस, बुयानोव आ जाय," उसने सोचा, "... आन्द्रेई ने कहा था, बुयानोव को और एक और कम्युनिस्ट को भेजेगा। ये लोग जल्दी आ जायें तो पार्टी संगठन बन जाय। तब, काम को आसानी से संभाला जा सकेगा। तीसरा आदमी जाने कौन आयेगा ? कोई समझदार, अनुभवी आदमी ही आना चाहिए। पार्टी संगठन बन जाये तो बीसियों काम आसानी से हो जायेंगे। पार्टी संगठन और कौमसोमोल क़ायम हो जाये तो इन संगठनों के बल पर ग़ैर-पार्टी वालों की सहायता पाकर साल-दो-साल में हमारा फ़ार्म भी दूसरे फ़ार्मों की तरह चल निकलेगा।"

सफलता की कल्पनाओं से सान्त्वना पाकर वासिली का मस्तिष्क कुछ शान्त हुआ। उसे ऊंघ आने ही लगी थी कि किसी के सिसकने का शब्द सुनाई

दिया। यह आवाज़ उसकी बगल से ही आ रही थी। वासिली ने समझने की कोशिश की तो पता चला कि अवदोत्या सिसकियां ले रही है।

"रो रही है क्या?" वासिली ने सोचा।

वह उठ बैठा और एक दियासलाई रगड़ कर रोशनी की।

अवदोत्या की पलकें भीगी हुई थीं। वह उन्हें दबाकर मूंदे थी। रोशनी होने पर वह आंखें मलने लगी, जैसे अभी नींद खुली हो।

"क्या बात है?" वासिली ने पूछा।

"कुछ नहीं, नींद आ गयी होगी......" अवदोत्या ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया।

वासिली ने साफ़ देखा कि अवदोत्या रो रही थी। अपना रोना वह वासिली से छिपाना चाहती थी।

दियासलाई बुझाकर वासिली फिर लेट गया।

"इसके रोने का मतलब?...मैंने तो समझा कि बात आई गयी। इसे कुछ कहा-सुना नहीं, कोई बुरा व्यवहार नहीं किया।...अब रोने का क्या मतलब?...स्तेपान? उसकी याद आ रही है? छिः, यह औरतों की जात...। यहां सामूहिक खेत बरबाद हुआ जा रहा है, सोच रहे हैं कि मामला कैसे सुधरे, कैसे उसे कीचड़ से बाहर निकाला जाय और यह अपने यार को रो रही है।...मैं तो सब कुछ चुपचाप पी गया; न कभी बात छेड़ी, न कभी कुछ पूछा! कभी कुछ नहीं पूछा! और...यह रो रही है।..."

वासिली ने अवदोत्या की ओर पीठ फेर कर करवट ले ली और उससे दूर, पलंग की पटिया से चिपक कर, सो गया।

४. गिरगिट

जिन दिनों वासिली बोर्तनिकोव की ट्रैक्टर-ड्राइवरी की कीर्ति फैल रही थी, फ़ार्म के नौजवान लड़के और लड़कियां सांझ के समय उत्सा नदी के किनारे पेड़ों से लदी ढलवानों पर खेल-खिलवाड़ और दिल बहलाव के लिए जाया करते थे। इस गिरोह में एक दुबली-पतली, लगभग चौदह बरस की, लड़की भी जाती थी।

चोर-चोर का खेल हो या आंख-मिचौनी का या घास पर चकर-नृत्य हो, यह लड़की फिरकी की तरह चक्कर काटती बड़े-बड़े लड़के-लड़कियों में ज़रूर आ

मिलती। वह सबसे तेज़ भागती थी और हंसती भी सबसे ज्यादा थी। कभी वह देवदार के झाड़ों में जा छिपती और कभी बगूले की तरह झाड़ी से कूद कर किसी सहेली को कौली में भरकर जमीन पर गिरा देती, और उसे गुदगुदा कर हंसती हुई भाग जाती। कभी वह किसी लड़के के सिर से टोपी छीन लेती और खिलखिलाती और शोर मचाती हुई चिड़िया की तरह फुर्र से घाटी पर चढ़ जाती। बेचारा लड़का अपनी टोपी के लिए उसके पीछे चिल्लाता हुआ दौड़ता :

"दुन्याशा, दे मेरी टोपी ! ठहर तेरी गत बनाता हूं...!"

खेल के बाद लड़के-लड़कियां जोड़ों-जोड़ों में बंट जाते। कहीं से धीमे-धीमे, फुसफुसाहट से बात करने की और कहीं से लड़कियों के खि-खि करके हंसने की आवाज़ें आतीं। नदी के किनारे रात के इस मेले का मुख्य उद्देश्य शायद प्यार और मित्रता के साथियों की खोज थी। दबे-दबे स्वरों में शिकवे-शिकायतें होतीं, चोरी के चुम्बन होते और फिर ईर्षा के दृश्य ! इस छोटी सी लड़की का ही कोई साथी नहीं था। वह इन प्रेम के खेलों में भाग नहीं लेती थी, उसे इनकी समझ नहीं थी, या... शायद अभी ज़रूरत ही नहीं थी।

तारों भरी रात के आकाश के नीचे, चीड़ के वृक्षों की तीखी सुगंध और नदी की नमी लिये वायु से उस पर नशा सा छा जाता। उसके पांव जमीन पर न टिकते। सब चिन्ताओं और परेशानियों से मुक्त, स्वच्छन्दता के आनन्द में उन्मत्त, संध्या के धूमिल प्रकाश में किलोलें करते खंजन पक्षी की तरह वह फुर्कियां भरती फिरती, मानो हवा में उड़ रही हो—स्वतंत्रता की भावना में उन्मत्त, निस्सीम दिशाओं में निर्बंध उड़ानें भर रही हो !

मैदान में अलाव जल रहा था। वासिली ने चीड़ का एक सूखा झाड़ आग में डाल दिया। बड़ी-बड़ी लपटें भभक उठीं और चिनगारियां हवा में फैल गयीं।

लड़के ऊंची उठती लपटों को लांघने लगे। लड़कियां विस्मय से आंखें फैलाये चीख रही थीं :

"खबरदार ! खबरदार, दुन्याशा ! अरे जल मरेगी ! पकड़ो इसे ! क्या कर रही है ?"

पर दुन्याशा तीर की तरह आग के अलाव की ओर लपकी। उसके बालों पर बंधा सफेद रूमाल फिसला जा रहा था। अलाव के पास पहुँच कर वह पल भर को ठिठकी और फिर एक चीख मारकर आग के ऊपर से कूद गयी—जैसे पतली हरी कमची को किसी ने फेंक दिया हो। उसके सिर का रूमाल अलाव पर गिर पड़ा। वह जलता हुआ तेज़ हवा में उड़ चला, मानो अंधेरे में आग का कोई पक्षी उड़ रहा हो। किसी ने झपट कर रूमाल को गिराया और बुझा दिया।

"वाह री छोकरी।" वासिली ने विस्मय से कहा। "तू तो बड़ी तेज़ कुदक्कड़ है!" वह उसे पकड़ने के लिए आगे बढ़ा। पर लड़की उसके हाथों में से फिसल कर हंसती हुई एक झाड़ी में घुस गयी।

वासिली उसकी ओर देखता ही रह गया। "वाह री गिरगिट!"—उसके मुंह से निकल पड़ा।

एक साल बीत गया। खेतों में फसल तैयार खड़ी थी। कटाई का काम शुरू होने वाला था! सामूहिक खेत और मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में अच्छा काम करने वालों की प्रशंसा के लिए—उन्हें बधाई देने के लिए—जलसा किया जा रहा था।

वासिली अपने ट्रैक्टर पर खड़ा था। सम्मानित कार्यकर्ता की चुनौती का झंडा उसके हाथ में था। ट्रैक्टर हरी पत्तियों और घुंघची जैसे दानेदार फलों के गुच्छों से सजाया गया था। एक लाल गुच्छा वासिली की टोपी से भी लटक रहा था। ट्रैक्टर पर लगे हवा में लहराते दूसरे झंडों के फुंदे उसके गालों को छू-छू जाते थे। ट्रैक्टर दृष्टि की सीमा तक फैले खेतों के किनारे खड़ा था। गेहूं की फसल के खेत हरे रेशम से ढंके लग रहे थे। इन खेतों को वासिली ने ही जोता था। वासिली व्याख्यान देने के लिए खड़ा हुआ तो अपने ऊपर टिकी सैकड़ों आंखों का उसे गर्व हो रहा था :

"आज हमारे खेत—मखमल की तरह चमकते खेत—दृष्टि की सीमा तक फैले हुए हैं! उन्हें बांटने, छांटने, काटने, तोड़ने वाली मेड़ें और बाड़े गायब हो गये हैं। वे अविभाज्य हैं—हमारे जीवन की तरह; हमारे—तुम्हारे और मेरे—भविष्य की ही तरह, साथियो!"

सब लोग चुपचाप, वासिली की ओर एकटक देखते, सुन रहे थे। उस पर टिकी इन्हीं सैकड़ों आंखों में उसे दो चमकती आंखें दिखाई दीं जो विचित्र रूप से मन को झकझोर देनेवाली, विस्फारित, अनुभूतिपूर्ण, उल्लासमयी और बरबस अपनी ओर खींच लेनेवाली थीं।

वासिली अपना भाषण समाप्त करके ट्रैक्टर से नीचे उतर आया। लोगों ने उसे घेर लिया। कोई उसकी तारीफ़ कर रहा था, कोई बधाइयां दे रहा था, कोई मज़ाक कर रहा था, और कोई प्रश्न पूछ रहा था। वासिली उन सबको उत्तर देता हुआ सोच रहा था : "कौन था यह जो मेरी ओर इस तरह देख रहा था? वह देखो, फिर वे ही आंखें। अरे, यह तो 'गिरगिट' है!"

वह लड़की एक साल पहले जैसी ही दुबली-पतली और छमक-छरहरी अब भी थी। परन्तु अब उसके गोल चेहरे से अल्हड़पन उड़कर गम्भीरता और

लाज का भाव आ गया था। अब वह अपनी सहेलियों के बीच चुपचाप और बड़ी गम्भीर बनी बैठी थी।

उत्सव का शोर-गुल ज़ोरों पर था। बाजेवाले अकार्डियन इतने ज़ोर से बजा रहे थे, मानो उसे फाड़ ही डालेंगे। लड़के नाच के लिए लड़कियों के पास आ खड़े हुए।

वासिली दूसरे लड़कों की तरह नाच के लिए साथी बनाने उन लड़कियों की ओर नहीं गया जो उस पर टकटकी लगाये थीं। उसका मन इतना निर्बंध था कि प्रेम की समस्या में फंसने या प्रेम करने की इच्छा ही नहीं हो रही थी। घंटे भर इनके साथ नाच लो और वह बरस भर प्यार में आहें भरती रहेंगी। यह मुसीबत कौन सहे ?

वासिली लड़के-लड़कियों के गिरोह में से होता हुआ छोटी लड़की की ओर बढ़ गया। उसके पास बैठते हुए उसने मज़ाक किया :

" गिरगिट, काटेगी तो नहीं ? "

लड़की का मुख लज्जा से लाल हो गया। वासिली शाम तक उसका मज़ाक बनाता रहा, जैसे किसी जवान लड़की से प्यार की बातें कर रहा हो।

उसके माथे कोई ज़िम्मेदारी भी नहीं आती थी। वासिली से वह इतनी छोटी थी कि इसमें किसी को गम्भीर बात दिखाई दे ही नहीं सकती थी। वासिली खुश था और उससे खूब मज़ाक करता रहा।

दुन्याशा नाचने में भी खूब तेज़ थी। वासिली नाचते-नाचते थक गया तो घास पर लेट गया। उसने कहा—" कोई गीत सुना ! " दुन्याशा ने पास बैठकर धीमे, परन्तु स्पष्ट स्वर में, एक गीत गाया। उसका गला भी मीठा था।

जब दोनों अपने-अपने घर के लिए विदा हुए तो वासिली ने उसे चूमा तक नहीं। सोचा, अच्छा खेल रहा। कोई अपराध की बात नहीं हुई।

उस दिन के बाद वासिली को कई बार 'गिरगिट' के साथ नाचने का मौक़ा मिला। रात में वह उसे घर तक छोड़ आता; सदा मज़ाक में प्रेम दिखाता, जैसे असल में प्यार की कोई सम्भावना ही न हो। कई दिन मेल-मिलाप न होने पर उसे उसके गीतों का स्वर और उसकी भोली-भाली आशा-भरी आंखें याद आने लगतीं।

जाड़ों में कई बार उनकी मुलाक़ात हुई। गर्मियां आईं तो खेतों में उन्हें एक साथ ही काम करना पड़ा। अब वह बिलकुल जवान लड़कियों की तरह काम करती थी, थकावट का नाम तक न जानती थी।

वासिली और दुन्याशा में मैत्री सी हो गयी। उसने उसके लिए एक रूमाल काढ़ दिया। वासिली रूमाल को गले में बांधे रहता। उसने उसके लिए तम्बाकू रखने का एक बटुआ बना दिया। वह उसे कमर में खोंसे रहता।

पर, वासिली ने इसमें कोई ख़ास बात नहीं समझी। दिल बहलावे और सैर-सपाटे के लिए जब-तब वह दूसरी लड़कियों के साथ भी चला जाता था।

वासिली दुन्याशा के यहां तभी जाता जब थकावट दूर करने के लिए सब झगड़े भूलकर सीधी-सादी बातचीत की इच्छा होती या घास पर लेटकर उसके गीत सुनने का मन होता।

ऐसे ही दिन बीत रहे थे कि एक पड़ोसी ने एक दिन कहा :

"वह लड़की तो पागल हो रही है तुम्हारे लिए, जब देखो तुम्हारे घर के आस-पास चक्कर काटा करती है!"

"अच्छा?" वासिली ने पूछा, "अब यह कौन सी नयी लड़की आई है?"

"दुन्याशा ओज़ेरोवा, और कौन?"

"दुन्याशा? वह तो बच्ची है बेचारी!"

"अरे, गये ज़माने में तो ऐसी बच्चियों के बच्चे हो जाया करते थे! अच्छी-भली शादी के लायक हो गयी है।"

इस बातचीत से वासिली का मन उद्विग्न हो उठा। यह तो उसे मालूम था कि दुन्याशा उस पर जान देती है। पर अब तक वह उसकी भावनाओं का मखौल ही उड़ाता रहा था।

वासिली काफ़ी समय तक इसी चिन्ता में उलझा रहा था। अन्त में उसने निश्चय किया कि यह मामला ख़तम ही कर दिया जाय।

एक दिन वासिली जब सैर से लौटकर उसे उसके घर पहुंचाने गया तो बोला :

"अच्छा दुन्याशा, आज से हमेशा के लिए राम राम! हम लोग फिर साथ-साथ घूमने नहीं जायेंगे।"

वह फटी-फटी आंखों उसे देखती रह गयी :

"क्यों? क्या मतलब, वास्या?"

"बात यह है कि अब तुम बड़ी हो गयी हो। तुम बच्ची तो हो नहीं कि तुम्हारे साथ खेल-खिलवाड़ चलता रहे। दूसरे, तुम्हारी उम्र इतनी है नहीं कि तुम्हें दिल की रानी बना लिया जाय। फिर, मेरा अभी ब्याह करने का कोई विचार भी नहीं है।"

उज्ज्वल चांदनी में अवदोत्या के चेहरे पर दुख और निराशा की छाया स्पष्ट दिखाई दे रही थी; वासिली जानता था कि लड़की उससे बहुत हिल गयी है। लेकिन यह क्या ख़याल था कि बात यहां तक पहुंच जायेगी? उसे लग रहा था कि वह उससे लिपटकर रो पड़ेगी। बात इतनी बढ़ जाने के लिए उसे खेद और खिन्नता भी अनुभव हो रही थी।

उसके चेहरे पर गहरी उदासी के साथ-साथ आंखों में आंसू भी भर आये। वासिली के मन में आया कि उसे पुचकार कर सांत्वना दे। पर लड़की ने न तो एक भी आंसू गिराया और न शिकायत का एक शब्द अपने मुंह से निकाला।

आंखें झुकाये हुए स्थिर और धीमे स्वर में उसने कहा :

"अगर यही बात है तो अलविदा, वासिली कुज़मिच!" और वह अपने मकान के भीतर चली गयी।

वासिली भौंचक खड़ा रह गया।

इससे पहले भी वासिली की लड़कियों से मित्रता हुई थी और अवसर आने पर उसने मित्रता समाप्त भी कर दी थी। लेकिन, ऐसी गम्भीरता और ऐसा आत्म-सम्मान उसने कभी नहीं देखा था।

घर लौटते हुए रास्ते में वासिली को अवदोत्या की बात और ढंग से स्वयं खिन्नता और झेंप मालूम हो रही थी। वह सोच रहा था : "लड़की भली और खुशमिजाज़ है। समझदार है; मन की मैली भी नहीं है। कम उम्र है, तो भी स्वभाव की गम्भीर है।"

इन्हीं दिनों एक दूसरी लड़की भी वासिली के लिए पागल हो रही थी। उसे अवदोत्या से जलन थी। इस घटना के एक महीने बाद ही उसने वासिली और अवदोत्या का प्रसंग लेकर एक गीत बना डाला। यह गीत गांव भर की ज़बान पर था।

वासिली को अवदोत्या के प्रति सच्ची हमदर्दी थी। एक दिन वह अवदोत्या से मिलने उसके घर गया था। उस दिन की बात वासिली कभी नहीं भूल सकता था। गर्मियों की सांझ थी। सूर्यास्त के बाद आकाश गुलाबी हो रहा था।

दुन्या अपने घर की ड्योढ़ी पर चढ़ रही थी। हाथ में हंसिया था। शायद खेत में काम खतम करके लौटी थी।

वासिली की आवाज़ सुनकर उसने तुरन्त घूम कर पीछे देखा। उसका हंसिया हाथ से गिर गया। उसके चेहरे का रंग बिलकुल सफेद पड़ गया और होंठ खुले रह गये।

उसके रक्तहीन चेहरे और खुले होठों पर एक ऐसा भोलापन और पीड़ा छाई हुई थी कि वासिली का दिल टुकड़े-टुकड़े हो गया :

"क्यों? क्या मां बहुत नाराज़ हैं?"

"नहीं...मुझ पर तरस खाती हैं..."

वासिली ने अनुभव किया कि बड़ा और अनुभवी होने के नाते इस लड़की को बदनामी से बचाना उसका फ़र्ज़ है।

उसकी आत्मा उसे कचोट रही थी। उसे अपने पर भरोसा था कि वह कभी किसी के साथ अन्याय नहीं करता।

वासिली के प्रायः सभी निर्णय मन के उद्वेग की अवस्था में होते थे। वैसे ही उद्वेग से अधीर होकर वह कह बैठा :

"अच्छा, दुन्याश्या!... अगर ऐसी बात है, अगर तरह-तरह की कहानियां फैल रही हैं...तो...तो मैं तैयार हूं...तुम राज़ी हो तो हम सगाई कर लें... कुछ दिनों में ब्याह भी कर लेंगे!"

कहने को तो वासिली कह गया, मगर फिर भौंचक खड़ा अपने ही शब्दों को सोचता रहा! अगर वह बात पकड़ कर हामी भर गयी तो? तब तो फंस गये! अकेलेपन की मौज के दिन गये!

अवदोत्या ने इन्कारी से सिर हिलाया :

"नहीं वास्या! अगर तुम मुझसे प्यार करते होते, तो मुझे बदनामी की परवाह नहीं थी। अगर तुम मुझसे प्यार करते होते, तो मुझे कोई ग़म नहीं था। लेकिन, जब तुम प्यार नहीं करते, तो ब्याह करो ही क्यों? नहीं, मेरा दिल बदनामी से नहीं टूटता;... वह टूटता है..."

अवदोत्या बात अधूरी छोड़ कर नीचे गिरा हंसिया उठाने के लिए झुकी। असल में वह झुकी थी आंखों में आये आंसू छिपाने के लिए।

संभाल कर उसने हंसिये को एक शहतीर में अटका दिया, एक गहरी सांस खींची और फिर वासिली की ओर मुड़ कर बोली :

"अच्छा हो कि तुम चले जाओ, वास्या..."

वासिली लौट गया। विस्मय, खिन्नता और लज्जा का एक विचित्र बोझ उसे दबाये हुए था।

मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन का स्थान समीप के एक गांव में बदल दिया गया। वासिली को भी वहीं जाना पड़ा। बहुत दिनों तक अवदोत्या से मिलने का उसे मौक़ा नहीं मिला।

वासिली दूसरी लड़कियों से मिलता तो उसे अवदोत्या का ख़याल ज़रूर आ जाता; हर बार उसका मन कहता :

"दुन्याशा और इनका क्या मुक़ाबला? उसकी बात ही और है।"

वासिली से जो भूल होनी थी, हो चुकी थी। अब उसका मिजाज़ ठिकाने आ गया था। सांझ के सैर-सपाटों, गीतों और लड़कियों की आह-कराहों की ओर अब उसका मन कुलांचे नहीं भरता था।

एक दिन अवदोत्या की एक सहेली ने वासिली से कहा :

"कुछ मालूम भी है तुम्हें? दुन्याशा की बड़ी धूम मची हुई है। उसने एक एकड़ में साढ़े चार सौ मन आलू पैदा किये हैं। ज़िला केन्द्र तक उसके

हल्के हैं। सात सौ दिन की पगार मिली है उसे; और उसकी मां और छोटी बहन को भी चार सौ दिन की। चार टन अनाज गाड़ी में लाद कर घर लायी है। अखबारों के लिए तस्वीरें ली गयी हैं उनकी। देखोगे तो पहचान भी न पाओगे। क्या हुस्न चढ़ा है उस पर; पूरे उठान पर है। भला उसके दीवानों की क्या गिनती!"

"सच?"

"और नहीं तो क्या। लेकिन अभी तक कोई उसकी नज़र चढ़ा नहीं है। फेदोर तो दो बार उसके यहां पहुंचा। बहुत गिड़गिड़ाया। पर उसने साफ़ जवाब दे दिया: "तुमसे कैसे ब्याह कर सकती हूं, फेदोर? मेरा दिल तो किसी और का हो चुका है।"

वासिली ने दुन्या को पत्र लिखने का फ़ैसला किया। "... तुम्हारी बड़ी याद आती है", उसने लिखा, "याद है, हम लोग...देवदार के नीचे मिला करते थे।...वहां आओ!"

वासिली कुछ देर पहले ही पहुंच गया और घास पर लेट गया।

कैसा मन लेकर आयेगी वह? नाराज़ होगी? अविश्वास करेगी? उदास होगी? भला-बुरा कहेगी? उसे समझाना होगा; मनाना होगा! अगर वह रोती है, तो यह मेरी ग़लती है। रोने का उसे हक़ है। या, वह बिलकुल खामोश रहेगी? अपने पर अंकुश लगाये रहेगी? या, निरभिमान आत्मसमर्पण कर देगी?

वासिली को पेड़ों के बीच से अवदोत्या की पोशाक दिखाई दी। वह चल नहीं, दौड़ रही थी।

आज वह नये कपड़ों में सजी-बजी थी। उसका चेहरा प्रसन्नता से जगमगा रहा था, जैसे शिकायत और शिकवे की कोई बात हुई ही न हो, न बिछोह और तड़पन के दिन बिताने पड़े हों।

अविश्वास, उलाहना या आंसुओं की उसके चेहरे पर परछाईं तक नहीं थी। उसके व्यवहार से पूर्ण विश्वास, निश्छलता और आल्हाद फूटा पड़ रहा था। उसने उमग-उमग कर गीत गाये और आमोद की तरंगों पर नाचती रही; उस जगह की घास के तिनके-तिनके को उसने संवार दिया। वासिली का मन अपने व्यवहार के प्रति पश्चाताप से लज्जित हो रहा था। अवदोत्या का दुलार करता हुआ वह सोच रहा था:

"ऐसी लड़की का दिल दुखाना उतना ही बुरा है, जितना किसी निर्दोष बच्चे को पीट देना।"

प्रसन्नता और उन्माद के कुछ ही सप्ताहों में अवदोत्या ऐसी खिल गयी कि सारा गांव विस्मित रह गया।

अब अवदोत्या के लिए वासिली के रुख में एक नयापन आया। वासिली के कुछ-कुछ असंयमित उद्वेग से अवदोत्या सिहर सी उठती थी; पर उसके इस उद्वेग को वह चुपचाप बर्दाश्त भी कर लेती थी।

अवदोत्या के रूप और प्रेम से बेबस हो कर एक दिन वासिली को अपने पिता से बात करनी ही पड़ी। बात तो उसने मुस्कराकर ही शुरू की थी। परन्तु पिता का भाव जानने के लिए उसकी आंखें, उन्हीं के मुंह पर टिकी थीं।

"बप्पा, क्या खयाल है? कोई भली लड़की बिगड़े, इससे पहले ही शादी क्यों न कर दो!"

"अच्छा? तो इतनी भलमनसाहत अभी बची है तुझमें, बेधरमी?" स्तेपनिदा अपना काम छोड़ कर विस्मय से आंखें फैलाये उसके सामने आ बैठी। "बता तो कौन लड़की है वह?......दुन्याशा ओज़ेरोवा?"

"वही..."

अपने ब्याह में वासिली ने खूब पी और ब्याह के समय, रीति-रस्म के अवसर पर, उसने अवदोत्या का अधीरता से आलिंगन किया।

दुन्या जब रात के समय सोने के लिए वासिली की कोठरी में गयी तो पलंग की पटिया पर बैठ गयी। उसका दिल धक-धक कर रहा था; खुद उसे उसकी आवाज़ सुनाई दे रही थी।

कितने ही समय से उसे एक विचित्र, सुखमय प्रतीक्षा थी! उसी दिन से जब अवदोत्या ने खेतों के किनारे फूल-पत्ती से सजे ट्रैक्टर पर खड़े वासिली को देखा था और उसका आवेशपूर्ण व्याख्यान सुना था तभी से मानो उसे इसकी प्रतीक्षा थी। उसे ठीक अनुमान नहीं था कि यह प्रतीक्षा किस चीज़ की है। उसे एक नये जीवन की आशा थी; शक्ति और उल्लास से भरे जीवन की आशा थी! और इस जीवन का केन्द्र और आधार था, उसके मन को जीतने वाला, उसका प्यारा, उसका अपना वासिली! उसी के साथ अब वह नये जीवन में प्रवेश कर रही थी। उसने वासिली को जितना प्यार किया, जितना प्यार उससे पाया वह सब तो मानो एक और भी बड़ी चीज़, एक और भी रोमांचकारी जीवन का दूर से पड़ता प्रकाश मात्र था। वह चिर-पोषित स्वप्न कब साकार होगा? वह कैसा होगा, क्या होगा?

वासिली आकर क्या कहेगा? किस नये जीवन का द्वार खोलेगा? इस क्षण से उसका जीवन कैसा होगा?

वासिली आया और उसने अवदोत्या को आलिंगन में समेट लिया:

"दुन्याशा!...आख़िर हम लोग मिल ही गये!"

आंगन में झाड़ू लगाने के बाद अवदोत्या अपनी साल भर की बच्ची से कहती : "चलो अब हम चबूतरे पर झाड़ू लगायेंगे, जाजिम फटकारेंगे, सुअरों को चारा देंगे, तरकारी की क्यारी निरायेंगे।" अवदोत्या के स्वर से ऐसा सुख फूटा पड़ता मानो संसार के सबसे अधिक आनन्ददायक काम ये ही हों।

महीनों पर महीने बीतते गये। आखिर, अवदोत्या का आनन्द और सुख उसी तरह कुम्हलाने लगा जैसे सूखी ज़मीन पर लगा दी गयी फूलों की झाड़ी कुम्हला जाती है। एक दिन की बात है। अवदोत्या घर की बगीची में आलू खोद रही थी। घर में कोई नहीं था। सास हरी तरकारियां लेकर बाज़ार गयी थी। मर्द लोग सुबह ही काम पर निकल गये थे। बच्ची को अवदोत्या अपनी मां के पास छोड़ आई थी।

बूंदा-बांदी लगी हुई थी। हवा भी तेज़ थी। रोवान के पेड़ों की पतझड़ में नंगी हो गयी टहनियां हवा में झकझोर रही थीं।

अवदोत्या को याद आया कि सामूहिक खेत में वह आलू खोदने वाले दल की नेता थी।

सामूहिक खेत में लड़कियां दूर-दूर तक फैली हुई थीं। खेत के बीचो-बीच आलुओं के पहाड़ खड़े थे। समीप के पेड़ की एक डाल पर बैठी तमारा नाम की छात्रा गिनती कर रही थी। तमारा अखबार के कागज़ का भोंपू बनाकर कहती जा रही थी : "कात्या और नताशा ने १०० वीं टोकरी डाल दी। मारूस्या अभी ८० पर अटकी है!"

उस दिन भी खूब सर्दी थी। पर, लड़कियों को श्रम की गर्मी से इतना पसीना आ रहा था कि उन्होंने अपनी रुई भरी बंडियां उतार फेंकी थीं।

कभी किसी पेड़ की जड़ में ढेरों आलू निकल आते तो लड़कियां पूरी जड़ को ऊपर उठाकर किलकारी भर उठतीं : "देखो, देखो! आलुओं की बेल!"

किशोर संघ की लड़कियां एक गोल में बढ़िया बीज के लिए आलू छांट रही थीं और आलुओं का एक मज़ाकिया गीत गा रही थीं : "देखो री देखो, आई आलू की बहार!"

सामूहिक खेत का प्रधान और ज़िले का खेती का विशेषज्ञ आये हुए थे। सभी लोग अवदोत्या को इतनी बढ़िया फसल तैयार करने पर बधाई दे रहे थे। लोग उसकी प्रशंसा कर रहे थे कि इतनी छोटी है और दल की नेता बन गयी है! वह एक भद्दा, पुराना सा शॉल लपेटे थी। उसके बाल और हाथ खेत की मिट्टी में बुरी तरह सने थे। पर, सभी लोग उसे आदर भरी आंखों से देख रहे थे और उस पर गर्व अनुभव कर रहे थे।

काम का समय पूरा हो चुका था। पर कोई भी खेत छोड़ कर घर नहीं जाना चाहता था। सभी लोग सूर्यास्त तक काम करते रहे। अंधेरा हो जाने पर खेत से आलुओं की आखिरी लारी चली; सब लोग उसी में सवार होकर गांव लौटे। लारी में बैठी लड़कियां गीत गाती जा रही थीं। लारी सामूहिक खेत के दफ्तर के सामने से गुज़री तो दफ्तर के सभी आदमी—सामूहिक-किसान, प्रधान, कृषि-विशेषज्ञ, आदि—उनके स्वागत में बाहर निकल आये। उन्होंने इन लड़कियों का नाम रखा : "आलूवाली स्ताखनोवी।"

वे भी क्या दिन थे ? ज़िन्दगी एक लम्बा मेला जान पड़ती थी।

और अब ? अब भी वह आलू ही खोद रही थी। फसल भी बुरी नहीं थी। लेकिन, अब वह बात कहां थी ? सब ओर सुनसान था। कभी-कभी दीवार के पीछे से गाय के रंभाने की आवाज़ आ जाती या बत्तखें यकायक कुड़कुड़ा उठतीं। बगिया की बाड़ पिंजरे जैसी जान पड़ रही थी। बात करने तक को आस-पास कोई नहीं था। ये आलू भी वैसे नहीं थे; न उतने बड़े, न उतने अच्छे कि तबियत हो कच्चा ही खालो ! वे आलू नौजवान लड़कियों के हाथों खोदे और संवारे-सहलाये आलू होते थे, मानो लड़कियों ने अपनी कनखियों और गीतों से उन्हें और भी स्वादिष्ट बना दिया हो ! इन आलुओं में क्या धरा था ? वासिली तो इन्हें देखेगा भी नहीं ! उसका काम ही दूसरी जगह है। बस, सास और देवर फिनोगेन सांझ को बैठ कर हिसाब जोड़ेंगे कि फसल से आमदनी में कितनी बढ़ती होगी और बप्पा अपने सांवले हाथों से बढ़िया-बढ़िया आलू चुन कर अवदोत्या के परिश्रम की प्रशंसा कर देंगे। वह भी उसी जैसे थे। बप्पा को परिश्रम और काम की क़दर थी, परिश्रम और काम का चस्का था। उन्हें उसी में जीवन का सुख और संतोष मिलता था।

अवदोत्या ज़रा कमर सीधी करने के लिए खड़ी हुई। आलुओं की क्यारी को नज़र से नापते हुए सोचा : "शाम तक काम पूरा हो जायेगा।... शाम तक के लिए इसी पिंजरे की हो गयी।... कात्यूशा को लेकर अम्मा आ जायें तो अच्छा है। ज़रा दिल तो बहले...।"

अवदोत्या फिर आलू खोदने में जुट गयी।

अवदोत्या सोच रही थी कि उसकी इस जी-तोड़ मेहनत से सास-ससुर के सिवा और किसे संतोष होता है ? इससे भी ज़्यादा बुरा उसे यह लग रहा था कि वासिली अपने काम की वजह से उससे दूर होता जा रहा है।

कहने को तो सभी कुछ ठीक-ठाक था। वसिली काफ़ी कमा रहा था। वह अपनी पूरी कमाई घर में दे देता था। पीने की भी उसे दूसरों से ज्यादा आदत नहीं थी। उसे दूसरी औरतों के पीछे भागने की आदत नहीं थी। वह

बच्ची को खूब प्यार करता था। इससे ज़्यादा और क्या चाहिए था? कोई भी उसके परिवार को आदर्श परिवार कह देता।

पर, ब्याह के बाद से हेल-मेल बढ़ने की जगह उनमें अन्तर ही ज़्यादा बढ़ने लगा था।

वासिली का काम था मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में। उसका ध्यान भी वहीं रहता था। महीनों वह घर से बाहर रहता था। पर, जब घर आता तो बहुत सी चीज़ें लाता, प्यार भी करता। पर, आपस में बात-चीत करने को कोई बात न मिलती थी; बात करें तो किस बात पर? अवदोत्या के साथ बैठा-बैठा वासिली उकताने लगता। घर में उसका जी न लगता। वह मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन को, फ़ार्म को, पार्टी के दफ्तर को, या साथियों से मिलने चल देता, मानो उसे घर से बाहर ही साथी मिल सकते हों।

कभी-कभी वासिली मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन के मित्रों को, ट्रैक्टर ड्राइवर तोशा बुज़िकिन और उसकी पत्नी को, अपने यहां बुलाता।

अवदोत्या दोनों को बड़े ध्यान से देखती। उसे डर लगा रहता कि उनमें भी कोई ऐसी चीज़ न निकल आये जिसकी उसके जीवन से दूर की भी समता हो।

कुछ दिन पहले तक ज़िले के लोग तोशा को सिर पर घुंघराले बाल छिटकाये घूमने वाले मनमौजी नौजवान के रूप में ही जानते थे। वह अपने काम को बड़े झपाटे से खत्म कर दिया करता था। उसे और आगे शिक्षा के लिए शहर भेजने का बन्दोबस्त किया गया था। लेकिन, उसकी पत्नी मलानिया ने रो-रो कर आसमान सिर पर उठा लिया था; उसने तोशा को ऊंची शिक्षा के लिए नहीं जाने दिया। मलानिया देखने-सुनने में साधारण और काम-काज में अल्हड़ और बुद्धू थी। क़िस्मत की ही बात थी कि उसे तोशा जैसा पति मिल गया था। मलानिया को सदा इस बात की आशंका बनी रहती कि कहीं तोशा उसे छोड़ कर किसी दूसरी के फंदे में न फंस जाय। वह घर में कहीं न कहीं वोद्का ज़रूर छिपाये रहती। जहां देखा कि तोशा पीने के लिए बाहर जाना चाहता है, वह झट बोतल सामने ला रखती। वह जानती थी कि वोद्का के अलावा दूसरी कोई चीज़ उसे घर में नहीं रोक सकती; उसे रोकने के लिए वह एक के बाद दूसरा प्याला दिये जाती। किशोरावस्था में वह "तोशा" ही कहलाता था, आगे भी लोग उसे "तोशा" के नाम से ही जानते थे; उसका "एण्टन" नाम जैसे कोई जानता ही न हो। तोशा आदमी तेज़ था। जो भी काम शुरू करता, जान पड़ता कि चमत्कारिक सफलता से पूरा होगा; पर, हर काम हमेशा आधे पर ही रह जाता था। जब वह नशे में होता था तो बड़े मज़े की बातें करता था, फिर उदास हो जाता

और अपने सीने पर हाथ मार-मार कर विलाप करने लगता : "मैं प्रतिभाशाली व्यक्ति हूं...मैं जानता हूं...।"

तोशा जिस महफ़िल में पहुंचता था, जान डाल देता था। वह गाने-बजाने में तेज़ और स्वभाव का हंसोड़ था। उसे अपने यहां बुलाने के लिए सभी उत्सुक रहते थे।

जहां कहीं तोशा जाता उसके दुबले-पतले लटबावरे शरीर के पीछे छाया की तरह लगी रहती—भैंस की तरह फैली हुई मलानिया।

वह पल भर के लिए भी पति को आंखों से ओझल नहीं होने देती थी। पार्टियों और महफ़िलों में वह पति से चिपकी रहती। लेकिन, रहती सदा चुप ही; एक शब्द भी कभी न बोलती।

तोशा जब ज़रा ज्यादा पी लेता था तो मलानिया का साथ चिपके रहना उसे बुरा लगता था। मलानिया की ओर इशारा करके वह कह बैठता :

"देखो तो इस मिट्टी की लौंद को! इसके बोझ के मारे तो मेरी बधिया बैठी जा रही है।"

मलानिया तोशा की ओर और तेज़ी से घूरती, पर कहती कुछ नहीं।

क्रोध या आपत्ति का एक शब्द भी उसके होठों पर न आता। बस, वह लौंद की तरह स्थिर, प्रायः निर्जीव की तरह निश्चल, बैठी रहती। वह न तो किसी को सुहाती, न किसी को दुखाती। कैसी भी बात या प्रसंग हो, उस पर कोई असर नहीं होता था।

अवदोत्या मलानिया को देख कर विस्मित रह जाती। यह भी क्या कि पति की पीठ पर निरर्थक बोझ की तरह लदे हैं! बाद में खुद उसके मन में खोद सी उठने लगती : "मैं भी तो मलानिया बनती जा रही हूं!"

एक और भी स्त्री थी जिसके बारे में अवदोत्या अक्सर सोचती। उसके बारे में सोच कर एक तरह की ईर्षा या स्पर्धा उसे अनुभव होती।

नास्तासिया ओगोरोद्निकोवा ट्रैक्टर ड्राइवर थी। ज़िले भर में उसका नाम था। नास्त्या कमरे में आती तो लोगों में फुरफुरी सी दौड़ जाती। वासिली भी गर्दन सीधी करके गम्भीर हो जाता और ज़रा अकड़ कर अपनी मूंछों को मरोड़ने लगता। नास्त्या रानी की तरह सिर उठाये आती और सीधे जाकर मेज़ के सिरे पर बैठ जाती—मानो उसके लिए वही जगह निश्चित है। सब लोग उसी को लक्ष्य करके बातें करने लगते। मर्दों से बातें करने के उसके ढंग में कुछ गम्भीरता लिए बड़प्पन रहता, कभी-कभी अक्खड़पन भी, मानो बच्चों को समझा रही हो। सब लोग उसका रोब मानते थे। वह बोलती तो और

लोग चुप हो जाते। वह गम्भीरता का बाना उतार कर हंसती, तो सबके चेहरों पर उत्सुकतापूर्ण प्रसन्नता छा जाती।

अवदोत्या अपने इन मौन अनुसंधानों और विचारों को सहेज-सहेज कर रखती जा रही थी। अंत में एक दिन उसने वासिली से बात करने की ठानी।

"वास्या!" मौक़ा पाने पर वह बोली। "क्या बात है कि हम लोगों की ठीक से नहीं पट पाती!"

"ठीक से नहीं पट पाती?" विस्मय से वासिली ने पूछा।

"तुम मुझसे कभी बातें नहीं करते..."

"बातें? क्या बातें करूं तुमसे?" वासिली ने आश्चर्य से पूछा।

अवदोत्या अवाक् रह गयी। सचमुच—"क्या बातें?"

"लेकिन नास्तासिया से तो तुम बातें करते हो?"

वासिली सिर को दाईं ओर झुकाये चुप रह गया। उसकी आदत थी, जब भी कुछ सोचता उसका सिर दाईं ओर झुक जाता। स्पष्ट था कि अवदोत्या मज़ाक नहीं कर रही थी। वासिली बात को समझ कर ठीक उत्तर देना चाहता था। मिनट भर सोचकर वह ज़रा गम्भीरता से बोला:

"नास्तासिया से तो आपसी काम की बातें होती हैं।" वह बाहर जाने की तैयारी में उठ खड़ा हुआ।

वह समझता था कि उसने उचित उत्तर दे दिया है और बात अब आगे नहीं बढ़ेगी।

वासिली चला गया। पर, अवदोत्या जहां की तहां बैठी रही, मानो उसके शब्दों ने उसे वहीं गाड़ दिया हो। इनसे ज़्यादा संक्षिप्त, कटु और सरल शब्द दूसरे नहीं हो सकते थे जो उसे इतनी परेशानी में डाल देते। "आपसी काम की बातें!"...वासिली उससे किस आपसी काम की बातें करे? उनमें आपसी काम था ही क्या? बच्चों के बारे में बातें? पर दिन भर बच्चों की ही बातें तो नहीं की जा सकती थीं; न ही दिन भर बुरेन्का गाय और बगिया की बातें की जा सकती थीं।

अवदोत्या के हाथ में थमा तकुआ फ़र्श पर गिर पड़ा। वह सिर झुकाये बैठी रही।

धुले हुए सफेद फ़र्श पर खिड़की से आती धूप की चौकियां सी बन गयी थीं। खिड़की के पास रखे गमलों में जिरेनियम के लाल फूलों के गुच्छे बड़े सुन्दर लग रहे थे। चारों ओर स्वच्छता, शान्ति और निश्चिंतता थी। वह निश्चल बैठी थी। उसकी आंखें खुली थीं, पर वह देख कुछ नहीं रही थी। "वास्या बड़ा भला है; मैं उससे बातें करूं तो वह ज़रूर बातें करेगा।" पर क्या ये 'आपसी काम की बातें' होंगी?"

नन्ही कात्या चुप बैठी-बैठी ऊब गयी थी। बोली : "अम्मा! बातें करो न!"

अवदोत्या को ख़याल आया : वासिली उससे वैसे ही बातें करेगा जैसे वह कात्या से करती है—दुलार से, पर बिना किसी प्रयोजन के! क्या उसे ऐसी बातचीत चाहिए?

"मुझे दया नहीं चाहिए! मैं बच्ची नहीं हूं! मैं मलानिया नहीं हूं! मैं मलानिया नहीं हूं और वास्या तोशा नहीं है। फिर हम लोगों की हालत उन जैसी ही क्यों होती जा रही है? वास्या की और मेरी ज़िन्दगी अलग-अलग तरह की है। उसे सामूहिक खेत से, गांव सभा से, ज़िला केन्द्र से, पार्टी से मतलब रहता है। मेरी दुनिया सिर्फ़ घर की ड्योढ़ी तक है।"

अन्तरात्मा की पीड़ा समेटे वह उठी और जाकर खिड़की के पास खड़ी हो गयी।

पिछली रात जिरेनियम के फूलों का एक नया सुर्ख़ गुच्छा खिल गया था। उसके मन में आया कि कात्या को बुलाकर फूल दिखाये।

छोटी-छोटी बातों को लेकर ही—नये खिले फूल, गुड़िया के रूप-रंग का ज़िक्र या बच्ची के नये कपड़ों को लेकर ही—अवदोत्या हंसने और खेलने का त्यौहार मना लेती थी।

"कात्यूशा! आ ज़रा देख तो..." अवदोत्या ने स्वाभाविक, उल्लास भरे, स्वर में पुकारा; फिर यकायक ठिठक गयी।

बच्ची ठुमक-ठुमक करती दौड़ आई।

"क्या है अम्मा? देखें, अम्मा!"

मां चुपचाप सिर झुकाये खड़ी थी। "मेरे लिए हंसी-ख़ुशी नहीं है, मेरा सुख सच्चा नहीं है, मेरी ज़िन्दगी में कोई रंगत नहीं है...।" बच्ची को देख वह ज़बर्दस्ती मुस्करा दी :

"देख बेटी, कितना अच्छा फूल है!"

एक दिन वासिली जल्दी में झपटता हुआ घर आया। उसकी रुई भरी बंडी के बटन खुले हुए थे और टोपी सिर पर पीछे खिसकी हुई थी।

"नास्त्या यहां आई थी?"

"नहीं तो! क्या बात है, वास्या?"

"मैं उस बेईमान के बच्चे को मज़ा चखाऊंगा," बिना उसके प्रश्न का उत्तर दिये वासिली क्रोध में बकता रहा, "बेईमान खामखा दूसरों को बदनाम करता फिरता है। नास्त्या आये तो कह देना मैं उसे ढूंढता हुआ यहां आया था।"

कुछ और कहे बिना ही वह तुरन्त लौट गया।

अवदोत्या ने दूसरे लोगों से सुना था कि मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन के मैनेजर ने वासिली की ड्यूटी किसी दूसरे आदमी के ट्रैक्टर से जुताई करने पर लगा दी थी। वासिली उस ट्रैक्टर से काम नहीं करना चाहता था, क्योंकि उस ट्रैक्टर से जुताई अच्छी नहीं हो सकती थी। काफ़ी बहस-मुबाहसे के बाद आखिर वासिली को ही दबना पड़ा क्योंकि जुताई का समय निकला जा रहा था, ज़मीन कड़ी पड़ती जा रही थी, और कोई दूसरा ट्रैक्टर था नहीं। पर, जुताई ठीक नहीं हुई। ज़िले के इन्सपेक्टर ने शिकायत भरी रिपोर्ट लिख मारी। मैनेजर ने सारा दोष वासिली के सिर मढ़ा। उसने कहा कि जुताई के समय वासिली पिये हुए था, इसलिए उससे ठीक काम नहीं हुआ।

मामला संगीन था। क़ानूनी कार्रवाई तक हो सकती थी।

पति पर आये इस संकट से अवदोत्या परेशान थी ही। और अधिक दुख उसे इस बात का था कि ऐसे संकट के समय अपनी चिन्ता और दुख बंटाने के लिए वासिली दूसरी औरत के यहां भागा गया।

कुछ देर बाद वासिली और नास्त्या इकट्ठे लौटे।

"अच्छा! इस तरह घबराओ नहीं! दिमाग़ ठंडा रखो। तुम्हें अच्छा काम करने के सम्मान में जितने सार्टिफिकेट मिले हैं, निकाल लो!" नास्त्या ने समझाने के ढंग से कहा। "चलो, हम लोग सीधे ज़िला पार्टी दफ्तर चल कर ओफिम इवानोविच से बात करते हैं।"

नास्त्या बेंच पर अधलेटी सी हो गयी, जैसे वही घर की मालकिन हो। अवदोत्या की बिटिया को उसने उठाकर अपनी गोद में ले लिया था। अवदोत्या के पति पर भी वह ऐसे हुक्म चला रही थी जैसे उसका अपना ही आदमी हो। वासिली आज्ञाकारी लड़के की तरह दीनता से उसकी ओर देखता हुआ पूछ रहा था:

"नास्त्या, डॉन-क्षेत्र से जो प्रशंसा-पत्र मिला था वह भी ले लूं या नहीं?"

इतने लगाव से अपने जीवन में उसने कभी अवदोत्या से बात नहीं की थी।

"हां, हां! ज़रूर ले लो!" नास्त्या ने हुक्म सा दिया। "मैं ओफिम से खुद बात करूंगी। वह मुझे खूब जानता है। मेरी बात टालेगा नहीं। तैयार हो गये तुम?"

"बस, एक मिनट में।... उस बेईमान की..."

"क्यों तुम आपे से बाहर हुए जा रहे हो? ज़रा सी बात पर बिगड़ उठते हो। कह तो रही हूं कि सब ठीक हो जायेगा।" अपनी जगह से उठकर

वासिली के बालों में लापरवाही से उंगलियां चलाते हुए नास्त्या ने कहा : "तुम तो बिलकुल आग-भभूके बन जाते हो !...जल्दी चलो न !"

नास्त्या का कुछ कठोर सा, चेचक के हल्के दागों वाला चेहरा अवदोत्या को बहुत सुन्दर लग रहा था। "ऐसी को कौन आदमी नहीं चाहेगा?" अवदोत्या सोच रही थी।

"नास्त्या, अस्तबल में इस वक्त घोड़े तो हैं ही नहीं ! चलेंगे कैसे?"

"पैदल चलेंगे। सड़क पर कोई न कोई सवारी मिल जायेगी ! तुम भरोसा रखो।"

वासिली और नास्त्या आपस में बातें करते-करते चल दिये। अवदोत्या से कुछ कह जाने का उन्हें ध्यान भी नहीं आया।

अवदोत्या दरवाज़े में खड़ी वासिली और नास्त्या को साथ-साथ जाते देख रही थी। उसके दांत भिंच गये।

उसे ईर्षा नहीं थी; वह वासिली और नास्त्या दोनों को ही खूब अच्छी तरह जानती थी और दोनों पर उसे भरोसा था।

इस समय वह नास्त्या के प्रति कृतज्ञता ही अनुभव कर रही थी। उसके पति की कठिनाई में नास्त्या कितनी उदारता और सीधे-सादे ढंग से सहायता करने चली आई। इस समय अवदोत्या से तो कुछ भी किये न बनता !

ईर्षा और सन्देह से भी गहरी पीड़ा अवदोत्या को इस बात से हो रही थी कि पति के संकट-काल में वह उसके किसी काम न आई ! वह निर्बल, अयोग्य और असमर्थ सिद्ध हुई थी। सहायता के लिए उसके पति को दूसरी स्त्री के पास दौड़ना पड़ा; उसके पति को दूसरी स्त्री का भरोसा करना पड़ा ! मानी हुई बात है, वह उसी का आदर भी ज़्यादा करेगा।

इस घटना को भूल जाना अवदोत्या के लिए सम्भव नहीं था।

अवदोत्या का मन भारी-भारी रहता। वह सोचती रहती : "मैं कहां घिसटती चली जा रही हूं? मेरी कड़ी मेहनत से, मेरे काम से किसका जी खुश होता है? सास के सिवाय और किसे संतोष होता है? बस, कुछ पैसे और घर में आ जाते हैं। मुझे इससे क्या सुख मिलता है? वासिली को इससे क्या सुख मिलता है? मैं उसके लिए हूं ही क्या? उसके लिए कर ही क्या सकती हूं? खाना बना देती हूं? नाश्ता बना देती हूं? ऐसी औरत का क्या ! ऐसी औरत से तो तोशा जैसा भोंदू भी भागता है। वासिली तोशा की तरह गया-बीता नहीं है ! उसका मन मेरी ओर से हट जाय तो ताज्जुब ही क्या? मैं हूं ही किस लायक? मैं क्यों इस चहार-दीवारी में सड़ती और कुढ़ती रहूं?...बच्चों के लिए? उनके लिए भी मैं क्या कर पाती हूं?...खाना खिला दिया या कपड़े धो दिये ! इतना तो कोई भी नौकरानी कर सकती

है ! क्या यही सब मांएं अपने बच्चों के लिए करती हैं ? मैं जब अपनी ही ज़िन्दगी के लिए कुछ नहीं कर पाती तो बच्चों के लिए क्या करूंगी ? बड़े होकर बच्चे भी सलाह-सहायता के लिए, काम की बातों के लिए, वासिली की ही तरह मुझे छोड़ ग़ैरों के पास भागते फिरेंगे। ठीक ही सज़ा मिली है मुझे। मां को मां होना चाहिए, दाई नहीं; पत्नी को पत्नी होना चाहिए, नौकरानी नहीं। अपने लिए मैंने ही तो यह स्वर्ग रचा है! लेकिन, क्या मैं सिर्फ़ इसी लायक हूं ? क्या मैं मलानिया हूं, जो ऐसी ज़िन्दगी से चिपटी रहूं ?"

यही सब सोचते-सोचते अवदोत्या ने धीरे-धीरे, किन्तु दृढ़ता से, अपना कार्यक्रम निश्चित कर डाला।

एक रात की बात है।

"वास्या !" खाना खाते समय अवदोत्या बोली। उसके स्वर में एक विचित्र दृढ़ता थी। "मैंने सामूहिक खेत में काम करने का फ़ैसला किया है!"

वासिली सुनकर हैरान रह गया।

"क्या मतलब है तेरा ? बच्ची का क्या होगा ?"

"बच्ची को फ़ार्म की शिशुशाला में छोड़ दिया करूंगी; या फिर, मां के यहां छोड़ दूंगी। और लोग भी तो बच्चों को छोड़ जाते हैं। मैं भी वैसे ही कर लूंगी !"

"तुझे खेत में काम करने की ज़रूरत क्या आ पड़ी ? खेत में तू करेगी ही क्या ? सुअरों को चारा डालेगी ?"

जीवन में पहली बार अवदोत्या को लगा कि वासिली उस पर अन्याय कर रहा है। अपनी जिस बात के लिए अवदोत्या को अपने पर गर्व था, वासिली ने उसे देखा तक नहीं था ? वह कैसे भूल गया कि फ़ार्म में उसके काम की कितनी प्रशंसा होती थी, कितना उसका नाम था, वह कितनी उल्लसित रहती थी। इस अन्याय को देख वह हक्की-बक्की रह गयी।

"मेरे... मेरे काम की रिपोर्ट ज़िला केन्द्र तक गयी थी! मैं फ़ार्म के सबसे अच्छे दल की नेता मानी जाती थी... और तुम..."

अवदोत्या के स्वर की कटुता और आंसू भरी घबराहट से वासिली चौंक उठा।

"क्यों, दुन्याशा ! बात क्या है ?"

अवदोत्या ने अपने आपको सम्हाल लिया। सीधी होकर वासिली के सामने बैठ गयी। वासिली ने उसे पहले कभी इस रूप में नहीं देखा था। पति की आंखों में आंखें गड़ाकर वह बोली :

"क्या समझते हो अपने को तुम, वास्या ? कैसी पत्नी चाहते हो अपने लिए ? तुम शराबी तोशा तो हो नहीं कि पत्नी की ज़रूरत सिर्फ़ खाना पका देने और रात को साथ सो जाने के लिए हो ? मैं भी मलानिया नहीं हूं। व्याह करते वक्त तुमने नहीं देखा था कि किससे ब्याह कर रहे हो ? फ़ार्म में काम करने वाली लड़कियों के दल में मैं सबसे छोटी थी। पर, तुम किसी से पूछ लो, सबसे अच्छा काम कौन करती थी ? फ़ार्म के लोग अब तक मुझे याद करते हैं। मैं मलानिया नहीं हूं, वास्या ! जैसे तुम काम करते हो, मैं भी करूंगी। सुना तुमने !"

"आज इसे हो क्या गया है ?" वासिली सोच रहा था। "कैसी बातें कर रही है ? ... औरतें भी एक पहेली होती हैं। बरसों साथ रहो और समझ बैठो कि उन्हें मन और शरीर से खूब जान लिया है, कि बस, किसी दिन वह ऐसा रंग बदलेंगी कि अकल हैरान !"

मन का बोझ उतार कर अवदोत्या कुछ शिथिल सी होकर बेंच पर लुढ़क गयी थी। अपेक्षतः शांत स्वर में वह बोली :

"तुम्हीं देखो, मेरी क्या हालत बन गयी है ? बच्चों की देख-भाल के लिए दाई और घर में खाना पकाने के लिए नौकरानी—यही मेरी ज़िन्दगी है। तुम्हारा इसमें कोई दोष नहीं है। अपना-अपना रास्ता सभी चुनते हैं। लेकिन जो रास्ता ग़लती में मैंने अपने लिए चुना, वह खराब निकला !"

स्तेपनिदा दूसरी कोठरी में थी। उसके कान में बहू के इन शब्दों की भनक पड़ी तो बाज़ की तरह झपटती हुई आई :

"दिमाग़ खराब हो गया है तेरा ? यहां घर की देख-भाल कौन करेगा ? जानवरों को कौन सम्भालेगा ? ..."

अवदोत्या ने गर्दन उठाकर लापरवाही से सास की ओर मुंह करके उसकी आंखों में ऐसी स्थिरता से देखा कि सास अपनी बात पूरी न कर पायी।

"घर का काम भी मैं करूंगी। खेत से लौटकर घर भी देख लूंगी, अम्मा; तुम्हें फ़िक्र करने की ज़रूरत नहीं है।"

अवदोत्या सामूहिक खेत से अपना काम पूरा करके लौटती तो चिढ़ी बैठी सास की आज्ञाएं पूरी करने में लग जाती। कुछ दिन ऐसे ही चला। अवदोत्या निभाये तो जा रही थी, पर उसके गाल धंसे जा रहे थे। आखिर, एक दिन वासिली को कहना ही पड़ा :

"अरे भई, आदमी काम के लिए ही होता है, काम तो करना ही चाहिए। पर, इन लोगों ने तो तुझे मंगनी के जानवर से भी सस्ता बना लिया है। अब इस घर में गुज़ारा नहीं हो सकता ! हम लोग अपनी मड़ैया अलग डालेंगे !"

१९४१ के मई महीने में वासिली अवदोत्या को लेकर एक दूसरे घर में जा बसा।

लड़ाई के मोर्चे से वासिली की मृत्यु का समाचार मिला, तो अवदोत्या को विश्वास ही न होता था। उसका मन मानता ही न था। वासिली दुनिया में नहीं रहा तो वह कैसे भली-चंगी बनी है? उसे वासिली से पृथक होकर ज़िन्दा रह सकने की सम्भावना पर विश्वास ही न होता था। अवदोत्या का मन कहता, वासिली को कुछ हुआ होता तो मैं कैसे बच जाती।

"बप्पा, यह सब झूठ है! आप इनकी न सुनिए! मेरा दिल कह रहा है कि वह ज़िन्दा हैं। अगर कुछ हुआ होता तो मुझे पता न चलता?" अवदोत्या बार-बार ससुर को समझाती। "मेरा दिल कह रहा है कि वह ज़िन्दा हैं। मैं देखती हूं, अनुभव करती हूं, जानती हूं कि वह ज़िन्दा हैं। मेरा दिल तो मुझे धोखा नहीं दे सकता?"

अवदोत्या ने ठीक खबर पूछने के लिए सेना के दफ्तर में चिट्ठी लिखी और पहले से भी अधिक दृढ़ विश्वास के साथ उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी—मानो वह मन को आन्दोलित करनेवाले भयावह विचारों को चित्त की शांति से पराजित कर देगी! सेना से आये उत्तर से अफवाहों का समर्थन ही हुआ। वासिली के एक साथी का भी पत्र आया :

"सिर में एक गोली लग गयी। वह घाटी में गिर पड़ा। मैं भी ज़ख्मी होकर अस्पताल भेज दिया गया। इसके बाद ही हम लोग दूसरे मोर्चे पर चले गये। मालूम नहीं, वासिली को कहां दफ़नाया गया!"

अवदोत्या ने होंठ दबाकर पूरा पत्र पढ़ डाला। वह क्षण भर निश्चल बैठी रही और फिर बेहोश होकर फ़र्श पर गिर पड़ी; एक शब्द भी उसके मुंह से नहीं निकला। होश आने पर उसमें बहुत परिवर्तन आ चुका था।

अब तक का अवदोत्या का जीवन वासिली से ही भरा-पूरा था। खिड़की में रखे हुए फूल, फ़र्श पर बिछी चटाई—सभी चीजें उसे सप्राण जान पड़ती थीं। उनमें वासिली के हाथों के स्पर्श, उसके श्वास की गंध और उसकी मुस्कान का जादू था।

वासिली ही नहीं रहा तो अवदोत्या के लिए सब कुछ निरर्थक हो गया। घर की हर चीज़ पहले की ही तरह अपनी जगह पर थी; फिर भी, घर सूना हो गया था, सांय-सांय करता था। दीवारें, कुर्सियां, प्याले—सभी चीजें जो पहले वासिली के श्वास से सप्राण जान पड़ती थीं, अब निस्प्राण और मुर्दे की उघड़ी आंखों जैसी भयानक लगती थीं।

अवदोत्या के लिए जीवन समाप्त हो गया, संसार सूना हो गया।

वह निष्प्राण सी हो गयी थी—मानो वासिली उसके प्राणों और आत्मा को अपने साथ ही लिये गया हो। अब उसका कंकाल ही चल फिर रहा था। उसकी इच्छाएं, आशाएं, भविष्य—सब समाप्त हो गये थे। उसकी सहनशक्ति भी समाप्त हो गयी थी!

कई दिनों तक अवदोत्या को न तो शरीर की और न घर की सुध रही। जिसके लिए वह सब कुछ करती थी, वही नहीं रहा था। जब वासिली ही नहीं रह गया था तो चिन्ताओं और प्रयत्नों का प्रयोजन ही क्या था?

रात में अवदोत्या छोटी बच्ची के खटोले के पास बैठी-बैठी उसके मुख को निहारा करती। बच्ची बिलकुल बाप को पड़ी थी। वासिली की ही तरह बच्ची की घनी और टूटी-टूटी भौंहों को देख कर अवदोत्या धीमे स्वर में पुकार उठती: "वास्या! बोलो न वास्या!... वासेन्का!"

घंटों अवदोत्या खटोले के सिरहाने इसी प्रतीक्षा में बैठी रहती कि काली-काली भौंहों के नीचे जब बच्ची की आंखें खुलेंगी, तो उसकी नज़र उसके बाप की ही तरह परिचित, कोमल और उड़ती-उड़ती सी होगी। वह कब से इस नज़र की भूखी थी।

बच्चे न होते तो सब कुछ छोड़-छाड़कर अवदोत्या खाट पर लेट जाती और मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगती। उसे पूरा विश्वास था कि उसका अन्त निकट आ गया है। पर, बच्चों की उपेक्षा कैसे की जा सकती थी? उसे बच्चों की—और उनके लिए घर की—सम्भाल करनी ही पड़ती थी। धीरे-धीरे अवदोत्या का संताप जलता-जलता भस्म हो गया और उसकी मूर्छा टूटी। जीवन के नये संचार के साथ ही अपने पति के भाग का समूचा प्रेम उसने बच्चों पर उड़ेल दिया।

अवदोत्या बच्चों को प्यार तो पहले भी बहुत करती थी, पर अब तो वह जैसे प्यार में पागल हो उठी। उनके प्रति उसके अनुराग में जो स्पदन था वह स्वस्थ प्रेम की सीमा को लांघे जा रहा था। अपनी उपेक्षा तो वह करने ही लगी; दूसरों की चिन्ता भी वह पहले से ज़्यादा करने लगी। दूसरों के लिए कुछ करके, कष्ट उठाकर, ही अब उसे संतोष होता था।

असल में कष्ट और संकट में फंसे लोगों के लिए कुछ करके संतोष पाने के प्रयत्न में ही अवदोत्या का स्तेपान से परिचय हुआ; अवदोत्या ने उसे अपने घर में जगह दी।

स्तेपान हर बात में वासिली से ठीक उल्टा था: दुबला-पतला सूखा सा शरीर, बाल बिलकुल सन जैसे भूरे, आंखें बहुत शांत और स्थिर। वह जो भी करता था बहुत धीरे और बहुत सोच कर करता था।

अगर फारे मंगवा कर नहीं देगा तो मैं खुद बनाऊंगा। लुहार ज़रा मदद कर देगा, और हम लोग बना लेंगे। पर, मैं फारों के बिना जुताई नहीं करूंगा।"

स्तेपान शहर से पहली बार फारे लाया तो घर भर की उत्सुकता और कौतूहल का ठिकाना नहीं रहा। स्तेपान फारों को सम्भालने लगा तो कात्या और उससे छोटी दुन्या आंखें फाड़े स्तेपान के चारों ओर मंडराती रहीं। दोपहर का खाना खाने की छुट्टी के समय अवदोत्या भी मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन से दौड़ आई। खाने-पीने की उसे सुध ही न रही।

विलियम की पुस्तक समाप्त हो गयी। लेकिन, अब सांझ को कुछ पढ़ा जाना घर का नियम हो गया था।

एक दिन अवदोत्या फ़ार्म के पुस्तकालय से मार्गरीटा एलीगर की लिखी कविता-पुस्तक "*ज़ोया*" ले आई।

पुस्तक देखने के लिए कुछ पन्ने पलट कर स्तेपान ने असंतोष से कहा : "कविता? यह तो बच्चों के लिए है!"

वह चाहता था कि घर में गम्भीर विषयों पर पुस्तकें आयें ताकि पढ़ाई से लाभ हासिल हो।

"दूसरी पुस्तकें दूसरे लोग ले गये हैं। और थी ही नहीं।" अवदोत्या ने उत्तर दिया।

सचमुच उसे बुरा लग रहा था कि वह मामूली सी पुस्तक ले आई है।

"स्तेपा चाचा, नयी किताब पढ़ूं या नहीं?"

"हां, हां बेटी! पढ़ो न! यह किताब खास तुम्हारे लिए है!"

उस सांझ बहुत ज्यादा सर्दी थी। फ़र्श-खिड़कियां सभी कुछ जैसे जमे जा रहे हों। सर्दी के मारे सब लोग तन्दूर के पास सोने के लिए बने चबूतरे पर एक-दूसरे से चिपके बैठे थे। स्तेपान ज़रा हट कर एक स्टूल पर बैठा गाड़ी का साज़ बना रहा था। सर्दी से दीवारों के बांस चरचरा रहे थे, झींगुरों की झांय-झांय की आवाज़ सुनाई दे रही थी, कमरे में रोटी, चमड़े आदि की गंध भर रही थी।

कात्या चटाई पर पालथी मारे बैठी पढ़ रही थी।

कुछ समय बाद कविता ने सभी का ध्यान खींच लिया :

बुझ चला दीप...सब ओर शांति...
तुम सुनते हो या हो सोते?
सरिता का जल है स्वच्छ,
किनारे, हरे-भरे ऊंचे-ऊंचे...

कात्या चटाई को पांव के अंगूठे से कुरेदती हुई कविता पढ़ रही थी। उसके स्वर से ही जान पड़ता था कि वह बहुत भावुकता से पढ़ रही है। उसकी आंखों में आंसू भरे थे।

"स्तेपा चाचा, ये बातें ऐसे ही लिखी हैं या सच हैं? बताओ!"

कात्या सुबकने लगी। वह चाहती थी कि यह कोरी कहानी हो—नन्हीं ज़ोया[1] के लिए उसे बहुत दुख हो रहा था।

"हां बेटी! यह बिलकुल सच्ची बात है।"

अपने डैने फड़-फड़ करते,
आ गये पास कलहंस वहां,
पैरों की जलन मिटाने को,
मारूस्या जल में खड़ी जहां।

ज़ोया की वीरता और कष्टों की कहानी पढ़कर कात्या दोनों हाथों से मुंह ढांक कर ज़ोरों से सुबकने लगी।

"चाचा स्तेपा, तब तुम कहां थे? तुम उस नदी से बहुत दूर थे क्या?"

"पढ़ती जा, बेटी! पढ़ती जा!"

अवदोत्या की सीधी-सादी मां भी ज़ोया की कहानी सुनकर रो पड़ी। अवदोत्या ने तो आंसू पोछना भी बन्द कर दिया था।

सबको ऐसा लग रहा था जैसे पड़ोस की झोंपड़ी में ही कोई छोटी सी लड़की—उनकी अपनी ही कात्या की तरह प्यारी—मृत्यु शय्या पर पड़ी हो!

"प्यारी ज़ोया... शाबाश बहादुर बेटी!...हम लोगों में बहादुरों की क्या कमी!... ज़िन्दगी में यही होता भी है!"

जिन लोगों ने युद्ध में जाकर अपने शरीरों पर चोटें सह कर उसकी और उसके बच्चों की रक्षा की थी उन सबके प्रति प्यार, आदर और कृतज्ञता की भावना से अवदोत्या का हृदय उमड़ पड़ा। उसकी आंखें स्तेपान के चोट खाये माथे और हंसली की ओर उठ गयीं। उस दृष्टि में कितनी संवेदना थी।

---

१. ज़ोया कोस्मोदेम्यान्स्काया—(१९२३-१९४१)। पिछले युद्ध में ज़ोया स्वयंसेवक के रूप में नाजियों के विरुद्ध लड़ी थी। एक फ़ौजी नाजी कैम्प में आग लगाते समय वह पकड़ी गयी। नाज़ियों ने उससे भेद लेने के लिए उसे बहुत सी यातनाएं दीं और फिर उसे मास्को के समीप पेत्रिश्चेवो गांव में फांसी पर लटका दिया। सोवियत सरकार ने उसकी मृत्यु के बाद उसे "सोवियत संघ की वीरांगना" की उपाधि देकर उसका सम्मान किया।

क्या यही वह बात नहीं थी जिसने अवदोत्या के भावी जीवन की दिशा बदल दी ?

अवदोत्या की मां को बड़ी चिन्ता थी कि किसी तरह बेटी के मन का दुख दूर हो; उसका कोई ठौर-ठिकाना बन जाये। बुढ़िया बहुत दिनों से कनखियों से देखा करती थी कि स्तेपान कभी अवदोत्या की कोठरी में जाता है या नहीं !

पड़ोसियों को तो बहुत दिनों से निश्चय हो चुका था कि स्तेपान और अवदोत्या का सम्बंध हो गया है। परन्तु आपस में वे दोनों ही एक दूसरे से दूर-दूर रहते थे। बातचीत में या बुलाने में वे ऐसा ढंग या ऐसे शब्द न लाते कि दूसरा कुछ और समझ ले; वे एक दूसरे का नाम न लेते और 'तुम' की जगह 'आप' कहते।

स्वयं लगायी हुई इस रुकावट से वे दोनों एक दूसरे के और भी समीप खिंचे चले आ रहे थे। उतना प्रभाव शायद भावुक से भावुक शब्दों का न होता जितना इस चुप्पी का हो रहा था। एक-दूसरे के प्रति प्रेम की भावना की गहराई का इससे बड़ा सबूत और हो ही क्या सकता था ?

रात में अपनी-अपनी कोठरियों में चले जाने के बाद, दोनों अपने-अपने बिस्तरों पर लेटे रहते। स्तेपान को किसी कारण उठना ही पड़ता तो धीमे-धीमे, पंजों के बल, चलता ताकि लकड़ी के फ़र्श पर खटका न हो। पर इतनी आहट तो हो ही जाती कि अपने बिस्तर पर लेटी अवदोत्या को पता चल जाय। अवदोत्या अंधेरे में आंखें खोले लेटी हुई मुस्करा देती। उसे यह बहुत अच्छा लगता। उसके शरीर में रोमांच सा हो आता !

अवदोत्या खूब जानती थी कि स्तेपान उसे बहुत चाहता है। पर वह डर से कभी ज़बान न खोलता था कि कहीं अवदोत्या को बुरा न लग जाय। वह शर्मीला भी बहुत था। उसे डर लगता था कि कहीं उस विश्वास, मूक प्रेम और पारस्परिक सहृदयता की भावना को ठेस न लगे जो उनके बीच उमड़ रही थी।

वासिली से अवदोत्या को कम प्रेम नहीं था। परन्तु विचारों और भावनाओं का आपस में ऐसा घोलमेल और हर बात में एकात्मता तो उसने कभी अनुभव नहीं की थी।

स्तेपान और अवदोत्या दोनों ही दिन भर अपनी-अपनी जगह काम करते थे। पर, सांझ के समय वे एक-दूसरे की प्रतीक्षा करते। यदि स्तेपान पहले आ जाता तो खाने की मेज़ पर बैठा अवदोत्या की प्रतीक्षा करता रहता।

अवदोत्या पहले आ जाती तो वह भी तब तक खाना न खाती जब तक स्तेपान न आ जाता।

स्तेपान को घर लौटने में अक्सर देर हो जाती थी। अवदोत्या की मां और दोनों बच्चियां जाकर सो जातीं। अवदोत्या प्रतिक्षा में बैठी रहती। स्तेपान के घर आने पर वह ऐसे खिल उठती मानो वह बरसों के बाद लौटा हो। दिन भर के काम-काज की कितनी ही बातों के प्रसंग दिलों में भरे होते। वे पास-पास बैठे बहुत देर तक खाना खाते बात-चीत करते रहते। दूसरों की नींद खराब न हो इसलिए वे बातचीत दबे-दबे स्वर में ही करते थे। पशुशाला में दोनों का काम एक साथ ही था। इससे दोनों में और भी घनिष्ट सम्बंध स्थापित हो गया।

गोशाला की देख-रेख का भार अवदोत्या पर था। वह चाहती थी कि दूसरे लोगों से मदद मांगे बिना गोशाला से लगी ज़मीन में पशुओं के लिए वह थोड़ा चारा तैयार कर ले।

स्तेपान ने ही उसे एक बार सुझाया था : "...चरान के परे चरी का जो बरबाद खेत पड़ा है, उसे तो जानती हो न अवदोत्या तिखोनोवना! मालूम होता है तीन-चार बरस से उसमें हल नहीं चला है। जगह-जगह झाड़ियां और जंगली पेड़ उग आये हैं; बस बीच-बीच में कहीं-कहीं चरी के पौदे हैं। उनमें खूब बीज भरे हैं। यही मौक़ा है कि बीज समेट लिए जायें। ज़िले में चारे के बीजों की बहुत तंगी है। अगले बरस के लिए कुछ बीज समेट लिए जायें तो बहुत अच्छा हो।"

अवदोत्या ने बीज समेट लिए थे। चारे की फसल बोने का समय आया तो उसने स्तेपान से कहा :

"स्तेपान, ट्रैक्टर-स्टेशन वालों की तो योजना ऐसी नहीं है लेकिन तुम थोड़ी मेहरबानी करो—मेरी खातिर उस खेत को जोत दो!"

स्तेपान सांझ तक अपना काम पूरा करके रात में चारे के खेत में ट्रैक्टर ले आया।

वसंत की ठंडी रात मानो धरती की तरह-तरह की सुगंधों में बसी हुई थी। ट्रैक्टर अपनी भारी-भरकम चाल से चलने लगा। ट्रैक्टर की आगे की बत्तियों की तेज़ रोशनी अंधेरे में तैर रही थी। अंधेरे में छिपे पौधे रोशनी में खिंचे चले आते और मुड़-तुड़ कर कुचल जाते। वे बहुत बड़े और उलझे-उलझे लगते थे।

खेत के किनारे टूटे पड़े चीड़ के पौधों के ढेर पर अवदोत्या बैठी थी। स्तेपान ट्रैक्टर पर खेत का चक्कर पूरा करके उसके पास से गुज़रता तो एक

नज़र अवदोत्या के अंधेरे से क्षण भर के लिए प्रकट होते शरीर और बड़ी-बड़ी चमकती आंखों वाले मुंह को देख लेता।

"अवदोत्या तिख़ोनोवना! तुम घर जाओ न। दिन भर की थकी हो; जाकर आराम करो!"

"और तुम्हें अकेला छोड़ जाऊं? नहीं। मैं बैठी हूं। अब बहुत देर नहीं लगेगी!"

अवदोत्या मांस भरे परौठे और दूध साथ ले आई थी। काम खतम होने पर दोनों ने अंधेरे में साथ बैठ कर खाना खाया।

"बस, कल ही बीज डाल दें खेत में। मिट्टी खूब भुरभुरी और भीगी है, जैसे बीज का इंतज़ार ही कर रही हो!" अवदोत्या ने कहा।

"हां, कल ही!" स्तेपान ने समर्थन किया। "लेकिन धरती कल तक सूख तो नहीं जायेगी।"

बातें तो मामूली ही थीं, पर वे दोनों दबे स्वर में बोल रहे थे जैसे ये कोई रहस्य की बातें हों। दोनों एक साथ ट्रैक्टर पर घर लौटे। अवदोत्या अलसाई सी अपने मन की बातें कहती जा रही थी :

"...इस साल की फसल का बीज इकट्ठा करके हम अगले बरस फिर बो देंगे। अगले बरस, जब दूसरे काम सम्भल जायेंगे, तब फ़ार्म वालों को चारा बोने की सुध आयेगी। बीज की ज़रूरत पड़ेगी—यहां ढेरों बीज तैयार होगा! पर पहले किसे खयाल आया था? हम लोगों को ही तो!"

दोनों एक दूसरे को अपने इतना समीप अनुभव कर रहे थे, जैसे वे दो नहीं एक ही हों।

युद्ध की विजय का उत्सव मनाया गया। अवदोत्या सिसकियां भर-भर कर रोयी। विजय दिवस उसके लिए कटु और मधुर, अवसाद और प्रसन्नता का, दिन था। उस दिन खुशी मनाने के लिए उसका वासिली नहीं था। उसने चुपचाप संताप और वियोग के आंसू बहाये। पर वह देर तक नहीं रोयी। कुछ ही समय बाद उसका दुःख आम उत्साह की लहरों में बह गया।

सभी लोग जानते थे कि युद्ध के विध्वंस और विनाश के कारण सैकड़ों कठिनाइयां सामने हैं। पर सभी को भरोसा था कि जल्दी ही इन कठिनाइयों को पार कर लिया जायेगा।

विजय दिवस की प्रसन्नता और उत्साह के साथ-साथ अवदोत्या के मन में दूसरा पुलक और आवेश भी था। स्तेपान ने उसे कभी छुआ तक नहीं था—फिर भी, पति को जो कुछ होना चाहिए, जैसी आशा पति से की जानी चाहिए, स्वभाव और भावों की समता और सामीप्य, आपस में अनन्त भरोसा और विश्वास—सभी कुछ अवदोत्या स्तेपान से पा रही

थी। अवदोत्या को जान पड़ता था कि अपने जीवन में इतना संतोष और इतनी पूर्णता उसने पहले कभी अनुभव नहीं की थी। प्रसन्नता और संतोष का उन्मेश उसके हृदय में समा नहीं रहा था। उसे जान पड़ता था कि वह किसी षोड़शी से कम नहीं है।

एक दिन ट्रैक्टर के लिए तेल नहीं मिल सका था। स्तेपान ने हंसिया उठा लिया और चारा काटने में दूसरे किसानों के साथ जा मिला।

नदी किनारे की चरानों से घास काटी जा रही थी। अवदोत्या अपनी मां और चचेरी बहन के साथ सबसे परे की चरान में घास काट रही थी। सभी लोग सूरज डूबने तक घास काटते रहे।

नदी पार के एक खेत में अलाव जला दिया गया था। सांझ के खाने की तैयारी हो रही थी। धुयें की सोंधी-सोंधी गंध उड़कर हवा में फैल रही थी।

सूर्य की अंतिम किरणें आकाश से विदाई ले रही थीं। नदी किनारे के वृक्षों और झाड़ों पर अंधेरे का काला परदा पड़ता जा रहा था। नदी का जल, जिस पर आकाश का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था, आईने की तरह स्थिर और स्वच्छ था। चारों ओर की गहरी हरियाली के बीच वह ऐसा लग रहा था जैसे हवा में तैरता हुआ कहीं से आ गया हो।

नदी किनारे के काले झाड़-झंखाड़ों और घाट पर दूर खड़ी सुनसान पुरानी झोपड़ी की छाया जल में स्पष्ट पड़ रही थी। आकाश में पहला तारा चमका। तुरंत ही नदी में दूसरा दिखाई दिया।

नदी के स्वच्छ जल पर गहरे रंग की बड़ी-बड़ी पंखड़ियों वाले कमल निस्संकोच भाव से तैर रहे थे, मानो कितनी ही अंगुलियां जल के ऊपर उठी हों।

अवदोत्या किनारे के पास के आखिरी गड्ढों में से घास काट रही थी। तभी एक तीतरी उसके पांव के पास से उड़ारी भर कर परों को फड़फड़ करती हुई कुछ दूर जा छिपी।

"इसका घोंसला यहीं है। देखो तो हमें बहकाने की कैसी कोशिश कर रही है!"

अवदोत्या ने हाथों से घास हटाई। सचमुच, घोंसले में तीतर के बड़े-बड़े बच्चे बैठे हुए थे।

स्तेपान भी घोंसला देखने के लिए झुका। उसका कंधा अवदोत्या के कंधे से रगड़ रहा था। अवदोत्या को स्तेपान की तेज़ी से चलती सांस भी सुनाई दे रही थी।

"हाय, छूना नहीं!" अवदोत्या ने जल्दी से उससे अलग हटते हुए कहा।

"डरो नहीं! मैं नहीं छुऊंगा!" स्तेपान ने अवदोत्या की आंखों में देखते हुए धीमे से कहा।

अवदोत्या उसके शब्दों का गूढ़ अर्थ समझ गयी। स्तेपान उसे विश्वास दिला रहा था : डरो मत, तुम्हें नहीं छुऊंगा, तुम्हें दुःख नहीं दूंगा। अवदोत्या का मन उसके प्रति कृतज्ञता तथा उमंग के आवेश से भर गया।

उन्होंने बड़ी सावधानी से तीतरी के घोंसले को घास से ढंका और फिर खाना खाने के लिए दूर की झोंपड़ी की ओर चल दिये।

स्तेपान ने कुछ पीले और सफेद कमल चुने और अवदोत्या को दिये। उसने उन्हें अपने बालों में खोंस लिया।

नदी पार लड़कियां गीत गा रहीं थीं। अवदोत्या की मां और बहन के साथ सुर मिला कर स्तेपान भी गाने लगा :

"ओ गोरी, तेरी चुटिया में झूले पीला फूल!"

नदी किनारे की हवा गाने की गूंज से भर गयी।

अवदोत्या को जान पड़ रहा था कि वह धरती से उठी जा रही है! मन ही मन वह गुनगुना रही थी :

"...आज, प्रीतम से मिलन की रात!"

चरान की मेड़ पर कटी हुई घास का छोटा सा ढेर लगा हुआ था। अवदोत्या ढेर को दबा कर उसी पर लेट गयी।

उसके सिर में खोंसे कमल अब भी बालों में उलझे थे। वे कुछ-कुछ मुस गये थे जिससे महक की अरघानें उठ रही थीं। नदी के पानी की नम हल्की गंध से उनकी महक और भी फैल रही थी। अवदोत्या तारों भरे आकाश को देखती पीठ के बल लेटी थी। ऊपर आकाश में अनगिनत तारे टिमटिमाते हुए तैर रहे थे, मानो आकाश में प्रकाश का अनन्त जाल बुन रहे हों।

देर से लौटने वाले किसान नदी किनारे की पगडंडी से अपने-अपने घरों की ओर जा रहे थे। कोई लड़की बड़े स्पष्ट स्वर में गा रही थी :

"इक तारा नभ से टूटा री,
सब जग दियो चमकाय,
मैं डरसों ऐसी बिलखी री,
साजन लियो लपटाय!"

गीत का स्वर दूर होता जा रहा था। अवदोत्या आकाश की ओर टकटकी लगाये थी। तभी एक तारा टूटा; प्रकाश की क्षणिक रेख खींचता हुआ वह दूर जाकर विलीन हो गया।

"ओह, कितने तारे हैं। इनमें से कौन सा तारा मेरा है?" अवदोत्या सोच रही थी। "...बोलो न, कौन सा तारा मेरा है?" उसने आकाश की ओर अपना हाथ उठाया। तभी, मानो इस प्रश्न के उत्तर में, एक तारा टूटा और दूर जाकर विलीन हो गया। अवदोत्या का मन किलक उठा। वह अपने मन के आमोद को दबा न सकी: "आज!...स्तेपा आयेगा? क्या उसे मेरा खयाल आयेगा?...वह ज़रूर आयेगा...!"

अवदोत्या को घास पर क़दमों की आहट सुनाई दी।

स्तेपान को निकट जाने का साहस नहीं हो रहा था। मन कहता था कि अवदोत्या उसकी प्रतीक्षा कर रही है। फिर भी उसे डर लग रहा था कि कहीं कोई भारी ग़लती न हो जाये; कहीं अवदोत्या बुरा न मान जाय! बरस भर से उनके जीवन में संचित माधुर्य और आपसी विश्वास कहीं एक धक्के से बिखर न जाय!

स्तेपान दुविधा में इधर उधर टहलता रहा। एक सिगरेट सुलगायी; कुछ कश खींचे और फेंक दी। एक सिगरेट फिर सुलगायी। इस बार उसने फ़ैसला किया: "अपना ओवरकोट ले आऊं, ओढ़ने के लिए दे दूंगा। कहूंगा, सर्दी न खा जाओ इसलिए ले आया; फिर देखा जायगा।"

स्तेपान कोट को कंधे पर लटकाये घास के ढेर के पास लौटा। सहसा, उसे अपनी भीरुता पर क्रोध हो आया। उसने कोट को फेंक दिया और सिगरेट नीचे डाल कर कुचल डाली। "छिः, यह बचपना है! किसे धोखा देना चाहता हूं मैं?"

वह घास के ढेर की ओर बढ़ा। उसका हृदय ज़ोरों से धक-धक कर रहा था।

"डरो नहीं, अवदोत्या तिखोनोवना! मैं हूं!"

अवदोत्या ने उसकी ओर अपनी बाहें फैला दीं; उसके होंठ हिल उठे:

"स्तेपा!..."

स्तेपान और अवदोत्या का विवाह हो गया।

अवदोत्या बहुत प्रसन्न और संतुष्ट थी। वह आशा कर रही थी कि उसका पूरा जीवन इसी प्रसन्नता और संतोष से भरा-पूरा रहेगा। तभी, वासिली लौट आया।

५. घर

नगर से चले उन्हें लगभग पांच घंटे हो चुके थे। उनकी लारी उस घने जंगल को चीरती चली जा रही थी जिसका कोई अन्त नहीं दिखाई देता था। सड़क के किनारे-किनारे जंगल के वृक्षों और झाड़ियों की कड़ी शाखाएं आपस में गुथी और उलझी हुई थीं। वृक्ष, टहनियां और पत्ते—सब बरफ़ के सफेद चूरे से ढंके हुए थे।

लेना ऊब रही थी। वह नगर में जन्मी और वहीं पली-पनपी थी। बरस भर पहले वह देहात में आई थी। आने से पहले उसे कुछ झिझक थी। पर, देहात में आकर उसे ऐसा अच्छा लगने लगा कि खुद ताज्जुब होता था। यह ठीक है कि जब भी वह घर होकर लौटती तो कुछ दिन तक शहर की याद सताती रहती। लारी में सफर करते उसे पांच घंटे हो चुके थे। लगातार बरफ़ से ढंके खेत और फिर घने जंगल आते जा रहे थे। पर, उसकी स्मृति में नगर की चमकीली रातें नाच रही थीं—दूकानों की बिजली से चमचमाती खिड़कियां, आती जाती बसों और मोटरों की गूंज!

वह बरफ़ से ढंके जंगलों को विस्मय भरी उदासी से देख रही थी, मानो इन्हें पहली बार देख रही हो।

कहीं-कहीं जंगल के वृक्ष ऊंचे न उठ कर सिकुड़-सिमट कर रह गये थे। भूरा-भूरा बर्फ़ानी आकाश जैसे पतझड़ से नंगे हो गये वृक्षों को ढंक लेने के लिए नीचे उतर आया हो! कहीं-कहीं जंगलों के बीच घाटियां और मैदानों के छोटे-छोटे टुकड़े आ जाते।

कहीं-कहीं गढ़ों में हल्की बरफ़ भरी थी। मैदानों में और हवा से साफ़ किये ढलवानों पर नंगी धरती के काले-काले धब्बे दिखाई दे रहे थे।

सड़क पर काला शॉल ओढ़े एक विचित्र सी स्त्री दिखाई दी। मोटर को निकल जाने देने के लिए वह सड़क के किनारे हो गयी। सवारियों की ओर देख कर उसने ऐसे मुस्कराया मानो उनसे उसका पुराना परिचय हो।

मोटर के निकल जाने पर भी वह खड़ी-खड़ी कौतूहल से मोटर की ओर देखती रही।

कुछ दूर जाकर सड़क के किनारे कटे हुए जंगल आने लगे। बड़े-बड़े पेड़ों की जगह नये छोटे-छोटे पेड़ उग आये थे। कहीं-कहीं टट्टरों से घिरी चौकोर छोटी-छोटी झोपड़ियां भी दिखाई दीं। एक कुएं पर सिर ऊंचा उठाये ढेंकली खड़ी थी।

"लो, पहुंच गये..." वालेंतिना ने प्रसन्नता प्रकट की।

लेना ने वालेंतिना की ओर देखा। उसकी भूरी आंखों से अवर्णनीय प्रसन्नता फूटी पड़ रही थी। उसके होठों से मुस्कान बिखर रही थी। लेना ने सोचा—"ओह कितनी खुश है यहां...वह यहीं पैदा हुई है। अब बहुत दिन बाद अपने घर लौटी है!...जाने कैसा स्वभाव है इसका?... अच्छा ही होगा!...'पेत्रोविच' की पत्नी है न!"

लारी में बहुत सी टोकरियां और गांठों के बीच में फंसी बैठी वालेंतिना चारों ओर के दृश्यों को लेना की तरह ही, कौतुहल से, देख रही थी। परन्तु, उसमें लेना की उदासी नहीं थी; उसे रोमांच हो रहा था।

आकाश का स्वच्छ, निस्सीम चंदोवा दृष्टि की सीमाओं तक फैला हुआ था। मकानों के धब्बों से मुक्त, चारों ओर श्वेत बरफ़ से ढंकी धरती को वह अत्यन्त कोमलता से आलिंगन में समेटे था। वालेंतिना का मन चाह रहा था कि गांठों पर खड़ी होकर हाथ से क्षितिज को छू ले।

स्वच्छन्द और उन्मुक्त हवा के झोंके श्वास की राह आ-आकर निरंतर ताजगी और स्फूर्ति दे रहे थे। सड़क के किनारे के लचीले भूर्ज वृक्ष हवा के झोंकों से डर कर दोहरे हो-हो जा रहे थे। चीर के पेड़ धीरे-धीरे अपने सिर हिला रहे थे, जैसे किसी चिन्तन में मग्न हों। आस्पेनों की शाखाएं कांप-कांप कर रह जाती थीं। देवदार की शाखाएं ऐसे फैल रही थीं जैसे सहायता के लिए कोई बच्चा बाहें पसार रहा हो।

सड़क पर बिना पहचाने ही मुस्करा देने वाली अपरिचित स्त्री को देख कर, जो लारी के निकल जाने पर भी उसे खड़ी देखती रही थी, वालेंतिना प्रसन्नता से मुस्करा उठी थी। निस्सीम आकाश और शांत वनों के इस संसार से उसे कितनी आत्मीयता थी! यहां दूर तक फैले हुए जंगल के बीच मिलने वाला मनुष्य, परिचित हो या अपरिचित, बहुत प्यारा लगता था; उसके बारे में जानने की इच्छा होती थी; वह निकट का और अभिन्न लगने लगता था।

"कितना सुहावना और प्यारा है!" वालेंतिना सोच रही थी। "इतने बरस मैं कैसे इससे अलग रह सकी। अल्योशा के साथ मैं इन झाड़ियों में बेर चुना करती थी। वह देखो! वह रहा खलिहान का छप्पर! बरसात में हम लोग वहीं जाकर तो बैठते थे। जी चाहता है गाड़ी से कूद कर उस पगडंडी पर दौड़ जाऊं। वह देखो, जुआ कंधे पर उठाये एक लड़की चली आ रही है। कितनी अच्छी चाल है उसकी—कितनी चपल है वह; फिर भी कितने चुस्त और जमे हुए क़दम हैं उसके! अरे, यह तो दुन्या मालूम होती है!"

"दुन्या! ओ दुन्या! अरी दुन्यूश्का!" गाड़ी के तख्ते से झुक कर वालेंतिना चिल्लायी।

"ओ हो! वाल्या बेरेजोवा? वाल्या, तू आ गयी! यहीं रहेगी न अब?"

"हां, दो-एक दिन।"

लारी के रुकते ही वालेंतिना कूद पड़ी और दौड़ कर अपने घर में जा घुसी।

"वाल्युश्का! मेरी पोती! वाल्या!"

दादी दरवाज़े में ही मिल गयी। पोती को पहचान उसने वालेंतिना को अपनी सूखी-सूखी बाहों में भर लिया और "वालेंतिना, वालेंतिना" कहती हुई उसके सिर और मुंह पर हाथ फेरने लगी। घर और दादी के कपड़ों से उठती खमीरी रोटी, जिरेनियम के फूलों और दूध की पुरानी परिचित गंध से वालेंतिना का मस्तिष्क भर गया। दादी उसे प्यार करती जा रही थी:

"मेरी वाल्या, मेरी बछड़ी, मेरी गुड़िया! बड़ी सर्दी लगी होगी तुझे रास्ते में?...अरी तू अल्योशा को नहीं पहचान रही?"

"अरे!...अल्योशा भैया! अरे, क्या हो गया तुझे? इतना बड़ा रीछ बन गया तू तो! ज़रा सा था तू! दादी क्या खिलाती हो इसे?" प्यार से अल्योशा से लिपटते हुए वालेंतिना ने पूछा।

लेना भी वालेंतिना के पीछे-पीछे आई थी। वालेंतिना अपने घर के लोगों में ऐसी बेसुध हो गयी थी कि लेना की याद ही नहीं रही। लेना यह सोचकर ड्योढ़ी पर ही खड़ी रह गयी थी कि घर के लोगों की मेल-मिलाप की खुशी में क्यों विघ्न डाले। उसने सोचा, वालेंतिना से बिना बताए चुपचाप लौट जाना भी अभद्रता होगी।

"वाल्या, मैं जा रही हूं!" कुछ आगे बढ़ कर शर्माते हुए उसने कहा।

"नहीं नहीं, लेना! वाह, जा कहां रही है? मैं नहीं जाने दूंगी! यहीं ठहरना होगा! हमारी खुशी में हिस्सा नहीं बटायेगी? देख क्या रहा है, अल्योशा! मेहमान का कोट उतरवा जल्दी!" अल्योशा को प्यार से डाटते हुए उसने कहा।

"हां बेटी, तू कहां जायगी।" दादी ने भी आग्रह किया। "तेरी कोठरी तो ऐसे ही पड़ी होगी। पोल्यूखा ने तेरे जाने के बाद वहां एक दिन भी आग नहीं जलायी। बड़ी सर्दी होगी। आज रात यहीं ठहर जा।"

दादी का चेहरा झुर्रियों से भरा था। उसकी धुंधली आंखें मद्धिम ज्योति से चमक रही थीं। उसके चेहरे पर संतोष और शान्ति का वही भाव था, जो कठिन परिश्रम करने वालों और ईमानदारी से ज़िन्दगी बिताने वालों के चेहरों पर होता है।

घर वालों के मीठे शब्दों से लेना के मन का परायापन दूर हो गया। उसने अपना कोट उतार दिया। उसके मन की उदासी भी दूर हो गयी।

वालेंतिना को चैन नहीं था। वह फुदकती फिर रही थी।

"अल्योशा! बाबा रे, तू कैसे इतना लम्बा हो गया? कौन सोच सकता था? मुझ से दूना हो गया है! देखो कितना बड़ा है और कैसा अच्छा है... ऐसे भैया पर मुझे गर्व है।"

वालेंतिना अल्योशा की खिल्ली उड़ाने के बहाने भाई की सराहना कर संतोष पा रही थी। अल्योशा खूब लम्बा हो गया था; कंधे भी खूब चौड़े थे। उसका चेहरा खूबसूरत था। आंखें बहुत सुन्दर थीं; सफेद कोयों पर हल्की नीलिमा और भूरी पुतलियों में एक सुनहरी चमक थी। उसके चेहरे से शांति और स्वास्थ्य बरसते थे।

"अल्योशा! दादी! बताओ न, यहां का क्या हाल-चाल है?...सामूहिक खेत की क्या खबर है?" वालेंतिना ने दोनों से पूछा।

"हम लोगों का हालचाल तो अच्छा ही है, लेकिन खेत की हालत अच्छी नहीं है...।"

"क्यों?... क्या बात है? अल्योशा, तेरे जैसे दैत्य के रहते यह बात?... तू तो कौमसोमोल का सदस्य है; तेरे यहां होते ऐसी बात...? बता मुझे, लोगों ने ऐसा क्यों होने दिया?"

अल्योशा के माथे पर बल पड़ गये, वह कुछ उत्तर न दे सका।

दादी उसके बदले बोल उठी:

"इसकी उम्र ही क्या है? पिछले एक बरस में ही इतना लम्बा हो गया है। सन बयालिस में तो यह बेचारा चौदह बरस का था! पर जानती है, अच्छे-खासे मर्द का काम कर रहा था! गांव में बड़ी उम्र के कोई रह ही नहीं गये थे; उंगलियों पर गिने जा सकते थे। औरतें थीं और छोकरे थे! जुताई-बोवाई करें तो वे, लुनाई करें तो वे। सख्त सर्दी में लकड़ी काटने जायें तो वे! सभी कुछ उन्हें ही करना पड़ता था!"

कुछ देर कोठरी की गरमी में बैठकर सुस्ता लेने के बाद वालेंतिना फिर उठ खड़ी हुई।

"अल्योशा, चल! ज़रा गांव-सोवियत के दफ्तर चलें! आन्द्रेई को फोन करना है। उसे पता नहीं है कि मैं आ रही हूं। मुझे उम्मीद नहीं थी कि आज ही चल दूंगी!"

अल्योशा और वालेंतिना गांव-सोवियत की ओर चले तो लेना स्कूल की ओर चली गयी।

वालेंतिना टेलीफोन के आबनूस के ठंडे रिसीवर को ऐसे प्यार से गाल से चिपकाये थी, मानो आन्द्रेई को ही प्यार कर रही हो।

परन्तु दूसरी ओर से जब एक अपरिचित, खुश्क सी आवाज़ ने बताया कि आन्द्रेई ज़िले का दौरा करने गया है और दो दिन बाद लौटेगा तो वालेंतिना के हाथ से रिसीवर छूट गिरा।

इसका मतलब था, एक दिन और! एक दिन का विरह और!... कितने दिन तो हो चुके थे! उस पर एक दिन और!... यह दिन काटे नहीं कटेगा...। इतने पास आकर उनके बीच का अन्तर फिर बढ़ गया..,!

"चल, अच्छा ही हुआ, वाल्या!" अल्योशा प्रसन्नता से बोला। "हमारे साथ एक दिन तो और रहेगी!" उसके आने से घर के लोग कितने प्रसन्न थे, यह बात वह भूल ही गयी थी। उसे बड़ी झेंप लगी।

"हां, ठीक तो है अल्योशा! तुमसे बातें भी होंगी; खेत भी देख आयेंगे।"

वालेंतिना बहुत देर तक अल्योशा और दादी से बातचीत करती रही। कई मिलने-जुलने वाले भी आये थे। इसके बाद उसने गोशाला और भेड़-बकरियों का बाड़ा देखा और फिर खेतों की ओर निकल पड़ी!

बरफ़ से लदे बादलों से हल्की-हल्की बरफ़ पड़ रही थी। ऊपर आकाश और नीचे धरती, सब बिलकुल सफेद थे—मौन और सिकुड़े हुए। पहाड़ी ढलवान पर गांव बरफ़ से ठिठुरा खड़ा था, जैसे किसी ने उसे रुई में लपेट दिया हो। चारों ओर निस्तब्धता का राज्य था; लहरा-लहराकर धरती पर बैठती बरफ़ की फुहारों तक का शब्द सुना जा सकता था।

वालेंतिना ताज़ी पड़ी कच्ची बरफ़ को रौंदती खेत की ओर चली जा रही थी।

खलिहान पर वासिली मिल गया। वासिली सुबह वालेंतिना के घर गया था। पर, उस समय बातचीत का मौक़ा नहीं मिला था।

"घूम-फिर कर सब देख लिया न, वालेंतिना अलेक्सेयेवना?" वासिली ने पूछा।

"हां वासिली कुज़मिच, देख आई हूं। सुनो, पशुओं को आधा चारा ही देने का हुक्म तुमने दिया है?"

"हां!"

वासिली और वालेंतिना खलिहान के गोदाम में जाकर लकड़ी के भारी से कुन्दे पर बैठ गये। चारों ओर सनी की छड़ियां और छाल भरी हुई थी।

"पशुओं को चारा आधा देने के बजाय और बढ़ाने की ज़रूरत थी। पशुओं को ज़िन्दा रखना चाहते हो तो फ़ौरन ही चारा बढ़ा देने का हुक्म दो। समझे! फ़ौरन!"

"अच्छा हुआ तुमने बता दिया। धन्यवाद! मैं बेवकूफ़ यह क्या जानता था!" वासिली ने ताने के स्वर में कहा। "मुझे क्या मालूम था यह सब!"

"मेरे कहने का बुरा न मानो!... समझ लो, चारा बढ़ाओगे नहीं तो मार्च-अप्रैल तक जानवर भूख से मरने लगेंगे।"

"अगर बढ़वा दूं तो वे फ़रवरी में ही मरने लगेंगे। पूरा चारा दिया जाय तो फ़रवरी में ही सारा खतम हो जायेगा!"

"तुम फ़रवरी से पहले ही एक लाख इकट्ठे करके और भूसा क्यों नहीं खरीद लेते?"

वासिली ने वालेंतिना के दृढ़ चौड़े चेहरे पर प्रश्न-सूचक नज़र डाली। उसका तथ्यों को यों सामने रखने का ढंग उसे बड़ा तीखा लग रहा था।

"तुम एक लाख इकट्ठे करने को कहती हो। अरे, इन एक लाख के लिए मैंने जंगल और खेत सब छान डाले!"

"कुछ मिला?"

"मिला? दस लाख मिले। रखे तो हैं तुम्हारे सामने! पर हाथ में तो नहीं आते।"

"वासिली कुज़मिच, मैं समझ नहीं पायी!"

वासिली का मन साफ़-साफ़ दो टूक बात कहने को नहीं चाह रहा था। परन्तु, वालेंतिना की दृष्टि ने उसे मजबूर कर दिया। अपने मन को दबाकर उसे बोलना ही पड़ा :

"यह सब सनी तुम्हारे सामने ही तो पड़ी है," सनी की एक भूरी सी गुत्थी उठाकर वासिली ने कहा, "अगर यह ठीक से तैयार हो गयी होती और हम सरकार को सप्लाई कर पाते तो हर टन सनी पांच से आठ हज़ार रूबल तक बिकती। इससे तीस हज़ार मिले होते। ठीक कह रहा हूं न?"

"हां, हां, तो फिर?"

"अब छाल को लो। हमारे यहां लाइम के ढेरों पेड़ हैं। छाल उतार कर हम रस्सी बंट सकते हैं। उससे चटाइयां बना ली जातीं। तीस हज़ार उनसे निकल आते!"

"हां ठीक है! पर यह किया क्यों नहीं?"

"छाल को पन्द्रह किलोमीटर दूर जंगल से ढोकर लाना पड़ता है। इधर, हमारे सब जानवर लकड़ी ढोने में लगे हैं। यह तो पहला अड़ंगा है। छाल की रस्सी बनाने के लिए हाथ चाहिए, यानी आदमी चाहिए। और जिनके हाथ हैं, वे उल्टी राह चल रहे हैं। तुम पावका कोनोपातोव को जानती हो? उसी की मिसाल ले लो। वह कहता है : 'मैंने अपनी मज़दूरी का काम पूरा

कर लिया है। अब शिकार पर जा रहा हूं।' उसने आखनकों की खाल सप्लाई करने का ठेका ले लिया है। उसे मैंने दो बार बुलवा भेजा। लेकिन, वह शिकारी का बच्चा, नहीं आया। यह है हालत, वालेंतिना अलेक्सेयेवना! चलो उठो, चलें!"

वालेंतिना और वासिली कोनोपातोव के मकान के सामने पहुंचे तो वासिली ने कहा :

"चलो, ज़रा इस शिकारी की दुम से बातें करें! देखें क्या कहता है!"

कोनोपातोव की कोठरी गरम और घुटी-घुटी सी हो रही थी। बिना झाड़ी बेंच पर खूब साफ़ हजामत बनाये एक नौजवान बैठा था। उसका चेहरा-मोहरा काफ़ी अच्छा था। केवल होंठ डोरी खिंचे बटुए के मुंह की तरह सिकुड़े हुए थे। वह प्याले में भरा शोरवा सुर्र-सुर्र पी रहा था।

उसकी काली-काली आंखें नाक के पास आकर सिमट गयी थीं। आंखों से छिछोरेपन और सन्देह का भाव झलक रहा था। इन लोगों को अपने यहां आया देख कोनोपातोव ने प्याला बेंच पर रख दिया और लापरवाही दिखाने के लिए बेंच पर ज़रा और फैलकर बैठ गया।

"क्या हाल है, पावेल मिखाइलोविच?"

"अच्छा है!" पावका ने दो शब्दों में उत्तर दिया।

"अरे यार, तुमने तो हम लोगों से बैठने के लिए भी नहीं कहा। आखिर, यह बेंच है किस लिए? या, शायद मेहमान तुम्हारे यहां ग़लत वक्त पर आ गये हैं?"

"आये हो, तो बैठ जाओ!"

तन्दूर के पास के चबूतरे पर पड़ा भेड़ की खाल का कोट हिला और पावका जैसी काली सिमटी आंखों वाला सफेद दाढ़ी का एक सिर बाहर निकला। यह सिर इस पुरानी झोंपड़ी की दीवालों जैसा ही सूखा-सूखा, काला और निश्चल था। मालूम होता था, वह इन दीवालों और छत से ही निकल रहा है और इस अंधेरे में अपनी काली-काली, कुटिल और निष्पलक आंखों से झोंपड़ी ही तुम्हारी ओर घूर रही है।

"सलाम, मिखाइल पावलोविच! क्या हालचाल है?" वासिली ने बूढ़े को भी सम्बोधित किया। "भई, तुम्हारे बेटे से मिलने आये हैं। तुम्हारा बेटा खेत के प्रधान के बुलाने से नहीं आता, तो प्रधान ही यहां चला आया है। इसमें कोई हर्ज़ भी नहीं। सोचा, कहीं तबियत खराब न हो।"

वासिली हंसता हुआ बात कर रहा था। उसकी अधमुंदी आंखों और फड़कते नथनों को देख कर कोई भी भांप सकता था कि वह गुस्से से तिलमिला रहा है।

कोनोपातोव और उसका पिता चुप बैठे रहे।

"तुम्हारी तबियत कैसी है अब, पावेल मिखाइलोविच!" वासिली ने पूछा।"पेट तो खराब नहीं है? तुम्हारे पेट का दर्द कैसा है? उस शनिवार को सब लोग जब लकड़ी के लिए जंगल जा रहे थे, तब तुम्हारे दर्द उठ आया था न!...कहो तो डाक्टर को बुलवा दें?"

पावेल खिड़की की ओर मुंह फेर कर बाहर देखने लगा, जैसे उसे कुछ मतलब ही न हो। लेकिन उसके चेहरे पर धूर्तता और क्रोध के चिन्ह स्पष्ट थे।

"प्रधान ने तुम्हें बुलाया था तो आये क्यों नहीं?" वालेंतिना ने पूछा।

"क्यों आता?"

"क्यों आते?...तुम सामूहिक खेत के किसान नहीं हो?"

"मैं अपना दिन भर का काम पूरा कर देता हूं। तुम्हें और क्या चाहिए?"

तन्दूर के पास के चबूतरे पर भेड़ की खाल के कोट से फिर वही सिर बाहर निकला—मौन और स्थिर।

"तो अब डाक्टर की ज़रूरत नहीं?" वासिली ने पूछा।

चुप्पी।

"सुना है तुमने आखनकों व गिलहरियों के शिकार का ठेका लिया है?"

"लिया है तो क्या?"

"होता क्या! तुम शिकारी बन गये! अच्छा, अच्छा! जैसा चाहो करो! करो शिकार! तुम्हारे लिए यह कोई नयी बात नहीं है। कुछ लोग फ़ासिस्ट शत्रु को मारते हैं, कुछ लोग गिलहरियां मार रहे हैं। खैर, बुरा क्या है? करो शिकार! पैसा मिलेगा!...इधर तुम गिलहरियां ढूंढते फिरोगे, उधर रीछ खेतों में अपना काम करेंगे। जितनी मुस्तैदी से तुम करोगे, उतनी ही मुस्तैदी से वे भी करेंगे।"

"मुझ से मतलब?"

"मालूम होता है रीछ को भी अपनी मांद की चिन्ता उससे ज्यादा रहती है, जितनी तुमको अपने खेत की है...।"

"यह सब बहुत सुन लिया!" पावका ने खिड़की की ओर देखते हुए ही उत्तर दिया। "सामूहिक खेत में मेरा क्या है? मुझे क्या मिलता है?"

"क्या मिलता है? बड़ी जल्दी भूल गये, पावेल मिखाइलोविच! यह घर सामूहिक खेत से नहीं मिला? सन् '४१ में तुम्हें गाय कहां से मिली थी? इधर आंगन में लकड़ी का जो चट्टा लगा है, यह तुमने सामूहिक खेत की गाड़ी में नहीं ढोया? तुम्हारी पत्नी पोल्यूखा के बच्चा सामूहिक खेत के जच्चाखाने

में नहीं हुआ था? उधर पीछे बगिया में जो गुसलखाना बना है, उसके लिए लकड़ी सामूहिक खेत से नहीं मिली थी?"

अपनी नज़र खिड़की से हटाये बिना कोनोपातोव ने गुनगुनाया: "यह सब बहुत बार सुन लिया है..." जैसे यह सब सुनते-सुनते वह ऊब गया हो।

"बहुत बार सुन लिया है, तो अब नहीं कहेंगे। जो कुछ कहना होगा वह फ़ार्म की सभा में ही कहेंगे।" वासिली उठ बैठा। "चलो वालेंतिना, चलें!"

पावका हिला तक नहीं। तन्दूर के पास के चबूतरे पर सिर इन लोगों की ओर चुपचाप घूमा और निष्पलक आंखों से इन लोगों को जाते हुए देखता रहा।

"हरामखोर! पिस्सू!.." वालेंतिना के साथ लौटते हुए वासिली अपना क्रोध बस में न रख सका। "जैसा बाप, वैसा बेटा!...वह बूढ़ा ही तो सिखाता है उसे?...चोर, भिखमंगा!"

"भिखमंगा कैसे कहते हो उसे?"

"भिखमंगा नहीं तो क्या?...बहुत रुपया कमाया है बेईमान ने मांग-मांग कर! उन दिनों मैं बच्चा था। यह करता क्या था कि जाड़ों में अपनी गाड़ी जोत कर, उसमें ईसा की मूर्ति रख कर, गिरजे की मरम्मत कराने के नाम, गांव-गांव भीख मांगता फिरता था। महीने दो महीने बाद लौट आता। मूर्ति फिर सिंहासन पर पहुंच जाती; पैसा तिजोरी में पहुंच जाता; बखारें अनाज से भरी रहतीं—सब कुछ चकाचक! फिर बोवाई का मौसम आता तो खेती में जुट जाता, फ़सल काटने के मौक़े पर फ़सल काटता और फिर गांव-गांव वही: 'दो कुछ धरम के नाम पर गिरजे की मरम्मत के लिए!'"

"बप्पा! बप्पा!" कात्या चिल्लाती हुई दौड़ी आ रही थी। "बप्पा, कहां गये थे तुम? मैं तुम्हें सब जगह देख आई! ज़िला केन्द्र से एक आदमी आया है। घर में बैठा है। भेड़ की खाल का कोट पहने है। अन्दर एक काला कोट भी है। बप्पा, उसकी पतलून के पीछे चमड़ा लगा है। बप्पा, घुटनों पर भी चमड़ा लगा है।" कात्या सब कुछ जल्दी-जल्दी बता गयी। "आओ न, जल्दी चलो! कमरे के सामने खड़ा है।"

"चलो, अच्छा हुआ।" वालेंतिना बोली। "कुआं प्यासे के घर आया। सलाह लेने के लिए ज़िला दफ्तर जाने से बचे। सब बातें यहीं तय हो जायेंगी।"

"सचमुच बड़े मौक़े से आया। जल्दी चलो, वालेंतिना अलेक्सेयेवना!"

वालेंतिना क्षण भर को अपने घर गयी, इधर वासिली सीधे घर आ पहुंचा।

मेहमान खाकी कोट और चमड़ा लगी बिर्जिस पहने था। चेहरा लाल-लाल! प्रतीक्षा में वह कोठरी में चलहक़दमी कर रहा था।

"कामरेड प्रधान, बहुत इन्तज़ार करवाते हैं आप लोगों से।" कुछ चिड़चिड़ाहट से मेहमान बोला। उसके घुटनों तक काले चमकदार बूट चढ़े हुए थे। एक स्टूल को ठोकर से खड़खड़ाते हुए आगे बढ़ा कर उसने वासिली से बैठने को कहा।

वासिली को मेहमान की ऐंठ भली न लगी। पराये घर में ऐसे बरताव कर रहा था, जैसे घर नहीं रेल का स्टेशन हो।

वासिली ने अपना कोट उतारा, उसे खूंटी पर लटकाया और फिर बोला :

"माफ़ कीजिए, आप कौन हैं? मैं आपको जानता नहीं हूं।"

"नाम तो सुना होगा?...मेरा नाम त्रावनित्सकी है। मैं ज़िले की कार्यकारिणी समिति में हूं।"

"कुछ याद नहीं आ रहा! मैं समिति के प्रधान कामरेड बाबायेव और उनके सहायक बेल्किन को तो जानता हूं। पर, आपका नाम पहले कभी नहीं सुना।"

वासिली कोनोपातोव-परिवार से चिढ़ा हुआ आया था। मेहमान के व्यवहार से उस चिड़चिड़ाहट में और भी घी पड़ा। वह अपने स्वभाव को जानता था। कहीं कुछ और न मुंह से निकल पड़े इस ख़याल से वह अपने को बहुत संतुलित रख कर बातें कर रहा था।

"आप सफर से आये हैं! आपने कुछ खाया-पिया या नहीं? मेरी घरवाली ने कुछ दिया या नहीं?"

"अंडे का चीला बना रही हूं। थोड़ा औटा हुआ दूध भी लाऊं?" अवदोत्या हड़बड़ाकर बोली।

"अंडे रहने दो। दूध पी लूंगा। मुझे जल्दी आगे जाना है। रास्ते में तुम्हारे यहां उतर गया, कामरेड प्रधान! मैं तुम्हारा अस्तबल देख आया हूं... घोड़ों की हालत बहुत ही बुरी है। मैंने खुद देखा है, दो घोड़ों की पीठ पर साज के ज़ख्म हैं। यह हौलनाक हालत फ़ौरन ख़तम करनी चाहिए। हां लकड़ी का काम भी जैसे हो रहा है, वह मुझे पसंद नहीं है। तुम्हारे यहां सिर्फ़ पांच गाड़ियां हैं। दो और होनी चाहिएं!...तुम्हें ज़िला कमिटी के सामने इसका जवाब देना होगा। मैंने जो कुछ देखा है वह खुद कामरेड बाबायेव को बताये बिना नहीं मानूंगा!"

वासिली चुप रहा। वह जानता था कि वह बोला तो मुंह से आग ही बरसेगी। त्रावनित्सकी ने कमरे का एक चक्कर लगाया और वासिली के सामने आ खड़ा हुआ। बड़प्पन की भावना से अकड़ते हुए आंखें सिकोड़कर उसने वासिली को देखा, जैसे उसे तौल रहा हो। फिर, मानो यह सोचकर कि

इस देहाती प्रधान से क्या बात की जाय, वह घूमकर पहले जैसी लापरवाही से चहलक़दमी करने लगा। कुछ पल बाद जरा नरम स्वर में बोला :

"हां, भेड़ों का बाड़ा अच्छा दिखाई देता है। कुछ तारीफ़ के लायक भी है! काराकुली मेमने काफ़ी खूबसूरत हैं। दो मेमने मैं बाल-मंदिर के लिए लूंगा, एक मैं अपने लिए खरीदना चाहता हूं।"

मेहमान की अकड़ और ऐंठ तथा उसके बड़प्पन से बोलने के ढंग से वासिली का क्रोध भड़क ही उठा।

"हूं, तो यह बात है! भेड़ों की जोड़ी चाहिए इन्हें!" वासिली ने सोचा। "बहुत देखे हैं तुम्हारे जैसे! पतलून में चमड़ा क्या चिपका लिया, अपने आपको यहां का मालिक समझ बैठे। ठहरो बच्चू, अभी पता चलता है कि कितने गहरे में हो!"

वासिली के चेहरे पर डरावनी मुस्कराहट और उसके फड़कते नथुनों को देख कर डरी हुई अवदोत्या समझ गयी कि अब क्रोध का विस्फोट होने ही वाला है। वासिली बोला :

"अच्छा! हां! तो तीन काराकुली मेमने चाहिए आपको? अपनी पसंद के? ज़रूर, ज़रूर! कुछ मुर्गियां-बत्तखें वग़ैरा नहीं चाहिएं? बड़ी खूबसूरत हैं, समझे आप, मोटी-मोटी! एक जोड़ी बत्तखें भी लेते जाइये!"

"हां, हां! कोई बात नहीं! लेता जाऊंगा..." त्रावनित्सकी ने उत्तर दिया और उसकी झुकी हुई भौंहों के नीचे छिपी आंखों में और भी नरमी आ गयी।

"ज़रूर···अभी एक मिनट में लीजिए···" वासिली अपने को बस में किये रहने की पूरी कोशिश करता हुआ बोला। वह जानता था कि अब उसे अपने को रोक सकना संभव नहीं है।

"कामरेड त्रावनित्सकी, क्या बस इन मेमनों के लिए ही आपने गांव भर में मेरे लिए ढिंढोरा पिटवाया था या कोई और भी बात मुझसे कहनी है?"

त्रावनित्सकी चकित रह गया :

"जरा इन नवाब साहब को तो देखो! क्यों, आपके चैन में खलल डाला मैंने?" वह बोला।

"देखो, यह अफसरपना मुझे मत दिखाओ! मैं फ़ार्म का प्रधान हूं।" वासिली गरज उठा। "मेमने बहुत पसन्द आये आपको, क्यों? वह मेमने और बत्तखें दिखाऊंगा कि इस गांव का रास्ता हमेशा के लिए भूल जाओगे! चलो, निकलो यहां से!"

वासिली ने कोठरी का दरवाज़ा खोला और आवनित्सकी का भेड़ की खाल का कोट उठाकर बाहर आंगन में फेंक दिया।

कोठरी का दरवाज़ा खुलते ही ठंडा कोहरा भीतर घुस आया। लकड़ी की दीवाल के उस ओर अपने खटोले में पड़ी नन्हीं दुन्या सर्दी से घबराकर रोने लगी। वासिली के कान बज रहे थे। उसका ध्यान उधर नहीं गया। क्षण भर के लिए आवनित्सकी के चेहरे पर घबराहट की छाया आई और फिर बाहर से उसकी तेज़ और क्रोध भरी आवाज़ सुनाई दी:

"देखूंगा! तुम्हें इसका जवाब देना होगा...!"

वालेंतिना वासिली के यहां पहुंची तो देखा कि खाने की मेज़ पर बैठा वासिली मज़े से गोभी की कांजी पी रहा है। उसकी कमीज़ के बटन गले के पास खुले हुए थे।

"मेहमान कहां है?" वालेंतिना ने पूछा।

"गया।"

"कौन था?"

"था कोई गधा..."

वासिली को बात करने की मुद्रा में न देख वालेंतिना उठकर चली गयी।

रात को वालेंतिना तन्दूर के पास बने चबूतरे पर लेटी हुई थी। लेना मेज़ पर बैठी पढ़ रही थी। वालेंतिना की दादी वासिलिसा बिस्तर लगा रही थी।

अल्योशा बाहर से आया। उसकी खाल की टोपी और भेड़ी की खाल के कॉलर पर बहुत सी बरफ़ चिपकी हुई थी।

टोपी से बाहर निकले बालों के गीले गुच्छे में भी बरफ़ का चूरा भरा हुआ था। उसका चेहरा बरफ़ से भीग कर लाल हो गया था जिससे आंखों के कोयों की सफेदी और भी चमक रही थी।

वालेंतिना ने आहट पायी तो सिर उठा कर देखा।

"ये लो, आ गया!" बनावटी क्रोध से वह बोली। "लक्कड़ कहीं का, जैसे लकड़ी के कुन्दे में आंखें गड़ी हों!"

लेना को वालेंतिना का स्वागत का यह ढंग विचित्र सा लगा, पर अल्योशा को नहीं! वह ज़ोर से हंस पड़ा।

"हंस क्यों रहा है रे?" वालेंतिना ने गुस्से से डांटा!

तंदूर के चबूतरे से उतर कर पांव में स्लीपर फंसा कर वह भाई के पास आ गयी और उसके माथे पर लटके बालों के गुच्छे को पकड़ कर बोली:

"बुद्धू! चल, बैठ कर खाना खा!"

पैरों में सलीपर, फूला-फूला शॉल कंधों पर, गोल चेहरा, फूले-फूले गाल, बड़ी-बड़ी आंखें, छोटा सा मुंह, कोमल और चंचल—वालैंतिना बिलकुल बिल्ली जैसी लग रही थी ! उसने लेना को सम्बोधित किया :

"लेना ! मालूम है यह घोड़ा कहां से आ रहा है ? देहाती नौजवानों की रात की पाठशाला से, जो यहां से पांच किलोमीटर दूर है ! एक बरस से इस ज़िद्दी लड़के को लिख रही हूं कि मेरे साथ उक्रेन चला चल ! आज भी दो घन्टे सिर मारा है ! वहां रहता और स्कूल में पढ़ता । खूब बड़ा मकान है, पढ़ने-लिखने का आराम है । दिल चाहता है, इसके दो चांटे लगाऊं ।" घूम कर उसने भाई की ओर देखा ।

"क्यों नहीं जाना चाहते हो ?" लेना ने पूछा ।

"क्या ज़रूरत है ?" अल्योशा ने कुछ क्रोध से उत्तर दिया । "मैं बच्चा हूं या निकम्मा हूं जो रिश्तेदारों के सिर बोझ बनूं ?"

"क्या फ़ायदा इसे समझाने से ? कितना समझा चुकी हूं इसे ? यह तो निरा पत्थर है । इसके भेजे में कुछ नहीं पैठता । मैं इससे तंग आ गयी हूं । ...हट ! लक्कड़ कहीं का !"

वालैंतिना ने अपनी छोटी-छोटी मुट्ठियों से अल्योशा की पीठ पर मुक्कों की बरसात शुरू कर दी । अल्योशा ने एक ठंडी सांस ली, चम्मच मेज़ पर रख दिया और चुप बैठ गया । वह तब तक बैठा मुस्कराता रहा, जब तक वालैंतिना थक न गयी ।

"देखो तो, हंस रहा है बेशरम ! मेरे तो हाथ टूट गये और इस पर कोई असर ही नहीं हुआ । कोई क्या समझाये इसे ?" सहसा उसने अपना भाव बदल दिया । अल्योशा के गले में बाहें डाल कर, उसके गाल से गाल सटा कर बोली : "मेरा भैया ! मेरे साथ उक्रेन चला चल !"

खाना खाकर अल्योशा लेना के सामने मेज़ पर बैठ गया और स्कूल की किताबें मेज़ पर रख लीं ।

लेना की नज़र उसके चेहरे पर पड़ी : चौड़ा चिकना माथा, महीन भौंहें और लम्बी पलकें ।

अपनी कापी के पृष्ठों पर निगाह जमाये, अल्योशा धीमे-धीमे पढ़ने लगा "...यदि किसी त्रिकोण का एक कोण सम हो तो शेष दो कोणों का योग...।" अल्योशा की लगन का प्रभाव लेना पर भी पड़ा । वह और अधिक लगन से अपना काम करने लगी । अल्योशा के साथ पढ़ने में उसे खुशी हो रही थी । दोनों एक ही दवात में अपने-अपने क़लम डुबो कर लिख रहे थे । दोनों की किताबें एक ही मेज़ पर रखी थीं । कोई भी दूसरे के काम में बाधा नहीं डाल रहा था !

कभी दोनों के सिर एक साथ उठ जाते और आंखें चार हो जातीं, तो अल्योशा के होठों पर मुस्कान फिर जाती।

वालेंतिना अपनी जगह बैठी दोनों को देख रही थी।

"लेना, मैं कहती हूं तू यहां हम लोगों के साथ ही क्यों नहीं रह जाती? दोनों एक साथ बैठ कर पढ़ा करोगे तो अच्छा रहेगा।"

"अरे हां, ठीक तो है।" अकस्मात अल्योशा उत्साह से बोल उठा। "पोल्या के यहां क्या रखा है? कल मैं तुम्हारा सामान उठा लाऊंगा। सब तै हो गया!"

दादी ने भी सहयोग दिया: "हां, सामने वाली कोठरी के पलंग को ज़रा तंदूर के पास खिसका देंगे! बस, जगह हो जायगी।"

लेना का संकोच कभी का दूर हो चुका था। अपना काम समाप्त कर वह वालेंतिना के पास जा लेटी और उसके कंधे पर अपना गाल टिका दिया। वालेंतिना उम्र में लेना से कुछ ही बड़ी थी; क़द में उससे छोटी और दुबली-पतली थी। परन्तु, लेना को वह बड़ी सशक्त और मां की तरह लगती थी।

"अगर वाल्या यहीं रहती तो कितना अच्छा होता...!" यही सोचती-सोचती वह सो गयी।

वालेंतिना उग्रेन पहुंची तो आन्द्रेई दौरे से नहीं लौटा था। वह अकेली ही घर जा पहुंची।

"आखिर घर पहुंच ही गयी...! घर...! मेरा घर...!" वह दौड़-दौड़ कर कमरों का चक्कर लगा रही थी। 'घर' शब्द से उसके शरीर में रोमांच हो आता था।

कई बरस बाद वालेंतिना को अपने घर में आने का संतोष मिला था।

युद्ध से पहले वह गोर्की के कृषि विद्यालय में पढ़ती थी और आन्द्रेई देहात में काम करता था। उनका जीवन, विरहियों का जीवन था।

फिर युद्ध आया। युद्ध ने दोनों को अलग-अलग मोर्चों पर भेज दिया। युद्ध समाप्त हुआ तो वालेंतिना विद्यालय को लौट गयी और आन्द्रेई देहात में अपने काम पर चला गया। फिर वही विरह का जीवन! विद्यालय की पढ़ाई पूरी कर लेने पर वालेंतिना को उग्रेन में ही काम मिल गया। हमेशा हमेशा के लिए आखिर एक साथ घर में रहने का अवसर आया! उसका चिर-पोषित स्वप्न साकार हुआ—"हमेशा के लिए एक साथ घर में!"

विदाइयां लेने और बिछोह के दिनों का अन्त हो गया। अब वह प्रतिदिन सुबह उठने पर अपने पास ही, तकिये पर, आन्द्रेई का मुंह देखा करेगी। वह उसे कभी अपनी आंखों से दूर नहीं होने देगी।

वह खुशी में हंस पड़ी। मन में भरी उमंग से वह पास पड़ी कुर्सी पर धम्म से बैठ गयी और अपने आप ही बोल उठी :

"आखिर मैं घर पहुंच ही गयी! हमारा घर! मेरा और आन्द्रेई का घर!"

उठ कर उसने एक नया झालरदार एप्रन कमर से बांधा और कमरों को ठीक करने लगी।

उसने सोचा, आन्द्रेई के लौटने से पहले ही सब कुछ सजा कर खाना तैयार कर मेज़ पर रख दूं। मेज़ पर उसने खूब सफेद मेज़पोश बिछाया, सामान रखने की मेज़ पर भी एक कढ़ा हुआ सफेद कपड़ा बिछा दिया और लैम्प पर रेशम का नया शेड लगा दिया।

वालेंतिना अभी सब कुछ तैयार नहीं कर पायी थी कि भड़ाक से दरवाज़ा खुला। आन्द्रेई दरवाज़ा बन्द करना भूल, ओवरकोट और टोपी पहने ही, झपटता हुआ आया और वालेंतिना को बाहों में भर लिया।

"ठहरो तो, ठहरो तो...! ज़रा हाथ तो धो लूं...! देखो कितने गन्दे हो रहे हैं!" वालेंतिना कहे जा रही थी और अपने को छुड़ाने की कोशिश कर रही थी। पर आन्द्रेई नहीं माना। वह वालेंतिना के होंठ, आंख, नाक, सिर, हाथ—सभी को चुम्बनों से पाटे दे रहा था।

"आन्द्रेई...! पागल हो गये हो...? हाथ तो धो लूं...! कम से कम यह एप्रन तो उतार लेने दो...!"

किसी तरह वालेंतिना आन्द्रेई की बाहों से फिसल कर निकली, जाकर दरवाज़ा बन्द किया, उसका कोट उतरवाया और बोली :

"ज़रा शांति से बैठो! सर्दी से थके हुए आये हो! मैं खाना लेकर आती हूं...।"

"ऐसी तैसी खाने की!...वाल्या, प्यारी! कितना बुरा लगता था तेरे बिना।"

वालेंतिना ने किसी तरह आन्द्रेई को जब तक खाने की मेज़ पर बैठाया तब तक खाना ठंडा हो चुका था। वह खाने को गरम करने गयी तो आन्द्रेई भी उसके पीछे-पीछे रेंगता रहा।

दोनों मेज़ पर बैठ गये, तो वालेंतिना ने कहा :

" हां तो आन्द्रेई, अब हम लोग साथ-साथ घर में हैं। यह सोचकर ही कितना अच्छा लगता है कि अब हम लोगों को अलग-अलग रह कर कलपना नहीं पड़ेगा।"

आन्द्रेई के चेहरे पर विषाद और विमर्ष की एक छाया सी फिर गयी। लेकिन वालेंतिना का ध्यान उस ओर नहीं गया। वह कहती गयी :

" ज़रा सोचो तो! सुबह आंख खुलते ही रोज़ तुम्हें पास ही देखा करूंगी। हर रोज़ अपने पास ही!" वालेंतिना प्रसन्नता से हंस रही थी। आन्द्रेई ने हाथ का कौर तश्तरी में रख दिया।

" क्यों? क्या खाना अच्छा नहीं बना?"

" नहीं, नहीं...बहुत स्वाद है!"

आन्द्रेई ने सफेद मेज़पोश और आलमारी पर बिछे कढ़े हुए कपड़े, और लैम्प पर लगे शेड पर निगाह डाली। एक चुभन सी उसके मन में उठी।

" वाल्या!"

" हां?"

आन्द्रेई बोल न पाया। वह वालेंतिना का दिल अभी से नहीं तोड़ना चाहता था।

उसने सोचा, कुछ देर बाद समझा कर कहूंगा। समझ लेगी, तो बुरा नहीं मानेगी।

आन्द्रेई ज़िले के काम की बाबत बातें करने लगा। वालेंतिना आराम-कुर्सी पर गुड़ी-मुड़ी सी लेटी सुन रही थी।

आन्द्रेई बहुत उत्साह से बातें कर रहा था। उसकी आदत थी कि अपनी बातों में डूब जाता था तो कुर्सी से उछल-उछल पड़ता था। अपने हाथ-पैरों और आंखों की भाव-भंगिमा से वह उन लोगों का व्यंग-चित्र उपस्थित कर देता जिनके बारे में बातें करता होता। फिर, ज्यों ही कोई नया संस्मरण सहसा मस्तिष्क में आता वह बातें बन्द करके, ठहाका मार कर हंस पड़ता।

वालेंतिना उसकी ओर टकटकी लगाये, उसी में खोयी बैठी थी। अपने कार्य और अपनी जनता के प्रति आन्द्रेई के उत्साह को वह आंखों से आत्मसात कर रही थी।

जब दोनों जी भर कर बातें कर चुके तो आन्द्रेई वाल्या की कुर्सी पर जा बैठा और उसके कंधे पर हाथ रख कर बोला :

" सुनो, एक बात कहनी है। देखो, घबराना नहीं! ध्यान से मेरी बात सुनो और मुझे समझने की कोशिश करो—जैसे हमेशा समझती रही हो!"

वाल्या ने चौंक कर उसकी ओर देखा।

आन्द्रेई से कुछ कहते नहीं बन रहा था। उसके शब्द शुष्क और अधिकारपूर्ण जान पड़ रहे थे।

"देखो, मेरी वाल्या...! मैं कह रहा था कि पार्टी के काम की हालत यहां अच्छी नहीं है। ज़िले में काम को संगठित करने के लिए कम्युनिस्टों को देहातों में जाना होगा...। तुम्हें तो मालूम है, सभी जगह ऐसा ही करना पड़ रहा है।" आन्द्रेई रुका, उसके कंधे को थपथपाया और उसे अपने और समीप दबा कर बोला : "तुम्हारे गांव के पहली मई सामूहिक खेत की हालत सबसे गयी-बीती है। हां, तो वहां सिर्फ़ दो कम्युनिस्ट हैं। पार्टी का संगठन तीन मेम्बरों के बिना नहीं बन सकता। वहां पार्टी का संगठन आरम्भ करने के लिए एक और मेम्बर की ज़रूरत है... और फिर... फिर वहां एक कृषि-विशेषज्ञ की भी ज़रूरत है।... हमारे पास ऐसा कोई है नहीं जिसे वहां भेजें।...यह तो एक बात हुई...दूसरे...यहां उक्रेन में अभी कृषि विशेषज्ञ की कोई जगह खाली नहीं है..."

आन्द्रेई और कुछ न कह सका।

वालेंतिना समझ गयी। पर, उसे इस बात पर विश्वास नहीं हो रहा था कि आन्द्रेई खुद उसे अपने पास से दूर भेज रहा है। ऐसे दुर्भाग्य और ऐसी क्रूरता पर उसे विश्वास नहीं हो रहा था। घबराहट में उसके मुंह से निकला :

"तुम...? तुम मुझे वहां भेजना चाहते हो ...?"

"वाल्या, प्यारी! ज़रा समझने की कोशिश करो। तुम्हीं बताओ, क्या किया जाय!...तुम कम्युनिस्ट हो, कृषि विशेषज्ञ हो, वहां की रहने वाली हो, उस जगह को सबसे अच्छी तरह समझती हो! और किसे भेजना ठीक होगा? तुम्हें वहां भेजने में एक ही नुकसान है—मेरी पत्नी मुझसे दूर चली जायेगी। पर सोचो, अगर तुम मेरी पत्नी न होतीं तो तुम्हें भेजता या नहीं? तो, अब कैसे न भेजूं? अगर तुम्हें वहां न भेजूं तो किस मुंह से दूसरों से वहां जाने को कहूं? तू तो समझती है, मजबूरी है। और कोई रास्ता ही नहीं है। जो लोग यहां बरसों से काम कर रहे हैं, उन्हें यहां से हटाकर पहली मई फ़ार्म भेज दूं और तुम्हें यहां रख लूं, इसलिए कि तुम मेरी पत्नी हो? यह कैसे हो सकता है?"

वाल्या का चेहरा पीला पड़ गया। आन्द्रेई की ओर देख कर बोली :

"इसका मतलब है, फिर जाना पड़ेगा? फिर अकेले रहना पड़ेगा? यहां नहीं रहूंगी?" वाल्या ने कमरे में नज़र दौड़ा कर कहा : "मैं तो बहुत खुश हो गयी थी...मैं फूली नहीं समा रही थी..."

सहसा आन्द्रेई ने वह दृश्य देखा जिसकी उसे लेशमात्र आशंका नहीं थी। उसकी वाल्या—जिस पर उसे इतना विश्वास था—सहसा उठी और

झपटकर आलमारी पर बिछे कढ़े कपड़े को फाड़ डाला, उसे घूरती रही और फिर उसमें मुंह छिपा कर रो उठी।

आन्द्रेई हैरान था। इससे पहले उसने वाल्या को कभी रोते नहीं देखा था। उसे लगा कि बरसों तक विरह और विछोह के दिन बिताने के बाद वाल्या कितनी आशा से घर बसाकर उसके साथ रहने के लिए आई थी! उससे फिर दूर चले जाने के लिए कहना, अपने पति के साथ रहने की उसकी साधारण और स्वाभाविक इच्छा की पूर्ति का अवसर उससे छीन लेना, वास्तव में क्रूरता थी! इन सुन्दर कपड़ों को उसने कितनी साध और उत्साह से तैयार किया था! अब वह उन्हीं में मुंह छिपा कर रो रही थी! आन्द्रेई के लिए यह दृश्य असह्य हो गया।

उसने बहुत कठिनाई से अपने-आपको वश में किया।

"आखिर हो क्या गया है?" अपने मन को उसने समझाया। "सब ठीक-ठाक तो है। हम लोग बेमतलब परेशान हो रहे हैं। वाल्या को यहां से केवल बीस किलोमीटर दूर ही तो रहना है। मोटर है, हम लोग हफ्ते में एक बार मिल सकते हैं। हमें एक साथ ही काम करना है। हम लोग सुखी हैं और सुखी रहेंगे। क्यों बेकार में अपने-आपको परेशान करें, क्यों दिल को जलायें।"

आन्द्रेई वाल्या के पास गया और उसके कंधों को प्यार से थपथपाने लगा। वाल्या प्रतीक्षा कर रही थी कि आन्द्रेई कहेगा: "अच्छा, घबराओ नहीं! मत जाना! बस?..." पर आन्द्रेई चुप था। वह चाहता था कि वालेंतिना खुद ही समझ जाये और शान्त हो जाय। वाल्या ने आंखें उठा कर उसके चेहरे की ओर देखा। आन्द्रेई के पतले कोमल होंठ भिंचे हुए थे और आंखें शान्त थीं। वह समझ गयी कि उनसे न तो सांत्वना की आशा की जा सकती है और न लाड़-दुलार की। वह चाहता था कि वह खुद ही संभले और तब तक चुप खड़ा रहा जब तक वालेंतिना ने अपने पर काबू न पा लिया। वाल्या उसकी दृढ़ता से खूब परिचित थी, ऐसी दृढ़ता जो कभी-कभी निर्दयता सी जान पड़ने लगती थी। पर आन्द्रेई की ये ही बातें तो उसे इतनी अच्छी लगती थीं; उसकी सभी बातें वाल्या को अच्छी लगती थीं!

वाल्या ने आंसू पोंछ डाले और अपना गाल आन्द्रेई की गर्दन पर रख कर बोली:

"सचमुच आन्द्रेई, तुम्हीं से यह हो सकता है! सात बरस से राह देख रहे थे कि बीवी आयेगी। बीवी आई तो एक दिन में ही उसे फिर चलता करने लगे! यह तुम्हीं से हो सकता है...!"

एक ठंडी सांस लेकर वह मुस्करा दी।

"कब भेजोगे मुझे ?"

आन्द्रेई को साहस नहीं हो रहा था कि वह कह दे कि जल्दी ही जाना होगा।

"सुनो प्यारी वाल्या ! पहले तुम एक-दो दिन के लिए वहां जाकर देख आओ। अपने-आप ही देख लेना कि कब काम शुरू करना ठीक रहेगा !"

आन्द्रेई का यही ढंग था। वाल्या पर ज़िम्मेदारी डाल कर उसके स्वाभिमान को जगा देना ! फिर वह स्वयं ही निर्बलता न दिखाने या काम में पति से पीछे न रह जाने के लिए व्यग्र हो उठती थी। उसकी इच्छा होती थी कि आन्द्रेई को होड़ के लिए ललकारे और उसे पीछे छोड़ कर आगे बढ़ जाये।

"मैं वहां की हालत देख भी आई हूं !" वाल्या ने चुनौती सी देते हुए कहा। "मेरी राय पूछो तो मुझे कल ही चले जाना चाहिए !"

अब आन्द्रेई के विस्मित होने की बारी थी। वह हक्का-बक्का रह गया।

"कल ?... नहीं-नहीं, यह कैसे हो सकता है ?...कल ही क्यों ? नहीं-नहीं...हफ्ते दो हफ्ते तो यहां रहो... नहीं, कल नहीं जाने दूंगा।"

वाल्या ने आन्द्रेई के दृढ़, मज़बूत चेहरे पर व्यग्रता और घबराहट की उदासी देखी। उसने सोचा—किसी और के सामने ऐसी उदासी थोड़े ही दिखा सकता है ! उसे अपने अधिकार का सन्तोष हो रहा था।

"तो, तुम मुझे प्यार करते हो ?"

"नहीं तो क्या, पगली ? कल नहीं जाने दूंगा तुझे...कल तेरा जाना मुझसे बरदाश्त नहीं हो सकता।"

आन्द्रेई को नींद आ गयी। वालेंतिना उसकी बगल में लेटी-लेटी सोचती रही...उसे इस तरह भेज देना ! ऐसी ही बातों के लिए तो वाल्या का मन आन्द्रेई के प्रति आदर और प्यार से भर जाता था।...तभी तो सब लोग उसे आदर और सम्मान से 'पेत्रोविच' कहते थे। तमाम मंत्रियों में वही ऐसा था जिसे इस प्रकार सम्बोधित किया जाता था। उसे इस तरह सम्बोधित करना उसके बड़प्पन, उसकी परिपक्वता और उसकी प्रतिष्ठा को स्वीकार करना था..!

आन्द्रेई का हाथ लेकर वाल्या ने अपने गाल पर दबा दिया। "तू मेरा है ! बस तू..तू . तू...!" आन्द्रेई के अपना होने में कोई सन्देह न होने पर भी उसे अपना कहने में वाल्या को सन्तोष हो रहा था।

आन्द्रेई का प्यार और नैकट्य वालेंतिना के लिए कितने सन्तोष और अभिमान की बात थी ? वही तो उसका आदर्श था। उसकी कल्पना की सभी बातें उसमें मौजूद थीं ! वह एक सच्चा इन्सान था !

सात बरस पहले जब उसकी सहेलियां और उसके सम्बंधी उससे पूछते कि आखिर आन्द्रेई में ऐसी क्या बात थी कि वह उस पर दीवानी हो गयी तो वह उत्तर सोचती रह जाती थी।

"क्या वह बहुत सुन्दर हैं?" सहेलियां पूछतीं।

"नहीं तो!" उसे कहना पड़ता।

"बहुत होशियार हैं? प्रतिभावान हैं?"

वाल्या ऐसा ही समझती थी! पर क्या बताये कि कौन सी प्रतिभा है उसके आन्द्रेई में?

उसकी प्रतिभा जीवन के प्रति अभिरुचि में प्रकट होती थी। वह जो भी करता उसमें पूरी तरह डूब जाता था—चाहे वह दैनिक कार्य हो, लोगों का नेतृत्व करना हो, प्रेम हो, मित्रता हो, अध्ययन हो, हंसी-मज़ाक हो, क्रोध हो, चिन्तन हो अथवा अपने विचारों को कार्य रूप में परिणत करना हो। क्रियाशीलता के लिए उसमें एक आन्तरिक लगन थी। जीवन की सरिता में अपनी दृढ़ पतवार डाल देने के लिए वह सचमुच ही उतावला रहता था।

नींद में भी आन्द्रेई का हाथ हिल रहा था, जैसे कुछ पकड़ना चाहता हो! वालेंतिना ने उसका हाथ अपने गाल पर दबा लिया और उससे लिपट गयी:

"बस तू मेरा है.. मुझे और कुछ नहीं चाहिए!"

आन्द्रेई जाग उठा। पन्द्रह मिनट की गहरी नींद भी उसके लिए काफी होती थी। वह फिर दिन भर के काम के लिए ताज़ा हो जाता था। अपना हाथ वाल्या के गाल पर देख कर उसके आशय को समझ कर बोला:

"तुम सोयी नहीं, वाल्या?...लम्बे सफ़र से थकी हुई आई हो! तुम्हें जल्दी ही जाना भी है। और मुझे देखो, मैं लक्कड़ की तरह बेहोश सोता रहा!"

वाल्या ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसका आन्द्रेई इस समय उसके पास था। इससे अधिक उसे और क्या चाहिए था?

६. "कूकी"

वालेंतिना पहाड़ी पर चढ़ कर आंधी से गिरे हुए एक पेड़ के तने पर बैठ कर सुस्ताने लगी। उसके लम्बे नरम फर के कोट पर कमर तक बरफ़ चिपकी हुई थी। सुबह से वह बरफ़ से भरे खेतों में चक्कर लगाती हुई मिट्टी

के नमूने इकट्ठे कर रही थी। कंधे से लटका हुआ उसका थैला मिट्टी के ढेलों से भरा था। थैले का फीता, मोटे कोट की गद्दी में से भी, कंधे पर गड़ रहा था।

कंधे को आराम देने के लिए वालेंतिना ने थैला उतार कर नीचे रख दिया।

आज बदली थी और कुछ गरमी भी। बादलों में ढंका सूरज दूर तक फैले जंगल के वृक्षों की चोटियों पर अटका जान पड़ रहा था। पश्चिम की ओर काले-काले जंगल अर्ध-चंद्राकार खड़े थे। पूर्व की ओर फैले खेतों पर बरफ़ की चादर फैली थी। चारों ओर सब कुछ शान्त और निश्चल था। इस बियाबान में सिर्फ़ एक पतली सी फुनगी, बरफ़ से बाहर सिर निकाले, हवा के झोकों में अकेली, हिल-डुल रही थी। दूर तक फैले सुनसान खेत बरफ़ की नीली-नीली लहरों में आत्म समर्पण किये निश्चेष्ट लेटे थे। कभी-हवा के झोंकों के साथ आता एक विचित्र प्रकार का, आवेशपूर्ण, और देर तक गूंजने वाला, स्वर सुनाई देता था। शायद, यह वायु का ही करुण संगीत था। या, शायद कहीं बरफ़ के बोझ को तोड़ कर किसी निर्झर का जल फूट निकला था और वृक्षों की जड़ों के बीच से कल-कल शब्द करता हुआ बह रहा था।

कहीं दूर से आता यह स्वर और बरफ़ पर हिलती हुई फुनगी, दोनों ही, एकाकी और असहाय थे।

झाड़ियां भी अपनी सूखी डालें फैलाये मानो किसी की प्रतीक्षा में खड़ी थीं।

झाड़ियों की ओर आंखें किये वालेंतिना सोच रही थी : "अभी कुछ दिन पहले इधर से गुज़री थी तो सोचा था तुम्हें खूब संवारूंगी, तुम्हें फूलों से इतना लाद दूंगी, जितनी तुम कभी न लदी होगी।...जाने तुम्हें सजा भी पाऊंगी या नहीं? जाने क्या हाल रहा है तुम्हारा? जाने आगे क्या हाल हो?"

उस पहाड़ी पर से वालेंतिना की नज़र जहां तक जा सकती थी सब उसी की धरती थी—गांव सोवियत की धरती थी! वह सोवियत की कृषि-विशेषज्ञ थी।

सामने के खेत किसी अनपढ़ी, नई पुस्तक के पृष्ठों की तरह, उसके सामने फैले हुए थे। हर खेत का अपना इतिहास था। उसका भूत, वर्तमान और भविष्य था! वालेंतिना को इन सब का अध्ययन—जैसा कि धरती-विज्ञान के प्रोफेसर साहब कहा करते थे—समय और स्थान के परिमाणों का खयाल रखते हुए, करना था। फ़ार्म में आये वालेंतिना को दो दिन हुए थे। दोनों दिन वह धरती से सम्बंधित कागज़ों की जांच करती रही थी। यहां बदल-बदल कर फसलों की बोवाई की व्यवस्था गड़बड़ हो गयी थी। खेतों की फसल से सम्बंधित कागज़ भी नहीं रखे गये थे। यह जान लेना कठिन था कि कब

और कहां क्या बोया गया था और कैसी खाद डाली जाती रही थी। खेत के प्रधान और टीम-लीडरों से मिल कर ही वह कुछ जान पायी थी। कभी-कभी उसे मालूम होता कि जिस ज़मीन में जौ की फसल हुई थी उसी में राई बो दी गयी थी। चारे के खेतों में झाड़ियों के जंगल उग आये थे। वहां लगातार चरी ही बोयी जाती रही थी। कुछ खेत बरसों से खिल्ले पड़े थे, जिससे धरती पथरा गयी थी।

"चारे के खेतों में लगातार चारा ही क्यों होने दिया गया है?" उसने पूछा था।

"क्या करते," उत्तर मिला था, "वहां की धरती बड़ी कड़ी है, उसे जोतना नयी ज़मीन तोड़ने के बराबर है। इसीलिए हमने पहले उसे जोता नहीं; फिर उसमें देवदार की झाड़ियां उग आईं।"

धरती को ठीक करने के लिए फसलों का नया क्रम जारी करना था। इसके लिए गल्ले के सरकारी दफ्तर से सलाह करना भी आवश्यक था। सब जगह की मिट्टी की परीक्षा करना ज़रूरी था। मुनासिब खाद के नुस्खे बनाने थे, सब खेतों के अलग-अलग खाते बनाने थे।

सामने मौजूद पूरे काम की विविधता का ख़याल कर वालेंतिना सिहर उठी। बरफ़ से ढंकी इस निस्सीम धरती को वह कैसे सम्भाल पायेगी? उसे लगा कि वह बहुत नन्ही सी है, इस विस्तार में खो गयी है, और बर्फ़ानी हवा के झोंकों में फंसी अकेली छटपटा रही है।

"यह कोई छोटा-मोटा, मामूली सा, 'घर' नहीं है! मुझे इसके एक-एक चप्पे को समझना है, जैसे गृहस्थिन अपने कोठार के हर आले और हंडिया को समझे रहती है। मैं इतना कर पाऊंगी? कहीं बदनामी ही तो नहीं माथे लगेगी? कौमसोमोल और फ़ार्म के नौजवानों पर ही मुझे उम्मीद है। उन लोगों के बिना तो मेरा भी वही हाल होगा जो बरफ़ में छट-पटाती इस फुनगी का है। काम का कोई ढंग निकालना पड़ेगा। आज की तरह खेत-खेत घूमने और ढेले बीनने निकली तो हो चुका। शुरू में तो यह ठीक है, मगर आगे दूसरे ही ढंग से काम करना होगा।... यह गूंज, बड़ी उदासी भरी है! किस चीज़ की है? यह कहां से आ रही है?"

वालेंतिना पहाड़ी से उतरने लगी। उतराई के आधे के लगभग ही गांव शुरू हो गया। सड़क के किनारे सबसे पहली इमारत स्कूल की थी।

वालेंतिना ज्यों-ज्यों स्कूल के नज़दीक पहुंचती जाती उसे सुनाई देने वाला स्वर और भी स्पष्ट होता जाता। शीघ्र ही इस स्वर की रहस्यमयता लुप्त होने लगी। स्पष्ट जान पड़ता था कि कोई अनाड़ी बांसुरी बजाने का बड़े परिश्रम से यत्न कर रहा है।

स्कूल के ठीक सामने आ जाने पर भेद खुला। स्कूल के दरवाज़े की सीढ़ियों पर मातवेयेविच का नाती स्लावका बैठा था। स्लावका को सब लोग 'मेंढकी' कहकर पुकारते थे। वह घर में बनी एक बांसुरी से सुर निकालने में मगन था। गांव वाले बांसुरी के उदासी भरे स्वरों के कारण उसे "कूकी" कहते थे। स्लावका भेड़ की खाल का नया कोट पहने था। कोट को कसने के लिए पेटी की जगह उसने रूमाल बांध रखा था। वह लोहे की छड़ की तरह तना हुआ बैठा था। उसके फर के कनटोप का एक कान ऊपर को उठा था और उसका सिर एक ओर को झुका हुआ था। उसे देखकर लगता था कि कोई पिल्ला एक कान खड़ा किये बैठा है। स्लावका अपनी संगीत साधना में इतना मग्न था कि वालेंतिना के आने का उसे पता भी न चला। वह बार-बार एक ही धुन बजाये जा रहा था :

रहम कर मुझ पर, रहम वाले...

एक क्षण को वह रुका; और फिर वही :

रहम कर मुझ पर...

स्पष्ट था कि स्लावका की संगीत साधना अभी इससे आगे नहीं बढ़ पायी थी।

"धत्त! क्या दुनिया सिर पर उठा रखी है?" वालेंतिना ने, ऊब प्रकट करते हुए कहा। "पहाड़ी पर और खेतों में जहां भी मैं गयी यही 'गूं! गूं!'। हैरान थी कि कौन रो रहा है। मैं तो डर सी गयी थी।"

स्लावका ने होठों पर से बांसुरी हटा ली। अपनी टोपी को झटका देते हुए कठोर स्वर में बड़े व्यावहारिक ढंग से उसने कहा :

"यह मुझे मेफोदी बाबा ने भेंट की है..."

"धत्त! भाड़ में जाओ तुम दोनों..."

वालेंतिना ने कुछ ज़रूरी बातें लिखने के लिए लेना से दो-एक कापियां लीं, फिर दोनों गांव का बिजली घर देखने चल दीं। वे मालूम करना चाहती थीं कि रात को बिजली आयेगी या नहीं। स्लावका भी उनके पीछे हो लिया।

बिजली घर पड़ोस में ही था।

बुयानोव काफी दिन पहले ही आ गया था और तोशा बुज़िकिन की जगह बिजली घर का काम सम्भाल रहा था। कुछ बरस पहले जब बुयानोव गांव से गया था तब एक मामूली सा दिखाई देने वाला ढीठ लड़का था; चेहरे पर लाल झाइयां सी पड़ी हुई थीं। जब लौटा तो पहचाना ही न जाता था। इस परिवर्तन से लोग विस्मित थे। अब वह साफ-सुथरा, चुस्त नौजवान था;

बिर्जिस पहने हुए और ऐसे फैशन का जाकेट डाटे हुए कि ज़िले भर में कहीं दिखाई न दे। जाकेट कमर पर खूब चुस्त था, कमर के ऊपर का घेरा काफी चौड़ा था; नीचे, किनारे पर, भूरी फर लगी हुई थी। गांव के लाल बुझक्कड़ फ्रोस्का ने बताया था कि यह हंगेरियन जाकेट है। बुयानोव के सिर पर भूरे फर की कासेकों जैसी ऊंची टोपी थी। उसके पीले से चेहरे पर अकड़ और ऐंठ का रौब बराबर बना रहता था। उसकी पत्नी सदा उसके साथ ही चिपकी रहती। बुयानोव की पत्नी देखने में सीधी-सादी थी, नाक पकौड़े जैसी थी। गांव की लड़कियां सोचतीं, क्या अजीब जोड़ी बनी है! बुयानोव और बहू प्रायः साथ-साथ ही बाहर आते-जाते। गांव में अगर वे लुहारखाने को टूटा-फूटा या मुर्गियों के दरबे की टूटी छत देख लेते तो भौंहें चढ़ाकर आपस में ऐसे सिर झटकाते मानो कह रहे हों: "ओह, हम किस नरक में आ पड़े हैं!"

बुयानोव बातचीत में पुस्तकों के बड़े-बड़े शब्द प्रयोग करता तो लोगों को कौतूहल होता। सड़क पर गुज़रते किसी लारी ड्राइवर से बात करने का मौक़ा मिलता तो सड़कें अच्छी होने के लाभ बताने लगता। गोशाला में जाता तो पशुओं को वैज्ञानिक ढंग से खूराक देने और दूध दुहने की मशीनों के सम्बंध में समझाने लगता। गांव के नौजवान लड़के उससे खूब प्रभावित थे। परन्तु, बूढ़ों को उसकी क़ाबिलियत में शक था। बूढ़ा मातवेयेविच भौंह चढ़ाकर कहता:

"दो शहरिये कलावंत हमारे फ़ार्म में मुफ्त की रोटियां तोड़ने आ डटे हैं...!"

बुयानोव के आने के बाद जब बिजली में गड़बड़ होने लगी, और बिजली-घर मरम्मत के लिए कई दिन बंद पड़ा रहा, तो लोगों का सन्देह और भी बढ़ गया। पुराना, बिजलीवाला कारीगर तोशा बुज़िकिन, अपनी हल्की सी बकर दाढ़ी को ऐंठता हुआ रहस्यपूर्ण ढंग से आंखें मटकाता गांव में घूमता तो लगता कि वह कह रहा है: "अरे अभी क्या हुआ है? देखते जाओ..."

रात को बिजली न आने से वालेंतिना और लेना ऊब उठी थीं। मामला क्या है, यह जानने के लिए दोनों बिजली घर पहुंचीं।

तोशा छत पर दिखाई दिया। वह छत की कानस पर टांगें फैलाये बैठा, कानस पर नीला रोगन लगा रहा था। उसकी दाढ़ी भी रोगन में सनी हुई थी। रोगन की धारियां छत पर से बह रही थीं।

बुयानोव दरवाज़े के सामने खड़ा अपना हंगेरियन जाकेट कंधे पर डाले उछलता हुआ मुक्का दिखा-दिखाकर तोशा पर चीख रहा था:

"अबे ओ बकर दाढ़ी! छत पर रोगन फेरने को किसने कहा था? मैंने तुझसे कानस पर रंग लगाने को कहा था और तू ने सारी छत ही पोत डाली! उतर नीचे, बेवकूफ!"

बुयानोव थोड़ी देर उछलता-कूदता और बकता-झकता रहा, फिर भीतर चला गया। तोशा मुंह बनाकर छत पर से रंग के धब्बे पोंछने लगा। कुछ देर वालेंतिना और लेना तमाशा देखती रहीं, फिर वे भी बुयानोव के पीछे भीतर चली गयीं। उन्होंने चौखट नांघी ही थी कि बुयानोव की ललकार सुनाई दी :

"देखकर, देखकर! सम्भलकर!"

सामने, पांव के पास ही, खूब गहरा गढ़ा था। फ़र्श के तख्ते हटा दिये गये थे। नीचे गहराई में, कल-कल करता, पानी बह रहा था। गढ़े के उस पार मशीन के काले-काले, जंग लगे हिस्से, फैले हुए थे। वहीं बुयानोव टांगें फैलाये एक तख्ते पर बैठा फ़र्श के नीचे किसी पर चिल्ला रहा था :

"अबे, ज़रा और ज़ोर लगा! ज़रा अच्छी तरह रगड़!"

यहां सब मशीनें अपनी जगह से उखड़ी हुईं, अलग-अलग हिस्सों में, इधर-उधर बिखरी हुई थीं। मलानिया दूसरे कोने में खड़ी खिड़की के कांच साफ कर रही थी। उसने लेना और वालेंतिना के चेहरे पर व्यग्रता का भाव देखा तो विद्वेष से मुस्करा दी।

"जल्दी बिजली मिलने की उम्मीद तो दिखाई नहीं देती!"

"उम्मीद?" मलानिया बोली : "देख नहीं रही हो, किस आफत में फंसे हैं?"

बुयानोव की पत्नी ने फ़र्श के नीचे से सिर निकाला। वह ढीली सी पतलून पहने हुए थी। आगन्तुकों से दुआ-सलाम किये बिना ही बोली :

"सब मशीनों का सत्यानाश कर डाला है!"

फ़र्श पर से कुछ चिथड़े लेकर वह फिर फ़र्श के नीचे घुस गयी।

"होशियार! सम्भलकर!" फिर बुयानोव की ललकार सुनाई दी।

वालेंतिना और लेना ने घूमकर देखा। दरवाज़े में वासिली खड़ा था।

"ओह!" उसके मुंह से निकला। इस 'ओह' का मतलब सावधानी भी हो सकता था, विस्मय भी। गढ़े पर आड़े पड़े एक तख्ते पर होकर वह भीतर आ गया। वालेंतिना और लेना भी उसके पीछे-पीछे भीतर चली आईं। स्लावका ने भी सिर भीतर करके झांका। पर, उसे फौरन भगा दिया गया। वह आकर ड्योढ़ी में ही बैठ गया। मिनट दो मिनट में ही उसकी बांसुरी बजने लगी...

रहम कर मुझ पर, रहमवाले...

वासिली मशीन के पुरज़ों पर हाथ फेरकर उन्हें बड़े सम्मान से देख रहा था। बुयानोव दांतोंवाली एक गरारी पर रेती चलाता हुआ कहता जा रहा था :

"कोई भी समझदार आदमी खेत की हालत समझना चाहे तो सबसे पहले क्या देखेगा ?... वह असली चीज़ कौन सी है जिसे देखते ही वह फ़ार्म की हालत समझ जायेगा ? बिजली घर ! बिजली घर ही बन्द और बिगड़ा पड़ा हो तो फिर और कुछ देखने की ज़रूरत ही क्या है ?"

"यही बात तो यहां के लोग समझते नहीं !" फ़र्श के नीचे से सिर निकालकर पकौड़े जैसी नाक वाली बुयानोव की पत्नी बोली : "मैंने एक दिन यहां का हिसाब लिखने के लिए मुंशी से कागज़ मांगा, मगर उसने फौरन मना कर दिया।"

"निहायत नासमझी है...!" नाक सिकोड़कर बुयानोव ने कहा।

बुयानोव और उसकी पत्नी का दृढ़ विश्वास था कि उन दोनों से बढ़कर महत्वपूर्ण आदमी फ़ार्म में दूसरा कोई नहीं है। वासिली बुयानोव के पास उकड़ूं बैठकर टर्बाइन और जेनरेटर (भाप को संचित करने और बिजली पैदा करनेकी मशीनों) के बारे में समझने की कोशिश करने लगा। सामने बेंच पर बैठी हुई लेना और वालेंतिना भी ध्यान से बातचीत सुन रही थीं। खुले हुए फ़र्श के नीचे से पानी के बहने का शब्द आ रहा था।

वालेंतिना चुप थी। उसका ध्यान भविष्य का अपना कार्यक्रम बनाने में उलझा हुआ था। लेना नयी सहेली मिल जाने की खुशी में खूब उत्साह और प्रसन्नता से बातें कर रही थी।

"थोड़े दिनों में हम लोग रेडियो पर मास्को से बातचीत और खबरें सुना करेंगे !" उसने कहा। "हम लोग रोशनी चले जाने पर बड़बड़ा रहे हैं। मास्को से बातें सुनने को मिलें तो मैं महीना भर बिजली के बिना काट दूं !"

फिर दरवाज़ा खुला और फिर बुयानोव की चेतावनी भरी ललकार सुनाई दी : "खबरदार! सम्भलकर !" दरवाज़े में मातवेयेविच दिखाई दिया। उसके कपड़ों पर खूब बरफ़ पड़ी हुई थी; चेहरा लाल दिखाई दे रहा था। अपनी घनी दाढ़ी के कारण इस समय वह बिलकुल पिता क्रिसमस जैसा लग रहा था। वह अपने दैत्याकार शरीर से दरवाज़े को रोके कुछ देर चुप खड़ा रहा।

"वासिली कुज़मिच, तुम यहां बैठे हो और मैं तुम्हे ढूंढ़-ढूंढ़कर हार गया !"

"हूं ! क्यों ?" वासिली बोला।

वासिली घुटनों तक चढ़े जूते पहने ज़रा और आगे को बढ़ गया और फ़र्श में बने गढ़े के इस पार मातवेयेविच के सामने खड़ा हो गया। खिड़की में से बरफ़ से लदे भूर्ज वृक्षों की टहनियों का जाल और उनके बीच से बादलों में छिपे धुंधले सूर्य का लाल-लाल गोला दिखाई पड़ रहा था। वासिली का

भेड़ की खाल का, कसा हुआ कोट, इस प्रकाश में लाल लपटों जैसा दिखाई दे रहा था। मातवेयेविच ने एक बड़ा सा लाल रूमाल निकाला, अपनी दाढ़ी और मूंछों पर से बरफ़ साफ की और बोला :

"मैं तुमसे यही बताने आया था कि आज हम जंगल से लकड़ी नहीं ढो पाये।"

अपने बड़े-बड़े हाथों को बड़े अन्दाज़ से और धीरे-धीरे हिलाते हुए मातवेयेविच ने बहुत मामूली सी बात कही थी। पर, वालेंतिना ध्यान से देख रही थी कि इस मामूली सी बात से वासिली का चेहरा बहुत गम्भीर हो गया है। फ़र्श में खुले गढ़े की ओर बढ़ कर अपनी गर्दन सीधी करके उसने मातवेयेविच से कहा :

"यह क्या तमाशा है ? तुमने प्रधान का हुक्म पूरा नहीं किया ! तुम दल के नेता हो ! तुम आकर मुझे खबर दे रहे हो कि काम पूरा नहीं हुआ ! जैसे कोई बात ही नहीं हुई ! अनुशासन का यही ढंग होता है ?"

मातवेयेविच ने बहुत मज़े से रूमाल जेब में रख कर, दरवाज़े के बाहर गौर से देखते हुए, पहले की ही तरह शांत स्वर में कहा :

"आज नहीं हो सका और कल भी नहीं हो पायेगा...!"

"कल क्या, आज ही करना होगा !" वासिली गढ़े पर रखे तख्ते पर एक क़दम और बढ़ गया। "दल के नेता का काम खेत के प्रधान को ढूंढ़ते फिरना नहीं है। तुम्हारा काम है, गाड़ियों का इंतज़ाम करके लकड़ी पहुंचवाना। जाओ ! समय बरबाद मत करो, प्योत्र मातवेयेविच ! अस्तबल से घोड़े ले लो..."

वासिली के क्रोध और मातवेयेविच के संक्षिप्त उत्तरों में वालेंतिना को कुछ रहस्य सा जान पड़ रहा था।

मातवेयेविच जैसा का तैसा खड़ा रहा।

दरवाज़े से बाहर देखते हुए वह बोला :

"अंधेरे में जंगलों में जाकर झख मारने से क्या फ़ायदा ?" और फिर सहसा अपनी चित्त-स्थिरता भूल, वासिली की ओर घूमकर तीखे स्वर में बोला :

"हम भी समझते हैं कि लकड़ी और खाद का काम बहुत ज़रूरी है। पर, तुम्हारा यह इमारती काम—हमारी समझ में नहीं आता ! साफ बात कहने के लिए मुझ बूढ़े को माफ़ करना, मगर मेरी समझ में नहीं आता इसमें क्या तुक है ? ज़रूरी काम तो हो नहीं पा रहे और तुम इमारतों के झंझट में फंसे हो !"

इमारतों की बात सुनते ही वासिली का चेहरा तमतमा उठा।

अब वालेंतिना की समझ में आया कि यह 'रहस्य' क्या था !

वालेंतिना का अनुमान ठीक ही था। कुछ दिन पहले फ़ार्म की कार्यकारिणी में वासिली की नये मकान बनाने की योजना पर बहस हुई थी। काफी बहस-मुबाहसा हुआ था। योजना में काफी काट-छांट कर दी गयी थी। बुज़िकिन और मातवेयेविच वासिली की योजना का विरोध कर रहे थे। बहस के झगड़े में वासिली ने बुज़िकिन पर दोष लगाया था कि वह शराब में धत्त होकर सभा में आया है और मातवेयेविच के लिए उसने कहा कि वह "पुरानपंथी" है।

जंगल से इमारती लकड़ी लाने के बारे में वासिली और मातवेयेविच के बीच हुई बातों का सम्बंध इमारती-योजना के बारे में हुई बहस से ही था।

मातवेयेविच ने कहा : "हमारे घोड़ों के लिए चारा तो पूरा पड़ नहीं रहा, योजना बनायी जा रही है खलिहान और गोशाला के लिए इमारतें बनाने की !... मसल मशहूर है कि पेट के लिए रोटी नहीं, पाग में कलंगी चाहिए।"

"रोटी ? रोटी का इससे क्या मतलब ?" वासिली ने उसकी खिल्ली उड़ाते हुए उत्तर दिया। "लोग अभी यहां कह रहे थे कि सामूहिक खेत की जान बिजली घर है। मैं कहता हूं सामूहिक खेत की जान खलिहान है। समझे, खलिहान है ! तुम रोटी की बात करते हो ! फसल कटने के बाद अनाज की गहवाई कहां होगी ? खुले में ? उन्हीं पुराने झोपड़ों में ?"

"फसल कटने को अभी बहुत दिन पड़े हैं। तुम खलिहान भी बना सकते हो, गोशाला भी दुबारा खड़ी कर सकते हो—ढंग से करो, तो सभी कुछ कर सकते हो ! लेकिन, हो क्या रहा है ? तुम चाहते हो कि एक ही आदमी पेड़ काटे, खाद ढोये, लकड़ी लाद कर लाये—और यह सब वह एक ही दिन में कर दे ! वह दिन भर काम करता है, रात भर काम करता है, मगर तुम्हें इसकी कोई फिक्र नहीं। बस, तुम्हारा तो मतलब है कि चुटकी बजे और सब कुछ हो जाय, जैसे हाथ का कौर हो जो गप्प से मुंह में डाल लिया। फसल कटाई के लिए जैसे अब दिन ही नहीं रह गये ! तुम चाहते हो मुंह से बात निकले और काम हो जाय।"

"कहां है फसल तक समय ? लकड़ी ढोने का वक्त अभी नहीं आया तो कब आयेगा ? अभी पाला पड़ना शुरू नहीं हुआ, मगर किसी भी दिन शुरू हो सकता है। अभी इमारती लकड़ी के लिए हमें पास का ही जंगल मिला हुआ है। अगले हफ्ते से हमें दूर के जंगल से लकड़ी लानी पड़ेगी—तीन महीने तक। तब आदमियों और घोड़ों के लिए मेहनत बढ़ जायेगी। अभी से ज़ोर नहीं लगायेंगे तो आगे काम और भी मुश्किल हो जायेगा।

बसंत में बरफ़ पिघलने लगेगी। सड़कों पर दलदल बन जायेंगे। तुम संभलने भी नहीं पाओगे कि बोवाई शुरू हो जायेगी। यही वक्त है इमारती लकड़ी ढोने का। नये खलिहान के लिए इसी हफ्ते लकड़ी आ जानी चाहिए! योजना पर तो लात न मारो, प्योत्र मातवेयेविच! वक्त बरबाद न करो!"

"अंधेरी रात में लोगों को जंगल में खदेड़ दूं? वे आदमी हैं भेड़िये नहीं कि रात में जंगल में घूमते फिरें!" मातवेयेविच बोला।

"तुम लोगों ने शाम तक काम पूरा नहीं किया, यह कसूर किसका है? लोगों को काम पर निकल जाना चाहिए था आठ बजे, लेकिन तुम्हारी सवारी निकलती है दस बजे। क्या इसी का नाम अनुशासन है?"

"क्यों? खाद ढोने के लिए हमें स्टेशन नहीं जाना पड़ा?"

"क्या ज़रूरत थी...? खाद ठेलों पर आ सकती थी। औरतें और बच्चे दो दिन में खाद ले आते। यही मैंने कहा भी था। पर, तुम मनमानी करते हो! हमारी बात टालते हो और फिर आकर कहते हो: 'काम नहीं हो सका!' अब वक्त मत बरबाद करो! चलो! अंधेरा होने से पहले वहां पहुंच जाओगे। लालटेन लेकर वापिस आ जाना—कोई डर नहीं है!"

वालेंतिना ने मातवेयेविच के सफेद दाढ़ी से ढंके चेहरे को देखा। उसने कल्पना की—सूरज डूबने के बाद का झुटपुटा अंधेरा और बर्फ़ से ढंके खेतों की श्मशान जैसी शांति! बरफ़ में दबी, अकेली, धीरे-धीरे हिलती फुनगी और बेसुरी बांसुरी की गूंज! मातवेयेविच और उसके साथियों के अंधेरे में जंगल जाने की बात से उसका मन सिहर उठा।

सहसा उसके मुंह से निकल पड़ा: "वासिली, अब तो बहुत देर हो गयी है। कल सही!"

वासिली ने घूम कर वालेंतिना की ओर देखा। होंठ फड़कने से उसकी कटी-कटी मूछें कांटों की तरह खड़ी हो गयी थीं। वह जाने क्या कह डालता, पर उसने अपने आपको रोक लिया। उसकी आंखों में क्रोध और घृणा देख कर वालेंतिना ने अनुमान लगा लिया कि मन ही मन वह कह रहा है: 'वाह री लाड़ली! नरम फर के कोट में लिपटी! तुझे अंधेरे से और काम से डर नहीं लगेगा तो और क्या होगा!'

"वालेंतिना अलेक्सेयेवना, तुम बीच में न बोलो!" वासिली ने कह ही दिया।

वालेंतिना की सहानुभूति पाकर मातवेयेविच का हौसला बढ़ गया। वासिली की ओर देखकर उसने कहा:

"तीन किलोमीटर तक लोग खाद को हाथों से ढोयेंगे...अंधेरे में जाकर जंगलों में लकड़ी काटेंगे... वासिली, तुम्हारे दिल में इन्सान के लिए जरा भी दर्द नहीं है!"

"ज़रा भी दर्द नहीं है?" वासिली गढ़े पर पड़े तख्ते पर एक कदम और आगे बढ़ गया। तख्ते के नीचे गहराई में पानी की कल-कल आवाज़ आ रही थी। उसके माथे की नसें फूल गयीं। "जब फसल की गहवाई आंधी-पानी में खुली जगह होती है और सैकड़ों मन अनाज बरबाद होता है तब तुम्हें दर्द नहीं होता? जब उस टूटे अस्तबल में घोड़े फरफर आती हवा और सर्दी से ठिठुरने लगते हैं, तब तुम्हें दर्द नहीं होता? कैसा दर्द चाहते हो मेरे दिल से? प्यार-दुलार चाहिए, तो मलानिया से बातें कर लो! मेरा हुक्म ही मेरा दर्द है। मेरा हुक्म है कि इमारती लकड़ी, दूसरा इमारती सामान, और खाद —ठीक जगह पहुंच जायें। बस, यही मेरा दर्द है!"

वासिली ने गढ़े के उस पार जाकर गुस्से में दरवाज़ा खोल दिया। स्लावका की बेसुरी बांसुरी की धुन भीतर आने लगी :

रहम कर मुझ पर...

ठंडी ताज़ी हवा में आ कर वासिली ने दो-तीन गहरे सांस खींचे और अपनी टोपी को सिर पर ठीक से जमा लिया।

"मातवेयेविच, प्रधान ने जो हुक्म दिया है, वह पूरा होना चाहिए। लकड़ी-वकड़ी की बात नहीं। बात है उसूल की! चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूं। हम लोगों को अनुशासन और हुक्म पूरा करना सीखना चाहिए।"

घूम कर वासिली ने वालेंतिना को सम्बोधित किया :

"वालेंतिना अलेक्सेयेवना, तुम और झगड़े छोड़ कर यहां बैठ कर 'कूकी' बजाओ!"

मतवेयेविच वासिली के पीछे-पीछे चला। स्लावका के पास आते ही उसने उसे डांटा :

"खुदा के वास्ते यह टीं-टीं बन्द कर!..."

इन लोगों के चले जाने के बाद बिजली घर में सन्नाटा छा गया।

अल्योशा संध्या समय फ़ार्म के दफ्तर में नवयुवकों को कृषि-विज्ञान की शिक्षा देने के लिए एक स्कूल चलाता था। शाम को वालेंतिना भी वहां गयी।

खेतों का चक्कर लगाते समय वालेंतिना सोच रही थी कि पूरे गांव की धरती को कैसे सम्भालूं, अपने गांव के खेतों और चरागाहों की सच्ची स्वामिनी कैसे बनूं! एक बात साफ थी। अकेले अपने से यह नहीं हो सकता था। धरती के इस विस्तार को वश में करने के लिए अपनी सेना के बीच से ही एक

'प्रेरक-यंत्र' की आवश्यकता होगी, जो ज़मीन पर पूरे वेग से हमला कर सके। सामूहिक खेत के नौजवानों को कृषि-विज्ञान का अध्ययन करते देख उसे बहुत आशा बंधी। उसने घर पर अल्योशा को आगे की आवश्यक बातें बता दी थीं। खेतों की मिट्टी की अम्ल परीक्षण विधि भी उसे समझा दी थी।

अल्योशा को रासायनिक पदार्थों और प्रयोग के यंत्रों से काम करना मनोरंजक खेल सा मालूम होता था। उसकी प्रसन्नता देख कर वालेंतिना को बहुत अच्छा लगता।

वालेंतिना को गांव सोवियत में देर हो गयी थी। जब वह फ़ार्म के दफ्तर पहुंची तो अल्योशा पाठ समाप्त कर रहा था।

वालेंतिना की नज़र दफ्तर के कमरे के बीचो-बीच लम्बी मेज़ पर पहुंची, जिस पर लाल कपड़ा बिछा हुआ था। कमरे में फर्नीचर ज्यादा नहीं था, तो भी बैठे हुए लोगों के चेहरों पर संतोष जान पड़ रहा था। फ्रोस्का, तातिआना, सुन्दरी क्सेन्या बोल्शाकोवा, लेना, यासनेव और लुबावा—सभी अल्योशा को घेरे, बिलकुल घरेलू ढंग से बैठे उसकी बातें सुन रहे थे।

"यह है मेरी भविष्य की 'सेना'।" वालेंतिना ने सोचा। "सेना तो मौजूद ही है। अब इसकी सहायता करना, इसे और बढ़ाना, मेरा काम है।"

वालेंतिना को भीतर आते देख सब लोगों के चेहरों पर मुस्कान छा गयी। लेना ने एक ओर को थोड़ा सरक कर उसे अपने पास बैठने की जगह दे दी। अल्योशा बहन को देखकर ज़रा झेंप गया। पल भर को उसका चेहरा लाल हो गया। पर उसने अपने को सम्भाल लिया और पहले की ही तरह बोलता गया। उसे बड़े ही स्पष्ट और अच्छे ढंग से बोलते देख कर वालेंतिना चकित रह गयी।

अल्योशा बोलता गया :

"मिट्टी का यह नया नमूना बकरी की टेकरी के खेत का है और यह ढलवान के खेत का है। अब हमें जानना यह है कि इन खेतों में गेहूं की फसल कैसी हुई थी।"

"ढलवान पर तो फसल अच्छी हुई थी। पर, जहां तक मेरा खयाल है, बकरी की टेकरी पर तो फसल तैयार हुई ही नहीं।" यासनेव बोला।

"ठीक है।" अल्योशा ने कहा। "अब इस अन्तर का कारण समझना चाहिए। कारण का पता तब चलेगा जब देखा जाय कि इन दोनों खेतों की मिट्टी में कितना-कितना अम्ल मौजूद है? एलेना स्तेपनोवना, ज़रा यहां आओगी?"

लेना अपनी जगह से उठ कर मिट्टी में अम्ल की जांच करने में अल्योशा की सहायता करने लगी। लेना वालेंतिना की ओर सिर घुमा कर मुस्करायी मानो कह रही हो: "ठीक कर रहे हैं न हम लोग!"

वालेंतिना चुपचाप भाई का काम देख रही थी। अल्योशा जांच करने वाली कांच की नलियों और दूसरे यंत्रों का इस तरह प्रयोग कर रहा था जैसे रसायनशाला में काफी दिन काम कर चुका हो।

"कौन कहेगा कि इसने कल ही पहले-पहल कांच की नलियों को पकड़ना सीखा है!" वालेंतिना मन ही मन कह रही थी।

अल्योशा एक हाथ में परीक्षण-नली थामे था और दूसरे हाथ से एक बारीक नली से रासायनिक द्रव बूंद-बूंद कर उस नली में टपकाता जा रहा था। बूंदें बड़ी-बड़ी थीं और ढंग से पड़ रही थीं और परीक्षण-नली में भरे द्रव का रंग बदलता जा रहा था। धीरे-धीरे द्रव का रंग गुलाबी हो गया। अल्योशा का चेहरा भी खुशी से सुर्ख हो उठा। अपने प्रथम स्वतंत्र परीक्षण की सफलता के बारे में उसके मन में तरह-तरह की शंकाएं थीं। परीक्षण का परिणाम जब 'अक्षरशः' ठीक निकला तो उसका चेहरा सफलता के विस्मय और उत्साह से खिल उठा।

अल्योशा ने कहा: "अब यह बात स्पष्ट हो गयी कि हमारे खेतों की मिट्टी में अम्ल ज़्यादा है। बकरी की टेकरी वाले खेत की मिट्टी में अम्ल ढालू खेत की मिट्टी से ज़्यादा है।"

यासनेव फिर बोल उठा: "यही तो मैंने कहा था! बकरी की टेकरी पर गेहूं कभी पनप ही नहीं पाता!"

"वहां पनप ही नहीं सकता!" लुबावाने भी समर्थन किया।

"तरकारी वाले खेतों की मिट्टी कैसी है?" तातिआना ने पूछा।

उन लोगों की आंखों के सामने ही मिट्टी की परीक्षा से उन लोगों का उत्साह और भी बढ़ गया। साथ ही, उन्होंने जो कुछ अभी सुना था उसका चित्रमय विवरण भी उनके सामने उपस्थित हो गया था।

"तरकारी के खेत से थोड़ी मिट्टी ले आओ। हम सब मिलकर यहां उसकी परीक्षा करेंगे और फिर उसे ज़िले की प्रयोगशाला में भेजकर पता लगायेंगे कि हमारी बात ठीक है या नहीं।"

वालेंतिना ने सोचा: "ये लोग खुद ही खेतों में जाकर वहां की मिट्टी की जांच करेंगे। मुझे खेत-खेत घूमने और बरफ़ के अन्धड़ में मारे-मारे फिरने की ज़रूरत नहीं रहेगी; लिख-लिखकर हुक्म देने की ज़रूरत भी नहीं रहेगी! ये लोग खुद ही बड़े चाव और शौक से काम करेंगे। बस, ज़रा अक्ल

से काम लेने की ज़रूरत है। अल्योशा को थोड़ा और सिखा देने और परीक्षण यंत्र मंगवा देने से काम बन जायेगा।"

"तो फिर किया क्या जाय?" लुबावा ने पूछा। "जिन खेतों की मिट्टी ठीक नहीं है, वहां गेहूं बोना बन्द कर दें?"

अल्योशा उसकी तरफ़ घूमकर बोला: "नहीं, हमें गेहूं बोना बन्द नहीं करना चाहिए। हमें खेत की मिट्टी को ठीक करना चाहिए। मिट्टी में अम्ल कम करने का एक बहुत सरल उपाय है। यह उपाय है, चूना डालना! हमारे यहां खड्ड में चूने के ढेरों पत्थर पड़े हैं। इस हफ्ते उन्हें खेतों में ढो लाना चाहिए।"

वालेंतिना हैरान थी। अल्योशा इतना कुछ इतनी जल्दी समझ सकता है, इसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। उसके व्यक्तित्व के नये-नये पहलू उसे दिखाई दे रहे थे। अल्योशा जिस तरह अधिकार से बातें कर रहा था उससे जान पड़ता था कि उसमें नेता बनने, लोगों से काम ले सकने की क्षमता है। परीक्षण में सफल हो जाने से उसका आत्म-विश्वास और भी बढ़ गया था। उसकी वाणी में और भी प्रवाह आ गया था; उसके स्वर में और भी दृढ़ता आ गयी थी।

"अब यह हिसाब लगाना चाहिए कि इन खेतों की मिट्टी में कितना चूना मिलाना ज़रूरी है। हमें पता लगाना चाहिए कि चूने के कितने पत्थर टेकरी वाले खेत के हर हेक्टर के लिए चाहिए।...क्सेन्या, तुम बोर्ड पर लिखो! साथियो, कागज़ पेंसिल ले लो!"

"यह सब इसने कहां से सीख लिया? कमाल कर रहा है!" प्यार से वालेंतिना सोच रही थी। "यह तो ऐसे पढ़ा रहा है जैसे विश्व-विद्यालय का प्रोफेसर हो! कमाल हासिल है इसे तो!"

दरवाज़ा खुला और एक लम्बा सा नौजवान—बहुत भूरे बाल, काली भौहें और खूब सफेद चेहरा—भीतर आ गया। आकर वह वालेंतिना के पास ही बैठ गया। अपनी काली-काली आंखें वालेंतिना के चेहरे पर गड़ाकर वह ज़रा मुस्कराया और फिर उसकी ओर झुककर बोला:

"आपका ही नाम वालेंतिना अलेक्सेयेवना स्त्रेल्तसोवा है? आप ही कृषि-विशेषज्ञ हैं?"

उसकी मुस्कराहट और निगाहें वालेंतिना को कुछ अजीब, चुभती सी, लगीं। वह सिमट गयी और सोचने लगी: "कौन है यह? बड़ा गुस्ताख़ मालूम होता है! इसके मुंह से वोद्का की गंध आ रही है। क्या यही पेत्रो बोर्तनिकोव है? कितना लम्बा हो गया है!"

अब वह लड़का घूमकर तातिआना से बातें करने लगा था :

"तान्या, ये नीले बुंदे तुम्हें किसने दिये हैं ?"

अल्योशा ने उसे टोका :

"पेत्रो ! यह क्या हो रहा है ?"

उसकी आवाज़ गम्भीर और अधिकारपूर्ण थी। वालेंतिना को और भी विस्मय हुआ, जब उसने देखा कि पेत्रो एकदम सीधा होकर बैठ गया है और विनय से मुस्कराकर कह रहा है :

"मुझसे कह रहे हो अल्योशा ? मैंने तो कुछ नहीं किया !"

"कुछ नहीं कर रहे हो तो चुपचाप बैठकर सुनो, वर्ना बाहर चले जाओ !"

पढ़ाई जारी रही। अल्योशा से बहुत से सवाल पूछे गये। वह बड़ी शान्ति से और बड़े आत्म-विश्वास से सबका ठीक-ठीक उत्तर दे रहा था।

पाठ समाप्त हो जाने के बाद सबने अल्योशा को घेर लिया। लुबावा वालेंतिना के पास आई।

"मैं इधर से जा रही थी। सोचा, देखूं क्या हो रहा है।" अपनी उपस्थिति का कारण बताती हुई वह बोली। "देखकर अच्छा लगा। पहले, फ़ार्म के सभी लोग ऐसे लेक्चर सुनने आया करते थे। उन दिनों की याद आ जाती है।"

लुबावा सामने शून्य में टकटकी लगाये थी। उसके सूखे से होठों पर हल्की सी मुस्कराहट आ गयी। कृषि-विज्ञान के अध्ययन के इस दृश्य से उसकी पुरानी स्मृति जाग उठी थी।

"मैं और पाशा इकट्ठे आया करते थे।" वह धीरे से बोली। "...एक साथ ही बैठते थे...वह सारा पैसा कृषि की पुस्तकें खरीदने में खर्च कर देता था।...बड़ा शौक था उसे। वह जब भी शहर जाता था, खूब सारी किताबें लाता था...।" लुबावा ने ऐसे सिर हिलाया जैसे स्वप्न से जाग उठी हो ! "अच्छा, अल्योशा...! नहीं, अलेक्सी अलेक्सेयेविच . ! बहुत अच्छी तरह समझाया तुमने ! आज के पाठ के लिए धन्यवाद !"

सब लोग अपने-अपने घर चलने लगे।

अल्योशा काली आंखों वाले लड़के के पास आया।

"देख पेत्रो, तू आज फिर यहां लाल-केन्द्र में पीकर आया है !"

"भाई अल्योशा, आज दूसरी बात थी ! सच, मेरे भाई ! प्रधान जी महाराज ने हम लोगों को लकड़ी ढोने के लिए रात में जंगल भेज दिया। ज़रा गरमी के लिए थोड़ी सी पी ली ! अब इसमें क्या बुराई हुई ? अहा... जंगल में बड़ा मज़ा आया !" बड़े उत्साह से वह बताता गया। "एक लोमड़ी

मेरी टांगों में आ घुसी। क्या बताऊं, बन्दूक नहीं थी... नहीं तो और भी आनन्द आ जाता!"

"ले आये लकड़ी?"

"हां! टीले पर ढेर लगा दिया है! वहीं, जहां नया खलिहान बनेगा!"

इन लोगों की बातें सुनती हुई वालेंतिना सोच रही थी, आखिर ये लोग ले ही आये लकड़ी। उसे बुरा लगा कि मातवेयेविच और वासिली के बीच वह खामखा बोल उठी थी। "वासिली ने अपनी बात पूरी कर ही ली!"

"ख़ैर, जो भी 'बात' हो!" अल्योशा बोला। "लेकिन तुम जब भी पियो, तुम्हें घर पर ही रहना चाहिए। पीकर यहां गांव की क्लब में आने का क्या मतलब?"

"क्यों, तुम्हारा क्या बिगड़ता है?"

"तुम क्या समझते हो?"

"मैं कुछ नहीं समझता! यहां एक समझदार तुम हो तो! इस गांव के लिए एक ही समझदार काफी है।" प्योत्र ज़ोर से हंस पड़ा और अल्योशा की ओर लपक कर उसके गले में बांह डालने लगा, जैसे बड़ा प्यार उमड़ आया हो। "यार अल्योशा, मैं तुझे बहुत प्यार करता हूं। खुदा की क़सम इतना प्यार करता हूं कि कोई किसी लड़की को भी क्या करेगा। तेरी क़सम! यार तू बड़ा गज़ब का आदमी है। तेरे सब काम पंचवर्षीय योजना की तरह सौ बरस पहले ठीक हो जाते हैं। हम सब छोटी उम्र के लोगों को समझने-समझाने की क्या ज़रूरत है? बूढ़ों को सिर मारने दो! अपना गुज़ारा ऐसे ही चल सकता है!"

"तुम्हारा मतलब है कि बस खाओ-पियो और मनमानी मौज करो। यह तुमने बड़ी नयी बात कही? क्यों? ऐसी बातें लोग पहले भी बका करते थे। गांव के बड़े-बूढ़ों से पूछो—गांव का भठियारा भी ये ही बातें सिखाता था।"

दीवार-समाचार पत्र के काम के लिए कुछ लड़कियों को वहीं छोड़कर अल्योशा, वालेंतिना और लेना के साथ वहां से चल दिया।

बाहर अंधेरा था। लेना और वालेंतिना ठोकर खाकर या फिसल कर गिर न पड़ें इसलिए अल्योशा ने उनकी बाहों में बाहें डाल लीं। लेना वालेंतिना से कह रही थी:

"हमारे कौमसोमोल के लोग बड़े काम करने वाले हैं।"

"ठीक कह रही है तू। अल्योशा, मैं तो तुझे देख कर हैरान रह गयी। तू ने तो बहुत ही अच्छी तरह पढ़ाया है। इससे अच्छा तो मैं भी नहीं पढ़ा सकती थी। तू तो बिलकुल आचार्य बन गया है, आचार्य!"

"हां, सचमुच!" लेना ने समर्थन किया, मानो उसे अल्योशा की योग्यता का गर्व उसकी बहिन से भी अधिक है।

उसे बड़ी खुशी हो रही थी।

"निश्चय ही अल्योशा वैज्ञानिक बनेगा।" वह मन ही मन सोच रही थी। "कई प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने अपने जीवन का आरम्भ कृषि-पाठशालाओं और गांव के नवयुवकों के लिए चालू स्कूलों से ही किया था। हम लोग साथ-साथ पढ़ेंगे। वह मुझसे छोटा है, पढ़ा-लिखा भी कम है, लेकिन इससे क्या? मैंने जितने लड़के अभी तक देखे हैं, उनमें यही सबसे ज्यादा भाया है। असली दोस्ती उन लोगों में क्या होगी, जो सफलता प्राप्त कर चुके हैं और नाम कमा चुके हैं? असली दोस्ती तो यहां शुरू होती है, कृषि-पाठशाला में! एक मेज़ पर काम करने में! एक झोपड़ी में रहने में! ऐसी दोस्ती उम्र भर की दोस्ती होती है, वह कभी भूलती नहीं; कभी टूटती नहीं! हम लोग चाहे प्रोफेसर हो जायें, चाहे बड़े-बड़े वैज्ञानिक...इन दिनों को नहीं भूल सकते!... ज्यों-ज्यों हम बड़े होते जायेंगे, ज्यों-ज्यों और सफलताएं प्राप्त करेंगे... त्यों-त्यों इन दिनों की याद और भी मीठी होती जायेगी!..."

वालेंतिना दिन भर के काम से थकी हुई थी। वह जल्दी ही सोने चल दी।

वह तन्दूर के चबूतरे पर लगे बिस्तर पर लेट गयी। लेटी-लेटी वह उन दृश्यों को देख रही थी जो उसके हृदय को इतने प्रिय हो गये थे। दादी वासिलिसा बैठी कात रही थी। लेना और अल्योशा मेज़ पर अपने सामने अपनी-अपनी पुस्तकें फैलाये पढ़ने में लगे हुए थे। नींद आने से पहले अपनी आदत के मुताबिक वालेंतिना बिस्तर में लेटी दिन भर की बातों को दिमाग़ में दोहरा रही थी।

"आज काफी काम हो गया," उसने मन ही मन सोचा, "काफी अच्छा रहा। धरती के हिसाब के कई खाते देख डाले। दो सामूहिक खेतों के बीज और औज़ारों को भी देख लिया। खेतों की हालत भी समझ ली है। लेकिन सबसे बड़ी बात यह हुई कि कृषि-विज्ञान की पाठशाला को देखा। अच्छा हुआ कि अल्योशा को थोड़ा बहुत पाठ समझा दिया था। यह भी अच्छा ही हुआ कि रासायनिक चीज़ें और परीक्षण का सामान साथ लेती आई। आज का दिन काफी अच्छा रहा। हां, खामखा ही वासिली और मातवेयेविच के झगड़े में बोल पड़ी। मुझे बोलने की क्या ज़रूरत थी?"

"तुम बैठ कर 'कूकी' बजाओ...!" वासिली की यह बात उसे भूलती ही नहीं थी। "वासिली की जगह आन्द्रेई होता तो ऐसी बात कभी न कहता। वह भौंहें चढ़ा कर मेरी ओर ऐसे देखता कि बस...। यहां उसने मुझे

सिर्फ कृषि-विशेषज्ञ की ही तरह नहीं, बल्कि कम्युनिस्ट की तरह काम करने के लिए भेजा है। कृषि-विशेषज्ञ का काम तो मैंने ठीक शुरू कर दिया है। पर पार्टी मेम्बर का काम तो अभी शुरू ही नहीं किया। जो किया भी उसमें भयानक ग़लती की। मुझे उस मामले में बोलने की क्या ज़रूरत थी ? हां, मुझे यह मानना पड़ेगा कि शुरू में ही भूल हुई। दूसरा क़दम मैंने यह उठाया है कि अपनी भूल को मैं समझ गयी हूं...। अब, तीसरा क़दम क्या होगा ?..."

७. अनमोल शब्द

वासिली फ़ार्म की पहली पार्टी मीटिंग में जा रहा था तो उसके मन में संतोष भी था और निराशा भी।

उसे संतोष इस बात का था कि पहली मई फ़ार्म में पार्टी संगठन की स्थापना हो गयी है। पर, उसे इस बात से निराशा हो रही थी कि आन्द्रेई ने अनुभवी कम्युनिस्ट न भेज कर बुयानोव और वालेंतिना जेम्रों को भेज दिया है, जो नौजवान थे और बहुत भरोसे के लायक नहीं थे।

वासिली को वालेंतिना के बचपन की याद आ रही थी। सब लोग उसे वाल्या कहते थे। वह पगली सी छोकरी थी। उसकी आंखें बड़ी और चमकदार थीं—बहुत ही भोली, सदा हंसती आंखें ! आंखों की राह से मन तक देख लो ! छड़ी लिये हुए वह खड्ड में बत्तखों को चराती फिरती थी। लड़की अच्छी थी, समझदार और कामकाजी थी। पर, स्वभाव की ज़रा तेज़ और चुलबुली थी। हमेशा बच्चों पर अपना रौब बनाये रखती थी। खेत में फसल काटने के समय वह उतनी ही तत्परता से काम करती थी जितनी तत्परता से कोई बड़ा आदमी करता। वह फ़ार्म में सब की दुलारी थी। सामूहिक खेत में जब कोई दौड़-भाग का काम हो, किसी मीटिंग के लिए किसानों को बुलाना हो, या खेत से टीम-लीडर को बुलाना हो, तो वाल्या की ही पुकार होती थी। वह हमेशा फुदकती नज़र आती थी। बत्तखें चराने वाली वाल्या की याद कर वासिली को अच्छा ही लग रहा था। पर, यह सोच कर उसे दुःख सा हो रहा था कि वह छोटी सी अल्हड़ छोकरी, अब फर का कोट पहन कर चिकनी-चुपड़ी लेडी बन गयी है और उसी ने बिजली घर में उसके और मातवेयेविच के झगड़े में बेमौक़े अपनी टांग अड़ा दी थी।

बुयानोव को फ़ार्म में आये कितने ही दिन हो चुके थे। पर, अभी तक उसकी कोई करामात देखने को नहीं मिली थी। बुयानोव और उसकी नयी-नवेली पत्नी दिन भर बिजलीघर में खुट्ट-खुट्ट करते रहते। रात में दोनों फ़ार्म की बुढ़िया तान्या के यहां, जिसके मकान में इन लोगों ने किराये पर जगह ली थी, तन्दूर के पास बैठे खुसुर-फुसुर किया करते और सूरजमुखी के बीज छील-छील कर खाते रहते थे। आखिर तान्या की लड़की फ्रोस्या झल्ला उठती :

"अरे बाबा, अब यह प्रेमालाप बन्द करो! खामखा ग्लार दे रहे हो मुझे! चलो, खाना खाओ!"

ये नव-दम्पति दिन भर घर में घुसे रहते। लोग इनके तौर-तरीक़ों और घर में बैठे रहने की आदत को देख कर मज़ाक में इन्हें 'घर-घुस्सू' आशिक कहने लगे।

"तुमने ग़लती की है, पेत्रोविच!" वासिली मन ही मन आन्द्रेई पर बिगड़ रहा था। "ऐसे ही कम्युनिस्ट हमारे पिछड़े हुए फ़ार्म को उबारेंगे? 'घर-घुस्सू', 'नव-दम्पति' और 'बांसुरी बजाने लायक छोकरी' वाल्या! इन्हीं लोगों के साथ पार्टी के कामकाज की बातें की जायें? अहा,... अलेक्सी लुकिच, अलेक्सी लुकिच! आज तुम्हारी बड़ी ज़रूरत महसूस हो रही है!"

पार्टी मीटिंग में जाने से पहले वासिली ने हजामत बनायी। सेना में पाये सभी तमगे उसने अपने कोट पर लगाये। फ़ार्म में वही सबसे आगे बढ़ा हुआ और सबसे अनुभवी आदमी था। इसलिए, उसका उत्तरदायित्व भी सबसे ज़्यादा था। फ़ार्म और पार्टी का काम, दोनों के लिए वही ज़िम्मेदार था। काम और उत्तरदायित्व बंटाने वाला कोई दूसरा नहीं था। सारा बोझ उसी के कंधों पर था। इसलिए, पहली पार्टी मीटिंग में वह उचित ढंग से तैयार होकर गया, जैसे कोई सेनापति अपनी सेना के सामने जाये।

वासिली खूब सज-बज कर और चुस्त हो कर मीटिंग के लिए निकला। लेकिन, उसका मन बुझा-बुझा सा था। गली में अंधेरा था; खूब घना कोहरा था। चेहरे पर हवा तीर की तरह चुभ रही थी। उसकी मूंछें और भौंहें जम कर सफेद सी हो गयीं। गली की बत्तियां नहीं जल रही थीं। मकानों की खिड़कियों से लालटेनों की रोशनी दिखाई दे रही थी। अंधेरे के कारण गली अपरिचित मालूम हो रही थी।

"गलियों में रोशनी भी नहीं है!" वासिली सोच रहा था। "बुयानोव बातें तो चतुर इंजीनियरों की तरह करता है, लेकिन तीन दिन से बिजली ग़ायब है। वह कहता है कि मशीनों की देखभाल ठीक से नहीं की गयी, मरम्मत की ज़रूरत है!...शायद ठीक कहता हो, कौन जाने!. पर नये, बिना

परखे आदमी का भरोसा भी तो ज्यादा नहीं किया जा सकता !... कैसा अंधेरा है, जैसे धुआं बरस रहा हो !"

वासिली पांव से टटोल-टटोल कर फ़ार्म के दफ्तर की सीढ़ियों पर चढ़ा। आगे बढ़कर उसने कमरे का दरवाजा खोला, फिर वहीं ठिठक गया। कमरे की सजावट देख कर वह चकित रह गया। मेज़ पर बिछे लाल कपड़े और पुस्तकों से सजी आलमारी ने कमरे की रंगत ही बदल दी थी।

"मैंने कमरे को ज़रा ठीक-ठाक कर दिया है, वासिली कुज़्मिच !" वालेंतिना बोली।

वालेंतिना खुद भी कुछ बदली-बदली सी लग रही थी। हल्के सिलेटी रंग का बहुत अच्छा सिला हुआ कोट और छोटा लहंगा पहने वह गम्भीर और खूब चुस्त दीख रही थी। सिलेटी कोट पर रंगीन फीतों से लटके तमगे खूब खिल रहे थे। वासिली का ध्यान पहली बार उसकी भौंहों की ओर गया। उसकी भौंहें महीन और नोकीली थीं। नाक पर मिलती हुई दोनों भौंहें कनपटी के पास ऊपर को उठ गयी थीं। इससे उसके चेहरे पर तेज़ी और दृढ़ता की छाप आ गयी थी।

"कैसा रूप बदल लेती है यह लड़की !" वासिली सोच रहा था। "आज चौथी बार देख रहा हूं इसे ! हर बार नयी ! इसका असली रूप कौन सा है ? बत्तखों के पीछे भागने वाली पगली वाल्या का ? बांसुरी बजानेवाली छोकरी का ? या, गम्भीर दृढ़-निश्चय महिला का ? इन औरतों को समझ पाना बड़ा मुश्किल है !"

वालेंतिना के पास ही बुयानोव सैनिक अफसर की वर्दी पहने बैठा था। उसके सीने पर भी तमगे लटके हुए थे। वासिली ने सोचा : "ये लोग भी अपने आपको फ़ार्म के काम में महत्वपूर्ण और ज़िम्मेदार आदमी समझते हैं। इसीलिए पहली पार्टी मीटिंग के मौक़े पर पूरे सज-धज कर आये हैं।"

तीनों में एक ही भावना, एक ही ढंग से काम कर रही थी। तीनों ही ऐसे तैयार हो कर आये थे, जैसे कोई उत्सव हो। तीनों में ही भीतरी और बाहरी चुस्ती थी। तीनों में से हरेक अपने पिछले जीवन के लिए गर्व अनुभव कर रहा था। तीनों में ही एक दूसरे के प्रति एक नया आकर्षण उत्पन्न हो गया था।

वासिली ने सुव्यवस्थित किये गये अपने कमरे की ओर देखा, फिर वालेंतिना और बुयानोव की ओर ! दोनों नौजवान, हंसमुख और आत्म-विश्वासपूर्ण थे। मन ही मन मुस्करा कर वासिली ने सोचा :

"किससे कम हैं ये लोग ? सच पूछो तो ऐसे ही लोग चाहिए थे... !"

वालेंतिना और बुयानोव भी यही सोच रहे थे। बुयानोव को अपने काम से प्यार था। वह उसे बहुत महत्वपूर्ण समझता था। इसीलिए, वह अपने व्यक्तित्व को भी अत्यधिक सम्माननीय समझता था। उसका विश्वास था कि समाज का भविष्य रेडियो और बिजली पर निर्भर है। उसकी निगाह में इनसे बढ़कर कोई चीज़ थी तो केवल आणविक शक्ति! विज्ञान और इंजीनियरिंग की शेष बातों को वह एक नौजवान और उत्साही पुरुष की तरह तिरस्कार की भावना से देखता था। गांव में वह अपने आपको वैज्ञानिक संसार का एकमात्र प्रतिनिधि समझता था। उसे असंतोष इस बात का था कि भाग्य ने उसे अपनी सामर्थ्य और योग्यता को चरितार्थ करने का 'उचित क्षेत्र' नहीं दिया! युद्ध से पहले उसने एक विशाल जल-विद्युत स्टेशन के निर्माण के काम का अध्ययन किया था और उसके निर्माण में भाग लिया था। युद्ध के काल में वह एक बड़े पार्टी संगठन का सदस्य था। इन बड़े कामों की तुलना में फ़ार्म का पार्टी-संगठन—वह भी, जिसमें कुल तीन कम्युनिस्ट थे—उसे बहुत छोटा और कमज़ोर लगता था। मीटिंग में आते समय वह सोच रहा था कि उन तीनों में सबसे अनुभवी और शिक्षित व्यक्ति वही होगा।

मीटिंग के कार्यक्रम की पहली बात—मंत्री का चुनाव—तुरंत ही, सर्व-सम्मति से, निश्चित हो गयी। वालेंतिना को मंत्री नियत कर दिया गया।

दूसरी बात—फ़ार्म के श्रमिकों के संगठन—पर भी अच्छी तरह विचार किया गया।

"मेरा खयाल है," वासिली ने कहा, "अब सब बातें बिना किसी दफ्तरी ढोंग के तय हो गयी हैं।"

वालेंतिना उठ खड़ी हुई।

"नहीं, सब बातें नहीं तय हुई। मुझे कुछ कहना है, साथियो!"

उसकी दृढ़, ऊपर खिंची भौहें और भी तन गयीं जिससे उसके मुख पर दृढ़ता और आत्म-विश्वास की भावना और भी स्पष्ट हो गयी।

"कहो, वालेंतिना अलेक्सेयेवना! क्या कहना चाहती हो?"

"मुझे कहना तो हरेक के बारे में है। लेकिन, साथी वासिली! तुम्हारे बारे में खास तौर से!"

"मेरे बारे में? अच्छा! कहो, कहो!"

वालेंतिना ने पल भर रुक कर, धीरे-धीरे, सोच-सोचकर, बोलना शुरू किया। वासिली को लग रहा था, जैसे वह उसे चुनौती दे रही हो।

"जब से मैं यहां आई हूं, तभी से यह बात मेरे दिमाग़ में घूम रही है।...मैं शायद अपनी बात ठीक ढंग से व्यक्त न कर सकूं, पर मैं जानती

हूं कि वह सही है। पर, आप लोगों के सामने जैसे भी कह सकूंगी, जैसे भी मैं सोचती हूं, कह दूंगी, और आप लोग मेरी बात समझ लेंगे।"

वालेंतिना फिर रुक गयी। बुयानोव और वासिली उसकी ओर बड़े कौतूहल से देख रहे थे।

उसने फिर बोलना शुरू किया :

"...हम लोगों ने फ़ार्म में काम करने वाले सभी दलों के काम समाप्त करने की तारीखें आदि निश्चित कर दी हैं। कल या परसों हम अपना प्रस्ताव बहस के लिए आम सभा में भी पेश कर देंगे। यहां तक तो सब ठीक है। पर मैं सोचती रह जाती हूं कि आखिर इस प्रस्ताव के मुताबिक काम पूरा होगा कैसे! मैं अस्तबल की हालत जानती हूं .. मैं जानती हूं कि गाड़ियां लेने के लिए लोग एक-एक करके आते हैं और गाड़ियों के लिए उन्हें घंटों उस गंदगी में हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना पड़ता है...इस हालत की कल्पना करके ही मैं परेशान हो उठती हूं।"

"तो हम में से एक आदमी सवेरे ही अस्तबल पहुंच जाया करे। वह लोगों को वहां बैठने न दे—फ़ौरन ही काम पर खदेड़ दे।" भौंहें सिकोड़ कर वासिली बोला।

"यही! यही तो! 'खदेड़ दे'! यही बात तो कहना चाहती हूं, वासिली कुज़मिच। तुम बहुत मेहनत करते हो, जी लगाकर काम करते हो, तुमने बहुत काम किया है, लेकिन तुम इससे कहीं ज्यादा काम कर सकते थे! आखिर इसकी वजह क्या है कि जितना तुम कर सकते थे, उतना नहीं कर पाये। इसकी वजह एक ही है, और वह यह है कि अपने काम में तुम उत्साह नहीं भर पाते? जो लोग तुम्हारे साथ काम करते हैं वे खुशी-खुशी नहीं करते! लकड़ी ढोने वाली घटना की ही मिसाल ले लो। तुमने इमारतें बनाने की योजना बनायी। ठीक किया! लेकिन, इसे पूरा करने के लिए तुम लोगों को संगठित नहीं कर पाये। फ़ार्म की सभा में तुमने जिस तरह बहस चलायी थी, वह मैंने सुन रखा है। बुज़िकिन ने जब तुम्हारा विरोध किया तो तुमने उसे निकाल बाहर किया। तुमने कहा, वह पीकर आया है! पीकर तो वह आया ही था! लेकिन तुमने उसे निकाला तब जब उसने तुम्हारा विरोध किया! तुमने मातवेयेविच को 'पुरानपंथी' करार दे दिया और यासनेव से कहा कि 'तुम्हारा दिमाग़ ठिकाने नहीं है'!"

वालेंतिना की बातों से वासिली का पारा चढ़ता जा रहा था। उसे इस बात की परवाह नहीं थी कि वालेंतिना की बातें ठीक हैं या नहीं। उसे लग रहा था कि वह उसकी बड़ी मेहनत से बनायी और लड़-झगड़ कर फ़ार्म सभा में पास करायी, अत्यंत प्रिय, इमारती योजना पर "हमला" कर रही है।

"क्या यह तरीक़ा ठीक था, वासिली कुज़मिच ?" वालेंतिना ने पूछा। "क्या पार्टी सदस्य को ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए ?"

"तो फिर क्या करना चाहिए ? क्या मैं जान सकता हूं ?" वासिली भड़क उठा। "हिमायत दिखाते हुए दखल देना—क्या यही उचित व्यवहार है ? फ़ार्म के प्रधान के मामले में दखलन्दाजी करना, उसके सम्मान की जड़ काटना—क्या तुम्हारे विचार से यही उचित पार्टी व्यवहार है ?"

"नहीं ! यह उचित नहीं है !" वालेंतिना ने वासिली की ओर देखते हुए दृढ़ता से कहा। "बिजली घर में मुझसे ग़लती हुई थी, मेरा व्यवहार पार्टी सदस्य के लिए उचित व्यवहार नहीं था। मैंने तभी समझ लिया था कि मुझसे भूल हुई है। पर मैं कुछ कर नहीं सकी।"

वासिली को क्या मालूम था कि वालेंतिना अपनी भूल को इस तरह साफ़-साफ़ स्वीकार कर लेगी। उसे सूझ ही नहीं रहा था कि अब वह क्या कहे ?

स्वभाव से ही अक्खड़ होने के कारण दूसरों के सामने तो क्या वासिली अपने मन में भी भूल मानने को तैयार नहीं होता था। जिस सादगी और स्पष्टता से वालेंतिना ने अपनी ग़लती स्वीकार की थी उसे देख कर वासिली निरस्त्र हो गया। अब बातचीत का ढंग ही बदल गया था। वालेंतिना ने ग़लती भी इस ढंग से स्वीकार की थी कि उसे हार मान जाना नहीं कहा जा सकता था। उल्टे, अपनी ग़लती मानने में संकोच न करने से वासिली पर उसी की जीत हुई थी।

"ख़ैर !... तो मान ली तुमने अपनी ग़लती !" वासिली और कुछ न कह सका।

"मेरा व्यवहार बिलकुल ग़लत था। पर, इसका यह मतलब नहीं है कि तुम्हारा व्यवहार बिलकुल ठीक था !" वालेंतिना दृढ़ता से कहती गयी : "सबसे बड़ी बात तो यह है कि तुम्हारे काम करने के ढंग में प्रसन्नता और उत्साह नहीं रहता, वह बिलकुल नीरस होता है।"

"तुम्हारा मतलब है कि फ़ार्म का प्रधान लोगों के सामने भांड़ों की तरह 'ही-ही' करता फिरे ?"

"वासिली, ज़रा अलेक्सी लुकिच को याद करो ! क्या वह भांड़ था ? याद है, उसके साथ लोग कितनी प्रसन्नता और उत्साह से काम करते थे; उसके साथ रहने में कितने खुश होते थे ? तुम अपने बारे में ही याद करो, वासिली ! पहले तुम कैसे थे ? एक ज़माने में तो तुम अब से बिलकुल भिन्न थे !"

वालेंतिना की भौंहों पर बल पड़ गये। वासिली देख रहा था कि बत्तखों के पीछे-पीछे भागने वाली नन्ही वाल्या इस समय गम्भीर वालेंतिना बनकर

काली-काली पुतलियों से उसकी ओर घूर रही है। पर थी यह वही—आश्चर्य-जनक रूप से परिवर्तनशील! और फिर भी, इस परिवर्तनशीलता के आवरण के नीचे थी एक स्थिर, निश्चल और अत्यंत विश्वसनीय बालिका जो उसी के गांव में इतनी बड़ी हुई थी और उन्हीं सब चिन्ताओं की साझीदार थी जिनका साझीदार वासिली था।

वासिली चुप रह गया। वालेंतिना ने वासिली के हाथ पर हाथ रख कर कहा :

"ज़रा याद करो, पहले तुम कैसे थे? कितने हंसोड़ थे! जो मुंह पर आया कह दिया! कितनी उमंग थी तुम्हारे दिल में! वासिली कुज़मिच, तुम्हें हम सब 'चाचा वास्या' कहते थे। तुम इतने बदल कैसे गये? तुम पहले ही जैसे क्यों नहीं हो जाते? तुम वही क्यों नहीं बन जाते जिसे सारा फ़ार्म प्यार करता था?"

"आदमी हमेशा जवान थोड़े ही बना रहता है!" वासिली ने आंखें चुराकर जवाब दिया।

"मैंने माना... तुमने बहुत झेला है... तुम युद्ध में लड़े... जख्मी हुए। ये सब मामूली बातें नहीं हैं।... पर तुमने अच्छे दिन भी तो देखे हैं!... क्या उन अच्छे दिनों की स्मृति तुम्हें इतनी शक्ति नहीं दे सकती कि कठिनाई के दिनों में भी मुस्कराते रह सको। तुम्हें खुद इस मुस्कराहट की ज़रूरत है! इस मुस्कराहट की उन लोगों को ज़रूरत है जो तुम्हारे साथ काम करते हैं! अपने लिए नहीं तो कम से कम उनके लिए तो मुस्कराओ!"

"अजीब बातें सुन रहा हूं। पार्टी की मीटिंग में बहस हो रही है प्रधान के मुस्कराने पर! कार्यवाही वाली कापी में नोट कर लो न—प्रस्ताव पास हुआ कि प्रधान दिन भर में इतने बार मुस्करायेगा!" वासिली ने अपनी उत्तेजना को बनावटी हंसी की आड़ में छिपाते हुए कहा।

"तुम मेरी बात नहीं समझना चाहते, वासिली कुज़मिच।" वालेंतिना ने भौंहें चढ़ाकर दृढ़ता से कहा। "मैं बहुत ज़रूरी बात कह रही हूं। आखिर तुम्हारे इस तरह उदास रहने का कारण क्या है? इसका कारण यह है कि तुम्हें लोगों पर भरोसा और विश्वास नहीं रह गया है।"

"यह बकवास है!"

"हूं! तुम्हारे विचार से यह बात बकवास है!" वालेंतिना ने तीखे स्वर में कहा। "जब मैं तुमसे ज़रूरी बातें, तुम्हारी ग़लतियों के मूल कारणों को, बताती हूं तो तुम कहते हो बकवास है! बहुत अच्छा! मैं दूसरे ढंग से कहती हूं!"

दोनों हाथ कोट की जेबों में डाल कर वह ठीक वासिली के सामने खड़ी हो गयी। एक बार फिर वासिली के देखते ही देखते वह बदल गयी थी। अब उसमें बत्तखें चरानेवाली उस वाल्या का चिन्ह मात्र भी नहीं था जिसने अभी-अभी उसे इतना झकझोर दिया था।

"बाबा रे! यह तो बड़ी तीखी मिर्च है!" वासिली ने सोचा। "पेत्रोविच की पत्नी ऐसे ही थोड़े बन गयी है! ऐसी लड़की से सावधान रहने में ही भलाई है। पता नहीं कब देखते ही देखते तुम्हें घेर ले और चारों खाने चित्त कर दे!"

"तुम समस्या की जड़ को नहीं पकड़ना चाहते, मत पकड़ो! तुम्हारी इच्छा! मैं घटनाओं को लेकर तुम्हारे नेतृत्व के बारे में कहूंगी। एक महीने से ज्यादा बीत गया, लेकिन फ़ार्म के लोगों को अब तक ठीक समय पर काम शुरू करने के लिए तुम संगठित नहीं कर पाये। यह एक बहुत मामूली काम था! इसका कारण क्या है? तुम या तो दफ्तर में बैठे रहते हो या हुक्म चलाते हो, लोगों को धमकियां देते हो, या—जो सबसे बुरी बात है—लोगों के घर जाकर उन्हें काम पर 'खदेड़ते' हो! मैं पूछना चाहती हूं, क्या तुम किसानों के साथ कभी खेत पर गये हो? क्या उनके साथ उन जंगलों में गये हो जहां लकड़ी कट रही है? काम में सामूहिक खेत के किसानों की रुचि बढ़ाने के लिए तुमने क्या किया है? इस काम से भविष्य में क्या लाभ होगा, यह बताने के लिए तुमने क्या किया है? लोगों में सच्ची प्रतियोगिता की भावना जगाने के लिए तुमने क्या किया है? तुमने कार्य सूचक अंकों की तख्ती लगायी है! लेकिन, क्या इन अंकों के प्रति लोगों की उत्सुकता जगाने में तुम सफल हुए हो? अपने यहां की सबसे अच्छी टोलियों के नेताओं के काम का ढंग तुमने कभी दूसरों को बताया है?"

"फ़ार्म में ऐसे नेता हैं ही नहीं! काम का सबसे अच्छा तरीक़ा जैसी कोई चीज़ इस फ़ार्म में है ही नहीं!"

"अगर नहीं है तो यह तुम्हारा कसूर है। इसका मतलब है कि फ़ार्म के लोगों में काम को सुधारने की इच्छा तुम नहीं जगा सके! इसका मतलब यह है कि फ़ार्म के प्रधान के रूप में तुम्हारी क़ीमत दमड़ी बराबर भी नहीं है!"

वालेंतिना जितनी ही ज्यादा कड़ी पड़ रही थी, वासिली को उतनी ही ज्यादा सांत्वना मिल रही थी। वह देख रहा था कि उसकी बगल में ही कोई दूसरा भी ऐसा है जो उसी की तरह फ़ार्म का हित दिल से चाहता है, जो विभिन्न समस्याओं को उतनी ही अच्छी तरह समझता है जितनी अच्छी तरह वह, जो स्नेह से और दृढ़ता से बात कह सकता है, जो उसे उसकी भूलें सुझा सकता है, जो उसे सही रास्ता दिखा सकता है और उचित मंत्रणा दे

सकता है। इस समय उसे वही 'पार्टी की डांट' सुनने को मिली थी जिसके लिए वह इतना छटपटा रहा था, जो उसके लिए सांस की तरह ज़रूरी हो गयी थी। वालेंतिना की हर तीखी फटकार से उसे राहत मिल रही थी।

"मैं भी वालेंतिना अलेक्सेयेवना की बातों का पूरी तरह समर्थन करता हूं।" बुयानोव ने कहा। "समस्या को सुलझाने का असली तरीक़ा यह नहीं है कि हम लोग अपनी कुर्सियों से चिपके बैठे रहें, या झाड़ू लेकर लोगों से लड़ने निकलें। असली तरीक़ा यह है कि कल से ही हम सब जहां-जहां फ़ार्म की टुकड़ियां काम करती हैं, वहां खुद पहुंचें। अलग-अलग टोलियों की ज़िम्मेदारी हम लोग आपस में बांट लें। लोगों से व्यवहार के सम्बंध में वालेंतिना ने जो कहा है, वह बिलकुल ठीक है। वासिली कुज़मिच, अलेक्सी लुकिन्च की मिसाल तुम हमेशा अपने सामने रखो! तुम अपनी जवानी के दिनों की मिसाल अपने सामने रखो!"

वासिली ने अपना झुका हुआ सिर ऊपर उठाया। उसके होठों पर वही मुस्कराहट छा गयी जो सदा इतनी उल्लासमय और आकस्मिक होती थी।

"तो पार्टी मीटिंग में यह प्रस्ताव पेश हुआ और पास हो गया कि फ़ार्म के प्रधान को फिर से युवावस्था लानी चाहिए? अच्छा, जब पार्टी मीटिंग में पास हो गया है तो कोई चारा नहीं है। मुझे इस नीति का अनुसरण करना ही पड़ेगा!"

कार्यक्रम में तीसरी बात थी—फ़ार्म में बिजली के विकास के सम्बंध में विचार-विनिमय। इस विषय के सामने उपस्थित होने पर बुयानोव ने बहुत गम्भीर मुखाकृति धारण करते हुए बोलने की इजाज़त मांगी।

"हूं, तो फ़ार्म में पानी से बिजली पैदा करने के लिए बिजली घर बना लिया गया है, माना! पर अकेले इससे ही सब कुछ नहीं होता है!" उत्तेजित स्वर में उसने बोलना शुरू किया। "हूं! तो बिजली घर खड़ा हो गया, माना! लोगों के घरों में बिजली के लैम्प भी जलने लगे, माना! पर क्या बिजली घर का असली काम यही है? क्या वह ऐसी बछेड़ी है जिसे जोतने में डर लगता हो? पुराने ज़माने में बिजली घर का होना बहुत बड़ी बात मानी जा सकती थी! सोचो, लोग खुश हो जाते कि उनके घरों में बिजली जल गयी है!... अहा-हा; ओहो-हो! लेकिन हमें तो बिजली से और बहुत से काम लेने हैं, गाड़ी के पुराने घोड़े की तरह उसे खूब जोतना है। उससे खलिहानों में टनों अनाज की गहवाई करवानी है, मीलों दूर के खेतों में सिंचाई करानी है, लट्ठे चिरवाने हैं, पानी पहुंचा कर बागीचों को हरा-भरा करवाना है!"

"बीस किलोवाट के बिजली घर से इतना काम कैसे हो सकता है?" वासिली ने पूछा।

"हमारी टर्बाइन पर अभी तो कुछ बोझ है ही नहीं! हम एक और जेनरेटर लगा सकते हैं।"

"जेनरेटर कहां से आयेगा?"

"तुम्हें समझने में देर लगती है, वासिली कुज़मिच। इस काम में हमें मदद लेनी होगी, यह साफ जाहिर है। हमारा फ़ार्म ज़िले में सबसे पिछड़ा हुआ है। हमें मदद नहीं मिलनी चाहिए तो किसे मिलनी चाहिए?" अपनी बात पर ज़ोर देने के लिए बुयानोव ने अपने घुंघराले बालों को एक झटका दिया। "हम लोग ज़िला केन्द्र में जायेंगे। सीधे प्रधान से मिलेंगे। हम उससे कहेंगे—सुनिए, ऐसी-ऐसी हालत है, हम चाहते हैं कि बिजली के विकास के लिए आप हमारे पिछड़े हुए फ़ार्म को कर्ज़ दें। हम देहातों से सम्बंधित बिजली-विभाग में पहुंचते हैं। हम कहते हैं—हमारे पिछड़े हुए फ़ार्म को मामूली शर्तों पर एक जेनरेटर दीजिए। हम बिजली के सामान के स्टोर में पहुंचते हैं। हम कहते हैं—देखिए, हमारा फ़ार्म एक पिछड़ा हुआ फ़ार्म है, आप हमें जल्दी से जल्दी तार और बिजली का दूसरा सामान दीजिए। मैं देखूंगा कोई कैसे इन्कार करता है! अरे, हम सीधे प्रान्तीय कमिटी के बड़े-बड़े अधिकारियों को लिखेंगे, ज़िले के अखबार में खत छपवायेंगे—भाई, ऐसी-ऐसी हालत है, हमारा फ़ार्म पिछड़ा हुआ फ़ार्म है, कोई हमारी मदद नहीं करना चाहता! अरे, खिलाड़ी हाथों में ऐसा तुरुप का पत्ता हो तो पिछड़े हुए फ़ार्म को शैतान के घर की भट्ठी भी मिल सकती है। हमें मांग करनी है, मिन्नत नहीं। मुझे यही कहना है, वासिली कुज़मिच!"

"वाह! क्या ज़ोरदार बात कह दी है!" वासिली ने कहा। "अरे, पिछड़े हुए होना कौन बड़े गर्व की बात है! फ़ार्म को बरबाद कर देना देश की बड़ी भारी सेवा तो है नहीं! मैं पिछड़ेपन को दांव पर नहीं लगाना चाहता। मैं पूरे प्रान्त के सामने फ़ार्म को भिखमंगे के रूप में नहीं पेश करना चाहता। फ़ार्म में अपने आत्म-सम्मान की भावना होनी चाहिए—इन्सान की तरह। फिर भी, थोड़ी सी मदद मांगने में कोई हर्ज़ नहीं है। मेरा खयाल है, ज़िला और प्रान्तीय केन्द्र से कुछ मदद मिल सकती है।"

अन्त में, सामूहिक खेत में सार्वजनिक सम्पर्क और प्रचार के सम्बंध में बात हुई।

जब पूरी कार्रवाई लिखी जा चुकी तो वासिली ने बुयानोव की ओर देख कर ऐसे शुष्क ढंग से बात कहनी शुरू की जिससे लगता था कि अब खैर नहीं है:

"प्रचार कार्य के सिलसिले में अपने योग्य बिजली इंजीनियर, कामरेड बुयानोव के व्यवहार के सम्बंध में मुझे कुछ कहना है!"

"मेरे व्यवहार के सम्बंध में?" बुयानोव अपनी कुर्सी पर तड़प उठा। "मेरे व्यवहार में क्या ग़लती है?"

बुयानोव की धारणा थी कि चूंकि विवाह के एक मास बाद ही, अपनी नौजवान पत्नी के रोने-धोने की परवाह न कर, स्वयं भी कुछ एतराज़ किये बिना, वह अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए पिछड़े हुए फ़ार्म में काम करने आ गया था, ईमानदारी और कड़ी मेहनत से वह बिजली घर का काम कर रहा था, इसलिए उसका त्याग किसी शहीद से कम न था! उसे आशा थी कि सब लोग सहानुभूति से उसके त्याग की सराहना करेंगे और उसके प्रति कृतज्ञता अनुभव करेंगे। उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि उसके व्यवहार के प्रति किसी को कोई आपत्ति हो सकती है।

"तुम्हारे व्यवहार में क्या ग़लती है, यह मैं अभी बताता हूं।" वासिली ने गम्भीरता से कहा। "जनता में प्रचार कार्य का मतलब यही नहीं है कि हफ्ते में एक रिपोर्ट लिख डाली और फ़ार्म के किसानों को अखबार पढ़ कर सुना दिया! सामूहिक खेत में कम्युनिस्ट का पूरा जीवन ही प्रचार कार्य है। सामूहिक खेत में तुम्हारा जीवन कैसा है? तुम क्या करते हो? तुम फ़ार्म के इंजीनियर हो, अगुवा हो, फ़ार्म में बुद्धिजीवी वर्ग के प्रतिनिधि हो! तुम्हारा नम्बर सबसे पहले आता है। बिजली, रेडियो और यंत्रों का उपयोग तथा संस्कृति, फ़ार्म तुमसे प्राप्त करता है। तुम गली में से गुज़रते हो तो लड़कियां खिड़कियों में से झांक-झांक कर कहने लगती हैं—'देखो वह जा रहा है, बिजली का इंजीनियर!' तुम कोई बात कह दो तो सारे गांव में फैल जाती है। लोग कहते हैं: 'इंजीनियर ने कहा है!' इस बात का तुम्हें खयाल रखना चाहिए न? पहले, जब मैं फ़ार्म का सबसे अच्छा ट्रैक्टर ड्राइवर माना जाता था, तो मेरे साथ भी यही बात थी! मुझे खुद इसका तजुर्बा है। हम सात आदमी प्रान्त से काम सीख कर आये थे। कहीं भी हम लोग दिखाई दे जाते तो बच्चे चिल्लाने लगते—'देखो, देखो, ट्रैक्टर ड्राइवर आ गये।' तब हम लोग गांव में सबसे आगे बढ़े आदमी माने जाते थे और हम लोग हमेशा इस बात का ध्यान भी रखते थे। किसानों को कुछ समझाना होता, तो हम लोग सबसे आगे रहते! किसी जलसे का प्रबंध करना होता, तो हम लोग सबसे आगे रहते! राज्य के लिए कर्ज़ जुटाने की बात होती, तो हम लोग सबसे आगे रहते! कोई भी जलसा हम लोगों के बिना सफल नहीं माना जाता था। गांव के किसान नाचने-गाने के लिए ढलवान पर इकट्ठा होते, तो हम लोगों का अकार्डियन सबसे ज़ोर से बजता सुनाई पड़ता था। और तुम? तुम ऐसे हो कि

बिजली घर का काम खतम किया और जोरू को लेकर तन्दूर के सहारे जा बैठे। लोग तुम्हें 'घर घुस्सू' कहते हैं, तो इसमें ताज्जुब ही क्या है! तुम और क्या उम्मीद कर सकते हो? क्या इंजीनियर के लिए यह उचित है कि तन्दूर से चिपका बैठा रहे और सूरजमुखी के बीज छील-छील कर खाया करे?"

"बिलकुल ठीक कहा!" वालेंतिना ने समर्थन किया। "हम लोग गांव के लोगों से दूर-दूर रहेंगे तो गांव की ज़िन्दगी कैसी हो जायेगी? तुम अनुभवी और समझदार आदमी हो, कामरेड बुयानोव! देखो, तुमने अपना क्या मज़ाक बनवा लिया है! सामूहिक किसानों ने पहले दिन से ही तुम्हारा मज़ाकिया नाम बना लिया। उन्होंने ठीक ही किया। तुम्हें इस नाम से छुटकारा पाना है। एक कम्युनिस्ट के लिए यह उचित नाम नहीं है।"

बुयानोव का दिमाग़ चकरा गया। उसे भारी ठेस लगी। 'घर घुस्सू' की व्यंगपूर्ण पदवी और वालेंतिना और वासिली की तीखी आलोचना ने उसके हौंसले पस्त कर दिये।

दो ही घंटे पहले बुयानोव सोच रहा था कि पिछड़े हुए देहाती फ़ार्म की, तीन मेम्बरों की, पार्टी भी क्या पार्टी है? लेकिन यह छोटा सा पार्टी संगठन शुरू से ही एक दृढ़ और शक्तिशाली संगठन सिद्ध हुआ। वासिली और वालेंतिना ने उसे ऐसे झाड़ डाला जैसे वह कोई स्कूली लड़का हो। उनकी बात का विरोध भी वह नहीं कर सकता था। उसे गुस्सा और खीझ आ रही थी, अपमान भी जान पड़ रहा था। परन्तु मीटिंग में जाते वक्त समय बरबाद होने का जो ख़याल उसे था, अब वह नहीं रह गया था।

सभी प्रश्नों पर बातचीत हो चुकी थी। कार्रवाई भी लिखी जा चुकी थी और सब के दस्तख़त भी हो गये थे। पर वे तीनों बैठे ही रहे। भविष्य में क्या करना होगा, इस बात पर वे एक दूसरे की राय ले रहे थे, वे एक दूसरे की आलोचना भी कर रहे थे और इस बात पर खुशी मना रहे थे कि पहली मई सामूहिक खेत में पार्टी का ऐसा संगठन क़ायम हो गया है जिसकी निर्देशक और प्रेरक क्षमता का अभी भी अनुभव किया जा सकता था।

संख्या में वे केवल तीन थे! तीन कम्युनिस्ट! उनमें भी दूसरे लोगों की तरह ही कमज़ोरियां थीं। परन्तु एक महान आदर्श के लिए पार्टी द्वारा निश्चित किये गये मार्ग पर दृढ़ता से आगे बढ़ने के विश्वास ने, एक दूसरे की खरी आलोचना करके उसे सुधारने तथा एक महान उद्देश्य की प्राप्ति में सहायता देने के संकल्प ने, उन्हें शक्ति का रूप दे दिया। इसी शक्ति का नाम था—पार्टी!

कई बार वे उठने को हुए। पर हर बार कोई नयी बात निकल आती थी और वे ठहर जाते थे। उनकी बातें समाप्त ही नहीं हो रही थीं, जैसे मुद्दतों से मिलने के लिए व्याकुल वे बहुत दिन बाद एक दूसरे से मिले हों।

वालेंतिना ने घड़ी पर नज़र डाली।

"अरे बाप रे! बारह बज गये! बहुत देर हो गयी! मैं घर चलती हूं! कार्रवाई के कागज़ मुझे दे दो, वासिली कुज़मिच।"

वासिली ने कागज़ वालेंतिना की ओर बढ़ा दिये, पर उन्हें अपने हाथ में ही रोके रहा।

"एक मिनट और, वालेंतिना अलेक्सेयेवना! एक बात और है। हमने भूसा खरीदने के लिए चन्दा जमा करने की बात तो तय कर ली, पर सनी की बात रह गयी। इस साल सन की फसल खूब अच्छी हुई है, हालांकि हमने बोई थोड़ी ही थी। वह अभी तक हमारे यहां ही पड़ी है। मैंने जानबूझ कर रोक रखी थी। छड़ियां भेज देने के बजाय अगर हम सन निकाल कर भेजेंगे तो फ़ार्म को और राज्य को काफ़ी लाभ होगा। हमें हज़ारों का फ़ायदा होना चाहिए। मैं सोच रहा था, छड़ियां घर-घर बंटवा दें और लोग अपने यहां सन निकाल लें। पहले हम लोग सन पर ज़्यादा ध्यान नहीं देते थे; जो हुआ तो छड़ियां घर-घर बांट कर सन निकलवा लेते थे।"

"सन की बाबत मैं भी सोच रही थी, वासिली कुज़मिच।" वालेंतिना ने उत्तर दिया। "सन छड़ियों से अलग करवा कर देने में ही फ़ायदा रहेगा। फ़ार्म का इतना फ़ायदा हम क्यों खोयें? लेकिन हमें अलग-अलग नहीं, सामूहिक रूप से ही सन निकलवाना चाहिए!"

"सामूहिक रूप से? सन हमारे यहां की मुख्य पैदावार में थोड़े ही शामिल है। हम लोग कसम खाने भर को योजना बना कर बो लेते हैं। हमारे यहां मशीनें भी नहीं हैं। तुम सामूहिक रूप से काम करने की बात कहती हो! मेरा तो खयाल है कि हम इसे वैसे ही लोगों को बांट दें जैसे पहले बांटा करते थे। बस!"

"पहले ऐसा होता रहा था, तो क्या हुआ! अब दूसरी तरह काम होना चाहिए। तुम समझे नहीं? इसे फ़ार्म के जीवन में एक महत्वपूर्ण घटना बना देना चाहिए। हमारे यहां सन साफ करने की मशीनें और दूसरा नया सामान नहीं है; पुराना सामान ही सही। पर जो भी हो, हमको इस बार यह काम करना चाहिए सामूहिक रूप से ही। और, आंगनों या गुसलखानों में नहीं, बल्कि किसी झोपड़ी में—गा-बजा कर।"

"गा-बजा कर?" कुछ-कुछ सन्देह प्रकट करते हुए वासिली ने कहा। "गाना-बजाना तो ठीक है। फ्रोस्या इसके लिए हमेशा तैयार है। कहने भर की देर है कि गाते-गाते तुम्हारे कान बहरे कर देगी। पर, यह झोपड़ी कौन सी होगी? कौन अपने यहां कूड़ा-कबाड़ा बरदाश्त करेगा?"

"तान्या से कहेंगे कि पुरानी झोपड़ी दे दे।" बुयानोव ने राय दी।

"अजी, वह नहीं मानेगी।"

"फ्रोस्या कहेगी तो सौ बार मानेगी। फ्रोस्या को मना लेना कौन बड़ी बात है!"

"पर उसके यहां की भट्ठियों का तो बहुत बुरा हाल है।"

"उनकी मरम्मत अल्योशा और कौमसोमोल वाले कर लेंगे। देर नहीं लगेगी! देखो न, यह कितनी महत्वपूर्ण बात होगी, वासिली कुज़मिच। हमें यह ऐसे ढंग से करना चाहिए कि लोगों को खूब अच्छा लगे; मन बहलाव भी हो। यह एक ऐसा सामाजिक मामला बन जाय जिससे लोगों में सामूहिक रूप से काम करने की रुचि बढ़े। अगर हम इसे ढंग से संगठित कर पाये तो यह बहुत बड़ा काम होगा, नहीं तो बिगड़ जायेगा।"

"अच्छी बात है। हम इसे संगठित करेंगे। भट्ठियों की मरम्मत करवा देने की ज़िम्मेदारी मुझ पर रही।"

घर लौटते समय वासिली सोच रहा था—पेत्रोविच आदमी बहुत समझदार है। फ़ार्म के लिए कितने अच्छे आदमी भेजे हैं!

वह सोच रहा था—बुयानोव इंजीनियर है और कम्युनिस्ट है। फ़ार्म के लिए सोना समझो! वालेंतिना, कृषि-विशेषज्ञ और कम्युनिस्ट है! हर दृष्टि-कोण से बड़ी योग्य स्त्री है, बड़ी कुशल कार्यकर्ता है। अपने फ़ार्म का पार्टी संगठन उसे एक सबल और सशक्त संगठन जान पड़ने लगा। बिस्तर पर लेटा हुआ नींद आने से पहले बहुत देर तक वह वालेंतिना की बातों पर सोचता रहा। वह सोचता रहा कि युद्ध से पहले वह कैसा था!

"यह सच है कि जैसा मैं पहले था, वैसा अब नहीं हूं। काम तो मैं पहले की अपेक्षा ज़्यादा लगाव और मेहनत से करता हूं, पर वह उत्साह नहीं रहा है। दफ्तर में ही बहुत ज़्यादा बैठा रहता हूं।"

दूसरे दिन से वासिली पूरी लगन से काम में जुट गया।

दूसरे दिन पौ फटने से पहले ही वह हाथ में लालटेन लिए एक टट्टू पर बैठा बरफ़ से भरी सड़क पर चला जा रहा था। मन ही मन सोच रहा था:

"अस्तबल में नहीं, मैं खेतों में जाऊंगा। यह भी मैं खुद ही देखूंगा कि कल क्या क्या और कैसा काम हुआ है? लोगों को यह ख़याल भी न रहे कि उन्हें ही जल्दी उठकर खेतों में जाना पड़ता है और प्रधान मज़े मारता है। प्रधान उनसे भी पहले आ पहुंचेगा तो उन्हें अपने आप ही समय पर जाने का ख़याल होगा। उनका उत्साह बढ़ेगा! बार-बार हुक्म चलाने और डांट-फटकार बताने की अपेक्षा यह कहीं ज़्यादा अच्छा रहेगा।"

'वासिली के हाथ में लटकी टिमटिमाती छोटी सी लालटेन का प्रकाश कभी किसी टूटे पेड़ के ठूंठ पर पड़ जाता और कभी बरफ़ से ढंका कोई

भारी देवदार वृक्ष दिखाई दे जाता। लालटेन के प्रकाश के चक्कर के आगे का अंधेरा और भी घना जान पड़ रहा था। मालूम होता था कि अंधेरा जमकर एक दुर्भेद्य दीवार बन गया है।

वासिली ने जंगल में लकड़ी की कटाई देखी। तैयार लट्ठे चीड़ के अधकटे पेड़ों के बीच पड़े थे। लट्ठे लम्बे और सीधे थे, उनकी टहनियां और गांठें छांट दी गयी थीं। वासिली टट्टू पर से उतर पड़ा। हाथ का दस्ताना उतार कर वह खुरदुरे लट्ठों को सहलाने लगा। लट्ठे जैसे किसी रेशमी जाली से ढंके हुए थे, उन पर हाथ फेरने से गरमी महसूस होती थी। लेकिन इस समय वासिली सामने पड़े लट्ठों को नहीं देख रहा था। जाड़े के इस अंधेरे भोर में जंगल की इन बर्फ़ानी झाड़ियों के बीच उसे दिखाई दे रहा था—क्वार-कातिक का सुनहला दिन, अनाज के बड़े-बड़े अम्बार और फ़ार्म के खेतों के बीच हवादार, नया खलिहान। यह कोई ऐसा-वैसा खलिहान नहीं था। इसमें बिजली की मशीनें लगी हुई थीं। खलिहान के बगल में ही बिलकुल नया मीनार, मैनेजर का मकान और औज़ारों का गोदाम बना हुआ था।

यही वासिली का चिर-पोषित स्वप्न था—इतना निजी कि इसके बारे में किसी से बात करते में भी उसे संकोच होता था। पहाड़ी के निकट, खलिहान के लिए निश्चित जगह पर, एक टूटा सा छप्पर मौजूद था। कल्पना में वासिली उस जगह अपनी महत्वाकांक्षा के खलिहान की इमारत देख रहा था। खूब लम्बी-चौड़ी, भारी-भारी मज़बूत लट्ठों से बनी खलिहान की इमारत—चारों ओर आवश्यक कामों के लिए बने खूबसूरत मकानों से घिरी हुई; जहां-तहां बिजली के तार लगे हुए; उधर से गुज़रने वालों को बिजली से चलने वाली मोटरों की गूंज दूर से ही सुनाई देती; वे पास आते तो भीतर, मशीनों से अनाज ऐसे गिरते देखते जैसे अनाज जल-धारा बनकर बह रहा हो; अनाज धीरे-धीरे और मुश्किल से अलग नहीं होता था, जैसे मामूली फटकाई से होता है, बिजली के ज़ोर से वह बलखाती, इठलाती, बड़ी-बड़ी धाराओं के रूप में बह रहा था और उसे जल्दी-जल्दी समेट लेना मुश्किल था!

अंधेरे में खड़ा वासिली कल्पना में यह स्वप्न देखता हुआ लट्ठों पर हाथ फेर रहा था। यह स्वप्न उसे इतना स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि उसने आंखें मूंद लीं।

"मालूम होता है कि गांठें अच्छी तरह नहीं छीली गयीं हैं।" उसने सोचा। "पिछले दिन की छीलन भी साफ़ नहीं की गयी है। ऊपर बरफ़ जम गयी है। अब इसे हटाना और भी मुश्किल होगा।"

वासिली खेतों की ओर गया। यहां भी कई चीज़ें ठीक नहीं थीं। गोबर के ढेर खेतों के किनारे सड़क के बिलकुल पास ही लगा दिये गये थे।

वह खेतों से लौट पड़ा। एक जगह गांव से आता हुआ रास्ता फटता था; एक रास्ता खेतों को जा रहा था और दूसरा जंगल में कटाई की जगह। वासिली टट्टू से उतर पड़ा और टट्टू की लगाम एक पेड़ की टहनी से उलझा दी। सामूहिक किसान जंगल जायें तो, खेतों पर जायें तो—उन्हें यहीं से होकर जाना पड़ता।

किसानों को आठ बजे काम पर पहुंच जाना चाहिए था। इस समय आठ बज चुके थे।

"लोग आया ही चाहते हैं।" वासिली ने सोचा। "अभी आते ही होंगे; यहीं रोकूंगा।"

सुबह की सफेदी फैलने लगी थी। घनी काली झाड़ियों के बीच नीले-नीले खेत चमक रहे थे। चीड़ के वृक्ष बिलकुल स्तब्ध खड़े थे। चारों ओर शांति और नीरवता का राज्य था। सिर्फ़, हवा जमीन तक आ-आकर, भुरभुरी बरफ़ से खेलकर, भौंरियां बना रही थी। सूनेपन में खड़े-खड़े प्रतीक्षा करना वासिली के लिए असह्य हो रहा था; ऐसा लगता था जैसे वृक्षों की टहनियों पर पड़ी बरफ का बोझ उसे भी दबा रहा हो।

"आखिर हो क्या गया है? लोग आ क्यों नहीं रहे हैं?" वह आश्चर्य से सोच रहा था।

शरीर को गरमाने के लिए वासिली सड़क किनारे लगे तार के खम्भे और एक गंठीले दोहरे चीड़ के पेड़ के पास से होता हुआ बरफ़ से ढंके छीलन के ढेर तक जल्दी-जल्दी चहलक़दमी करने लगा।

बरफ़ पर उसके क़दमों के निशानों से एक राह सी बन गयी थी। वह और भी तेज़ी से टहलने लगा। अब उसे परेशानी हो रही थी। वासिली सोच रहा था :

"वालेंतिना कह रही थी कि मैंने काफी काम नहीं किया है। ठीक है, लुक्चि ने मुझसे ज़्यादा किया होता। मुझे लगता है किसानों से भी अब मेरी वैसी घनिष्ठता नहीं रह गयी जैसी पहले थी। छिः, कहां ग़ायब हो गया है वह वास्या बोर्तनिकोव जो पहले हर काम में जान डाल देता था! क्या अब वह नहीं रहा है?"

वासिली ने कंधे झटका कर पीठ को सीधा किया। टोपी को ज़रा पीछे खिसकाया और हवा लगने देने के लिए कोट का कालर नीचे कर लिया।

"खबरदार, जवान, मौत का नाम मत ले! शाबाश, बहादुर!" उसने अपने आपको प्रोत्साहित किया। "तुम मुझे नहीं हरा सकते!" छीलन के ढेर में एक लात मारते हुए उसने कहा! सामने से सड़क तक आये बरफ़ के अन्धड़ को मुक्का दिखाते हुए उसने कहा : "अभी मुझ में बहुत दम बाक़ी है।" देर

से आने वालों को मन ही मन सम्बोधित करता हुआ वह बोला : "तुम जब तक आओगे नहीं तब तक मैं तुम्हारा इंतज़ार करूंगा! तुम मुझे यहीं खड़ा पाओगे!"

उसके हाथ में थमी लालटेन का प्रकाश कभी चीड़ के पेड़ पर, कभी तार के खम्भे पर और कभी छीलन के ढेरों पर पड़ता और वे बारी-बारी से प्रकाश में नाच जाते। अब तक वह जाने कितने चक्कर लगा चुका था। उसका मन खिन्न होने लगा था। वह बक रहा था : "चीड़–छीलन–खम्भा! खम्भा—छीलन—चीड़! एक भी आदमी नहीं दिखाई देता। देर कर दी इन लोगों ने!...खम्भा—छीलन—चीड़! जैसे कोल्हू का चक्कर हो। आखिर कब घर से निकलेंगे ये काहिल?"

आखिर हवा के झोंके के साथ बहुत से लोगों के एक साथ गाने की गूंज आई। ढलवान पर एक छोटा सा घोड़ा दिखाई दिया। अल्योशा बिना पहिये की, बरफ़ पर फिसलने वाली, गाड़ी हांक रहा था। उसके पीछे बरफ़ गाड़ी में कई लड़कियां बैठी थीं।

"आधे घंटे लेट!" वासिली खीझ रहा था। गुस्सा दबाकर उसने लालटेन ऊपर उठाई और पुकारा :

"कौन है? ठहरो!"

वासिली ने किसी को डांटा नहीं। बस, उनकी आंखों के सामने लालटेन उठाकर अपनी घड़ी दिखा दी।

"साढ़े आठ बजे हैं! आधा घंटा लेट!" लड़कियों की ओर देखकर उसने कहा : "क्या यह तुम्हारी सुघड़ाई का नमूना है कि सब जगह छीलन फैली हुई है? आने दो तुम्हारे ब्याह का वक्त! सब बातें तुम्हारे दूल्हों को बताऊंगा! मैं कहूंगा कि ये बड़ी फूहड़ लड़कियां हैं। शाम को घर में झाड़ू लगायेंगी, मगर दूसरे दिन सवेरे तक के लिए कूड़ा वहीं छोड़ देंगी।"

"अरे हम क्या करतीं, वासिली कुज़मिच! रात पता है कितनी देर तक हम लोग काम करती रहीं?" एक बोली।

"वाह, वाह! हमने सोचा, तुम कहोगे 'शाबाश! सबसे पहले तुम्हीं आई हो।' तुम उल्टे डांट रहे हो!" दूसरी बोली।

"क्या कहना है! बड़ा हौसला है! एक तो आधे घंटे लेट, उस पर बड़ाई करवाने का चाव! ऐसे काम नहीं चलेगा, लड़कियो! कल से आना लेट! देखना यहीं सड़क पर कैसी खबर लेता हूं!"

बरफ़ गाड़ी आगे बढ़ कर मोड़ पर घूम गयी। लड़कियों की आवाज़ धीमी होती गयी। वासिली के चेहरे की मुस्कान उड़ गयी। उसके चेहरे पर फिर गम्भीरता छा गयी। वह फिर तार के खम्भे और चीड़ के पेड़ के

बीच तेज़ी से और गुस्से से चक्कर लगाने लगा। लालटेन का प्रकाश फिर बारी-बारी से तार के खम्भे, छीलन के ढेर और चीड़ के पेड़ पर पड़ने लगा।

सर्दी और सुनसान में प्रतीक्षा का मिनट-मिनट उसके लिए पहाड़ हो रहा था।

काफी प्रकाश हो जाने पर तीन और बरफ़ गाड़ियां दिखाई दीं। लुबावा, क्सेनिया और प्योत्र खेतों में खाद ले जा रहे थे।

वासिली दुराहे पर उनकी प्रतीक्षा करता रहा। उनके पास आने पर उसने उन्हें घड़ी दिखाई।

"खाद को ऐसी लापरवाही से क्यों फेंका जाता है? उसे अच्छी तरह दबाया क्यों नहीं जाता? ऐसे उसमें रह ही क्या जायेगा?"

इसके बाद लकड़ी काटने के लिए जंगल की ओर जाता मातवेयेविच का दल आया।

वासिली ने उसे ताना दिया: "ज़रा घड़ी की तरफ़ देखो, मातवेयेविच! लोग तो कहते हैं बूढ़े सुबह बहुत जल्दी उठ जाते हैं, जवान देर में उठते हैं। यहां उल्टा ज़माना है। अलेक्सी छोकरियों के साथ कभी का चला गया। तुम्हारी और तुम्हारे साथ की औरतों की बारी अब आई है?"

मातवेयेविच झेंप कर चुप रह गया।

"लोग तो एक-एक करके जाने कब तक आते रहेंगे? कब तक यहां खड़ा रहूं?"

"देर से आने वालों के लिए तुम क्यों खड़े हो? जो देर से आयें उन्हें पैदल जाने दो!"

मातवेयेविच के पीछे औरतें और मर्द एक-एक करके धीरे-धीरे आ रहे थे। वासिली ने घड़ी की ओर देखा और कहा:

"गाय की दुम की तरह पीछे-पीछे घिसटते क्यों आ रहे हो? अच्छे किसान तो कभी के काम पर जा चुके हैं।"

कुछ लोगों से वासिली ने कहा कुछ भी नहीं, केवल आंखें मिला कर रह गया।

जब देर से काम शुरू करने वालों का दल चला गया तो वासिली टट्टू पर बैठ खेतों की ओर चल दिया। सुबह काम इतनी देर से शुरू होने के कारण वह मन ही मन खीझ रहा था।

"चाचा, वास्या!"

वालेंतिना की आवाज़ आई। वह एक बरफ़ गाड़ी पर जा रही थी। उसने कहा:

"वास्या चाचा! आन्द्रेई ने टेलीफोन किया था। उसने बताया है कि ज़िला केन्द्र में बिजली का सामान आ गया है। हमारे लिए बिजली की मोटरें और दूसरा सामान दोपहर की लारी से आ जायेगा!"

वालेंतिना की बरफ़ गाड़ी मोड़ पर जाकर आंखों से ओझल हो गयी। धूप की पहली किरणों में सड़क पर बन गये बरफ़ गाड़ी के निशान चमक रहे थे।

वालेंतिना की प्रसन्नता-भरी आवाज से और इस विचार से कि मीलों दूर बैठा आन्द्रेई फ़ार्म की कितनी चिन्ता कर रहा है, वासिली को सान्त्वना मिली। उसने फिर अपने पर क़ाबू पाने की कोशिश की। वह अपने आपको समझाने लगा:

"ज़रा-ज़रा सी बात पर नन्हें बच्चों की तरह मुंह फुलाने से क्या फायदा? आज काम ठीक से नहीं शुरू हुआ, तो कल से होने लगेगा। मेरी आदत क्यों बिगड़ गयी है? सुनो वासिली, तुम फिर पहले जैसे बनो!"

चुस्ती और फ़ुर्ती लाने के लिए उसने कोट के बटन खोल दिये। टट्टू को उसने वहीं छोड़ दिया और खेतों में उधर को चला जहां ढलती उम्र की स्त्रियां खाद को खेतों में दबा रही थीं।

"ओ हो! इन छबीली रानियों को देखो!" उसने मज़ाक के स्वर में पुकारा। "जाड़ा तो नहीं लग रहा किसी को?" अपना कोट उतार कर उसने लुबावा के कन्धों पर डाल दिया और उसके हाथ से बेल्चा छीन लिया।

"हां, जरा ज़ोर से, लड़कियो!" बेल्चे को ज़ोरों से चलाता हुआ वह बड़बड़ाने लगा: "ठंड लग रही है, लड़कियो? कोई बात नहीं! अभी गर्मी आई जाती है! क्या? बड़ी मुसीबत है? कोई फिकर नहीं! जल्दी ही हालत सुधरेगी! इन्हीं खेतों में बढ़िया फसल लहलहायेगी! हम लोग जलसा करेंगे! तभी मैं तुम सबका ब्याह भी करवा दूंगा!"

उसे उम्मीद नहीं थी कि इन छोटे-मोटे मज़ाकों का वह असर होगा जो हुआ।

स्त्रियों के जाड़े से सिकुड़े चेहरे खिल उठे। उनके हाथ जल्दी-जल्दी चलने लगे!

"वासिली, आज बड़े खुश दिखाई दे रहे हो! क्या मिल गया है तुम्हें?" लुबावा ने पूछा।

"कल पार्टी मीटिंग में खूब फटकार मिली। तबियत झक हो गयी।"

"तो फटकार से तुम्हें फ़ायदा होता है?"

"और क्या? पुराने बोरिये को झाड़-फटकार दो तो साफ़-सुथरा हो जाता है। कहो तो ज़रा तुम्हें भी झाड़ दूं!"

" किस बात के लिए ? क्या जैसे डाटते-फटकारते हो वैसे ही डाटो-फटकारोगे ?"

" हां !... तुम्हारी आंखें हैं कि बटन ? बड़ी समझदार गिनी जाती हो, लेकिन यह किया क्या है तुमने ? ये खाद के ढेर कैसे बिखरे हुए हैं ? उन्हें पीट कर दबाया क्यों नहीं गया ? इस तरह तो अच्छी खाद बरबाद ही होती है !... मोंगरी किस लिए होती है। तुम्हें उसका खयाल भी नहीं आया ?... इससे भी बढ़कर यह कि दो दिन से आप खाद ढो रही हैं, लेकिन यह नहीं हुआ कि गाड़ियों के पीछे अलग निकलने वाला तख्ता बनवा लें। खाद गिराने में उससे कितनी आसानी हो जाती ! पेत्रो ! ओ पेत्रो !" उसने पुकारा। "अस्तबल में जाकर खाद ढोने वाली गाड़ियों में बाहर निकलने वाले तख्ते लगवा ले। यहां आ, मैं बताऊं।" उसने पेत्रो को पास बुलाकर समझाया। "दो मिनट का काम है ! समझा ?"

खेतों से वासिली जंगल में कटाई की जगह पहुंचा। वह लकड़ी काटने वालों से हंसता-बोलता रहा। उसने सुझाया कि लकड़ी नीचे पहुंचाने के लिए शहतीरें रख कर रेल की लाइन सी बना ली जाये तो लकड़ियां फिसल कर नीचे पहुंच जायेंगी। उसने लकड़ियां ले जाने का एक पास का रास्ता भी बताया।

मातवेयेविच को झेंप लगी कि इतनी सी बात उसे पहले क्यों नहीं सूझी। उसने बात बनायी : " बीच में खाई जो पड़ती है ! उसका क्या करें ?"

" खाई ? अरे, वह तो क्वार कातिक में थी ! आजकल तो खाई बरफ़ से पटी पड़ी है। कुछ और झाड़-झंखाड़ भर कर बरफ़ डाल दो ! बराबर हो जायेगी !"

वासिली खाई के किनारे जाकर उसे भरने में सहायता करने लगा। काम के बीच-बीच वह मज़ाक भी करता जा रहा था, परन्तु मन ही मन कुढ़ रहा था :

" इन लोगों का मन काम में है ही नहीं। क्या यह इन्हें अपने आप नहीं सूझ सकता था ? बेगार करने से क्या फ़ायदा ?"

दोपहर के खाने के समय वासिली भी अन्य सामूहिक किसानों के साथ अस्तबल में लौटा। वहां उसे मालूम हुआ कि गाड़ियों में पीछे ढीले फट्टे लगा देने से खाद की ढोवाई पहले से बहुत ज्यादा हुई है और पहाड़ की ढलवान पर शहतीरों की लाइन बना देने से आधे दिन में ही इतनी लकड़ी उतर आई है जितनी पिछले रोज़ दिनभर में आ पायी थी। किसान बड़े उत्साह से बातें कर रहे थे। वासिली से भी वे लोग अपूर्व अपनत्व से बातें कर रहे थे। दादी वासिलिसा ने कहा :

"अब तुम फिर कुछ-कुछ पहले जैसे लग रहे हो, वासिली कुज़मिच! हम लोग तो सोचते थे कि किसी अजनबी को प्रधान चुन लिया है।"

वासिली ने पड़ोस के एक सामूहिक खेत से सन कूटने की एक पुरानी मशीन खरीद ली थी। अल्योशा और प्योत्र कई दिन से उसे ठीक करने में लगे हुए थे। मशीनों के काम में अल्योशा का मन खूब लगता था; उसे मशीनों के काम से दिलचस्पी थी। प्योत्र, अल्योशा से मित्रता के कारण, सहायता में जुटा हुआ था।

अल्योशा के गम्भीर स्वभाव और पैनी सूझ के कारण यह शरारती लड़का भी उसे बहुत मानता था। प्योत्र अल्योशा को समझ नहीं पाता था, अल्योशा उसे एक पहेली लगता था, वह उससे बिलकुल भिन्न था।

मशीन के बगल में बैठकर पेंचों को कसते हुए प्योत्र ने कहा: "यार, तू अजीब आदमी है। कभी तो मुझे लगता है कि तू बहुत नरम मिजाज़ का है। लेकिन कोई तुझे दबाना तो चाहे! हिम्मत नहीं होगी उसकी। लगता सीधा-सादा है, पर है बहुत सख्त! वैसे कहो, तो ठंडा मिजाज़ है—बस लकड़ी के कुंदे की तरह ठंडा। कभी-कभी मुझे तुझसे रश्क होता है। अगर मैं लड़की होता तो तेरे लिए अपना कौमार्य कभी का लुटा दिया होता। लेकिन, यार कभी-कभी तू मेरे दिल में आग लगा देता है। आखिर, तू है क्या, खूसट? तू सीधा-सीधा जैसा क्यों नहीं बन जाता?"

"खूसट-ऊसट होने की कोई बात नहीं है। बात यह है कि मेरे दिमाग़ के सब पेंच ठीक से कसे हुए हैं!" मुस्कराकर अलेक्सी ने कहा।

"और मेरे दिमाग़ के?"

"तेरे दिमाग़ के और सब पेंच तो ठीक हैं, सिर्फ दसवां ग़ायब है।"

"यह 'दसवां' कौन सा है, मेरे भाई?"

"देखो, कभी-कभी होता यह है कि मशीन के सभी हिस्से ठीक दिखाई देते हैं; दांतोंवाली गरारियां आदि सब कसी हुई। लेकिन कहीं एक छोटा सा पुर्ज़ा—दसवां पुर्ज़ा—ग़ायब होता है। बस इस पुर्ज़े की ग़ैर-हाज़िरी ही मशीन को पूरी तेज़ी से नहीं चलने देती!"

सन की सांझी कुटाई के लिए झोपड़ी की मरम्मत हो गयी। सर्दी से बचाव के लिए अंगीठियां ठीक कर ली गयीं। बैठने के लिए बेंचें वग़ैरा रख दी गयीं। दूसरा सामान, जैसे सन-कुट्टी वग़ैरा, भी आ गया। सन की छड़ियां बरौठे में जमा कर दी गयीं।

जान पड़ रहा था कि सब काम बड़ी आसानी से और अपने आप ही होता जा रहा है। पर असल में उसके पीछे जी-तोड़ कोशिश और होशियारी थी वालेंतिना की।

वालेंतिना सन की सांझी कुटाई ऐसे आरम्भ करना चाहती थी कि लोग उसमें जलसे के तौर पर, प्रसन्नता और उत्साह से, भाग लें। इसके लिए पूरी तैयारी और संगठन की ज़रूरत थी। इन तैयारियों में अधिक से अधिक जितने लोगों को वह सम्मिलित कर सकी, उसने सम्मिलित किया। वह चाहती थी कि सन-कुटाई के इस नये केन्द्र में सभी लोग संतोष का अनुभव करें।

अल्योशा और प्योत्र ने मशीन की मरम्मत कर डाली। मातवेयेविच ने बेंचें बनायीं। अंगीठियां ठीक करने के काम की यासनेव ने निगरानी की। अंगीठियों के लिए ईंटें और मिट्टी क्सेनिया ने ढोईं। लेना और स्कूल के बच्चों ने खिड़कियां साफ कीं और दीवारों को चित्रों और फूल-पत्तियों से सजाया। सन की सांझी कुटाई का यह उत्सव था तो मामूली सी चीज़, परन्तु वालेंतिना को अपनी पूरी शक्ति और साधन इसमें लगा देने पड़े!

अब वह मुश्किल से ही कभी अकेली दिखाई देती थी। उसकी प्रतीक्षा में लोग अपनी खिड़कियों से ही सड़क या गली पर आंखें गड़ाये रहते। वह घर से निकली नहीं कि कोई न कोई, किसी न किसी मदद के लिए, आ पहुंचता।

कभी स्कूल के बच्चे आ घेरते और सन की कुटाई की झोपड़ी के लिए बनाये हुए पोस्टर दिखाने लगते। कभी मातवेयेविच को यह पूछने की ज़रूरत पड़ जाती कि बेंचों की ऊंचाई कितनी रखी जाये? कभी क्सेनिया ही उसे गली में रोक कर शिकायत करने लगती कि झोपड़ी में अंगीठियां बनाने के लिए अच्छी मिट्टी नहीं मिल रही। वालेंतिना समस्याओं के भंवर में फंसी रहती।

वासिली उसे देखता तो कहता: "यह क्या अपनी दुर्गति कर ली है? जब देखो, चूज़ों वाली मुर्गी की तरह घिरी हुई! अकेली कभी दिखाई ही नहीं देती हो!"

यह तो सभी देखते थे कि वालेंतिना सदा इस या उस काम में व्यस्त रहती है। परन्तु, इन सब कामों के लिए उसे कितनी चिन्ता, कितनी उधेड़-बुन रहती है, कितना हिसाब उसे अपने दिमाग़ में रखना पड़ता है, कितनी आशा-निराशा से लड़ना पड़ता है, इसका अनुमान किसी को नहीं था!

"यह काम हो भी पायेगा या नहीं?" वालेंतिना परेशान रहती। "सन की कुटाई करके हज़ार का जो लाभ होगा वह असली चीज़ नहीं है। असली बात यह है कि इस छोटी सी चीज़ को हम लोग बड़ी चीज़ बना पायेंगे या नहीं, इसे ऐसा बना पायेंगे या नहीं जैसे उस दिन कोई त्यौहार मना रहे हों! अगर यह काम ठीक से हो जाय तो सामूहिक खेत के जीवन में यह एक बहुत महत्वपूर्ण घटना होगी! अगर ठीक से न हुआ तो बस कुछ धन खेत को मिल जायेगा!"

मुलाक़ात होने पर या टेलीफोन पर बात होने पर आन्द्रेई उससे ज़रूर पूछ लेता कि पार्टी का काम कैसा चल रहा है ? वालेंतिना उत्तर देती :

"अभी तक तो अच्छा नहीं है। मेरा ख़याल है, मैं अभी तक उसे गम्भीरता से शुरू नहीं कर पायी। पार्टी संगठन की सेक्रेटरी बनकर मैंने अभी तक कोई महत्वपूर्ण काम नहीं किया है। फ़ार्म की अवस्था काफी सुधर गयी है। अनुशासन पहले की अपेक्षा अब काफी अच्छा है, लोगों में काम के लिए उत्साह भी है। पर, असली चीज़ अभी नहीं आई। अभी तक कोई ऐसा काम नहीं हुआ जिसके बारे में मैं कह सकूं—हां, यह मेरे करने से हुआ है, पार्टी सेक्रेटरी के रूप में यह मेरे प्रयत्नों का परिणाम है !"

वासिली सन कुटाई के काम को उतना महत्वपूर्ण नहीं समझता था जितना कि वालेंतिना समझती थीं। वासिली को सिर्फ़ यही लाभ दिखाई देता था कि इससे आवश्यक धन मिल सकेगा। अपने मन में अनेक सन्देहों के होते हुए भी वह पूरी लगन और इच्छा-शक्ति से वालेंतिना की सहायता कर रहा था।

"सन की कुटाई का काम तो लोग दो-तीन दिन करेंगे और फिर बन्द कर देंगे ! जैसी हालत है, उसे देखने से पता चलता है कि अपने रोज़ के काम के लिए लोग ऐसे निकलते हैं जैसे गोमदानी से मक्खियां निकल रही हों। लोग दिन में अपना काम निबटाकर रात में 'ओवर-टाइम' करने पहुंचे—यह मेरी समझ के बाहर है। इतने आदमी हैं नहीं कि कुछ को इसी काम पर मुश्तकिल तौर पर लगा दिया जाय ! लकड़ी की कटाई, ढोवाई, खाद का काम, गोशाला और अस्तबल की मरम्मत—सभी के लिए तो आदमी चाहिए !"

सन की कुटाई की झोपड़ी में सब तैयारी हो चुकी तो एक दिन तान्या, कौतुहल के कारण, वहां आई। विस्मय से हाथ ऊपर उठाकर बोली :

"हे मेरे भगवान ! ये मालायें ! ये तसवीरें ! इतनी सजावट ! इनकी क्या ज़रूरत ? इन पर गर्द जमते कितनी देर लगेगी ?"

"इनकी ज़रूरत इसलिए है," वालेंतिना ने उत्तर दिया, "कि लोग यहां आकर बैठें तो जगह ज़रा साफ़-सुथरी और ढंग की लगे !"

दिन भर के काम के बाद लोगों ने शाम को सात बजे आना शुरू किया।

अल्योशा बिलकुल नये कपड़े पहनकर आया था। वह बड़ा गम्भीर लग रहा था। सिर के बाल कंघी से संवारे हुए थे, मांग तिरछी कढ़ी थी। कपड़ों पर यत्न से लोहा किया हुआ था। उसकी यह तैयारी वालेंतिना को अच्छी लगी।

"यह सब कुछ समझता है ?" उसने सोचा।

खुश-मिजाज़ तातिआना कौमसोमोल की अपनी टोली को लिए हुए आई ! सभी कामों की समर्थक उदार-हृदया अवदोत्या आई। उसके बाद दादी वासिलिसा आई—बड़ी प्रसन्न, और बड़ी बातूनी ! फिर बुज़ुर्गों के सम्मानित प्रतिनिधि मातवेयेविच आये ! इसके बाद अपनी शैतान-चौकड़ी के साथ प्योत्र आया ! फिर सभी लोग, निमंत्रित या अनिमंत्रित, आये। अनिमंत्रित लोग देखना चाहते थे कि कौमसोमोल वाले अब कौन सा नया गुल खिलाते हैं।

चंचल, भेंगी आंखों वाली, चटपटी फ्रोस्या सिर पर नया रूमाल बांधकर और नयी बालियां पहनकर आई थी। वह होठों पर सुरखी लगाये थी और लच्छेदार बाल काढ़े थी। कुछ देर वह बड़ी अदा से दरवाज़े पर खड़ी रही ताकि आंखों को चकाचौंध कर देने वाले उसके रूप को सब लोग देख लें।

फ्रोस्या की दोनों आंखों का रंग अलग-अलग था ! एक आंख की पुतली नीली थी और दूसरी आंख की पीली ! उसकी आंखें बिल्लियों की आंखों जैसी लगती थीं। लेकिन, इससे उसको ज़रा भी परेशानी नहीं थी। गांव के नौजवानों को अपनी अदाओं से क़तल करने में उसकी बराबरी कोई नहीं कर सकती थी।

"अरे क्या है यह सब ? क्या तैयारियां हैं ? बिना पहले से बताये कोई पार्टी की है ? पर, इतनी जल्दी की क्या ज़रूरत थी ? मुझे क्यों नहीं बुलाया गया ? बड़े शर्म की बात है !"

"तुझे बुलाने न बुलाने से क्या फ़ायदा ? तू तो यों भी आये बिना नहीं मानती !"

वासिली और वालेंतिना ने निश्चय किया था कि कार्रवाई कौमसोमोल की ओर से अल्योशा के भाषण से आरम्भ होगी।

अल्योशा आकर मेज़ के पास खड़ा हुआ। कुछ पल वह चुप ही खड़ा रहा। अपने आपको सम्भालने के लिए बार-बार वह अपने घुंघराले बालों में उंगलियां चला रहा था।

सबकी आंखें उसकी ओर लगी थीं। वालेंतिना घबरा रही थी।

"ठीक से बोल भी पायेगा ?" वह सोच रही थी। "शुरू क्यों नहीं कर रहा है ?" मन ही मन वह उसे ढाढस दे रही थी : "बहुत हो गया, अब रहने दे अपने बालों को ! लोग हंसने लगेंगे ! शुरू कर ! शाबाश !"

कोई महत्वपूर्ण भाषण देने के लिए खड़े वक्ता के बाल अल्योशा के अनुसार जैसे होने चाहिए, वैसे बाल बना लेने के बाद उसने बोलना शुरू किया।

"साथियो !" उसने कहा। "एक समय हमारे फ़ार्म की स्थिति अच्छी थी और हमारी प्रतिष्ठा भी थी। हमें अपने फ़ार्म को फिर उसी स्तर पर

उठाना है। हमें अपने पशुओं की अवस्था सुधारनी है। हमें अपने खेतों में अच्छी तरह खाद देनी है। अगली फसल बोने की हमें अच्छी तरह तैयारी करनी है। इस काम के लिए हमें कुछ अधिक रूबल की ज़रूरत पड़ेगी। सरकार ने हमें इस काम के लिए कर्ज़ा देने का आश्वासन दिया है। लेकिन यह अच्छा नहीं लगता कि हम सहायता की प्रतीक्षा में हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें। हम कौमसोमोल सदस्यों ने फ़ार्म की सभा को वचन दिया है कि हम लोग एक जनवरी से पहले फ़ार्म को कम से कम तीस हज़ार रूबल दे देंगे। हमने हिसाब लगाया है कि यदि हमारे यहां के सन को ठीक ढंग से तैयार करके ऊंचे दर्ज़े के सन के रूप में सरकार को दिया जाये तो इतना धन आसानी से मिल सकता है। हमारे क्षेत्र के बहुत से काम अभी अधूरे पड़े हैं और हमारे यहां आदमियों की संख्या भी कम है। इसलिए, हमने फ़ैसला किया है कि सन की कुटाई और सफाई का काम हम लोग सांझ को, खाली समय में, किया करेंगे। जो लोग फ़ार्म की हालत सुधारने में हाथ बंटाना चाहते हैं, वे अपनी मर्ज़ी से हमारे साथ शामिल हो सकते हैं। वे जिस दल में भी चाहें, अपना नाम लिखा सकते हैं। साथियो, मुझे इतना ही कहना था। अब हमें अपने आपको अलग-अलग दलों में बांट लेना चाहिए और काम शुरू कर देना चाहिए।"

एक शोर सा मच गया।

"फ़ोस्या हमारे दल में शामिल हो जा।" वालेंतिना बोली। "तेरे रहने से ज़रा मज़ा रहेगा।"

"मैं अल्योशा के दल में जाना चाहती हूं! बोल अल्योशा, तेरे दल में हमारे जैसे चंचल लोगों के लिए भी जगह है या सिर्फ़ गम्भीर लोगों को ही लेगा?"

"जो भी काम करना चाहे, आ जाये!"

"अच्छा भाई, सन भीतर लाओ।"

सन की छड़ियों के उठाने और पटके जाने की आवाज़ होने लगी। धूल उठने लगी। सन की मीठी गंध कमरे में भर गयी।

अल्योशा ने अपनी आस्तीनें चढ़ा लीं और मशीन के पास जा खड़ा हुआ; सन की छड़ियों का पहला पूर मशीन में कुचल कर बाहर निकाला। सन का पहला सुनहला गुच्छा मेज़ पर सजा कर रखा गया। उसे सिर के ऊपर उठाकर प्योत्र बोला :

"देखो, यह हमारा पहला अतिरिक्त रूबल है!"

तातिआना बोली : "ला, इसे यहां दे! इसे दीवार पर लटकाऊंगी।

यह यहां आज के दिन की याद के तौर पर रहेगा।" उसे फर की टहनियों में गूंथ कर तातिआना उसकी माला बनाने लगी।

कमरे में लोग ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रहे थे।

"पहले हमारे क्षेत्र की अवस्था अच्छी थी, तो फिर क्यों नहीं होगी? ज़रूर होगी!"

"याद है, जब हम लोग ज़िले की कान्फ्रेंस में उग्रेन जाते थे तो लोग हमारे घोड़े देख कर इशारा करते थे: 'देखो, देखो, पहली मई फ़ार्म के घोड़े!' क्या घोड़े थे! काले चमकदार! बिजली की तरह तड़पते हुए! देखकर लोगों की आंखें फटी की फटी रह जाती थीं!"

"फ्रोस्या, यह नया रूमाल क्यों बांध कर आई है?" अवदोत्या बोली। "गर्द से मैला हो जायेगा।"

"ऊंह, रूमाल का क्या है," फ्रोस्या ने उत्तर दिया, "नया ख़रीद लूंगी! रूमाल तो कुछ भी नहीं है, अपने कौमसोमोल लीडर अल्योशा के लिए तो मैं जान तक क़ुर्बान कर दूं!"

बूढ़े मातवेयेविच ने दादी वासिलिसा को सम्बोधित किया: "तो हम-तुम भी कौमसोमोल में शामिल हो गये न, वासिलिसा मिखाइलोवना।"

"हम लोग इन नौजवानों से किस बात में कम हैं? खामखा ही ये लोग बकवास करते हैं कि हम पुराने जमाने के लोग हैं! मुझसे पूछो तो हम पुरानिया लोग ही असली सामूहिक किसान हैं!" दादी वासिलिसा ने कुछ क्रोध से उत्तर दिया।

इस सुखमय वातावरण और सुपरिचित काम से दादी प्रसन्न थीं। नौजवानों से आदर पाकर उनका उत्साह दूना हो गया था। अपने कड़े हाथों से वह सन की पतली-पतली छड़ियों के मुट्ठे बड़े कौशल से बना रही थीं।

"आजकल के लड़के-लड़कियों के दिमाग़ खराब हो रहे हैं। इन्हें जो मिलता है, उससे संतोष नहीं होता; इनका मन ही नहीं भरता!" वह कौमसोमोल के सदस्यों को सम्बोधित करती हुई बोली: "फ्रोस्या को देखो! नया रूमाल बांध कर आई है। कहती है, वह खराब हो जायेगा तो नया खरीद लूंगी। लो! मैं तुम लोगों को कुछ अपने बारे में भी बता दूं।" दादी ने चारों ओर बैठे लोगों पर नज़र दौड़ायी। इस बात से उसका मन खिल उठा कि सभी के चेहरों पर उसकी बात सुनने की उत्सुकता है। अस्तु, अपनी जगह पर वह ज़रा और जम कर बैठ गयी और बोली: "सुनो बच्चो! एक मर्तबा मुझे एक नन्हीं सी बछिया दी गयी—इतनी बड़ी—" दादी ने एक छड़ी फ़र्श से डेढ़ हाथ ऊंची उठा कर बछिया की ऊंचाई बतायी। "मैं उसे पालती रही, पालती रही! अरे! वह तो बढ़कर पूरी गैया बन गयी।" दादी ने

आंखें और हाथ फैला कर इस असाधारण परिवर्तन पर विस्मय प्रकट किया, मानो बछिया का गाय बन जाना बड़ी आश्चर्यजनक और आनन्ददायक घटना हो। "मेरे पास एक रूमाल था। एक दिन मैंने अपना रूमाल धोकर सूखने डाला था। बाहर आकर देखा तो कमबख्त गैया रूमाल को चबाये जा रही थी। दादा रे, दादा!" दादी आंखें बन्द करके ऐसे हिलने लगी जैसे उसके कहीं दर्द उठ रहा हो। "ओह, मैं कितना रोई थी! मेरे पास पुराना-धुराना वही एक रूमाल था और उसे भी गाय चबा गयी थी! तुम लोग मानो चाहे न मानो, मैंने अपनी हालत खराब कर ली थी—बस, बाल नोच डालना बाकी था! तब तक मेरा ससुर आ धमका। मुझसे पूछा: 'क्यों रो रही है री!' अब बताऊं तो कैसे? गालियां पड़तीं कि बड़ी लापरवाह है! यह कहते शरम लगती थी कि गैया रूमाल चबा गयी है, इसलिए रो रही हूं। मैं चुप्पी साधे रही। लेकिन वह भला काहे को मानने का। 'क्यों सिसकियां भर रही है?' उसने पूछा। आखिर मैंने बताया: 'गैया रूमाल चबा गयी है।' 'बस? इसीलिए रो रही है?' वह बोला! 'हम लोग उग्रेन के बाज़ार जायेंगे तो तेरे लिए और रूमाल खरीद लायेंगे।' मैं कितनी खुश थी! अरे, तुम लोगों को क्या मालूम कि मैं कितनी खुश थी! लेकिन हुआ क्या, मेरी शहजादियो? कुछ मालूम है?" वासिलिसा ने सन की छड़ियां एक ओर रख दीं और नाराज़गी से चारों तरफ देखा मानो उन्हें भी अपने क्रोध और आक्रोश में शामिल होने के लिए आमन्त्रित कर रही हो। "आखिर, मेरी सास ने रूमाल नहीं खरीदा! न किसी को खरीदने दिया! बस, मजबूरन वही फटा रूमाल बांधे फिरती थी! दैया, शर्म के मारे मैं धरती में गड़ी जाती थी।"

दादी चुप हो गयी। उसकी आंखें कहीं दूर देख रही थीं। सामने की दीवार पर वह ऐसे नज़र गड़ाये थी मानो उसे चीर कर अपने अतीत को देख रही हो।

उसकी करुण कथा के प्रति सहानुभूति में एक निस्तब्धता सी छा गयी। सिर्फ सन की छड़ियों की कड़कड़ाहट और मशीन की घड़घड़ाहट की आवाज़ हो रही थी।

मातवेयेविच बुदबुदाया, जैसे सपने में बातें कर रहा हो: "मेरा पोता है न, उसे इसी कातिक में स्कूल में दाखिल करवाना है। उसकी मां ने उसके लिए बूटों पर चढ़ाने वाले बरफ़ के जूते नहीं खरीदे। बस, रो-रोकर उसने सारा घर सिर पर उठा लिया। मैंने उससे कहा, 'कोई बात नहीं बरफ़ और कीचड़ में जाते समय बूटों पर गूदड़ लपेट लेना, काम चल जायेगा।' अरे, घर भर के लोग मुझ पर बरस पड़े। मुझे लगा, मेरे सिर पर मनों ईंटें टूट पड़ी हैं। मैंने चालीस बरस की उमर में पहली बार बरफ़ वाला जूता पहना

था। बूट तो बस कभी किसी से मिलने-जुलने जाना होता तो दिखाने के लिए पहन जाता था! इतवार को गिरजे जाना होता तो बूट हाथ में उठा कर ले जाता था। वहां जाकर पहन लेता था। प्रार्थना के बाद गिरजे से बाहर निकला तो हाथ में ले लेता और घर चला आता! सच कहता हूं!"

सन की मूठों के ढेर बढ़ते ही जा रहे थे। झोपड़ी में सन की सफेद गर्द भर गयी। जान पड़ता था कि बादल भीतर घुस कर छा गये हैं। सन साफ करती हुई दादी सन के मटमैले सफेद रेशमी तारों से ढंकी बैठी थी।

सन के तार कमरे भर में छा रहे थे, कुछ मेज़ पर भी उड़-उड़कर आ गिरे थे। मालूम होता था कि सारा कमरा, और उसमें बैठे तमाम लोग, सन के बारीक़ मुलायम जाले में फंसे हुए हैं।

अवदोत्या ने गर्दन सीधी की, सिर पर रूमाल सीधा किया, और फिर धीमे स्वर में गाने लगी :

मैं बोवन गयी थी सनिया,
मैं गावन लागी रनिया,
जल्दी जल्दी बढ़े मोरी सनिया!

वह बारीक़ किन्तु स्पष्ट और मधुर स्वर में गा रही थी :

जल्दी जल्दी बढ़े मोरी सनिया!

उसकी आवाज़ और भी सुरीली हो उठी :

गोरी, गोरी, बढ़े मोरी सनिया!

लुबावा भी अपनी भारी सी आवाज़ में आदेश के स्वर में गाने लगी :

हां, हां,
जल्दी बढ़े मोरी सनिया!

कमरे में बैठी दर्जनों लड़कियों की आवाज़ें सन की छड़ियों और सन के ढेरों के ऊपर मडराने लगीं।

मौक़ा देख कर सन की मूठों के ढेर की आड़ में पीछे से आकर फ्रोस्या ने प्योत्र के कान में धीरे से कहा :

"तेरी सुनहरी ज़ुल्फें तो सनिये की तरह चमक रही हैं! सच!"

"फ्रोस्या!" प्योत्र ने धीमे स्वर में उसे चिढ़ाते हुए उत्तर दिया : "याद है, पिछले जाड़ों की बात? लड़के तुझे पीटने पर तुल गये थे?"

"तो क्या हुआ! एक साथ चार के साथ जाने की सज़ा थी!" फ्रोस्या ने न्याय की बात बताते हुए जवाब दिया।

"इस साल भी वैसा ही न हो जाय!"

फ्रोस्या हंस दी और प्योत्र के मुंह के पास मुंह लाकर गाने लगी :

गो-री-ई गो-री-ई बढ़े मोरी...

अवदोत्या आगे की कड़ी गा रही थी :

मैं पीटन गयी थी सनिया,
मैं गावन लागी रनिया...

घर में सन की सफ़ेद गर्द भरी हुई थी और उसमें सन के रेशे लहरा-लहराकर उड़ रहे थे। लोगों के चेहरों पर मुस्कराहट थी। गीत लम्बा मगर उल्लासमय था। लय के साथ गाने का आरोह और अवरोह बड़ा मधुर लग रहा था। लगता था, सन के उड़ते रेशे, चेहरों पर नाचती मुस्कराहटें, कार्य में व्यस्त हाथ—संगीत लहरी के साथ ही उठते और गिरते हैं!

लोग आते थे और बैठकर गीत गाने लगते थे। उनके हाथ काम करते जाते थे। वे आपस में बात कर रहे थे :

"सनी तो कभी की पड़ी थी। यह काम पहले ही क्यों नहीं शुरू किया?"

वालेंतिना का मन उमग उठा : "बात बन ही गयी! बड़ी कामयाबी हुई!...कितने लोग आये हैं! शायद ही कोई न आया हो। मलानिया भी आई है। इसके आने की तो मुझे जरा भी आशा नहीं थी। आन्द्रेई मेरी प्रतीक्षा में बेचैन हो रहा होगा। दफ्तर दौड़ जाऊं और उसे फोन कर दूं? कहूं : 'बहुत सफलता से काम हो रहा है! इतनी तो मुझे भी आशा नहीं थी!'"

वालेंतिना की आंखें दूसरे छोर पर बैठे वासिली से मिलीं। वासिली की आंखों से आदर और प्रशंसा का भाव उमड़ रहा था।

गाते-बजाते मनोविनोद से काम करने की वालेंतिना की योजना को पहले उसने "औरतों की बात" समझकर उसे विशेष महत्व नहीं दिया था।

अब वासिली को वालेंतिना के पूरे व्यवहार में—बिजली घर में मातवेये-विच से झगड़े में उसके टोक देने से लेकर, पार्टी की मीटिंग में "प्रधान के काम में मुस्कराहटों" की मांग करने तक और इस शाम सन की कुटाई के काम में—सभी बातों में, एक तारतम्य दिखाई दे रहा था। वह सोच रहा था :

"हम दोनों एक ही जुए में जुते दो बैल हैं, या इक्के के दो पहियों की

तरह हैं। एक के बिना दूसरा चल ही नहीं सकता। दोनों ठीक से चलें तो हज़ारों मील निकल जायें!"

वासिली वालेंतिना के समीप आया। अपना भारी-भरकम गरम हाथ उसने उसके कंधे पर रख दिया।

उसकी आंखों से कृतज्ञता और स्तुति बरस रही थी। उसके स्वर में अपूर्व मिठास थी; वह अपने साधारण कर्कश हाकिमाना ढंग से नहीं बोला! उसने कहा:

"मुझे बहुत खुशी हो रही है! बहुत बड़ा काम किया है तुमने, वालेंतिना! तुमने तो लोगों में जान डाल दी है! मैं कह सकता हूं, आज पांच सौ रूबल से कम का काम नहीं होगा!"

वालेंतिना ने उसकी ओर देखा।

"... पांच सौ से ज़्यादा का होगा, वासिली कुज़्मिच! ज़रा सुनो तो, लोग क्या कह रहे हैं? "हम", "हमारा", "हम लोग"! ये कितने अनमोल शब्द हैं!"

८. स्तेपान का घर

गांव की सड़क के बीचोबीच एक लारी अड़ी खड़ी थी। ड्राइवर इंजन को ठीक करने का यत्न करता हुआ उतावली से गालियां दिये जा रहा था। नन्हीं दुन्या एक शॉल और कोट में लिपटी, नन्हें पैरों में बड़ी-बड़ी स्लीपरें डाले, तमाशा देखने के लिए लुढ़कती-फुदकती आ पहुंची।

वासिली ड्राइवर की सहायता कर रहा था। उसने टोका: "भले आदमी ज़रा ज़बान को लगाम लगा! देख, लड़की खड़ी है!" वासिली ने बिटिया को बांहों में उठा लिया! लेकिन दुन्या चुपके से वासिली की बांहों से फिसल कर निकल आई और इंजन के पास जा पहुंची। अपनी कौड़ियों जैसी काली-काली आंखें इंजन में गड़ाये वह चुपचाप खड़ी रही। फिर अचानक उसने अपनी बात कह ही डाली:

"कारबोरेटर के छेद बन्द हो गये हैं।"

वासिली और ड्राइवर ठहाका मार कर हंस पड़े।

"बहुत अच्छा! वाह!" ड्राइवर बोला: "भई, यह कह रही है तो कारबोरेटर भी देख लो। सचमुच! कारबोरेटर के छेद बन्द हैं!... क्या बेटी

पायी है तूने, वासिली कुज़मिच !... जब हम लोग इतने बड़े थे तब हम लोगों ने मोटर देखी भी नहीं थी। और इसे देखो, कहती है कि 'कारबोरेटर के छेद बन्द हैं!' गजब है, गजब!"

वासिली का मन पुलक उठा। लाड़ से अपनी दुन्या को उसने गोद में उठा लिया :

"शाबाश ! शाबाश मेरी रानी बेटी! कारबोरेटर की बात किसने बतायी थी तुझे ?"

"बप्पू ने !"

दुन्या का मतलब स्तेपान से था। वासिली समझ गया। उसके मन की प्रसन्नता उड़ गयी। अपनी इस छोटी बिटिया से वासिली चिन्तित रहता था। दुन्या उसे अपनाने और स्तेपान को भुला देने के लिए तैयार नहीं थी। तो भी, दुन्या को वह बड़ी लड़की कात्या से ज्यादा प्यार करता था। यह रहस्य वासिली की समझ में नहीं आता था।... शायद इसका कारण यह हो कि कात्या उसके यौवन की सन्तान थी; उन दिनों की,. जब उसका पारिवारिक जीवन सुखमय था, जब उसे प्रेम और स्नेह की वैसी आवश्यकता नहीं थी जैसी आज! दुन्या खरी बात कहने वाली और अपने मन की करने वाली थी। सुस्ती उसे ज़रा भी पसंद नहीं थी। मां तंग आकर कभी उसके चपत लगा देती तो दुन्या पूछ लेती :

"अम्मा, तुमने थापी दी है कि मारा है ?"

दुन्या को चोट की परवाह नहीं थी, पर वह सज़ा बर्दाश्त नहीं कर सकती थी। यदि मां हंस कर उत्तर देती कि : "तू बड़ी शैतान है, तुझे थापी दी है", तो चाहे जितनी ज़ोर से मारा हो, कोई बात नहीं। यदि मां गुस्से में कह देती कि : "तू खराब लड़की है, मैंने तुझे सज़ा दी है", तो उंगली भर छुला देने से दुन्या आंसुओं की वर्षा शुरू कर देती।

दुन्या पर दिन भर चौकसी रखनी ज़रूरी थी। कोई न कोई शरारत उसे हर घड़ी सूझा करती थी। अक्सर वह अपनी शरारत छिपाती भी नहीं थी।

घर में इस समय आश्चर्य में डाल देने वाली शान्ति देख कर, कुछ उद्विग्न होकर, अवदोत्या ने पुकारा : "बेटी कात्या ! देखना तो दुन्या कहां है, क्या कर रही है ?" कात्या ने दूर से ही देख कर कह दिया :

"अम्मा, कुछ नहीं कर रही है ! खिड़की के पास खड़ी है !"

"नहीं, नहीं ! जरा पास से तो देखो", दुन्या की भर्राये गले की आवाज़ सुनाई दी, "अम्मा, मैं खिड़की को उधर झुका रही हूं..."

अवदोत्या दौड़ी-दौड़ी पहुंची। देखा, दुन्या खिड़की के पास खड़ी कांच में अपना माथा और नाक सटाये पूरे ज़ोर से उसे धक्का दे रही है।

"क्या कर रही है, शैतान ?"

"अम्मा, देखो तो कांच झुक रहा है..." दुन्या ने उल्लास भरे स्वर में उत्तर दिया।

न्याय के सम्बंध में भी दुन्या की समझ बहुत परिपक्व थी।

एक दिन वासिली किसी काम से, बीच में ही, पल भर को घर आया। घर में सन्नाटा देखकर वासिली को विस्मय हुआ।

दुन्या घर में अकेली थी। वह निरलस भाव से चुपचाप तन्दूर के पीछे के कोने में उस जगह खड़ी दीवार की मिट्टी कुरेद रही थी जहां सज़ा देने के लिए मां उसे खड़ा कर देती थी।

"क्या अम्मा ने सज़ा दी है ?"

"नहीं तो !" दुन्या ने बिना एक क्षण सोचे-विचारे उत्तर दे दिया।

"तो फिर, यहां क्यों खड़ी है ?"

"ऐसे ही..."

"कुछ शैतानी की है, मालूम होता है !"

दुन्या मौन खड़ी रही।

"बता, क्या बात है ?"

"वह... रसोई घर... में... एक प्याला टूट गया !" दुन्या ने ऐसे स्वर में उत्तर दिया, जैसे टूटे प्याले और उसका कोई सम्बंध ही न हो।

"आहा ! तो यह बात है ? रसोई घर में एक प्याला टूट गया, और तू यहां आकर खड़ी हो गयी ! ऐसे ही ! बेकार में !... कैसे टूटा प्याला ? हां, समझा ! बिल्ली ने अपनी दुम से उसे तोड़ दिया होगा !"

दुन्या ने सिर लटका लिया।

"हां...बिल्ली ने ही तोड़ा होगा.. !"

"कहां है, लाठी ! मैं अभी इस कमबख्त बिल्ली की कमर तोड़ता हूं। ठहर जा तू !"

दुन्या की पलकें फड़फड़ाने लगीं। उसके गुलाबी गालों पर आंसुओं की धारा बह चली।

"...नहीं, नहीं ! बापू ! बिल्ली को लाठी से मत मारो। मेरी ग़लती थी ...मैं...मैंने... तोड़ा है ! ऊं-ऊं-ऊ।"

दुन्या ज़ोरों से सिसक रही थी। उसके आंसू थम ही नहीं रहे थे।

वासिली के घुटनो से चिपक कर वह फफक-फफक कर रोने लगी थी। वह प्याला दादी को बहुत प्यारा था। प्याला टूट जाने से दुन्या सकपका गयी थी। मन की चुभन मिटाने के लिए वह खुद ही कोने में जा खड़ी हुई थी। जितना ही दुख दुन्या के मन को होता, उतनी ही दृढ़ता वह अपने स्वभाव में लाती।

"बिलकुल मुझ पर ही गयी है !" वासिली ने सोचा। "बिलकुल मुझ जैसी ही है !"

वासिली को दुन्या की हर बात आश्चर्यजनक और प्यारी लगती। उसका मन उसी में रमा रहता। परन्तु दुन्या ? दुन्या, स्तेपान को ही याद करती रहती थी। वासिली से वह दूर-दूर भागती रहती थी। उसे लगता था कि वासिली ने ही उसके प्यारे "बापू" को भगा दिया है।

अपनी बेटी में ही नहीं, वासिली को अपनी पत्नी में भी एक छिपे, अस्पष्ट से, दुराव का आभास मिलता था।

अवदोत्या अब भी उसका प्यार और आदर करती थी! पर उसके प्यार में अब पहले जैसी गरमाई नहीं थी और उसका आदर निरुत्साहपूर्ण लगता था। अब इससे वासिली का मन खुश नहीं होता था।

अवदोत्या उसके लिए तरह-तरह का स्वादिष्ट भोजन बनाती थी। जब वह आता था तो वह घर को भी खूब साफ-सुथरा रखती थी। लेकिन, उसे हंसी-मज़ाक न सूझता! उसके होठों पर खुशी की मुस्कान न दिखाई देती। वासिली दोपहर में दो मिनट को घर आता तो सीधा मेज़ पर जा बैठता और बिना इधर-उधर नज़र दौड़ाये नीरस स्वर में पुकारता :

"दुन्या, खाना दे दे ! मुझे जल्दी है !"

शून्य आंखों से इधर-उधर देखता हुआ वासिली चुपचाप जल्दी-जल्दी खाना खा लेता। उसके दिमाग़ में बीसियों उलझनें भरी रहतीं थीं। उसके जिम्मे सैकड़ों काम थे जिनकी बाबत वह अवदोत्या से न तो बातें करना चाहता था, न करता था; जिनके बारे में अवदोत्या न तो कुछ पूछती थी, न पूछने का साहस कर सकती थी। वह चुपचाप खाना खाता और फिर शाम तक के लिए चला जाता। वह शाम को लौटता तो थका हुआ और परेशान—बीसियों उलझनों और परेशानियों में डूबा हुआ। अवदोत्या को इनका कोई पता न रहता था।

और अवदोत्या ? स्तेपान के लिए वह छिपी चाह की टीस मन में दबाये थी। वह वासिली के कामों और समस्याओं में हिस्सा बंटाकर उसकी सहयोगी और सहायक बनने के बजाय एक मूक और गूंगी दासी बनती जा रही थी। दासी के जीवन से उसे पहले भी संतोष न था। और अब, जब वह स्तेपान को तथा सच्चे प्रेम की पूर्णता को पा चुकी थी, उसे सदा ही स्तेपान के साथ बिताये जीवन की याद आती रहती। अनायास ही वह उसके व्यवहार की तुलना वासिली के व्यवहार और अपने इस जीवन से करने लगती। पहले से कहीं अधिक तीव्रता से उसका मन स्तेपान के लिए अकुला उठता।

अवदोत्या का हमेशा मुरझाया-मुरझाया चेहरा और पथराई हुई चिन्तित आंखें देखकर वासिली खीझ उठता था।

"इसका पति लौटकर घर आया है, और यह मुर्दा बनी घूमती है।" वासिली सोचता रह जाता। "मैंने सब माफ़ कर दिया—चलो, जाने दो, जो हुआ सो हुआ! पर क्या मैं इसका पति नहीं हूं? लेकिन, लगता है अपराधी यह नहीं, बल्कि मैं हूं।"

वासिली सोचता कि अवदोत्या ने उसकी उदारता की उचित क़द्र नहीं की है। यह विचार उसे हमेशा कचोटता रहता था। फलस्वरूप, उसके व्यवहार में अधिकाधिक निष्ठुरता आती गयी। उधर, अवदोत्या अलग अपने दिल के फोड़े को पका रही थी।

"इसके एक शब्द पर मैंने स्तेपान को हृदय और जीवन से दूर कर दिया। फिर क्यों यह मुझे निरादर की दृष्टि से देखता है?" वह सोचती। "जो बात हो, एक बार साफ़ हो जानी चाहिए... सारी गंदगी तह से निकाल फेंकी जाय! पर मैं इससे कहूं क्या? क्या यह कहूं कि मैं तुम्हारे साथ खुश नहीं हूं, मुझे स्तेपान की याद आती है? मैं उससे कह भी दूं, तो? फिर क्या होगा? क्या हम लोग साथ रह पायेंगे? अगर अलग हो जायें, तो बच्चों का क्या होगा? नहीं... ! मुझे चुप ही रहना चाहिए... ! किसी तरह इसे भी पार कर लेंगे।"

और, दोनों चुप्पी साधे रहते।

चुप्पी इसलिए भी थी कि दिनोंदिन बलवती होती ईर्ष्या के कारण वासिली अवदोत्या की हर बात का उल्टा अर्थ लगाता था।

एक दिन अवदोत्या ने कहा: "फ्रोस्या फिर प्योत्र वाले दल में ही काम करना चाहती है। वह उससे जुदा नहीं होना चाहती। मालूम होता है दोनों में प्यार हो गया है!"

वासिली ने झट अर्थ लगाया: "इसका मतलब स्तेपान से है। इसे उसकी जुदाई का बड़ा ग़म है! जब देखो, आहें भरती रहती है। स्तेपान के लिए आहें भरती है! बेहतर यह होगा कि आहें भरने के बजाय वह बच्चों पर ध्यान दे।"

उसने ऐसी रुखाई से उत्तर दिया कि अवदोत्या कुछ समझ ही न पायी:

"तुझे क्यों फ्रोस्या की फिकर लगी है?"

वासिली की रुखाई से खिन्न होकर अवदोत्या कोठरी से बाहर चली गयी।

एक दिन अवदोत्या ने दुन्या को डांटते हुए पूछा: "अरी बेटी, तूने अपनी यह मोटर-लारी कैसे तोड़ डाली?"

वासिली के मन में तुरन्त यह विचार कौंध गया : "स्तेपान ने यह खिलौना बनाया था, इसीलिए इसे इतना दर्द हो रहा है... !"

उसने लारी उठाकर आग में फेंक दी।

"दुनिया भर का झाड़-झंखाड़ घर में भर रखा है ! उग्रेन तो गयी थीं तुम, बच्चे के लिए कोई अच्छा सा खिलौना क्यों नहीं ले आईं। जहां देखो, कबाड़ा भर रखा है !"

जवानी में वासिली को बीसियों स्त्रियों की आकर्षणपूर्ण नज़रों की गरमी मिली थी। उससे उसका मिजाज़ बिगड़ा हुआ था। ईर्षा का अनुभव उसके लिए नया ही था। ज्यों-ज्यों ईर्षा बढ़ती थी, वासिली की असमर्थता भी बढ़ती जाती थी, उसकी पीड़ा भी घनीभूत होती जाती थी।

अवदोत्या सामूहिक खेत की गोशाला में काम करती थी। इस काम में दोनों का सहयोग हो सकता था। परन्तु, वासिली गोशाला जाता ही नहीं था। कारण यह था कि फ़ार्म के काम की अन्य शाखाओं की अपेक्षा गोशाला का काम अधिक ठीक चल रहा था और इससे उसके मन को तसल्ली थी।

गोशाला का काम कोई दूसरी स्त्री सम्भाल रही होती, तो वासिली अवश्य उसके काम की प्रशंसा करता और उसका उत्साह बढ़ाता। परन्तु अवदोत्या तो उसकी पत्नी थी ! इसलिए, वह सोचता, उसे तो और सबों से अच्छा काम करना ही चाहिए।

जो भी हो। दिन पर दिन दोनों के बीच का अन्तर बढ़ता ही जा रहा था। और अवदोत्या, जो दूसरे प्रकार के व्यवहार की आदी थी, दिन पर दिन दयनीयता की मूर्ति बनती जा रही थी।

जिस वस्तु पर भी उसकी नज़र पड़ती, वह स्तेपान की स्मृति को ताज़ा कर देती।

मेज़ पर स्तेपान के हाथों का जड़ा हुआ तख्ता ! दुन्या के लिए धागे की खाली रीलों के पहिये लगाकर बनाई हुई मोटर !... अवदोत्या के सलीपरों की मरम्मत भी उसने ही की थी ! घर की गोहरन का छप्पर भी उसी के हाथों का छाया हुआ था !

घर की जिस-जिस चीज़ में उसका हाथ लगा था सब में से उन साधारण घरेलू सुखों का प्रकाश फूटा पड़ता था जिनके बिना धरती पर जीवन का आनन्द अधूरा रहता है।

दोनों बच्चे, ख़ास कर दुन्या, स्तेपान को याद करते रहते थे और उसके लिए हुड़कते रहते थे।

एक दिन वासिली एक चमड़ा-मढ़े छोटे से मोढ़े पर अपने जूते रखकर फीते बांध रहा था। दुन्या बहुत नाराज़ होती हुई बोली : "इस पर नहीं ! इस

पर नहीं रखो ! यह बप्पू का है !" दुन्या ने वासिली के पांव के नीचे से मोढ़ा खींच लिया और ले जाकर अपने कोने में रख आई। स्तेपान इसी मोढ़े पर बैठा करता था। दुन्या उसे बड़ी चौकसी से, सम्भाल कर, रखती थी।

"स्तेपान की बेटी ! स्तेपान की पत्नी ! स्तेपान का घर...!" वासिली तलखी से सोच कर रह गया।

वह अपना समझ सकता था तो बस बड़ी लड़की कात्या को। कात्या के बाल भूरे-भूरे थे, आंखें बड़ी-बड़ी थीं और मां की तरह का कोमल स्वभाव था। कात्या का बहुत सा समय स्कूल में बीत जाता था। वह स्कूल से लौटती तो गोशाला में 'अनाथ' नामक बछड़े से खेलती रहती थी।

वासिली सुबह प्रायः गोशाला में अनाथ को देखता हुआ जाता। कात्या भी घर से स्कूल जाने के लिए बाप के साथ ही निकलती। दिन भर में यही समय वासिली के लिए सबसे मधुर था। सुबह, अंधेरी गली में, बरफ़ पर खुट्ट-खुट्ट करती कात्या बाप के साथ बातें करती हुई, उसका हाथ थामें, साथ लटकी हुई सी, चली जाती।

"कैसी चहकती है ! बिलकुल चिड़िया की तरह !" वासिली सोचता। कात्या की बातें समझने की चिन्ता किये बिना वह उसकी आवाज़ सुनता रहता।

"बप्पू, बप्पू ! धौली का छोटा सा बछड़ा बिलकुल अनाथ जैसा है। उसके चारों खुर वैसे ही सफेद हैं, और सामने का हिस्सा भी सफेद है। बप्पू, तुम ताज्जुब करते रह जाओगे। अम्मा कह रहीं थीं अब तू नानी बन गयी है, तेरे दोहता हो गया है।" कात्या बड़े ज़ोर से हंस पड़ी। वासिली भी अपनी तमाम चिन्ताओं को भूल कर उसके साथ हंस पड़ा।

कात्या के बछड़े 'अनाथ' की कहानी बड़ी विचित्र थी। उक्रेन की मुक्ति के बाद जब लोग अपने जानवरों को हांक कर वापस ले जा रहे थे, तो ग्वाले एक बछड़े को उठाये हुए फ़ार्म में लाये और बोले :

"इसे ले लो ! इसके पांव सुन्न हो गये हैं ! यह खड़ा नहीं हो पाता। हम इसे कहां उठाये फिरेंगे !"

बछड़े का रंग खूब चमकीला काला था। मुंह सफेद था और नथुने गुलाबी रंग के। घुटनों से नीचे उसकी टांगों को जाने क्या हो गया था; वह खड़ा नहीं हो पाता था। बस, घुटने मोड़े पड़ा रहता था। उसकी आंखों में ऐसी उदासी झलकती थी जैसे उसे संसार से विरक्ति हो।

"मालूम होता है, इसे बूचड़खाने ही भिजवाना पड़ेगा।" अवदोत्या ने सन्देह भरे स्वर में कहा।

"नहीं, नहीं अम्मा !" कात्या ने रो-रो कर कहा : "इसे मुझे दे दो।

इसे मैं पालूंगी। मुझे दे दो, अम्मा। इसके लिए मैं घास काट कर लाया करूंगी। इसके लिए सानी मैं बना दिया करूंगी। अम्मा, मेरी अम्मा!"

उस दिन से कात्या ने अपने सब खेल-तमाशे छोड़ दिये। उसने बछड़े के लिए बाग़ के एक कोने में जगह बना दी। उसके ऊपर छप्पर डलवा दिया। वह खुद चारे के खेतों में जाकर उसके लिए हरी-हरी घास लाती थी। वही उसे नहलाती-पोंछती थी। उसने उसके सींगों पर एक रूमाल बांध दिया; बहुत से लाल, काले, पीले मनके लाकर उसके गले में एक माला डाल दी। वह उसे ऐसे दुलराती-पुचकारती जैसे वह नन्हा बच्चा हो, उससे ऐसे बातें करती जैसे वह उसका मित्र हो, उसकी ऐसे तीमारदारी करती जैसे वह कोई बीमार आदमी हो!

"हाय मेरा छोटा सा अनाथ, प्यारा प्यारा! मेरा बे-मां का बच्चा!"

बदले में, अनाथ भी कात्या के स्नेह का प्रतिदान बड़ी आतुरता से करता था। अनाथ के लिए खड़े हो पाना या चल पाना सम्भव नहीं था। उस छप्पर के नीचे बंधा वह अपनी बिरादरी के लोगों से एकदम कटा हुआ था। मनुष्यों के भी दर्शन उसे लगभग दुर्लभ ही थे। एकमात्र कात्या ही उसके मानस पटल पर अंकित होने वाले भाव-चित्रों, उसके जीवन और उसकी सीधी-सादी बछेड़ अल्हड़ता के सुखों की स्रोत थी। कात्या के प्रति उसका स्नेह बिलकुल मानवों जैसा था। कात्या को आते देख, वह उसकी ओर सरकने का यत्न करने लगता। वह उसके पांवों को चाटता, उसके हाथों और बालों को चाटता। उसकी फ्राक का किनारा अपने होठों से पकड़ कर वह अपना प्यार प्रदर्शित करता। कात्या चली जाती तो वह दीनता भरे स्वर में ज़ोरों से रंभाने लगता, दुखी होकर अपने छोटे-छोटे सींगों से धरती खोदने लगता, गले में बंधी रस्सी को तुड़ाने की कोशिश करने लगता।

कात्या के शब्दों को अनाथ इतनी अच्छी तरह समझने लगा था कि देखने वालों को विस्मय होता था।

कात्या कहती: "अनाथ, ज़रा हट तो। तेरे नीचे की घास गन्दी हो गयी है। हट, बदल दूं!" अनाथ सरक कर एक ओर को हो जाता।

"अनाथ, देख तेरी इस बगल में कितना गोबर लगा है। हट तो, ज़रा साफ कर दूं!"

अनाथ दूसरी करवट बैठ जाता।

"यह तो बिलकुल इन्सानों जैसा है!" प्रास्कोव्या ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा। "जो कुछ कहो, सब समझ लेता है। और, देखता कैसे है? मानो कुछ कह रहा हो!"

एक दिन कात्या विस्मय से चीखती हुई आई:

"अम्मा, ओ अम्मा! दादी! अनाथ अपने पैर हिलाने लगा है। पहले उसने दाहिनी टांग फैला कर सीधी की, फिर मोड़ ली। फिर दाईं टांग सीधी की, फिर मोड़ ली। लेटा-लेटा पैरों को फैला और सिकोड़ रहा है।"

मवेशी-डाक्टर की सलाह पर कात्या अनाथ के पैरों की गरम और ठंडे पानी से सेक और मालिश करने लगी। कात्या का इशारा पाकर अनाथ अपने चौड़े भद्दे खुर फैला देता और चुपचाप संतोष से देखता रहता, जैसे समझ रहा हो कि यह उपचार उसे ठीक करने के लिए ही किया जा रहा है। कुछ दिन बाद अनाथ खड़ा होने लगा। पर, वह जल्दी ही थक जाता था। कात्या ने लोगों से कह-कह कर उसके लिए दो खम्भों में एक तख्ता लगवा दिया था। अनाथ जब थक जाता, तो तख्ते के पास जाकर उसका सहारा लेकर कुछ झुका और कुछ आराम करता, खड़ा रहता था।

छः महीने बीत गये। अनाथ के पैरों में मज़बूती आ गयी। वह स्वस्थ होकर आश्चर्यजनक रूप से हृष्ट-पुष्ट बछड़ा बन गया। उसे देखकर लोग दांतों तले उंगली दबाते थे।

या तो उसकी नस्ल ही ऐसी थी या यह कात्या की सेवा का फल था; अनाथ की उम्र के दूसरे सभी बछड़े उसके सामने कमज़ोर और नाटे लगते थे।

अनाथ के गले से लटका लम्बा गल-कम्बल इतना बड़ा था कि ज़मीन को छूता जान पड़ता था। सीना खूब चौड़ा, खुर भी खूब भारी और बड़े-बड़े! जिधर से निकलता था धरती पर गहरे-गहरे निशान छोड़ता जाता था। उसका चौड़ा माथा ज़रा झुका हुआ रहता था और सींग यों आगे को रहते थे, जैसे वह लड़ने के लिए तैयार हो। उसका स्वभाव कुछ गुस्सैल और चिड़चिड़ा था। परन्तु, कात्या को देखकर वह पानी-पानी हो जाता था।

"मेरा नन्हा अनाथ! मेरा मुन्ना!" कात्या कहती।

अनाथ तुरंत अपना भारी सिर नीचा कर कात्या के घुटने चाटने लगता। वह इतना सीधा और निरीह जान पड़ता, जैसे वह सचमुच ही "बेचारा नन्हा अनाथ" हो।

कात्या की पुकार के उत्तर में रंभाते समय उसकी आवाज़ भी बदल जाती। वह अपनी आवाज़ को कोमल से कोमल बनाने का प्रयत्न करता था। इस प्रयत्न का परिणाम बड़ा वीभत्स होता था—उसकी आवाज़ बैठ कर ऐसी भयानक बन जाती कि पास के मुर्गीखाने की बत्तखें डरकर कुड़कुड़-कुड़कुड़ करने लगतीं। अपने स्वर से अपनी अनुभूति को प्रकट करने में असमर्थ बेचारा अनाथ मौन हो जाता। अपना भाव प्रकट करने में असमर्थ, उसकी आंखों में मन को पिघला देने वाला, दया की भीख मांगने वाला, भाव आ जाता। उसे देखकर मालूम होता था कि अपना भाव प्रकट करने के लिए वह बैल की

खाल से मुक्त होकर अपने आस-पास के अनूठे, बोधगम्यता से परे, संसार को अपने भीतर समेट लेने का संघर्ष कर रहा है। उसकी आंखों में विषाद भरा रहता, मानों वे कुछ पूछ रही हों; उनसे मानवीय आर्द्रता फूटी पड़ती थी। उसके भाग्य में पशु बने रहना ही लिखा था। अस्तु, वह अपनी गर्दन झुकाकर, घन्टों निश्चल खड़ा, कात्या के नन्हे हाथों के स्पर्श की सुखद अनुभूति में डूबा रहता।

एक दिन मांस-पेशियों के इस काले पर्वताकार शरीर को कात्या के पास खिन्न और मौन खड़े देख कर वासिली के मन में सहसा यह आत्म-व्यंगपूर्ण विचार उठा—मैं भी तो कुछ-कुछ अनाथ जैसा ही हूं।

"बेटी मैं भी एक बेचारा अनाथ हूं, तुम्हारे बछड़े जैसा। मुझे भी तो प्यार किया करो...!" वासिली ने अपनी मोटी गर्दन और कड़े बालों से भरा सिर कात्या के सामने झुका दिया।

वसिली की तरह अवदोत्या भी अपने आप को काम-काज और बच्चों में भुलाये रखने की चेष्टा करती थी।

गोशाला में अवदोत्या का मन लगाने या ध्यान बंटाने की कोई न कोई बात रोज़ ही हो जाती। जब से बुयानोव ने गोशाला में बिजली की बत्तियां लगा दी थीं, शाम को वहां ठहरने में और भी अच्छा लगता था।

एक दिन की बात है। संध्या समय दूध दुहा जा चुका था। दूध दुहने वाली स्त्रियां और लड़कियां हिसाब करने वाले को दूध सौंप कर जा चुकी थीं। तभी कात्या दौड़ी-दौड़ी आई:

"अम्मा, अम्मा! सुअरों के बाड़े में कबरी बड़ी चिल्ला रही है। वह बच्चे दे रही है। क्सेनोफोन्तोवना जाने कहां चली गयी है!"

"यह औरत बड़ी लापरवाह है!" अवदोत्या ने गुस्से से कहा और उठ कर खुद सुअरों के बाड़े की ओर चल दी।

चितकबरे रंग की बड़ी सुअरिया एक करवट लेटी, धीरे-धीरे कराह रही थी। अभी-अभी पैदा हुआ एक छोटा सा लाल बच्चा सफेद खुरों वाले अपने पैर हिला रहा था। कभी-कभी किसी सुअर की आवाज़ सुनाई दे जाती थी। कबरी एक क्षण तो कराहती रही, फिर बड़े ज़ोरों से चीख पड़ी।

अवदोत्या लाल-लाल, नन्हें-नन्हें, गिलगिले सुअरों को समेट रही थी। छाल से ढंकी डलिया में अभी भी सात बच्चे रखे थे। पर, कबरी उनकी संख्या बढ़ाती ही जा रही थी। मांस की इन नन्हीं-नन्हीं असमर्थ गेंदों को देखकर अवदोत्या फूली नहीं समा रही थी।

नौवें बच्चे को साफ़ करती हुई अवदोत्या बुदबुदाई : "आहा! कैसे प्यारे प्यारे हैं हम लोग! कैसे सुन्दर-सुन्दर हैं!" नन्हा लाल बच्चा उसकी हथेली पर चुपचाप पड़ा था। उसके नन्हें खुरों वाले पिछले पैर हवा में झूल रहे थे। वह अपनी नाक से उसकी हथेली सूंघ रहा था।

सहसा बिजली बुझ गयी।

कबरी पीड़ा से और ज़ोरों से चिल्लाने और हाथ-पैर पटकने लगी। अवदोत्या लपक कर टेलीफोन के पास पहुंची।

"हल्लो! हल्लो! बिजली घर! हल्लो! कौन है? मिशा? हल्लो! अरे तुमने गोशाला की बिजली क्यों बुझा दी? जल्दी रोशनी करो! यहां कबरी ब्या रही है और तुमने अंधेरा कर दिया! ज़रा होश करो!"

"ओ हो!...कबरी? तुम्हारी कबरी न हुई, कोई महारानी हो गयी?" बुयानोव की भर्राती हुई आवाज़ टेलीफोन पर सुनाई दी। "बरसों वह अंधेरे में ब्याती रही है। कभी कुछ नहीं बिगड़ा। और अब, बिजली की रोशनी के बिना वह बच्चे नहीं दे सकती? वाह, वाह!"

"मिशा भैया! नौ बच्चे हो चुके हैं। अभी और ब्याने को है। मैं इस अंधेरे में उन्हें कैसे सम्भालूंगी?"

कहा नहीं जा सकता कि अवदोत्या के गिड़गिड़ाने का प्रभाव था या कबरी के बच्चों की असाधारण संख्या, बुयानोव ने मिनट दो मिनट बाद फिर बिजली जला दी।

काफी देर बाद ही थकी हुई कबरी शान्त होकर लेटी। उसके एक दर्जन बच्चे दो टोकरियों में कुलमुला रहे थे।

अवदोत्या दोनों टोकरियों को चौकीदार के हवाले करके घर की ओर लौटी।

वह बहुत धीरे-धीरे अंधेरी गली से बाहर आई। जान-बूझ कर वह कदम धीरे-धीरे उठा रही थी ताकि पति के सामने पहुंचने से पहले एकान्त के जितने भी क्षण मिल सकें उनका सुख लूट ले।

"ओह! कितने तारे हैं आकाश में और कैसी अच्छी रात है!" वह मन ही मन कह रही थी। "इनमें मेरा तारा कौन सा था?...मेरा तारा तो हाथ में आकर फिर उड़ गया...!"

पड़ोस की गली में बरफ़ से ढंकी स्तेपान के घर की छत चांदनी में खूब साफ़ दिखाई दे रही थी। स्तेपान अब उस मकान में नहीं रहता था। उसने साल भर के लिए दूसरे ज़िले में लकड़ी चिराई का काम कर लिया था और कुछ ही दिन पहले गांव से गया था। जाने से पहले वह अवदोत्या से विदा लेने भी नहीं आया था। वासिली और अवदोत्या के आपसी मनमुटाव के

बारे में पड़ोसियों को कुछ भी नहीं मालूम था। सब लोगों का विश्वास था कि अब दोनों सुख से दिन बिता रहे हैं। स्तेपान ने भी सोचा, क्यों अब जाते समय वह स्वयं दुखी हो और शान्त अवदोत्या को परेशान कर जाये! इसलिए जाने से पहले उसने अवदोत्या से मिलने की कोई कोशिश नहीं की। उस खाली मकान की छत को देख कर अवदोत्या के मन में स्तेपान की निरंतर सुलगती याद, ज्वाला की तरह भड़क उठी। उसकी इच्छा हुई कि कम से कम मन से ही उसे विदा कह आये, ज़रा उन खिड़कियों को देख आये जिनसे वह झांका करता था, और उस गली में हो आये जहां से स्तेपान आता-जाता था।

रात का अंधेरा था। कोई उसे देख नहीं सकता था। कोई नहीं जान सकता था कि...।

अवदोत्या का मन वश में न रहा। वह उस गली की ओर घूम गयी। न चाहते हुए भी उसके पांव उसे उसी ओर ले चले।

घर में अंधेरा था। कुछ दिनों पहले इन्हीं निश्शब्द दीवारों के पीछे वह रहा करता था। अब वह वहां नहीं था...। जाते समय उसने विदाई के दो शब्द भी नहीं कहे; एक बार, अन्तिम बार, नज़र भर कर देख लेने का अवसर भी नहीं दिया!... अवदोत्या के विवेक ने उसे बताया कि उसने अच्छा ही किया था! दोनों के लिए यही अच्छा भी था...! परन्तु अवदोत्या की आंखों से बरबस आंसू बह चले।

"स्तेपा..." अवदोत्या ने धीरे से पुकारा।

अवदोत्या जानती थी कि स्तेपान बहुत दूर है। परन्तु, इतने दिनों बाद एक बार फिर उसका नाम पुकारने में उसे संतोष मिल रहा था। यह नाम पुकारे कितने दिन बीत चुके थे! कोहरे से भरी रात की निस्तब्धता में यह नाम कितना प्यारा और मधुर लगता था।

बरफ़ से घिरा मकान मौन, निश्शब्द खड़ा था। सुनसान गली भी अंधेरी और मौन थी। सहसा बहुत समीप ही बरफ़ को पीसते हुए असाधारण भारी कदमों की आहट सुनाई दी। अवदोत्या चौंक कर किनारे की बाड़ की ओर सिमट गयी। सामने वासिली दिखाई दिया। स्तेपनिदा के घर में, देशी शराब ज़रा ज़्यादा चढ़ा जाने के कारण, उसके कदम लड़खड़ा रहे थे। इस समय वह घर लौट रहा था।

अस्तु, स्तेपान के मकान के ठीक सामने, अंधेरी गली में, आधी रात में, दोनों का आमना-सामना हो गया!

अवदोत्या ने छाती पर हाथ रख कर हकलाते हुए कहा: "तु...तुम हो वासिली? मैं तो डर गयी थी!"

तेज़ कदम उठा कर वह स्तेपान के मकान से आगे बढ़ गयी।

"यहां आधी रात में तू क्या कर रही है?"

"बात...बात...यह है कि सुअरों के बाड़े में आज शाम को कबरी व्याई है।" अवदोत्या ने लम्बी सांस लेकर कहा। "कबरी व्याने को थी और क्सेनो-फोन्तोवना उसे छोड़ कर कहीं चली गयी थी।"

"तेरी कबरी को व्याने में क्या रात भर लगती है?"

"लेकिन बारह बच्चे व्याई है। यह कोई मामूली बात है?" मन पर छा गये आतंक के बावजूद अवदोत्या के स्वर में प्रसन्नता की झंकार थी। नन्हें-नन्हें, लाल-लाल किलबिलाते बच्चों और गोशाला में शान्ति से बिताये समय की याद अभी उसके मन में ताज़ी थी।

"और तू यहां क्या कर रही थी?"

अवदोत्या चुप रह गयी।

उसकी सहमी हुई आंखों और बेज़रूरत जल्दी ने सारी कहानी खुद ही कह दी। इस चुप्पी, इन छिपती आंखों और स्तेपान के घर के सामने आधी रात की इस विचित्र मुलाकात से वासिली की घृणा एकदम भड़क उठी। उसने ज़ोर से उसका कंधा पकड़ा और एक झटके से उसका मुंह अपनी ओर कर लिया।

"बोलती क्यों नहीं?...जवाब क्यों नहीं देती?"

बिना कुछ बोले दोनों चुपचाप अपने घर में घुसे। घर में भी कब्र का सा सन्नाटा छाया रहा।

वासिली सोच रहा था, दूसरे दिन वह देखेगा कि रात भर रोने से अव-दोत्या के अपराधी मुख पर आंसुओं की धारियां बनी हुई हैं। परन्तु दूसरे दिन अवदोत्या और भी दृढ़ और शांत थी। उसके चेहरे पर पहले जैसी उदासी और कातरता का भाव नहीं था।

"मालूम होता है अक्ल आ रही है...। ठीक होने के चिन्ह दिखाई देते हैं!...शायद कुछ दिनों में बिलकुल ठीक हो जाये।"

वासिली का अनुमान सच निकलता तो वह अपने को बहुत भाग्यवान मानता।

परन्तु, पिछली रात अवदोत्या ने भी अपने भाग्य का निपटारा कर लिया था।

"आखिर यह मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों करता है?" अवदोत्या ने सोचा था। "क्या मैंने अपने दिल को कुचल कर चुप नहीं कर दिया? मुझे

स्तेपान की याद आती है, तो क्या इसमें वासिली का कोई कसूर नहीं है। मुझे इससे सिर्फ़ अपमान ही तो मिलता है! क्या कसूर है मेरा? हाथ-पांव बांधे मैं सदा इसकी सेवा के लिए बांदी की तरह हाज़िर रहती हूं, पर इसे खुश नहीं कर पाती।"

उस दिन पहली बार उसे अपनी सचाई का ज्ञान हुआ। इस ज्ञान ने उसको और भी दृढ़ बना दिया तथा वासिली से दुराव की उस खाई को और भी गहरा बना दिया जिसे वह समझौते की शुरूआत समझता था।

९. परांठे

पारिवारिक कलह के कारण वासिली उठने-बैठने के लिए अपने पिता के यहां पहले से अधिक जाने लगा था।

वासिली के घर में उलझन और तनाव का वातावरण था जब कि पिता के यहां पारिवारिक सहयोग, शांति और संतोष देखने को मिलता था। युद्ध के समय से वासिली इसी चीज़ के लिए तरस रहा था। यही चीज़ उसे अपने घर में नहीं मिल रही थी!

वासिली का पिता अपनी पैनी दृष्टि से भांप गया था कि वासिली के हृदय में अशांति और उलझन है। इसलिए, बेटे से वह बड़ी सहानुभूति का व्यवहार करता था। पिता और पुत्र में पारस्परिक प्रेम और आत्मीयता की ऐसी गहराई पहले कभी नहीं देखी गयी थी।

"काश! सब लोग बापू की तरह होते तो श्रम ही सुख का स्रोत बन जाता!" वासिली सोचता। "पनचक्की को कैसे संवार कर रखते हैं! ऐसा लगता है, इसे बैठक-घर बना लो। हर चीज़ साफ़-सुथरी और अपनी जगह पर! कोई काम उन्हें दे दो, बड़ी लगन से करेंगे।...इनकी आदत ही ऐसी है। इनके हाथ से काम तो कोई बिगड़ ही नहीं सकता! घर पर भी हर चीज़ कायदे से! इनके नज़दीक मुझे खुद भी बहुत अच्छा लगता है।"

पिता के निकट वासिली को शांति और विश्राम का अनुभव होता था। फ़ार्म की अवस्था सुधरने लगी थी, इसलिए अब शांति और विश्राम की इच्छा और भी होती थी। पशुओं के बाड़े में बिजली लग गयी थी। खाद भी काफी मात्रा में जमा की जा चुकी थी और लकड़ी कटाई की योजना भी पूरी हो रही

थी। किसी-किसी क्षण तो वासिली को यह अनुभव होता कि भयानकतम कठिनाइयां पार कर ली गयी हैं।

फिर भी, पिता के घरेलू जीवन के अब भी कुछ पहलू ऐसे थे जिनसे वासिली को घृणा थी। घर के वातावरण और बात-चीत में संदेह, ज़िद और संकीर्णता की छाया बनी रहती थी, जो वासिली को खटकती थी। परन्तु, उसकी घरेलू आत्मीयता और स्नेह की भूख इतनी प्रबल थी कि वह ऐसी बातें सुनकर भी अनसुनी और देख कर भी अनदेखी कर देता था। इस प्रयत्न में बहुत कष्ट होता था और अक्सर वह दुखी होकर सोचता था :

"अब कभी वहां नहीं जाऊंगा! स्तेपनिदा और फिनोगेन से मेरी नहीं पट सकती।"

परन्तु, शाम होते ही अपने घर के नीरवता भरे वातावरण से ऊब कर—अकेले अवदोत्या के पास बैठने से बचने के लिए—वह घर से निकल पड़ता था।

धीरे-धीरे वासिली पिता के घर के वातावरण का आदी हो गया। वह अखरने वाली बातों को नज़रंदाज़ करने लगा। विश्राम और शांति की चाह उसमें इतनी उग्र हो गयी थी कि अपनी बात पर अड़े रहने की, समझौता न करने की, उसके युवाकाल की विशेषता दूर होती गयी।

एक सांझ, दिन भर के काम के बाद, वासिली पिता के यहां आया। घर के सभी लोग और दिनों की तरह ही बड़े कमरे में आराम से एक साथ बैठे बातें कर रहे थे। सभी लोग हाथों में कोई न कोई घरेलू काम लिए थे और इधर-उधर की बातें कर रहे थे।

वासिली नन्हीं दुन्या को साथ लाया था। दुन्या जिरेनियम के गमलों के बीच बैठी एक किताब से खेल रही थी। कुछ दिनों से वह वासिली से हिल गयी थी और जान पड़ता था कि अब स्तेपान को भूल गयी है।

जिरेनियम की टहनियों को एक ओर हटा कर, अपना छोटा सा मुंह बाहर निकाल कर, अपनी गर्दन एक ओर झुकाकर, बड़े चटपटे स्वर में दुन्या ने पूछा :

"तुम्हें किताब दिखाऊं?"

"हां, दिखाओ! मुझे किताब अच्छी लगती है।"

"अच्छा, दिखाती हूं।"

दुन्या पुस्तक लेकर वासिली के पास बेंच पर जा बैठी।

"बापू यह क्या है?"

"यह 'र' है, बेटी! बिल्ली को देख कर कुत्ता कैसे गुर्राता है?"

"रें...रें...रें...रें"

"हां, ठीक है। यही है वह 'र'। याद रखोगी न?"

"हां, याद रखूंगी बापू! देखो बापू ट्रैक्टर की तसवीर!"

"बेटी, यह टैंक है, ट्रैक्टर नहीं।"

"तुम्हें क्या मालूम! यह ट्रैक्टर है—स्लावका ने खुद बताया था।"

"बेटी, तेरे स्लावका से तो मैं ज़्यादा ही जानता हूं।" वासिली कुछ ऐसे स्वर में बोला जैसे उसका अपमान हुआ हो। "आखिर, मैं उससे बड़ा हूं न!...अच्छा अब बताओ यह अक्षर क्या है? राम राम! भूल गयी? तू ने तो कहा था, याद रहेगा।"

दुन्या पल भर सोचती रही। फिर, याद आने पर यकायक वह मुस्कराई और खुशी से टांगे उछालने लगी:

"भौं...भौं...भौं...भौं!"

सब लोग ज़ोर से हंस पड़े।

"वाह भई, वाह! खूब पढ़ाया बाप ने बेटी को! उसे भौंकना सिखा दिया।" स्तेपनिदा ने हंस कर कहा।

"बेटी भौं...भौं नहीं, र्‌...र्‌...र्‌।"

लेकिन दुन्या को इस समय भौंकने में ही मज़ा आ रहा था।

"भौं-भौं-भौं!" वह फिर भौंकने लगी। "र्‌...र्‌...नहीं अच्छा लगता। भौं...भौं...भौं...भौं!"

"अच्छा बाबा; भौं भौं ही सही! लेकिन, खुदा के लिए, यह शोर तो बन्द कर!"

वासिली ने दुन्या को सोफे पर लिटा दिया। थोड़ी देर बाद दुन्या को नींद आ गयी।

बातचीत बहुत शांत और निरावेग थी।

"कल मैं खिड़की के पास खड़ी बाहर देख रही थी," स्तेपनिदा कह रही थी, "कि फ्रोस्या सामने से गुज़री। भई, क्या बनी-ठनी थी? फर की कालर वाला कोट, घुटनों तक रबड़ के जूते! सिर पर गोल टोपी! बुढ़िया तान्या ने तो सजा कर उसे राजकुमारी बना दिया था!"

"सजाये क्यों नहीं? वही तो अकेली लड़की है!" फिनोगेन बोला।

"लड़ाई के दिनों में मां-बेटी बाज़ार के ही चक्कर लगाया करती थीं। सुना है उसकी मां उसके दहेज के लिए एक यारोस्लावस्की गैया खरीदने वाली है। प्योत्र, अच्छा मौक़ा है..."

प्योत्र हंस दिया:

"न भाई! गैया वाली दूल्हन नहीं चाहिए! लोग कहेंगे, जब तक

गैया दूध देती रही, प्योत्र उसका प्यार करता रहा; गैया ने दूध देना बंद किया तो प्योत्र ने उसे छोड़ दिया।"

स्तेपनिदा ने अपनी बड़ी-बड़ी तीखी आंखें ज़रा सिकोड़ते हुए बड़े संगीत-मय स्वर में कहा :

"फ्रोस्या में आखिर खराबी क्या है ? अच्छी तगड़ी-तंदुरुस्त लड़की है। उसका गला कितना मीठा है ! बस एक खराबी है बेचारी में ! ज़रा सुस्त है ! बस इतनी सी बात है !"

"सुस्त नहीं है जी, मां के लाड़ ने बिगाड़ दिया है !" फिनोगेन बोला। "फ्रोस्या को मेहनत करनी ही क्यों पड़ेगी ? प्योत्र उसे बैठा कर खिलायेगा।"

"प्योत्र के पास एक छदाम है ?"

"प्योत्र उसे मोती चुगायेगा, जैसे पावका कोनोपातोव अपनी बीवी को चुगाता है।"

प्योत्र ने फिर दांत निकाल दिये।

"पावका की बहू पोल्यूश्का बड़ी तेज़ है, वह पड़ोसियों के यहां हाथ मार आती है। इस काम में वह पूरी उस्ताद है।"

वासिली आराम कुर्सी पर बैठा भूलता हुआ अधमुंदी आंखों से सोच रहा था :

"अब तो सब ठीक हो रहा है...! अब तो दुन्या भी मुझे बापू कहने लगी है, और स्तेपान की याद नहीं करती। पिछले दो दिनों से फ़ार्म में भी काम ढंग से हो रहा है... ! अवदोत्या भी, मेरा खयाल है, होश में आ रही है। बप्पा से भी अच्छी तरह निभ रही है। सब कुछ ठीक-ठाक है !"

अधमुंदी पलकों से छन-छन कर प्रकाश की किरणें आ रही थीं—वह देख रहा था कि लैम्प से प्रकाश के कण बिखर रहे हैं, और सारे घर में नींद का ताना-बाना बुन रहे हैं।

जिरेनियम के फूल बड़े-बड़े दिखाई दे रहे थे।

स्तेपनिदा का आकार मानो छोटा हो गया था और वह दूर पहुंच गयी थी। वह उठ बैठी और बोली :

"मैं जाकर परौठों के लिए आटे में रामदाना गूंध दूं !"

"रोज़ रामदाने के परौंठे ?" प्योत्र बोला।

वासिली की ऊंघ टूट गयी। वह सचेतन होकर कुर्सी पर बैठ गया।

हफ्ते भर पहले वह खुद फ़ार्म के बाल-मन्दिर के लिए कुछ रामदाना पनचक्की पर ले गया था और दलवा कर अपने सामने बाल-मन्दिर में पहुंचवा दिया था। "रोज़ रामदाने के परौंठे ?"—का मतलब क्या था ? बाज़ार या फ़ार्म में तो महीनों से किसी ने रामदाना नहीं देखा था।

"क्या अक्सर रामदाने के परौंठे बनते हैं?"

"यह दूसरा दिन है। मां की तो आदत है, कोई नयी चीज़ बनायेगी तो तब तक बनाती रहेगी जब तक गले में अटकने न लगे!"

वासिली स्तेपनिदा के पीछे-पीछे रसोई-घर में गया। वासिली पहचान गया। यह बाल-मन्दिर का ही रामदाना था—यह छीजन का माल था और इसमें कुछ सड़ी बदबू भी थी। वासिली स्तेपनिदा के साथ ही कमरे में लौट आया।

कमरे में अब भी सब कुछ वैसा ही था। अब भी वही शांति और विश्राम का पहले जैसा वातावरण था, जिसमें वासिली पांच मिनट पहले संतोष की सांसें ले रहा था। जिरेनियम के फूल अब भी वैसे ही खिले हुए थे। सोने के लिए बने तख्ते पर बिल्ली अब भी वैसे ही म्याऊं-म्याऊं कर रही थी। नन्हीं दुन्या पहले की तरह अब भी सोफ़े पर सो रही थी। पिता अब भी पहले की ही भांति अपनी कुर्सी पर चैन से बैठे थे—उन्हें न तो अपने से झगड़ा था, न दुनिया से। उनके मुख पर पहले जैसा ही शांति और संतोष का भाव था।

अब भी सब कुछ पहले जैसा ही था। फिर भी वासिली की मनः-स्थिति उस मनुष्य की सी हो रही थी जो तफ़रीं के लिए टहलता हुआ यकायक किसी भयानक खाई के किनारे आ लगा हो। उसे अपने चारों ओर की चीज़ें धोखे-भरी मालूम हो रही थीं। जिरेनियम के फूल भी अब पहले जैसे नहीं लग रहे थे—उनकी हर पंखड़ी के पीछे कुछ छिपा हुआ मालूम होता था।

"तो यह बात है...!" वासिली मन ही मन बेचैन हो रहा था। "यहां की हर बात झूठी है...! इनसे कब कहूं; अभी, या बाद में? साफ़-साफ़ कह दूं या इशारा करके छोड़ दूं!" पर इशारा करके छोड़ देना तो वासिली की आदत ही नहीं थी।

अपने दोनों पांव फ़र्श पर जमा कर वासिली कमरे के बीचो-बीच सीधा खड़ा हो गया। उसके दोनों हाथों में फौलादी मुट्ठियां बंध गयीं। लड़ने के लिए तैयार किसी सांड़ की तरह उसका सिर आगे को झुक गया।

"यह रामदाना कहां से आया, बप्पा?"

"रामदाना?...कैसा रामदाना?"

सहसा पिता के चेहरे से संतोष और विश्राम का भाव उड़ गया; चेहरे का रंग गायब हो गया, गाल धंस गये और आंखों में परेशानी छा गयी। फिनोगेन कुर्सी पर घूम गया। स्तेपनिदा के हड़बड़ा कर उठ खड़े होने से बिल्ली चौंक पड़ी और तख्ते से कूद कर भागी।

"तुम्हारी रसोई में रामदाना कहां से आया, बप्पा?"

सहसा कमरे में वासिली का दम घुटता सा मालूम हुआ। उसे खुद अपना शरीर भारी लगने लगा।

स्तेपनिदा उसकी ओर बढ़ आई और अकड़ कर सामने खड़ी हो गयी।

"क्यों? तुझे क्या?....हम उक्रेन के बाज़ार से लाये हैं।"

"तुम बाज़ार गयी हीं कब? फिर, उक्रेन में रामदाना है ही नहीं।"

"कौन कहता है हम नहीं गये? तू कौन होता है हमारे मामलों में नाक घुसेड़ने वाला?" स्तेपनिदा का चेहरा लाल हो गया और आंखें लज्जा और क्रोध से जलने लगीं।

"यह रामदाना मैं खुद कंधे पर लाद कर पनचक्की पर ले गया था। तुमने खरीदा नहीं है! तुम झूठ कहती हो!"

"शरम नहीं आती मां से इस तरह बोलते हुए! लानत है तुझ पर! हम तो तुझे अपना समझ कर घर आने देते हैं और तू हम पर चोरी लगाता है। जिस पत्तल में खाता है उसी में छेद करता है?"

वासिली ने स्तेपनिदा की ओर से मुंह फेर लिया।

"चुप रहो अम्मा! बप्पा, आखिर क्या मतलब है इसका? मामला क्या अब यहां तक बढ़ गया है कि तुम...कि तुम..." उसके गले में शब्द अटक रहा था, "...कि तुम... अब चोरी करने लगे हो?"

पिता का चेहरा फक हो गया। सहारे के लिए उसने अपनी कमर की पेटी को पकड़ते हुए कहा:

"यह...यह फ़ार्म का नहीं है।"

"यह बाल-मंदिर का है! यह उन अनाथ बच्चों का है जिनके बापों ने लड़ाई के मैदान में जान दी है—जहां से मैं खुद जख्मी होकर आया हूं!.... तुम उस मैदान में नहीं थे, बप्पा! तुम क्या समझोगे!"

"दो-चार परौंठों के लिए इतना तूफ़ान क्यों?" फिनोगेन बोला।

"अरे, क्या चक्की वाला चक्की की झाड़न भी नहीं ले सकता?" स्तेपनिदा ने दुहाई दी, पर उसकी आंखें भागती फिरती थीं, मानो किसी एक चीज़ पर ठहरना ही न चाहती हों।

"खूब झाड़न हुई! लगातार दो दिन से परौंठे बन रहे हैं! दो बोरों से इतनी झाड़न? अब मालूम हुआ कि मामला क्या था...! बप्पा, कई लोगों ने मुझ से पहले भी कहा, मुझे होशियार किया।... लेकिन मैं सोचता था, यह कैसे हो सकता है...!"

पिता के कंधे और भी झुक गये। वह असहाय सा सिर झुकाये चुप बैठा था। वासिली यह दृष्य न देख सका। उसने आंखें बंद कर लीं।

"बूढ़ा और बच्चा—एक बराबर ! इनसे इस तरह नहीं कहना चाहिए था !" वासिली सोच रहा था।

"बाप को गालियां दे ! बाप की बेइज्जती कर ! दो परौंठों के लिए बाप का मुंह काला कर !" स्तेपनिदा चीखती हुई बोली। "अच्छा फल मिल रहा है हमें अपनी करनी का ! इसीलिए तो हमने तुझ सांप को पाल-पोस कर बड़ा किया था ?"

बूढ़े ने स्तेपनिदा को रोका।

"चुप कर !" उसकी सांस फूल रही थी। उसने अपना सीना दोनों हाथों से दबा लिया। उसका शरीर पसीना-पसीना होकर कांप रहा था, कोई अजीब सी चीज़ उनके गले में खड़खड़ा रही थी।

फिनोगेन अपनी कुर्सी पीछे फेंक कर उठा और वासिली के सामने आ खड़ा हुआ।

"हमारे घर में तुम्हारे आने का क्या मतलब ? तुम बापू को डांटने आते हो ? मुझ से बात करो ! क्या कहना चाहते हो ? क्यों तुम सबके पीछे पड़े हो ?"

"मैं चाहता हूं लोग ईमानदार बनें।"

"बड़े आये ईमानदारी वाले ! जो चाहता है सामूहिक खेत की सम्पत्ति हड़प किये जा रहा है और ये चले हैं हमें ईमानदारी सिखाने।"

फिनोगेन का भी चेहरा लाल हो रहा था। मां क्या करती है उसे खूब मालूम था। वह खुद भी चक्की से मां द्वारा लायी चोरी की चीज़ें खाता-पीता था। वह खुद पाक-साफ़ नहीं था, इसलिए दूसरों को भी वैसा ही समझता था। वह सामूहिक किसानों को ही बदनाम करने पर तुला हुआ था : "तुम समझते हो, लोग गोशाला से मक्खन चुरा कर नहीं ले जाते ?" वह कहता गया। "ले जाते हैं ! तुम समझते हो लोग गोदामों से गल्ला उड़ा कर नहीं ले जाते ?"

"नहीं ! यह झूठ है !"

"नहीं ! यह झूठ नहीं है ! वे बड़ी चालाकी से चुराते हैं और तुमसे बच निकलते हैं, तुम से दूर-दूर बचते रहते हैं। हमने तुम्हारे लिए अपने घर का दरवाज़ा खोल दिया, तुम्हें घर का आदमी समझा। बापू ने तुमसे दुराव नहीं किया। तुम दूसरे चोरों की तो तारीफ़ें करते नहीं अघाते, लेकिन बाप का नाम कालिख में घसीटना चाहते हो !"

"नाम ले चोर का ! बताता क्यों नहीं कि कौन चोर है ? बता !"

फिनोगेन चक्कर में पड़ गया। उसकी धूर्तता भरी परेशान आंखें कभी उड़ कर एक चीज़ पर पहुंचतीं तो कभी दूसरी चीज़ पर। उसने बहुत चाहा कि

अपनी बात साबित करने के लिए उसे चोरी का एक वाकया ही याद आ जाय, लेकिन उसकी स्मरण शक्ति ने उसे ज़रा भी सहारा न दिया।

"बोलता क्यों नहीं ?" वासिली ने फिर डांटा।

"खुद पता लगाओ !"

"नहीं ! तुझे नाम लेना पड़ेगा ! तूने लोगों पर चोरी लगायी है, तो तुझे नाम भी बताना पड़ेगा !" वासिली ने फिनोगेन को गिरेबान से पकड़ लिया। "बोल जल्दी !... अब बोलता क्यों नहीं ? किसे छिपा रहा है तू ? अगर झूठ है, तो तूने झूठी चोरी क्यों लगायी ? क्यों दूसरों पर कीचड़ उछाला है ?"

"छोड़ दे मुझे, पागल सांड़ ! खबरदार, जो मुझ पर हाथ उठाया। छोड़, नहीं तो अभी सिर तोड़ दूंगा तेरा !"

"नाम बता चोर का नहीं तो गर्दन मरोड़ दूंगा !"

शोर-गुल से नन्हीं दुन्या जाग पड़ी और डर कर चिल्लाने लगी।

"निकल हमारे घर से बाहर !" स्तेपनिदा चीखी ! उसने वासिली का ओवरकोट, टोपी और गुलूबन्द खूंटी से लेकर खुले दरवाज़े से बाहर फेंक दिया। "निकल यहां से ! हमारा दुश्मन ! मत ले बाप की जान। बेचारा वैसे ही अधमरा हो गया है। दो परौंठों के लिए बाप की जान लेने पर तुल गया ! निकल यहां से ! दरवाज़ा खुला है, तू हम पर रहम कर। किसी ने रीछ को भेड़िये के यहां जाते नहीं देखा ! खरगोश कभी लोमड़ी की मेज़बानी नहीं करता ! निकल यहां से !"

दहलीज से मुड़ कर वासिली ने चेतावनी दी : "फ़ार्म की मीटिंग में जवाब देना होगा तुम्हें !"

वासिली लौटा तो अवदोत्या घर में नहीं थी। कात्या और दादी प्रास्कोव्या सो चुकी थीं। उसके लिए कोई बैठा नहीं था। घर में सब कुछ बिखरा पड़ा था। एक अजीब तरह की वीरानी छायी थी।

"अवदोत्या कहां गयी होगी ? स्तेपान तो नहीं आ गया ? नहीं नहीं ! वह आया होता तो मुझे ज़रूर खबर लगती। तो फिर ? अवदोत्या गयी कहां ?"

दरवाज़ा खुलने की आवाज़ हुई। अवदोत्या आई, परन्तु दरवाज़े में ही खड़ी एक बड़े से ब्रश से अपने स्लीपरों से बरफ़ झाड़ती रही।

"इतनी देर तक कहां थी ?"

"काम था।"

वासिली की आंखें सिकुड़ गयीं।

"क्या आज फिर सुअरिया ब्या रही थी ?"

अवदोत्या ने वासिली की ओर नज़र भी न उठाई और बड़े व्यंग और कटुता के स्वर में उत्तर दिया :

"नहीं ! एक बैल ने बछिया दी है..."

अवदोत्या सीधी भीतर चली गयी।

वासिली जहां का तहां खड़ा रह गया। अवदोत्या की लापरवाही और उसके स्वर की घृणा से उसे काठ मार गया। वह हैरान था कि इसे क्या हो गया है। उसे एक बात साफ दिखाई दे रही थी—उसके लिए वह अजनबी थी।

वासिली कुछ देर अकेला चुपचाप खाली कमरे में मेज़ के पास बैठा रहा।

"क्या फिनोगेन सच कह रहा था ? क्या सचमुच ही लोग गोदाम से गल्ला चुरा रहे हैं ?...नहीं, यह कभी नहीं हो सकता ! मगर क्या जानें ? मुमकिन है, सभी कुछ मुमकिन है !"

वासिली को जान पड़ रहा था कि अब कोई भी अपना नहीं है; उसकी दुनिया टूट-टूट कर बिखर रही थी। घंटे भर पहले उसके सब कोई थे; बाप था, मां थी, भाई था, पत्नी थी। और लोगों की तरह उसके भी सब थे। लेकिन दो बातें, "रामदाने के पराँठे" और "बैल ने बछिया दी है"—सब कुछ चकनाचूर कर दिया। अब न पत्नी थी, न पिता था।

१०. पूर्ण अधिवेशन के बाद

ज़िला पार्टी की ब्यूरो कान्फ्रेंस समाप्त हो चुकी थी। पर, लोग अभी भी आन्द्रेई को घेरे खड़े थे। सिगरेट पीते हुए आखिरी बातचीत हो रही थी। लाल मेज़पोश पर सिगरेट की राख फैली हुई थी। सिगरेट के धुएं की नीली-नीली लहरें छत के नीचे मंडरा रही थीं। कुर्सियां इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं। सभी कुछ अस्तव्यस्त था। ज़िले के प्रधान मन्त्री के दफ्तर की सुनियमित सुव्यवस्था उलट-पलट हो गयी थी। परन्तु आन्द्रेई को लम्बी बैठकों के बाद की ऐसी अव्यवस्था से संतोष ही होता था। बैठक के बाद लोगों का काफी देर तक लटके रहना, कहकहे लगाना, शाब्दिक द्वन्द्व और बहसें करना, उसे अच्छा लगता था। उत्तेजित मस्तिष्क और हृदय का यह ज्वार उसे बहुत अच्छा लगता था। उसकी प्रकृति ही ऐसी थी।

पिछली रात ही आन्द्रेई नगर से लौटा था। अगले दिन सुबह से कार्यकारिणी की बैठक थी। रात भर बैठक की तैयारी में लगे रहने के कारण वह

सो नहीं पाया था। दिन भर वह ज़िला पार्टी कमिटी के दफ्तर से नहीं टला; उसे अपने बारे में सोचने या ध्यान देने का मौक़ा नहीं मिला। अब, बहस-मुबाहसा समाप्त होने के बाद, उसे थोड़ी शिथिलता मालूम हो रही थी। शरीर में अजीब तरह का हलकापन मालूम हो रहा था। जाकर सो जाना चाहिए था। पर मन उठने को नहीं कर रहा था। आराम कुर्सी पर लेटे हुए उसने सिर कुर्सी की लम्बी पीठ पर टिका दिया था और नींद से भारी अधमुंदी आंखों से तीसरे सेक्रेटरी लुक्यानोव को देख रहा था। लुक्यानोव का पीला सा तातारी चेहरा धुंधला सा दीख रहा था। उसकी आवाज़ बहुत दूर से आती मालूम हो रही थी।

लुक्यानोव के सामने ही कार्यकारिणी समिति के इमारती विभाग का प्रधान लापतेव बैठा था। लापतेव का चेहरा बच्चे के मुंह की तरह गुलाबी-गुलाबी सा था। लुक्यानोव मेज़ पर फैले अखबार पर ज़ोर से हाथ मार कर कह रहा था :

"केन्द्रीय कमिटी के फ़रवरी पूर्णाधिवेशन के निर्णयों से आगे उन्नति की सभी सम्भानाएं स्पष्ट हो जाती हैं। पर हम कर क्या रहे हैं?... बुनियादी चीज़ है मशीन ट्रैक्टर स्टेशन। अभी तक न तो इसकी इमारत ही बनी है, न सामान ही आया है।"

"इमारत अप्रैल में पूरी हो जायेगी।" लापतेव ने कहा।

"हो चुकी अप्रैल में! तुम्हारी रफ्तार के बारे में क्या मुझे मालूम नहीं है?"

"रफ्तार यह तेज़ करा देंगे।" लापतेव ने आंख से आन्द्रेई की ओर इशारा किया। बैठक में लापतेव की जो आलोचना हुई थी, उसी की ओर उसका इशारा था। "यह मुझे उत्तेजित कर देंगे।"

आन्द्रेई बिलकुल बच्चों की तरह हंस दिया।

"रफ्तार तो तेज़ हो ही जायेगी। एक दफे से काम नहीं चलेगा, तो दुबारा सही।"

"तुम्हें मैं अच्छी तरह जानता हूं।" लापतेव बोला। "तुम किसी भी आदमी की अक्ल दुरुस्त कर सकते हो!"

"सो तो कर सकते हैं।" पार्टी के सहकारी मंत्री वोलगिन ने भी मुस्कराकर समर्थन किया। वोलगिन ज़िले का दौरा पूरा करके लौटा ही था। उसका दुबला-पतला, धूल भरा चेहरा, थका हुआ लग रहा था और आंखों की पलकें सुर्ख हो रही थीं। पर, गोल-गोल चश्मे के पीछे से उसकी आंखों में उत्साह की चमक भी झलक रही थी। आन्द्रेई की तरह वह भी उनींदा हो रहा था; पर, वह भी दफ्तर से तुरन्त उठ कर नहीं जाना चाहता था।

"इमारतें अप्रैल में पूरी होनी ही चाहिएं।" आन्द्रेई बोला। "पांच छोटे-छोटे मशीन ट्रैक्टर स्टेशनों के बजाय एक बड़ा मशीन ट्रैक्टर स्टेशन बनाना चाहिए। उन्नीस सौ सैंतालिस और उन्नीस सौ अड़तालिस के बीच एक लाख ट्रैक्टर!" वह सोचता हुआ बुदबुदा रहा था। "पंचवर्षीय योजना के अंत तक तीन लाख पच्चीस हज़ार ट्रैक्टर!... समझते हो कितना बड़ा काम है?" आन्द्रेई अधिकाधिक उत्तेजित होता जा रहा था। "तीन चार साल में हमारे ज़िले के पास डेढ़ सौ ट्रैक्टर हो जायेंगे। इतने तो मेरे पास कुबान में भी नहीं थे। हम वहां वसंत में ट्रैक्टरों की दौड़ कराते थे तो ट्रैक्टरों की पांत से पूरी सड़क भर जाती थी। ज़मीन कांप उठती थी। मकानों की छतों से चूना गिरने लगता था। बड़े ज़ोरों की आवाज़ होती थी!" आन्द्रेई ने क्षण भर को आंखें झपका लीं, मानो कल्पना में उस रमणीय दृश्य को फिर से देख रहा हो। फिर, संतोष की गहरी सांस लेकर बुदबुदाया: "ओह! पंचवर्षीय योजना पूरी होने के बाद तो हम अपने को पहचान भी नहीं पायेंगे।"

सामने बैठे लोगों को मुस्कराते देख, आन्द्रेई खुद भी मुस्करा दिया।

आन्द्रेई के सभी साथी जानते थे कि ज़िले के चमत्कारिक भविष्य की चर्चा और कुबान के संस्मरण ज़िला सेक्रेटरी की दो प्रमुख कमज़ोरियां थीं। लेकिन उसके साथी इन बातों से चिढ़ते नहीं थे; वास्तव में उन्हें उसकी इन बातों में बड़ा मज़ा आता था। आन्द्रेई इन प्रसंगों पर बातें करने लगता तो साथी आपस में कहते, "पेत्रोविच इस समय बादलों को छू रहा है।" आन्द्रेई अपनी इन कमज़ोरियों से स्वयं भी परिचित था और प्रायः अपने-आपको रोके रहता था। लेकिन, इस समय थकावट में और साथियों से बातचीत के उत्साह में दिवा-स्वप्न देखने की उसकी इच्छा बढ़ रही थी।

"क्यों हंस रहे हो?" उसने लापतेव से पूछा। "देखेंगे उन्नीस सौ पचास में कौन हंसता है?"

"मैं काम के खिलाफ़ थोड़े ही हंस रहा था।...मैं तो बातचीत पर हंस रहा था।"

"ऐसी बातें करने में हर्ज़ ही क्या है?" आन्द्रेई ने उनींदे स्वर में कुछ विनम्रता से कहा। "क्या इसके बारे में बातें करने में मज़ा नहीं आता?"

कान्फ्रेंस का उत्तेजक प्रभाव अभी भी हरा था और आन्द्रेई का हृदय अपने चारों ओर बैठे लोगों के लिए प्रेमभाव से उमग रहा था।

सब लोगों के चले जाने के बाद आन्द्रेई भी उठकर चलने की तैयारी कर रहा था कि दरवाज़ा खुला और किसी ने सिर अन्दर करके झांका। यह था कार्यकारिणी समिति का कार्यकर्ता त्रावनित्सकी!

"मैं ज़रा अन्दर आ सकता हूं, आन्द्रेई पेत्रोविच?"

"क्या कोई ज़रूरी काम है ?"

"बहुत ज़रूरी काम है ! सचमुच !"

"आओ।" आन्द्रेई ने सावधान होते हुए, रुखाई से उत्तर दिया। इस लम्बी ठुड्डी और नेवले जैसी आंखों वाले आदमी को देख कर आन्द्रेई को कुछ ऐसा लगा जैसे अभी कुछ क्षण पहले तक छाये अत्यंत उत्साहपूर्ण वातावरण में कोई अनावश्यक और बेज़रूरी चीज़ धंस आई हो।

त्रावनित्सकी को इस ज़िले में आये अभी बहुत दिन नहीं हुए थे। अपने पिछले काम की वह अच्छी रिपोर्टें लाया था। पोशाक और व्यवहार में वह खूब चुस्त और उत्साही आदमी था, वक्त का ज़बर्दस्त पाबन्द भी था।

उसके चेहरे पर एक अभ्यस्त मुस्कान बनी रहती थी, जिससे आत्म-संतोष झलकता था। बात करने का उसका ढंग बहुत संक्षिप्त होता था, जैसे कोई सरकारी रिपोर्ट पेश कर रहा हो। समय का वह इतना पाबन्द था कि बात करते-करते—समय की पाबन्दी दिखाने के लिए—वह बार-बार घड़ी पर नज़र दौड़ाता रहता था।

आन्द्रेई स्वयं भी सुव्यवस्था पसन्द करता था। त्रावनित्सकी के तौर-तरीक़े देख कर आन्द्रेई का चित्त प्रसन्न हो गया था। परन्तु, त्रावनित्सकी की दिखावे की आदत से उसे चिढ़ थी। दिखावे से आन्द्रेई को सदा ही संदेह हो जाता था।

त्रावनित्सकी चुस्ती और सावधानी से कदम बढ़ाता हुआ आया। उसके चेहरे से पार्टी के दफ्तर और पार्टी के मंत्री के प्रति सम्मान फूटा पड़ता था।

"लगता है जैसे परेड कर रहा हो !" आन्द्रेई ने मन ही मन सोचा।

"बैठो ! कहो, क्या बात है ?"

"इस समय मैं आपको कष्ट नहीं देना चाहता था।" त्रावनित्सकी ने कहना शुरू किया। "लेकिन मैंने सुना कि आप कल सुबह ही सामूहिक खेतों के दौरे पर जा रहे हैं, इसलिए चला आया। कुछ ऐसी बातें हैं, जो मैंने खुद पता लगायी हैं और जिन्हें व्यक्तिगत रूप से आपको बताना अपना कर्तव्य समझता हूं। उन्हें ज़ाब्ते में बताना ठीक नहीं था।"

"अच्छा ! क्या बात है ?" आन्द्रेई और सतर्क हो गया।

"प्रभात, ट्रैक्टर और उज्ज्वल-पथ सामूहिक खेतों के किसानों से मैंने सुना है कि प्लेनम के फ़ैसलों के सिलसिले में पहली मई सामूहिक खेत के लोगों ने लकड़ी का काम छोड़ दिया है।"

"क्या ? क्या किया है ?" आन्द्रेई ने त्रावनित्सकी की ओर और झुक कर पूछा।

"हां, मैंने यही सुना है।" त्रावनित्सकी ने विनम्र गम्भीरता से कहा। "लकड़ी चिराई के प्रमुख के समझाने के बावजूद फ़ार्म के लकड़ी काटने वाले अपनी-अपनी बरफ़ गाड़ियों पर बैठे और वहां से चल दिये। ज़िले भर में बात फैल गयी है और तरह-तरह की बुरी अफवाहें उड़ रही हैं।"

"हूं!" आन्द्रेई ने हुंकारी भरी। वह त्रावनित्सकी का अभिप्राय समझने की कोशिश कर रहा था। आन्द्रेई को यह समझते देर नहीं लगी कि त्रावनित्सकी का कोई गुप्त अभिप्राय ज़रूर है। परन्तु यह अभिप्राय क्या है, यह अभी तक वह निश्चित नहीं कर पाया था।

"क्या तुमने यह भी पता लगाने की कोशिश की कि यह सब क्यों हुआ?" आन्द्रेई ने पूछा।

"हां, की। वही तो मैं आपसे बताना चाहता हूं। मैं पहली मई फ़ार्म में गया था। लेकिन फ़ार्म का प्रधान वहां नहीं था। किसानों ने जो कुछ बताया उससे तो यही मालूम होता है कि यह सब प्रधान की ज्यादतियों के कारण हुआ। उसने जनवादी कार्यप्रणाली को तिलांजलि दे दी है। उसने खुद ही फ़ैसला कर लिया है कि किसानों को 'आधे-आधे' मकान दिये जायें। प्रधान कहता है कि पार्टी की फ़रवरी की मीटिंग का यही निर्णय है। किसान इस बात से बिगड़ उठे और अपना विरोध प्रदर्शित करने के लिए उन्होंने काम छोड़ दिया। मैंने यह अपना कर्तव्य समझा कि आपको इसकी रिपोर्ट दूं ताकि आप समझ सकें कि जनता में फैली अफवाहों का स्वरूप क्या है!"

"बहुत ठीक! और कोई बात? हां, प्रधान कैसा है?"

"अरे, यह सब मुझे नहीं मालूम। लोग कहते हैं कि वह बहुत पीता है, जनवादी कार्यप्रणाली को ठुकराता है। उसका पारिवारिक जीवन भी बहुत गड़बड़ है और आम तौर से वह बड़ा... मेरा मतलब है..."

"हां, हां! तुम्हारा मतलब है...?"

"सचमुच! मैं कह नहीं पा रहा हूं।... जो भी हो, मैंने सोचा कि ऐसी बात की सूचना आपको देना मेरा कर्तव्य है।"

"अच्छा! मैं कल इस मामले को देखूंगा। लेकिन इस बीच तुम किसी और से कुछ न कहना ताकि व्यर्थ की अफवाहें न फैलें!"

त्रावनित्सकी चला गया। आन्द्रेई ने उठ कर कमरे का एक चक्कर लगाया। सहसा उसे वालेंतिना की याद आई। अभी कुछ दिन पहले वह मिच्यूरिन के कृषि-सम्बंधी सिद्धान्तों पर एक व्याख्यान-माला सुनने के लिए शहर गयी थी। आन्द्रेई को अब अपने पर क्रोध आ रहा था कि ऐसे समय क्यों उसने उसे जाने दिया? वोलगिन को बुलाने के लिए उसने घंटी बजायी।

बोलगिन छोटे-छोटे क़दमों से सड़पड़-सड़पड़ करता हुआ आया। कुछ-कुछ नीचे को लटके उसके जबड़ों की खाल खुरदुरी और छिली-छिली सी लग रही थी। उसके पीले होंठ खुश्क और फटे-फटे से थे। चश्मे के शीशों से आंखें लाल-लाल दिखायी दे रही थीं। उसकी आंखों से थकान और संतोष दोनों ही प्रकट हो रहे थे।

"मुझे बुलाया है, पेत्रोविच?" बोलगिन ने मुस्करा कर आन्द्रेई की ओर देखा। उसके गालों की खाल बड़े-बड़े पर्तों में सिमट गयी।

"बैठो! बताओ तो, दौरे में तुमने क्या-क्या देखा?"

"मैंने सात फ़ार्मों का दौरा किया है। घर भी नहीं गया—मोटर से उतर कर सीधा ब्यूरो कान्फ्रेंस में चला आया। पावों पर खड़ा होना भी मुश्किल हो रहा है।" आराम कुर्सी पर बैठते हुए बोलगिन बोला। "सारा बदन टूट रहा है। मालूम होता है, बुढ़ापा आ गया है। पहले, एक दिन में मैं तीन-तीन सौ किलोमीटर का सफ़र करता था, और कुछ मालूम नहीं होता था। लेकिन कल सिर्फ़ डेढ़ सौ किलोमीटर का चक्कर लगाया, और मालूम होता है जान निकल गयी है।"

"अपने काम को किलोमीटरों में नापना कब से शुरू कर दिया है? काम कोई रेलवे पार्सल तो है नहीं कि इतने टन माल का इतने मील के लिए इतना दाम होगा। अच्छा बताओ, तुम पहली मई, प्रभात और ट्रैक्टर फ़ार्मों में कब गये थे?"

"क्यों?: कल ही तो! पहली मई और प्रभात, दोनों जगह कल ही तो गया था।"

"वहां के हाल-चाल सुनाओ।"

"हाल-चाल क्या सुनाऊं? लकड़ी का काम पूरा हो रहा है। खाद ढोई जा रही है। पिछले हफ्ते कुछ लेक्चर देने वाले भी वहां गये थे।"

"पहली मई के किसानों का क्या हाल है?"

"हाल? मेरा खयाल है, खूब खुश हैं। धीरे-धीरे फ़ार्म की अवस्था सुधर रही है। प्रधान, एक योग्य और मेहनती आदमी है। काम अच्छा हो रहा है, अनुशासन भी है।"

सामने रखे कलमदान को क्रोध से एक ओर हटाता हुआ आन्द्रेई बोला:

"कुछ समझ में नहीं आता! त्रावनित्सकी आज वहां गया था। वहां से लौटकर उसने बताया है कि लकड़ी की चिराई वालों ने काम बन्द कर दिया है, ज़िले में अफवाहें उड़ रही हैं कि प्रधान बहुत शराबी और अकड़ू है। अब तुम यह बता रहे हो कि वहां सब कुछ ठीक-ठाक है, काम अच्छा हो रहा है, अनुशासन भी है और किसान खूब खुश हैं।"

"ओर्तनिकोव को तो मैं लड़ाई से भी पहले से जानता हूं, आन्द्रेई पेत्रोविच !"

"लेकिन मैं लड़ाई से पहले की बात तो नहीं पूछ रहा हूं ! कल की बात बताओ। कल वहां क्या हुआ ? लकड़ी चिराई के प्रमुख, दाढ़ी वाले बूढ़े मातवेयेविच, से बातचीत की थी ?"

बोलगिन ने चश्मे पर उंगलियां फेरीं—मानो वह उसके और आन्द्रेई के बीच आ रहा हो—अपनी भौहों को कुछ सिकोड़ा, फिर ग्लानि भरे स्वर में बोला :

"नहीं, मातवेयेविच से तो नहीं मिला, आन्द्रेई पेत्रोविच।"

"हूं ! कौमसोमोल दल के नेता अलेक्सी बेरेज़ोव से मिले ? या, लुबावा से मिले जो अपने दल की नेता है ? जानते हो न—खूबसूरत सी औरत है।"

"मैं जानता तो सबको हूं, पर उनसे मुलाक़ात नहीं कर पाया।"

"तो किससे मुलाक़ात की ?"

"आर्तनिकोव से मिला था।"

"फ़ार्म के दफ्तर में क्या अकेला वही था ?"

"नहीं, मैं फ़ार्म के दफ्तर नहीं गया !"

"तो कहां गये थे ? गोशाला में ? खेतों में ?"

"गोशाला भी नहीं गया।"

"तो फिर कहां गये थे ?" अपना क्रोध दबाने का भरसक प्रयत्न करता हुआ आन्द्रेई पूछ रहा था।

बोलगिन फिर अपने चश्मे से खेलने लगा। उसे देखकर साफ मालूम हो रहा था कि वह कितना झेंप रहा है। आन्द्रेई बड़े सब्र से उसके चश्मा ठीक कर चुकने की प्रतीक्षा करता रहा।

आखिर बोलगिन ने चश्मे से हाथ हटाया और गहरी सांस लेकर बोला :

"सच बात यह है आन्द्रेई पेत्रोविच, कि पहली मई फ़ार्म पर मैं सबसे आखीर में पहुंचा। थकावट के मारे मेरा जोड़-जोड़ दुख रहा था। मुझसे चला नहीं गया। मैंने ओर्तनिकोव को अपनी मोटर के पास बुलवा लिया और वहीं उससे बातचीत कर ली... !"

आन्द्रेई उठकर खड़ा हो गया।

"तुम वहां गये किसलिए थे ? क्या ज़िले का दौरा तुम सिर्फ़ किलो-मीटर गिनने के लिए करते हो ? बोलो ? नहीं, सेम्योन सेम्योनोविच, यह ठीक नहीं है। मैं तुम्हारी इज्ज़त करता हूं, तुम्हारी क़द्र करता हूं। लेकिन तुम्हारी यह आदत बरदाश्त के बाहर है। दुर्भाग्य से तुम्हीं अकेले ऐसे नहीं

हो जिस पर दौरे का बेहूदा भूत सवार रहता है। लोग-बाग एक दिन में एक दर्जन फ़ार्मों का दौरा पूरा कर आते हैं और फिर ऐसे बैठ जाते हैं जैसे शहीद बन गये हों। ऐसे दौरों से क्या फायदा? ऐसे दौरों से क्या हासिल होता है? नहीं, नहीं—तुम बताओ, क्या फ़ायदा होता है ऐसे दौरों से?" आन्द्रेई पूछने पर तुला हुआ था।

वोलगिन के चेहरे पर अपमानित होने के चिन्ह दिखाई दे रहे थे। वह तन कर बैठ गया। उसकी मुख-मुद्रा गम्भीर हो गयी।

"आन्द्रेई पेत्रोविच, तुम मेरा मिलान अपने से नहीं कर सकते। तुम्हें यहां आये अभी साल भर भी नहीं हुआ। मैं बहुत पहले से यहां के जानवरों के पीछे दौड़ता फिरा हूं। मैं एक मिनट में उतना देख सकता हूं जितना तुम दिन भर में नहीं देख सकते। मैं हर सामूहिक किसान को तीन पुश्तों से जानता हूं। मैं हर गाय-घोड़े को पहचानता हूं, मैं जानता हूं कि कौन किसका बछड़ा है!"

"तो तुम समझते हो कि बिना मोटर से बाहर पैर निकाले भी नेतृत्व किया जा सकता है? अच्छा! बताओ, फ़रवरी प्लेनम के निर्णयों के बारे में फ़ार्म में क्या बहस हुई?"

"बोर्तनिकोव से इस बारे में मैंने कोई बात नहीं की।"

"यही तो मैं कहता हूं! तुमने इस बारे में कोई बात नहीं की और मैं यहां बैठा अफवाहें सुन रहा हूं कि फ़रवरी प्लेनम के निर्णय के नाम पर वहां लोगों के रहने की जगह 'आधी' की जा रही है। तुम ज़िला पार्टी कमिटी की ओर से कल वहां गये थे, लेकिन तुम्हें कुछ नहीं मालूम कि वहां क्या हो रहा है! तुम मुझे वहां की बाबत कुछ नहीं बता सकते! अब बताओ तुम्हारे दौरे से क्या फ़ायदा हुआ?" आन्द्रेई ने और भी तीखे स्वर में उसे चिढ़ाते हुए पूछा: "आखिर तुम्हारे दौरे का फ़ायदा क्या हुआ? तुमने वहां क्या देखा? क्या समझा?"

वोलगिन के चले जाने के बाद आन्द्रेई बहुत देर तक अपने कमरे में बेचैनी से चहलक़दमी करता रहा। पहली मई फ़ार्म की बाबत शावनित्सकी की बातें, वहां की चिन्ताजनक स्थिति, और वोलगिन का निरर्थक दौरा—ये सब एक ही जंज़ीर की अलग-अलग कड़ियां थीं।

"यह है हालत!" वह सोच रहा था। "मेहनत करो, काम करो, काम होने लगता है। लोग तारीफ़ें करने लगते हैं। तारीफ़ों के बाद ज़रा चैन करने की सूझती है, कुछ चीज़ें नज़रन्दाज़ होने लगती हैं, फिर वे ही मुसीबत बन जाती हैं।"

अगले दिन सुबह ही आन्द्रेई मोटर से पहली मई फ़ार्म के लिए रवाना हो गया। मोटर घंटे भर से सड़क पर दौड़ती चली जा रही थी। कोहरे में लिपटा सुबह का लाल सूरज वृक्षों की आड़ में छिप-छिप जाता था। उसकी किरणें शाखाओं से छन-छन कर धरती पर फैल रही थीं।

कोहरे से भरे स्तब्ध जंगलों में कुल्हाड़ियों और आरों की गूंज स्पष्ट सुनाई दे रही थी। चिराई का इलाक़ा समीप ही था। कभी-कभी लम्बे-लम्बे लट्ठों से लदी भारी लारियां पास से गुज़र जातीं। गुलाबी-गुलाबी गालों वाले लड़के और लड़कियां इन लट्ठों पर जाने कैसे चिपके बैठे थे। सड़क पर बनी खाइयों और गढ़ों में पहिये पड़ने से लारी धचका खाती और लट्ठे खूब ज़ोर से हिल जाते; लड़के-लड़कियां चीखें मार-मारकर किलकारियां भरने लगते।

"लारियों की भीड़ ऐसी है जैसे मास्को की सड़कों पर।" ड्राइवर बोला। "जंगल के बीच के रास्ते से चलूं या सड़क-सड़क ही।"

"सीधे!" अपने खयाल में डूबे हुए आन्द्रेई ने उत्तर दिया।

वह पहली मई फ़ार्म के अपने पिछले दौरों की याद कर रहा था।

मोटर एक पहाड़ी के ऊपर से जा रही थी। खुली धूप में चमकते चीड़ के वृक्ष पहरेदारों की तरह सड़क के किनारे पांति बांधे सीधे खड़े थे। वृक्षों के तनों के बीच से नीला आकाश चमक रहा था। इसी जगह का नाम था "डांड़"। यह स्थान जंगलों की देख-भाल करने वाले मिखेयेव को बहुत पसन्द था। मिखेयेव को प्रदेश भर के लोग जानते थे। उसकी आयु अस्सी बरस की थी। सारी ज़िन्दगी उसने इन जंगलों में ही बिता दी थी। वह आन्द्रेई का मित्र भी था। मिखेयेव के बेटे भी जंगलों में ही काम करते थे उसके पोते जंगलों की शिक्षा के कालेज में शिक्षा पा रहे थे। मिखेयेव अपने आपको जंगलों में काम करने वाला नहीं बल्कि वन-वैज्ञानिक और वन-प्रेमी कहता था। मिखेयेव इस जंगल के एक-एक पेड़ से परिचित था, वह बीमार पेड़ों का "इलाज" करता था, पेड़ों की मुरझाई शाखाओं को छांट देता था और सूखी लकड़ियों को तुड़वा देता था। और डांड़, मानो कृतज्ञता सूचित करने के लिए, खूब मजबूत, सीधा और ऊंचा होता जा रहा था। आसमान में सिर ऊंचा उठाये बर्फ़ से ढंकी चीड़ वृक्षों की गुलाबी चोटियों को देखकर आन्द्रेई को अपनी और अपने साथियों—ज़िले के कम्युनिस्टों—की बरबस याद हो आई: "हम सभी वन-वैज्ञानिक हैं, सभी जंगलों के प्रेमी हैं। हमें अपने जंगलों को गंदगी और झाड़-झंखाड़ से साफ़ रखना चाहिए और अपने यहां के लोगों को उसी तरह मज़बूत और अडिग बनने की शिक्षा देनी चाहिए जैसे ये पेड़ हैं।"

आन्द्रेई चाहता था कि फ़ार्म में जल्दी से -जल्दी पहुंच कर वहां की स्थिति देखे। ड्राइवर की ओर झुककर व्यग्रता से उसका कंधा छूते हुए वह बोला :

"सार्जेंट! ऐसे रेंग क्यों रहे हो? नीचे बारूद थोड़े ही बिछी है! ज़रा तेज़ चलो न!"

जंगल पीछे छूट गये। सामने दूसरी ऊंची पहाड़ी दिखाई दी। ढलवान पर छोटा सा गांव बसा था।

आन्द्रेई ने सीधे प्रधान के घर चलने का फैसला किया।

वासिली से दुआ-सलाम करने के बाद अपनी कमर सीधी करते हुए आन्द्रेई बोला : "माफ़ करना, मैं सीधा तुम्हारे घर आया। मैं तुमसे कुछ व्यक्तिगत बातचीत करना चाहता था।"

"बड़ी खुशी हुई तुम्हारे आने से, आन्द्रेई पेत्रोविच! तुम आते ही कब हो? ओवरकोट उतार डालो!"

"पिछली बार जब मैं आया था, तब से तुम और लम्बे हो गये हो।" अवदोत्या को भीतर आते देख आन्द्रेई ने कहा : "नमस्कार! आपका पति छत के नीचे समाता कैसे है, मालकिन? मेरे इस तरह चले आने से आपको कोई परेशानी तो नहीं हुई?"

दुबली-पतली, बड़ी-बड़ी आंखों वाली महिला ने अपना सीधा, लम्बा हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया :

"आपका स्वागत है! माफ़ कीजिए, अभी सुबह-सुबह घर वैसे ही पड़ा है।"

"बड़ा भोला और प्यारा चेहरा है!" आन्द्रेई सोच रहा था। "मैंने ऐसे चेहरे चित्रकारों की कृतियों में देखे हैं—शायद वासनेत्सोव के चित्रों में! अलबत्ता आंखों में उदासी सी है; खोयी-खोयी सी लगती है। फिर भी, पति-पत्नी की जोड़ी बड़ी अच्छी है। बच्ची भी कितनी प्यारी है!"

अवदोत्या के पीछे से काली भौंहों वाली लड़की ने झांककर आन्द्रेई को देखा।

"आओ, मुन्नी!"

अपना सिर एक ओर झुकाकर और माथा ज़रा आगे बढ़ाकर लड़की ने बिलकुल बाप की मुद्रा बना ली। फिर, बाप की ही तरह यक़ायक खुलकर मुस्कराती हुई बोली :

"ओ हो!... मैं तो तुम्हें जानती हूं...!"

"सच? कौन हूं मैं?"

"तुमने नये दिन पर हमारे लिए खिलौने भेजे थे! तुम आन्द्रेई पेत्रो-विच हो! ज़िला पार्टी कमिटी वाले!"

"ओ हो, क्या खूब नाम रखा है! ज़िला पार्टी कमिटी वाले!" आन्द्रेई हंस पड़ा।

"अच्छा बेटी, ज़िला पार्टी कमिटी क्या है?

"ज़िला पार्टी कमिटी वह जगह है जहां खिड़की में से स्तालिन सबको देखते हैं!"

"अरे बाबा! सुना तुमने, वासिली कुज़मिच? क्या तुम इससे ज्यादा सोच सकते थे? ज़िला पार्टी कमिटी वह जगह है जहां खिड़की में से स्तालिन सबको देखते हैं। वाह! बड़ी होशियार बिटिया है!"

"छुट्टियों में हम लोग इसे उग्रेन ले गये थे। ज़िला पार्टी के दफ्तर की खिड़कियों से नेताओं की तस्वीरें दिखाई दे रही थीं। वे ही इसे याद रह गयी हैं।" दुन्या की मां ने बताया।

मंत्री के आने से अवदोत्या को बहुत अच्छा लग रहा था! वासिली के साथ घर में अकेले रहने पर उसे बड़ी उलझन होती थी। कुछ दिनों से उसे आभास हो रहा था कि कोई बात उसके पति के मस्तिष्क को कुरेद रही है, पर वह बिलकुल चुप रहता है। उन लोगों के बीच भेद की खाई इतनी गहरी हो चुकी थी कि अवदोत्या ने इस चुप्पी को तोड़ने का यत्न भी छोड़ दिया था। अब बातचीत करना भी बहुत पीड़ाजनक था।

घर में कात्या, और अवदोत्या की मां प्रास्कोव्या, बीमार थीं। गोशाला में काफी काम था। घर और गोशाला के काम से ही अवदोत्या को छुट्टी न मिलती थी। इस तरह काम में फंसे रहने से उसे खुशी ही होती थी। वह भीतर ही भीतर सुलगने और कुढ़ते रहने से बच जाती थी। अवदोत्या नाश्ता तैयार करने चली गयी। आन्द्रेई और वासिली बातें करने लगे:

"काम-काज का क्या हाल है? तुम्हें कैसा मालूम होता है, वासिली कुज़मिच?"

"खूब ठीक है! बल्कि इतना ठीक कभी हुआ ही नहीं।" समाचार पत्र में पार्टी कमिटी के निर्णयों की ओर संकेत करते हुए उसने कहा: "यह तो एक तोहफ़ा है! हम लोगों के जीवन में यह दिन एक गौरवशाली दिन है।"

"बड़ी खुशी हुई तुम्हारी बात सुनकर! मैंने तो जाने क्या-क्या अफवाहें सुनी थीं। लोग कह रहे थे कि तुम्हारे यहां लकड़ी की चिराई करने वालों ने काम बन्द कर दिया है!"

"किसने कहा?"

" आवनित्सकी ने।"

"अरे, उसने!" वासिली के माथे पर बल पड़ गये। "बड़ा निकम्मा आदमी है! उसकी बात झूठी है। हां, ऐसे ही लोगों में ज़रा ग़लतफ़हमी फैल गयी थी। ग़लतफ़हमी तो फैली ही थी। जैसे ही हम लोगों तक पार्टी का फैसला पहुंचा, हमने घरों के लिए दी गयी जगह फिर से नापनी शुरू कर दी। देखो, पार्टी के निर्णय में साफ़-साफ़ कहा गया है: 'सामूहिक खेत की धरती बरबाद नहीं होनी चाहिए।' देखा? यहां इक्के-दुक्के कुछ लोग ऐसे भी हैं जो फालतू धरती घेरे हुए हैं। इसलिए हम लोगों ने फिर धरती नापनी शुरू की। किसी ने अफवाह उड़ा दी कि मैं सबकी धरती छीन रहा हूं। अफवाह फैली तो लकड़ी की चिराई वाले लोग भाग-भाग कर यहां आने लगे। कल से उन्हें फिर काम पर भेज दूंगा।"

आन्द्रेई के चेहरे पर चिन्ता झलक आई।

"कितने दिन काम बन्द रहा?"

"कल आधे दिन और आज!"

"क़रीब-क़रीब दो दिन बरबाद हुए।" आन्द्रेई अपनी पेटी में अंगूठे फंसाये कमरे में घूम रहा था। "फिर भी, यह हुआ कैसे? क्यों हुआ? प्लेनम के निर्णयों पर किसानों से बहस की थी?"

"इसमें बहस करने की बात थी ही क्या? साफ़ बात तो है—पढ़ लो, और समझ लो! हमारे यहां के सभी लोग पढ़े-लिखे हैं। बेमतलब जबड़े चलाने से क्या फ़ायदा?"

"भई, तुम बात नहीं करोगे तो दूसरे करेंगे और उल्टी बात समझा देंगे। नतीजा सामने है। तुमने किसानों से बात नहीं की। किसी दूसरे ने फायदा उठाया। नतीजा यह कि दो दिन तक काम नहीं हुआ। कसूर किसका है? तुम्हारा! सिर्फ़ तुम्हारा! इतना ही नहीं! खास चीज़ इस मसले का राजनीतिक पहलू है। किसी ने तुम्हारी ग़लती का फ़ायदा उठाया और अब ज़िले भर में अफवाहें फैल गयीं। तो दोस्त, यह नतीजा है तुम्हारी राजनीतिक अदूरदर्शिता का। यह सिर्फ़ प्रबंध-सम्बंधी भूल नहीं है!"

वासिली आन्द्रेई की हर बात बड़े ध्यान से सुन रहा था। उसके शब्दों को तौलने, दिमाग़ में उलटने-पुलटने और पचाने का प्रयत्न स्पष्ट रूप से वासिली के चेहरे पर झलक रहा था।

"देखो न, तुम्हारा काम सिर्फ़ ज़मीन की बचत करना ही तो नहीं है, तुम कम्युनिस्ट हो, एक राजनीतिक नेता हो।" आन्द्रेई कह रहा था। "इस बात को तुम ज़रा देर को भूले नहीं कि इतने अच्छे फैसले का भी उलटा प्रभाव पड़ा। तुम तो पार्टी के फ़ैसले को अमल में लाने की कोशिश कर रहे थे, लेकिन

तुम्हारे फ़ार्म के किसान काम छोड़ रहे हैं, ज़िले भर में फ़ार्म के बारे में तरह-तरह की अफवाहें फैल रही हैं। बात तो दिखाई देती है छोटी सी। लेकिन इससे तुम्हारी बड़ी ग़लतियों का पता चलता है, वासिली कुज़मिच !"

"ठीक है...।" वासिली ने कटु निश्वास लेते हुए कहा। "कभी दो ही शब्दों में इतनी बड़ी बात निकल आती है कि हैरान रह जाओ।"

"आदमी कुछ परेशान जरूर है।" आन्द्रेई सोच रहा था।

आन्द्रेई आकर वासिली के पास बैठ गया और धीमे स्वर में बड़े अपनत्व से उससे बातें करने लगा :

"मैंने जब पार्टी के निर्णयों पर ध्यान से सोचा तो मुझे अपनी कई भूलें दिखाई दीं। मुझे बहुत अफ़सोस हुआ ! सचमुच ! कुछ भी कहा जाय, तुम्हारे फ़ार्म की समस्या को सच्चे बोल्शेविक ढंग से सुलझाने की कोशिश मैंने नहीं की। यह ग़लती मेरी है।...हां...मैं तुम्हारे प्रति देनदार हूं, वासिली कुज़मिच ! अपनी पार्टी की केन्द्रीय कमिटी के पूर्णाधिवेशन से मैंने यही शिक्षा पायी है...।"

वासिली की भूलों के लिए उसे फटकार बताने के बजाय, मंत्री ने अपनी ही ग़लतियां उसे बताना शुरू कर दी थीं। इस अप्रत्याशित बात से वासिली भौंचक रह गया।

आन्द्रेई ने सिगरेट निकाल कर वासिली को दी। दोनों ने चुपचाप सिगरेटें सुलगायीं। नीले धुयें की दो पतली-पतली डोरें उनके सिर से ऊपर मंडराने लगीं। लकड़ी की दीवार के पीछे से बीमार कात्या के कराहने और अवदोत्या के उसे तसल्ली देने के शब्द भी सुनाई दे रहे थे। अभी हाल में सींचे गये जिरेनियम के फूलों पर पानी की बूंदें मोतियों की तरह चमक रही थीं। आलमारी के सिरे पर बिछाये बर्फ़ जैसे सफेद कपड़े पर लाल धागे से कढ़े, टांगें उठाकर अकड़ कर चलते, मुर्गों की पंक्ति भी दिखाई दे रही थीं।

"वालेंतिना जैसी ही कढ़ाई है !" आन्द्रेई सोच रहा था। "अच्छी तो लगती है, फिर भी मन को नहीं खींचती। पता नहीं क्या बात है ? जब से आया हूं इन पति-पत्नी में कोई बात ही नहीं हुई !" अपनी सिगरेट राखदानी में बुझाते हुए आन्द्रेई ने पूछा :

"आजकल तुम्हारे दलों के लीडर कौन-कौन हैं ? अल्योशा को तो मैं जानता हूं—बहुत अच्छा लड़का है। दूसरे दल का नेता कौन है ? जंगल की कटाई, तरकारी के बागों और गोशाला का काम कौन लोग सम्भाल रहे हैं ?"

"दूसरे दल का नेता पिमेन यासनेव है।"

"पिमेन आदमी तो बहुत अच्छा है, पर बूढ़ा है! क्या वह ऐसे काम के योग्य है? टीम के नेतृत्व के लिए तो बहुत उत्साही आदमी चाहिए।"

"सो तो है, पर ऐसा आदमी लायें कहां से? लकड़ी कटाई में मातवेयेविच है, तरकारी के बागों के काम में अभी कोई लीडर नहीं है, गोशाला में यह काम कर रही है," वासिली ने सिर से अवदोत्या की ओर संकेत किया, जो फिर कमरे में आ गयी थी।

मंत्री से आंखें मिलने पर अवदोत्या को झेंप सी लगी।

"चरागाहों का क्या हाल है?"

"हाल बहुत तारीफ़ लायक नहीं है। चरानें बहुत दूर हैं और घास अच्छी नहीं है।" अवदोत्या ने उत्तर दिया।

"नदी किनारे की चरान के दलदल का पानी क्यों नहीं निकाल डालते तुम लोग?" आन्द्रेई ने उत्साह से कहा। "पिछली गर्मियों में आया था तो मैंने उसे देखा था—मेरे खयाल से यह कोई मुश्किल काम नहीं है। बीचों-बीच से दो हाथ चौड़ी नाली खोद देने की ज़रूरत है। दस हेक्टर की अच्छी चरान एकबारगी निकल आयेगी। कभी इस बारे में सोचा तुमने?" आन्द्रेई अपनी नोटबुक का एक पन्ना फाड़ कर उस पर पेंसिल से नक्शा बनाने लगा। "देखो, बाढ़ के पानी से यहां दलदल बन जाता है। यह रहा ढलवान। नाली इस रास्ते निकाली जायेगी... खास कठिनाई नहीं होगी। कहीं-कहीं दो-चार पेड़ आयेंगे और क़रीब आधे हेक्टर तक घनी झाड़ियां हैं। धरती में थोड़ा चूना देकर नयी घास लगा दो, तो इससे बढ़िया चरान ढूंढ़ने से नहीं मिलेगी। गांव से दूर भी नहीं है और नदी बिलकुल पास है।"

अवदोत्या अविश्वास से कागज़ पर बनती लकीरों को देख रही थी।

"कागज़ पर नाली खोद कर चरान बना देना बड़ा आसान है।" वह सोच रही थी। "हम लोग हाथ का काम तो पूरा कर नहीं पाते, यह नाली कौन खोदेगा!"

इस बीच मंत्री प्रश्नों की झड़ी लगाये था:

"बारी-बारी से चारा बोने की व्यवस्था का क्या हाल है? सदा उगने वाली घास का बीज कितना जमा किया है?"

अवदोत्या के उत्तर अस्पष्ट थे और प्रश्नकर्ता का समाधान नहीं कर पा रहे थे। वह गोशाला में खूब मेहनत से काम करती थी, जगह खूब साफ़ रखती थी, पशुओं को नियमित ढंग से चारा देती थी, दूध और दूसरी चीज़ों का पूरा हिसाब रखती थी और इस बात के लिए चौकस रहती थी कि दूध दुहनेवाली

औरतें गायों को साफ़ रखती हैं या नहीं। वह समझती थी कि जितना कुछ करना संभव है, वह कर रही है। किन्तु मंत्री के प्रश्नों ने उसके काम पर नया ही प्रकाश डाला! उसके मन में उथल-पुथल मच गयी। "जिन कामों के बारे में उसने सबसे पहले पूछा है, उन पर मैं सबसे बाद में ध्यान देती हूं। शायद मैं अपना काम ग़लत ढंग से कर रही हूं!"

आन्द्रेई ने अवदोत्या की परेशानी देखी। वह चुप होकर विचारों में डूब गया। अवदोत्या के हाथों में चीनी की पीली-पीली सी सफेद तश्तरियां एक-दूसरे से लड़खड़ा रही थीं; कभी चम्मच, तो कभी कांटा, फ़र्श पर गिर जाता था।

"मुझे हो क्या गया है?" अवदोत्या अपने ऊपर खीझ रही थी। "यह आदमी सोचेगा कि मैं एकदम फूहड़ हूं।"

"पशु-पालन शिक्षा का कोर्स आपने पास किया है? आप आजकल कौन सी किताबें पढ़ रही हैं?"

"कोर्स तो नहीं पास किया, पर कुछ पुस्तकें मेरे पास हैं। पुस्तकें अधिकतर चारे और पशुओं की खूराक के बारे में हैं... पर हमारे फ़ार्म में इनका कोई उपयोग नहीं हो सकता।"

"अच्छा? यह क्यों?"

"मेरा मतलब है, हमारे फ़ार्म में उनके उपयोग की सम्भावनाएं नहीं हैं!"

मंत्री की भौंहें फड़क उठीं और ऊपर को तन गयीं। उसके गालों की हड्डियां और भी उभर आईं। मालूम होता था कि अवदोत्या के शब्दों ने किसी चोट खाई जगह को छू दिया है।

"यह तो और भी बुरा है!" आन्द्रेई ने धीरे से कहा। "हम लोग कभी-कभी अपनी सम्भावनाओं को देखते ही नहीं—उनका उपयोग करना तो दूर की बात है। सम्भावनाएं होती ही नहीं, तो बात दूसरी थी। पर, वे हैं! उन्हें पहचानने की ज़रूरत है। सोना धूल में दबा पड़ा हो तो उससे क्या फ़ायदा। हम उसे अंधे की तरह रौंदते चले जाते हैं।" उसके स्वर से क्रोध, घृणा और उलाहना फूटा पड़ रहा था।

"मैं ख़ामख़ा क्या कह गयी!" अवदोत्या को और भी उलझन मालूम हो रही थी। "यों ही इसे नाराज़ कर दिया।" मंत्री कहता गया:

"गांव की बगल में ही, दलदल के पास, कितनी बढ़िया चरान बन सकती है! दो बरस उसमें चारा बो दिया जाय तो कम से कम ढाई टन चारा निकले!"

आन्द्रेई के सामने तश्तरियों में रखा खाना ठंडा हो रहा था; उस ओर उसका ध्यान नहीं गया। अवदोत्या आतिथ्य भूलकर तन्दूर के चबूतरे की टेक लिए चुपचाप उसकी बातें सुन रही थी।

जब आन्द्रेई और वासिली बाहर चले गये, तब घर में ऐसा सन्नाटा हो गया जैसा निमंत्रण पर आये लोगों के चले जाने के बाद होता है।

यह सन्नाटा अवदोत्या को अखर रहा था।

"ये लोग चले गये...मैं भी इन लोगों के साथ जाती तो अच्छा रहता...सुनती कि फ़ार्म के बारे में क्या बातें करते हैं। उसकी बातें तो दादी की कहानी जैसी लगती हैं।...फिर भी, उसने फ़ार्म को खाद उधार दिलवा दी है और मशीन दिलाने का भी वादा किया है। बिजली का दूसरा जेनरेटर भी दिलवा दिया है। यह कोई दादी की कहानी नहीं है।"

शाम को अवदोत्या भी फ़ार्म जाना चाहती थी। परन्तु दूध दुहे जाने के समय उसका गोशाला में रहना ज़रूरी था। दूसरे, वह कात्या और मां को कैसे छोड़ जाती? दोनों बीमार थीं।

आन्द्रेई और वासिली दिन भर साथ-साथ खेतों, खलिहानों और गोदामों का चक्कर लगाते रहे। दोनों ने मिलकर आगे के कामों की योजना बनायी, काम करने वाले दलों के नामों की फेहरिश्त देखी और दलों के नेताओं से बातें कीं। शाम तक साथ-साथ काम और बातें करने के फलस्वरूप दोनों एक-दूसरे को इतना समझ गये थे कि आपस में एक शब्द से ही एक दूसरे की बात समझ लेते थे। दोनों में उस गहरी मित्रता का भाव जाग गया था जो केवल साथ-साथ जीने-मरने वालों में जागता है, जो एक ही लक्ष्य के लिए कंधे से कंधा मिला कर आगे बढ़ने वालों को आजीवन अपनत्व के अटूट बन्धन में बांध देता है।

गांव में घर-घर सूचना देने वाला लड़का दरवाज़े खटखटा-खटखटा कर कह रहा था: "सभा में चलो! आन्द्रेई पेत्रोविच आ गये हैं...!"

फ़ार्म में आन्द्रेई को सभी लोग खूब जानते थे। खुद आन्द्रेई पेत्रोविच के आने की खबर पाकर भला कौन सभा में न आता? सामूहिक खेत के सभी किसान, बच्चे—और, अपाहिज बूढ़े तक, जो कभी सभा-वभा की परवाह न करते थे—नियत समय पर सभा में आ पहुंचे।

तीखी ठंडी हवा दोपहर बाद कुछ बंद सी हो गयी थी और कुछ-कुछ गरमी हो गयी थी। बरफ़ रिसने लगी थी। यह मार्च महीने के शुरू के दिनों की वह सांझ थी जब सूर्यास्त के समय की हवा पिघलती बरफ़, नदी-नालों

और भीगे जंगलों के स्पर्श से बसंत के आगमन की सूचना लाती है। सूर्यास्त की लाली से ढंके आकाश पर वृक्षों की नम काली शाखाएं ऐसी जान पड़ रही थीं जैसे काली स्याही से लकीरें बना दी गयी हों। दूर के जंगल सिलेटी रंग के नहीं लग रहे थे; वे चिकने काले और खूबसूरत दीख रहे थे। बसंत के आगमन के इस प्रथम आभास से लोगों का मन खिल उठा था और गांव वाले घरों से बाहर निकल कर बेंचों पर बैठे या गली में टहलते हुए गप्पें लड़ा रहे थे।

पावका की पत्नी, पोल्यूखा कोनोपातोवा, गली में से होकर निकली। पोल्यूखा बहुत दुबली-पतली थी, उसकी सारस जैसी लम्बी-पतली गर्दन कुछ आगे बढ़ कर सीने पर झुकी हुई थी। गर्दन पर छोटा सा सिर, अभिमान से ऐंठा हुआ था। सिर पर गोल टोपी थी और उस पर एक क्लिप।

पोल्यूखा का पिता गांव के सहकारी-गोदाम का प्रमुख था। भाई रेल में गार्ड था और चचेरा भाई शहर के बाजार में माल तौलने का काम करता था।

सम्बंधियों की इस ऊंची स्थिति के कारण पोल्यूखा कोनोपातोवा को नियति के थपेड़ों से भयभीत और पराजित होने की आशंका नहीं थी।

मकान और मकान के साथ की धरती पर अधिकार बनाये रखने के लिए ही पोल्यूखा सामूहिक खेत की सदस्या बनी हुई थी। आम तौर से वह महीनों, गांव से दूर, जाने कहां, किस रहस्यमय काम से घूमती रहती थी। उसके पास लोहे की पत्तियों से मढ़ा एक सन्दूक था जो तन्दूर के पीछे छिपाया रखा रहता था। इस सन्दूक की चाभी पोल्यूखा अपने पति पावका को भी नहीं देती थी।

"अरे, आज तो पोल्यूखा भी सभा में आई है!" तातिआना ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

"क्यों न आऊं? क्या मैं सभा में आना चाहूं तो नहीं आ सकती? मैं कहती हूं, तुम आ सकती हो तो मैं भी आ सकती हूं।"

"तेरा आदमी कहां है?"

"मेरी बला से! जाने कहां है!"

"क्यों? क्या शिकार के शौक में तुझे भी छोड़ दिया है?"

"अरी अपनी तरह दूसरों के बारे में मत सोच, रानी! तेरा आदमी तुझे छोड़ गया होगा! मेरा आदमी मुझे छोड़ दे तो बिना सिर के गांव में घूमता दिखाई दे!" करारा जवाब देकर पोल्यूखा सिर उठाये रौब से दफ्तर की ड्योढ़ी की सीढ़ियां चढ़ने लगी।

फ़ार्म के दफ्तर का छोटा सा कमरा धीरे-धीरे ठसाठस भर गया। जिन लोगों को बेंचों पर जगह नहीं मिली वे खिड़कियों पर जा बैठे। किसान ऐसे सज कर आये थे मानो किसी उत्सव में जा रहे हों। ओवरकोटों और भेड़ की खाल के जाकेटों के बटन खुले होने से भीतर शहर के सिले सूट और ब्लाउज़ दिखाई दे रहे थे। कौमसोमोल के लड़के और लड़कियां सबसे आगे बैठे थे। अल्योशा, और अवदोत्या की दूर की बहन तातिआना ग्रिव्रोवा, सबसे आगे थे।

तातिआना के स्वस्थ चेहरे से ताज़गी और प्रसन्नता फूटी पड़ रही थी। उसकी, अवदोत्या जैसी नीली आंखों में, उत्सुकता नाच रही थी। सिर ज़रा पीछे किये बड़े आराम से पसर कर बैठी हुई थी। दूसरी लड़कियां तातिआना को घेरे हुए थीं। वह अपनी सहेलियों की बातों का उत्तर कभी तो मुस्कराकर और कभी भौंहों के इशारे से दे रही थी। कभी-कभी अल्योशा की ओर झुक कर वह उससे धीरे-धीरे कुछ बातें भी करने लगती थी।

अलेक्सी तो ऐसे अवसरों पर बहुत प्रसन्न और उत्साह-भरा दिखायी देता ही था।

ज़िला पार्टी के सेक्रेटरी आन्द्रेई पेत्रोविच की सभा में उपस्थिति अल्योशा के लिए एक महत्वपूर्ण घटना थी।

ब्रोतनिकोव परिवार के लोग—स्तेपनिदा, बूढ़ा कुज़मा वासिलीयेविच और प्योत्र—एक पिछली बेंच पर चुपचाप बैठे थे। तीनों ही खूब लम्बे और कद्दावर थे, सिर्फ कुज़मा का शरीर ही बहुत ढीला मालूम पड़ रहा था। उसके गाल भीतर धंस गये थे। उसके सांवले, मुरझाये माथे पर, चांदी जैसे उजले बाल छा रहे थे; सिर भी कुछ-कुछ हिल रहा था। बेंच पर सीधे बैठने में स्पष्ट ही उसे असुविधा हो रही थी। उसके चेहरे पर सदा दिखाई देने वाली आत्म-विश्वास और सहृदयता की छाप भी इस समय नहीं थी। उसके चेहरे पर चिन्ता और परेशानी छाई हुई थी।

फ्रोस्या सभापति-मण्डल की कुर्सियों के पास की खिड़की पर, सब जगह से दीखने वाले स्थान पर, बैठ गयी। फ्रोस्या जब आई थी तो बेंचों पर भी जगह थी, परन्तु उसे तो अपने एकदम नये, चमचम चमकते, बूट दिखाने थे। अपने रबड़ के जूतों को सभी लोगों को दिखाने के लिए, और विशेषकर आन्द्रेई को दिखाने के लिए, वह पांव ऊंचे किये थी। फ्रोस्या, फ्रोस्या ही न रह जाती अगर उसने ज़िला पार्टी के मंत्री पर भी जादू डालने की न सोची होती।

यों तो फ्रोस्या सामने की जुल्फें माथे पर खूब संवारे थी, भौंहों पर भी रंग लगाये थी, पर उसे सबसे ज्यादा भरोसा था आईने जैसे चमकते अपने लम्बे नये जूतों पर।

फिर भी, उसने सोचा, क्या मालूम किसी की नज़र ही उधर न जाये; इसलिए वह अपने पांवों को कभी इधर करती थी और कभी उधर। कभी जूतों को ढीला करने के लिए ज़िप को नीचे कर देती थी और कभी कसने के लिए ऊपर खींच लेती थी।

कमरे में उत्साह भरा शोरगुल हो रहा था। आन्द्रेई के अनुरोध पर अल्योशा ने बहुत जल्दी में फ़ार्म के निर्माण और विकास का एक नक्शा तैयार किया था। उसे दीवार पर टांग दिया गया था। नक्शे में फ़सलों की अदला-बदली वाले खेत, नये बनाये जाने वाले खलिहान और नयी गोशाला आदि भी चित्रित थे।

आन्द्रेई और वासिली ने कमरे में प्रवेश किया। उनके आते ही एकदम सन्नाटा छा गया। दोनों ने हाल ही में हजामत बनायी थी। दोनों के सीनों पर, युद्ध में पाये तग़में, इन्द्र-धनुष के रंग के फीतों में लटक रहे थे। दोनों ही खूब चुस्त, और फुर्तीले लग रहे थे। उन्हें देखने में भी सुख होता था। भूरे-भूरे बालों से भरा सिर उठाये, स्वस्थ, सुडौल आन्द्रेई अपनी स्वाभाविक चुस्त चाल से आगे-आगे चल रहा था। उसके पीछे लम्बा, कद्दावर और भारी-भरकम वासिली था, जिसका चेहरा धूप से तप कर कत्थई हो गया था। अपनी भारी-भारी भौंहों के नीचे छिपी, लाल-लाल, कुछ-कुछ परेशान, आंखें झुकाये वह चुपचाप पीछे आ रहा था।

सभा के कार्यक्रम में रखी गयी अन्तिम बात से वासिली के मन में बहुत खुदबुद हो रही थी। यह बात थी : फ़ार्म की पनचक्की के काम से कुज़मा बोर्तनिकोव को हटा देने का प्रस्ताव। वासिली ने पिता को बताया था कि बुढ़ापे के कारण कड़ा काम न कर सकने का कारण बताकर वह काम छोड़ दे। दिन में कई बार उसके मन में यह विचार बड़े ज़ोरों से उठा कि मंत्री को सच बात ही क्यों न बता दे? परन्तु यह बात उसे बहुत पीड़ाजनक मालूम होती थी। वह बात साफ़-साफ़ कहने का साहस नहीं बटोर सका। अब वह मौन था। यह विचार कि वह मसले को टाल रहा है, और अपने पिता के प्रति संवेदना का भाव—उसके मस्तिष्क को कचोट रहे थे।

वासिली मेज़ के पास पहुंचा। उसने मेज़ पर रखी घंटी को ज़ोरों से बजाना शुरू किया। उसे ज़िले या प्रांतीय केन्द्र की सभाओं की कार्यप्रणाली याद आ रही थी। जिस सभा का सभापतित्व उसे करना था उसमें उपस्थित जन समुदाय को देखकर उसकी आंखें गर्व से चमक रही थीं और उसे मन ही मन प्रसन्नता हो रही थी। मेज़ पर रखी छोटी घंटी फ़ार्म की एक गाय, जिसका नाम 'भगोड़ी' था, के गले से खोलकर खास तौर से सभा के काम के लिए लायी गयी थी।

सभा आरम्भ होने की सूचना की रस्म पूरी करने के लिए वासिली 'भगोड़ी' की घंटी ज़ोरों से और देर तक बजाता रहा। सब लोग चुपचाप बैठे घंटी की टनटनाहट सुन रहे थे। हां, बूढ़ा ग्वाला मेफोदी रैस्की भी वहां था, वह ज़रूर भौंचक सा इधर-उधर देख रहा था। उसने समझा कि 'भगोड़ी' गोशाला से रस्सी तुड़ाकर भागी है और उसे ढूंढ़ने के लिए उसे जाना चाहिए।

सब लोग चुप हो गये तो वासिली ने बोलना शुरू किया :

"साथियो!" उसने कहा। "वसंत हमारे द्वार पर है! मेरा मतलब उस वसंत से नहीं है," खिड़की से बाहर संकेत करके वह बोला। "मेरा मतलब सामूहिक खेत में इस अखबार द्वारा लाये गये वसंत से है।" उसने पार्टी के फ़रवरी के निर्णय की रिपोर्ट को हाथ में लेते हुए कहा। "अब ज़िला पार्टी कमिटी के प्रथम मंत्री कामरेड स्त्रेल्तसोव आपके सामने भाषण देंगे और आपको पार्टी के फ़रवरी प्लेनम के निर्णयों के बारे में बतायेंगे।"

आन्द्रेई कुर्सी से उठकर मेज़ के समीप आ गया। आगे बढ़ते ही सूर्य की किरणों का पूरा प्रकाश उसके मुंह पर पड़ा। परन्तु वह पीछे नहीं हटा।

नाटा क़द, सुनहरे बाल, सिर से पैरों तक धूप में नहाया, वह बिलकुल तरुण लग रहा था।

आन्द्रेई धीरे-धीरे, सोच-सोच कर, बहुत सीधे-सादे ढंग से बोल रहा था। ऐसा लगता था मानो वह व्याख्यान नहीं दे रहा था, बल्कि घर में बेंच पर बैठा साथियों से साधारण बातचीत कर रहा था।

"आप लोगों में से शायद कुछ साथियों ने इस बात पर ध्यान न दिया हो कि फ़रवरी प्लेनम ने हमारी कृषि में युद्ध के बाद के काल में कितनी अधिक उन्नति का रास्ता खोल दिया है। क्या आप सबके दिमाग़ में यह नक्शा साफ है कि तीन-चार वर्ष बाद हमारा देश कैसा लगने लगेगा? क्या आप जानते हैं कि तीन-चार साल बाद हमारे फ़ार्म की हालत क्या से क्या हो जायेगी? आपके फ़ार्म की अवस्था अच्छी नहीं है, ज़िले भर में वह सबसे पिछड़ा हुआ है! लेकिन, अगर हम सब एक साथ मिलकर कंधा लगायें तो हमारा फ़ार्म बहुत जल्दी अपने पावों पर खड़ा हो सकता है। यही हमारी शक्ति का रहस्य है!"

आन्द्रेई ने खेतों में दो से तीन टन तक फसल बढ़ने, पशुओं की संख्या और दूध की मात्रा बढ़ने, फ़ार्म के कामों के बिजली द्वारा होने और गांव भर में रेडियो लगने की बातें इस तरह कीं मानो वे निकट भविष्य की और अवश्यम्भावी चीज़ें हों। शायद किसानों को इतनी जल्दी और इतना बड़ा परिवर्तन होने में विश्वास न होता। परन्तु, मंत्री ने स्वयं किसानों के अनुभव के प्रमाण दिये। उसने फ़ार्म का पुराना कर्ज़ा बेबाक हो जाने, फ़ार्म में टनों खाद

उधार आ जाने, उधार नया बीज भेजा जाने, ज़िले की सबसे अच्छी ट्रैक्टर-ड्राइवर नास्त्या ओगोरोद्निकोवा के पहली मई फ़ार्म में भेजे जाने, अच्छी नस्ल के पशुओं के भेजे जाने, फ़ार्म के दलदल को मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन की मदद से बढ़िया चरान बना देने की योजना तथा बिजलीघर में नया जेनेटर आ जाने के प्रमाण दिये।

उसने सबके सामने फ़ार्म के लक्ष्य को स्पष्ट किया और उस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए मार्ग निर्धारित किया। उसके प्रत्येक शब्द से भविष्य अधिक स्पष्ट और अधिक निकट दिखाई दे रहा था।

"ज़िला केन्द्र से आपको पूरी सहायता मिलेगी, परन्तु असली ताक़त तो आप ही हैं।" उसने कहा। "युद्ध में ध्वस्त उक्रैन और बेलोरूस के नगरों को आज फिर आपकी शक्ति ही नये ढंग से बसा रही है और देश को एक के बाद दूसरी विजय-मंजिल पर ले जा रही है।"

"भाई, मेरी समझ में नहीं आ रहा, यह क्या कह रहा है?" बुढ़िया वासिलिसा ने बगल में बैठे मातवेयेविच से धीरे से कहा।

आन्द्रेई कहता कहा:

"मेरा मतलब किस चीज़ से है, साथियो? मेरा मतलब है, सोवियत जनता के देश प्रेम से और उसके वीरतापूर्ण कारनामों से! मेरा मतलब किससे है, साथियो?" आन्द्रेई ने घूमकर वासिलिसा की ओर देखा। वासिलिसा को शंका हुई कि शायद उसकी बात आन्द्रेई ने सुन ली है और नाराज़ हो रहा है। वह अपनी जगह पर बैठी पसीने-पसीने हुई जा रही थी। आन्द्रेई ने कहा: "हम तुम्हारी ही मिसाल लें, वासिलिसा।" अब तो मानो बुढ़िया की जान ही निकल गयी। "भेड़ों के बाड़े में तुमने सराहनीय काम किया है। तुम कमज़ोर हो, पर इतने संकट के दिनों में भी तुमने न सिर्फ़ भेड़ों के बाड़े की रक्षा की है, बल्कि पशुओं की नस्ल को उन्नत किया है और उनकी संख्या को बढ़ाया है।"

कमरे में उत्साह की लहर दौड़ गयी। यह आशा किसे थी कि दादी वासिलिसा जैसी जानी-पहचानी औरत का श्रम और जीवन सुदूर मास्को में हुये केन्द्रीय समिति के पूर्ण अधिवेशन के निर्णयों से इतने निकट से सम्बंधित होगा।

"मुझे तुम्हारे काम का भी ज़िक्र करना चाहिए, मातवेयेविच!" आन्द्रेई ने मातवेयेविच की ओर घूमकर कहा। "चारे की कमी के वक्त तुम्हारे फ़ार्म के घोड़े दुबले हो गये थे। परन्तु एक भी घोड़े की पीठ पर मुझे ज़ख्म नहीं दिखाई दिये। हर घोड़े के बालों पर कंघा किया होता था। पुरानी गाड़ियों और पुरानी साज़ों की बड़ी चतुराई से मरम्मत करके तुमने उन्हें सदा काम लायक बनाये रखा। और हमारे नवयुवकों का क्या हाल है, साथियो? आपके फ़ार्म

को भविष्य में ये लोग ही उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ायेंगे !"

बूढ़ा मातवेयेविच सोच रहा था : "...कोई बात नहीं छोड़ी इसने तो। यह भी देख लिया कि साजों को कैसे टांक-टांक कर हम लोगों ने ठीक रखा है और वासिलिसा ने कैसे मेमनों को पाला है !"

"तुम्हें करना सिर्फ़ यह है," आन्द्रेई ने कहा, "कि अपनी शक्ति को संगठित करो और अवसर से लाभ उठाओ। दुर्भाग्य से, पहले आप लोगों को अच्छा प्रधान नहीं मिला था। अब आपके यहां अच्छा प्रधान है। अब आपको अपने यहां की टीमों के लिए अच्छे नेता चुन लेने चाहिए। आपके फ़ार्म की कार्यकारिणी और आपके टीम-लीडर आपकी सेना के सेनापति हैं। भिन्न-भिन्न टीमें और उनके नेता सोच-विचार कर चुने जायें; उन्हें खेती के औज़ार और खेत ढंग से बांटे जायें। हर आदमी को मेहनत के परिणाम के हिसाब से मज़दूरी दी जाये। सरकार से जो बीज और मशीनें मिलती हैं उनके पूरे उपयोग की व्यवस्था की जाय। आज हमारे सामने मौजूद ये ही बुनियादी कर्तव्य हैं।"

आन्द्रेई बोल चुका। सभी को लग रहा था कि फ़ार्म के दिन फिरने वाले हैं। परन्तु, भविष्य क्या और कैसा होगा, इसके बारे में सबकी कल्पनाएं अलग-अलग थीं।

यासनेव आगे को झुका बैठा आन्द्रेई की बातें बड़े ध्यान से सुन रहा था। फ़ार्म में तेज़ी से उन्नति की आशा तो उसे भी थी। परन्तु क्या इतनी जल्दी ? उसे सम्भावनाओं के ज़रूरत से ज़्यादा आंके जाने का डर था। वह सोच रहा था कि कह देना आसान है, लेकिन कर सकना मुश्किल है। सहायता सभी ओर से—मशीनों, कर्ज़े और बीज के रूप में—चली आ रही थी। मुमकिन है, सचमुच ही एक साल में हालत सुधर जाय। देश के इसी भाग में कई फ़ार्मों की अवस्था सुधरने के उदाहरण भी थे।

लुबावा के कंधे से शॉल गिर गया था। एक बार फिर उसके चेहरे पर वही चिर-परिचित मुस्कान दिखाई दे रही थी जिसे वह भूल सी गयी थी। इस समय उसके मस्तिष्क में योजनाएं नाच रही थीं—न जाने कितनी योजनाएं !

"कोई कुछ कहना चाहता है ?" वासिली ने पूछा।

"मैं कहना चाहती हूं !" खड़े होते हुए लुबावा ने कहा। "हम पहली मई फ़ार्म वालों को आज खुशी के गीत गाने चाहिए। लेकिन, मैं गाना-वाना भूल गयी हूं। मुझे कोई गीत भी याद नहीं। फिर भी मैं आप लोगों को बताऊंगी कि मैं क्या सोचती हूं। पहले मैं ज़्यादा मज़दूरी के बारे में कहूंगी। पिछले साल दूसरे दलों के मुक़ाबले अल्योशा के दल ने ड्योढ़ी फ़सल काटी थी। लेकिन फिर भी, मज़दूरी सबको बराबर दी गयी। क्या इन कौमसोमोल के लड़के-लड़कियों के प्रति यह अन्याय नहीं है ? मैं एक बात और कहती

हूं—जो जिस दल में हो उसे उसी दल में रखने की कोशिश करनी चाहिए। कई लड़कियां रोज़-रोज़ दल बदला करती हैं; अजा बकरियों की तरह जंगल-जंगल घूमती फिरती हैं। आज किसी से लड़ पड़ीं। बस, चलो। किसी दूसरे दल में पहुंच गयीं। यह अच्छी बात नहीं है! एक बात मुझे और कहनी है—फसल बोने वाले दलों के बारे में। फसल बोने के वक्त खेतों के दल बनते हैं और जाड़ों में फिर बदल जाते हैं। इस बारे में भी कुछ किया जाना चाहिए। या तो दल बनें ही नहीं, या बनें तो तोड़े न जायें। क्या करना चाहिए यह मैं नहीं सोच सकी। लेकिन, एक बात मैं जानती हूं—यह दल वाली व्यवस्था हमारे फ़ार्म में चल नहीं रही है।"

लुबावा की काम-काजी बातों को सबने बड़े ध्यान से सुना। वह चुप हो गयी तो मलानिया बुज़किना की तेज़, महीन आवाज़, पीछे से सुनाई दी :

"क्या यह सच है कि घरों के साथ मिली ज़मीन आधी कर दी जायेगी?"

पोल्यूखा बीच में बोल उठी :

"ज़मीन को दुबारा नापने का क्या मतलब है?"

"क्या यह सच है कि प्लेनम ने आधी-आधी ज़मीन छीन लेने का हुक्म दिया है?" पीछे की बेंचों से कोई बोला।

वासिली ने घन्टी बजाई। जब सब चुप हो गये तो खड़े होकर उसने पूछा :

"किसने आपसे ऐसा कहा है? आपने यह सब किससे सुना, साथियो?"

"क्यों? उस दिन पोल्यूखा ही तो लकड़ी चिराई की जगह से होकर जा रही थी। उसी ने तो कहा था कि सबकी आधी-आधी ज़मीन छीन ली जायेगी!"

"पेलागेया कोनोपातोवा, क्या तुम बताओगी कि तुम्हें यह ख़बर कहां से मिली? क्या सोच कर तुमने यह अफवाह फैलायी थी?"

"अरे मेरा क्या है! मैं अभी बताती हूं। ज़रूर बताऊंगी! मुझसे क्सेनोफोन्तोवना ने कहा था! जो सच्ची बात है, मैंने कह दी है।"

"क्सेनोफोन्तोवना ने ही यह अफवाह गांव भर में फैलायी है।" लुबावा बोली।

"तातिआना क्सेनोफोन्तोवना विलनोवा! इस मीटिंग के सदर की हैसियत से मैं तुमसे कहता हूं कि खड़ी होकर मेरे सवाल का जवाब दो! यह तुमको किसने बतलाया कि घरों के साथ की ज़मीन अधियाई जा रही है?"

क्सेनोफोन्तोवना अपनी जगह बैठे-बैठे ही, पहले दायें फिर बायें, घूमी। उसका फूला हुआ चेहरा उतर गया था। उसका चेहरा कुछ-कुछ वैसा

ही लग रहा था जैसा कुत्ते के गले में रस्सी बांध कर लटका देने से हो जाता है।

"क्यों खड़ी होऊं ? बैठे-बैठे ही बताती हूं।"

"नहीं ! मेहरबानी करके खड़ी हो जाइये और सबके सामने बताइये कि ये झूठी अफवाहें फैलाने का क्या मकसद था ?"

निर्भयता दिखाने के लिए क्सेनोफोन्तोवना झटके से उठ खड़ी हुई। लेकिन उसके हाथ-पैर कांप रहे थे।

"मैंने कहा तो क्या बुरा किया ? मैंने क्या झूठ कहा ? तुम्हीं ने तो मुझसे कहा था, वासिली कुज़मिच, कि आधी ज़मीन ले ली जायेगी। तुम्हारे ही लफ्ज थे ! अब तुम कहोगे कि मैं झूठ कहती हूं।"

"किस की ज़मीन के लिए कहा था मैंने ? तुम्हारी ?"

"हां !... जैसी मेरी ज़मीन, वैसी सबकी...!"

"ठीक है ! मैंने तुम्हारी ज़मीन के लिए कहा था ! लेकिन, सबकी ज़मीन के लिए नहीं। तुमने तो पूरी एक हेक्टर ज़मीन दबा रखी है। साथियो, मैं आपको यकीन दिलाता हूं कि ज़मीन नापने पर सिर्फ़ तीन घरों की ज़मीनें ज्यादा निकलीं—कोनोपातोव परिवार की, कुज़मा बोर्तनिकोव की और क्लिनोवा की।"

वासिली ने पिता की ओर देखा। बूढ़ा कुज़मिच और स्तेपनिदा बिलकुल निश्चल बैठे थे—अडिग और शांत !

"मैंने लिख कर दिया तो बापू ने अपनी फालतू ज़मीन चुपचाप सामूहिक खेत को लौटा दी। लेकिन, कोनोपातोव और क्लिनोवा परिवार से ज़मीन मिलनी अभी बाकी है।"

"कौन कहता है कि मेरे पास एक हेक्टर ज़मीन है ?" क्सेनोफोन्तोवना उत्तेजित स्वर में बोली। "भाइयो, तुम इसकी बात मत मानो। मेरे पास सिर्फ़ आधा हेक्टर ज़मीन है।"

"हां ! आधा हेक्टर ज़मीन घर के चारों ओर और आधा हेक्टर ढलवान पर।"

"उसे तुम ज़मीन कहते हो ? वहां तो झाड़ियां, ठूंठ और गढ़े हैं।"

"यह तो तुम कहती हो। वह फ़ार्म की सबसे बढ़िया ज़मीन है। उसकी जैसी बढ़िया ज़मीन तो और है नहीं। सामूहिक खेत उसे वापिस ले लेगा।"

"और कहो, और कहो ! क्या इरादा है तुम्हारा ?" फ्रोस्या यकायक बिगड़ उठी। वह गुस्से से कांप रही थी। "मैंने और मां ने मिलकर सारे ठूंठ उखाड़े हैं और जगह ठीक की है !"

"बेचारा एक ही ठूंठ तो था वहां।" मातवेयेविच की बुलन्द आवाज़ उसकी घनी दाढ़ी की गहराइयों से निकली।

"झूठ है! तुम्हें क्या मालूम! हमने तो अपने हाथों से तमाम ठूंठ साफ किये हैं। हमें मालूम है कितनी मेहनत लगी है!"

"किसने कहा था तुमसे मेहनत करने को? पहले तो, तुम्हें वह ज़मीन लेनी ही नहीं चाहिए थी!"

"वह तो उन्हें पिछले प्रधान वाल्किन ने दी थी। फ्रोस्या ने उससे इश्क जो लड़ाया था!"

"इश्क लड़ाया होगा तेरी दादी ने! हमें तो उसने ऐसे ही दे दी थी। उसने कहा—'ज़मीन फालतू पड़ी है, बरबाद हो रही है! ले लो, फ्रोस्या!' उसने कहा—'इसे साफ कर लो, दस साल के लिए तुम्हारी हो जायेगी।' हमी जानती हैं, हमने कितनी मेहनत की है। ओह, कितनी खाद डाली है उसमें—ढेरों! बड़े आये तुम उसे छीनने वाले! क्या यही न्याय है?" फ्रोस्या बहुत गुस्से में बोल रही थी। लेकिन, इस क्रोधपूर्ण भाषण के समय भी वह आन्द्रेई को अपने चमकते बूट दिखाना और उस पर नैन-बाण चलाना नहीं भूली। "तुम्हीं बताओ, कामरेड सेक्रेटरी, क्या यही इन्साफ है?" आंखों में बड़ी दीनता का भाव लिये उसने सीधे आन्द्रेई से अपील की। "तुमने ऐसा जुल्म कभी सुना है?"

"नहीं, जुल्म नहीं होने पायेगा!" आन्द्रेई ने मुस्कराकर कहा। "तुम्हारी मेहनत बरबाद न होने पाये इसलिए मेरा सुझाव है कि वह ज़मीन तुम्हारे दल को दे दी जाये। तुम्हारी मेहनत, तुम्हारी ही रहेगी।"

"क्या मतलब है आपका? दल को दे दी जाये? इससे हमारा क्या फ़ायदा हुआ?" फ्रोस्या घबराकर बोली।

"तुम अब मतलब की बात पर आ जाओ।" आन्द्रेई ने वासिली के कान में कहा।

इसी समय मातवेयेविच की बुलन्द आवाज़ फिर पीछे से सुनाई दी:

"भई, अब छोड़ो इस झंझट को! कोई काम की बात करो! हम लोगों को और भी बड़े मसलों पर बातें करनी हैं।"

"हां, हां! ठीक है। ठीक है!" बहुत से लोगों ने एक साथ समर्थन किया।

"साथियो," वासिली बोला, "ज़मीन का मामला तो अब साफ हो गया। कोई किसी की आधी ज़मीन नहीं छीनना चाहता। कोनोपातोव और ब्लिनोव परिवार के पास जो फालतू ज़मीन है, उसे क़ानूनी तौर पर ले

लिया जायेगा। उस बारे में बहस करने से कोई फ़ायदा नहीं। अब आगे की बात की जाये। कोई कुछ कहना चाहता है?"

"मैं कहूंगा!" मातवेयेविच उठ खड़ा हुआ।

सब लोग चुप हो गये। सभी मातवेयेविच का आदर और सम्मान करते थे। अपनी घनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बहुत आत्म-विश्वास से मातवेयेविच बोलने के लिए खड़ा हुआ, मानो जानता हो कि उसकी बातों को उचित महत्व दिया जायेगा। सभा-मीटिंगों में मातवेयेविच बहुत कम बोलता था। पर, ज़िले के मंत्री ने उसका नाम बड़े सम्मान से लिया था! उसका हृदय कृतज्ञता से भर उठा था। वह मानो अनुभव कर रहा था कि फ़ार्म के भविष्य की एक विशेष ज़िम्मेदारी उस पर भी है।

जिस समय लुबावा बोल रही थी और फ्रोस्या का झगड़ा चल रहा था, तभी उसने सोच लिया था कि वह क्या कहेगा।

"सामूहिक खेत के किसान साथियो!" गम्भीर स्वर में मातवेयेविच ने बोलना शुरू किया। "हमारी ज़िला पार्टी कमिटी के आदरणीय मंत्री, आन्द्रेई पेत्रोविच ने, अभी आपके सामने भाषण दिया है। मैं आपके सामने उसी भाषण के सम्बंध में कुछ निवेदन करना चाहता हूं।" इतनी बात कहकर बूढ़ा चुप हो गया। बहुत देर तक सोच-सोचकर उसने इतना भाषण तैयार किया था। पल भर सोचते रहने के बाद उसकी समझ में आ गया कि इसी तरह का भाषण आगे जारी रख सकना उसके बस की बात नहीं है। अस्तु, झटके से हाथ हिलाकर, ऐसा भाषण देने का विचार छोड़, उसने उत्तेजित भाव से, किन्तु धीमे स्वर में बोलना शुरू किया: "जब हमारे फ़ार्म का नाम बीमार फ़ार्मों की लिस्ट में था और फ़ार्म की जायदाद ऐसे बही जा रही थी जैसे छलनी से पानी, तब मेरे दिल में यह विचार आया, साथियो, कि अपनी लाल गैया बेच दूं, रेल का टिकट कटाकर मास्को चला जाऊं और सीधे कामरेड स्तालिन से सब बातें कह दूं। लेकिन, मैं मास्को नहीं गया। कामरेड स्तालिन ने खुद खत भेज दिया। यह देखो!" मातवेयेविच ने अपने कोट की भीतरी जेब से तह किया हुआ एक अखबार निकाला। "इसमें साफ़-साफ़ रास्ता बताया गया है; रास्ते का हर मोड़ बता दिया गया है; हमारे पास इंजन और डिब्बे हैं;—ज़रूरत है सिर्फ़ चढ़कर चल देने की। रिपोर्ट की बातें सुनकर और आप लोगों को देखकर, साथियो, मैंने मन ही मन सोचा: आन्द्रेई पेत्रोविच ठीक कहते हैं। आप लोग देखना, साल भर में हम लोग अपने को पहचान भी नहीं पायेंगे! अब हमारे फ़ार्म का प्रधान बहुत अच्छा आदमी है। इस साल हमने कुछ धन भी बचाया है, चारा खरीदने के लिए राज्य से कुछ कर्ज़ा भी मिल गया है। हमने बदलकर अच्छा बीज भी

ले लिया है। इस बार तो वसंत का ऐसा स्वागत होगा जैसा बहुत अरसे से हमने नहीं किया। आन्द्रेई पेत्रोविच ने जिस उन्नति की ओर इशारा किया है उसके लिए सिर्फ़ ज़रूरत है काम में पूरी हिम्मत से दिल लगाने की! एक बात और—अलग-अलग दलों को ज़मीन और खेती के औज़ार ठीक-ठीक बांट दिये जायें और सब अपने-अपने औज़ारों का ख़याल रखें! देखो होता क्या है! मेरे पास अस्तबल में बीज बोने वाली एक मशीन पड़ी है। किसी को खबर नहीं कि वह किसकी है या किस दल की है। मैं उसे सम्भाल कर रखे हुए हूं, नहीं तो अब तक चौपट हो जाती। यही बात ज़मीन पर भी लागू होती है। सब दलों को अपने-अपने खेतों की खबरदारी वैसे ही रखनी चाहिए जैसे मां अपने बच्चे की खबरदारी रखती है।"

मातवेयेविच के बोल चुकने पर ज़ोरों से तालियां बजीं। फिर दलों के संगठन पर बातचीत शुरू हुई। इस मामले पर देर तक, और खूब गरमागरम, बहस जारी रही।

अब अल्योशा बोलने के लिए खड़ा हुआ।

उसने भेड़ की खाल का कोट उतार फेंका। वह नया नीला सूट पहने हुए था। घुंघराले बालों और चमकीली आंखों वाला उसका चेहरा इतना प्यारा लग रहा था कि लोगों की निगाहें उस पर उठी की उठी रह गयीं। एक मिनट के लिए तो फ्रोस्या आन्द्रेई को भी भूल गयी, उसने अपने बूट अल्योशा की ओर घुमा दिये।

"हाय, कितना प्यारा लग रहा है! कोई बयान कर सकता है?" उसने तातिआना के कान में कहा। उसे विश्वास था, अपने भाषण में अल्योशा उसका नाम ज़रूर लेगा।

"हमारा, नौजवानों का दल, यहां पेश किये गये सभी प्रस्तावों का समर्थन करता है।" अल्योशा ने कहा। "हमारा, नौजवानों का दल, इस सभा से प्रार्थना करता है कि बीजों के लिए हमें एक खेत दे दिया जाये। हम प्रतिज्ञा करते हैं कि इस खेत के लिए हम लोग दाना-दाना छांटकर बीज चुनेंगे। हम प्रतिज्ञा करते हैं कि हम लोग अच्छी तरह इस खेत की मिट्टी की जांच करेंगे और उसके माफिक ज़रूरी खाद तैयार करके उसमें खाद डालेंगे। हम कृषि-विज्ञान की शिक्षा का और भी अच्छा प्रबंध करेंगे और विज्ञान द्वारा बताये गये खेती सम्बंधी सभी सिद्धान्तों का पालन करेंगे। परन्तु, नये बनाये गये दलों के सम्बंध में हमें कुछ कहना है।" इतना कहकर अल्योशा ने फ्रोस्या की ओर बड़ी निर्मम आंखों से देखा, मानो उसके कलेजे को बेध देना चाहता हो। "दल जैसा बनाया गया है, मैं उससे सहमत हूं। लेकिन इस दल की नेता वही रखी गयी है जो पिछले साल थी—यानी,

येफ्रोसीनिया क्लिनोवा। मैं इसका विरोध करता हूं। मैं अकेले ही दल की देखभाल कर सकता हूं। फ्रोस्या जैसों से काम में अड़चन ही ज्यादा होती है।"

"क्या खराबी पायी है मेरे काम में?" हैरान फ्रोस्या गुस्से में चीख उठी। "क्या तुम्हीं ने बोवाई के वक्त मेरे काम की तारीफ़ नहीं की थी?"

"हां, बोवाई के वक्त तुमने ठीक काम किया था। लेकिन फसल कटाई के वक्त बाज़ार में मंडराती रहीं।"

"इस बात से बाज़ार का कोई ताल्लुक नहीं।"

"एक दिन तो तुम पहाड़ सरका देती हो, लेकिन दो दिन तुम्हें खुद सरकाने की ज़रूरत पड़ जाती है। ऐसे काम से कोई फ़ायदा नहीं, साथियो। टीम के नेता की हैसियत से मैं कहता हूं: मुझे ऐसे दल-नायक नहीं चाहिए।"

"यह भी कोई तरीक़ा है? पहले से बिना बताये इस तरह आलोचना करने का मतलब?" फ्रोस्या बिगड़ उठी।

उस शाम फ्रोस्या की तक़दीर उसका साथ नहीं दे रही थी। कई तरफ़ से उस पर बौछारें पड़ रही थीं। फिर भी, वह मैदान छोड़कर भागी नहीं।

"मैं पूछती हूं, तुमने कभी मुझे चेतावनी दी? नहीं! तुमने कभी जवाब-तलब किया? नहीं! मेरा काम खराब था तो लीडर की हैसियत से तुम्हें पहले मुझे बताना चाहिए था। मैं ठीक काम न करती तो जवाब-तलब करना चाहिए था। और तब भी मैं ठीक काम न करती तो मुझे काम पर से हटाया जाना चाहिए था। इससे पहले नहीं।"

"साथियो, कौमसोमोल के युवक दल के नेता की हैसियत से..." अल्योशा ने कहना शुरू किया, परन्तु फ्रोस्या ने उसे नहीं बोलने दिया।

"तुम कौमसोमोल के सेक्रेटरी हो! तुम्हें मुझे व्यक्तिगत रूप से समझाना चाहिए था! तुम्हें मुझे समझाना चाहिए था, न कि इस तरह मज़ाक बनाना! पहले मुझे समझाओ! समझे!" एक टांग दूसरी टांग पर रखते हुए उसने मांग की और सब की ओर इस तरह देखा मानो अल्योशा को अन्तिम रूप से पराजित कर दिया हो।

सब लोग हंस पड़े। केवल अल्योशा गम्भीर बना रहा।

"मैं तुम्हें समझाता भी, अगर तुम मेरी बात सुनतीं!" उसने गम्भीरता और विश्वास के साथ कहा।

"तो फिर ठीक है! तुम जो कहोगे, मैं करने को तैयार हूं।" फ्रोस्या राज़ी हो गयी।

"'तो फिर ठीक है' कहने से काम नहीं चलेगा। तुम्हें सब लोगों के सामने वचन देना होगा।"

"तुम तो बस नुक्स निकालना जानते हो! मैंने वचन दे दिया है या नहीं? एक बार वचन दे दिया, तो निभाऊंगी भी!"

"यह ठीक है कि अल्योशा कहता है कि अकेले ही वह टीम को सम्भाल लेगा," वासिली ने कहा, "परन्तु मेरी राय है कि अभी जैसे चल रहा है, चलता रहे। येफ्रोसीनिया को ऐसे ही एक साल और काम करने दिया जाय, फिर देखा जाय।"

फ़ार्म-टीमें बनाने और उन्हें ज़मीनें बांटने के वाद-विवाद में और इस सम्बंध में प्रस्ताव पास करने में काफी देर हो गयी। सभी में खूब उल्लास था और वे इस उत्साहपूर्ण वातावरण को भंग नहीं करना चाहते थे।

अंधेरा घना होता जा रहा था। अल्योशा ने बिजली जला दी। बिजली-घर में एक और नया इंजन लगाने का काम हो रहा था, इसलिए बिजली की धारा नियमित रूप से नहीं आ रही थी। कभी तो प्रकाश बिलकुल कम हो जाता था और कमरे में लालिमामय अंधकार छा जाता था, कभी प्रकाश खूब तेज़ हो जाता था और सभी के मुस्कराते चेहरे जगमगा उठते थे।

अब सभा में कोनोपातोव का मामला पेश हुआ।

"मेरा सुझाव है कि हम लोग इस मामले को अगली सभा के लिए रखें।" तातिआना बोली। "हम सब लोग यहां अपने आशामय भविष्य की बातें सोच रहे हैं, कोनोपातोव जैसों की नहीं। उनकी चर्चा छेड़ कर क्यों रंग में भंग डाला जाय।"

"हां, हां! ठीक है!" बहुत से लोग बोल पड़े।

"कोनोपातोव की बात करने का मतलब हंसी-खुशी के दिन कूड़ा-कबाड़ा निकालना है।" लुबावा ने तातिआना के सुझाव का समर्थन किया।

"लेकिन यह कूड़ा-कबाड़ा तो निकालना ही है!" बुयानोव ने आपत्ति की। "मुझे बोलने की इजाज़त दो, वासिली कुज़मिच! साथियो! मैं तातिआना और लुबावा की बात का विरोध करता हूं। इस मसले का फैसला अभी होना चाहिए। यह भी क्या खूब है कि हंसी-खुशी के दिन भी घर के कोनों में कूड़ा-कचड़ा भरा है। एक बात और भी है—कोई आदमी लम्बे सफर पर निकलता है तो सिर पर कूड़ा-कबाड़ा लाद कर नहीं चलता। यही वक्त है कि मामले की सफाई कर ली जाय और गन्दगी निकाल फेंकी जाय।"

"कोनोपातोव परिवार को तो आप लोग जानते ही हैं!" वासिली ने कहना शुरू किया। "युद्ध से पहले भी इन लोगों ने कई झगड़े खड़े किये थे। इनके परिवार वालों को एक-एक करके लीजिए। बूढ़ा कोनोपातोव है। कौन सा काम है जो उसे नहीं दिया गया? लेकिन, कोई काम उसके माफिक नहीं बैठा। बाद में उसे शहद की मक्खियों की रखवाली का काम दिया गया।

इससे हल्का काम और कौन सा हो सकता था? लेकिन उसमें भी उसका मन नहीं लगा! उसके बेटे, पावका कोनोपातोव को भी आप लोग जानते हैं। उसने भी अपने पिता के पदचिन्हों का ही अनुसरण किया। तीन महीने से उसने गिलहरियों के शिकार का ठेका ले लिया है। तब से उसने काम करने से इन्कार ही कर दिया है। उसे बुलाया जाता है तो आता नहीं है। आज भी नहीं आया। बीमारी का बहाना बना कर पड़ा है। उसकी पत्नी पोल्यूखा को लीजिए। पिछले साल उसने सिर्फ़ साठ दिन काम किया था। इस साल तो उतने दिन भी नहीं किया। फ़ार्म की कार्यकारिणी ने उन्हें बुलाया तो वे आये नहीं। बस, संदेशा भिजवा दिया—हमें फार्म से कोई मतलब नहीं! फ़ार्म की कार्यकारिणी ने फ़ैसला किया है कि इन्हें फ़ार्म से अलग कर दिया जाय।"

"पावका को सामूहिक खेत से निकालने का तुम्हें कोई नहीं!" पोल्यूखा ने कहा। "पावका ने काम की मियाद पूरी की है। उसके पैर में चोट थी। इसीलिए वह फ़ार्म की कार्यकारिणी के सामने नहीं आ पाया था।"

"आपको अपनी बात कहने का मौक़ा मिलेगा, कोनोपातोवा। साथियो, फ़ार्म की कार्यकारिणी का फ़ैसला, बहस के लिए, आपके सामने है। जहां तक हक़ की बात है, फ़ार्म को यह हक़ है कि जो लोग काम से जी चुरायें, या गड़बड़ी पैदा करें, उन्हें फ़ार्म से निकाल बाहर किया जाय।"

"हम लोग कहां चले जायें?"

"जहां तुम्हारे सींग समायें!" वासिली ने तड़ाक से जवाब दिया। "कोई कुछ कहना चाहता है, साथियो।"

सब चुप थे। कोनोपातोव परिवार वाले अच्छे तो किसी को नहीं लगते थे। फिर भी, वे थे तो उसी गांव के लोग; अरसे से साथ रहने वाले!

"तुम्हारा मतलब क्या है?" लोगों की चुप्पी से साहस पाकर पोल्यूखा ने दुहाई दी। "हम लोगों की सारी उम्र इस गांव में कटी है। बरसों से हम लोग सामूहिक खेत के सदस्य हैं। आज तुम हमसे कहते हो—चलते बनो, दूर हो जाओ! क्यों? पिछले साल तुम यहां नहीं थे। ज़रा पूछो तो, बकरी की टेकरी पर बोवाई किसने की थी? मेरे बूढ़े ससुर ने! वह बेचारा बूढ़ा है और बीमार है! उसे पूरा हक़ है कि वह काम न करे! लेकिन उसकी आत्मा ने गवाही नहीं दी! वह काम पर निकल पड़ा!"

"ठीक है! यह तो उसने किया था।"

"भाई, यह बात तो सच्ची है!"

"देखा? सभी लोग जानते हैं! लेकिन, यह नया प्रधान तो अपनी चलाना चाहता है।" पोल्यूखा ने मौक़ा देख कर पैंतरा बदला। "अरे मैं तो आन्द्रेई पेत्रोविच के मुंह पर कहे देती हूं—जैसी हालत है वैसी ही रही तो

कुछ दिनों में फ़ार्म का नामनिशान भी बाकी नहीं रहेगा।" पोल्यूखा ने चेहरे पर ऐसा मीठा भाव बनाया मानो कह रही हो : "आन्द्रेई पेत्रोविच, तुम और मैं, दो ही शिक्षित आदमी यहां हैं जो एक दूसरे को समझते हैं।"

मातवेयेविच बोलने के लिए उठ खड़ा हुआ।

"साथियो, मेरा तो खयाल है कि फिलहाल इनको न निकाला जाय। एक मौक़ा इन्हें और दिया जाय। आखिर हैं तो अपने ही आदमी! इन लोगों की सारी उम्र यहीं कटी है। अपने ही लोगों पर इतनी बेमुरौवती नहीं करनी चाहिए। पिछले साल वसंत में बोवाई के वक्त बेचारे बूढ़े ने काफ़ी मेहनत की थी। उसकी नेकी का खयाल तो करना ही चाहिए।"

"ज़रा ठहरो! मैं बताये देती हूं उसकी नेकी!" बुढ़िया वासिलिसा यकायक बिगड़ उठी। बुढ़िया प्रायः सभा में चुप ही रहती थी, इसलिए सभी का आश्चर्य और भी बढ़ गया था। "उस बेशरम बूढ़े के पास जाकर हमने मिन्नतें की थीं। पिछले वसंत की ही तो बात है। तातिआना और मैंने देखा कि धरती सूखी जा रही है। देर पर देर हो रही थी। सूरज तप रहा था। हमारे दल के हिस्से के आधे खेत में भी बीज नहीं बोये गये थे। मेरा तो दिल फटा जा रहा था! काम करने वाला कोई दूसरा था नहीं! टांग का जखम लेकर पावका उग्रेन चल दिया था। बेचारी तातिआना बूढ़े के पास गयी। उसे समझाया। उसकी खुशामद की। लेकिन बूढ़े ने हिलने का नाम न लिया। बोला—मैं नहीं चल सकता, जी! बोला—मैं बीमार हूं, मुझसे चला नहीं जाता! तातिआना फिर उसके पास गयी। लेकिन वह टस से मस नहीं हुआ। और देखो—दिन-दिन भर जंगलों में अच्छा-भला घूमता छाल बटोरता फिरता था! तब पैरों में दरद नहीं होता था? तब बीमारी गायब हो जाती थी? तातिआना बेचारी तिबारा उसके पास गयी। मगर, उसने तो न आने की कसम खा रखी थी। आखिर, अपनी मरजी के खिलाफ़, मैं खुद गयी। जाकर उसके आगे माथा टेका, रोयी-गायी। घुटने छूकर मिन्नत की : 'भाई हम लोगों पर मेहरबानी करो! उठो, चलो, बीज बोना है! हमारे बुरे दिन आ गये हैं! धरती माता पर तो रहम करो! वह बरबाद हो रही है।" तब कहीं बूढ़ा पसीजा। तब तो, शाम तक मज़े में काम करता रहा! इसी को तुम नेकी कहते हो? लोग झोली पसार कर तुम से भीख मांगें?"

वासिलिसा बैठ गयी। वह बहुत उत्तेजित थी।

"तो मैं समझूं कि तुम इस बात का समर्थन करती हो कि इन लोगों को फ़ार्म से निकाल दिया जाय?" वासिली ने पूछा।

"यह सब मैं क्या जानूं।" वासिलिसा पिघली। "मैं तो यह बता रही थी कि इनमें ईमान रत्ती भर नहीं है। मैं यह नहीं चाहती कि इनसे

बहुत सख्ती बरती जाय। रहने दो! हमें किसी का डर थोड़े ही है!" वासिलिसा का क्रोध समाप्त हो गया। उसे कोनोपातोव परिवार से कोई डर नहीं था। यद्यपि अब वह बूढ़ी थी और अकेली थी, फिर भी जवानी के दिनों का अकेलापन और लाचारी अब उसे नहीं सताती थी। उसके पोते-पोतियां स्कूलों में अध्यापक और कृषि-विशेषज्ञ बन गये थे। खाने-पहनने की कोई तंगी नहीं थी। सबसे बड़ी बात यह थी कि फ़ार्म के जीवन में उसका महत्वपूर्ण और आवश्यक स्थान था। उसे अपना सुखमय जीवन स्थायी और अपरिवर्तनशील लगता था। पावका कोनोपातोव जैसों का उसे स्वप्न में भी डर नहीं था। निर्भयता और भविष्य में अदम्य विश्वास के साथ-साथ उसकी सहृदय प्रकृति ने कोनोपातोव परिवार के प्रति उसके दयालु और सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण को निर्धारित कर दिया।

"उनके बच्चे भी तो हैं! उन पर तो रहम करना ही होगा!" सहसा याद आने पर वासिलिसा ने ठंडी सांस भरी।

"'रहम करना ही होगा!' 'बच्चे हैं!'" लुबावा का क्रोध भड़क उठा। "क्या कह रही हो, दादी वासिलिसा? ये ही लोग तो फ़ार्म को बरबाद करने पर तुले हैं। तुम्हें उन पर दया आती है? लेकिन, उनके तानों और जली-कटी बातों ने मेरा पोर-पोर जला कर रख दिया है!"

लुबावा के पति ने अपने अन्तिम पत्र में उसे लिखा था: "आज मैं अपने प्यारे देश और अपने सामूहिक खेत की रक्षा के लिए मोर्चे पर जा रहा हूं!" इन शब्दों को लुबावा कभी नहीं भूलती थी। फ़ार्म का ज़रा सा नुकसान होते देख उसका खून खौल उठता था। यह पत्र उसने किसी को दिखाया नहीं था, पर इस पत्र की बातें ही उसके क्रोध और उन्माद का कारण थीं।

"इन लोगों की बातें सुनकर ऐसा लगता है जैसे किसी ने मेरे दिल पर खौलता पानी डाल दिया हो। हम तो कमर दोहरी किये खेतों में काम करते होते हैं, और पोल्यूखा रानी नये बूट पहन कर निकलती हैं और हम पर फ़िकरे कसती हैं। हमने पूछा: 'काम पर क्यों नहीं आईं?' जवाब मिलता है: 'ऐसे कामों के लिए तुम्हारे जैसे बेवकूफ़ क्या कम हैं?' यह हम कब तक बरदाश्त करते रहेंगे?" लुबावा तन कर सीधी खड़ी हो गयी। उसके पीले गालों पर क्रोध की रक्तिम छाया दौड़ गयी। "कब तक वह हमारे फ़ार्म, हमारे काम और हमारी ज़िन्दगी पर थूकती रहेगी? क्या हमारे मर्दों और जवान बेटों ने अपनी जानें इसकी लानतें सुनने के लिए दी थीं? कब तक यह हमारे जख्मों पर नमक छिड़कती रहेगी? तुम्हें कोनोपातोव लोगों पर तरस आता है, दादी वासिलिसा! लेकिन, मेरे बे-बाप के पांच बच्चों पर दया नहीं आती? मैं तो कहती हूं, कोनोपातोव लोगों को ठोकर मार कर

निकाल दो ! उनको भी छुट्टी मिले। मर पाये उनसे और उनकी लानतों-मलामतों से ! मुझे यही कहना है।"

लुबावा की खरी-खरी बातों से लोगों का भाव बदल गया।

"लेकिन जब पूरे फ़ार्म में गड़बड़ थी, तभी हमने भी काम ठीक नहीं किया।" अब पोल्यूखा का पहले वाला आत्म-विश्वास गायब हो चुका था। "जब फ़ार्म का काम ठीक होने लगेगा, हम भी काम ठीक करने लगेंगे !"

"आहा ! तो यह बात है !" प्रधान के पद की गम्भीरता भूलकर वासिली बरस पड़ा। "गरम-गरम हलुवा तो तुम खाओ, उंगलियां जलाये कोई और ? ईंटें ढो-ढो कर मकान तो हम बनायें, रहने को चली आओ तुम ! नहीं, पोल्यूखा रानी ! यह नहीं होने का !"

आन्द्रेई बहुत ध्यान से अपने चारों ओर के चेहरों को देख रहा था। अल्योशा का चेहरा सहसा गम्भीर और कठोर बन गया था।

दूसरी बेंच पर बैठी लड़कियां काफी उत्तेजना से फुसफुसाकर बातें कर रही थीं। निश्चय ही वे किसी बात पर बहस कर रही थीं।

वासिलिसा ठंडी सांसें ले-लेकर सिर हिला रही थी।

पोल्यूखा ने अपने तीर तरकश में रख लिए। लेकिन अब भी उसके चेहरे पर पराजय की शिकन न थी। उसे पड़ोसियों की सहृदयता का भरोसा था।

"आज की सभा के बाद यह सम्भलेगी या नहीं !" आन्द्रेई सोच रहा था। "मैं इसे अच्छी तरह नहीं जानता। लेकिन एक बात साफ है—अगर इसके व्यवहार में बुनियादी परिवर्तन नहीं आता, तो इसे फ़ार्म में नहीं रहने दिया जा सकता।"

आन्द्रेई उठ खड़ा हुआ।

"पेलागेया कोनोपातोवा ! जब सामूहिक खेत का काम ठीक चलता था, तब तुम और तुम्हारे पति ने थोड़ा-बहुत काम किया। लेकिन, जैसे ही फ़ार्म के बुरे दिन आये, तुम लोगों ने अंगूठा दिखा दिया। अब तुम्हीं बताओ, फ़ार्म के लोग तुम्हारा क्या करें ? पिछले बरसों में आखिर तुमने क्या काम किया है ? तुमने न सिर्फ़ काम से जी चुराया है बल्कि हमारे यहां के सबसे अच्छे सामूहिक किसानों पर कीचड़ उछाला है ! तुम वासिलिसा दादी, और तुम प्योत्र मातवेयेविच ! तुम लोग कोनोपातोवों पर दया करते हो ! ठीक है न ? अब मैं ज़रा इस दया वाले मसले पर भी आप लोगों से कुछ कह दूं।...दया क्या चीज़ है ? क्या लुबावा की यह बात सच नहीं है कि कोनोपातोव लोगों पर दया दिखाकर—जो इस सामूहिक खेत के गले में चक्की का पाट बने लटके हैं, जो पत्थर की चट्टान की तरह लुबावा और आप लोगों का रास्ता रोके खड़े हैं—

आप लोग लुबावा और उसके बच्चों पर निर्दयता करते हैं ? मेरी राय है कि जब भी आप किसी पर दया करें तो याद रखिए—एक काहिल पर दया करके आप एक परिश्रमी पर अन्याय कर रहे हैं, एक बुज़दिल पर दया करके आप एक बहादुर पर अन्याय कर रहे हैं, और चोर पर दया करके आप ईमानदार पर अन्याय कर रहे हैं !

"आप दया की बात जाने दीजिए। आपको सोचना यह है कि क्या कोनोपातोव परिवार के लोग फ़ार्म में ईमानदारी से मेहनत करके अपने कलुषित अतीत को धो सकते हैं ?" आन्द्रेई ने अपनी बात समाप्त की।

पोल्यूखा कुछ कहने के लिए खड़ी हुई। उसे दिखाई दे रहा था कि खुद खोदा गढ़ा उसी को निगलने के लिए तैयार है। यह तो वह पूरी तरह नहीं समझ पायी थी कि नुकसानदेह और खतरनाक आदमी को लोग जब अपने बीच से निकाल फेंकते हैं तो उसका क्या हश्र होता है। लेकिन, उसे सिर पर मंडराते खतरे का थोड़ा-बहुत आभास हो चुका था। वह भय से कांप रही थी। उसके मुंह से बोल नहीं फूट रहा था।

"किसान साथियो... यह आप लोग क्या कर रहे हैं ?" उसकी आंखों से आंसू बह रहे थे। "मुसीबत के दिनों में हम लोग साथ रहे। अब, जब अच्छे दिन आ रहे हैं, क्या आप हमें निकाल देंगे ? हमारे सोवियत देश में ऐसा कोई क़ानून नहीं है ! बिना नोटिस, बिना चेतावनी, बिना कुछ कहे सुने... ? मैं यहीं जन्मी, मेरी सारी उम्र यहीं बीती है... ! आप हमें कैसे निकाल फेकेंगे ? मैं मानती हूं, मुझसे गलती हुई है...! लेकिन मैंने जान-बूझकर गलती नहीं की—वह मेरा अज्ञान था। भाइयो, मैं आपसे विनती करती हूं कि आप हमें अन्तिम बार चेतावनी दें, आखिरी मौक़ा दें—हम अपने को ठीक कर लेंगे। मैं सबके सामने कसम खाती हूं, अपनी और अपने पति की ओर से वचन देती हूं कि आज से हमारे काम में कोई कमी नहीं होगी।"

"हां, हां ! इन लोगों को आखिरी चेतावनी देकर, एक मौक़ा और दे दो।" मातवेयेविच ने कहा। "इन लोगों से साफ़-साफ़ कह दिया जाये कि अब गलती होगी तो ये जानें।"

मातवेयेविच की बात सब ने मान ली।

अब सभा के कार्यक्रम की आखिरी बात आई। वासिली के लिए पूरे कार्यक्रम की यही सबसे पीड़ाजनक चीज़ थी।

वह कुर्सी पर सिर झुकाये चिन्तामग्न बैठा था। लोग विस्मय से उसकी ओर देख रहे थे। घने काले बालों का एक गुच्छा उसके झुके माथे और क्लान्त मुख पर लटक आया था। उसके हाथ तो और भी विचित्र लग रहे थे—काले और भारी, चक्की के पाटों की तरह; चौड़ी चपटी उंगलियां; कड़े,

पीले नाखून, जिनका रंग हाथों के रंग से भी फीका था! उसकी उंगलियां हिल-हिलकर रह जाती थीं, मानो मेज़ पर रखी किसी चीज़ को पकड़ना चाहती हों। कुछ न मिलने पर मेज़ पर रखा कार्यक्रम वाला कागज़ ही उसके हाथों में आ गया! वह उसी को मरोड़ने लगा।

देखने में बड़ा विचित्र लग रहा था—उसके बड़े-बड़े हाथ निर्ममता से, लेकिन व्यवस्थित रूप से, उस फड़फड़ाते कागज़ के टुकड़े को मरोड़ रहे थे। और कागज़, मानो उसके प्रयत्नों का प्रतिरोध कर रहा था! इधर-उधर से फट जाने पर भी बीच में अब भी वह पहले जैसा चिकना था।

सब लोग उत्सुकता से प्रधान पर आंखें लगाये बैठे थे! परन्तु वह इतना बे-सुध था कि अपने पर लगी दर्जनों आंखों का उसे कोई ध्यान नहीं था। भरी सभा में इस "बेसुधी" को आन्द्रेई भी बड़े विस्मय से देख रहा था।

"अब क्या इंतज़ार है?" वासिली की ओर झुककर उसने धीरे से कहा।

तभी वासिलिसा ने आश्चर्य से पूछ ही तो दिया :

"ऊंघ रहे हो क्या, वासिली कुज़मिच?"

वासिली अचकचाकर बैठ गया। सिर के झटके से बालों का काला गुच्छा पीछे हट गया। दोनों हाथों की मुट्ठियां खूब ज़ोर से बंध गयीं। उसके नाखून और भी सफेद हो गये।

"साथियो! कार्यक्रम का आखिरी मसला है कुज़मा बोर्तनिकोव को पन-चक्की के काम से छुट्टी देना।"

"हैं? क्या कहा?"

"क्या वजह है?"

"क्या बात है?"

"खुद उन्होंने कहा है...!" वासिली ने भर्राई हुई आवाज़ में उत्तर दिया।

"वजह क्या है?"

"क्या बात है, कुज़मा वासिलीयेविच?"

"क्यों काम छोड़ना चाहता है? क्या वजह है?"

"बात यह है कि उनकी तबियत ठीक नहीं रहती..." वासिली की आवाज़ और भी भर्रा रही थी।

"क्या बीमारी है, भई?"

"क्या तकलीफ़ है!"

"बात यह है कि उमर काफी हो चुकी है, और अक्सर उनकी तबियत..." वासिली ने हाथ के कागज़ को कुचल डाला।

"वह हमें खुद बताये कि क्या बात है ?"

लोगों को सन्देह हो रहा था कि कुछ गड़बड़ ज़रूर है। कभी वे बाप की ओर देखते, कभी बेटे की ओर। बूढ़ा कमर झुकाये बैठा था। चांदी जैसे उजले बालों से ढंके उसके सांवले चेहरे पर कालिमा छा रही थी। झुर्रियों से भरा चेहरा झुलसा-झुलसा लग रहा था। कुज़मा उठे हुए माथे, तनी हुई पीठ, रोब, आत्म-विश्वास तथा काली आंखों में दया के भाव वाला मनुष्य था। लोग उसे इसी रूप में जानते थे। सहसा उसकी दयनीय अवस्था देखकर लोग विस्मित रह गये थे। उसकी झुकी पीठ और बड़ी-बड़ी झुर्रियां नहीं, बल्कि उसके मुख पर असमर्थता, पीड़ा और व्यग्रता का भाव उसकी दयनीयता को प्रकट कर रहा था। उसके मुख पर कुछ-कुछ उसी रोगी जैसी दीनता थी जो बहुधा पीड़ा, दुःख, आत्म-भर्त्सना और असमर्थता का शिकार होने पर एक ही टीस और कराह में सब कुछ व्यक्त कर देता है।

उसके बगल में ही बैठी स्तेपनिदा का क्रोध से लाल चेहरा, बूढ़े के मुरझाये चेहरे को और भी विलक्षण बना रहा था। स्तेपनिदा की घृणा से भरी, पैनी दृष्टि वासिली के मुंह पर जमी थी। वासिली किसी को नहीं देख रहा था।

"घर में कुछ झगड़ा हो गया है!" बहुत से लोगों को यही सन्देह हो रहा था। सब चुप थे। केवल फ्रोस्या की कुछ समझ में नहीं आया। वह खिड़की से कूदकर, कमरे की शांति को भंग करनेवाले, ऊंचे स्वर में चीख उठी:

"क्या बात है, कुज़मा वासिलीयेविच ? क्या चक्की के परौंठे-पूरी खाते-खाते मन ऊब गया ? न हो तो मुझे बुला लिया करो, मुझे अच्छे लगते हैं!"

"चुप! शैतान!" मातवेयेविच ने उसे डांट कर चुप किया।

"यहकोई मामूली बात है ? बताओ न, भाई कुज़मा! क्यों छोड़ रहे हो पनचक्की ?"

"मैंने अपनी दरख्वास्त में सब-कुछ लिख दिया है..."

"क्या ऐसे बीमार हो कि बिलकुल काम नहीं करोगे ?"

"बिलकुल काम नहीं करना चाहते ?"

"काम तो करना चाहता हूं!"

"फिर क्या बात है ? तुम्हें पनचक्की के काम से हल्का और कौन सा काम मिल सकता है ?"

"पनचक्की में काम ही क्या है ?... बस बैठे-बैठे देखते रहना है कि पानी चल रहा है या नहीं।" वासिलिसा बोली। "तुम्हें कौन बोरियां ढोनी हैं। वह तो तुम्हारे साथ का आदमी करता है, भैया। तुम इस काम को जानते हो, और फ़ार्म को तुम्हारी ज़रूरत है!"

"चक्की के लिए कुज़मा वासिलीयेविच से अच्छा आदमी ज़िले भर में नहीं मिलेगा!" क्सेनोफोन्तोवना बड़े दुलार भरे स्वर में बोली। "वासिली कुज़मिच! तुम्हीं क्यों नहीं अपने बाप को मनाते?"

बाप-बेटे एक दूसरे से आंखें चुरा रहे थे। दोनों के ही चेहरों पर विषाद की एक विचित्र छाया थी। दोनों के चेहरों पर विचित्र प्रकार की कालिमा छाई हुई थी। दोनों की भौंहें सिकुड़ी हुई थीं। कमरे में बिलकुल सन्नाटा था।

"मैं चाहता हूं, अब मुझे छुट्टी दी जाय..." बूढ़े ने धीरे से दोहराया।

उसकी विक्षिप्त अवस्था देख कर किसान अचम्भे में थे।

"पर बात क्या हो गयी है?"

"किसी ने कुछ कहा है?"

"किसी ने तुम्हारी तौहीन की है?"

"क्या मालूम! शायद किसी ने कुछ बक दिया हो?"

बूढ़े ने गर्दन सीधी करके सामने देखा।

"तुम्हारा भला हो, भैया कुज़मा!" वासिलिसा ने उत्तेजित हो कर बड़े भावुक स्वर में कहा। "तुम्हें किसी की हर बात पर ध्यान नहीं देना चाहिए। किसने हिम्मत की है तुम्हारा दिल दुखाने की?"

बूढ़ा चुप था। लोगों ने अनुमान लगाया कि कुज़मा की नाराज़गी का कारण झूठी निन्दा ही है।

एक साथ कई लोग बोल उठे:

"भौंकने वाले कुत्ते काटते नहीं हैं।"

"हम लोगों के लिए तुम कोई नये आदमी थोड़े ही हो!"

कुज़मा बोलने के लिए खड़ा हुआ। उसकी पीड़ित आंखों से वेदना झलक रही थी। बुढ़ापे के कारण उसका सिर कांप रहा था। वह बोला तो मालूम होता था कि होठों से हवा पकड़ रहा है:

"मैं कहना चाहता हूं ... कि... अब मुझे... जाने दो।" उसने घूंट सा निगला। वह आगे कुछ कहना ही चाहता था कि स्तेपनिदा ने उसकी बांह पकड़ कर बैठा लिया।

वासिली अपने काम, सभा और किसानों—सब को भूलकर अपने पिता पर आंखें गड़ाये था।

"सभा को ठीक से क्यों नहीं चलाते?" आन्द्रेई ने धीरे से कहा। "सभा की कार्रवाई अपने-आप हो रही है!"

आन्द्रेई समझ रहा था कि कोई न कोई बात है ज़रूर! मगर वह क्या है—यह नहीं भांप पा रहा था।

वासिली सम्भल कर बैठ गया।

"खामोश, खामोश, साथियो! कोई कुछ कहना चाहता है?"

"मैं कहना चाहता हूं!" पिमेन यासनेव उठ खड़ा हुआ। यासनेव का कद नाटा, परन्तु बदन खूब गंठा हुआ था। उसके चेहरे पर इस उम्र में भी यौवन की अमिट छाप बनी हुई थी। उसकी चाल-ढाल बहुत संयत थी। उसका नाक-नक्शा, जो एक सक्रिय मस्तिष्क की गतिविधि का द्योतक था, मानो तराश कर बनाया गया था। सभी को याद था कि युद्ध के समय उसने तीस हज़ार रूबल की सम्पत्ति चंदे में दे दी थी।

फ़ार्म में बहुत अच्छा काम करने वाला और बहुत ही भरोसे का आदमी होने के कारण सब उसकी बात को बहुत ध्यान से सुनते थे।

"साथियो!" उसने अपने संयत, धीमे स्वर में, कहना शुरू किया। "कुज़मा वासिलीयेविच ने पनचक्की की पूरी मरम्मत अपने हाथों से की है। जब से उसने पनचक्की का काम सम्भाला है, एक भी दिन के लिए काम नहीं रुका। चक्की फायदे में चल रही है। यह बात हम सब लोग जानते हैं। फ़ार्म में इस काम के लिए उससे कुशल और कोई आदमी नहीं है। बकने वालों का क्या है? किसी का मुंह तो पकड़ा नहीं जा सकता? कुज़मा वासिलीयेविच और मैं बचपन से, बाल सफेद होने तक, एक ही गली में रहे हैं। हम सब उसे जानते हैं। फ़ार्म में सबके मुंह पर उसका नाम है। कोई ऐसा न होगा जो उसकी तारीफ़ किये बिना चूके। खैर पनचक्की का काम समझने में कुशल होना तो एक बात है; लेकिन हमें तो ऐसा आदमी चाहिए जो ईमानदार हो, जो आसानी से लालच में न फंसे! हम सभी लोगों का, पूरे फ़ार्म के लोगों का, कहना है कि तुम पनचक्की मत छोड़ो, कुज़मा वासिलीयेविच!"

अब तोशा बुज़िकिन खड़ा हुआ। उसने अपनी मुलायम टोपी माथे से पीछे खिसकाई और दोनों हाथ जेबों में डालकर बोलना शुरू किया:

"साथियो!" उसने कहा। "अब हमारा फ़ार्म तरक्की कर रहा है और हर आदमी को अपनी काम की जगह पर मुस्तैद रहना चाहिए। अभी हमारे और हमारे देश के सामने बड़ी-बड़ी मुश्किलें मौजूद हैं। हम किसी तरह की ढिलाई नहीं बरत सकते। साथियो, मेरा विचार है कि अपने यहां की अन्दरूनी स्थिति और अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति को देखते हुए..." यहां तोशा ने आन्द्रेई की ओर देखा, मानो कह रहा हो: 'हम लोग भी थोड़ा-बहुत जानते हैं'—"हम अच्छे पनचक्की वालों को नहीं छोड़ सकते! मेरा प्रस्ताव है साथियो, कि बोर्तनिकोव की अरज़ी नामंजूर कर दी जाये।"

उसके वक्तव्य का तालियों की गड़गड़ाहट से स्वागत हुआ।

"बिलकुल ठीक है, भाई!

" वोट ले लो, सभापति जी !"

"नहीं, नहीं ! कुज़मा की बात हम नहीं मानते !"

" वोट लेकर मीटिंग खतम करो, वासिली कुज़मिच ! बहुत देर हो गयी बैठे-बैठे । घर जाने का वक्त हो गया है !"

कुज़मा ने खड़े होकर एक बार फिर मांग की :

" भाइयो, मुझे अब छुट्टी दो...!"

"लेकिन क्यों ?"

" अरे बाबा, बात क्या है ?"

" कोई वजह भी बताओगे?"

"वजह...य...यह है कि मेरा एतबार नहीं किया जाता !......सो भाइयो...मुझे जाने दो...... !"

"लेकिन, हम सब तो तुम पर एतबार करते हैं ।"

" इन सब झगड़ों से क्या फ़ायदा ? वोट ले लो न, सभापति जी !"

" अरे भाई, फ़ार्म के सब लोगों को तुम पर एतबार है !"

"कौन है, जिसे एतबार नहीं है ?"

" मुझे नहीं है एतबार...!" वासिली के हाथ का कुचला हुआ कागज़ मेज़ पर आ गिरा । उसके दोनों हाथ असहाय से मेज़ पर आ टिके । फिर कमरे में सन्नाटा छा गया ।

फ्रोस्या ने कोई और बेढंगी बात कहने के लिए मुंह खोला ही था, पर कह न सकी । उसका मुंह खुला का खुला रह गया ।

"हूं, अब समझ में आया ।" आन्द्रेई ने मन ही मन कहा । "इसीलिए यह इतना परेशान था !"

वासिली को पिता की दशा पर दुःख हो रहा था । परन्तु वह जानता था कि दूसरा कोई रास्ता भी नहीं है । उसके हृदय में पीड़ा सी उठी । उसके दाहिने हाथ ने मेज़ पर पड़े कलम को मुट्ठी में पकड़ लिया । कलम के दो टुकड़े हो गये और निब स्याही से रंगी हथेली में चुभ गया ।

कलम के टुकड़े आन्द्रेई ने उसके हाथ से छीन लिए ।

"तुम अपने पिता पर क्यों एतबार नहीं करते ? तुम्हें कुछ मालूम है तो बताओ !" लुबावा ने तकाज़ा किया ।

"बोल ! बोल ! अब हाथ उठाया है, तो मारता क्यों नहीं !" स्तेपनिदा ने चीखते हुए कहा ।

उसका सिर ऊंचा उठ गया था; आंखें वासिली के प्रति क्रोध से जल रही थीं । सफेद चेहरे पर भौंहें दो आड़ी काली लकीरों की तरह खड़ी थीं । खतरा

सामने आ जाने पर—हमेशा की तरह इस वक्त भी—वह उसके मुकाबले के लिए दौड़ पड़ी।

देखने वालों को लग रहा था कि बूढ़े कुज़मा की अवस्था और भी दयनीय हो गयी है। उसके चेहरे पर न तो घृणा का, न क्रोध का, और न भय का चिन्ह था। नन्हें बालक की तरह आंखों में आंसू भरे वह अपने पुत्र की ओर देख रहा था, मानो अब भी अपने छुटकारे की आशा उसे उसी से थी। लज्जा की पीड़ा उसके हृदय को बेधे दे रही थी। फ़ार्म के लोग साथ-साथ उन्नति पथ पर आगे बढ़ रहे थे। आखिर यह हुआ क्या कि कुज़मा बोर्तेनिकोव —जिसका फ़ार्म में इतना सम्मान था—दूसरों के रास्ते में रोड़ा बन गया था।

आन्द्रेई ने वासिली से धीरे से कहा :

"सभा के सामने साफ़-साफ़ बता दो कि क्या बात है, वासिली कुज़मिच!"

वासिली खड़ा हो गया।

"मैं आप लोगों को बताता हूं...!" उसने रुक कर सांस ली। "हफ्ते भर पहले बाल-मंदिर से थोड़ा सा रामदाना दलने के लिए पनचक्की पर भेजा गया था।...उसके चार-पांच दिन बाद मैं बापू के यहां गया तो वहां मुझे रामदाने के परौठे खिलाये गये।...इससे पहले उनके यहां रामदाना था ही नहीं ...वह और कहीं से ला ही नहीं सकते थे...।" आगे उसे शब्द नहीं मिल रहे थे। वह सबके सामने चुप खड़ा था। उसे यह भी नहीं सूझा कि बैठ जाये। सब लोगों के चेहरे उत्तेजित थे। क्सेनोफोन्तोवना के चेहरे से भी कपट भाव दूर हो गया था; उसकी चंचल भेंगी आंखों और तिर्छी मुस्कान का नकाब हट गया था और एक अत्यन्त भावुक चेहरा दिखाई दे रहा था।

सभा में निस्तब्धता छायी थी। कुज़मा खड़ा हो गया। सब लोगों के सामने पिता और पुत्र मुक़ाबले पर खड़े थे। एक प्रधान की कुर्सी के पास और दूसरा ठीक सामने पीछे की बेंचों पर! कांपते हुए स्वर में कुज़मा बोला :

"साथियो, मैं थोड़ा सा रामदाना घर ले गया था।... यह मेरा कसूर है...! आप फैसला करें, जो आपका फैसला होगा, मुझे मंजूर है...।"

स्तेपनिदा ने बूढ़े को एक ओर हटाया और खुद उसकी जगह तनकर खड़ी हो गयी।

"'मैं थोड़ा सा रामदाना ले गया था!'" उसने बूढ़े के शब्द दुहराये। "क्या बक रहे हो? काहे का कसूर अपने माथे ले रहे हो, बेअकल? साथियो, इसकी बात पर ध्यान मत दो। छोटे बच्चों की तरह यह तो बेकार के संदेह पर कसूर ओढ़े ले रहा है। जो पाप किया ही नहीं, वह अपने माथे थोपे ले रहा है। रामदाना मैं लायी थी! लेकिन, इसे मैं कोई भारी ज़ुल्म नहीं

समझती। मैं बताये देती हूं कि सच-सच बात क्या थी। मेरी हर बात की गवाही देने वाले भी मौजूद हैं।" कुछ पल सांस लेकर स्तेपनिदा ने दृढ़ विश्वास से कहा: "अरे, उसमें था ही क्या? रामदाने की बोरी पनचक्की से बाहर ले जायी जा रही थी तो थोड़ा सा बिखर गया। तुम सब जानते ही हो—उस जगह कूड़ा-कचड़ा पड़ा रहता है, गांव भर की बत्तखें आ-आकर वहीं बीट करती हैं। मैं बिखरा हुआ माल समेटने लगी तो ड्राइवर बोला: 'राम, राम! क्या कर रही हो बूढ़ी दादी? ऐसा कूड़ा और बीट मिला अन्न हम बच्चों को देंगे? यह उनके लायक नहीं रह गया है!' बस इतना कहकर ड्राइवर चला गया। गिरा हुआ दाना वहीं पड़ा रह गया। न मानो साथियो, तो बाल-मंदिर के ड्राइवर से पूछ लो। पिमेन यासनेव भी वहीं था। उससे पूछ लो। दोनों के सामने की बात है!"

"हां, हां! यह तो मेरे सामने की बात है।" यासनेव खुशी से बोल उठा। उसे वह घटना याद हो आई। सच है, दाना ज़रा सा ही था। मुश्किल से आठ-दस परौंठों लायक होगा। लेकिन बूढ़े कुज़मा का अपमान उसे इतना दुःखजनक लग रहा था और फ़ार्म के एक सम्मानित साथी की ईमानदारी और बेदाग़ इज्ज़त में उसका विश्वास इतना दृढ़ था कि रामदाने की मात्रा उसके दिमाग़ में धुंधली होती जाती थी।

"हां, हां, ज़रा ज्यादा हो सकता है!" उसने सोचा। "मैंने तौला तो था नहीं। लेकिन यह सच है कि थोड़ा फैल गया था—मैंने खुद देखा था।" और एक बार फिर उसने स्तेपनिदा का समर्थन किया:

"स्तेपनिदा इलिनिचना सच कहती हैं! मैं कसम खाने को तैयार हूं।"

"देख लिया न!" स्तेपनिदा ज़ोर से बोल उठी। "ड्राइवर चला गया तो मैंने दाना समेट लिया। उसे चुनकर साफ़ किया, पानी में उबाला और फिर दूसरे आटे में मिलाकर परौंठे बना लिये। बस, यही है मेरा कसूर। इसके लिए जो भी सजा देना चाहो, दे लो!"

"हाय राम!" वासिलिसा ने दुहाई देते हुए बड़ी बुलन्द आवाज़ में कहा: "दो परौंठे बना ही लिये तो क्या जुल्म हो गया? क्या समझ रखा है हमें—क्या हम इन्सान नहीं हैं? अरे, ज़रा ज़मीन झाड़ी, दानों में से मिट्टी-कूड़ा निकाला—लो, दो परौंठे तैयार!"

बहुत से लोग एक साथ बोल उठे:

"अरे अब जाने दो इस झगड़े को, कुज़मा!"

"क्यों तिल को ताड़ बना रहे हो?"

फ़ार्म में कुज़मा का सचमुच बहुत आदर था।

मातवेयेविच बोलने के लिए खड़ा हुआ। दूसरे किसानों की भांति वह भी इस घटना से बहुत उत्तेजित हो गया था। उसे वासिली और कुज़मा दोनों पर तरस आ रहा था—वासिली पर तो इसलिए कि वह अपने बाप के साथ बेजा सख्ती बरत रहा था, और कुज़मा पर इसलिए कि उसने अपनी नकेल औरत के हाथ में सौंप दी थी। जो दृश्य अभी उसने देखा था उसने—अन्य उपस्थित लोगों की तरह—उसे भी आन्दोलित कर दिया था। उसके मन में रोमांच, पीड़ा और उल्लास के तरह-तरह के धुंधले और अस्पष्ट भाव उमड़ रहे थे।

"साथियो! हम सब जानते हैं कि कुज़मा कितना ईमानदार और किफ़ायती आदमी है। फ़ार्म के लिए पनचक्की किसने बनायी थी? कहो, कुज़मा ने! कौन आदमी है जिसने किसी काम से मन नहीं चुराया? कहो, कुज़मा। अरे भाई, उसने फ़र्श पर से ज़रा सा रामदाना समेट लिया तो क्या गज़ब कर दिया? कोई दूसरा पनचक्की पर होता तो रोज़ दस सेर झाड़ू में ही जाता। अब हमारा फ़ार्म जरा अच्छे रास्ते पर आ रहा है। बूढ़े वासिलीयेविच के बिना हम कैसे काम चला सकेंगे? मुसीबत के दिनों में वह भूत की तरह काम में चिपटा रहता था। मेरा सुझाव है कि कुज़मा पनचक्की पर रहे और हम उस पर से अपना यकीन न हटायें।"

मातवेयेविच के बोल चुकने पर एक के बाद एक कई किसानों ने कुज़मा बोर्तनिकोव को पनचक्की पर रखने का समर्थन किया। बूढ़ा कुज़मा चुपचाप पिछली बेंच पर बैठा था। उसकी आंखों से आंसू बह रहे थे। वह उन्हें छिपाने का प्रयत्न भी नहीं कर रहा था। सभी स्त्री और पुरुष वक्ताओं की बातों को वह ऐसे सुन रहा था जैसे उसका जीवन उनके फ़ैसलों पर ही निर्भर हो। उसे खुद विश्वास नहीं था कि स्तेपनिदा ने जो कुछ कहा था वह सच था।

स्तेपनिदा प्रायः ही पनचक्की पर "सफ़ाई करने" आती थी।

वह पनचक्की का फ़र्श धोती, बोरियों को झाड़ती, सब चीज़ें ढंग से लगाती, बाद में उस दिन घर में जौ का दलिया या रामदाने के परौंठे बनते थे।

"यह सब कहां से आता है?" कुज़मा पूछता।

स्तेपनिदा के होंठ सट जाते, वह घूर कर उसकी ओर देखती और कहती:

"आता कहां से! बाज़ार से लायी हूं।"

बूढ़े को लगता कि कुछ गड़बड़ी ज़रूर है। पर वह मन को मार लेता—कितना शांत, निरुद्वेग और सुखद था स्तेपनिदा के साथ उसका जीवन!

कुज़मा की जवानी के दिनों में भी स्तेपनिदा की ही चलती थी। बूढ़ा होकर तो वह बिलकुल उसके वश में हो गया था। उसका मन शरीर की

अपेक्षा जल्दी बूढ़ा हो गया था। शरीर अभी उसका भला-चंगा था और चाल भी चुस्त थी। पर किसी बूढ़े की तरह मन में आराम और बे-फ़िक्री की चाह बढ़ गयी थी। किसी बूढ़े की ही तरह उसने सब कुछ पत्नी के हाथ में सौंप दिया था; सिर्फ़ ऊपर से देखने में घर में मर्द का राज था—सब कुछ उससे पूछकर और उसकी अनुमति से किया जाता था। उसका समूचा जीवन बिना किसी झगड़े-झंझट का और एकरस रहा था। वह मेहनत करता था, अपने को स्तेपनिदा के शासन के सुपुर्द कर देता था, और घर में सुख-शांति तथा बाहर के लोगों में आदर-सम्मान की सुखद अनुभूति में डूबा रहता था। इस चिंता में वह पड़ना ही नहीं चाहता था कि इस सुख और शांति का स्रोत क्या है।

उस शाम उसके मन को पहला धक्का लगा! उसे पहली बार अपने प्रति ग्लानि हुई! उसे लगा कि घर में टंगे जालीदार परदे, कढ़े हुए मेज़पोश, और सोफ़ा-सेट—सब दिखावे की चीज़ें हैं। वह स्तेपनिदा की ओर से खिंच गया और बालकों जैसे दुर्बल हृदय का समूचा उत्साह लिए अपने बेटे की ओर ललक पड़ा। उसे अपने बेटे से कोई शिकायत नहीं थी! उसके प्रति उसके मन में और भी आदर बढ़ गया था! वासिली का विश्वास और आदर पाने के लिए वह उतावला हो रहा था!

पिता के प्रति किसान साथियों की सहानुभूति देख कर वासिली के मन का क्षोभ और भी बढ़ गया था! यासनेव की गवाही के बावजूद, उसे स्तेपनिदा की बात पर यकीन नहीं था। उसे लग रहा था कि स्तेपनिदा ने बचाव का एक बहाना ढूंढ़ निकाला है! लेकिन, उसकी बात काटने के लिए उसके पास कोई सबूत नहीं था।

"बुढ़िया बड़ी चालाक है! उसने बापू की नाक में नकेल डाल रखी है!" वासिली सोच रहा था। "बापू को तो जाल में फंसा दिया और खुद बाहर निकल गयी। जानता तो हूं, लेकिन साबित नहीं कर सकता। क्या मैं इन लोगों से अपना संदेह प्रकट कर दूं? लेकिन मैं कह ही क्या सकता हूं? बिना सबूत, बिना तथ्यों के, किसी को कैसे चोर कह दिया जाये? बेचारे बापू! ओफ़, कितना तरस आता है उन पर।"

मन की परेशानी के कारण वासिली के हाथ जो कुछ पाते, तोड़ते-मरोड़ते जा रहे थे। मेज़ पर जितने कलम और पेन्सिलें थीं—सब टूट गयीं। घन्टी की मूठ के भी—जो उसे बहुत पसंद थी—टूटने की नौबत आ गयी थी।

लोग क्या बोल रहे हैं, वासिली नहीं सुन रहा था। उसकी आंखें पिता के झुके हुए शरीर पर लगी थीं। वह उनके सिकुड़े हुए होठों और बेबस निष्क्रिय हाथों पर से अपनी नज़र हटा ही नहीं पा रहा था। कितनी ही बार

पिता ने ये ही हाथ वासिली के सिर पर फेरे थे और उसका प्यार किया था।

"खैर, होगा भी! जाने दो!" वासिली ने सोचा। "इस सभा के बाद पनचक्की से चुटकी भर मिट्टी उठाने की भी स्तेपनिदा की हिम्मत नहीं होगी। पहले की तरह अब बढ़-बढ़ कर बातें नहीं करेगी!"

मेज़ पर रखी दावात वासिली के हाथों में देख आन्द्रेई ने उसके हाथों से ले ली, मानो किसी निद्रा-रोग से पीड़ित रोगी के हाथ से छीन रहा हो, और मेज़ के परले सिरे पर रख दी।

वासिली ने असमर्थता और दीनता के स्वर में आन्द्रेई ने पूछा :

"बताओ क्या किया जाये? तुम्हारी सच्ची और निष्पक्ष राय क्या है, पेत्रोविच?"

आन्द्रेई की भी समझ में नहीं आ रहा था कि असलियत क्या है। उसे स्तेपनिदा की कहानी पर पूरा यकीन नहीं था। लेकिन, वह यह भी देख रहा था कि फ़ार्म के किसानों के मन में कुज़मा के लिए बहुत ही आदर और विश्वास है, कि अपमान ने बूढ़े की अवस्था कितनी दयनीय बना दी है।

"अगर चोरी का पक्का सबूत मिल जाता, तो बात दूसरी थी।" आन्द्रेई ने सोचा। "इस हालत में तो अदालत में चोरी का मामला चलाया नहीं जा सकता—कोई सबूत ही नहीं है। सिर्फ़ सन्देह पर ही तो किसी को चोर नहीं ठहरा दिया जा सकता। यह तो साफ़ है कि बूढ़ा चोर नहीं है!...इसका दोष है तो सिर्फ़ यह कि वह कमज़ोर और अन्धा है...। उसे ऐसा सदमा पहुंचा है कि मरते दम तक यह मीटिंग याद रहेगी। सभा की कार्रवाई ठीक चल रही है; लोग-बाग इस मसले को सही तरीके से ही हल कर रहे हैं!"

आन्द्रेई यही सब सोच रहा था। यही कारण था कि बहस के दौरान में वह चुप था। वासिली के पूछने पर उसने कहा :

"भाई, फ़ार्म के लोग कुज़मा वासिलीयेविच को जितनी अच्छी तरह जानते हैं, उतनी अच्छी तरह मैं नहीं जानता। इसलिए मैं राय देने का दम कैसे भर सकता हूं? सब साथी जो ठीक समझें, फैसला कर लें! इस मामले को आप ही लोग ज़्यादा समझते हैं। अगर आप जानना ही चाहें कि मैं क्या सोचता हूं, तो मैं बताये देता हूं। मैं समझता हूं कि कुज़मा ने परिश्रम और ईमानदारी का जीवन बसर किया है और बुढ़ापे में वह कोई ऐसा काम नहीं करेगा जिससे उसकी इज्ज़त में बट्टा लगे। मेरा तो यकीन है साथियो, कि कुज़मा वासिलीयेविच के लिए इज्ज़त दो परौठों से कहीं बड़ी चीज़ है। मेरी राय है कि पनचक्की का काम कुज़मा के ही हाथ में रहना चाहिए। लेकिन आगे अफ़वाहें और ग़लतफ़हमियां न बढ़ें इसलिए मेरा सुझाव है कि बाहर

के किसी भी आदमी को—कुज़मा की पत्नी को भी—पनचक्की के भीतर न जाने दिया जाय।"

"अरे, मुझे क्या पड़ी है! मैं उधर झांकूंगी भी नहीं।" स्तेपनिदा सिर झटका कर बोली।

"अच्छा अब वोट ले लो, वासिली कुज़मिच!"

सभी लोगों ने एक मत से फ़ैसला किया कि कुज़मा को पनचक्की के काम पर रखा जाय।

सभा खत्म हुई। वासिली और आन्द्रेई एक साथ घर लौट रहे थे। घर के दरवाज़े पर पहुंच कर वासिली ने आन्द्रेई से कहा:

"अभी अन्दर मत चलो, पेत्रोविच...मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूं।"

तारों भरी निस्तब्ध रात थी। गली में कहीं दूर, कदमों के नीचे बरफ पिसने का शब्द सुनाई दिया और किसी ने दरवाज़ा बन्द किया। फिर सन्नाटा छा गया।

"कहो, वासिली! मैं सुन रहा हूं।"

आन्द्रेई ने अंधेरे में वासिली के चेहरे को गौर से देखा। चेहरा अंधेरे में धुंधला दिखाई दे रहा था, मालूम होता था काली भौहों की चौड़ी पट्टियां बंधी हैं।

"उसी बात के बारे में कहना है...! मुझे तो अपनी सौतेली मां की बात झूठी लगती है। कूड़ा और बीट मिला रामदाना वह खाने में इस्तेमाल करे, यह नामुमकिन है! वह बड़ी पाखण्डी है। लेकिन इसे जाने दो...! असल में मुझे इन लोगों पर कोई एतबार नहीं है—मेरा मतलब बापू से नहीं—उससे है...! पनचक्की की सफाई और बोरियों की मरम्मत करने वह रोज-रोज यों ही थोड़े ही जाती थी।"

"तुम्हारे पास कोई पक्का सबूत है?"

"सबूत होता तो मैं यों छोड़ता? सबूत ही तो नहीं है। लेकिन फिर भी मेरा दिल नहीं मानता...!"

"तुम्हारा मतलब है कि बूढ़ा ईमानदार है?"

"एकदम ईमानदार! सारी उम्र बापू ने जी-तोड़ परिश्रम किया है। किसी परायी चीज़ पर हाथ पड़े, इससे पहले वह हाथ ही काट डालेंगे। शुरू से उन्होंने इसी तरह का जीवन बिताया है और हम लोगों को भी यही सिखाया है।"

"क्या फ़ार्म में उनका काम बहुत अच्छा है?"

"अरे, उन जैसे कुछ और होते तो बात ही क्या थी! उनके काम के बारे में तो तुमने सब लोगों से सुन ही लिया है!"

"तब तो उनकी कमज़ोरी और तंग-नजरिया ही उनकी सबसे बड़ी ग़लती है। क्या ख़याल है? इस मीटिंग के बाद वह अच्छा काम करेंगे या खराब?"

"अरे, वह पहाड़ तक हिला देंगे...! मैं उन्हें जानता हूं!"

"और सौतेली मां?"

"वह अब चक्की के पास भी नहीं फटकेगी। बापू उसे पास नहीं आने देंगे। बापू एक हद तक ही सीधे हैं। लेकिन, बात हद से बाहर होते ही वह फ़ौलाद की तरह सख्त हो जाते हैं! अब यह बात उनके घर में नहीं चल सकती।"

दरवाज़ा खुला और अवदोत्या खाल का ओवरकोट कन्धे पर डाले दरवाज़े में दिखाई दी।

"यहां बाहर क्यों खड़े हो? मुझे भीतर आप लोगों की आवाज़ सुनाई दी...। अन्दर आ जाओ न...।"

अवदोत्या की आवाज़ भारी थी। तातिआना इन लोगों के आने से पहले ही आ गयी थी और उसने सभा की बातें अवदोत्या को बतला दी थीं। अवदोत्या को इस बात से बहुत चोट लगी थी कि घर के बारे में इतनी बड़ी बात वासिली ने उसे नहीं बतायी थी। इससे भी ज्यादा यह कि उसका पति और ज़िला पार्टी सेक्रेटरी बाहर खड़े थे, मानो उन्हें अन्दर आने में डर लगता हो; मानो उन्हें उसके सामने ऐसी बातें करने में डर लगता हो जो उसके और फ़ार्म के लिए बहुत महत्वपूर्ण थीं। दोनों को अन्दर जाने का रास्ता देने के लिए वह एक ओर हट गयी। फिर, वह देखने चली गयी कि सुअरों का बाड़ा ठीक से बन्द है या नहीं। बाड़े की पतली लम्बी पगडंडी पर पड़ी बरफ़ अवदोत्या के पैरों के नीचे चरचरा रही थी। उसने चाल और धीमी कर ली।

"ये लोग नहीं चाहते कि मैं इनकी बातें सुनूं! जैसे मैं इनके रास्ते में हूं! मेरे और वास्या के बीच ख़ामोशी ने आखिर यह रंगत ला दी। हम लोग अजनबियों से भी बदतर हो गये हैं...। 'हो गये हैं?'... लेकिन क्या पहले हालत अच्छी थी? शादी से पहले वह मेरा गाना सुनता था, मेरे बनाये तम्बाकू के बटुए को कमर में बांधकर रखता था, जब चलते-चलते थक जाता था तो मेरी गोद में सिर रखकर आराम करने लगता था। लेकिन तब भी, उसे मेरी फ़िक्र नहीं थी। उसे इस बात में ज़रा भी दिलचस्पी नहीं थी कि मैं कैसे रहती हूं, मेरे दिल और दिमाग़ में क्या है?"

वह सुअरों के बाड़े का ताला देखकर लौटी। बरफ़ से ढंकी सीढ़ियां पार कर, वह दरवाज़े पर आकर ठिठक गयी। भीतर जाने के लिए उसके पैर नहीं उठ रहे थे।

११. "अदम्य प्रवाह"

गोशाला में अभी भी बिजली की बत्तियां जल रही थीं। सब ओर रात्रि का मौन और सन्नाटा था।

दूध के बड़े-बड़े सफ़ेद बर्तन, जिनमें दिन भर दूध की धारायें झर्र-झर्र पड़ती रहीं थीं, अब तन्दूर पर औंधाये, एक पर एक रखे, सूख रहे थे।

गोशाला का चौकीदार मेफोदिच सुस्ताने के लिए तन्दूर के पास की बेंच पर बैठा हुआ था। उसका सहायक झबरा कुत्ता, एक कान ऊपर उठाये, दरवाज़े पर झपकी ले रहा था।

आम तौर से अवदोत्या सबसे बाद में जाती थी। रोज़ की तरह आज भी वह गोशाला का आखिरी चक्कर लगा रही थी। रोज़ रात को इस तरह पूरी गोशाला में घूमना उसे बहुत अच्छा लगता था।

दिन भर के काम की चहल-पहल खत्म हो जाने के बाद रात की शांति और सन्नाटे में नये सुधारों को वैसे ही स्पष्टता से देखा और समझा जा सकता था, जैसे किसी नये मकान के चारों ओर लगे मचानों को हटा देने के बाद उसके महराबों वग़ैरा को देखा जा सकता है। फ़ार्म में बिजली लग चुकी थी। चारों ओर बिजली की बत्तियों की कतारें दिखाई दे रही थीं। दीवारों और छतों की मरम्मत अच्छी तरह हो गयी थी। पशुओं को अब सर्द हवा और छत से चूते पानी का डर नहीं था। बीच-बीच में कायदे से नालियां बना दी गयी थीं। अब जानवरों के नीचे बिछा भूसा और फूस कीचड़ नहीं बन सकता था। वह सूखा, मुलायम और सुनहला रहता था।

बाहर से आकर देखने वालों के लिए ये बड़ी साधारण चीज़ें थीं। परन्तु जिन लोगों ने अपने हाथों यह सब बनाया-संवारा था उनके लिए हर चीज़ आनन्द का स्रोत थी।

कर्मठता और जीवन की पूर्णता की चाह अवदोत्या के स्वभाव और प्रकृति का अंग थी। उत्साह और आनन्द के प्रत्येक स्रोत की ओर उसकी आंखें स्वयं ही उठ जाती थीं। गोशाला का निरीक्षण करते समय अपने काम की सफलता पर उसका मन मुस्करा उठता था। मन की मुस्कराहट की हल्की छाया उसके होठों पर भी आ जाती। दिन के काम से थकी इस स्त्री को कोई नया आदमी रात के समय, रुई का मैला कोट पहने, अकेले गोशाला में चक्कर काटते और मुस्कराते देखता तो उसे अवश्य आश्चर्य होता। अवदोत्या जिस स्थानको अंतिम बार देख लेती, वहां की बत्ती बुझा देती। बिजली के बटन की

हल्की सी खुट्ट होती ! उसे लगता कि उसके इशारे पर ही गोशाला में रात शुरू होती है ! उसे इस अनुभूति से बड़ा संतोष मिलता।

अवदोत्या ने आखिरी बत्ती बुझायी। अंधेरे में सिर्फ खिड़कियां दिखायी दे रही थीं। पशुओं के सांस लेने और जुगाली करने का शब्द स्पष्ट सुनाई दे रहा था।

गोशाला में अब कोई काम बाकी न था। परन्तु, अवदोत्या अंधेरे में दरवाज़े के पास ही खड़ी थी। वह मानो सोच रही थी कि और कौन सा काम किया जा सकता है ! और किस चीज़ पर मुस्कराया जा सकता है ! घर जाने की उसे ज़रा भी उतावली न थी। वैसे, घर जाने का समय हो गया था...।

घर का खयाल आते ही अवदोत्या के चेहरे पर छाई खुशी उड़ गयी। वह देर तक वहीं रुकी रही। फिर, घर जाने के बजाय, पास के एक थान पर पहुंची, और दूध दुहने के स्टूल पर बैठ गयी। उसने अपना गाल गाय के गरम पेट पर टिका दिया।

बाहर आकाश में, पूरा चांद तैर रहा था। हवा के झोंकों से बरफ़ की लहरें आ-आकर दीवारों से टकरा रही थीं। अवदोत्या कभी आकाश में तैरते चांद की ओर देखती और कभी बरफ़ पर बनती-बिगड़ती लहरों की ओर। उसके मन में बार-बार एक ही प्रश्न उठ रहा था : "मैं क्या करूं और कैसे करूं ?"

यह प्रश्न दिन भर से अवदोत्या के मन में बार-बार उठ रहा था। दूसरे कामों के रहते वह इस प्रश्न की उपेक्षा करती आ रही थी। परन्तु, अंधेरा हो जाने के बाद, अब जब वह अकेली रह गयी थी, इस प्रश्न ने उसे घर दबाया था।

"ऐसी भी औरतें होती हैं जो एक आदमी को छोड़ दूसरे के पास चली जाना कोई बड़ी बात नहीं समझतीं। लेकिन मैं तो एक ही के साथ ऐसी जुड़ी हूं कि अलग करने में शरीर का मांस खिंच आयेगा। उसी के साथ मैं पूरी ज़िन्दगी बिता देती। लेकिन भाग्य ने मेरे साथ छल किया है। क्या स्तेपा के पास चली जाऊं ? पर वास्या भी तो मुझे प्यारा है। किसी के साथ रहूं, दूसरा याद आयेगा। कुछ औरतें यह सब आसानी ने झेल जाती हैं। पर क्या यह मेरे बस का है ? मेरी हालत क्या हो रही है ! जहां मेरा दायां पैर पड़ा है, वहीं मेरा बायां पैर भी है। मैं क्या करूं ? सबसे अच्छा यही होगा कि मैं अकेली रहूं।"

आकाश में चांद तैरता चला जा रहा था, दूर के मकानों में रोशनी बुझती जा रही थी। अवदोत्या के पैर अब भी घर की ओर नहीं बढ़ रहे थे...

अवदोत्या को उक्रेन से निजी पत्र मिला था। नगर में पशु-पालन पर पन्द्रह दिन के लिए एक व्याख्यान-माला का आयोजन किया गया था। इस व्याख्यान-माला में सम्मिलित होने के लिए उसे भी बुलाया गया था।

वासिली को अवदोत्या का बुलाया जाना ज़रा भी नहीं भाया। पहली चिन्ता तो उसे यह थी कि बच्चियों को कौन सम्भालेगा! दूसरी, लेकिन मुख्य, यह थी कि शहर में आस-पास के तीन ज़िलों के लकड़ी चिराई के सबसे अच्छे कार्यकर्त्ताओं का सम्मेलन होने वाला था, जिसमें स्तेपान भी आने वाला था।

सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि अवदोत्या की मां महीने भर से खाट पकड़े थी। उसे संधि-ज्वर था—बुखार भी और गांठों में दर्द भी।

"अवदोत्या कैसे जा सकेगी?" खीझ प्रकट करते हुए वासिली ने वालेंतिना से कहा था! "छोटी बच्चियों और बीमार मां को किस पर छोड़ जायेगी? मैं भी काठ का बना नहीं हूं; मुझे रोटी-टुकड़ा चाहिए या नहीं? ऊपर से गाय ब्याने को है! यही मौक़ा मिला था उसे शहर जाने को?"

"दादी वासिलिसा और मैं तुम्हारी सास और बच्चों को सम्भाल लेंगे। उन्हें हम अपने यहां ले जायेंगे—आधा घर खाली पड़ा है। गाय और मुर्गियों की भी चिंता मत करो। हम लोग रख लेंगे। रही तुम्हारे खाने की बात, सो बुढ़िया अगाफ्या से कह देंगे, वह आकर बना जाया करेगी।"

अवदोत्या खाट पर बैठी सुनती रही। इस बहस में उसने एक शब्द भी अपनी ओर से नहीं कहा।

"जाये!...मेरी बला से!" वासिली ने कहा।

शाम हो आई। अवदोत्या सफर की तैयारी के लिए बक्से में कपड़े लगा रही थी। उसके चेहरे पर उत्साह दिखाई दे रहा था। एक बार फिर वासिली की ईर्षा जागी: "कितनी खुश है! खूब मज़े होंगे वहां!"

काश, अवदोत्या उसे बता पाती कि उसके मन पर क्या-क्या गुज़री है, या, वासिली अपनी ग़लतियों और उन कड़ियों को समझ पाता जिनसे अवदोत्या स्तेपान से बंधी थी! तब वह ऐसी बातें न सोचता। पर न तो वह यह सब जानता था, न समझता था!

अवदोत्या का यात्रा का उत्साह वासिली के कलेजे में बर्छी की तरह चुभ रहा था। उसे इस उत्साह का एक ही कारण दिखाई दे रहा था—शहर में स्तेपान से उसकी मुलाकात होगी!

अवदोत्या की ओर देखकर भौंहें सिकोड़ता हुआ बोला:

"यह नया ब्लाउज़ ले जाने की क्या ज़रूरत है? समझती हो, सब तुम्हें देखते ही रीझ जायंगे? तुम्हारी जैसी उन्होंने कभी देखी ही न होगी...?"

अवदोत्या के हाथ से ब्लाउज़ छूट गिरा!

"बच्चों के सामने ऐसी बातें!" वह और कुछ न कह सकी।

बच्चियां विस्मय से आंखें फाड़े देख रही थीं।

दरवाज़ा बंद करता हुआ वासिली बाहर चला गया।

"अब मुझे बोलना ही पड़ेगा।" अवदोत्या ने निश्चय किया। "ऐसे नहीं निभ सकती!"

अवदोत्या का निश्चय बहुत पहले ही परिपक्व हो चुका था। यह निश्चय वह उसी दिन कर चुकी थी जिस दिन वासिली ने परौंठों की बात उसे न बताकर, सभा में सबको बतायी थी। उसी दिन वह समझ गयी थी कि अब उनमें कोई अपनत्व नहीं रह गया है। आपस की यह दूरी और यह मनमुटाव, अवदोत्या के लिए असह्य हो उठा था।

वासिली लौटकर आया तो अवदोत्या उसके पास जा बैठी और शांत स्वर में बोली:

"इस तरह की ज़िन्दगी से क्या फ़ायदा, वास्या?...हम दोनों के लिए ज़िन्दगी भार हो रही है। बच्चों की भी हालत खराब है! ज़रा देखो, इनकी क्या हालत हो रही है?"

"कसूर किसका है?"

"खैर, तुम चाहते हो तो कसूर मैं अपने ऊपर ही लिये लेती हूं!" अवदोत्या ने शांति से कहा। "मैंने सोचा था, सब अच्छा ही होगा। मैं सोचती थी, हम लोग पिछली बातें भूल जायेंगे। लेकिन... मैं मज़बूर हूं... मुझे स्तेपान की याद अब भी आती है। तुम कहोगे, इसमें कसूर मेरा ही है। उस दिन तुमने बहुत सी चीज़ों को बराबर-बांट दिया था। भेड़ के मांस के दो टुकड़े कर दिये थे। मेरे प्यार के भी तुमने दो टुकड़े कर दिये होते, वास्या! उसी मांस की तरह!...कुल्हाड़ी की एक चोट से...! पर ऐसा नहीं हो सकता। आखिर हम लोग इन्सान हैं...। बनैले जानवरों के भी नर और मादा अलग कर दिये जायें तो एक दूसरे के लिए तड़पेंगे। तुमने मुझे समझने की कोशिश की होती, तुम्हारे हृदय में थोड़ी दया होती और तुमने मुझसे तसल्ली के दो शब्द कहे होते तो मैं सब कुछ भूल जाती। मैंने अपनी भावनाओं पर काबू पा लिया होता। पर वैसा नहीं हो सका। तुम समझते हो मैं नीच और अपराधी हूं।...लेकिन मेरा अपराध क्या है? मैं मन में स्तेपान की याद नहीं रखना चाहती थी। पर तुमने मुझे मजबूर कर दिया। यह है असलियत। मुझे स्तेपा की याद आती है। मैं तुम्हारी पत्नी नहीं..."

"बस, सब-कुछ खतम...!" वासिलीने सोचा। सहसा उसका मुंह और गला सूख गया। वह बड़ी कठिनाई से बोला:

"तो तुम स्तेपान के पास जा रही हो?"

"नहीं! मैं उसके पास नहीं जा सकती...। तुम भी तो मेरे लिए अजनबी नहीं हो...। मैं उसके साथ रही भी, तो तुम्हारी याद में घुलती रहूंगी। अच्छा होगा, वास्या, कि कुछ दिन हम लोग अलग-अलग रहें। हम लोग ज़रा सोचें-समझें। मैं सदा के लिए कोई फ़ैसला नहीं ले रही हूं। शायद कोई दिन आये जब हम लोग दूसरे ढंग से एक-दूसरे से बोलें-बतलायें! शायद...हम लोग फिर नये सिरे से शुरू करें...मैं नहीं कह सकती! मैं सिर्फ़ इतना जानती हूं कि हम लोग इस तरह नहीं रह सकते। मैं अकेली रहूंगी, वास्या! घाव तभी जल्दी भरता है, जब उसे बार-बार दुखाया न जाय।"

साधारणतः वासिली का स्वभाव था क्रोध में बावले हो जाना या भावुकता में बह जाना। परन्तु परिस्थिति के अधिक जटिल होते ही वह पत्थर की तरह निस्पंद हो जाता था और उसकी बुद्धि भी विशेष प्रखरता से काम करती थी। वही बात इस समय भी हुई।

"ठीक है, यह मेरी पत्नी नहीं है...! यह उसे चाहती है...! हां, उसी को चाहती है...! क्या मुझे ऐसी औरत चाहिए जो दूसरे के लिए तड़पती हो? नहीं, नहीं! क्या मुझे ऐसी पत्नी चाहिए जिस पर खुद मुझे यकीन न हो? नहीं! पर बच्चे? जब हमारा आपस में यह हाल है तो उनको ही हम कौन सा सुख दे सकते हैं? फिर यह हालत उनसे छिपायी भी तो नहीं जा सकती! वे सब कुछ समझते हैं!"

घर लौटने की कठिन घड़ी में भी उसने ऐसे ही सोच-समझकर ठंडे दिल से फ़ैसला किया था। पर वह फ़ैसला ठीक न उतरा था...!

"वास्या," अवदोत्या ने कहा, "मैं मां और बच्चों को आज वालेंतिना के यहां पहुंचाये देती हूं। जब निश्चय कर ही लिया है तो आज मैं भी वहीं रहूंगी।"

वासिली के हाथों की मुट्ठियां भिंच गयीं। उसकी गर्दन झुक गयी! भारी पलकों से मानो आन्तरिक आग की चिनगारियां निकल रही थीं।

"खैर, यही सही...!"

·

दूसरे दिन तड़के, सूर्योदय से पहले ही, अवदोत्या उक्रेन के लिए चल पड़ी। एक छोटी सी देहाती बरफ़-गाड़ी कड़ी बरफ़ पर फिसलती चली जा रही थी। मातवेयेविच ऊंघता-ऊंघता घोड़े को हांक रहा था। सड़क के किनारे के तार के खम्भे, झाड़ झंखाड़ और काले नोकीले देवदार वृक्ष पीछे को भाग रहे थे। बरफ़-गाड़ी में फूस का बिछौना लगा हुआ था। अवदोत्या उसी पर भेड़

की खाल का भारी मोटा कोट ओढ़े लेटी थी ! बरफ़ से पटी इस सड़क पर उसे सूनेपन और विषाद का अनुभव हो रहा था।

अब भी उसके दिमाग़ में घर की चिन्ता ही उथल-पुथल मचाये थी। पारिवारिक झगड़ा अब भी उसके मन पर भारी पत्थर की तरह रखा हुआ था। वह सोच रही थी :

"दादी वासिलिसा के यहां जाते वक्त कात्या और दुन्या कितनी खुश थीं। उनके लिए यह भी एक नया खेल था। बेचारी, कुछ भी नहीं समझ पातीं ? सूनी झोंपड़ी में बुढ़िया अगाफ्या के साथ वास्या बेचारा अकेला होगा ! जाने उसे कैसा लग रहा हो ? ओफ़, हम लोगों ने अपनी ज़िन्दगी कैसी बना डाली है। पर मैं करती ही क्या ? लेकिन, ऐसे पति के साथ रहना संभव कैसे है जिससे मन फट गया हो ? ओफ़, दिल पर कैसा बोझ है ! कैसा भारी बोझ है...! लगता है दिल पर पहाड़ रखा हो।"

दिन चढ़ते-चढ़ते वे लोग उग्रेन पहुंच गये। अवदोत्या ने मातवेयेविच को विदा किया और ज़िला कार्यकारिणी कमिटी की राह ली। वहां से उसे सफर के ज़रूरी कागज़ लेने थे। अवदोत्या दफ्तर पहुंची तो वहां इतने सबेरे कोई भी नहीं था। बस, सफाई करने वाला आदमी झाड़-पोंछ कर रहा था। स्टेशन से गाड़ी छूटने में केवल आध घंटे का समय बाकी था।

अवदोत्या बहुत परेशान थी। दफ्तर से कागज़ लिये बिना वह जा नहीं सकती थी। और दफ्तर के आदमियों के लिए प्रतीक्षा करने का मतलब था गाड़ी छोड़ देना और पढ़ाई शुरू होने के समय न पहुंच पाना !

कभी तो वह सूने बरामदे में टहलती और कभी दौड़ कर सड़क पर देखती। वह इतनी परेशान थी कि रो पड़ना कोई बड़ी बात न थी। "लोग मेरे बारे में क्या कहेंगे ! अच्छे कार्यकर्त्ता के रूप में लोग मुझे ऊंची शिक्षा के लिए भेज रहे हैं और अपनी लापरवाही के कारण मैं खुद ही पहुंचूंगी देर में ...।"

अपना शॉल हाथ में पकड़े अवदोत्या परेशानी से इधर-उधर नज़र दौड़ा रही थी। तभी गली के मोड़ से आन्द्रेई आता दिखाई दिया।

अवदोत्या आन्द्रेई को पुकारने ही वाली थी कि बरबस उसने अपने को रोक लिया। "मेरी बेवकूफ़ियों से कहीं बड़े मसलों पर उसे सोचना-विचारना होता है !" उसने सोचा।

लेकिन, आन्द्रेई ने अवदोत्या को देख लिया था। वह उसी की ओर आ रहा था।

"अवदोत्या तिखोनोवना ! अरे, तुम अब तक यहीं हो ? व्याख्यान-माला के शुरू में पहुंचने में देर नहीं होगी ?"

"गाड़ी छूटने में सिर्फ़ आधा घंटा है, आन्द्रेई पेत्रोविच! मेरे सफर सम्बंधी कागज़ अभी तक नहीं मिले हैं। यहां अभी कोई आया ही नहीं है। समझ में नहीं आता, क्या करूं?"

"आओ, मेरे साथ ज़िला कमिटी के दफ्तर चलो। सफर के लिए प्रमाणपत्र मैं लिख दूंगा।"

अवदोत्या पहले कभी ज़िला कमिटी के दफ्तर नहीं गयी थी। दफ्तर के बाहर वाले कमरे में ही बड़े एहतियात से वह चुपचाप कुर्सी पर बैठ गयी। आन्द्रेई और सुन्दर नेत्रों वाली एक सहायक लड़की ने, जिसका नाम आन्या था, उसके लिए प्रमाणपत्र लिखना शुरू किया।

दफ्तर खूब साफ़ और हवादार था। वहां एक भी फालतू चीज़ नहीं थी। अवदोत्या को बड़ी शांति मिल रही थी। कोनों में रखी हुई मेज़ों और लकड़ी के कलमदानों को देख कर—जिन पर सुनहला काम किया हुआ था—आंखों को बड़ा सुख मिलता था।

आन्द्रेई और आन्या के नियंत्रण में उसके आत्म-विश्वास को बल मिला था। उन पर अपनी आस्था जमाये वह बड़े धैर्य से बैठी थी।

"आन्द्रेई कितना भला आदमी है!" अवदोत्या सोच रही थी। "दिल का कितना साफ़! कितना ही भारी काम हो, उससे बातें होने पर काम हल्का मालूम होने लगता है। ऐसे आदमी के पास जाकर कितना भरोसा होता है। आन्या भी कितनी अच्छी है।"

अवदोत्या के सामने ही स्तालिन की एक बड़ी तसवीर लटकी थी। स्तालिन की तसवीर उसने पहले भी कई बार देखी थी। चेहरा-मोहरा पहचाना हुआ था। लेकिन यहां, पार्टी कमिटी के दफ्तर में, स्तालिन की मुखाकृति कुछ भिन्न लग रही थी। ऐसा लगता था जैसे किसी आदमी को पहली बार उसके अपने घर में देखा हो।

स्तालिन की पलकें कुछ सिकुड़ी हुई थीं। लगता था, वह दूर की कोई चीज़ देख रहे हैं, जिसे दूसरे अभी नहीं देख पाये हैं। उनके होठों पर हल्की मुस्कान थी। चेहरे पर गम्भीर बुद्धिमत्ता की छाप थी।

अवदोत्या को लगा कि स्तालिन के साथ रहने वाले लोगों का जीवन बहुत अच्छा, शांत, सुखमय और निश्चिंत होता होगा। स्तालिन का एक नया ही परिचय उसे मिला और उसे लगा जैसे वह कह रहे हों:

"ईमानदारी का जीवन बिताओ और मेहनत से काम करो तो सब समस्याएं हल हो जायेंगी!"

आन्द्रेई ने उसके हाथ में प्रमाणपत्र दिया और कहा:

"बस, अब भागो! जितनी तेज़ी से बने भागो! आन्या तुम्हें टिकट खरीद देगी और गाड़ी पर बिठाल देगी!"

अवदोत्या और आन्या स्टेशन पर पहुंची तो गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर आ ही रही थी।

आन्या भागी हुई टिकट घर में गयी। उसने एक मिनट में टिकट लाकर अवदोत्या के हाथ में दे दिया और चलती गाड़ी पर अवदोत्या को चढ़ाया। एक आदमी दरवाज़े में खड़ा था। आन्या ने उसे हुक्म सा दिया:

"देख क्या रहे हो? इसका झोला पकड़ लो। ज़रा मदद करो न!"

गाड़ी धीरे-धीरे चल पड़ी। आन्या दरवाज़े के पास का डंडा पकड़े साथ चलती हुई कह रही थी:

"अच्छा बधाई! खुश रहो! खूब जी लगा कर पढ़ना!"

अवदोत्या के साथ खड़ा आदमी, जिसने आन्या के कहने से अवदोत्या का थैला पकड़ लिया था, बोला: "लड़की भली मालूम पड़ती है, तातारी जान पड़ती है!"

स्टेशन की इमारत पीछे, और दूर पीछे, भागी जा रही थी। लेकिन आन्या अब भी हंसती रूमाल हिलाती हुई गाड़ी के साथ-साथ दौड़ रही थी।

कुछ देर तक उसका हंसता लाल चेहरा दिखाई देता रहा, फिर गायब हो गया।

"चलो, अब आगे देखो!" अवदोत्या ने अपने आप को तसल्ली दी।

उग्रेन के परिचित मकान पीछे की तरफ़ भागते चले जा रहे थे। मालूम होता था बरफ़ से ढंके सिर झुका कर वे सलाम करते जा रहे हों। नीलिमा लिये बरफ़ के सफेद मैदान भी पीछे भागते जा रहे थे और उनकी छाती पर से फिसलती हवा गाड़ी में धंसी आ रही थी। तेज़ ठंडी हवा से अवदोत्या की शॉल के नीचे दबी लटें उड़ रही थीं और उसके कोट का दामन उसकी टांगों पर चोटों पर चोटें कर रहा था। उसके गालों पर ठंडी हवा चुटकियां ले रही थी।

झाड़-झंखाड़ और जंगल बड़ी तेज़ी से दौड़ते हुए सामने आते और उसी तेज़ी से पीछे की ओर दौड़ते हुए आंखों से ओझल हो जाते थे।

झाड़-झंखाड़ अब पीछे छूट गये थे। पटरी को खेतों ने घेर लिया था। गाड़ी जैसे-जैसे आगे बढ़ रही थी, वे फैलते और समतल होते जा रहे थे। तूफानी तेज़ी से आंखों के सामने उपस्थित होने वाले दृश्य पल-पल पर खुलते और फैलते जाते थे। अवदोत्या खिड़की के सामने खड़ी चारों ओर से नये दृश्यों के खुलते विस्तार और फिर इस विस्तार को सिमट कर पीछे भाग जाते देख रही थी।

"देखो, बहन," अवदोत्या का झोला हाथ में लिये समीप खड़े आदमी ने कहा, "वह लड़की तुम्हें मेरे जिम्मे छोड़ गयी है। चलो मेरे डिब्बे में ही बैठना।" अवदोत्या उस आदमी के पीछे हो ली।

गाड़ी में काफ़ी भीड़ थी और गरमी भी। लोगों के लगातार बोलते रहने से जो गूंज होती है, वही डिब्बे में भरी हुई थी। पहियों की निरंतर गड़गड़ाहट की ताल में ऊंचे स्वर से कही हुई कोई-कोई बात ही सुनाई देती थी। अवदोत्या का ध्यान न तो सवारियों की ओर था, न डिब्बे की ओर, और न गाड़ी की ओर। उसे एक अस्पष्ट सी अनुभूति हो रही थी कि कोई बड़ी भारी शक्ति किसी नियम और व्यवस्था में बंधी, हाहाकार करती हुई आगे बढ़ती चली जा रही है।

"भाई ज़रा हटना! एक और सवारी भी है। इसके लिए जगह करना।" अवदोत्या के साथ के आदमी ने कहा।

"जितनी ज़्यादा सवारी आयें, अच्छा है।"

नीली-नीली चिपरी आंखों और लाल चेहरे वाली एक ठिगनी सी बुढ़िया ने एक ओर हट कर अवदोत्या के लिए जगह कर दी।

अवदोत्या बैठ गयी।

"अरे, दरवाज़ा किसने खुला छोड़ दिया?" अवदोत्या के साथ के आदमी ने चिल्लाकर कहा।

अवदोत्या के सामने खड़ा वह निस्संकोच नेत्रों से उसे जांच रहा था। भारी-भरकम शरीर पर चमड़े का काला ओवरकोट पहने और दोनों हाथ जेबों में धंसाये वह पतले रास्ते के बीचोबीच खड़ा था। उसके खड़े होने की मुद्रा से आत्म-विश्वास का भाव टपक रहा था और उसका फूला हुआ चेहरा—चालीस वर्ष के तगड़े-तन्दुरुस्त आदमी का चेहरा—उसके अच्छे स्वभाव का परिचायक था। होठों पर हल्की मुस्कराहट थी। स्पष्ट ही वह यहां काफ़ी आराम महसूस कर रहा था। वह सफर का आदी भी लगता था।

"मालूम होता है दौड़ कर आई हो? क्या शहर जा रही हो?"

"हां..."

सचमुच ही, उग्रेन में दौड़-भाग करने के कारण अवदोत्या की सांस फूल गयी थी और वह अभी तक साधारण अवस्था में नहीं आ पायी थी।

"कोई फ़िक्र नहीं! कोई फ़िक्र नहीं!"

बेंचों के बीच में भरे असबाब को सुविधा से ऐसे लांघ कर जैसे अच्छी समतल भूमि पर चल रहा हो वह खिड़की के पास जा बैठा।

अरुणोदय काल का सिंदूरी सूर्य खिड़की की ऊंचाई के बराबर ही दौड़ रहा था। गाड़ी जब समतल मैदानों से होकर गुज़रती तो सूर्य की चाल धीमी

हो जाती और वह बड़ी सधी गति से आराम-आराम चलता। गाड़ी जब किसी जंगल से होकर गुज़रती तो वह पक्षी की तरह उड़ने लगता और पेड़ों की चोटियों पर सिन्दूर बिखेरता हुआ आगे बढ़ता जाता।

अवदोत्या को रेल पर सफर किये बरसों बीत गये थे। उसे लग रहा था जैसे वह पहली बार सफर कर रही हो। गाड़ी की थिरकन, दबी आवाज़ों की गूंज, गाड़ी के साथ-साथ उड़ता हुआ सूर्य—सभी कुछ उसे नया लग रहा था।

शुरू में अलग-अलग लोगों को पहचानने और उनकी बातचीत समझने में अवदोत्या कठिनाई हो रही थी—सब कुछ किसी भागती चीज़ में घुला-मिला जान पड़ता था। कुछ अरसे बाद ही अलग-अलग लोगों की बातें उसकी समझ में आनी शुरू हुईं। बगल के डिब्बे में दूसरी आवाज़ों से ऊपर किसी की आवाज़ सुनाई दी :

"..पौधे सिर से ऊंचे निकल गये! क्या कहने हैं! अनाज की बालें हाथ-हाथ भर की थीं! कृषि-विशेषज्ञ जो पहले नाक-भौं सिकोड़ रहा था, ओलगा से माफ़ी मांगने आया और बोला"—आगे की बात दूसरी आवाज़ों में डूब गयी। किसी दूसरे की ज़ोरों से, और स्पष्ट आवाज़ सुनाई दी :

"...मैं अभी पेड़ों को काट भी नहीं पाया था कि ज़िला कमिटी का हुक्म आ गया—'ढुलाई शुरू कर दो!'"

एक मोटा-तगड़ा आदमी, अवदोत्या के सामने बैठा उंगलियां नचा-नचा कर बड़े उत्साह से बातें कर रहा था। वह कुछ-कुछ नशे में था।

वह भेड़ की खाल का बिलकुल नया कोरा कोट और पांव में सफेद नमदे के घुटनों तक ऊंचे जूते पहने था। उसके गालों पर जवान लड़कियों के गालों जैसी सुर्खी थी और उसका चेहरा वैसा ही नया, मज़बूत और ताज़ा लग रहा था जैसा उसका कोट और जूता था।

"मुझे कम से कम आठ दलों की ज़रूरत है," वह कह रहा था, "और हैं, मेरे पास सिर्फ़ साढ़े चार!"

"तो बाकी पूरे कर लो!" चमड़े के कोट वाले आदमी ने खिड़की के बाहर नज़र गड़ाये हुए ही कहा।

"और मैं कर क्या रहा हूं?" पहले ने चुनौती सी दी। "अरे भाई अवेर्यान मकारोविच, समझते क्या हो! मैंने अपने यहां स्थाई रूप से काम करने वाले आदमियों के लिए पांच अलगाये हुए झोंपड़े खड़े कर लिए हैं। लोगों के उठने-बैठने के लिए शयनागार जितना बड़ा कमरा बना लिया है। एक क्लब भी बनायी है, अवेर्यान मकारोविच! ऐसी क्लब जैसी ज़िले भर में नहीं होगी।"

एक और आदमी नशे के कारण बहुत ज़ोर से हंस कर बोल रहा था :

"अरे तुम कह रहे हो, बड़ा काम किया? अच्छा! समझो, मुझे सत्तर हज़ार क्यूबिक मीटर लकड़ी भेजनी है। अब क्या हो? नदी उसे बहा ही नहीं सकती। मेरे पास मोटे लट्ठे ही इतने हैं कि पतली थूनियों की गिनती की ज़रूरत नहीं। मैं पूछता हूं, मैं इन्हें कहां बहाऊं।" घुंघराले बालों वाले आदमी ने, जो खुद कुछ-कुछ नशे में था, आश्चर्य से बाहें फैला दीं। उसे देख कर हंसी आती थी।

"लकड़ी का काम करने वाले हैं।" अवदोत्या सोच रही थी। "कितने अच्छे आदमी हैं! कितने समझदार और खुश-मिजाज़ हैं, हालांकि पिये हुए हैं। इसीसे अपने काम के बारे में ज़रा उत्तेजित हो रहे हैं।"

डिब्बे में तीखी ठंडी हवा का झोंका आया। कहीं एक बच्चा ज़ोरों से रो पड़ा!

"अरे, दरवाज़ा बन्द करो, दरवाज़ा!" अवेर्यान की हुंकार सुनाई दी। "कौन है यह?...किसने दरवाज़ा खुला छोड़ दिया? मालूम नहीं कि गाड़ी में बच्चे भी हैं?"

जैसे पानी में कंकड़ी फेंकने से लहरें उठने लगती हैं, वैसे ही डिब्बे में आवाज़ें गूंज उठीं:

"बन्द करो! दरवाज़ा बन्द करो! किसने खुला छोड़ दिया है?"

दरवाज़ा बन्द करके हवा रोक दी गयी। अवेर्यान का क्रोध शांत हो गया। उसकी आंखें फिर खिड़की के बाहर जा पहुंचीं।

"जंगल..." उसके होंठ ऐसे हिलने लगे जैसे सपने में बोल रहा हो। "कितने बढ़िया जंगल हैं। बिलकुल खाकास प्रदेश के जंगलों जैसे। कितना धनी प्रदेश है!...लोग कोयले के लिए परेशान हैं—यहां यह इतना है कि सदियों तक खतम न होगा!"

"खान की बल्लियों का उपयोग यहीं हो सकता है!" गुलाबी चेहरे वाला नौजवान बोल उठा।

"बल्लियां तो मैंने भेजी हैं! अरे मैं रोज़ दो-दो गाड़ी बल्लियां भेजता था। लेकिन उन्हें तसल्ली नहीं हुई। हंसी आती थी..." अवेर्यान मकारोविच गरजा। "पहले एक गाड़ी बल्लियां भेजी गयीं—तसल्ली नहीं हुई। दो गाड़ी भेजीं—फिर भी तसल्ली नहीं हुई। मुझे और मेरे कप्तान को ताव चढ़ आया—हमने तीन गाड़ियां भेज दीं। फिर भी वे तार भेजे बिना नहीं माने: 'एक गाड़ी और भेजो।'"

"मुझे नहीं मालूम था कि खाकास प्रदेश में कोयला भी है।" घुंघराले बालों वाले नौजवान ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा। "मैं समझता था कि यहां वालों का खास काम सिर्फ पशु-पालन है।"

"यहां पशुओं की भी भरमार है। पतझड़ के दिनों में खिड़की से बाहर देखो तो पहाड़ी ढलवानें ऐसी मालूम होती हैं जैसे चादर से ढंकी हों। गोल के गोल जानवर दिखाई पड़ते हैं। एक दिन देखो, गोल खतम नहीं होंगे। दो दिन देखो, गोल खतम नहीं होंगे। तीन दिन देखो, गोल खतम नहीं होंगे। आहा, हा! कितना आनन्द आता है देखते रहने में!" आवेर्यान की पलकें मुंदी जा रहीं थीं। आनन्दातिरेक से उसका सिर हिल रहा था।

अवदोत्या को खाकास प्रदेश की बाबत कुछ भी नहीं मालूम था। बड़े ध्यान से वह लोगों की बातें सुन रही थी। कभी-कभी बातें अधिक परिचित विषयों—जंगलों और खेतों के बारे में—होने लगतीं। तब ऐसा मालूम होता था जैसे किसी सुदूर पर्वत से आती जल-धारा, समतल भूमि पर बहती शांत नदी से मिल रही हो।

अवदोत्या ये बातें बड़े ध्यान से सुन रही थी। ये बातें उसे अपने चारों ओर की प्रबल जीवन-शक्ति की गूंज की तरह जान पड़ रही थीं।

अवदोत्या के साथ बैठी बुढ़िया ने एक गठरी खोली और सूरजमुखी के भुने हुए बीज सबको बांटने लगी। अवदोत्या ने भी एक मुट्ठी बीज लिये। फिर अपने थैले में से परौठियां निकाल कर उसने साथ वालों को एक-एक बांटी। लोग परौठियां खा कर बनाने वाले की सराहना कर रहे थे।

रास्ते में एक छोटे से स्टेशन पर खूब हंसते-बोलते नौजवानों की भीड़ डिब्बे में घुस आई। एक गोरी चिट्टी लड़की लम्बा ओवरकोट पहने एक अजीब से आदमी की बांह थामे थी। लड़की की भूरी आंखों में दृढ़ता और उसके धीमे स्वर में अधिकार की झन्कार थी। आदमी की आंखों पर काला चश्मा था और बायें गाल पर किसी बड़ी चोट का बड़ा सा दाग था। उसका सिर कभी इस कन्धे की तरफ तो कभी उस कन्धे की तरफ लुढ़क-लुढ़क जाता था, उसके होंठ भी विचित्र प्रकार से सिकुड़-सिकुड़ जाते थे। कोशिश करने पर भी उसका सिर स्थिर नहीं हो पाता था, और इस पर उसे क्रोध सा हो रहा था। उसके कन्धे पर अकार्डियन लटका हुआ था। उसने एक शब्द भी नहीं कहा था, पर उसे देख कर ही दूसरे लोग सन्नाटे में आ गये थे। इस ओवरकोट और लुढ़कते सिर वाले आदमी के रूप के डिब्बे के प्रसन्नतापूर्ण वातावरण में युद्ध की सजीव स्मृति आ पहुंची थी। अभी कल की ध्वंसकारी घटना, जिसे लोग इतनी जल्दी भूल गये थे, जिसने सभी के जीवन पर कोई न कोई छाप छोड़ी थी—लेकिन जो इतनी अवास्तविक मालूम होती थी—फिर साकार हो उठी।

उस मनुष्य की उपस्थित ने युद्ध-स्मृति को ताज़ा कर दिया। वह अपने साथ कोई ऐसी चीज़ लाया था जो महत्वपूर्ण थी, चित्त को अस्थिर बना देने वाली थी और जिसे कभी भूला नहीं जा सकता था।

डिब्बे में सहसा छा गयी खामोशी का आभास होने पर उसके होंठों पर एक फीकी, कुछ-कुछ दुख भरी, याचनापूर्ण मुस्कराहट—जैसी बहुधा अन्धों के मुंह पर देखी जाती है—छा गयी।

"इधर! इधर लड़को! यहां बैठो, मिशा! बहुत जगह पड़ी है!" गोरी चिट्टी लड़की ने प्रसन्नता भरे स्वर में कहा। उसने साथ के आदमी को एक सीट पर बैठा दिया। फिर मुसाफिरों की ओर कुछ कड़ी नज़र से देखा, मानो उन्हें आदेश दे रही हो कि बेकार की पूछ-तांछ न करें और कोई ऐसी-वैसी बात न कहें।

नौजवानों की भीड़ जगह पाकर बैठ गयी।

"आप लोग कौन हैं?" बुढ़िया अपनी जिज्ञासा को न रोक सकी।

"यह हम शौकिया लोगों का संगीत समाज है।" गोरी लड़की ने रोब से उत्तर दिया। "बस अगले स्टेशन तक जा रहे हैं। वहां के सामूहिक खेत के किसानों ने हम लोगों को आमंत्रित किया है।"

"आपका नाम अलेक्सेयेव तो नहीं है?" अवेर्यान मकारोविच ने बाजे-वाले को बड़ी आत्मीयता से सम्बोधित किया।

"हां, वही।" लम्बे ओवरकोट वाले आदमी के मुंह पर हल्की सी मुस्कराहट दौड़ गयी।

"वाह! वाह! बड़ी खुशी हुई मिल कर। मेरा नाम अवेर्यान अवेर्यानोव है। मैं लकड़ी चिराई विभाग का प्रमुख हूं। मैंने आपके बारे में बहुत कुछ सुना है।"

बहुत से लोग एक साथ बोल उठे:

"हां, हां, हमने भी बहुत सुना है।"

"तारीफ़ें तो बहुत सुनी हैं, लेकिन गाते कभी नहीं सुना।"

सभी को पता चल गया कि मिखाइल अलेक्सेयेव ज़िले भर में गाने-बजाने के लिए प्रसिद्ध था। लोकप्रिय धुनों पर वह अपने गीत खुद ही बनाता था। बर्लिन की लड़ाई में वह ज़ख्मी हुआ था। गोरी लड़की उसकी पत्नी थी। उनके दो साल का एक बच्चा भी था। इस बच्चे को वे बाहर जाते समय दादी के पास छोड़ आते थे। अब बाजे वाले के लिए लोगों के हृदय में बहुत सहानुभूति थी। वे उसकी पत्नी से भी बड़े आदर और आत्मीयता से बातें कर रहे थे। लगता था यात्रियों की नज़रों में उसका भी सम्मान यकायक बढ़ गया है।

सब लोग अलेक्सेयेव से कुछ गाने का अनुरोध करने लगे। मालूम होता था कि इस अनुरोध से उसे प्रसन्नता ही हुई। उसके चेहरे पर लाली दौड़ गयी, वह खिल उठा और उसने मुड़कर अपनी पत्नी से पूछा:

"क्या गाऊं, लिदिया ?"

"कोई ऐसी चीज़ सुनाओ जो मन में चुभे, जो मन को पकड़ ले !" बुढ़िया बोली।

"अपना नया गीत सुनाओ, मिशा !" लिदिया बोली।

अलेक्सेयेव ने बाजा कंधे से उतारा।

बाजे का तीव्र और स्पष्ट स्वर गाड़ी में भर गया। डिब्बे में सन्नाटा छा गया। दूसरे डिब्बों में बैठे यात्री नज़दीक आ गये और अलेक्सेयेव के पास खड़े हो गये। अलेक्सेयेव की उंगलियां परदों पर तेज़ी से दौड़ पड़ीं और धौंकनी ने भी अपना काम ज़ोरों से शुरू कर दिया। बाजा, पहले तो पीड़ा से कांपा, फिर सहसा अनेकों निर्बंध स्वरों में आल्हादपूर्ण निनाद कर उठा। क्षण भर के लिए, पीड़ा और आल्हाद, इन दो अनुभूतियों में संघर्ष छिड़ गया। फिर, मानो दोनों के बीच संतुलन स्थापित करती हुई, मानव साहस से पूर्ण, एक संयत स्वर-लहरी डिब्बे भर में फैल गयी।

संगीत के इस छोटे से उपक्रम में ही युद्ध की पूरी स्थिति का वर्णन कर दिया गया—दुख की पहली क्रूर अनुभूति, फिर राष्ट्रव्यापी उत्साह, जनता का सेना में भर्ती के लिए उमड़ पड़ना, अंत में सेनाओं के नपे हुए कदमों की धमक ! पूरा दृश्य आंखों के सामने नाच गया। लेकिन अब भी इसमें जीवन की कमी थी, इसमें मानव की भूमिका मौजूद नहीं थी। लोग-बाग इसी भूमिका की कहानी सुनने की बाट जोह रहे थे।

सहसा अलेक्सेयेव ने सिर झटककर मुंह ऊपर उठाया और भारी, परन्तु दर्द भरी, सुरीली आवाज़ में गा उठा :

सच है, मेरा खून बहा है,
पर मत रो, मेरी रानी !
देश और तेरी ही खातिर,
है यह मेरी कुरबानी !

अलेक्सेयेव की आंखें आधी मुंद गयी थीं और उसका सिर हिलना बन्द हो गया था। वर्तमान के सुखमय वातावरण के बीच पिछले दिनों का खौफ़ और भी भयानक लगता था। उसे अलग नहीं किया जा सकता था। वह चारों ओर मंडरा रहा था, यात्रियों से भरे डिब्बे में फैल गया था और मानो इस मनुष्य और उसके गीत में उसने साकार रूप धारण कर लिया था।

अलेक्सेयेव ये कड़ियां गाकर चुप हो गया था। पर बाजा गीत के बोलों को दोहरा रहा था।

चलती गाड़ी और उसमें बैठे लोगों के साथ-साथ बाजे के स्वर भी तेज़ी से बढ़ रहे थे। अवदोत्या को इन स्वरों की विविधता और दृढ़ता ने उसी प्रकार छाप लिया था जैसे शुरू-शुरू में डिब्बे के वातावरण ने।

गाड़ी में सब लोग निश्चल और स्तब्ध थे। एक ही विचार और एक ही भावना सब मस्तिष्कों में समायी हुई थी। दुर्भाग्य का सामना उन्होंने एक होकर किया था और एक होकर वे भयंकर अग्नि-परीक्षा में सम्मान सहित उत्तीर्ण हुए थे। उन सबके विचार एक समान थे। और, विचारों की इस एकता ने उन्हें लोहे से भी ज़्यादा मज़बूत बना दिया था।

बाजा बन्द हो गया था। पर हवा में अब भी उसकी गूंज समायी हुई थी। हर चीज़ एक नये रंग में रंगी जान पड़ती थी। हर कोई महसूस कर रहा था कि डिब्बे में बैठे ये लोग मामूली किसान, पशुपालक या जंगल में लकड़ी काटने वाले ही नहीं हैं, बल्कि एक विचित्र ढांचे में ढले लोग हैं— ऐसे लोग जो किसी भी शत्रु के विरुद्ध कैसी भी लड़ाई में विजय प्राप्त कर सकते हैं और जिन्होंने विजय प्राप्त की है।

बुढ़िया सिसकियां ले रही थी। अवदोत्या ने तो आंखों से बहते आंसुओं को पोंछने की चेष्टा भी नहीं की। डिब्बे में आये वे नौजवान भी, जो पहले इस गीत को सुन चुके थे, स्तब्ध थे।

गाड़ी की रफ्तार धीमी हो गयी।

"हमारा स्टेशन आ गया!" गोरी चिट्टी लड़की ने सबसे पहले मौन भंग किया। "आओ मिशा, दरवाज़े के पास खड़े हो जायें।"

सब लोगों ने अलेक्सेयेव से हाथ मिलाया। सभी ने उसे अपने यहां आने का निमंत्रण दिया।

जब वे लोग गाड़ी से उतर गये तो अवेर्यान मकारोविच ने सिर ऊपर उठाया और गम्भीरता से बोला :

"गज़ब का आदमी है!...दिल हिला देता है।"

"क्या बताऊं, उसे अपने यहां का निमंत्रण देना तो मैं भूल ही गया!" गुलाबी चेहरे वाला नौजवान अपनी भूल पर पछता रहा था। "खैर, चिट्ठी लिखकर बुलायेंगे। अपनी क्लब में छः सौ रूबल मासिक पर उसे रख लेंगे। शौकिया लोगों को सिखायेगा भी और लकड़ी वालों के सामने गाना-बजाना हो जाया करेगा...।"

"अरे, छः सौ रूबल क्या होते हैं?" ऊपर के तख्ते से सफेद चेहरे और लाल गालों वाली एक लड़की नीचे कूदती हुई बोली : "मैं और मेरी सहेली तो महीने में दो-दो हज़ार रूबल कमा लेती हैं। हम लोगों ने

एक महीने तो ढाई-ढाई हज़ार खड़े किये थे। क्यों मारूस्या, दिसम्बर में ही हम लोगों ने ढाई-ढाई हज़ार बनाये थे न?"

"नहीं, जनवरी में!" ऊपर से किसी ने संशोधन किया।

"भाई ज़रा सम्भल कर बातें करो।" घुंघराले बालों वाले जवान ने प्रसन्नता सूचक आश्चर्य से कहा। "यहां हज़ारों बनाने वाले भी बैठे हैं, और हम लोगों को पता ही नहीं था!"

लड़की ने अपना कीमती शॉल ठीक किया, घुटनों तक लम्बे नये जूतों वाले पैर दो एक बार ज़मीन पर पटके, लकड़ी काटने वालों की ओर ढीठता से देखा और गाने लगी :

सीधे खड़े हैं चीड़, री बहना
सीधे खड़े हैं देवदार,
कोई बनेंगे बल्ली, री बहना
कोई बनेंगे पतवार,
हम तो लकड़हारिन, री बहना,
कमायें हज़ार हज़ार!

"कोई भी बता देगा कि ये लड़कियां लकड़ी काटने वाले विभाग में काम करती हैं।" अवदोत्या सोच रही थी। "साफ़-सुथरे कपड़े पहने हैं। उमंग और मस्ती से भरी हैं। स्वच्छंद हैं। घर से दूर, जंगलों में रहती हैं। बहुत से खुश-मिजाज़ लोगों का साथ होता है। मर्दों की तरह काम करती हैं। मनमाना रुपया कमाती हैं। क्यों न इनमें मस्ती और अलहड़पन हो?"

"हज़ारों तो कमा लेती हो, लेकिन तुम्हारे यहां पंचवर्षीय योजना का क्या हाल है?" अवेर्यान मकारोविच ने कुछ सख्ती से पूछा।

"हमें क्या कोई मुफ्त पैसा दे देता है? तुमने हम लोगों को समझ क्या रखा है?" लड़की ने भौंहें चढ़ाकर पूछा। "पंचवर्षीय योजना को तो हमने नकेल से पकड़ रखा है। मालूम है, स्ताखनोवियों के सम्मेलन के लिए हमारे पास खास बुलावा आया था?"

"हां तो यह कहो! अब बात ठीक है।... 'हज़ारों कमाने' की डींग मारना क्या कोई अच्छी बात है?"

"हमारे फ़ार्म की कमिटी ने हमें मास्को भेजने का वायदा किया है। तुमने लूशा सोब्रोलेवा का नाम नहीं सुना? उसे कम्युनिस्ट नवयुवक संघ की केन्द्रीय कमिटी की ओर से बुलाया गया है। हमारे पड़ोस के गांव की छोटी सी लड़की है!"

"सोबोलेवा ? कौन सोबोलेवा ? वही न जो योजना में निश्चित काम से तिगुना कर रही है ?"

"हां, हां, वही। क्यों न करे वह तिगुना काम ? उनके यहां बिजली का आरा है और सब काम मशीनों से होता है। हमारे यहां ऐसा हो जाय तो हम पांच गुना काम करके दिखा दें। ला मारूस्या, थोड़े से लेमन ड्राप दे ! आप लोग भी लीजिए। बड़े मज़ेदार हैं।"

"मेरी बहू को भी कुछ दिन पहले इनाम मिला है। उसने बहुत लम्बे रेशे का सन तैयार किया है।" बुढ़िया बोली। "मैं अभी उससे मिलकर आ रही हूं। कुछ तो मेरा जी उससे मिलने को हो रहा था, कुछ फ़ार्म का काम था—ज्ञान की अदला-बदली !"

"तुम्हारे यहां सन की फसल कैसी हुई है ?" गुलाबी चेहरे वाले नौजवान ने प्रश्न किया।

अवदोत्या की भी इच्छा हो रही थी कि साथ बैठे लोगों को बता दे कि वह भी यों ही सफर नहीं कर रही, बल्कि सरकारी काम से जा रही है। इससे पहले सरकारी काम के लिए कहीं जाने का उसे कोई अवसर नहीं मिला था। उसे अपनी इस यात्रा पर गर्व हो रहा था। उसने अपना प्रमाणपत्र निकाला, उसे खोला और अवसर देखकर बोली :

"मैं भी फ़ार्म के ही काम से जा रही हूं। ज़िला पार्टी कमिटी ने मुझे भेजा है।"

अवेर्यान ने उसके हाथ से कागज़ ले लिया, उसे ध्यान से पढ़ा और फिर प्रशंसा-सूचक ढंग से सिर हिलाया।

"अच्छा ! तो तुम अध्ययन के लिए जा रही हो ? बहुत अच्छा विचार है ! क्या गोशाला में काम करती हो ?"

"हां ! मैं गोशाला की मैनेजर हूं।"

गोशाला, दूध और पशुओं के सम्बंध में प्रश्नों की झड़ी लग गयी। अवदोत्या को जान पड़ रहा था कि वह अधिकारियों के सामने जवाब दे रही है। वह बड़ी सतर्कता से प्रश्नों के उत्तर दे रही थी।

"आदमी जितना भी सीख सके अच्छा है !" अवेर्यान ने कहा। "तुम्हें कोई दो-तीन गायें तो सम्भालनी नहीं कि जैसे-तैसे निभा लिया ! सैकड़ों गायों का सवाल है। बिना गहरी जानकारी के कोई अच्छी तरह काम कर ही नहीं सकता। लेकिन, कोई बात नहीं। इस अध्ययन से तुम्हें खूब मदद मिलेगी।"

"आदमी गम्भीर और समझदार है। पार्टी का आदमी मालूम होता है !" अवदोत्या ने अन्दाज़ लगाया।

गाड़ी हर छोटे-छोटे स्टेशन पर खड़ी होती थी। मुसाफिर लगातार चढ़ और उतर रहे थे। उनका दो-दो, तीन-तीन घंटे का ही साथ होता था। परन्तु व्यवहार से ऐसा नहीं जान पड़ता था कि वे अचानक ही मिल गये हों और एक दूसरे से अलग, "अपनी अपनी" ही, सोच रहे हों। थोड़े समय के लिए ही सही—वे एक संगठित समाज बन गये थे और अवेर्यान मकारोविच को उन्होंने अपना नेता चुन कर अपने विशेष नियम और क़ानून बना लिये थे। इस समाज का नियम था कि सब लोग खाने-पीने की चीज़ों को बांटकर खायें, दूसरे सभी लोगों को अपने बारे में बतायें, दूसरों की ज़िन्दगी में दिलचस्पी लें, और इस बात का ध्यान रखें कि दरवाज़ा बन्द रहे। अवदोत्या इस नये समाज की हर चीज़ को बड़े ध्यान से देख और सुन रही थी। लकड़ी की योजनायें, खाकास का कोयला, ज़ख्मी सिपाही का गीत, लूशा सोब्रोलेवा, जिसे नौजवान कम्युनिस्ट संघ के केन्द्रीय दफ्तर में बुलाया गया था—सब कुछ अवदोत्या को एक व्यापक सामाजिक जीवन का अंग जान पड़ रहा था, उस जीवन का जो उसके चारों ओर लहरें मार रहा था और गाड़ी के इसे डिब्बे में भी भर आया था।

"लोग कितना स्वस्थ जीवन बिताते हैं..." वह सोच रही थी। "कितना सुन्दर है इनका जीवन...और मेरा? मैं अपना जीवन क्यों नहीं व्यवस्थित कर पाती?"

डिब्बे में बैठे यात्रियों को अवदोत्या अलग-अलग—पसन्द या नापसन्द आने वाली—इकाइयों के रूप में नहीं देख रही थी। वह उन्हें एक विशाल और सुसम्बद्ध शक्ति के रूप में देख रही थी। वह उन्हें उस जनता के रूप में देख रही थी जो कल ही, कंधे से कंधा मिलाये, युद्ध की भयानक अग्नि-परीक्षा से विजयी होकर निकली थी और जो आज आश्चर्यजनक एकता और उत्साह से देश के औद्योगिक निर्माण में जुटी थी।

अवदोत्या अपने मन की बातें शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकती थी, लेकिन उसे लग ऐसा ही रहा था और इसीलिए वह सोच रही थी :

"जी चाहता है, इनके सामने अपना मन उड़ेल दूं, अपनी सभी समस्याएं बता दूं। प्यारे दोस्तो, मैं ऐसी-ऐसी परेशानी में फंसी हुई हूं। मैं नहीं जानती, मुझे क्या करना चाहिए! बताओ, मैं क्या करूं? जो कुछ तुम कहोगे, वही मैं करूंगी!"

लेकिन अवदोत्या ने कुछ नहीं कहा। हां, अपने चारों ओर बैठे लोगों की बातें वह और भी ध्यान से सुनने लगी।

गाड़ी की रफ्तार बढ़ती जाती थी, उसकी चाल और तेज़ होती जा रही थी, बातचीत और भी दिलचस्प तथा गम्भीर होती जा रही थी।

अवदोत्या को एक बार फिर लगा कि वह रेल में नहीं बैठी है। उसे लगा कि जीवन की गतिमय धारा ने उसे अपने में लपेट लिया है और अपने साथ बहाये लिये जा रही है।

"लगता है मुझे एक बार और भी ऐसा ही अनुभव हुआ है।" इसी तरह के अनुभव को याद करती हुई वह सोच रही थी। "ठीक याद नहीं आ रहा। बहुत पहले की बात है। शायद कोई सपना ही हो। आ हा! याद आ गया! मैं ग्रूशा मौसी के साथ गयी थी—खारी झील के किनारे!"

तब वह सिर्फ़ सात साल की थी। अपने किन्हीं दूर के रिश्तेदारों के यहां गयी थी। उसे नहलाने के लिए मौसी खारी झील के किनारे ले गयी थी। अवदोत्या के गांव के पास एक छोटा सा नाला भर था, इसलिए उसे तैरना अच्छी तरह नहीं आता था। गहरी और नीली झील को देखकर वह घबरा गयी थी। वह डरी हुई किनारे पर खड़ी थी।

ग्रूशा मौसी, विशाल-काय महिला थीं। चेहरा लम्बा और दयालु था। बड़े से चिकने गोल पत्थर पर बैठी, बालों पर रूमाल कसती, वह कह रही थीं :

"डरती क्या है, बेटी? कूद जा! तैर! डर मत—तू इसमें डूब नहीं सकती। तू चाहे तो भी इसमें डूब नहीं सकती।"

अवदोत्या झील में कूद पड़ी। उसे लगा कि वह पानी में नीचे जा रही है। वह हाथ-पैर फटफटाने वाली ही थी कि सहसा अपने आप ऊपर आ गयी। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसका शरीर हल्का हो गया था और उसके हाथ-पैर अपने आप काम कर रहे थे। झील का गहरा नीला और गाढ़ा पानी उसे जैसे हाथों पर सम्भाले था। झील की सतह पर वह ऐसे पड़ी थी जैसे पालने में झूल रही हो। वह आश्चर्य और प्रसन्नता से हंस रही थी। इसी हंसी के बीच उसने सुना कि ग्रूशा मौसी अपनी मद्धिम आवाज़ में कह रही हैं :

"देखा बेटी! कैसी झील है! इसका पानी गाढ़ा, खारा और गुनगुना है। इसमें कोई डूब नहीं सकता। यह अपने आप ही ऊपर तैरा देता है।" वह दृश्य अवदोत्या की स्मृति में इतना स्पष्ट था, उसकी एक-एक घटना उसे इतनी साफ़ दिखाई दे रही थी कि क्षण भर के लिए उसने आंखें बन्द कर लीं।

गाड़ी में समय गुज़रता जान ही नहीं पड़ा। उसके उतरने का स्टेशन आया तो वह हैरान रह गयी।

"अरे, इतनी जल्दी?"

उसने सबसे विदा ली और सभी से अनुरोध किया कि उसके गांव आयें :

"हमारे ज़िले आओ तो हमारे गांव ज़रूर आना।"

"विदा लेने की ऐसी जल्दी क्या पड़ी है?" अवेर्यान मकारोविच बोला। "हम तुम्हें सामूहिक किसान भवन तक पहुंचा आयेंगे।"

सामूहिक किसान भवन पहुंचने पर शहरियों जैसे फैशनेबल कपड़े पहने एक चुस्त युवक ने अवदोत्या के कागज़ों पर नज़र दौड़ायी और पास खड़ी एक सुन्दर लड़की से कहा :

"यह एक और छात्रा हैं, नाद्या! इन्हें इनके कमरे में पहुंचा दो!"

वह लड़की अवदोत्या को एक अच्छे से कमरे में ले गयी। इस कमरे में दो पलंग बिछे थे; दीवार पर काफी बड़ा आईना लगा था। मेज़ के पास एक अधेड़ महिला बैठी थी। वह बिलकुल लुबावा से मिलती थी। उसका शरीर लुबावा की ही तरह सुगढ़ और चेहरा गम्भीर था। अवदोत्या की ओर देखकर वह मुस्करा दी।

"आओ, आओ! अच्छा हुआ तुम आ गयीं। अब हम दो हो गयीं। अकेले अच्छा नहीं लगता था। मुझे कभी अकेले रहने की आदत नहीं रही। पढ़ाई कल सुबह से शुरू होगी। आज कोई काम नहीं है।"

नाद्या ने पलंग पर लगे तकियों को ठीक किया।

"यह पलंग और यह छोटी मेज़ आपके लिए है। आप आराम से बैठिये। मुंह-हाथ धोना चाहें या चाय पीना चाहें, तो पी सकती हैं।"

अवदोत्या सुन्दर पलंग पर लगे दूधिया सफ़ेद बिस्तर और तकियों को देख रही थी। सोचा, पूछ लूं :

"इनके लिए रोज़ का कितना देना होगा?"

"कुछ भी नहीं!" नाद्या अपनी मुस्कराहट नहीं रोक सकी।

"सामूहिक खेतों से आये विद्यार्थियों से रहने की जगह का किराया नहीं लिया जाता।" अवदोत्या की कमरे वाली सहेली ने कहा। "आओ, तुम्हें गुसलखाना दिखा दूं...।"

हाथ-मुंह धोकर अवदोत्या ने कपड़े बदले और सहेली के साथ बैठकर चाय पीने लगी। कमरे के सामान और सफ़ाई को देखकर उसका मन गुदगुदा उठा। यह विचित्र कमरा यकायक उसका अपना कमरा बन गया था।

चाय पी लेने के बाद सहेली की सलाह पर अवदोत्या पाठ्यक्रम के विषयों को लिखाने और भोजन सम्बंधी कार्ड लेने के लिए चल दी।

पढ़ाई का प्रबंध कृषि-प्रतिष्ठान में था। खूब भारी-भारी खम्भों पर खड़ी ऊंची इमारत! खूब चौड़े-चौड़े जीने! जीना पार कर अवदोत्या अन्दर पहुंची।

लम्बी-लम्बी गुम्बददार गैलरियों में लड़के-लड़कियों की भीड़ थी। यहां उन्हें खूब अच्छा लग रहा था। वे ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रहे थे और हंस रहे थे। यह भी मालूम होता था कि सभी को किसी न किसी बात की जल्दी है।

अवदोत्या को एक बार फिर लगा कि वह रेल में नहीं बैठी है। उसे लगा कि जीवन की गतिमय धारा ने उसे अपने में लपेट लिया है और अपने साथ बहाये लिये जा रही है।

"लगता है मुझे एक बार और भी ऐसा ही अनुभव हुआ है।" इसी तरह के अनुभव को याद करती हुई वह सोच रही थी। "ठीक याद नहीं आ रहा। बहुत पहले की बात है। शायद कोई सपना ही हो। आ हा! याद आ गया! मैं ग्रूशा मौसी के साथ गयी थी—खारी झील के किनारे!"

तब वह सिर्फ़ सात साल की थी। अपने किन्हीं दूर के रिश्तेदारों के यहां गयी थी। उसे नहलाने के लिए मौसी खारी झील के किनारे ले गयी थी। अवदोत्या के गांव के पास एक छोटा सा नाला भर था, इसलिए उसे तैरना अच्छी तरह नहीं आता था। गहरी और नीली झील को देखकर वह घबरा गयी थी। वह डरी हुई किनारे पर खड़ी थी।

ग्रूशा मौसी, विशाल-काय महिला थीं। चेहरा लम्बा और दयालु था। बड़े से चिकने गोल पत्थर पर बैठी, बालों पर रूमाल कसती, वह कह रही थीं :

"डरती क्या है, बेटी? कूद जा! तैर! डर मत—तू इसमें डूब नहीं सकती। तू चाहे तो भी इसमें डूब नहीं सकती।"

अवदोत्या झील में कूद पड़ी। उसे लगा कि वह पानी में नीचे जा रही है। वह हाथ-पैर फटफटाने वाली ही थी कि सहसा अपने आप ऊपर आ गयी। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसका शरीर हलका हो गया था और उसके हाथ-पैर अपने आप काम कर रहे थे। झील का गहरा नीला और गाढ़ा पानी उसे जैसे हाथों पर सम्भाले था। झील की सतह पर वह ऐसे पड़ी थी जैसे पालने में झूल रही हो। वह आश्चर्य और प्रसन्नता से हंस रही थी। इसी हंसी के बीच उसने सुना कि ग्रूशा मौसी अपनी मद्धिम आवाज़ में कह रही हैं :

"देखा बेटी! कैसी झील है! इसका पानी गाढ़ा, खारा और गुनगुना है। इसमें कोई डूब नहीं सकता। यह अपने आप ही ऊपर तैरा देता है।" वह दृश्य अवदोत्या की स्मृति में इतना स्पष्ट था, उसकी एक-एक घटना उसे इतनी साफ़ दिखाई दे रही थी कि क्षण भर के लिए उसने आंखें बन्द कर लीं।

गाड़ी में समय गुज़रता जान ही नहीं पड़ा। उसके उतरने का स्टेशन आया तो वह हैरान रह गयी।

"अरे, इतनी जल्दी?"

उसने सबसे विदा ली और सभी से अनुरोध किया कि उसके गांव आयें :

"हमारे ज़िले आओ तो हमारे गांव ज़रूर आना।"

"विदा लेने की ऐसी जल्दी क्या पड़ी है ?" अवेर्यान मकारोविच बोला। "हम तुम्हें सामूहिक किसान भवन तक पहुंचा आयेंगे।"

सामूहिक किसान भवन पहुंचने पर शहरियों जैसे फैशनेबल कपड़े पहने एक चुस्त युवक ने अवदोत्या के कागज़ों पर नज़र दौड़ायी और पास खड़ी एक सुन्दर लड़की से कहा :

"यह एक और छात्रा हैं, नाद्या ! इन्हें इनके कमरे में पहुंचा दो !"

वह लड़की अवदोत्या को एक अच्छे से कमरे में ले गयी। इस कमरे में दो पलंग बिछे थे; दीवार पर काफी बड़ा आईना लगा था। मेज़ के पास एक अधेड़ महिला बैठी थी। वह बिलकुल लुबावा से मिलती थी। उसका शरीर लुबावा की ही तरह सुगढ़ और चेहरा गम्भीर था। अवदोत्या की ओर देखकर वह मुस्करा दी।

"आओ, आओ ! अच्छा हुआ तुम आ गयीं। अब हम दो हो गयीं। अकेले अच्छा नहीं लगता था। मुझे कभी अकेले रहने की आदत नहीं रही। पढ़ाई कल सुबह से शुरू होगी। आज कोई काम नहीं है।"

नाद्या ने पलंग पर लगे तकियों को ठीक किया।

"यह पलंग और यह छोटी मेज़ आपके लिए है। आप आराम से बैठिये। मुंह-हाथ धोना चाहें या चाय पीना चाहें, तो पी सकती हैं।"

अवदोत्या सुन्दर पलंग पर लगे दूधिया सफ़ेद बिस्तर और तकियों को देख रही थी। सोचा, पूछ लूं :

"इनके लिए रोज़ का कितना देना होगा ?"

"कुछ भी नहीं !" नाद्या अपनी मुस्कराहट नहीं रोक सकी।

"सामूहिक खेतों से आये विद्यार्थियों से रहने की जगह का किराया नहीं लिया जाता।" अवदोत्या की कमरे वाली सहेली ने कहा। "आओ, तुम्हें गुसलखाना दिखा दूं...।"

हाथ-मुंह धोकर अवदोत्या ने कपड़े बदले और सहेली के साथ बैठकर चाय पीने लगी। कमरे के सामान और सफ़ाई को देखकर उसका मन गुदगुदा उठा। यह विचित्र कमरा यकायक उसका अपना कमरा बन गया था।

चाय पी लेने के बाद सहेली की सलाह पर अवदोत्या पाठ्यक्रम के विषयों को लिखाने और भोजन सम्बंधी कार्ड लेने के लिए चल दी।

पढ़ाई का प्रबंध कृषि-प्रतिष्ठान में था। खूब भारी-भारी खम्भों पर खड़ी ऊंची इमारत ! खूब चौड़े-चौड़े जीने ! जीना पार कर अवदोत्या अन्दर पहुंची।

लम्बी-लम्बी गुम्बददार गैलरियों में लड़के-लड़कियों की भीड़ थी। यहां उन्हें खूब अच्छा लग रहा था। वे ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रहे थे और हंस रहे थे। यह भी मालूम होता था कि सभी को किसी न किसी बात की जल्दी है।

कई लम्बी गैलरियों की भूल-भुलैयां पार कर अवदोत्या दफ्तर के सामने पहुंची। दफ्तर के दरवाज़े पर ताला लटका हुआ था। एक स्त्री ने अवदोत्या को बताया कि सेक्रेटरी के आने में अभी आधे घंटे की देर है।

अवदोत्या जिज्ञासावश गैलरी के दोनों ओर बने कमरों को देखती हुई घूमने लगी। वह धीरे-धीरे चल रही थी और खुले हुए कमरों के अन्दर झांक लेती थी। कुछ कमरों में पशुओं के अस्थि-पंजर, कुछ में रंगीन पदार्थों से भरे कांच के अजीब-अजीब बर्तन, कहीं बड़े-बड़े विचित्र नक्शे दिखाई दे रहे थे।

उसे यहां बड़ा अजीब लग रहा था। मालूम होता था कि विचित्र नक्शे और वैज्ञानिक यंत्र उसे आकर्षित करते हैं, उसे झकझोरते हैं और फिर उससे कतराकर निकल जाते हैं।

"निस्संदेह, यह सभी कुछ सीखा-समझा जा सकता है!" वह खिन्न-मन से सोच रही थी। "शायद ये सब लड़के-लड़कियां भी सामूहिक खेतों से ही आये हैं!"

वह भी यहां उतनी ही खुश और निश्चिन्त बनना चाहती थी जितने ये लोग थे।

एक कमरे के दरवाज़े पर लिखा था: "जलपान-गृह"। वह जिज्ञासावश भीतर चली गयी।

"आपको क्या दूं, बहन?" मेज़ के पास खड़ी लड़की ने नम्रता से पूछा।

अवदोत्या से यह नहीं कहते बना कि उसे कुछ नहीं चाहिए था, कि वह सिर्फ़ देखने के लिए चली आई थी! अस्तु, एक प्याला चाय लेकर वह एक कुर्सी पर बैठ गयी। जलपान-गृह खाली ही था। सिर्फ़ एक मेज़ पर तीन आदमी बैठे बातें कर रहे थे।

इनमें से एक दुबला-पतला और लम्बा था। उसकी नाक लम्बी थी, बाज़ की चोंच की तरह, और आंखें काली और उभरी-उभरी सी, जिन पर पतली पलकें गिरती और उठती थीं। उसका सिर किसी ऊंघते, बहुत बड़े पक्षी के सिर जैसा, लग रहा था।

दूसरा आदमी नाटा-सा था। चेहरा गुलाबी-गुलाबी और रंग-ढंग फुर्तीला। तीसरा खूब भारी-भरकम था। उसकी ऊपर को तनी भौहें उसके चेहरे पर प्रसन्नतामय आश्चर्य के भाव को व्यक्त कर रही थीं।

अवदोत्या ने उनकी बातों को ध्यान से सुनना शुरू किया। वे घास के बीजों के बारे में बातें कर रहे थे। अपने फ़ार्म में अवदोत्या घास के बीजों के लिए काफी परेशान रहती थी, इसलिए इस बातचीत में उसकी दिलचस्पी और भी बढ़ गयी।

"नहीं, नहीं, येवगेनी येवगेनीयेविच," नाटे आदमी ने कहा, "माना कि तुम घास उगाने के विशेषज्ञ हो, लेकिन तुम्हारी यह बात ठीक नहीं है।"

पक्षी जैसे चेहरे वाले आदमी ने हलके से पलकें झपकाईं और ऐसे बुद-बुदाकर कहा मानो उसे बोलने में भी कष्ट हो रहा हो :

"कोई भी सैद्धांतिक तर्क जब तक अमल की कसौटी पर न परखा गया हो, तर्क नहीं कहलाता।"

उन लोगों की बातचीत चलती रही। अवदोत्या उनकी बातें सुन रही थी और सोच रही थी :

"बाबा रे बाबा, घास के मामले में देश का सबसे बड़ा विशेषज्ञ! इससे अच्छा और क्या मौक़ा होगा! बीच में बोल पड़ना अच्छा नहीं होगा! लेकिन, यह मौक़ा मैं हाथ से नहीं जाने दे सकती! मैं इनसे पूछूंगी। हां, हां, ज़रूर पूछूंगी। अगर अच्छे आदमी हैं, तो बुरा नहीं मानेंगे; अगर अच्छे नहीं हैं, तो मेरी बला से! कुछ भी सोचा करें मेरे बारे में! तो मैं इनसे पूछती हूं।"

उसने रूमाल निकाल कर होंठ पोछे, मौक़े की ताक में बैठी रही और फिर बीच में बोल उठी :

"माफ़ कीजिए, मैं बीच में बोल पड़ी हूं। हमारे यहां भी यही मुश्किल है। घास के किसी खेत में तो ऐसा बीज पड़ जाता है कि आप ताज्जुब करेंगे, और किसी खेत में पड़ता ही नहीं। बस भूसा-भूसा नज़र आता है! कुछ समझ में ही नहीं आता!"

तीनों चुप होकर अवदोत्या की ओर देखने लगे। उन्होंने देखा—लम्बा गोल चेहरा, उस पर उत्तेजना की सुर्ख़ी, बड़ी-बड़ी नीली आंखें! उसका चेहरा कुमारियों जैसा नहीं मालूम होता था परन्तु अब भी चेहरे पर बचपन की स्पष्ट कोमल रेखायें मौजूद थीं। मालूम होता था कि यह चेहरा भोर के कोहरे के बीच से उदय हुआ है जिसने उसकी रेखाओं को और भी कोमल बना दिया है और उसे नवप्रभात की पवित्रता से रंग दिया है।

किसी सामूहिक खेत की एक साधारण स्त्री के उनकी बातचीत में सहसा कूद पड़ने से पल भर को तो वे अकचका गये थे, परन्तु उन्हें यह समझते देर न लगी कि वाद-विवाद में जितनी दिलचस्ती उन्हें है, उतनी ही उसे भी। वे समझ गये।

अवदोत्या भरोसे से उनकी ओर देखती हुई बड़े आत्म-विश्वास से कहती गयी :

"हम लोग तो इसका कारण खोज नहीं पाये। हमारे ज़िले के कृषि-विशेषज्ञ आये, वे भी कुछ नहीं बता पाये। उन्होंने कहा कि विज्ञान अभी तक इसका कारण ही नहीं खोज पाया है।"

"तुम कहां से आई हो ?" लम्बे आदमी ने पूछा।

"मैं उग्रेन ज़िले से आई हूं। पहली मई सामूहिक खेत से।"

"तुम्हारे यहां शहद की मक्खियां तो पाली जाती होंगी। कभी इन मक्खियों के बक्सों को खेतों में रखकर देखा है ?" मोटे आदमी ने प्रश्न किया।

"हमने शहद की मक्खियों के बक्से भी घास के खेतों में रख कर देखे। हमारे यहां बहुत ज्यादा मधु-मक्खियां नहीं हैं। सिर्फ़ सात छत्ते हैं। फिर, हमारे यहां की मक्खियां बहुत अच्छी नहीं हैं। पिछले कुछ दिनों में मैंने देखा है कि वे फूलों में गहरी नहीं पैठतीं। मक्खी फूल पर आकर बैठती थी तभी से मैं उसे देखने लगती थी। मैं सिर झुका कर नीचे से देखती थी। ऐसे..." अवदोत्या ने अपने हाथ को फूल बना कर सिर नीचे झुकाकर दिखाया कि किस तरह वह फूल पर बैठी मक्खी को "नीचे से" देखती थी।

अवदोत्या की चेष्टा में इतना सरल, स्वाभाविक, भोलापन था और उसकी नीली आंखों में इतनी गम्भीरता और विश्वास था कि उन तीनों के चेहरे पर अनायास ही मुस्कराहट दौड़ गयी।

"अच्छा ? तो आपने क्या देखा ?" मोटे आदमी ने बात आगे बढ़ायी।

"यही कि मक्खियां फूलों में गहरी नहीं पैठतीं !" वह कहती गयी। "भौंरा ज़रूर गहरे जाता है। वह तो सारे फूल को खखोल डालता है।"

"यहीं आजाइये न !" लम्बे आदमी ने उसे आमंत्रित किया।

लम्बे व्यक्ति के चेहरे पर से सुस्ती हट गयी। उसने आंखें खोल दीं। अब उसका चेहरा ऊंघते पक्षी जैसा नहीं लग रहा था। अब उसके चेहरे पर और उभरी हुई पैनी आंखों में जागरूकता का भाव आ गया था।

"मैं परिचय करा दूं। मेरा नाम पेत्रोव है। यह मेरे मित्र प्रोफेसर तोल्सतोव हैं और यह प्रोफेसर लुकिन हैं।"

"आपके दर्शन करके बड़ी प्रसन्नता हुई।" अवदोत्या बोली। "मैं पहली मई सामूहिक खेत में काम करती हूं। वहां की गोशाला की मैनेजर हूं। मेरा नाम बोर्तनिकोवा है।"

अवदोत्या उठ कर उनकी मेज़ के पास चली गयी। उसे इतने बड़े व्यक्तियों से परिचय पाने का गर्व अनुभव हो रहा था। इस बात में उसे कोई संदेह नहीं था कि इस परिचय से उसे बहुत लाभ होगा।

"तुम्हारे घास के खेत किस जगह हैं ? वहां की मिट्टी कैसी है ?" पेत्रोव ने पूछा।

"मिट्टी चिकनी है। हमारे यहां मिट्टी प्रायः चिकनी ही है। घास का एक खेत ढलवान पर है, दूसरा नीचे दलदल के पास।"

"हूं ! तुमने कभी जड़ें देखीं ? तुमने कभी देखने की कोशिश की कि ढलवान के खेत की जड़ें कैसी हैं और दलदल के पास वाले खेत की कैसी ?"

"हां। हमने देखी हैं। यह जानने के लिए कि जड़ें कैसी हैं हमने घास जड़ से उखाड़ी। काफी फरक रहता है।"

"खास फरक क्या होता है ?"

बातचीत और भी दिलचस्प होती जा रही थी।

"देखा, अलेक्ज़ान्डर दानिलोविच," पेत्रोव ने लुकिन से कहा, "मैं कहता था न कि हमारे विज्ञान के लिए एक मात्र उचित मार्ग सामूहिक किसानों से व्यापक सम्पर्क स्थापित करना है। तुम सामूहिक खेत नहीं जाते तो सामूहिक खेत खुद तुम्हारे पास चला आता है। देखो, यह कितनी बातें जानती हैं" —पेत्रोव ने अवदोत्या के हाथ पर अपना हाथ रख कर कहा—"शहद की मक्खी और भौंरों के फ़ूल पर बैठने में क्या फरक है, ढलवान ज़मीन और नीचे की ज़मीन की घास की जड़ों में क्या फरक होता है! इनसे अभी मैंने दस मिनट भी बातचीत नहीं की। लेकिन मुझे विश्वास है कि परीक्षण के लिए इन्हें जो भी काम दिया जायगा उसे यह बहुत अच्छी तरह करेंगी। आपके सामने ही आपकी प्रशंसा कर रहा हूं, इसके लिए क्षमा कीजिए," अवदोत्या की ओर घूम कर उसका हाथ दबाता हुआ वह बोला, "पर मैं सच ही कह रहा हूं!"

कहीं दूर से घन्टी की आवाज़ सुनाई दी।

"मेरे व्याख्यान का समय हो गया है!" पेत्रोव ने कहा। "अच्छा, आपसे फिर मुलाकात होगी। कभी मेरे यहां आइए, आपको कुछ पुस्तकें दूंगा!" पेत्रोव उठ कर चल दिया। लेकिन फिर जैसे कुछ सोच कर अवदोत्या की ओर घूम कर बोला: "क्या आप मेरे व्याख्यान में चलना पसन्द करेंगी ? व्याख्यान पाठ्यक्रम से कुछ अलग विषय पर होगा। समझने में शायद कठिनाई हो, लेकिन मैं कोशिश करूंगा कि आप समझ सकें।"

अवदोत्या आचार्य पेत्रोव के साथ चल दी।

"आज का दिन मेरे लिए बहुत शुभ है," अवदोत्या सोच रही थी, "मेरी सभी आशाएं पूरी हो रही हैं।"

आधे घंटे पहले उसे उन लोगों से ईर्षा हो रही थी जो प्रतिष्ठान के कमरों में बड़ी स्वतंत्रता और निर्भयता से घूम रहे थे। अब वह खुद ही आचार्य पेत्रोव के साथ लेक्चर के कमरे की ओर जा रही थी।

आचार्य पेत्रोव के कमरे में घुसते ही सब विद्यार्थी उठ खड़े हुए और तालियां बजाकर उनका स्वागत किया। आचार्य ने विद्यार्थियों से बैठने का संकेत किया और बोले :

"एक सामूहिक खेत की अतिथि आपके यहां आई हैं। आप इन्हें बैठने के लिए जगह दें।"

अवदोत्या को पहली पंक्ति में ही बैठने की जगह दे दी गयी।

आचार्य पेत्रोव के सहायक बहुत से नक्शे साथ लाये थे। वे इन नक्शों को खोल-खोल कर दीवारों पर लटका रहे थे। अवदोत्या अपने चारों ओर के वातावरण को आत्मसात कर रही थी।

चारों ओर बैठे विद्यार्थियों की उत्सुकतापूर्ण आंखें उस पर लगी थीं।

"उस भूरे बालों वाली लड़की ने चुटिया कैसी गूंथी है? बिलकुल कात्या की तरह! शक्ल भी कुछ-कुछ उससे मिलती है...।" अवदोत्या सोच रही थी। एक दूसरी लड़की को देख कर उसने सोचा: "अरे उस लड़की की आंखें कैसी चमकदार हैं... अल्योशा की आंखों जैसी..." उसे प्रायः हर चेहरे में परिचित सी बातें दिखाई दे रही थीं। शायद इसीलिए उसे यह वातावरण परिचित जान पड़ा। उसे लग रहा था कि वह अपने मित्रों के बीच बैठी है। दूसरों के मुस्कराने पर, वह भी उन्हें देखकर मुस्करा देती थी।

"तुम्हारे पास कागज़-पेंसिल है?" कात्या जैसी चोटी वाली लड़की ने पूछा; फिर दूसरी ओर मुंह करके बोली: "भई किसी लड़की के पास फालतू पेंसिल है?"

कई हाथ कागज़, पेंसिलें और पेंसिल बनाने के चाकू लिए बढ़ आये।

अवदोत्या के आस-पास के लड़के-लड़कियों ने उसके लिए कागज़ और पेंसिलों तथा अच्छी तरह बैठने का प्रबंध कर दिया। पेत्रोव व्याख्यान देने की मेज़ के पास आ खड़े हुए।

"आप ठीक से बैठ गयीं?" उन्होंने अवदोत्या से पूछा।

अवदोत्या ने शर्माते हुए जल्दी सिर हिला कर हामी भरी।

बोलने की तैयारी में आचार्य पेत्रोव ने सिर ऊंचा किया। उनका सिर फिर किसी बड़े पक्षी के सिर जैसा लग रहा था—परन्तु इस बार आंखों में ऊंघ नहीं थी। मालूम होता था, कोई बाज़ उड़ान भरने से पहले सतर्क होकर खड़ा है।

कमरे में सन्नाटा छा गया।

अवदोत्या आचार्य के चेहरे की ओर कौतूहल और विस्मय से देख रही थी। उसे याद आया—१६४१ में युद्ध के मोर्चे पर जानेवाले स्वयंसेवकों की ओर से भाषण देने के लिए जब लुबावा का पति खड़ा हुआ था तो उसके चेहरे पर भी ऐसा ही भाव था। सामूहिक खेत में जब विजय-उत्सव के दिन स्तेपान भाषण देने के लिए खड़ा हुआ था तो उसके चेहरे पर भी ऐसा ही

भाव था। उस समय तो उत्तेजना और दृढ़ता का यह भाव समझ में आता था। परन्तु अब, घास पैदा करने और मामूली जड़ों की समस्या पर बोलने के समय, अवदोत्या को यह भाव बेमौका और विचित्र लग रहा था।

आचार्य बोले : "सोवियत विज्ञान ने आज चौमुखी हमला बोल दिया है। सोवियत के उड़ाके और भौतिक-शास्त्री अंतरिक्ष पर धावा बोल रहे हैं। हमारे समुद्र-शास्त्री समुद्र की गहराइयों को नाप रहे हैं। सोवियत वैज्ञानिक अणु-न्यष्टि को पकड़ रहे हैं। सोवियत मिच्यूरिनवादी जीवमय कोषों के प्रसस को नियंत्रित कर रहे हैं। और हम, सोवियत किसान भी, अपने खेतों पर लगातार आक्रमण कर रहे हैं; हम भी स्तालिन पंच-वर्षीय योजना के अनुसार टनों आनाज पैदा करने के संघर्ष में जुटे हैं।"

आचार्य के शब्द—"हम सोवियत किसान"—अवदोत्या को बहुत अच्छे लगे। इन शब्दों से ही आचार्य ने सामूहिक खेतों के विद्यार्थियों के साथ अपना नाता जोड़ लिया। "हम सोवियत किसान!..." अवदोत्या ने मन ही मन दोहराया।

आचार्य काली और साधारण मिट्टी के बारे में बता रहे थे।

"यह देखो!" दीवार पर लटके हुए एक नक्शे पर बने बड़े-बड़े भूरे धब्बों की ओर छड़ी से संकेत करके आचार्य ने कहा। "इन स्थानों की मिट्टी काली नहीं है। ये वे जगहें हैं जहां पहले फ़ी हेक्टर आधे टन से अधिक आनाज पैदा नहीं हो सकता था। इन जगहों की ज़मीन रेतीली और शाद्वल ढेलुवा ज़मीन है।"

आचार्य ने अवदोत्या की ओर देखा और संक्षेप में समझाया : "जिन ज़मीनों में आम्ल और अनाज की उत्पत्ति के लिए आवश्यक तत्वों की कमी होती है, उन्हें हम इन्हीं नामों से पुकारते हैं।"

अवदोत्या ने तुरंत सिर हिलाकर बताया कि वह समझ गयी है। आचार्य ने आगे कहना शुरू किया :

"ऐसी जगहें सदियों से बंजर और जैसी-की-तैसी पड़ी थीं। उन पर आक्रमण करके हम न केवल लाखों हेक्टर ज़मीन को जीत रहे हैं—बल्कि हम समय पर भी हमला बोल रहे हैं। अपने भविष्य के हित में हम अतीत पर हमला बोल रहे हैं। इस आक्रमण में हमारे पास न तो तोपें हैं, न बन्दूकें हैं, और न वायुयान हैं!... हमारे हथियार ये हैं," आचार्य ने छड़ी से एक दूसरे नक्शे पर बनी हुई कई प्रकार की घनी और परिचित घासों की ओर संकेत किया, "ये जल्दी पकने वाली घासें हैं जो प्रायः हमारे इलाक़े में पायी जाती हैं। दूसरी घासों की अपेक्षा इन घासों के अनुपत्र छोटे होते हैं और इसमें पांच से सात तक पर्व होते हैं।..."

आचार्य ने फिर अवदोत्या की ओर देखा और 'अनुपत्र' तथा 'पर्व' का मतलब संक्षेप में समझा दिया।

डेढ़ घन्टे के व्याख्यान में जब भी कोई अपरिचित शब्द आ जाता, वह अवदोत्या के लिए उसकी संक्षिप्त व्याख्या करना न भूलते। अवदोत्या को शुरू में यह डर था कि वह कुछ भी नहीं समझ सकेगी। पर, उसकी प्रसन्नता और उत्साह का अन्त न रहा जब उसने देखा कि वह सभी कुछ समझ लेती है। अवदोत्या ने केवल व्याख्यान को ही अच्छी तरह नहीं समझा था; उसने यह भी समझ लिया था कि देश की आर्थिक व्यवस्था में अच्छी घास पैदा करने का क्या महत्व है। वह यह भी समझ गयी कि घास के बारे में बताते समय आचार्य के चेहरे पर दिखाई देनेवाली उत्तेजना का कारण क्या था!

अवदोत्या व्याख्यान से लौटी तो उसके मस्तिष्क में तरह-तरह के विचार उमड़ रहे थे।

उसके कमरे की सहेली बिस्तर पर लेट चुकी थी। अवदोत्या ने देखा कि उसके अपने बिस्तर के सिरहाने कापियों का एक पुलिंदा और पेंसिलों से भरा एक डिब्बा रखा हुआ है।

"ये किसकी हैं?" उसने पूछा।

"तुम्हारी। एक आदमी आया था। तुम्हें पूछ रहा था। ये कापियां दे गया है। व्याख्यान और समय की सूची भी दे गया है।"

अवदोत्या ने मुस्कराते हुए कापियां उठा लीं। पतली-पतली कापियों पर नीली-नीली जिल्दें चढ़ी हुई थीं। सिर्फ़ एक मोटी कापी पर कपड़े की काली जिल्द थी। अवदोत्या कापियों के पन्ने देखती हुई सोच रही थी:

"यह कापी खास-खास बातें लिखने के लिए होगी...। जो बातें सबसे महत्वपूर्ण होंगी, उन्हें इसी में लिखूंगी...। इसे कात्या के लिए रख लूं? उसके पास ऐसी कापियां कभी रही ही नहीं हैं। नहीं-नहीं! इसमें मैं फ़ार्म के लिए सबसे उपयोगी बातें लिखूंगी।" अवदोत्या मेज़ के पास जाकर बैठ गयी और संवार-संवार कर बड़े-बड़े हरफ़ों में कापी पर लिखा: "हमारे फ़ार्म के लिए महत्व की बातें।"

कुछ देर तक अवदोत्या आचार्य के व्याख्यान की बातें मन ही मन दोहराती रही। फिर उसने कापी में धीरे-धीरे लिखा:

"१—घास के खेतों में चूना डालो।

२—खेतों में शहद की मक्खियों का उपयोग करो।"

वह फिर कुछ सोचने लगी। व्याख्यान के समय उसने जो बातें नोट की थीं उन्हें एक बार फिर पढ़ा और अपनी सुन्दर नयी कापी में विशेष उपयोग की बातें लिखने लगी।

लिख चुकने के बाद उसने बिजली बुझायी और बिस्तर पर लेट गयी। नयी चादरों के बीच उसने खूब अच्छी तरह अपने हाथ-पैर फैला लिये। सड़क पर लगे खम्भों पर बिजली की सजावटदार बत्तियों और आती-जाती ट्रामों और मोटरों का प्रकाश खिड़की से दिखाई दे रहा था।

मोटरों का प्रकाश खिड़की की राह आकर दीवार पर चतुष्कोण बनाता था। ये चतुष्कोण कमरे के कोनों में पहुँचते, फैलते और लम्बे हो जाते। फिर क्षण भर को सिकुड़ते और दीवार को लांघ कर लोप हो जाते। बड़े नगर का व्यस्त जीवन, जिससे उसे अब प्यार हो गया था, खिड़की के बाहर बड़ी चौकसी से पहरेदारी कर रहा था।

थकावट, उत्तेजना और लम्बे सफ़र के कारण अवदोत्या का सिर चकरा रहा था। उसे एक विचित्र प्रकार के सुख की अनुभूति हो रही थी। मालूम होता था कि शहर उसे पालने में झुला कर सुला रहा है। अवदोत्या को लग रहा था कि जब से उक्रेन में आन्द्रेई मिला था तब से अब तक एक के बाद दूसरे ममता भरे हाथों में उसे सौंपा गया है।

पहले ये हाथ आन्द्रेई के थे। फिर आन्या के। फिर गाड़ी के डिब्बे में उमड़ते जीवन की तेज़ धारा के बीच अवेर्यान मकारोविच के हाथों ने उसे अपने संरक्षण में ले लिया था। फिर नाद्या और कमरे की सहेली ने उसे अपने नियंत्रण में रखा। और सबसे अन्त में... पेत्रोव ने। न जाने किन अदृश्य हाथों ने बड़ी ममता से यह कमरा और स्वच्छ बिस्तर भी उसके लिए सजाकर तैयार किया था। कोई व्यक्ति कापियों का बंडल और पेंसिलों का डिब्बा भी उसके बिस्तर के सिराहने, छोटी सी मेज़ पर, रख गया था।

सभी कुछ बड़ा सुखमय और रहस्यपूर्ण था। उसके मस्तिष्क में यह एक ही शब्द में घुला-मिला था; यह शब्द था—नगर।

"कितना सुव्यवस्थित है यह जीवन ! कितना अच्छा !" अवदोत्या सोच रही थी। "सिर्फ घर में ही सब कुछ गड़बड़ है।...ख़ैर, सब ठीक हो जायेगा ! मैं बाहर निकल कर काम में भाग लेने लगूं... बस फिर सब ठीक हो जायेगा ..!"

उसे कुछ-कुछ नींद आने लगी थी। उसने आंखें बन्द कर लीं। स्वप्निल अवस्था में उसे यूशा मौसी का दयालु चेहरा दिखाई दिया। उसे लगा, बड़े कोमल स्वर में वह धीरे-धीरे कह रही थीं :

"यह खारा पानी है बेटी...गरम-गरम ! इसमें कोई डूब नहीं सकता ! यह अपने आप ऊपर उठा देगा।..."

⊛

दूसरा भाग

१. "हमारे फ़ार्म के लिए महत्त्व की बातें!"

अवदोत्या को गांव पहुंचते-पहुंचते शाम हो आई थी। दिन में सड़क की बरफ़ कुछ-कुछ पिघली थी। पर इस मार्च महीने की पिछली रात पाला पड़ने से बरफ फिर जमकर कड़ी हो गयी थी। चढ़ाई पर चढ़ते समय क्षण भर को मोटर अवदोत्या के उस घर के बिलकुल पास रुकी जिसमें उसने न जाने कितने वर्ष बिताये थे। अवदोत्या की आंखें कानस की नीली नक्काशी और ऊंची ड्योढ़ी पर जमी हुई थीं। इस ड्योढ़ी को सुबह धोकर चमका देना अवदोत्या का दैनिक प्रिय कार्य था।

"शायद वास्या घर में ही हो!...शायद खिड़की से बाहर देख रहा हो...! मोटर से कूद जाऊं। दौड़ी जाकर पुकारूं—वास्या!"

मोटर चढ़ाई पर चढ़ने लगी। अवदोत्या ने मन की उमंग को दबा लिया। उसने घर की ओर से आंखें फेर लीं और सिर को दूसरी ओर घुमा लिया। मोटर वासिलिसा के मकान के सामने रुकी। कौन कल्पना कर सकता था कि सड़क से बागीचे के बर्फ़ जमे रास्ते पर होकर उस अपरिचित घर की ड्योढ़ी तक कुछ क़दम चलना और दरवाज़े के अपरिचित कुंडे पर हाथ रखना इतना कठिन होगा?

"दरवाज़े को धक्का दो! अन्दर चलो! पीछे मुड़ कर मत देखो! मैं झिझक क्यों रही हूं? मैं किस सोच में पड़ी हूं?"

फ़ैसला तो अवदोत्या के नगर जाने से पहले ही हो गया था, परन्तु इस फ़ैसले को निर्णयात्मक रूप देने का समय अब आया था।

अवदोत्या पल भर ड्योढ़ी में ठिठकी। फिर, कोहरे से भरी हवा में एक गहरी सांस ली और किवाड़ों को धकेल कर भीतर चली गयी।

"दादी वासिलिसा ! मैं आ गयी !"

वालेंतिना और दादी वासिलिसा ने शुरू से ही इस बात का प्रयत्न किया कि अवदोत्या इस घर को अपना ही घर समझे। पूरे मकान का लगभग आधा भाग उन्होंने उसके लिए छोड़ दिया था। एक कोने में कात्या का "पायनियर कक्ष" था जहां बहुत से चित्र और उसके स्कूल का टाइम-टेबिल टंगा था। दुन्या के "खिलौनों की मेज़", अवदोत्याके बिस्तर पर साफ गिलाफ़ों में तकिये, चौके में कपड़े बदलने की जगह कढ़ा हुआ पर्दा—सभी कुछ व्यवस्थित, आरामदेह और भला लग रहा था।

अवदोत्या ने बच्चों को गोद में लेकर प्यार किया। मन ही मन वह सोच रही थी: "हम लोग तो यहां चैन से और मौज से हैं! लेकिन वास्या का क्या हाल होगा? ये लोग वे पर्दे क्यों उतार लाये जिन पर मुर्गे कढ़े थे? खिड़कियां नंगी रह गयी होंगी...!"

उसे रुलाई आ रही थी।

वालेंतिना उसकी मानसिक स्थिति भांप गयी। अब उसने ज्यादा प्रसन्नता प्रकट करने और ज्यादा बातें करने की ठानी।

"ओहो! अवदोत्या! कितनी किताबें लायी है! तू तो पूरा पुस्तकालय उठा लायी है। इतनी कापियां? व्याख्यान के नोट हैं ये! बहुत खूब। अब तो हमारी गोशाला में भी रंगत आ जायगी!" वह कहती गयी। "मैंने सोचा, तू आने वाली होगी! हमने ढेरों परौंठे बना रखे हैं!... दादी! लेना! बच्चियो! चलो, सब खाने के लिए मेज़ पर बैठो! अवदोत्या, बताओ न, क्या-क्या देखा वहां? क्या लायी हो शहर से...?"

उपहार की सभी चीज़ें बांट दी गयीं। उत्तेजना कुछ कम हुई तो वालेंतिना ने पूछा:

"तुम्हारी क्या योजना है? काम कैसे शुरू करोगी?"

अवदोत्या ने फिर कमरे में एक नज़र दौड़ायी। दीवार पर लटकी घंटेवाली पुरानी घड़ी, कोने में रखी किताबों से भरी आलमारी, लैम्प पर लगा झालरदार शेड—सभी चीजें नयी और अपरिचित थीं, परायी सी। पहले उनकी ओर उसने ध्यान ही नहीं दिया था। अब हर चीज़ को देखकर उसका दिल दुख रहा था। अच्छा हो, उनकी तरफ़ देखा ही न जाय। अच्छा हो, उनके बारे में सोचा ही न जाय। कुछ क्षण अवदोत्या सिर झुकाये नीचे देखती रही, फिर उठ खड़ी हुई और कपड़े की काली जिल्द वाली कापी निकाल लायी।

"यह देखो, वाल्या! मेरी ज़िन्दगी की शुरूआत।"

"हमारे फ़ार्म के लिए महत्व की बातें!" वालेंतिना ने कापी पर संवार कर लिखे अक्षरों को पढ़ा। नीचे स्याही से बहुत महीन अक्षरों में—जैसे कोई बहुत निजी बात हो—लिखा था :

"अपनी संभावनाओं को देखो, अपनी संभावनाओं में विश्वास रखो, अपनी असीम संभावनाओं का उचित उपयोग करो!"

अवदोत्या का चेहरा संकोच से लाल हो गया था, मानो किसी ने उसकी बहुत प्रिय और गोपनीय बात जान ली हो।

"ये आचार्य पेत्रोव के शब्द हैं...! मैंने उनकी पुस्तक से नकल कर लिये थे!"

वालेंतिना उसकी ओर फटी-फटी आंखों देखती रह गयी। "इसमें शर्माने की क्या बात है...? इसने इन्हें क्यों इतनी मेहनत से नकल किया? इन शब्दों में इसने कौन सा नया अर्थ पाया है?"

अवदोत्या के उदास चेहरे पर—झुर्रियों के महीन जाले के बावजूद—तरुणाई की चमक थी। तरुणाई की यह आभा उसकी नीली-नीली, विश्वास भरी, कोमल और सजीव आंखों से प्रकट हो रही थी। उसके छोटे-छोटे होंठ दृढ़ता से सटे हुए थे। उसके रूखे हाथ बड़े आत्म-विश्वास से कापी के पन्ने पलट रहे थे। कापी के वाक्य उतने ही संक्षिप्त और दुरूह थे जितने क़ानून की किसी धारा के वाक्य होते हैं।

"अरे, मैं तो इसे अब तक समझ ही नहीं पायी थी!" वालेंतिना प्रसन्नता भरे विस्मय से सोच रही थी। मालूम होता था कि उसने किसी छोटी सी नदी में झांका है और सहसा उसकी रोमांचकारी गहराइयों को देख कर चकित रह गयी है।

"मैंने ऐसी योजना बनायी है कि पशुओं को साल भर हरा चारा मिलता रहे," अवदोत्या अपने को संयत करती हुई बोली, "फसल की अदला-बदली की योजना के नक्शे तुम्हारे पास हैं?"

बड़े-बड़े नक्शों के लिए मेज़ पर मुश्किल से ही जगह थी। कमरे में सन्नाटा था। सोने के कमरे में बच्चियां अपने नये खिलौनों से खेल रही थीं। प्रास्कोव्या और वासिलिसा बुनाई की सलाइयां दौड़ाने में होड़ लगाये थीं। पर्दे के पीछे बैठी लेना स्कूल के बच्चों की कापियां जांच रही थी; बार-बार पन्नों के पलटने की आवाज़ आ रही थी।

सन्नाटे में अवदोत्या और वालेंतिना के छिट-पुट वाक्य बीच-बीच में सुनाई पड़ रहे थे।

"पानी के पास वाली चरान की कम से कम तीस हेक्टर ज़मीन में घास बोयी जानी चाहिए। खेत नं. ५ में जौ और ज्वार का बेरड़ा बोना चाहिए।"

सहसा प्रास्कोव्या ने एक आह भरी और सलाइयां नीचे पटक कमरे से बाहर चली गयी।

अवदोत्या और वालेंतिना की बातचीत रुक गयी।

"बेटी अवदोत्या! एक बार फिर सोच कर देख!" वासिलिसा ने साहस बटोर कर कहा।

अवदोत्या ने कागज़ों पर से आंखें नहीं हटायीं। उसकी आंखों के आगे हरे, नीले और भूरे चतुष्कोण नाच रहे थे।

"मैं नहीं रह सकती उसके साथ! बार-बार बात उठाने से क्या फायदा? एक बार फ़ैसला कर लिया, तो कर लिया!"

"इनकी जगह मैं होती, तो मैं भी न रह सकती," वालेंतिना ने धीरे से कहा, "वह सिर्फ़ रिश्तेदार, भाई या पड़ोसी तो है नहीं। वह इनका पति है...! ऐसे आदमी के साथ कैसे रहा जा सकता है जिससे मन न बैठता हो, जिससे लगाव न रह गया हो?"

अवदोत्या ने एक नक्शे के मुड़े हुए कोने को सीधा किया, आंसुओं से डबडबाती आंखें ऊपर उठायीं और बड़े शांत स्वर में बोली :

"हां, वाल्या! मैं तुमसे पानी के पास वाली चरान के बारे में कह रही थी। उसके बारे में ज़िला केन्द्र से सब तै कर लिया है। वे उसे अपनी मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन योजना में भी शामिल करनेवाले हैं। यह पहली महत्वपूर्ण बात है। दूसरा बड़ा काम यह है कि जहां चारा रांधा जाता है, वहां बिजली लगनी चाहिए। चारा काटने और धोनेवाली मशीन को खली पीसनेवाली चक्की के साथ एक पट्टे से जोड़ देंगे। बस इसके लिए ज़रूरत सिर्फ़ यह होगी कि कई किलोवाट की ताक़त का इंजन मंगवा लिया जाय!"

दादी वासिलिसा बुनाई भूल अवदोत्या के बारे में सोचती रह गयी।

उसने अपनी सारी उम्र शराबी पति के साथ गुजारी थी। उसे कभी खयाल ही नहीं आया था कि उसे छोड़ कर वह अलग हो सकती थी। अवदोत्या का ढंग उसकी समझ में नहीं आ रहा था। उसका वासिली से अलग हो जाना उसे बड़ी बदनामी की बात लग रही थी। "मैंने अपने आदमी के हाथों इससे कहीं ज्यादा सहा है," दादी सोच रही थी। लेकिन उसके भले स्वभाव ने उसके मुंह पर ताला जड़ रखा था और उसने कभी शिकवा-शिकायत नहीं की थी। पर अब, जब वह अवदोत्या को सामूहिक खेत की दर्जनों हेक्टर धरती का हिसाब करते, बिजली के इंजन और किलोवाटों जैसी रहस्यमय चीज़ों के बारे में इतनी चतुराई से बातें करते सुन रही थी, तो उसने खुद ही महसूस किया कि वह सब बरदाश्त नहीं कर सकती—उसे बरदाश्त नहीं

करना चाहिए—जो उसने बरदाश्त किया था। यह समझने में तर्क से अधिक अनुभूति ने उसकी सहायता की। "मैं ही इसकी जगह होती, तो यह सब बरदाश्त करती? नहीं, लूका मिरोनोविच! कभी नहीं!" दादी को कभी अपने पति से प्यार नहीं रहा था। उसे मरे तीस वर्ष हो गये थे। परन्तु दादी मन ही मन उसे प्रताड़णा दिये जा रही थी: "अब ज़माना और है! अब तुम्हारी वैसी नहीं चल सकती। मैं भी अकड़ कर ऐसे चल देती—जैसे यह चल दी। तुम्हें पता भी न चलता कि मैं कब चली गयी। मुझे क्या परवाह थी! भेड़ों के बाड़े की निगरानी मेरे हाथ में है। सब लोग मेरी इज्जत करते हैं। मैं अपने मन की मालिक हूं! या तो मेरे साथ भले आदमी की तरह रहो, जैसा अच्छे घरों में होता है, नहीं तो अपना रास्ता नापो'! मैं अपने घर में भली-चंगी!"

सोचते-सोचते दादी की सहानुभूति अवदोत्या के प्रति इतनी बढ़ गयी थी और अपने पति पर मन ही मन उसे इतना क्रोध आ रहा था कि लूका मिरोनोविच अगर कब्र से निकल कर वासिलिसा के जीवन-चक्र को फिर उल्टा घुमाने के लिए कमर कस लेता तो कोई ताज्जुब की बात न थी।

गोशाला के परिचित मकान, बाड़े और रास्ते अवदोत्या को नये लग रहे थे। गोशाला में जो नये सुधार अवदोत्या करना चाहती थी, उन्हें वह इतने लम्बे अरसे से और इतने ब्योरे से सोचती आ रही थी, उन्हें कल्पना में इतने स्पष्ट और ठोस रूप से देखती आ रही थी, कि सामने खड़ी हुई चीज़ों और भविष्य की योजनाओं में उसे कोई अंतर नहीं जान पड़ता था। वह दोनों को एक साथ देख रही थी—जो वहां था उसे भी, जो वहां होगा उसे भी। सड़क के किनारे तक चले आये ऊंची-ऊंची घास के खेतों और अनेक टुकड़ों में बंटी हुई चरानों की सुनहरी हरियाली दूर दलदलोंवाली भूमि पर दिखाई दे रही थी। पशुओं के लिए चारा रांधने की जगह से उसे इंजनों की गूंज आती सुनाई दे रही थी। पहाड़ी के नीचे बछड़ों के लिए एक अलग नया मकान दिखाई दे रहा था। यह सब उसे इतना निश्चित और निकट दिखाई दे रहा था, मानो वास्तव में हो गया हो। वह अपनी योजनाओं को अपने भीतर ऐसे लिये फिरती थी जैसे कोई महान आन्तरिक बल और प्रसन्नता के स्रोत को लिये फिरता है। उसे बड़ा विचित्र लगता था कि जो कुछ वह देख रही है, उसे दूसरे नहीं देख पा रहे हैं और उसकी बातों को सुन कर उसकी ओर ताज्जुब की निगाहों से देखते रह जाते हैं।

कभी अवदोत्या मन ही मन कल्पना करने लगती कि वह लोगों को रोटी बांट रही है—ताज़ी, गरम, महकती हुई रोटी बांट रही है—और लोग उसकी

इस सच्ची भेंट, इस सच्ची प्रसन्नता को समझ नहीं पा रहे हैं और विस्मय तथा सन्देह से उसकी ओर देखते रह जाते हैं।

एक शाम को उसे गोशाला में देर हो गयी। पशुओं की नस्ल में सुधार करने और नये सांड मंगवाने के बारे में वह कुछ लोगों से बातों में उलझी हुई थी। बातचीत के उत्साह में वह ऐसी खो गयी थी कि उसे दूसरों का ध्यान ही नहीं रहा था। उसकी निगाह क्सेनोफोन्तोवना पर पड़ी तो देखा कि बुढ़िया जमुहाई लेती हुई बार-बार दीवार पर टंगी घड़ी की ओर देख रही है, बछड़ों की देख-भाल करनेवाली लड़की दुस्या खिड़की से बाहर किसी से ताक-झांक कर रही है और मानवेयेविच किसी सोच में डूबा हुआ दूर देख रहा है।

"बातें तो बहुत अच्छी हैं..." वासिलिसा ने अवदोत्या का मन रखने के लिए कहा, "पर मुझसे पूछो तो यह सब हमारे यहां नहीं हो सकता...!"

"पर मैं तो यहां की ही बात कर रही हूं, अपने ही लोगों के बारे में!" अवदोत्या बोली। "क्या तुम्हें मेरी बातों पर विश्वास नहीं होता?" उसकी आवाज़ भर्रा गयी। इन लोगों के न समझ सकने और खुद उन्हें समझा न पाने पर अवदोत्या को खीझ उठ रही थी।

उसे फ़रवरी मीटिंग के पहले ज़िला कमिटी के मंत्री से अपनी बातचीत याद हो आई। उस समय मंत्री की आवाज़ में पीड़ा थी। उस पीड़ा को आज वह कितनी अच्छी तरह समझ रही थी। कितना अच्छा होता कि इस समय वह यहां होते!

"अंधों की तरह हम लोग सोने को रौंदते चले जा रहे हैं..." अनायास ज़िला मंत्री के ये शब्द उसके मुंह से निकल पड़े। "तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊं कि साल दो साल बाद हम लोग अपने को पहचान भी नहीं सकेंगे। ख़ैर, मैं तुम्हें दिखा दूंगी। मैं तुम्हें दिन-प्रति-दिन के अनुभव से दिखा दूंगी। ठहरो, मैं एक गाय चुने लेती हूं। तुम देखना कि वैज्ञानिक उपायों से उसमें कितना परिवर्तन हो जाता है।"

अपनी इस असफल वार्ता के बाद अवदोत्या गायों के बाड़े में पहुंची। लाल और चितकबरी गायें—जिनसे वह इतनी अच्छी तरह परिचित थी—अपने-अपने थानों पर खड़ी थीं।

अवदोत्या उन्हें ध्यान से ऐसे देख रही थी, जैसे पहली बार देखा हो। नहीं, ये महज़ गायें नहीं थीं। इनमें से हरेक गाय गुप्त खज़ाने की रहस्यमय पिटारी थी। इस खज़ाने की कुंजी कहां है? प्रदर्शन के लिए वह किस गाय को चुने? तारा को? नहीं, तारा बहुत बड़ी है, भारी-भरकम है; सिर भी बहुत

बड़ा है। गाय अच्छी है, लेकिन उस पर जल्दी कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। ललिया को? ललिया कुछ-कुछ बुढ़ा गयी है! तो फिर, चमेली को?

अवदोत्या ने चमेली को ध्यान से देखा। "कद कुछ छोटा है, लेकिन है मज़बूत। सिर छोटा है, दुबली है, पर काठी मज़बूत है। पीछे के पैरों की गठन भी अच्छी है। चमड़ी कैसी चिकनी और चमकदार है, बदन से बिलकुल चिपकी हुई!" अवदोत्या को याद आया कि पिछले सालों में कई बार उसका दूध खूब बढ़ गया था, पर फिर उतर गया था।

अब उसके सामने दूसरा ज़रूरी काम था एक अच्छी ग्वालिन चुनना। अवदोत्या को याद आया कि क्सेन्या बोल्शाकोवा उसकी बातों को बहुत ध्यान से सुनती थी। शायद वही एक लड़की थी जो अवदोत्या के मस्तिष्क को आन्दोलित करनेवाले विचारों को समझती थी। क्सेन्या ने मानो कहीं दूर से ही अवदोत्या के मन की आवाज़ सुन ली थी। दुन्या और कात्या को साथ लिए वह गोशाला के दरवाज़े पर आ खड़ी हुई।

"अम्मा, अम्मा! हम तुम्हें ढूंढ़ रही थीं।"

बच्चियां दौड़ कर मां से लिपट गयीं। अवदोत्या ने उनकी ओर देखे बिना ही उन्हें बाहों में ले लिया और क्सेन्या से बोली:

"देख, मैंने चमेली को परीक्षण के लिए चुना है। अभी तो वह मामूली दूध दे रही है, लेकिन इसका बाह्य भाग अच्छा है।" 'बाह्य भाग' शब्दों को उसने दो-तीन बार ज़बान पर उलटा-पलटा—इन शब्दों का ज़ायका अभी तक उसके मुंह में ताज़ा था। "मैं इसे तेरे ज़िम्मे सौंपती हूं...। फिर सब लोग देख लेंगे। इसे मिसाल के बतौर सबके सामने पेश करना है। समझती है न, क्सेन्या? तू अभी छोटी है, फ़ार्म में सबसे छोटी लड़की है। फिर भी मैंने तुझे चुना है। मैं तुझ पर भरोसा कर सकती हूं।"

क्सेन्या को ऐसा लग रहा था जैसे उसे किसी बहुत रोमांचकारी और खतरनाक मुहीम पर भेजा जा रहा हो।

"मौसी! तुम जैसा बताओगी, मैं बिलकुल वैसा ही करूंगी!"

ज़िले से फ़ार्म को उधार मिले चारे का उपयोग अवदोत्या बहुत बचा-बचाकर करती थी। सबसे अच्छे पशुओं के चारे पर वह विशेष ध्यान देती थी। क्सेन्या से बातें करने के बाद चमेली के लिए उसने वैज्ञानिक ढंग से चारे की व्यवस्था की।

क्सेन्या ने चमेली को नये ढंग से दुहना शुरू किया—मुट्ठी से! वह दिन में चार बार उसे बाहर घुमाने ले जाती। बेचारी का पूरा दिन गाय की टहल में ही बीत जाता था।

पहले दिन सांझ को जब सब गायों का दूध नापा गया तो चमेली का दूध रोज़ से तीन सौ ग्राम कम निकला।

वालेंतिना ने अवदोत्या और क्सेन्या को आश्वासन दिया : "कोई बात नहीं, शुरू में ऐसा ही होता है। गाय को अभी नयी खुराक का अभ्यास नहीं है। क्सेन्या को भी अभी मुट्ठी से दुहना अच्छी तरह नहीं आया। तुम मन में परेशान मत हो! कल से गाय ज़्यादा दूध देने लगेगी!"

दूसरे दिन चमेली का दूध एक सौ ग्राम और घट गया। क्सेन्या अवदोत्या के घर आई, तो बिना कुछ बोले बेंच पर धम्म से गिर पड़ी और फफक-फफक कर रोने लगी। वालेंतिना और अवदोत्या दौड़ी हुई आईं :

"क्या हुआ, क्सेन्या? क्या बात है री?"

क्सेन्या ने काले शॉल के छोर से आंसू पोंछे और व्यथित नेत्रों से अवदोत्या की ओर देख कर बोली :

"लड़के मेरी हंसी उड़ाते हैं। कहते हैं, 'यह खज़ाना ढूंढ़ रही है'! कहते हैं, 'गोबर में से सोना निकाल रही है'!"

"कौन कहता है?"

"पेत्रो!..."

"तू क्यों सुनती है उसकी बातें?" अवदोत्या ने झुंझला कर कहा। "तुझ जैसी बेवकूफ लड़की को भारी काम सौंपने से यही तो होगा!"

क्सेन्या ने तुरन्त रोना बन्द कर दिया।

"लेकिन, मौसी! मुझे तो बहुत बुरा लगा! मैं पेत्रो के सामने नहीं रोयी, उसे मैंने डांट दिया। मैं तब तक नहीं रोयी, जब तक यहां नहीं आ गयी।"

"कैसी रोनी लड़कियां भर रखी हैं तुमने कौमसोमोल में!" वालेंतिना ने अल्योशा को डांटते हुए कहा। "इससे तुम्हारी बड़ाई नहीं होती!"

"आज खूब सुनवाया तूने!" अल्योशा ने मुस्कराकर क्सेन्या की ओर देखा। "तू तो ऐसी लड़की नहीं थी! खैर, छोड़! यहां मेज़ के पास बैठ। तेरी आंखों के पनाले बंद हों तो ज़रा गम्भीर बातें करूं।"

चमेली का ही नहीं, और गायों का भी दूध घट गया। पूरे फ़ार्म में सनसनी फैल गयी। रात को दादी वासिलिसा की रसोई में वालेंतिना, लुबावा, तातिआना, लेना और अवदोत्या का सहायक सर्गी सर्गीयेव—जिसे गांव के दूसरे सर्गियों से अलग करने के लिए लोग सर्गी सार्जेंट के नाम से पुकारते थे—बैठे अवदोत्या और क्सेन्या को समझा रहे थे। सर्गी छल से क्सेन्या का हाथ पकड़े उसके कान में सान्त्वना के शब्द बुदबुदा रहा था। वह कह रहा था कि पेत्रो को अपना थूका चाटने पर मज़बूर कर देगा। क्सेन्या दुःख और पीड़ा से दबी, मुंह लटकाये, चुप बैठी थी।

"वाह ! यह तो बड़े-बड़े अफ़सरों की मीटिंग हो गयी !" वालेंतिना ने मज़ाक में कहा।

अगले दिन सुबह अवदोत्या फ़ार्म के दफ्तर पहुंची तो वासिली से सामना हो गया। उससे अक्सर सामना हो जाता था। लेकिन हमेशा दूसरों के सामने—अकेले में नहीं ! और हमेशा दोनों की बातचीत संक्षिप्त और उखड़ी-उखड़ी होती थी। जितनी ज़रूरी हो, उससे ज़्यादा नहीं !

"यह सब क्या सुन रहा हूं गोशाला के बारे में ? गायों का दूध क्यों घट रहा है ?" वासिली ने बड़ी रुखाई से पूछा।

"गायों को नये ढंग की आदत नहीं है। दूध दुहने वालियों ने भी नये तरीक़े से दूध दुहना अच्छी तरह नहीं सीखा है," अवदोत्या ने घबराहट में उत्तर दिया। वासिली ने कुछ और नहीं कहा। संदिग्ध दृष्टि से उसकी ओर देख कर होंठ दबा लिये।

"अच्छा है कि आजकल मैं इसके साथ नहीं, बल्कि वाल्या और अल्योशा के साथ रहती हूं।" अवदोत्या ने मन ही मन सोचा।

उस दिन चमेली का दूध दो सौ ग्राम और घट गया। अगले दिन अवदोत्या फ़ार्म के काम से उग्रेन चल दी। वहां कई दिन लग गये। उग्रेन से वह मोटर में लौट रही थी। रास्ते में सड़क के किनारे खड़ी क्सेन्या की निगाह उस पर पड़ गयी। क्सेन्या कुछ चिल्लाती हुई लारी के साथ-साथ तेज़ी से दौड़ रही थी। हवा के झोंकों से उसका शॉल सुर्ख चेहरे पर बार-बार लिपट जाता था।

"ड्योढ़ा ! मौसी ड्योढ़ा !" मुंह पर लिपटते शॉल को हटाने की भरसक कोशिश करती हुई वह चीख रही थी।

"अरी क्या ? क्या फिर कम देने लगी ?" अवदोत्या ने भय से पूछा और बुरी से बुरी खबर सुनने को तैयार हो गयी। वह लारी की खिड़की से बाहर झुक आई थी। मालूम होता था कि चलती मोटर से कूद कर, दौड़ती हुई वह गोशाला पहुंच जाना चाहती है।

आखिर क्सेन्या ने शॉल से बाहर सिर निकाला और अवदोत्या को उसका प्रसन्नता से खिला हुआ चेहरा दिखाई दिया।

"बढ़ गया मौसी, बढ़ गया ! ड्योढ़ा।"

अगले कुछ दिनों में चमेली का दूध आधे लिटर तक पहुंच गया और धीरे-धीरे बढ़ता ही रहा। वह धीरे-धीरे, लेकिन निश्चय ही, सबसे ज़्यादा दूध देने वाली गाय बन रही थी।

चमेली के उदाहरण से पहली मई फ़ार्म वालों और पड़ोसी फ़ार्मों के पशु-पालकों को बड़ा विस्मय हो रहा था। लोग आ-आकर पूछते : "क्सेन्या ने

चमेली पर क्या जादू कर दिया है !" कई बरस बाद पहली मई फ़ार्म वालों को गर्व करने का मौक़ा मिला था—हम भी किसी बात में आगे हैं। गोशाला में काम करने वालों में भी परिवर्तन आया। लेकिन सबसे बड़ा परिवर्तन आया खुद क्सेन्या में। चमेली के दूध में बढ़ती ने क्सेन्या के जीवन की धारा ही बदल दी।

क्सेन्या की मां कड़े मिजाज़ और सख्त तबियत की औरत थी। क्सेन्या बचपन से ही बहुत शर्मीली और दब्बू मशहूर थी। वह हमेशा चुप-चुप रहती, उसके चेहरे पर शर्म भरी पीलाहट छायी रहती, आंखें नीचे को झुकी रहतीं, मालूम होता दबी-दबी किसी के पीछे छिपना चाहती है—इन सब बातों से उपरोक्त वर्णन को और बल मिलता था। उसकी एक ही सहेली थी—तातिआना। जब देखो तब वह तातिआना से ही चिपकी दिखाई देती थी। तातिआना थी लम्ब-तड़ंग ! गोल-गोल चेहरा ! एक नम्बर की बक्की ! लड़कों जैसे लम्बे-लम्बे डग भरती वह सदा आगे-आगे चलती। तीखे नख-शिख वाली क्सेन्या छोटे छोटे डग रखती उससे कई कदम पीछे चलती दिखाई देती थी।

प्योत्र उसे हमेशा छेड़ता रहता : "तू हमेशा तातिआना की दुम के पीछे क्यों छिपी रहती है ?" क्सेन्या के पास कोई उत्तर नहीं था। वह चुप रह जाती।

गोशाला में अवदोत्या के साथ रह कर क्सेन्या का हौसला कुछ-कुछ बढ़ने लगा था। चमेली के दूध में बढ़ती ने तो मानो इस परिवर्तन की प्रक्रिया को पूरा ही कर दिया। अब वह गोशाला देखने आने वाले पड़ोसी सामूहिक किसानों तथा ज़िला केन्द्र के लोगों से खूब खुलकर और निडरता से बातें करती थी। वह उन्हें "चारे की यूनिटों", "सुपाच्य खुराक" और "खिलाई में बढ़ती" आदि के बारे में बताती। वह कभी-कभी सभा में भाषण भी देने लगी और दीवार के अखबार पर आलोचनात्मक टिप्पणियां भी लिखने लगी।

उक्रेन से लौटने के कुछ ही दिन बाद अवदोत्या को सभी पशुओं की जिम्मेदारी सौंप दी गयी। इसलिए, उसने गोशाला का काम क्सेन्या को देने के लिए कहा।

"वह तो ज़रा सी छोकरी है अभी !" सामूहिक किसानों ने विरोध किया। "बत्तकें तक तो उससे हुसकाई नहीं जातीं। अम्मा की लाड़ो है अभी तो ! उससे क्या होगा ?"

"काम तो उससे मुझे करवाना है। और कौन है उससे अच्छा ?" अवदोत्या ने क्सेन्या की सिफारिश की। "फिर, उसे अकेले तो काम करना नहीं है। मैं उसकी मदद करूंगी।"

आखिर क्सेन्या गोशाला की मैनेजर बन ही गयी। बड़े उत्साह और बड़ी लगन से वह अपने नये कर्तव्य निबाहने लगी। बिना तौले वह भूसे का एक तिनका न जाने देती थी। हर जानवर की खुराक की कड़ी निगरानी रखती थी। जानवरों की सफ़ाई की दैनिक व्यवस्था का ध्यान रखती थी। दूध वैगई और मक्खन निकालने के कमरों में मक्खियां न घुसने देने के लिए, उसने दरवाज़ों और खिड़कियों पर माड़ीदार पर्दे लटका दिये थे। खुद भी वह बरफ़ सा सफ़ेद चोगा पहनती थी। सिर के बालों को सम्भाले रखने के लिए साफ़ की तरह सफेद रूमाल बांधे रहती थी। उसकी कमर से चाबियों का एक भारी गुच्छा झूलता रहता था। इसमें दूध के कमरे और मक्खन रखने की आलमारी की चाबियां, चारे के गोदाम की चाबी, आफ़िस की मेज़ की चाबी, और न जाने कितनी दरारों और संदूकचियों—जिनके नाम सिर्फ़ उसे याद थे—की चाबियां थीं। कमर से लटकी चाबियों की छनन-छनन! सफ़ेद चोगे की चमक! तिरछे बंधे रूमाल के नीचे काली चटकीली आंखें! भरपूर जवानी और काम में चुस्ती! अपने ही फ़ार्म के नहीं, आस-पास के फ़ार्मों से आने वाले लोग भी, क्सेन्या का रूप देखते रह जाते!

"यह तो चमेली का चमत्कार है!" बूढ़ा पहरेदार मफोदी कहता। "कौन सोच सकता था कि क्सेन्या में ऐसा इल्म छिपा है?"

क्सेन्या के जीवन में दो-तीन सप्ताहों में ही जो परिवर्तन हुए उनसे फ़ार्म के नौजवानों में हलचल मच गयी। इससे तातिआना की ईर्षा भड़क उठी। उसे ख़याल था कि गुणों और योग्यता में वह अपनी सहेली से कहीं बढ़-चढ़ कर है।

तातिआना को विश्वास था कि उसमें भी 'प्रतिभा' छिपी हुई है। बस, अभी वह 'प्रकट' नहीं हुई है। इस प्रतिभा का विकास किस दिशा में होगा, यह भी वह अभी नहीं कह सकती थी।

वह सोचती: "क्सेन्या की प्रतिभा तो चमेली ने चमका दी! पता नहीं मेरी कैसे चमकेगी? यह बात तो पक्की है कि किसी न किसी दिन चमकेगी ज़रूर! हां, ज़रा जल्दी चमक जाती तो अच्छा था! कितनी वाहियात बात है कि कहीं भीतर छिपी बैठी है—लोग न जान पाते हैं, न देख पाते हैं!"

चमेली में आश्चर्यजनक परिवर्तन से अपनी शक्ति और अपनी बड़ी-बड़ी योजनाओं में अवदोत्या का विश्वास और भी बढ़ गया। अब उसे गोशाला में अपना पिछले दिनों का काम बहुत तुच्छ और नगण्य मालूम होता था। तब काम ही क्या था? गायों को वक्त पर चारा दे देना और उन्हें दुह लेना! अब पशुओं को संतुलित चारा देने की सख्त व्यवस्था कर दी गयी थी, अलग-अलग

पशुओं की क्षमता जांच ली गयी थी। अलग-अलग नस्लों की और अलग-अलग मात्रा में दूध देनेवाली गायों को अलग कर लिया गया था, नस्लों को सुधारने के लिए सांडों और गायों को बड़ी होशियारी से चुना गया था। चारा बनाने के कमरे को नये यंत्रों से सुसज्जित कर लिया गया था और उसमें बिजली लग गयी थी। विविध प्रकार के दैनिक कार्यों के साथ ही वसंत की तैयारी में भी तरह-तरह के काम करने थे—चरानों में अच्छी घास तथा खेतों में बढ़िया चारे की अदला-बदली वाली फसलों की व्यवस्था करनी थी, दलदल को चरान बनाना था, इमारती काम की तैयारी करनी थी, इत्यादि।

काम अब इतना बहुरंगी और जटिल हो गया था कि हर बात की खुद 'देख-भाल करना' अवदोत्या के लिए असम्भव था; अपने ही उदाहरण से प्रेरित करना अब काफी न था। वह पहले जिस तरह पशुओं के बाड़े की व्यवस्था करती थी, अब वह भी काफी न थी।

अब ज़रूरत थी लोगों को शिक्षित करने की, उन्हें ट्रेनिंग देने की, उन्हें अच्छे संगठनकर्ता बनाने की, अपनी योजनाओं के लिए उनमें उत्साह पैदा करने की और उन्हें सच्चे सहायक बनाने की। अवदोत्या की आदत थी कि जिस काम को भी वह लेती उसे लगन से करती, उसमें तन-मन से जुट जाती। यही उसकी सफलता का रहस्य था। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह किसी काम को अधूरा नहीं छोड़ती थी। काम जो भी रहा हो—चाहे छोटी सी 'गिरगिट' के रूप में जंगलों में लुकने-छिपने का खेल हो, आलू के खेतों में दल की नेता के रूप में दूसरों से काम लेना हो, संध्या समय भाग कर अपने प्रेमी से मिलने जाना हो, या पढ़ाई करना हो—उसका हमेशा एक ही तरीक़ा था : जो किया मन और शरीर की पूरी शक्ति लगाकर किया, पूरे उत्साह और तन्मयता से किया! उसे निज का, निजी सुविधा-असुविधा का, निजी हानि-लाभ का, कोई ध्यान नहीं रहता था। इस आत्म-विस्मृति के भाव से ही वह जानवरों के बाड़े में काम करती थी। उसके साथ काम करनेवाले लोग उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहते थे।

अपनी प्रतिष्ठा 'क़ायम करने' या दूसरों पर रौब डालने का ख़याल अवदोत्या को कभी नहीं आया। उसे एक ही बात का ख़याल रहता था और वह यह थी कि जो योजना या कार्यक्रम उनसे बना लिया है, उसे अच्छी तरह और जल्दी पूरा किया जाय।

"यह तो करना ही होगा!" वह कहती और उसके कहने का ढंग कुछ ऐसा था कि लोगों को विश्वास हो जाता कि काम होना ही चाहिए, इसमें ऊहापोह के लिए गुंजायश नहीं है।

लोग काम पूरा करते। यह नहीं कि काम फुर्ती से होता या अवदोत्या को संतुष्ट करनेवाली तत्परता से होता—पर होता ज़रूर था। यह भी सच है कि शुरू-शुरू में हर नयी चीज़, भले ही वह बहुत साधारण हो, बड़े परिश्रम से ही आरम्भ हो पाती थी।

दुहते समय गायों की पूंछ बांध देने जैसी साधारण सी बात को भी लोगों ने तुरंत नहीं मान लिया। इसे मनवाने के लिए भी बड़े धैर्य और समझदारी से काम लेना पड़ा। परन्तु अवदोत्या को अपनी तरह ही सोचने-समझने वाले समर्थक और सहायक दिखाई पड़ने लगे थे। इसीसे उसका उत्साह बहुत बढ़ गया था।

एक दिन दूध दुहने के समय अवदोत्या चुपचाप बूढ़ी तान्या और क्सेन्या के पास आ खड़ी हुई। वह देखना चाहती थी कि गोशाला में अभी हाल में भेजी गयी, उसके लिए मुसीबत की जड़, इस जिद्दी बुढ़िया से क्सेन्या कैसे निभा रही है।

"कल तुमने फिर गाय को मुट्ठी के बजाय उंगुलियों से दुहा था!" क्सेन्या ने बुढ़िया को डाटते हुए कहा।

"झूठ है, बकवास है! किसने चुगली की?" बुढ़िया ने कहा।

"गायों ने! तुम्हारी गायें कम दूध क्यों दे रही हैं? सबका दूध बढ़ रहा है, तुम्हारा घट रहा है! मुझसे बनो नहीं! दुहने के ढंग में अदला-बदली होगी, तभी आधे लिटर का फरक पड़ जायगा।"

"देख नहीं रही है? मुट्ठी से दुह रही हूं या किसी और चीज़ से?" बुढ़िया ने उलट कर जवाब दिया।

"तो ज़रा मज़बूती से हाथ चलाओ न! थनों को मलने में कोहनी का ज़ोर लगाओ! कितनी बार थनों को मलमल कर दुहने के लिए बताया गया है। लेकिन कहने का तो तुम पर असर पड़ता ही नहीं। हम लोग सोना रौंद रहे हैं, बस उसे बटोरने की ज़रूरत है!" क्सेन्या ने बात ऐसे कही जैसे अवदोत्या को कहते सुना था।

अवदोत्या को हंसी आ गयी। हंसी दबाकर वह दीवार के पीछे छिप गयी। क्सेन्या के शब्दों से उसे प्रसन्नता भी हुई और सिहरन भी।

"देखो, बात कैसी फैलाती जा रही है। ये शब्द मैंने पेत्रोविच से सुने थे, मुझसे क्सेन्या ने सुने! इससे किसी और ने। कोई ताज्जुब नहीं! नन्हीं लाड़ली बेटी, तू खुद हमारा सोना है!" वह सोच रही थी।

क्सेन्या अब भी बुढ़िया तान्या से उलझी हुई थी।

"देखा! गैया फिर दूध के बर्तन पर पूंछ हिला रही है!" बुढ़िया का एक और नुक्स पकड़कर वह बोली: "पूंछ क्यों नहीं बांधी इसकी?"

"क्यों बांधूं? यह भी किसी लड़की की चुटिया है? ऐसे ही दुहते-दुहते उम्र बीत गयी। कभी किसी ने नहीं टोका!"

"अरे, अपने घर में तुम चाहो तो दूध के बर्तन पर झाड़ू डुलाओ—मुझे क्या! लेकिन यहां तो तुम्हें सफ़ाई का पालन करना पड़ेगा! दूध एकदम साफ़ होना चाहिए!"

"तेरे कह देने से दूध गंदा हो गया?"

"अच्छा यह बात है? तुम्हें याद नहीं कि अवदोत्या मौसी ने तसवीरें दिखाई थीं और समझाया था कि तरह-तरह के जीवाणु बीमारी फैलाते हैं? गाय की पूंछ में हज़ारों जीवाणु चिपके रहते हैं। वही तुम्हारे दूध के बर्तन पर चंवर डुला रही है।"

"अच्छा बाबा, अच्छा!... आगे से तुझे खुश रखूंगी!" क्सेनोफोन्तोवना ने चिढ़कर कहा।

अब अवदोत्या ने क्सेन्या की सहायता के लिए आगे बढ़ना ज़रूरी समझा। वह दीवार की आड़ से निकल आई।

"यहां आ, क्सेन्या बेटी!"

क्सेन्या भाग कर अवदोत्या के पास जा पहुंची।

"मौसी, कैसे समझाऊं इसे? दिन भर इसी की चौकीदारी तो नहीं कर सकती? ऐसी अड़ियल है कि मानती ही नहीं! जाने क्यों इसे यहां भेज दिया गया है?"

"तू घबड़ा नहीं बेटी! इसे भी रास्ते पर ले आयेंगे!"

चारों दूध दुहने वाली औरतें अपने-अपने बर्तन हिसाब लिखने वाले की मेज़ पर लायीं तो अवदोत्या ने छन्ने रख कर चारों बर्तनों का दूध अलग-अलग छनवाना शुरू किया।

"यह क्या झंझट कर रही हो, अवदोत्या तिख़ोनोवना?" दुहनेवालियों ने चिंतित स्वर में पूछा।

"कूड़ा छान रही हूं! देखूं किसके दूध में सबसे ज्यादा निकलता है!"

बुढ़िया के ही दूध में कूड़ा निकला; बाकी सबका साफ था।

अवदोत्या के कहने पर, क्सेन्या ने चारों छन्ने गोशाला के बाहर कार्य-सूची के तख़्ते पर टांग दिये और बड़े-बड़े अक्षरों में लिख दिया:

"सामूहिक फ़ार्म के साथियो! हमारी गायों को दुहनेवालियों के काम पर नज़र डालो! सबसे गंदा काम तातिआना क्सेनोफोन्तोवना ख्लिनोवा का है! देखो, उसके दूध में कितना कचरा है!"

इसका बहुत बड़ा असर हुआ।

गोशाला का बड़ा फाटक ऐसा स्थान था जहां सवेरे और खाने के समय लोग खेतों पर जाने से पहले जमा हुआ करते थे। सामूहिक किसान वहीं दूध लेने आते थे। अक्सर वहां भीड़ लगी रहती थी। लोग कार्य-सूचक तख्ते को घेरे अवदोत्या द्वारा संयोजित 'नुमाइश' को देख रहे थे और ख्सेनोफोन्तोवना पर हंस रहे थे। बुढ़िया चुपचाप कोने में बैठी इन्तज़ार कर रही थी कि दूध नापने वाला उसे बुलाये और उसका दूध ले ले। वह कोने से उठी तो उसकी आंखों में आंसू छलक रहे हैं।

"बड़ी दया की मुझ पर, अवदोत्या तिखोनोवना!" उसके एक-एक शब्द से पीड़ा भरा उलाहना फूटा पड रहा था। "ज़रा सी थी तू तब मेरी गोद में खेला करती थी। तेरी मां तुझे मेरे पास छोड़ कर काम पर निकल जाती थी। उन्नीस सौ पच्चीस में मैं मेले से तेरे लिए एक रबड़ की सीटी और दो रंगीन मुर्गे लायी थी। हम लोगों के ज़माने में लोग थोड़ी सी नेकी का बदला चुकाते नहीं अघाते थे। पर इस ज़माने में तो तुम लोगों का रवैया ही दूसरा है। मेरी बदनामी करके तूने बड़ा भला किया, बेटी! तेरा एहसान ज़िन्दगी भर नहीं भूलूंगी!"

बुढ़िया ने ताने से अवदोत्या को झुककर सलाम किया और बाहर चली गयी। अवदोत्या की बुद्धि चकरा गयी। सहसा उसे बुढ़िया पर तरस आया, लेकिन दूसरी दूध दुहनेवालियां ठहाका मारकर हंस पड़ीं।

"भई बुढ़िया को कुछ नहीं कहना चाहिए था। वह तो उन्नीस सौ पच्चीस में तुम्हारे लिए रबड़ की सीटी लायी थी!"

यों तो अवदोत्या भी सबकी हंसी में शामिल हो गयी पर मन ही मन वह सोच रही थी: "ज़रा सी बात है—गाय की पूंछ! पर देखो, कितना बावेला खड़ा कर दिया! हमें नुमाइश तक कर डालनी पड़ी! लोगों को समझाने का और कोई उपाय भी तो न था!"

जानवरों के बाड़े में सफलता ने अवदोत्या को पारिवारिक दुखों को वहन करने में सहायता दी।

पर, एक घटना ऐसी घटी जिसने अवदोत्या को कई दिनों के लिए दुविधा में डाल दिया। अवदोत्या उग्रेन जा रही थी। लारी पड़ोस के उस गांव के पास रुकी जिसमें स्तेपान की मां रहती थी। तीन स्त्रियां लारी में बैठने के लिए दौड़ती चली आ रही थीं। इनमें स्तेपान की मां अन्ना भी थी। अवदोत्या ने अपना मुंह झटपट एक बोरे के पीछे छिपा लिया ताकि वह उसे देख न सके। अन्ना को अवदोत्या पहले भी अच्छी नहीं लगती थी। अन्ना सोचती थी, इस बाल-बच्चों वाली अधेड़ स्त्री ने बेचारे स्तेपान को

'फंसा' लिया है। इसलिए वह उसे कभी माफ़ नहीं करती थी। स्तेपान अभी जवान था। उम्र भी कम थी। किसी क्वांरी लड़की से ब्याह कर सकता था। तब उसके अपने बच्चे होते।

अन्ना ने अपने साथ आई दोनों स्त्रियों को लारी में चढ़ने में मदद दी। इनमें से एक काफी बुढ़िया थी और दूसरी जवान, गोरी और खूबसूरत लड़की।

"अरे बाबा, ये मर्तबान न टूट जायें!" लड़की ने कहा। "अम्मा, वह मर्तबान मुझे दे दो। मैं पकड़े रहूंगी। स्तेपान निकितिच को बेरी का मुरब्बा बहुत अच्छा लगता है।"

"क्या बताऊं, उसके लिए ऊनी मोज़े नहीं बुन पायी! ऊन भेजे दे रही हूं! तीन गोले हैं। किसी से बुनवा लेगा।" स्तेपान की मां ने कहा।

"क्यों परेशान हो रही हो, अन्ना निकोलायेवना!" बुढ़िया ने आश्वासन दिया। "ओल्गा और मैं बुन दूंगी। मोज़ों की क्या फ़िक्र है।"

"उससे कहना गले में गुलूबंद ज़रूर बांधे रहा करे! उसका सीना कमज़ोर है!"

"हम लोग उनकी पूरी देख-रेख रखते हैं!" लड़की ने प्रसन्नता भरी सुरीली आवाज़ में कहा।

अब तक दोनों औरतें बैठ गयी थीं। अन्ना का हृदय उमड़ आया। उसने लड़की को बाहों में भर कर उसका मुंह चूम लिया। उसकी आंखें भर आई थीं। उनमें ममता का अधिकार झलक रहा था। लड़की ने भी उसके प्रेम की स्वीकृति में अपना सिर अन्ना की छाती पर रख दिया। उसका चेहरा संकोच से लाल हो रहा था। विस्मय भरी प्रसन्नता से उसने मां की ओर देखा।

अवदोत्या को तो मानो काठ मार गया! यह मामला क्या है? मूक आशीर्वाद? किसी ऐसी बात का मौन समझौता जिसे शब्दों में व्यक्त करने का समय अभी नहीं आया?

लारी चल पड़ी। स्त्रियां बहुत मिलनसार और बातूनी थीं। बड़ी जल्दी वे लारी में बैठे मुसाफिरों से हिल-मिल गयीं।

"लोगों ने ज़बरदस्ती उसे हमारे यहां ला धरा। हम लोगों ने पहले बहुत शोर-गुल मचाया। मैं तो लकड़ी-चिराई के मुखिया तक के पास जा धमकी। उससे शिकायत की कि यह क्या तमाशा है!" बुढ़िया मुस्कराती हुई सुना रही थी। "और भई, कुछ दिन बाद उसे पहचाना। हीरा आदमी है। मेरे लिए तो अपने बेटे से बढ़कर है। सच मानो! हम उग्रेन आये थे—मेरी बड़ी लड़की वहां ब्याही है। हमने कहा, चलो उसकी मां से मिल आयें,

शायद बेटे के लिए कुछ भेजना चाहती हो, मुलाकात भी हो जायेगी। बड़ा भला आदमी है! हज़ारों में एक!"

"लकड़ी-चिराई वालों ने उनके लिए एक मकान बना देने का वायदा किया है," लड़की ने सामने देखते हुए धीरे से कहा।

अवदोत्या ने पीड़ा और दुःखपूर्ण उत्सुकता से लड़की के तरुणाई भरे, कुछ-कुछ बच्चों जैसे, चेहरे की ओर देखा।

लड़की के चेहरे पर आशंका और उमंग, कातरता और प्रसन्नता का, अद्‌भुत मिश्रण था। अवदोत्या को खुद अपनी याद हो आई। वह भी प्रेम की पहली झोंक में ऐसे ही डांवाडोल हो गयी थी।

किन्तु, अवदोत्या की पहली उमंग तुरन्त ही कुचल गयी थी। यह उसके प्रेम और यौवन की महती शक्ति थी कि वह सम्भल गयी और जब वासिली ने उसे पुकारा तो वह तुरंत उसके पास जा पहुंची।

स्तेपान वासिली नहीं था। स्तेपान किसी का कोमल हृदय तोड़ नहीं सकता था, किसी की सहारा मांगती बांहों को ठुकरा नहीं सकता था।

अवदोत्या बार-बार लड़की के चेहरे को देख रही थी।

अपने बेटे, अपने भाई, अपने निकटतम मित्र के लिए उसे बहू चुननी होती तो वह निश्चय ही ऐसी लड़की को चुनती—हंसमुख, कोमल, प्यार भरी और दिल की साफ़!

उग्रेन में अवदोत्या लारी से उतर पड़ी। वह कोई ऐसी जगह ढूंढ़ रही थी जहां लोगों की निगाह से बचकर खड़ी हो सके और आंसू बहाकर अपना दिल हलका कर सके। लेकिन ऐसी कोई जगह नहीं दिखाई दी। वह कार्यकारिणी कमिटी के दफ्तर चली गयी। वहां एक बड़े आईने के सामने खड़ी वह अपने प्रतिबिम्ब को देखती रही! छरहरे शरीर और आंखों के नीचे मामूली सी झुर्रियों वाली एक स्त्री आंखों में उदासी भरे, कोमल दृष्टि से, उसकी ओर देख रही थी!

कई दिन बाद उसे स्तेपान का एक पत्र मिला:

"प्यारी दुन्या,

अभी-अभी मैंने सुना है कि तुमने वासिली को छोड़ दिया है। यहां कटाई का मौसम है, काम बहुत ज्यादा है—इस समय मेरा निकल सकना सम्भव नहीं। तुम तुरंत ही मुझे सारी बातें लिख भेजो। शायद तुम खुद ही

यहां चली आओ। या मैं वहां आऊं? इस वक्त इससे ज्यादा और क्या लिख सकता हूं। पत्र की प्रतीक्षा में,

तुम्हारा स्तेपान"

अवदोत्या रात भर नहीं सोयी। वह सोचती रही कि पत्र का क्या उत्तर दे। सुबह उठकर उसने लिखा :

"प्यारे स्तेपा,

मुझमें और वासिली में कुछ गलतफहमी हो गयी है। मैं कुछ दिनों के लिए वासिली से अलग रह रही हूं। वासिली से मैं हमेशा के लिए जुदा नहीं हो सकती—बच्चों को बाप से नहीं छीना जा सकता। मेरे प्यारे, मैं तुमसे यही भीख मांगती हूं कि तुम अपने जीवन को सुखी बनाओ और मुझे भूल जाओ! जीवन से खुशी को ठुकराकर मत निकल जाने दो! वास्या मेरे बच्चों का बाप है, इस बात को मैं कैसे भुला सकती हूं? हम लोगों में जो गलतफहमी पैदा हो गयी है, वह कुछ समय बाद दूर हो जायेगी।"

अवदोत्या ने जान-बूझकर "कुछ दिनों की गलतफहमी" के बारे में लिखा था ताकि स्तेपान अपने आपको व्यर्थ की आशाओं में न भुलाये। पर सच्चाई यह थी कि वासिली से फिर मेल हो जाने की सम्भावना में उसे ज़रा भी विश्वास नहीं था। वह उससे और दूर खिंचती गयी।

एक शाम अवदोत्या का वासिली से फिर सामना हो गया। वासिली बुयानोव परिवार से आ रहा था। शायद वहां उसने खूब पी थी।

अवदोत्या को देखते ही उसने उसका हाथ पकड़ लिया।

"दुन्या! हम लोग क्यों एक-दूसरे की ज़िन्दगी बिगाड़ रहे हैं? बोलो दुन्या!"

अवदोत्या अचकचा गयी। उसने अपना हाथ छुड़ा लिया। मन की जिस स्थिरता को वह इतनी कठिनाई से प्राप्त कर सकी थी वह वासिली के इन चन्द शब्दों से न जाने कहां काफ़ूर हो गयी। चिन्ता और दुविधा में डूबते-उतराते उसने आंखों में रात काटी।

यदि वासिली ने अपनी बात एक बार फिर दोहरा दी होती, यदि उसने यह बात चेतनता की अवस्था में कही होती—तो अवदोत्या ने उसकी बात मान ली होती और घर लौट गयी होती। बिना किसी प्रसन्नता और उत्साह के वह घर लौट गयी होती! सुखी जीवन की बिना किसी आशा के भी वह लौट गयी होती! वह केवल इसलिए लौट गयी होती कि फिर से घर बसाकर जीवन को नये सिरे से आरम्भ करे।

परन्तु वासिली ने अपनी बात दोहरायी नहीं। और इसके बाद, जब दफ्तर में या पशुशाला में फिर सामना हुआ तो वासिली ने और भी ज़्यादा रुखाई बरती और केवल काम-काज की बातें कीं। क्या वह बात वासिली ने राह चलते-चलते, नशे में, यों ही कह डाली थी? क्या यह बात उसके मुंह से यों ही निकल गयी थी? फिर वह उसे भूल गया था? या, अवदोत्या के सहम जाने और हाथ छुड़ाकर चली जाने का उसने वह मतलब लगाया कि उसके साथ न जाने का अवदोत्या ने सदा के लिए फ़ैसला कर लिया है? अवदोत्या को इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मालूम था। परन्तु उसे इस बात की खुशी थी कि वासिली ने वह बात फिर नहीं दोहरायी; उसे फिर उस सबसे नहीं गुज़रना पड़ेगा जिससे वह गुज़र चुकी थी; उसके अब तक हरे घाव फिर नहीं दुखाये जायेंगे! अतीत को भुलाकर जीवन को नये सिरे से आरम्भ करने के लिए किसी नयी ही चीज़ की ज़रूरत थी—किसी ऐसी चीज़ की जो उन दोनों से अच्छी और विशाल हो, जिसमें वे स्वयं समा सकें! लेकिन अब तक कोई ऐसी विशाल चीज़ दिखाई नहीं दी थी; इसीलिए अवदोत्या वासिली के पास जाने के लिए अपने को मजबूर नहीं कर पाती थी। घर लौटने के खयाल से ही उसके शरीर में कंपकंपी उठ आती थी।

अवदोत्या को पहले आशंका थी कि पिता के बिना नये घर में बच्चियां दुखी होंगी। लेकिन हुआ उलटा ही।

बच्चियां दादी वासिलिसा के हंसी-खुशी से भरे भीड़-भाड़ वाले घर में और भी खुश थीं। बाप के उदासी भरे घर में वे इतनी खुश नहीं रहती थीं।

वासिलिसा बच्चियों को परियों की कहानियां सुनाती। अल्योशा उन्हें तरह-तरह के खिलौने बनाकर देता और उनके साथ बरफ़ पर फिसलने का खेल खेलता। वालेंतिना उनके साथ 'भाग-चूहा-बिल्ली-आई' और 'छिपा-छिपौवल' का खेल खेलती। लेना उन्हें कहानियों की किताबें लाकर देती।

बच्चियों को कभी-कभी पिता की याद हो आती थी। परन्तु अवदोत्या को यह देखकर आश्चर्य था कि नये घर में उनका चिड़चिड़ापन दूर होता जा रहा था और स्वभाव अच्छा होता जा रहा था। रोज़ वे नये-नये शब्द और नयी-नयी बातें सीख रही थीं। नन्हीं दुन्या सबसे तेज़ थी और उसकी बातें वासिलिसा के परिवर्धित परिवार के लिए विस्मय और विनोद का कारण बनी रहतीं। उक्रेन से वालेंतिना दुन्या के लिए रबड़ का एक मुर्गा लायी। दुन्या ने गर्दन टेढ़ी करके उसे चारों तरफ़ से देखा; फिर मां के शब्दों को दोहराती हुई बोली:

"इसका बाह्य भाग बुरा नहीं है..."

दुन्या के अपने राजनीतिक विचार थे, अपना कार्यक्रम था। एक रात खाना खाती हुई बोली :

"चर्चिल बड़ा खराब आदमी है। मैं बड़ी हो जाऊंगी तो उसे भगा दूंगी।"

"कहां भगा देगी?" वालेंतिना ने पूछा।

"सहारा के रेगिस्तान में।" दुन्या ने तुरंत उत्तर दिया।

"वहां क्या करेगा बेचारा?"

इस जटिल प्रश्न का उत्तर भी दुन्या के पास तैयार था। उसके मस्तिष्क में चर्चिल के भाग्य का निपटारा हो चुका था :

"वह हवाई मोटर बनायेगा जिससे समुद्र का पानी गोशाला में आयेगा।"

"कहां-कहां की बातें मिला लेती है!" वालेंतिना को हंसी आ गयी। "चर्चिल के बारे में इसने अल्योशा से सुना! सहारा रेगिस्तान के बारे में लेना से! हवाई मोटर और फ़ार्म के लिए पानी के बारे में हमसे। यह हमारा—मेरा और अवदोत्या का—सरदर्द है ही!"

शहर से लौटने के कुछ ही दिन बाद, वालेंतिना के कहने पर, अवदोत्या ने अपनी शिक्षा के बारे में युवकों के सामने एक संक्षिप्त भाषण दिया।

लेना और अल्योशा की सहायता से उसने बहुत से चार्ट और रेखाचित्र तैयार किये। उसने इस बात पर ज़ोर दिया कि सभी तरुण लड़के-लड़कियों को स्कूल में बुलाया जाय।

"व्याख्यान के लिए मुझे एक श्याम-पट चाहिए। छोटी मेज़ और दवातें भी होनी चाहिएं ताकि लोग ज़रूरी बातें नोट कर सकें।"

बुढ़िया प्रास्कोव्या भी व्याख्यान सुनने आई थी और उसे काफी डर भी लग रहा था। कात्या और नन्हीं दुन्या भी प्रास्कोव्या के पास ही पीछे की बेंच पर बैठी थीं और बड़े गर्व से वहां एकत्रित लोगों को देख रही थीं। दुन्या तो हर नवागन्तुक को बता रही थी :

"आज हमारी अम्मा मास्टरनी बनेंगी।"

सब अपनी-अपनी जगह पर बैठ गये तो अवदोत्या बोर्ड के पास जाकर खड़ी हो गयी। वह साटिन का बुंदकियोंदार ब्लाउज़ पहने हुए थी। उत्तेजना से उसके गालों पर लालिमा छा गयी थी। इकहरा बदन, बड़ी-बड़ी आंखें और गुलाबी चेहरा—वह बिलकुल जवान लग रही थी।

"पता नहीं कैसा बोलेगी?" वालेंतिना सोच रही थी। "काम करने में तो हीरा है! लेकिन क्या मजाल कि कभी एक शब्द भी बोलवा सको! खैर, कोई बात नहीं। उम्मीद है, ठीक-ठाक ही बोलेगी। कोई बात रह जायेगी तो बाद में मैं थोड़ा सा बोल दूंगी।"

अवदोत्या के होंठ दो-एक बार हिले, मानो कुछ बोलना चाहती हो। पर बोल न सकी। उसे देख-देखकर श्रोता-मंडली निराश हो रही थी। सहसा उसकी शांत और संतुलित आवाज़ सुनाई दी :

"आलू और अनाज, घोड़े और गायें—सभी चीज़ें जिन पर हम निर्भर हैं, जो हमें भोजन और जीवन प्रदान करती हैं—मनुष्य के श्रम और हाथों की करामात हैं। ये देखने में बहुत छोटे दिखाई देते हैं," अपने हाथ दिखाते हुए उसने कहा, "इनसे हो ही क्या सकता है? लेकिन इन हाथों की करामात और मनुष्य के सामर्थ्य की बातें सोचकर और विद्वानों की बातें सुनकर हैरानी होती है। इन्होंने क्या-क्या नहीं किया? कैसे हम मामूली गायों को इतना अधिक दूध देनेवाली और छोटे से आलू को सवा सेर का आलू बना लेते हैं? इसका सिर्फ़ एक रास्ता है। या यूं कहिये, सिर्फ़ एक रास्ता है जिसकी दो शाखाएं हैं—चुनाव और उचित ढंग से उगाने का रास्ता..."

"जियो मेरी प्यारी...!" वालेंतिना बड़े प्यार से सोच रही थी। "इसने तो मिच्यूरिन के पूरे सिद्धान्त को ज़रा सी बात में कह दिया।"

अवदोत्या बोलती गयी :

"उचित ढंग से उगाने पर हम किसी भी पौदे के गुणों को बदल सकते हैं। मिसाल ढूंढ़ने हमें दूर नहीं जाना है। आपको याद होगा, हमारे पड़ोसी सामूहिक खेत 'प्रभात' वालों ने गोभी की फसल वक्त से पहले तैयार कर ली थी। उन्होंने गोभी 'पीट' के गमलों में उगायी थी। जून महीने में ज़िले भर में किसी के पास गोभी नहीं थी। 'प्रभात' वालों ने गाड़ी भर-भर कर गोभियां बेचीं। गोभियां हाथों-हाथ बिक गयीं और लोगों ने मुंह मांगे दाम दिये।"

अवदोत्या पूरे एक घंटे तक बोलती रही। एक क्षण के लिए भी लोगों का ध्यान उसके भाषण से नहीं हटा। उसकी बातें सभी को अच्छी लग रही थीं। किसी को नहीं अच्छी लग रही थीं तो तरकारी के बागवाली तातिआना को! अवदोत्या के भाषण का उस पर विचित्र असर हो रहा था। उसके हर शब्द से तातिआना के मुंह पर काली छायाएं दौड़ रही थीं। गुस्से से घूर-घूर कर वह अवदोत्या को देख रही थी। कभी-कभी शिकायत भरी जलती निगाहों से वालेंतिना की ओर भी देख लेती थी। अवदोत्या अपना व्याख्यान समाप्त करके बैठी ही थी कि तातिआना खड़ी हो गयी। गुस्से से भर्रायी हुई आवाज़ में बोली :

"अवदोत्या का व्याख्यान सब लोगों ने सुन लिया! सबसे मुझे यही कहना है कि मुझको तरकारी के बाग से छुट्टी दी जाय। मुझे टीम लीडरी नहीं करनी है। मैंने साफ़ बता दिया।"

वह बैठ गयी और सिर झुका कर शॉल से अपना मुंह ढंक लिया।

किसी ने आशा नहीं की थी कि व्याख्यान से यह निष्कर्ष निकाला जायेगा। सभी हैरान थे।

"वाह, यह भी खूब रही!"

"क्या बात है तातिआना? क्या हो गया है तुझे?"

"यह इसने खूब कही। इस लड़की को हो क्या गया है?"

अवदोत्या तातिआना के पास जा खड़ी हुई।

"क्या बात है, तातिआना?"

तातिआना ने अपना सिर और झुका लिया।

"क्या बात है तातिआना? कुछ बता न?"

अवदोत्या ने तातिआना के कंधे पर हाथ रखा। तातिआना ने उसका हाथ झटक दिया और सिर ऊपर उठाया। उसके गोल-गोल गाल सुर्ख हो रहे थे। वे आंसुओं से भीगे थे। उसकी बड़ी-बड़ी नीली आंखें क्रोध और घृणा से जल रही थीं। तातिआना को लग रहा था कि मौसम से पहले गोभी तैयार कर लेना ही ऐसी चीज़ थी जिससे उसकी छिपी 'प्रतिभा'—जिसका वह इतनी उत्सुकता से इंतज़ार कर रही थी—प्रकट हो सकती थी। वह इस कल्पना में डूबी हुई थी कि उसके काम से फ़ार्म के इस कठिन समय में, जब फसल से पहले पैसे की तंगी होती है, फ़ार्म के खजाने में हज़ारों की आमदनी होगी और इसका श्रेय उसको होगा। उसने 'पीट' के गमलों में बीज बोने की बातें पढ़ी थीं परन्तु उनके महत्व को नहीं समझा था। उसे अपने पर तथा अवदोत्या और वालेंतिना पर क्रोध आ रहा था।

"धन्य है, अवदोत्या मौसी, धन्य है! तुम्हारा भी बहुत-बहुत शुक्रिया, वालेंतिना अलेक्सेयेवना! मुझे टीम का लीडर चुना गया था। मैं समझती थी—मूर्ख जो ठहरी—कि मैं किसी का भरोसा कर सकती हूं! कोई ऐसा है जो मुझे सिखाये-समझायेगा! ऐसी बातें बतायेगा जो मैं नहीं जानती हूं! मैं समझती थी—ये लोग मुझे अपनी मिट्टी-पलीत नहीं करने देंगी! मुझे भी दूसरों की तरह अच्छा बनना सिखायेंगी। और तुम दुन्या मौसी? तुम से यह नहीं कहते बना कि तातिआना अब यह कर, अब वह कर! 'पीट' के गमले तैयार कर! गोभी पहले से लगा दे! गोशाला में अपनी चमेली के बारे में तो तुमने खूब लिखा! लिखा था न? खुराक के राशन के बारे में लिखा!

रोज-रोज हर तरह की सलाह दी ! लेकिन तरकारीवाले बागीचे की टीम पर कौड़ी भर ध्यान नहीं दिया। और तुम, वालेंतिना अलेक्सेयेवना ? तुम्हारी तरफ़ तो मैं देखना भी नहीं चाहती। नहीं, नहीं, मेरे पास आने की ज़रूरत नहीं ! तुम कहती हो गोभी की जल्द फसल से 'प्रभात' फ़ार्मवालों ने हज़ारों की आमदनी पैदा की ! क्या हम यह नहीं कर सकते थे ? क्या उनसे गये-बीते हैं ? मुझसे तुमने पन्द्रह दिन पहले बताया होता, तो मैंने सब तैयार कर लिया होता। लेकिन अब ? हम अब उन्हें लगा रहे हैं। हज़ारों की आमदनी हमारे हाथों में थी ! लेकिन हमने उसे बह जाने दिया। धन्यवाद ! आप दोनों को बहुत-बहुत धन्यवाद !"

तातिआना बैठ गयी और फफक-फफक कर रोने लगी। वह रो रही थी गुस्से में, पर बड़ी अच्छी लग रही थी ! वह बार-बार अपने होंठ दांतों के नीचे दबा रही थी और काली भौंहें मसल रही थी।

अवदोत्या और वालेंतिना अपनी ग़लती महसूस कर रही थीं ! दोनों बहुत परेशान थीं। वालेंतिना अनाज की खेती की देख-भाल में गले तक डूबी रही थी। उसका काम ही फसल की देख-रेख करना था। पर इसका मतलब यह नहीं था कि वह तरकारी की खेती की तरफ़ ध्यान न दे। इन खेतों की टीम के प्रति लापरवाही के लिए वह अपने को माफ़ नहीं कर सकती थी।

"तातिआना ! सुन तो ! मैं मानती हूं, कसूर मेरा है। मैं अनाज की खेती के काम में इतनी डूबी हुई थी कि मुझे तरकारी के बाग़ का खयाल ही नहीं आया।" दुख भरी आवाज़ में उसने स्वीकार किया। "अच्छा, अब माफ़ कर दे। मैं अपना अपराधी सिर तेरे आगे झुकाती हूं।"

"सिर का क्या करूं ? इससे गोभी निकल आयेगी ?" सिसकियां भरती हुई तातिआना झुंझला कर बोली।

"अब भी देर नहीं हुई, तातिआना ! तू गरम छप्परों में बीज लगा दे। बाद में उन्हें गमलों में बदल देंगे।"

"गमले आयेंगे कहां से ?"

"बना लेंगे।"

"कब बना लेंगे ? अवदोत्या मौसी ने अभी तो कहा था कि 'प्रभात' वालों ने गमले जाड़ों में ही बना लिये थे।..."

"अरे ! हम हफ्ते भर में बना लेंगे ! दण्ड के बतौर मैं और अवदोत्या तुम्हें पांच-पांच सौ गमले बनाकर देंगी। भगवान के लिए अब मत रो...! अभी तो पाला पड़ रहा है। जाड़ा जल्दी ख़तम नहीं होगा। गोभी तैयार करने के लिए बहुत वक्त पड़ा है।"

तातिआना ने रोने से काम बनता देखा तो और ज़ोरों से रोने लगी।

"अच्छा, अल्योशा! हम लोग अभी कौमसोमोल की एक मीटिंग कर डालें! कौमसोमोल के लड़के-लड़कियां सब यहीं हैं। सुनने के लिए बाक़ी को बुला लेंगे। मीटिंग करके अभी झगड़े को निपटा डालें।"

मीटिंग शुरू होने की अल्योशा ने घोषणा कर दी।

"हमारा प्रस्ताव है," वालेंतिना बोली, "कि कौमसोमोल का हर सदस्य और सभी सच्चे सामूहिक किसान, दो-तीन दिन के भीतर ही तरकारी-बाग के लिए कम से कम तीन सौ 'पीट' के गमले बनायें। वासिली कुज़मिच गमलों के लिए 'पीट' कल ले आयेंगे। हमारे यहां काफ़ी खाद और खनिज-उर्वरक भी हैं। हम लोग तीन रात जम कर बैठ जायें तो काम पूरा हो जायेगा। अल्योशा काम के दूसरे औज़ार बना लेगा।"

वालेंतिना के प्रस्ताव पर देर तक और ज़ोरों की बहस जारी रही। तातिआना को छोड़ सभी बोल रहे थे। तातिआना भी बहस में भाग ले रही थी, पर कुछ अजीब ही ढंग से। लोग "पक्ष में" बोलते, तो वह चुप रहती। लेकिन लोग "विपक्ष" में बोलते तो ज़ोरों से सुबकने लगती।

वालेंतिना का प्रस्ताव पास हो जाने पर ही तातिआना ने रोना बंद किया। वह बोली:

"बीज बोने के लिए छप्परों का क्या होगा? गमले बन जायेंगे तो बीजों के लिए क्यारियां भी तो चाहिएं। हमारे यहां क्यारियां हैं, लेकिन उन्हें ढंकने को कांच की पटियां नहीं हैं।"

फिर ज़ोरों से बहस शुरू हो गयी।

"पेत्रो! ज़रा बाहर आ! एक बहुत ज़रूरी बात कहनी है!" फ्रोस्या ने आंख दबा कर पेत्रो को इशारा किया। दोनों बाहर चले गये।

क्सेनोफोन्तोवना बड़े आराम से घर में बैठी समोवर से चाय पी रही थी। आनेवाली आपत्ति का उसे कोई पता न था। मन में इस समय आनन्द ही आनन्द था। उस दिन फ्रोस्या सवेरे नरम पनीर, मक्खन और नमकीन खुम्बे बाज़ार ले गयी थी। उसका दुकन्दारी का ढंग देखकर मां बहुत खुश हुई थी। एक-एक कोपेक के लिए गाहकों से वह घंटों झगड़ती थी। वह गाहक को पहले चला जाने देती; फिर पुकार लेती! मर्द गाहकों पर आंखों का जादू चलाती। अपने माल की तारीफ़ों के ऐसे पुल बांधती कि एक मील तक उसकी आवाज़ सुन लो। ऐसे-ऐसे नाटक रचती कि देखते रह जाओ। कभी गाहक की ज़िद देख कर परेशान हो उठती; फिर परेशानी क्रोध में बदल जाती; फिर सहसा क्रोध की ऊंचाई से उतर वह दमित आत्म-सम्मान की अवस्था में आ जाती; फिर पलक मारते ही आत्म-सम्मान का स्थान दृढ़-निश्चय ले लेता। क्सेनोफोन्तोवना अपने को बहुत चतुर व्यापारी समझती थी। परन्तु

उस दिन वह अपने को भी भूल गयी थी और मौन प्रशंसा के भाव से बेटी को ही देखती रह गयी थी। प्याले से चाय को तश्तरी में डाल कर धीरे-धीरे सुड़कती हुई वह फ्रोस्या के गुणों के बारे में सोच रही थी। मन ही मन कह रही थी: "लड़की हज़ारों में एक है! उस दिन मेरे हिसाब से पचास रूबल ज़्यादा बना लिये उसने। लड़की क्या है, हीरा है!"

तभी धड़धड़ाती हुई फ्रोस्या झोंपड़ी में आई और सीधी ईंधन की कोठरी में जा घुसी। उसकी मां अपना सब धन-दौलत वहीं छिपा कर रखती थी। बिना कुछ बोले फ्रोस्या कांच की बड़ी-बड़ी पटियां निकालने लगी और प्योत्र को देने लगी।

पिछले साल फ्रोस्या ने आलुओं पर अच्छा पैसा पैदा किया था। उसने सोचा था कि अपनी खिड़कियां बदलवा कर उनमें किवाड़ों के बराबर पूरे-पूरे कांच के टुकड़े लगवायेगी। पड़ोस के गांव के एक सामूहिक फ़ार्म में, जहां फ्रोस्या की एक सहेली ब्याही थी, इस तरह की कांच की खिड़कियों का फ़ैशन चल गया था। फ्रोस्या इरादे की पक्की थी। सोच लिया कि कांच की खिड़कियां लगेंगी तो तुरत बाज़ार जाकर ऊंचे दामों पर कांच-फ़रोश से कांच खरीद लायी—पूरे एक हज़ार रूबल गिन आई।

क्सेनोफोन्तोवना को यह हाल मालूम हुआ तो सिर पीट लिया। लेकिन फिर जल्दी ही शांत भी हो गयी। लोग कांच खरीदने बाज़ार जाते थे, यहां उसके घर में रखा था। सोचा, मौका देख कर बेच डालूंगी। मनमाना दाम भी मिल सकता था।

उसने देखा कि फ्रोस्या घर की पूंजी लिये जा रही है तो चाय का घूंट गले में ही अटक गया और बोली:

"कहां लिये जा रही है यह?"

"फ़ार्म!"

"कितने में बेचा है?"

"हटाओ भी, अम्मा! हमेशा वही पुराना झगड़ा!" उपेक्षा से फ्रोस्या ने उत्तर दिया। "चल पेत्रो!"

फ्रोस्या जैसे आंधी की तरह आई थी वैसे ही चली भी गयी। क्सेनोफोन्तोवना को जैसे काठ मार गया। कुर्सी पर बैठी की बैठी रह गयी। फ्रोस्या के आंधी की तरह आने और फिर चले जाने से उसकी बुद्धि चकरा गयी। अपनी इस औलाद—इस भेंगी फ्रोस्या—की बातें उसकी समझ में ही न आती थीं। यह लड़की उसके लिए पहेली थी! मालूम होता था किसी दूसरे सांचे में ढली है!

"हे भगवान," क्सेनोफोन्तोवना बड़बड़ाने लगी, "इस लड़की को हो क्या गया है? कुछ समझ में नहीं आता! बाज़ार में कौड़ी-कौड़ी के लिए पागलों की तरह लड़ेगी और फिर हज़ारों उठा कर ऐसे बहा देगी कि कुछ पूछो मत!"

फ़ोस्या और पेत्रो कांच की बड़ी-बड़ी पटियां लिये मीटिंग में पहुंचे तो लोग मुंह बाये देखते रह गये।

"मेरी प्रार्थना है कि कोमसोमोल की मीटिंग मेरी यह तुच्छ भेंट स्वीकार करे!" बड़ी शान से फ़ोस्या ने कहा।

"हाय, प्यारी फ़ोस्या!" तातिआना चीख उठी और दौड़ कर फ़ोस्या से चिपट गयी। फ़ोस्या ने बड़ी अदा से अपना गोल गाल उसकी ओर घुमा दिया।

वालेंतिना अपनी भूल सुधारने के लिए जो कुछ कर सकती थी, करने लगी। अगले दिन उसने अपने पड़ोस के एक फ़ार्म से, जहां 'पीट' के गड्ढे थे, 'पीट' खोद लाने की आवश्यक व्यवस्था कर ली और लारी ड्राइवरों तथा कोमसामोल के लड़के-लड़कियों को लेकर 'पीट' लेने चल दी। उसने स्कूल के बच्चों को भी बटोर लिया। खाली पड़ी पुरानी झोपड़ी में, जहां सन की कुटाई हुई थी, अगली शाम तिल रखने को जगह न बची। कोमसोमोल के सभी सदस्य, लेना की अगुवाई में स्कूल के बच्चों का एक दल, वालेंतिना, प्रास्कोव्या और वासिलिसा—सभी वहां थे। तख्तों पर सैकड़ों नन्हें-नन्हें 'पीट' के गमले कतारों में सूख रहे थे।

तातिआना गोभी के पीछे बावली हुई फिरती थी। उसने नहीं किया तो बस जादू-टोना। उसने गमलों में राख का छिड़काव किया ताकि गोभी खराब न होने पाये। जब देखो उसके हाथ में थर्मामीटर रहता था। कभी थर्मामीटर को गमलों की मिट्टी में खोंस रही है, तो कभी छप्पर के नीचे क्यारियों की मिट्टी में और कभी मेड़ों में! किसान देख-देख कर हैरान थे कि यह क्या पागलपन है! गमलों में कल्ले फूट आये, तो तातिआना ने ऊपर का ढक्कन हटा दिया।

"होशियारी से, तातिआना! देखना कहीं बीज ठंड में सिकुड़ न जायें।" वालेंतिना ने चेतावनी दी।

"लेकिन खुद तुमने और दुन्या मौसी ने चुनने और लगाने को कहा था। मैंने जान-बूझ कर बीज घने बोये हैं; बीच में बहुत थोड़ी-थोड़ी जगह छोड़ी है। पाला खाये अंकुओं को निकाल फेंकूंगी और उनकी जगह नये बीज बो दूंगी। जो बचेंगे वे पाला झेल जायेंगे, मज़बूत होंगे, और चुने हुए होंगे।"

गमलों पर वह हरदम ऐसे छायी रहती जैसे मुर्गी अपने अंडे से रही हो। जब देखो तब ढक्कनों को खोला-मूंदा करती थी। वह कमज़ोर पौधों को निकाल फेंकती और नये बीज बो देती। कभी उनमें खाद डालती, कभी सींचती।

उसका इस काम का अपना निजी तरीक़ा था, जिसे देख कर नये आदमी की बुद्धि चकरा जाती थी। एक जगह खाद वाले बीज थे, तो एक जगह बिना खाद के; एक क्यारी में पाला झेल जाने वाले पौधे थे—इन्हें उसने औरों के मुक़ाबले ज्यादा खुला रखा था—तो दूसरी में गरमाहट में रखे गये पौधे।

उसे हर पौधे की अलग-अलग पहचान थी और उसने उनका नामकरण भी कर लिया था। एक छोटे से अंकुवे का नाम उसने 'शिशु-पायनियर' रखा था, क्योंकि वही सबसे पहला पत्तियों वाला अंकुवा था।

कई हफ्तों तो तातिआना के मुंह से गोभियों को छोड़ और कोई बात सुनाई ही न देती थी। तातिआना ने वासिली का सिर खा लिया। कभी उसे चटाइयों की ज़रूरत होती, तो कभी खाद की और कभी गोभियों के लिए मिला खेत उसके मन माफ़िक न होता तो आंखों में आंसू भरकर ढलवान पर धूप वाला खेत मांगने लगती।

वासिली ने कुछ मज़ाक और कुछ गम्भीरता में कहा : "आंसू बहाने का तरीका तूने अच्छा निकाल लिया है! सब काम आंसुओं के ज़ोर से? आंसुओं से 'पीट' के गमले बनवा लिये, आंसुओं से कांच मिल गया। तेरे आंसू तो हमारे लिए मुसीबत बन गये।"

तातिआना ने मुस्कराते हुए, आंसुओं से डबडबाती तिरछी नज़रों से, उसे देखा। सच पूछो तो वह रोनी लड़की नहीं थी। पर आंसू उसे एक ऐसा गुरु-मंत्र मिल गये थे जिनसे पहले भी कठिनाई की घड़ी में उसे सहायता मिली थी।

इस बीच गोभी के पौधे पनपते जा रहे थे। घुंघराली पत्तियोंवाले नन्हें-नन्हें मज़बूत पौधों को देख कर बागीचे वालों का मन खिल उठता था।

यों तो वसंत के दिन आ गये थे पर एक दिन हल्की बरफ़ पड़ गयी। बूढ़ा मातवेयेविच बहुत बिगड़ता हुआ वासिली के पास पहुंचा।

"देख लो! उस पागल लड़की ने सब पौधों को चौपट कर दिया है! पूरी कतार की कतार ठिठुर कर रह गयी है! अच्छी-भली गोभी हो रही थी। देखकर आंखें सिराती थीं!"

"तुमने कैसे सोच लिया कि उसी ने चौपट किया है?"

"अरे, मैं अभी क्यारियों के पास से आ रहा हूं। कुछ मालूम है? एक पूरी की पूरी कतार खुली पड़ी थी और पौधे बरफ़ से ढंके थे। मैंने तातिआना

को ललकारा! लाकर थर्मामीटर मेरी नाक के सामने अड़ा दिया! सुनती थोड़े ही है किसी की!"

वासिली ने तातिआना को बुलवाया।

"पौधों के साथ क्या खिलवाड़ कर रही है तू? उन्हें पाले से क्यों नहीं बचाया? मैंने क्या इसीलिए 'पीट' ढोयी थी, इसीलिए क्यारियां तैयार की थीं कि तू पौधों को बरबाद कर दे?"

"मैं उन्हें घड़ी और थर्मामीटर के हिसाब से पाल रही हूं!" तातिआना ने तड़ाक से उत्तर दिया।

"देखना कहीं ज़्यादा न पल जायें!"

"मेरा काम, मैं जानूं! आज सर्दी शून्य से भी दो डिगरी कम है। इससे उनका कुछ नहीं बिगड़ सकता।"

तातिआना लोगों के सामने बड़े गर्व से सिर उठाये घूमती थी। परन्तु घर पर, जब वह अकेली होती, तो तरह-तरह की भयानक आशंकाएं उसे घर दबातीं।

अल्योशा बिस्तर पर लेटने को सोच ही रहा था कि किसी ने किवाड़े खटखटाये।

वह बाहर आया तो चांदनी में तातिआना का चेहरा दिखाई दिया—बड़ी-बड़ी आंखों वाला और दयनीय।

"अल्योशा! ज़रा मेरे साथ चलकर गमलों को तो देख।"

"क्यों? क्या हुआ? यह कौन सा वक्त है गमले देखने का? आधी रात में?"

"मुझे डर लग रहा है, अल्योशा!... मुझे डर है कहीं पौधों को पाला न मार जाय!..."

"सब पौधों को?" अल्योशा ने भी घबराकर पूछा।

"नहीं, नहीं, सिर्फ़ पहली कतार को अल्योशा! एक कतार है जिस पर मैं नया प्रयोग कर रही हूं। उसी की मुझे बहुत फिक्र है! जानता है न, जिसे मैंने पाले से लड़ने के लिए तैयार किया है? चल जरा देखें, अल्योशा। उन्हें कुछ हो गया तो मैं तो वहीं मर जाऊंगी! मैं घर नहीं लौटूंगी! पौधों पर लेट जाऊंगी और वहीं जान दे दूंगी!"

अल्योशा ने लालटेन ली और दोनों चल दिये। बरफ़ पिघलने से बना कीचड़ रात में फिर जम गया था और रास्ता ऊबड़-खाबड़ हो गया था। खूब तेज़ ठंडी हवा चल रही थी। अल्योशा के हाथ की लालटेन हवा में झूल रही थी।

दोनों चुपचाप तेज़ी से चले जा रहे थे।

बाग़ में क्यारियों पर घना अंधेरा था। लालटेन की धीमी रोशनी कांच के तख्तों पर ही रह जाती थी। तख्तों से ज्यादा कुछ नहीं दिखाई पड़ता था।

एक कोने में एक मज़बूत सा पेड़ अंधेरे में चमक उठा।

"ओहो! यह हमारा 'शिशु पायनियर' है!" तातिआना बुदबुदायी।

"क्या कहा?" अल्योशा ने विस्मय से पूछा।

"सबसे पहले जो कल्ला फूटा था उसी का यह नाम है। अब खड़ा होना सीख रहा है! ज़रा देख तो अल्योशा! यह ज़रा भी नहीं झुका!"

"मुझे यक़ीन नहीं कि इसी तरह खड़ा रहेगा।"

"अल्योशा, मेरा खयाल है, गमलों को चटाइयों से ढंक दें!"

"एक मिनट उन्हें सर्दी सहना सिखाती है, दूसरे मिनट उन्हें रजाई ओढ़ाकर सुलाने की बात सोचती है। तू भी अजीब मुसीबत है। चल, घर जाकर आराम से सो।"

तातिआना आई थी तो कुछ तो करके जाती। अंधेरे में से चटाइयां ढूंढ़ कर उसने गमलों को ढंक दिया। रात भर चिन्ता के मारे उसे ठीक से नींद नहीं आई। सुबह आंखें खुलते ही पौधों के पास दौड़ी। वहां पहुंची तो उसे गमलों को देखने की हिम्मत नहीं हो रही थी। आंखें बन्द करके उसने अपना दिल कड़ा किया और फिर मन में कहा 'एक, दो, तीन'! फिर आंखें खोलीं।

सभी पेड़ खूब हरे-भरे और मज़बूत थे। सिर्फ़ दो या तीन मुर्झाये थे। तातिआना का मन पुलक उठा। उसने एक ठंडी सांस ली और गमलों के पास बैठकर पेड़ों के एक-एक पत्ते को ध्यान से देखने लगी।

खेतों में काम करने वाले लोग पास से गुज़र रहे थे। वे पौधों का हाल-चाल पूछते जाते थे।

"कहो, अब क्या हाल है?" फ्रोस्या ने मालिकाना ढंग से पूछा। जब से उसने बाग़ वाले दल को कांच की पटियां भेंट की थीं, वह पौधों पर अपना अधिकार समझने लगी थी।

"अच्छे हैं।" तातिआना ने शान्ति से उत्तर दिया।

"अब ज़रा ध्यान रखना! कहीं पौधों को पाला न मार जाये! मातवेये-विच तक को फिक्र हो गयी है!" फ्रोस्या ने आदेश दिया।

अब तक मातवेयेविच और अल्योशा भी वहां आ पहुंचे थे।

"अरे! ये पेड़ तो अब तक खड़े हैं!" मातवेयेविच ने आश्चर्य से कहा।

"हूं!"

"कोई सोच सकता था? पाले में मुरझाये तक नहीं!"

"बड़े तगड़े पड़े हैं!" तातिआना ने कांच की पटियों पर गाल चिपकाते हुए कहा। "नन्हें-नन्हें कैसे प्यारे लग रहे हैं!"

"अरे इन्हें क्यों चूम रही है? मुझी को चूम ले न!..." पेत्रो ने दांत निकाल कर कहा। "चलो, लड़को चलो!"

खेत जाने वालों के दल अभी गये ही थे कि अवदोत्या वहां आ पहुंची।

"क्यों तातिआना? मुरझाये तो नहीं?"

"बिलकुल हरे हो रहे हैं!"

वसंत ऋतु के सूर्य की किरणें गरम क्यारियों की कांच की पटियों पर छिटक रही थीं। आंखें चौंधिया जाती थीं। आंखें मिचमिचाती हुई अवदोत्या झुक कर क्यारियों को ध्यान से देखने लगी।

"सूरज सामने पड़ रहा है। मुझे तो दिखाई नहीं देता।" फिर सहसा प्रसन्नता से चिल्ला उठी: "अरे हां!... दिखाई पड़ रहे हैं!... कितने अच्छे लग रहे हैं! बिलकुल सीधे खड़े हैं! बड़े खुश नज़र आ रहे हैं! अब बढ़ भी तो गये हैं!"

नन्हे-नन्हे हरे पौधे अपनी कोपलें पसार कर सूर्य की किरणों को पकड़ने का प्रयास कर रहे थे। उनके इस प्रयास में इतनी उत्सुकता और जीवन की ऐसी चाह थी कि अवदोत्या उन पर से आंखें हटा ही नहीं सकी। उन्हें जी भर देख लेने के बाद ही वह वहां से हटी। लेकिन, दिन भर दूसरे अनेकों कामों में व्यस्त होने पर भी उसकी आंखों में भीगी ज़मीन, उस पर छितरे फेनिल बरफ़ के धब्बे, गरम क्यारियों में कांच की पटियों से छन-छन कर पहुंचती सूर्य की किरणें और तनी हुई नन्हीं कोपलों की हरियाली समायी रही।

"ताज्जुब है कि बार-बार मुझे उन पेड़ों का ही खयाल क्यों आ रहा है? जाने क्यों वे भूलते ही नहीं!" अवदोत्या सोच रही थी। "हमने बहुत देर से उन्हें बोया, फिर भी खूब अच्छे उग आये हैं। पाले से भी नुकसान नहीं हुआ। अब धरती चीर कर निकल आये हैं तो उन्हें कोई रोक भी नहीं सकता! लगता है जैसे कोई मंगल-संदेश लेकर आये हैं। किसके लिए है यह संदेश? शायद सामूहिक खेत के लिए! या मेरे लिए! नहीं-नहीं! अपनी बाबत सोचना ठीक नहीं!"

अपने बारे में विचार को उसने एक तरफ हटाया और उसे ठुकरा कर दूर कर दिया।

"ये हमारे फ़ार्म के लिए शुभ-संदेश लाये हैं! यह नये वर्ष का मंगल शुभारम्भ है।"

२. गति

फ़रवरी प्लेनम के निर्णयों पर विचार करने के लिए हुई सभा के बाद फ़ार्म के जीवन में सचमुच दूसरी लहर आ गयी थी। लोगों की रस्सी बटने की बीमारी, जिस पर वासिली को इतनी खीझ आती थी, अपने-आप मिट गयी। अब सन-कुटाई वाली झोंपड़ी में लगातार भीड़ बनी रहती थी। उस झोंपड़ी का नाम ही सन कुटाई की झोंपड़ी पड़ गया था, गोकि सन का काम कभी का पूरा हो चुका था और सन शहर भेज दिया गया था। सन कुटाई की झोंपड़ी में अब बीसों ऊपरी काम होते रहते थे। यहां चलनियां रखी रहतीं थीं और यहीं अक्सर शाम को कौमसोमोल के लड़के बैठकर बीजों के लिए बढ़िया दाने चुनते थे। यहीं अल्योशा का कृषि-शिक्षा का काम चलता था और यहीं बैठकर दूध दुहने वाली औरतें गोशाला में पहनने के चोगे, तौलिये और परदे तैयार करती थीं! यहीं बैठकर बूढ़े लोग अस्तबल के टूटे साज़ों और काठियों की मरम्मत करते थे।

वासिली को लगता मानो कोई भारी, चरमराती गाड़ी जो दलदल में फंसी हुई थी और जिसे निकालने की अरसे से और कठिन मेहनत की जा रही थी, दल-दल से निकलकर कल्पनातीत गति से सड़क पर चल दी थी।

सबसे आश्चर्य की चीज़ थी उसकी अद्‌भुत गति। वासिली जानता था कि यह गति स्वाभाविक थी, कि चारों तरफ़ की हर चीज़ ने उसे उबारने में सहायता की थी, कि सामूहिक फ़ार्म की ताक़तें और अनुभव नयी चीज़ नहीं थे! फ़ार्म मानो स्वप्नावस्था से जाग रहा था! फिर भी इस चमत्कार को देखकर वासिली चकित हुए बिना नहीं रह सका।

कुछ ही दिनों पहले तक बीज-गोदाम में छोटे दानों का, कूड़े-करकट से भरा, बीज रहता था। गोशाला में भूखी गायें दर्द भरी आवाज़ में रम्भाया करती थीं। औज़ार और मशीनें छप्परों के नीचे टूटी-फूटी दशा में एक-दूसरे पर सुची जंग खाया करती थीं। किसान बड़ी अनिच्छा से और सुस्ती से काम पर जाते थे। लेकिन अब? अब रंग ही दूसरा था। फ़ार्म को रद्दी गल्ले के बदले जो बीज मिले थे वे बड़े दाने के और खूब साफ़-सुथरे थे। गोशाला में कुछ भूसा खरीद लिया गया था और कुछ सहायता के रूप में सरकार से मिल गया था। गायों की हालत सुधर गयी थी। मशीनों और औज़ारों की मरम्मत हो गयी थी। किसान भी ठीक समय पर काम पर पहुंच जाते थे।

सामूहिक फ़ार्म में अभी तक सैकड़ों समस्याएं सामने थीं, परन्तु सफलताएं भी कम नहीं थीं। कुछ नयी बातें ऐसी थीं जो फ़ार्म की समृद्धि के

दिनों में भी नहीं थी। बिजली के इंजन, आवश्यकता पर वर्षा करवाने के यन्त्र और खनिज उर्वरकों का ऐसा भंडार फ़ार्म के पास पहले कभी नहीं था।

नया वसंत फ़ार्म के जीवन में मशीनों और खेती की उन्नत विधियों को प्रारम्भ करने वाला वसंत था।

उक्रेन में पार्टी की कार्यकारिणी के लेक्चरर का सामयिक समस्याओं पर व्याख्यान होने वाला था। वासिली इस व्याख्यान में जाने के लिए लारी की प्रतीक्षा कर रहा था। लारी गोदाम से तेल वग़ैरा ले रही थी। वह भी टहलता हुआ उसी ओर चला।

अप्रैल का महीना शुरू हो गया था। उस दिन जाड़े और वसंत का संगम सा हो रहा था। बरफ़ पड़ रही थी। जाड़ा हो रहा था। पर हवा में कुछ गरमी और नमी थी। बादलों से घिरे आकाश से बरफ़ के गाले धीरे-धीरे गिर रहे थे। वासिली मशीनों के गोदाम के सामने आकर ठिठक गया और जेब में चाबियां ढूंढ़ने लगा। चाबियां मिल गयीं। वासिली ने भौंहों और पलकों पर से बरफ़ झाड़ी और लारी की ओर देखा। धुन्द में लारी और लारी को घेरे खड़े लोग अस्पष्ट से दिखाई दे रहे थे। सधे कदमों से वासिली गोदाम की ओर चल दिया।

गोदाम में नयी-नयी मशीनें रखी थीं। यहां अनाज छानने की मशीन, लुनाई की मशीन, बिजली के दो इंजन और बनावटी वर्षा कराने वाले बिजली के यंत्र थे। ये यंत्र फ़ार्म को ज़िला पार्टी कमिटी की सहायता से उधार मिले थे। वासिली पिछले सप्ताह स्वयं इन चीज़ों को लाया था। यहां मौजूद चीज़ों का ध्यान उसे सदा ऐसे ही रहता, जैसे किसी निकट प्रियजन का। जब भी मन में आता वह गोदाम खोलकर मशीनों को देखने पहुंच जाता। इस गोदाम की चाबी वह कभी किसी को नहीं देता था। अकेला खड़ा वह इस बहुमूल्य निधि से अपनी आंखें तृप्त किया करता था। अब भी वह इस आकर्षण को हरा नहीं पाया। उसने भारी ताले को खोला और अन्दर चला गया। खुले दरवाज़े से आते धुंदले प्रकाश में धातु की बड़ी-बड़ी मशीनें रहस्यमय ढंग से चमक रही थीं। वे गतिहीन, भारी-भरकम और ऊंघती सी लगती थीं; फिर भी जीवन और गति के लिए किसी भी समय उठ खड़ी होने को तैयार थीं। उनकी गति-हीनता में एक प्रकार की प्रसुप्त शक्ति निहित थी और यही शक्ति वासिली को बरबस अपनी ओर खींच लेती थी।

मशीनों से वासिली को तभी से प्यार था जब उसने पहला ट्रैक्टर देखा था। उम्र बढ़ने के साथ-साथ मशीनों के प्रति प्रेम ने आवश्यकता का रूप ले लिया। बिना मशीनों का खेत उसे उतना ही सुनसान और वीरान लगता जैसे बिना बासिन्दों का मकान। मशीनों की ओर देखते हुए वह उस चिर-प्रतीक्षित घड़ी की कल्पना में डूब जाता था जब बिजली के इंजन लग जायेंगे और छनाई-फटकाई का काम बिजली से होने लगेगा। नये खलिहान और बिजली की मशीनों का उसका स्वप्न दिन-प्रति-दिन मूर्तरूप लेता जा रहा था। कुछ दिनों पहले इसका एकमात्र चिन्ह कटाई की जगह रखे वे लट्ठे थे, जिन्हें जाड़ों की उस सुबह, वासिली ने लालटेन की रोशनी में देखा था। अब ये लट्ठे, छीले और संवारे हुए, टीले के पास रखे थे और यहां गोदाम में बिजली के इंजन खड़े थे।

अब तक वासिली को इन मशीनों की हुंकार सुनने और उनके गतिमय जीवन को देखने का अवसर नहीं मिला था, तो भी वह उनके ठंडे शरीर पर हाथ फेर सकता था और उनकी हर तरह से जांच कर सकता था। धूल से बचाने के लिए उसने उन्हें नये बोरों से ढंक दिया।

वासिली गोदाम से बाहर निकला तो उसके चेहरे पर संतोष, रहस्य और प्रसन्नता का भाव था। उसका चेहरा बिलकुल नन्हीं दुन्या की तरह लग रहा था जब अपनी मुठ्ठी में मिठाई छिपाये, गर्दन टेढ़ी किये, वह बड़े रहस्यमय ढंग से पूछती थी :

"बताओ... मेली मुठ्ठी में क्या है...?"

वासिली जिस समय लारी के पास आया उसी समय वालेंतिना और मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन का मैनेजर प्रोखारचेन्को भी वहां पहुंच गये। प्रोखारचेन्को भारी-भरकम शरीर वाला आदमी था! चेहरे पर लम्बी-लम्बी मूंछें थीं।

तीन महीने पहले मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन नयी जगह बदल दिया गया था। कुछ साज-सामान और मशीनें बच रही थीं। उन्हीं को लेने प्रोखार आया था।

"चलो भाई चलो! लारी में बैठो!" प्रोखारचेन्को बोला। "तू भीतर बैठेगी न वाल्या?"

"नहीं चाचा। मैं बाहर बैठूंगी। मुझे भीतर बैठना अच्छा नहीं लगता।"

"तो मैं भीतर बैठ जाऊंगा।"

प्रोखारचेन्को ने वालेंतिना को उठाकर लारी पर ऐसे रख दिया जैसे वह हल्का फूल हो। वह वालेंतिना का दूर का रिश्तेदार था और अब भी वालेंतिना को वैसे ही मानता था जैसे बीस बरस पहले।

वासिली एक अपरिचित स्त्री की बगल में जा बैठा। लारी धीमी चाल से घूमकर सड़क पर आ गयी। अब वह खेतों के बीच से होकर चौड़ी सड़क पर भागती जा रही थी।

वासिली चुप था। गोदाम में रखी नयी मशीनों और पिछले कुछ दिनों में फ़ार्म में काम की ठीक रफ्तार से उसके मन में मौन प्रसन्नता और आल्हाद छाया हुआ था। टोकरियों और बक्सों के बीच दबे चुप बैठे-बैठे कभी उसे ऊंघ आने लगती और कभी जाग कर आत्म-तृप्ति से, जो उसकी एक बहुत बड़ी कमज़ोरी थी, वह सोचने लगता :

"अब देखो फ़ार्म की हालत !... करने से पता लगता है। मुझे काम संभाले सिर्फ़ छः महीने हुए हैं ! देख लो क्या कायापलट कर दी है ! चौतरफ़ा प्रगति ! सब तरफ़ कामयाबियां ही कामयाबियां ! बोवाई की पूरी तैयारी हो चुकी है। बीज छाने-बिने तैयार हैं। औज़ारों की मरम्मत हो चुकी है। खाद खेतों में पहुंचायी जा चुकी है। खनिज उर्वरक तैयार हो गये हैं। बिजली-घर में दूसरा जेनरेटर लग चुका है ! मशीनें पहुंच गयी हैं ! इसी को कहते हैं ढंग से काम करना ! यह हरेक के बस का काम नहीं है। जो प्रधान फ़ार्म को दलदल से निकाल दे, समझो ज़रूर क़ाबिल आदमी है। लोग क्या यों ही मुझे मानते हैं ? तभी तो पेत्रोविच फ़ार्म पर इतना ध्यान देता है।"

वासिली भूल गया था कि मशीनें और जेनरेटर आन्द्रेई ने ही उसके फ़ार्म को उधार दिलवाये थे और अनाज के निरीक्षक ज़ागोतज़ेर्नो ने उसके फ़ार्म का खराब गल्ला लेकर बदले में बढ़िया बीज दे दिया था। वासिली इन सब सफलताओं का श्रेय अपने को देता था और समझता था कि सब कुछ उसकी ही करनी है।

ज़िले के समाचार-पत्र में पहली मई फ़ार्म पर एक लेख छपा था जिसमें फ़ार्म के काम में सुधारों और उन्नति तथा वसंत की फसलों के लिए तैयारियों की बहुत प्रशंसा की गयी थी। इस लेख को पढ़कर वासिली का दिमाग़ और भी चढ़ गया था। वासिली कल्पना कर रहा था कि ज़िला कमिटी के दफ्तर में पहुंचते ही आन्द्रेई खड़ा हो कर प्रसन्नता से उसका स्वागत करेगा और दफ्तर में काम करने वाले लोग उसे बधाइयां देंगे। वासिली ने वालेंतिना की ओर देखा। उसकी इच्छा हो रही थी कि अपनी सफलताओं के सम्बंध में वालेंतिना से कुछ बातें करे। परन्तु वालेंतिना एक बक्स के सहारे गुड़ी-मुड़ी बनी ऊंघ रही थी।

"क्या मज़े से लेटी है ! बिलकुल बिल्ली की तरह !" वासिली सोच रहा था।

कैसी भी असुविधा की जगह क्यों न हो, वालेंतिना में आराम का 'इंतज़ाम' कर लेने की अद्भुत क्षमता थी। आराम और ऊंघ से एक क्षण में ही उठकर फिर चुस्ती और तत्परता से काम में जुट जाने का भी उसमें अद्भुत गुण था।

"सो रही है?" वासिली ने धीरे से पूछा।

वालेंतिना ने उत्तर नहीं दिया, हालांकि वह सो नहीं रही थी।

आज आकाश बादलों से घिरा था। ढलवान पर फैले बरफ़ से ढंके नंगे खेत और गालों पर पड़ते बरफ़ के नम फ़ाहे—सभी कुछ ऐसा उदासी भरा था कि वालेंतिना का मन उठने या बोलने को नहीं कर रहा था।

भूरा शॉल ओढ़े वासिली के पास बैठी अपरिचित स्त्री धीमे किन्तु उदास स्वर में गा रही थी :

किन्तु घुंघरुओं की झनकारें
दुख-सन्ताप भगा देंगी,
मेरी थकित-व्यथित आत्मा को
फिर झकझोर जगा देंगी!

गाने का स्वर और शब्द एक-दूसरे से घुल-मिल रहे थे। वालेंतिना को यही अच्छा लग रहा था। गाने की मद्धिम और कम्पायमान धुन उदासी भरे वातावरण और खेतों पर छायी निस्तब्धता के अनुरूप ही थी।

आकाश से गिरती बरफ़ आंखों के सामने परदे की तरह छा रही थी। लारी वालेंतिना को हिलोरें दे रही थी और उस स्त्री का उदासी भरा गाना उसे लोरी जैसा लग रहा था।

सहसा बड़े ज़ोरों से सीं-ई-ई की आवाज़ हुई! फिर धातु की चीज़ों के टकराने का खनाका सुनायी दिया! आदमियों की आवाज़ें भी सुनायी दे रही थीं। लारी रुक गयी। वालेंतिना उठ बैठी। ठीक उसके सामने आयताकार नयी इमारतें खड़ी थीं। ऑटोवेल्डिंग का ज्वलंत प्रकाश आंखों को चकाचौंध कर रहा था और बरफ़ का परदा नीले कोन बन-बनकर पिघल रहा था। एक छोटी बाड़ के साथ-साथ एक लम्बी सी छत थी, जिसके नीचे मशीनें इस तरह कतार बांधे खड़ी थीं, जैसे अभी परेड शुरू करनेवाली हैं। तैयार खड़े ट्रैक्टर ऐसे जान पड़ते थे जैसे कूद कर बरफ़ के मैदानों में दौड़ जाने के लिए उतावले हो रहे हैं। परों जैसी अनियोंवाले कल्टीवेटर-हल ऐसे लग रहे थे जैसे उड़ते हुए पक्षियों को पकड़ लिया गया हो। उनकी अवरुद्ध गति का आभास हर रेखा से हो रहा था। खेती के सभी कामों को एक साथ और अपने-आप करनेवाली

एक बहुत बड़ी कम्बाइन मशीन—एकदम नयी और चमकदार—छोटी-छोटी 'उत्तरी' कम्बाइनों से घिरी खड़ी थी।

"ओह!" वालेंतिना के मुंह से निकला।

नया मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन उसने पहले नहीं देखा था। धातु के हाथ-पांव के घमासान में, बीच-बीच में लोहे को पिघलाने वाली ज्वालाओं के प्रकाश में, फ़ौजी ढंग से खड़ी मशीनों का जमघट बरफ़ छायी निस्तब्धता को चीरकर सहसा ऐसे प्रकट हो गया कि वालेंतिना विस्मय से देखती रह गयी।

ग्रोखारचेन्को लारी से उतर कर वालेंतिना की ओर आया और हाथ बढ़ाकर बोला :

"आओ, तुम्हें उतार लूं। तुम्हें भीतर बैठना था। सर्दी लग रही है क्या? ... मैं पूछता हूं, क्या सर्दी लग रही है?"

"चाचा! मैं भी मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में काम करूंगी!" वालेंतिना ने ग्रोखारचेन्को की बात का उत्तर दिये बिना लाड भरे उनींदे स्वर में कहा। दूसरे ही क्षण उसने सिर झटक कर ऊंघाई दूर की और ग्रोखारचेन्को की सहायता के बिना ही लारी से कूद कर मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन की ओर भागी।

जब तक लारी से सामान उतारा जा रहा था और तेल भरा जा रहा था वालेंतिना मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन को देखती रही। कारखाना खूब बड़ा, भरा-पूरा था जिसमें और भी नयी मशीनें लग रही थीं। तैयार सामान बाहर भेजने का कमरा; मशीनों की परीक्षा करने की खास जगहें; पत्थर के चबूतरों पर लगे पैट्रोल के बड़े-बड़े पम्पोंवाला पैट्रोल स्टेशन—इतना बड़ा सरंजाम देखने का अवसर वालेंतिना को पहले कभी नहीं मिला था। इसकी तुलना में सामूहिक फ़ार्म का काम उसे बहुत मामूली और पुराने ढंग का लग रहा था। एक विचित्र प्रकार की लालसामय अशांति ने उसे घर दबाया। प्रशंसा और ईर्षा दोनों से मिलती-जुलती भावना उसे कारखाने से पैट्रोल स्टेशन तक, वहां से गोदाम तक और फिर वापिस कारखाने तक दौड़ा रही थी। वह इस समूची सम्पत्ति की अधिकारिणी बनना चाहती थी। उसे अपने ऊपर क्रोध आ रहा था कि उसने पहले इस चमत्कारी शक्ति की ओर ध्यान नहीं दिया और अपने हाथ से उसे निकल जाने दिया। जिस समय वालेंतिना पहली मई फ़ार्म में आई थी, मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन वहीं था। गांव के किनारे, खड्ड के पास कई छोटे-छोटे मकानों में कुछ पुरानी-धुरानी मशीनें रखी थीं और वालेंतिना ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। वह भी वैसा ही मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन था जैसे और। बोवाई का समय आने पर वहां वाले लोग फ़ार्म को एक ट्रैक्टर दे देते थे और फसल कटाई के दिनों में कुछ दिनों के लिए कम्बाइन मशीन उधार दे देते थे। मामूली सी जगह थी और उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।

लेकिन यहां तो दूसरा ही चमत्कार दिखाई दे रहा था।

"अरे, क्यों यहां-वहां भागी फिर रही है? क्या चाहिए?" प्रोखारचेन्को ने पुकारा। "आ ज़रा बैठ ले! अभी फिर चलनेवाले हैं।"

प्रोखारचेन्को दफ्तर के बाहर एक बेंच पर बैठ गया और तेल के पीपों के लारी में लद जाने की प्रतीक्षा करने लगा। वालेंतिना आकर उसके पास बैठ गयी।

"भई, जल्दी करो न!" प्रोखारचेन्को ने हांक मारी।

पीपों के आपस में टकराने, लोहा पिघलाने वाली लपटों की सुसकार और खराद की मशीनों की आवाज़ सुनाई दे रही थी।

"अरे, दूसरे ट्रैक्टर की मरम्मत का कागज़ कहां है?" भीतर कोई चिल्लाकर कह रहा था। "मरम्मत का कागज़ कहां फेंक दिया?"

"ओ वान्या! चल, बियरिंग लगाने का इन्तज़ाम कर।" किसी के भर्राये गले की आवाज़ सुनायी दी।

वालेंतिना प्रोखारचेन्को के पास बैठी हुई चुपचाप लोगों की आवाज़ें और मशीनों की खड़खड़ाहट सुन रही थी। उसके मन से अशांति दूर नहीं हो रही थी। लारी में बैठी अपरिचित स्त्री का उदासी भरा गीत उसे याद आ रहा था। वह उसी गीत को गुनगुनाने लगी:

किन्तु घुंघरुओं की झनकारें
दुख-सन्ताप भगा देंगी,
मेरी थकित-व्यथित आत्मा को...

जब उसे ध्यान आया कि वह गीत गा रही है, तो अपने पर झुंझला उठी:

"ऐसी-तैसी इस गीत की! दिमाग़ से निकलता ही नहीं। रखा क्या है इसमें! चाचा, जाने क्यों मुझे अब भी सिहरन हो रही है...!"

प्रोखारचेन्को ने मूछों पर ताव दिया।

"क्यों क्या बात है?"

"चाचा, इस जंगल के पीछेवाली ज़मीन तुम्हें याद है न? वहां मैदानों में तीन सामूहिक फ़ार्मों के खेत हैं। अगर तीनों को मिला दिया जाय और ट्रैक्टर चलवा दिया जाय तो? ज़रा सोचो! मज़ा आ जायेगा!"

वह चुप हो गयी और फिर वही "घुंघरुओं की झनकारों" वाला गीत गुनगुनाने लगी। फिर सहसा प्रोखारचेन्को से बोली:

"चाचा, अगर कम्युनिस्ट समाज में भी लोगों को परेशानियां रहीं तो जानते हो कैसी होंगी?"

"कैसी होगी?" प्रोखारचेन्को ने विस्मय से भतीजी की ओर देखा। क्या यह वही घुटनों तक घांघरी पहने बत्तखें चरानेवाली बालया थी जिसे वह भूल नहीं पाता था?

"कैसी मेरी हैं ... चलते जाओ, चलते जाओ! काम करते जाओ और सोचते जाओ—काम अच्छा हो रहा है, ठीक हो रहा है। अचानक देखते क्या हो कि ज़िन्दगी आगे निकल गयी है। तब समझ में आता है कि तुम ठीक काम नहीं कर रहे थे, कि तुम ज़्यादा काम कर सकते थे और ज़्यादा ठीक काम कर सकते थे! अब तुम्हीं सोचो, चाचा! ज़िले के भूमि-विभाग का कृषि-विशेषज्ञ है ही क्या चीज़! पुराने दर्जे का आदमी! और मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन का कृषि-विशेषज्ञ? हां, वह ज़रूर हुनर का आदमी होता है। उसके हाथ में मशीनें होती हैं। ट्रैक्टर ड्राइवरों की पूरी फ़ौज उसके मातहत होती है! काश तुम जानते होते, चाचा, कि अचानक यह एहसास होने पर कैसा लगता है कि अब तुम पुराने दर्जे के आदमी हो गये हो!"

प्रोखारचेन्को ज़ोर से हंस पड़ा।

"अरी चल 'पिछड़े दर्जेवाली'! अभी तेरी उम्र ही क्या है? तेरे लिए काम करने के कितने मौक़े आयेंगे! तू होशियार लड़की है! है न? लेकिन तेरा कहना ठीक है। आज-कल मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में सबसे महत्वपूर्ण काम कृषि-विशेषज्ञ का ही है। यही बात पार्टी प्लेनम के फ़ैसलों में कही गयी है। लेकिन देखें, कृषि-मंत्रालय की नींद कब टूटती है! तब तक तो इंतज़ार करना ही होगा।"

दोनों ने कृषि-मंत्रालय की जी खोलकर आलोचना की। फिर प्रोखारचेन्को ने वालेंतिना को वचन दिया:

"हमारे यहां नये आदमी रखने की मंज़ूरी आने की देर है कि बस पहले तुम्ही को बुलाऊंगा!"

वालेंतिना की तरह ही वासिली ने भी मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन का एक चक्कर लगाया। यहां बहुत सी चीज़ें उसके लिए नयी थीं! फिर भी बहुत सी चीज़ों से उसका जवानी के दिनों से ही लगाव और परिचय था। आज भी उसका मन उन्हीं के लिए ललक रहा था।

मरम्मत खातों में मशीनों की खड़खड़ाहट, ट्रैक्टर-ड्राइवरों का बड़ी चुस्ती से और नाप-जोखकर काम करने का खास तरीका, शेडों के नीचे खड़े बड़े-बड़े ट्रैक्टर—सभी चीज़ें वासिली को बहुत प्रिय लग रही थीं।

दुर्धर्ष और तेज़ गति से चलकर बंजर धरती का हृदय विदारने और उसे जोत डालनेवाले ट्रैक्टरों से वासिली को विशेष आत्मीयता थी। ट्रैक्टरों के भारीपन में, उनकी सीधी ज़बरदस्त चोट में, उसे अपने स्वभाव की अनुरूपता दिखाई

देती थी। उसे उनके बिना अपना जीवन अधूरा मालूम होता था। परन्तु उसे सबसे ज्यादा आकर्षक फसल कटाई की स्वयं-चालित मशीनें लग रही थीं जो उस वर्ष पहली बार मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में आई थीं। उसने कभी इन मशीनों पर काम नहीं किया था और उसे अपनी पुरानी साथी नास्तासिया ओगोरोद्निकोवा को कम्बाइन के पास खड़े देखकर स्पर्धा हो रही थी। नास्त्या के पास जाकर उसने कहा :

"लाजवाब मशीन है।"

नास्त्या अपने ही खयाल में डूबी हुई थी। वासिली की बात सुनकर उसने उसकी तरफ देखा तक नहीं। अपने-आप बड़बड़ाने लगी :

"पट्टे से चलेगी ?... ऐसी-तैसी ! मैं तो चेन लगाऊंगी ! पट्टे बिलकुल बेकार हैं ! पहली नाली में ही टूट जायेंगे !"

वासिली इस असाधारण मशीन को बड़े कौतूहल और आदर के भाव से देख रहा था।

"मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन से तो मेरा नाता ही टूट गया है !" वह सोच रहा था। "यहां खड़ा आंखें फाड़-फाड़कर स्कूली बच्चे की तरह मशीन को देख रहा हूं। मेरी तो अकल चकरा गयी है। और नास्तासिया इसे ऐसे चलाती है जैसे ज़िन्दगी भर इसी को चलाती रही हो। नास्तासिया के लिए यह उतनी ही जटिल है जैसे बुढ़िया अगाफ्या के लिए चाय की पतीली—बस !"

नास्त्या में भी उसे मशीनों से उतना ही प्यार और शौक दिखाई दे रहा था जितना खुद उसे था। वह बड़ी उत्सुकता से उसके हाथों को चुस्त और मर्दाने ढंग से पुर्ज़ों को हिलाते-डुलाते देख रहा था। नास्त्या की सुन्दर काली भौंहें सिकुड़ी हुई थीं। हल्के-हल्के चेचक के दागों से भरे उसके चौड़े माथे पर काले बालों की एक लट झूल आई थी। उसके चेहरे से झुंझलाहट प्रकट हो रही थी। कम्बाइन को वह वासिली की तरह कौतूहल और आदर से नहीं देख रही थी। वह उसे मालिकाना और आलोचनात्मक ढंग से हिला-डुला रही थी।

"पहली बार देखोगे तो समझोगे कि बहुत बढ़िया मशीन है। लेकिन ऐब ही ऐब भरे हैं।"

"अभी तो कारखाने में पहली बार बनायी गयी है। सब बातें ठीक होने में कुछ देर तो लगेगी ही।" वासिली ने मशीनों की ओर से वकालत की।

"मुझे इससे क्या मतलब ? बसंत में पहली नाली में ज़रा भी गड़बड़ हुई तो मुझे कोई नहीं माफ़ करता ! मुझसे तो सब यही उम्मीद करते हैं कि जोताई करती जाऊं। ज़रा देखो इन पट्टों को। इन्हें तो बदलना ही होगा।"

वासिली जानता था कि नास्त्या को चीज़ों में अपने ढंग से परिवर्तन करने की खब्त है। मशीनों में ही क्या, जहां भी वह काम करती, कोई न कोई नयी चीज़ डाले-निकाले बिना नहीं मानती थी। जहां भी काम करती, हर चीज़ अपने ढंग से करती। इसीलिए मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन तथा ज़िले और क्षेत्र में लोग उससे डरते थे और उसकी इज़्ज़त करते थे।

"दिल चाहता है कि एक बार इन कम्बाइन बनाने वालों के कान खोल दूं कि यह क्या तमाशा किया करते हो! उन्हें कम्बाइन चलानेवालों से कभी पाला नहीं पड़ा न!" मशीन छोड़ सीधी खड़ी होकर एक कपड़े से हाथों में लगी कालिख और चिकनाई पोंछते हुए नास्त्या ने कहा। सर्दी के कारण सुर्ख हुए हाथों को साफ कर नास्त्या ने माथे पर की लट को ठीक किया और फिर आंखें सिकोड़कर कम्बाइन को ध्यान से देखने लगी। उसके चेहरे पर उत्साह और प्रसन्नता की मुस्कराहट नाच रही थी।

"फिर भी चीज़ बढ़िया है!..." उसे कहना ही पड़ा।

"हां! और इसे चलानेवाली भी!" सम्मोहित सा उसकी ओर देखता हुआ वासिली कह ही बैठा।

नास्तासिया से वासिली का परिचय वर्षों पुराना था। परिचय ज्यों ज्यों पुराना होता जाता था वासिली को नास्त्या और अधिक अच्छी जान पड़ती थी। उसके मन में एक टीस सी उठती और वह सोचता—"यह थी मेरे लायक! अगर मेरी और नास्त्या की जोड़ी बन गयी होती तो हम भी कुछ करके दिखा देते!" नास्त्या मानो वासिली की भावना ताड़ गयी थी। उसने वासिली की ओर कुछ क्रोध भरी आंखों से देखा फिर उसे खयाल से उतार दिया। वह फुर्ती से लोहे की सीढ़ी पर चढ़ चली। ऊपर पहुंचकर वासिली की ओर घूमकर देखा और सदा की भांति चपलता से मुस्कराकर बोली :

"अब तो कम्बाइन चलाने की तबियत होती है। ट्रैक्टरों में क्या रखा है?"

"हम तो ट्रैक्टर के ही लायक हैं! तुम कम्बाइन चलाओ!" वासिली ने प्रशंसापूर्ण उलाहने के भाव से कहा!

"क्यों?"

वासिली इस 'क्यों' का उत्तर नहीं दे पाया। पर उसे लग रहा था कि नास्त्या का स्थान कम्बाइन की ऊंची गद्दी पर है, न कि चपटे ट्रैक्टर पर।

"अरे ओ वासिली कुज़मिच!" प्रोखारचेन्को ने आवाज़ दी। वासिली लारी की ओर लौट चला।

मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन से भी कई औरतें और मर्द वालेंतिना और वासिली के साथ उसी लारी से व्याख्यान सुनने जा रहे थे। वासिली के साथ ही

स्टेशन का मुख्य कारीगर सेम्योनोव बैठा था। सेम्योनोव दुबला-सा आदमी था। सिर के बाल काले थे। वह एक काला कोट पहने था जिसके कालर पर अस्तरखानी फर लगी हुई थी। सिर पर टोपी भी अस्तरखानी थी। गले में एक हरा गुलूबन्द यों ही लपेटा हुआ था जिसके दोनों छोर हवा में उड़ रहे थे।

वासिली इस भड़कीले गुलूबन्द और इंजीनियर को तिरछी नज़रों से देख रहा था। कारीगर से वासिली का पुराना परिचय था। परन्तु उसे इंजीनियर की अकड़ और शेखी नहीं सुहाती थी।

"इस साल मैं काम का संगठन दूसरे ढंग से कर रहा हूं।" कारीगर वालेंतिना से कह रहा था। "सब मशीनें और औज़ार मेरी देख-रेख में रहेंगे। पिछले हफ्ते आन्द्रेई प्रान्तीय प्रतिनिधियों के साथ मेरे कारखाने में आये थे। 'तुम तो चमत्कार कर रहे हो, इवान पेत्रोविच!' उन्होंने कहा था, 'तुम्हारा कारखाना प्रांत में सबसे अच्छा होना चाहिए।'"

इवान ने बात एकदम सच कही थी और वह वास्तव में ही बहुत अच्छा कारीगर था परन्तु वासिली को उसकी हर बात से चिढ़ थी। उसका बार-बार अपनी डींग मारना और भौंहें चढ़ा कर, आंखें मटका कर बातें करना, उसके गले में लिपटा भड़कीला गुलूबन्द—वासिली को सभी कुछ असह्य हो रहा था।

"क्या कहने हैं तेरे 'मैं' के!" वासिली सोच रहा था। "'मुझे', 'मैं', 'मेरा कारखाना'—जैसे मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में इसके अलावा कोई है ही नहीं!"

वासिली ने बातचीत में भाग न लिया। दूसरी ओर मुंह किये चुपचाप बैठा रहा।

उग्रेन पहुंच कर वालेंतिना रास्ते में अपने घर के पास उतर गयी। बाक़ी लोग ज़िला पार्टी कमिटी के दफ्तर चले गये।

ज़िला पार्टी कमिटी के दफ्तर के चबूतरे पर काफी भीड़ जमा थी। लम्बे-चौड़े, खुले बरामदों और गैलरियों में भी लोग जमा थे।

वासिली के पहुंचते ही सब उससे हाथ मिलाने के लिए आगे बढ़ आये।

"पहली मई फ़ार्म को बधाई है, भाई!"

"कैसे हो, वासिली कुज़मिच?"

"आओ भई, आओ! अब तुम फिसड्डी नहीं रहे!"

वासिली सबसे हाथ मिलाता, हंसी-मज़ाक का उत्तर देता, व्याख्यान वाले हॉल के सामने के बरांडे में जा पहुंचा। यहां भी खूब भीड़ थी और शोर-गुल

हो रहा था। मंच के पास खड़े तीन आदमियों की ओर सबकी आंखें उठ रही थीं। ये तीनों ज़िले के सबसे बड़े और आपस में होड़ करने वाले सामूहिक फ़ार्मों के प्रधान थे। तीनों व्यक्ति एक-दूसरे से भिन्न थे। लोब्रोव हट्टा-कट्टा, चतुर और हंसमुख था। उसका फ़ार्म दूसरों से छोटा था परन्तु था बहुत संगठित और सुव्यवस्थित। अपनी भूरी-भूरी आंखों को प्रसन्नता से सिकोड़े हुए वह अपने सहयोगियों को इस तरह देख रहा था जैसे कह रहा हो :

"तुम्हारे फ़ार्म बड़े सही! पर बड़े होने से ही सब नहीं हो जाता। नन्हें शरीरों में महान आत्मा रहती है!"

उगारोव, प्रांत भर में प्रसिद्ध था। बीस वर्ष से वह खूब समृद्ध और विशाल "कम्युनिज्म का प्रभात" नामक सामूहिक फ़ार्म का प्रधान था। उसके चेहरे से ही रोब बरसता था। खूब लम्बा क़द। बाज़ जैसा चेहरा। घनी दाढ़ी। किसी से बात करता तो लापरवाही से कहीं दूर देखता हुआ। हां, समीप खड़े मालीश्को से बातें करते समय ज़रूर वह उसकी ओर ध्यान दे रहा था और सावधान दृष्टि से उसकी ओर देख रहा था।

उगारोव कहीं आता-जाता तो सदा अपनी नीली सी 'पोबेदा' कार में। उसके फ़ार्म में उजले रंग की लोमड़ियां पली हुई थीं। हर दूसरे-तीसरे महीने वह शहर की नाट्यशाला में आधी सीटें रिज़र्व कराकर अपने किसानों को रेल से तमाशा देखने भेजता था।

ज़िले भर में उसका सम्मान था। वसंत में जब बोवाई का समय नज़दीक आता और सामूहिक किसानों पर चारों तरफ़ से बमबारी होने लगती कि "बोवाई शुरू करो! बोवाई शुरू करो!" तो इन हिदायतों और हुक्मों के उत्तर में सामूहिक किसान अपने कृषि-विशेषज्ञों से एक ही प्रश्न पूछते :

"उगारोव के यहां बोवाई शुरू हो गयी?"

उगारोव के यहां बोवाई शुरू होती तो ज़िले भर में खबर फैल जाती—"उगारोव ने बोवाई शुरू कर दी!" और तभी दूसरे फ़ार्मों में भी बोवाई का काम शुरू होता। हालत यहां तक पहुंच गयी थी कि ज़िला पार्टी कमिटी के ज़ोर देने पर ज़िला कान्फ्रेंस में उगारोव को खड़े होकर लोगों से अपील करनी पड़ी थी कि वे बोवाई के लिए उसकी प्रतीक्षा न करें।

"साथियो! मेरा रास्ता मत देखो, मेरे लिए मत रुको!" उसने बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से कहा था। "हमारे खेत जंगलों के पीछे उत्तरी ढलवानों पर हैं। हमारे यहां बोवाई आपके यहां से दो-एक दिन पीछे शुरू होती है। फिर, हमारे यहां बोवाई की सब तैयारी हो चुकी है, पांच दिन में बोवाई कर डालेंगे। हमारा साथ पकड़ने की कोशिश करना बेकार है—कम से कम इस वसंत में तो सरासर बेकार है।"

ज़िले में गाईस कैप्टेन मालीश्को के आने से पहले बस उगारोव की ही धूम थी। मालीश्को ने आते ही विशाल मोलोतोव सामूहिक फ़ार्म का काम सम्भाला और ऐसे ढंग से काम शुरू किया कि दो ही बरस में उसके फ़ार्म के किसान 'प्रभात' वालों की बराबरी करने लगे।

दुबला-पतला, सांवला और चेहरे पर उभरी रेखाएं—मालीश्को कमर को ज़रा आगे झुका कर चलता था। वह अपनी चुप्पी के लिए मशहूर था। उसके पतले-पतले होंठ सदा ऐसे भिंचे रहते कि देखने पर लगता मानो उन्हें खोलने में उसे बड़ी मेहनत पड़ेगी। प्रायः भौंहों, आंखों या हाथों के संकेतों से ही किसानों से बातें कर लेता था। वे लोग भी उसकी बातें समझने और उसी तरह उससे बातें करने के आदी हो गये थे। लोबोव—जो हंसोड़ और बातूनी आदमी था—बड़ी कटुता से अपना अनुभव सुनाता था :

"इस होड़ के सिलसिले में कुछ बातें करने हम लोग इनके यहां पहुंचे। देखते क्या हैं कि हम बहरों और गूंगों में आ फंसे हैं। एक सभा बुलायी गयी। पौन घंटे में समाप्त कर दी गयी! मुझे बोलने के लिए पन्द्रह मिनट दिये गये! मालीश्को ने मुझे पंद्रह मिनट से एक मिनट भी ज़्यादा नहीं बोलने दिया। बस, घंटी बजा-बजाकर इशारों से कहे जाय—अब बन्द करो, अब बन्द करो।"

उगारोव और मालीश्को में होड़ चल रही थी। दोनों एक दूसरे के काम और ढंग पर बड़ी सावधानी से नज़र रखते थे। मालीश्को ने नयी वैज्ञानिक खाद मंगवायी। अगले दिन उगारोव का आदमी भी जाकर ठीक वही खाद ले आया। उगारोव ने अपने फ़ार्म में आलू का निशास्ता निकालने का कारखाना खोला। मालीश्को ने अपने यहां उससे भी अच्छा बनवा डाला। सभाओं या मीटिंगों में दोनों हमेशा एक साथ बैठते थे। बरबस लोगों की आंखें उनकी ओर उठ जाती थीं। इस समय उनको देखते ही उनकी बातचीत सुनने के लिए वासिली वहां जा खड़ा हुआ। लोबोव ने वासिली को पहचाना, उसकी ओर देखा और अभिवादन में सिर हिलाकर मुस्करा दिया। उगारोव या मालीश्को—किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया।

"ज़िले में तुम नहीं आये थे तब बड़ा सूना-सूना लगता था, मालीश्को!..." उगारोव ने ज़रा मुस्कराकर मालीश्को से धीरे से कहा।

मालीश्को मुंह से नहीं बोला। चौड़ी घनी भौंहें उठाकर उसकी ओर एक बार देख भर लिया मानो कह रहा हो :

"बहुत समझते हो अपने आपको... कहीं सुस्तों से ही मात मत खा जाना...!"

उगारोव मतलब समझ गया। उसने भी उसकी ओर इस तरह देखा मानो कह रहा हो :

"तुम्हारे सिवा दूसरा कौन मात दे सकता है मुझे ?"

उगारोव ने कमरे में इकट्ठा हुए लोगों पर उड़ती-उड़ती नज़र डाली। उसकी निगाह वासिली पर आकर टिक गयी। आंखें सिकोड़ कर उसने क्षण भर वासिली को तौला मानो देख रहा हो कि उसमें कितना खम है, उसके बढ़ निकलने की कितनी संभावना है। कुछ जंच जाने पर वह मुस्कराया और फिर अपना गोरा-सा भारी हाथ उसकी ओर बढ़ा कर बोला :

"क्या हाल है, वासिली कुज़मिच ? सुना है अब तुम्हारे फ़ार्म में भी काम चल निकला है ?"

वासिली खुशी से फूल उठा। फ़ार्म के मामलों में उगारोव पूरा उस्ताद था। हर विशेषज्ञ की तरह किसी काम में पैबन्द लगा कर पूरा करना उसे अच्छा नहीं लगता था। निकम्मे मैनेजरों से उसे नफ़रत थी।

"हां, चल ही निकला है !" वासिली ने उत्तर दिया, पर उगारोव मालीश्को की ओर घूम कर उससे फिर बातें करने लगा था।

"तो तुम कारखाना और बढ़ा रहे हो ? सुना है सीरा भी निकालोगे ?"

मालीश्को ने सिर हिलाकर हामी भरी।

"ये हैं मर्द !" वासिली ईर्षा से सोच रहा था। "कारखाने बना रहे हैं ! ढाई टन की फसल उतार रहे हैं ! मोटरों में बैठ कर थियेटर जाते हैं..."

घन्टे भर पहले वासिली को अपनी सफलताओं का जो नशा चढ़ा हुआ था, वह अब उतर रहा था।

स्त्रेल्तसोव और लुक्यानोव के साथ नागरिकों जैसे कपड़े पहने एक नया आदमी भी हॉल में आया। यही सम्भवतः व्याख्यान देने वाला था।

आन्द्रेई ने पिछड़े हुए पहली मई सामूहिक फ़ार्म के लिए बहुत कुछ किया था। वासिली समझता था कि पार्टी सेक्रटरी को सबसे अधिक उसके फ़ार्म की ही चिन्ता है।

ज़िला पार्टी कमिटी के दफ्तर आते समय वासिली सोच रहा था कि उसे देखते ही आन्द्रेई खुशी से फूल उठेगा, उसे अपने पास बुलायेगा और उससे बीसियों सवाल पूछेगा। परन्तु आन्द्रेई वासिली के पास से निकल गया और उसकी ओर नज़र उठा कर देखा तक नहीं।

वासिली ने सुना कि व्याख्यान देने के लिए आया व्यक्ति उगारोव, मालीश्को और लोबोव की ओर संकेत कर आन्द्रेई से कह रहा है :

"ये हैं असली आदमी ! जीवटदार...!"

"हां, ये कसौटी पर खरे उतरे हैं!" आन्द्रेई ने मुस्करा कर कहा।

"कसौटी पर? कौन सी कसौटी पर?" उसने पूछा।

"१६४७ की कसौटी पर! युद्ध के बाद की स्तालिन पंच-वर्षीय योजना के दूसरे वर्ष वाली कसौटी पर।"

"क्या मैं कसौटी पर खरा नहीं उतरा?" वासिली चिन्तित हो कर सोच रहा था। वह चाहता था कि ज़िला-पार्टी कमिटी में लोग उसके बारे में भी वैसी ही बातें कहें जैसी उगारोव और मालीश्को के बारे में कहते थे: "असली आदमी...! कसौटी पर खरे...!"

कुछ ही मिनट में आन्द्रेई भीड़ से घिर गया। उगारोव और चुप्पा मालीश्को उसी के पास आ खड़े हुए। आन्द्रेई कई आदमियों से एक साथ बातें कर रहा था। सजीवता और स्फूर्ति की मूर्ति वह गम्भीर बातों के बीच-बीच मज़ाक की फुलझड़ियां भी छोड़ता जा रहा था। कभी किसी बात के उत्तर में वह ज़ोरों से हामी भरता और कभी एक ही बात कह कर किसी को निरस्त्र कर देता।

अब वासिली की समझ में आया कि ज़िला पार्टी कमिटी के सेक्रेटरी के लिए सोचने को केवल पहली मई फ़ार्म की ही बातें नहीं बल्कि और भी बहुत सी बातें हैं। उसका फ़ार्म दर्जनों में से सिर्फ एक था। आन्द्रेई की नज़र दर्जनों दूसरे फ़ार्मों पर भी रहती थी। वह उन्हें भी उतना ही महत्व देता था जितना पहली मई फ़ार्म को। उन पर भी उतना ही ध्यान देता था जितना पहली मई फ़ार्म पर। उनमें भी उतनी ही दिलचस्पी लेता था जितनी पहली मई फ़ार्म में। उनके भी हर मामले को उतनी ही गहराई से जानता था जितनी गहराई से पहली मई फ़ार्म के मामलों को। वासिली मन ही मन आन्द्रेई की प्रशंसा कर उठा:

"सचमुच गज़ब का आदमी है। एक साथ पचास सामूहिक फ़ार्मों का ध्यान रखता है।" बातचीत सुनने के लिए वासिली और आगे बढ़ आया। वसंत में बोवाई के सम्बंध में बातचीत हो रही थी।

"अरे नहीं, पेत्रोविच! कहने को तुम चाहे जो कहो, लेकिन इस से इन्कार नहीं कर सकते कि हमारे ज़िले के पास सारे प्रांत में दूसरे नम्बर पर खाद का भंडार है।" वोलगिन बड़े उत्साह से कह रहा था। "प्रान्त में दूसरा स्थान! हमारे जैसे ज़िले के लिए यह बड़ी भारी कामयाबी है!"

आन्द्रेई ने वोलगिन की ओर घूम कर उत्तर दिया:

"लेकिन तुमने कभी सोचा इसकी वजह क्या है?" उसने अपने छोटे से हाथ को उगारोव, मालीश्को और लोबोव की ओर घुमा कर इशारा किया। "इन लोगों को धन्यवाद दो! सारे ज़िले का बोझ अपने कंधों

पर सम्भाले हैं ! ये हैं हमारे "अगुवा"। 'पीट' का ही मामला ले लो। दस फ़ार्मों ने इतनी 'पीट' ढोयी जितनी बाक़ी सारे फ़ार्मों ने मिल कर नहीं ढोयी। इसी को तुम ज़िले की कामयाबी कहते हो? बहुत दिन तक इन "अगुवा" लोगों की पीठ के पीछे छिपे रहे हो! मिसाल के लिए हम तुम्हीं को ले लें, अफानासी लुकिच।" आन्द्रेई ने एक फ़ार्म के प्रधान की ओर घूम कर कहा। "तुम्हारे यहां कितनी 'पीट' ढोयी गयी है! बीस गाड़ी? इतनी भी नहीं? और तुम्हारे यहां, इल्या ओफ़िमोविच? अभी शुरू नहीं हुई?" आन्द्रेई की निगाह वासिली पर पड़ी। उसकी ओर घूम कर बोला: "अहा, वासिली कुज़मिच? क्या हालचाल हैं? आख़िर तुम्हारे यहां भी 'पीट' की ढोवाई शुरू हो गयी?...अभी नहीं? ..क्यों?"

"लोग दूसरे कामों में लगे हैं। जानवर भी खाली नहीं हैं..." वासिली ने घबराहट में कहना शुरू किया।

"और अगर मैं कल तुम्हारे फ़ार्म आऊं और लोगों को लाकर तुम्हारे सामने खड़ा कर दूं? तब? तब तुम क्या कहोगे? तुम्हें बिजली के इंजन मिल गये हैं। इनसे कितने आदमियों को फ़ुर्सत मिली है?"

वासिली कोई उत्तर न दे सका।

"आख़िर बिजली के इंजन कर क्या रहे हैं? अनाज बीन रहे हैं या गोशाला में काम कर रहे हैं? बोलो?"

"लेकिन इंजन..." वासिली बुदबुदाया।

"अभी गोदाम में ही खड़े हैं!"

वासिली के चेहरे के भाव से आन्द्रेई समझ गया कि उसका तीर निशाने पर बैठा है। सिर को ज़रा पीछे करके वह ठहाका मार कर हंस पड़ा।

"आप लोग ज़रा इन मैनेजर साहब को देखिए! इंजनों की कितनी जल्दी थी इन्हें! जब मिल गये तो गोदाम में खड़े हैं! क्या आपने उनको गोदाम सजाने के लिए लिया था?"

"पिछले हफ्ते ही तो मिले हैं।"

आन्द्रेई की हंसी ग़ायब हो गयी। मालीश्को के लिए उसके हृदय में विशेष स्थान था। उसी की ओर संकेत कर कहा:

"इनके यहां तो इंजन एक घंटे भी बेकार नहीं खड़े रहे। पहुंचने के साथ ही लारी पर कारखाने ले गये। एक घंटे बाद काम शुरू हो गया। इसी को मैं कहता हूं रफ्तार! तुम्हारे यहां की तरह नहीं कि इंजन गोदाम में रखे हैं," वासिली कठोरता से किन्तु निश्छल मन से कहता गया, "तुम्हारे यहां इंजन खड़े हैं, लेकिन उनसे काम नहीं लिया जा रहा। तुम्हारे पड़ोस में ही

'पीट' से भरे दलदल हैं, लेकिन खेतों में 'पीट' नहीं पहुंची। अखबारों में तुम्हारी प्रशंसा के गीत गाये जा रहे हैं। लेकिन तुम ऐसी भूलें कर रहे हो!"

आन्द्रेई ने देखा, वासिली का चेहरा उतर गया है। वह निराश और दुखी हो गया था। परन्तु आन्द्रेई फिर हंस पड़ा। उसकी बातों का बुरा मान जाना असम्भव था। निराश वासिली को उत्साहित करने के लिए आन्द्रेई ने कहा :

"तारीफ़ तो तुम्हारी मैं भी करता हूं क्योंकि मैं जानता हूं कि तुम बहुत कुछ कर सकते हो, आज नहीं तो कल करोगे। अखबारों में तुम्हारी तारीफ़ यों ही नहीं हांक दी गयी। लेकिन मैं देखता हूं कि तुम में कुछ-कुछ आत्म-संतोष की बू आ रही है। सही माने में आत्म-संतोष अभी नहीं आया क्योंकि उसके लिए कोई आधार नहीं है, लेकिन उस तरफ़ झुकाव ज़रूर है। अभी इस प्रवृत्ति का अंकुआ ही फूटा है। यही उसे कुचल डालने का वक्त है। तुम इसे पाल-पोस कर बड़ा नहीं करोगे, ऐसी उम्मीद है। तुम्हें इंजन मिल गये, तुमने उन्हें गोदाम में सजा दिया और निश्चिंत हो गये—बस उनके घमंड में फूले घूमते हो!"

वासिली को यह याद करके लज्जा आ रही थी कि गोदाम में इंजन और मशीनों को देखकर वह संतोष और गर्व अनुभव कर रहा था। "इसकी नज़र तो चक्की के पाट को भी बेध जाती है," वासिली सोच रहा था। आन्द्रेई हंसता हुआ—जिसके कारण उसके शब्दों की कटुता कम हो जाती थी—कह रहा था :

"तुमने खेतों में खाद डलवादी और सोचा कि सब काम हो गया। बगल में फैली दलदल से 'पीट' डलवाने का ख़याल ही नहीं आया। जैसा मैंने कहा था, डर यह है कि तुम चीज़ों को अपने-आप लुढ़कने-पुढ़कने दो। तुमने रफ्तार तो पकड़ ली है। अब इसे जारी रखो!"

आन्द्रेई के आत्मीयतापूर्ण शब्दों के बावजूद वासिली चिढ़ ही गया।

"चाहे फ़ार्म की भलाई के लिए आदमी जान दे दे, लेकिन इन लोगों की डांट-फटकार जारी रहेगी।"

वासिली बता देना चाहता था कि इंजन अभी गोदाम में क्यों पड़े हैं और खेतों में अब तक 'पीट' न डाले जा सकने का कारण क्या है! परन्तु आन्द्रेई ने उसकी ओर पीठ फेर ली थी। वह उसे भूल गया था और मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन के कारीगर को बुला रहा था :

"कामरेड सेम्योनोव! मरम्मत का काम कैसा चल रहा है? नये कारखाने में बिजली के तार लग गये?"

वासिली का विश्वास था कि आन्द्रेई उसका बहुत खयाल रखता है। परन्तु इस समय सेक्रेटरी की रुखाई से उसे निराशा हुई और दिल को चोट सी लगी। मन ही मन कुढ़ता हुआ वह एक कोने में खिसक गया और आन्द्रेई को तथा उसे घेरे खड़े लोगों को जलती नज़रों से देखने लगा। सेक्रेटरी का हंस-हंस कर बातें करना उसे खास तौर से बुरा लग रहा था। शायद आन्द्रेई वासिली को पहुंचाई चोट और वासिली, दोनों को ही, भूल गया था।

"मेरी बात भी नहीं सुनता।" वासिली कुढ़ रहा था। "मज़ाक बना देना आसान है। कम से कम मेरी बात तो सुन ली होती! बिजली का इंजीनियर बुयानोव दो हफ्ते से बुखार में पड़ा है। बुयानोव के अलावा कौन बिजली के काम में हाथ फंसा दे? हमारे यहां जानवर हैं ही कितने? खाद ढोने में कैसी दिक्कत उठानी पड़ी है हम ही जानते हैं। 'पीट' लाने की हमें फुर्सत कब मिली? लेकिन तुमको इससे कोई मतलब नहीं! तुम्हें तो बस कह देना भर आता है—यह कर दो, वह कर दो। कह देना आसान है। पता तो करने से लगता है। मेरी जगह होते तो देखता क्या कर लेते हो!"

"आखिर तुम सोचते क्या थे?" वासिली के कान में फिर आन्द्रेई की आवाज़ आई। "ज़िला पार्टी कमिटी ने तुम्हें पांवों पर खड़ा कर दिया। अब क्या तुम्हें उंगली पकड़ कर चलाये? तुम्हें अपने-आप चलना चाहिए! तुम बड़े हो गये हो! अपने आप आगे बढ़ो! ज़िला कमिटी कब तक तुम्हारे लिए काम और काम करने वालों का संगठन करती रहे? हम लोग और कार्यकारिणी समिति क्या तुम्हारी दाई हैं?"

"अब किसे डांट रहा है?" वासिली सोच रहा था। उसने सिर झुका कर देखा तो मालूम हुआ कि आन्द्रेई मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन के कारीगर सेम्योनोव से बातें कर रहा था। इस फटकार से सेम्योनोव का चेहरा तमतमा उठा था।

"इसके लिए यही ठीक है," वासिली मन ही मन खुश हुआ, "गांव में ऐसे ऐंठ कर चलता है जैसे ज़िले भर में सेम्योनोव और उसके कारखाने के सिवा और कुछ हो ही नहीं। माना कि होशियार कारीगर है, पर है ज्यादा ऐंठू! शाबास पेत्रोविच! ठीक किया! दो-एक और!"

सेम्योनोव पर फटकार से वासिली को बहुत आनन्द आ रहा था। सेम्योनोव मुंह लटकाये घबराहट में इधर-उधर देखे बिना भीड़ के पीछे आकर बेंच पर वासिली के पास ही बैठ गया। अब सहसा वासिली को उसकी और अपनी समानता पर ध्यान आया। वासिली ने घूर कर उसकी ओर देखा और परे को हट गया।

वासिली का क्रोध शांत नहीं हुआ था। वह समझता था कि सेम्योनोव की अपेक्षा वह अधिक महत्वपूर्ण काम कर रहा है और सेक्रेटरी को यह

समझकर कि वह एक पिछड़े हुए फ़ार्म की अवस्था को सुधार रहा है, उससे सोच-समझ कर और मित्रतापूर्ण ढंग से बात करनी चाहिए थी।

"तुम्हारी मित्रता क्षणिक होती है, पेत्रोविच !" वासिली मन ही मन उसे उलाहना दे रहा था। "हमारे फ़ार्म में आते हो तो जैसे हमारे ही बन जाते हो। लेकिन यहां आने पर हम तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं।"

व्याख्यान सुनकर ही वासिली का क्रोध कुछ कम हुआ। व्याख्यान देने वाले ने बताया कि बाहरी देशों में प्रतिगामी शक्तियां सिर उठा रही हैं, धोखे-धड़ी और तिकड़म का रास्ता अपना रही हैं और दिनोंदिन उनकी निर्लज्जता बढ़ती जा रही है। उसने बताया कि ये शक्तियां चेष्टा कर रही हैं कि फिर युद्ध शुरू हो जाये।

पूरा व्याख्यान आन्द्रेई की इस बात की पुष्टि करता था कि अपनी प्रगति और विकास की रफ्तार में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं आने देनी चाहिए।

व्याख्यान देने वाले ने अपना भाषण इन शब्दों में समाप्त किया : "साथियो, संसार में शान्ति रक्षा का उत्तरदायित्व हमारे कंधों पर है। शान्ति की रक्षा हमारी उस शक्ति पर निर्भर है जो हम खेतों और कारखानों में अपने हाथों से तैयार कर रहे हैं !"

व्याख्यान के बाद जब वासिली बाकी लोगों के साथ हॉल से बाहर निकला तो वह बदल चुका था। तीन घंटों में ही यह परिवर्तन हो गया। उसे अपने फ़ार्म में बोवाई की अच्छी तैयारियां, बिजली घर में नया जेनरेटर और फ़ार्म की दूसरी सफलताएं— जिन पर वह कुछ समय पहले घमंड से इतरा रहा था —अब उतनी महत्वपूर्ण नहीं लग रही थीं जितनी पहले। उसके काम की सभी ख़ामियां और त्रुटियां विराट रूप धारण करके उसके सामने खड़ी हो गयी थीं।

बिना किसी लाग-लपेट के इन न्यूनताओं की ओर साफ़-साफ संकेत करने का आन्द्रेई का ढंग भी उसे अब उचित और न्यायपूर्ण लग रहा था। बाहर जाते समय उगारोव ने उसे बरांडे में पकड़ लिया।

"सुना है तुम अपनी पनचक्की को बिजली घर से जोड़ना चाहते हो ?"

"हां, हमारा बिजली का इंजीनियर बुयानोव और मेरे पिता, जो चक्की की देख-रेख करते हैं, कुछ ऐसा तिकड़म कर रहे हैं। वे टरबाइन के शैफ्ट को लम्बा करके दीवाल से निकालना चाहते हैं और उसके ज़ोर से चक्की चलाना चाहते हैं।"

"ख़याल बहुत उम्दा है !" उगारोव ने समर्थन करते हुए कहा। "मैं अपने कुछ आदमी भेजूंगा। वे तुमसे विस्तार में सब पूछेंगे।"

विदा होते समय उगारोव ने वासिली से हाथ मिलाया। वासिली उगारोव को चमचमाती 'पोबेदा' कार में बैठते देख रहा था और मन ही मन कह रहा था :

"यह है समझदार आदमी। इसे आत्म-संतोष का रोग नहीं है। जहां कोई नयी चीज़ देखी कि झट उस पर झपट पड़ा!"

ज़िला पार्टी कमिटी की मीटिंग के भीड़-भड़क्के से लौटने के बाद वासिली को अपना खाली-खाली घर काटने को दौड़ रहा था। बुढ़िया अगाफ्या बड़े सन्दूक पर लेटी झपकी ले रही थी। बेंच पर बड़ी सी भूरी बिल्ली सो रही थी। घर खूब साफ़ था, गरमाहट भी थी। खूब शांति थी। पर यह शांति वासिली को असह्य हो रही थी। उसने कमरे का एक चक्कर लगाया, मेज़ के पास जाकर कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा, फिर कपड़ों की आलमारी के पास जा पहुंचा। आलमारी के ऊपर रखी तसवीर से एक दुबली-पतली, लम्बी गर्दन वाली लड़की—गये ज़माने की अवदोत्या, नन्हीं "गिरगिट"—मुस्कराती हुई उसकी ओर देख रही थी। आलमारी के ऊपर एक बड़ा सा चौकोर आईना था। आईने में वासिली ने देखा—एक खूब हट्टा-कट्टा जवान सामने था। काली-काली भौंहें! बरफ़ से लाल हुए गालों पर जवानी का रंग!

वासिली के हृदय में सहसा टीस उठी। उदासी भरी मुस्कराहट से अपने प्रतिबिम्ब को देखता हुआ वह सोच रहा था :

"तू जवान है! हट्टा-कट्टा है! देखने में बुरा नहीं है! फ़ार्म को तू सफलता के रास्ते पर ला रहा है! उगारोव तुझसे हाथ मिलाता है! लेकिन तेरी औरत? वह तुझे छोड़ गयी है...तुझे छोड़ कर चली गयी है...!"

अकेलेपन और निष्क्रियता का बोझ असह्य होता जा रहा था। उसने कपड़े बदले और रेडियो प्रसार-केन्द्र की ओर चल पड़ा।

बुयानोव ने बिजली घर के एक कमरे में रेडियो प्रसार-केन्द्र बना लिया था। रेडियो में उसने खुद का बनाया एक लाउड-स्पीकर लगा दिया था, दीवारों पर नेताओं की तसवीरें टांग दी थीं, एक पुराने सोफ़े की मरम्मत कराके उसे खिड़की के पास लगा दिया था और मेज़ पर तमाम पत्र-पत्रिकायें ला रखी थीं। बुयानोव ने उन किसानों के घरों पर भी, जो अपना खर्चा दे सकते थे, रेडियो लगा दिये थे। सबके घर में रेडियो नहीं लग सके थे क्योंकि सामूहिक खेत सब का खर्चा नहीं बरदाश्त कर सकता था।

बुयानोव इस कमरे को मज़ाक में 'जहाज़ के डेक का कमरा' कहता था। संध्या समय यहां 'समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति' आते थे। बुयानोव गम्भीर और सम्मानित व्यक्तियों को ही तथा उन्हें जो विज्ञान और मशीनों की बातें समझ सकें, यहां आने देता था। वासिली के पिता कुज़्मा

वोर्तेनिकोव को इंजीनियर और बिजली घर के प्रति बहुत श्रद्धा थी। वह समय-समय पर बुयानोव की मदद भी किया करता था। इसलिए उसका आना किसी को अनुचित नहीं लगता था। पनचक्की को बिजली घर से जोड़ने की उनकी योजना ने बुड्ढे और इंजीनियर को और भी निकट ला दिया था। स्तेपनिदा को यह सब अच्छा नहीं लगता था। उसे अब अधिकतर समय अकेले ही बिताना पड़ता था। उसे लगता था कि बूढ़ा दिनों-दिन उससे दूर होता जा रहा है।

वासिली रेडियो-केन्द्र की ओर चला। बरफ़ नरम पड़ गयी थी। पांव धंसे जा रहे थे। रात का अंधेरा था। हवा में वसंत की कुछ खुनकी और ताजगी थी। भीगे जंगलों और भीगी धरती की सौंधी सुगंध मिली हुई थी। वसंत की छोटी-छोटी नदियों की कल-कल ध्वनि और एक दूसरे से टकराकर खड़-खड़ करते हिम-खण्डों की याद हो आती थी। सड़क के किनारे मशीन-गोदाम की अंधेरी इमारत दिखाई दी। गोदाम के पास से जाते समय अब वासिली को वैसा गर्व और संतोष अनुभव नहीं हुआ जैसा उग्रेन जाते समय हुआ था। "हूं!" उसने मन ही मन कहा। "अब तक यहीं खड़ी हैं? कब तक यहीं खड़ी रहेंगी? कब तक बुयानोव की तबियत खराब रहेगी? उसके बिना इन्हें लगाना शुरू कर दें तो? सबेरा होता तो कैसा अच्छा रहता।"

उसे एक विचित्र प्रकार की बेचैनी हो रही थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह बेचैनी क्यों है। क्या यह किसी पुराने गीत की धुन उसके कानों में गूंज रही थी—जिसमें उदासी थी, फिर भी मस्ती? या यह वसंत की मादक सुगंध थी जो उसे बेचैन किये थी? चाहे कुछ भी हो, उस बेचैनी से यह भिन्न थी जो अक्सर उसे सूनी झोंपड़ी से बाहर निकल जाने के लिए बेचैन कर देती थी।

बिजली घर की सीढ़ियां चढ़ कर उसने दरवाज़ा खोला। भीतर की गरम हवा और तीव्र प्रकाश ने उसके चेहरे का स्पर्श किया। मिखाइल बुयानोव के गले में पट्टी लिपटी थी और होंठ, तबियत ठीक न होने के कारण, सूखे-सूखे थे। पास ही बैठा बूढ़ा कुज़मिच विचित्र ढंग से कागज़ के बड़े से ताव पर कुछ नक्शे बना रहा था। लाउड-स्पीकर से दबी आवाज़ आ रही थी :

"सोवियत मज़दूरों का प्यारा!"

कोई गैर-रूसी स्वर में रूसी गाना गा रहा था।

खुले दरवाज़े से दूसरे कमरे में भूरे संगमरमर का स्विच-बोर्ड दिखाई दे रहा था। धातु के बने स्विच-बटन बिजली की रोशनी में चमक रहे थे। यहां पहुंच कर वासिली को शांति का अनुभव हुआ। उसे लगा कि वह ठीक जगह पर आ गया है।

लोगों से हाथ मिलाकर वह भी मेज़ के पास बैठ गया और बोला :

"योजनाएं बनाना अच्छा है। बेशक अच्छा है! पर इंजनों का खयाल भूल जाना अच्छा नहीं! हम लोगों ने उन्हें गोदाम में खड़ा कर दिया और समझा कि काम खतम। पेत्रोविच ने मुझे बहुत शर्मिन्दा किया। मालीश्को के यहां इंजन एक घंटे भी बेकार खड़े नहीं रहे — उसने उन्हें फौरन काम पर लगा दिया। इसी को मैं कहता हूं रफ्तार, गति!"

वासिली ने मेज़ पर पड़ा एक अखबार हाथ में लिया और कहता गया :

"यहां बैठ कर आप लोग यही सोचेंगे कि हमने चन्द महीनों में कितना काम कर डाला! लेकिन दूसरे लोगों की बातें सुनो या चारों तरफ़ नज़र दौड़ाओ और," अखबार को दिखाकर उसने कहा, "इसमें लिखी बातों पर सोचो तो समझ में आयेगा कि कितना कम काम हुआ है और कितना खराब हुआ है। ज़रा सुनो।" वासिली *प्रावदा* की मोटी-मोटी खबरों को टिप्पणी करता हुआ सुनाने लगा : "'अमरीकी सीनेट में यूनान और तुर्किस्तान को 'सहायता' देने के मसले पर बहस।' क्या है इसका मतलब? सहायता के बहाने दार्दनलीज़ की तरफ़ पंजा बढ़ाना। 'यूनानी देश-भक्तों पर यूनानी सेना का हमला। सैनिक केन्द्र में लगभग पचास ब्रिटिश निरीक्षक! गांवों में आगज़नी, औरतें और बच्चे भुखमरी के शिकार...' देखा, क्या हो रहा है? और देखो! लेख का शीर्षक है : 'जर्मन इजारेदारियों का अब तक सफाया क्यों नहीं किया गया?' क्यों नहीं किया गया? — बिलकुल साफ़ है! अरे, दोनों एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। अमरीकी साम्राज्यवादी जर्मन पूंजी से अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। 'फिनलैंड में हथियारों के गुप्त अड्डे—षडयंत्रकारियों पर मुक़दमा...!'"

"असली बात पर तो तुम्हारा ध्यान ही नहीं गया," बुयानोव ने वासिली को टोका, "यह देखो!" वासिली के हाथ से अखबार लेकर उसने दिखाया। "'मास्को में विदेशी मंत्रियों का सम्मेलन। पोट्सडम और याल्टा के निर्णयों की उपेक्षा'..."

बूढ़ा कुज़मा चुप था। वैसे वह अब राजनीति में गहरी दिलचस्पी लेता था पर अपने बेटे की मौजूदगी में बहुत कम बोलता था—मानो फरवरी में हुई फ़ार्म की मीटिंग के बाद से उसे उसके सामने शर्म सी लगने लगी थी। अपने बेटे के प्रति उदारतापूर्ण आत्म-संतोष का स्थान अब नौसिखिओं जैसे दब्बूपन ने ले लिया था। पिता की आंखों में इस विचित्र भाव को देख कर वासिली का हृदय दुखता था। परन्तु उस दिन ध्यान दूसरी ओर होने के कारण वासिली का खयाल इस बात की ओर नहीं गया।

"हां..." दूसरी ओर आंखें किये हुए ही वासिली ने समर्थन किया। "देखा तुमने? और ये तो एक ही दिन की खबरें हैं। एक बार फिर बारूद के धुंयें जैसी गंध उठने लगी है। दूसरे लोग चाहे भूल जायें, लेकिन हम नहीं भूल सकते! युद्ध क्या चीज़ है, हम जानते हैं। हमें अपनी कामयाबियों से गाफिल नहीं हो जाना है! हमें रफ्तार धीमी नहीं करनी है! पेत्रोविच ने आज मुझे खूब लिथाड़ा। पहले तो मैं गुस्से में आ गया। पर जब व्याख्यान सुना और कुछ अपनी अकल इस्तेमाल की तो समझ में आया कि बुरा मानने की कोई बात नहीं थी। पूरे व्याख्यान का लुब्बे-लुबाब यह था: 'संसार में शांति की रक्षा की गारंटी हम अपने हाथों से कर सकते हैं।' मैं तो चाहूंगा कि ये बातें सब मकानों पर लिख दी जायें...हां, सब मकानों पर।"

वासिली ध्यान में डूबा अखबार को पकड़े अपने बड़े-बड़े हाथों के पीले नखूनों को देख रहा था। लगता था उसने इन्हें पहले कभी नहीं देखा था।

उक्रेन से लौटने के कई दिन बाद वालेंतिना ने एक दिन अवदोत्या से कहा:

"आज शाम को पार्टी की खुली मीटिंग है। बहुत महत्वपूर्ण मसले पर बहस होगी—'फ़ार्म के विकास की रफ्तार और उसका भविष्य!' तुम्हें ज़रूर आना चाहिए, दुन्या! पशुओं की संख्या बढ़ाने और चारे के प्रबंध आदि के बारे में अपने नोट तैयार कर लेना। समझीं? आना ज़रूर!"

अवदोत्या ने उस समय तो आने का वादा कर दिया, पर बाद में उसका विचार बदल गया। फ़ार्म के दफ्तर में और पशुशाला में तो वासिली से सामना हो जाता था, पर भरी सभा में उससे मिलने के विचार से ही उसे डर लगता था।

"सब लोग हमारी तरफ ही देखते रहेंगे। एक दिन तो इस हालत का सामना करना ही होगा, लेकिन बात ज़रा पुरानी पड़ जाये तो अच्छा है! मीटिंग की खास-खास बातें वाल्या मुझे बता देगी। पशु-पालन और चारे के बारे में जो कुछ कहना है, वह मैं लिख कर वाल्या को और फ़ार्म-बोर्ड को दे दूंगी।"

अवदोत्या सिलेट-पेंसिल और पशु-पालन तथा चारे सम्बंधी आंकड़ों की सूची लेकर अल्योशा की मेज़ पर आ बैठी और चारे का हिसाब लगाने लगी। पशुओं की संख्या में बढ़ती के हिसाब से चारे की व्यवस्था कर सकना मुश्किल था। यह समस्या एक अरसे से उसे परेशान किये थी।

अवदोत्या दोपहर से बैठी हिसाब कर रही थी।

"अवदोत्या, चल ! खाना खाले !" संध्या समय प्रास्कोव्या ने पुकारा।

"एक मिनट ठहरो अम्मा, नहीं तो हिसाब फिर गड़बड़ हो जायेगा !" अवदोत्या बुदबुदाने लगी : "अगर हम घास और दूसरे चारों की पैदावार दुगनी कर दें तो चारे की सप्लाई करीब..."

संध्या समय प्रास्कोव्या ने बच्चियों को सुला दिया। दूसरे सब लोग मीटिंग के लिए चल दिये थे। अवदोत्या अब भी बैठी हिसाब कर रही थी। आंकड़ों की साफ-साफ पंक्तियां उसे कतई तसल्ली नहीं दे रही थीं।

"यह मामला क्या है ? चाहे जैसे हिसाब लगाओ, चारे की मात्रा पशुओं की बढ़ती संख्या के लिए कम बैठती है। १६५० तक तो जैसे-तैसे काम चल जायेगा, लेकिन आगे हम पशुओं की तादाद नहीं बढ़ा पायेंगे—चारा काफ़ी नहीं होगा। १६५१ में हम क्या करेंगे ? इसका मतलब है कि फ़ार्म की योजना बनाने में गड़बड़ी हुई है। क्या किया जाये ? वाल्या से इस बारे में बातें करूं ? पर वह तो मीटिंग में गयी है ! उसके आने तक यहीं रुकूं ?"

अवदोत्या कागज़ और सिलेट-पेंसिल छोड़ कर सिलाई करने लगी। पर उसमें भी ध्यान न लगा। बार-बार टांका ग़लत लग जाता था और सुई हाथ से उचट जाती थी। आख़िर सिलाई को उसने उठा कर एक तरफ रख दिया।

"यहां बैठी-बैठी क्या कर रही हूं ? वहां पार्टी की मीटिंग हो रही है, फ़ार्म के आगे के काम पर बातें हो रही होंगी—और किसी को यह शक भी नहीं होगा कि फ़ार्म की योजना बनाने में ग़लती हुई है। मैं यहां जोड़-बाकी किये बेवकूफ सी बैठी हूं। नहीं-नहीं ! मुझे इस वक्त वहां होना चाहिए था। मैं न भी बोलूं तो वाल्या को बीच में सब बता सकती हूं।"

अवदोत्या फ़ार्म के दफ्तर चल दी। दफ्तर पहुंच कर ज्यों ही वह ड्योढ़ी पर चढ़ी उसे वासिली की आवाज़ सुनाई दी। वह ठिठक गयी।

"मीटिंग तो शुरू हो गयी ! वास्या बोल रहा है। सोचा था जाकर चुपचाप बैठ जाऊंगी। पर अब तो सब मुझे ही घूरेंगे ! क्या किस्मत है ! कुछ देर बाहर रुके रहना अच्छा होगा। कुछ देर को मीटिंग स्थगित होगी। उसी वक्त अन्दर चली जाऊंगी ! मुझे पुराना शॉल ओढ़ कर नहीं आना था, नया ओढ़ आती। वापस लौटूं ? तब योजना वाली बात ? सचमुच मैं बड़ी बेवकूफ हूं ! वास्या और हम अलग हो गये तो क्या ? इससे दूसरों को क्या लेना-देना ?"

लेकिन दूसरों को बहुत कुछ 'लेना-देना' था ! ज्यों ही अवदोत्या भीतर घुसी, त्यों ही मानो किसी की कमान पर सब आंखें उसकी ओर घूम गयीं, एक बार वासिली की ओर और फिर उसकी ओर।

वासिली अचकचा गया। मुंह की बात मुंह में ही रह गयी। परेशानी सूचक एक 'उफ' निकली। "बिना सबकी निगाहें अपनी तरफ़ उठाये चुपके से नहीं बैठ सकती थी?" वह सोच रहा था। "नुमाइश की पुतली बनी अब भी खड़ी है।"

अवदोत्या मातवेयेविच की चौड़ी पीठ की आड़ में खड़ी हो गयी। वासिली ने होश सम्भाला और फिर बोलने लगा। फ़ार्म की पंच-वर्षीय योजना के बारे में बोलता हुआ वह फसलों की अदला-बदली, बिजली के प्रयोग, वसंत की बोवाई और नई इमारतें बनाने की चर्चा कर रहा था। लेकिन उग्रेन से लौटने पर जो बात उसे सबसे ज्यादा परेशान किये थी उसे वह कह ही नहीं पा रहा था।

वासिली को न तो अपनी रिपोर्ट से संतोष हो रहा था और न उस पर वाद-विवाद से। बातें हो तो रही थीं मतलब की ही पर लोगों में उत्साह या जोश नहीं था।

"बहस में ज़रा भी गरमा-गरमी नहीं है," धीरे से उसने वालेंतिना से कहा।

"अभी लोगों को आम पार्टी मीटिंगों की आदत नहीं पड़ी है।" वालेंतिना ने उत्तर दिया। पर मीटिंग से संतोष उसे भी नहीं था।

यासनेव, लुबावा, अवदोत्या, अल्योशा—जितने भी लोगों को उस दिन वालेंतिना ने खास तौर से बुलाया था, सभी को भविष्य में कम्युनिस्ट पार्टी का मेम्बर बना सकने की उसे आशा थी। उन सबके प्रति वह खास जिम्मेदारी महसूस करती थी। उन लोगों की हर बात और शब्द को वह बहुत ध्यान से देख-सुन रही थी। उनकी हर ग़लती और भूल पर उसे दुःख होता था।

"बहस इतनी बेजान क्यों है?" वह सोच रही थी। "यासनेव और लुबावा क्यों नहीं बोल रहे? इन्हें क्या कोई मतलब ही नहीं? अवदोत्या इतनी देर से क्यों आई? मुझे सबसे अधिक इसी पर भरोसा था। मीटिंग में कोई कमी है। जैसे चलनी चाहिए, नहीं चल रही।"

फिर उसने अपने-आप को समझाया:

"कोई काम एकदम से नहीं हो जाता! कुछ महीने पहले पहली पार्टी मीटिंग के वक्त इस कमरे में सिर्फ़ तीन आदमी थे। कुछ पता नहीं था क्या होगा, कौन हमारा साथ देगा और काम की हम कहां शुरूआत करेंगे? अब कितना फर्क है। देखो कितने आदमी हम लोगों के चारों ओर सिमट आये हैं। नास्त्या बोलना चाहती है। शायद वही मीटिंग में कुछ जान डाले।"

"हमारे ट्रैक्टर-दल का काम आपके फ़ार्म को सभी तरह का सहयोग देना है," नास्त्या बोली, "हमारी फसल आपकी फसल है। हम इस बात को

समझते हैं। हमारे ट्रैक्टर और ट्रैक्टरों के साथ का सामान पूरी तैयारी की हालत में हैं। हमारी तरफ से आप लोगों को ज़रा भी चिन्ता करने या परेशान होने की ज़रूरत नहीं। लेकिन मैं जानना चाहती हूं कि आप लोग क्यों हाथ पर हाथ रखे बैठे हैं?"

"हाथ पर हाथ रखे बैठे हैं? मतलब क्या है तुम्हारा?" बुयानोव ने विरोध किया। "बोवाई के लिए तैयार हम नहीं हैं तो और कौन है?"

"यही तैयारी कहलाती है? पांचवें खेत में ईंधन पड़ा सड़ रहा है। पुराना घास का खेत देवदार की झाड़ियों से पटा है। हम ईंधन और झाड़ियों पर हल चला दें? आप लोगों को मैंने बार-बार समझाया कि हमारे साथ स्थायी ट्रेलर-मैन कर दो! पिछले साल तो मुसीबत ही मुसीबत गले पड़ी—हर दिन नया ट्रेलर-मैन! जोताई, बोवाई और निरायी की मशीनों को चलाना हरेक का काम नहीं। रोज़ नये आदमी से क्या काम होगा? उसे ट्रेलर के बारे में क्या मालूम? मुझे ट्रैक्टर-चालकों से निबटना होता है। उनसे निबटना आसान काम नहीं है। आज आपको भली तरह समझा रही हूं। लेकिन मैं ट्रैक्टर चलाने लगूंगी तो समझाने नहीं बैठूंगी। जब मैं काम करती होती हूं तब खूंख़ार बन जाती हूं। जिस-जिस चीज़ की मुझे ज़रूरत हो वह वक्त पर मिलनी चाहिए! मेरी बात याद रहे!"

"बड़ी खूंख़ार बन जाती हो, यह हम जानते हैं," बुयानोव ने बिगड़कर उत्तर दिया, "लेकिन सुना है पिछले जाड़ों में तुम्हारे ट्रैक्टर-ड्राइवर अपने 'सितार-तानपूरे' खेतों में छोड़ आये थे!"

"सितार-तानपूरे छूटे थे सिर्फ़ बकरी की टेकरी में! लेकिन यह भी तो पूछो क्यों छूटे थे? यह तुम्हारे यहां के बच्चों की मेहरबानी थी! मैंने जोताई के लिए ज़मीन टुकड़ों में बांट दी थी और जगह-जगह मेखें गाड़ दी थीं। बच्चों ने सब मेखें उखाड़ फेंकी। मेरे साथ जो दूसरा आदमी जोताई के काम पर था वह अभी कम उम्र का है और उससे जोत बांटने में गड़बड़ हो गयी। इसीलिए जगह-जगह बिन जोती ज़मीन के पट्टे रह गये—जिन्हें तुम सितार-तानपूरे कह रहे हो!"

"बातें बीसों बनायी जा सकती हैं," बुयानोव ने कहा, "लेकिन हमें तो काम चाहिए।"

नास्त्या की बातों ने बहस में गरमी पैदा कर दी।

अवदोत्या सोच रही थी: "लोग और सब बातें तो कह रहे हैं लेकिन यह कोई नहीं बता रहा है कि गलती योजना में ही है। कोई बताये भी कैसे? किसी का ध्यान ही उस ओर नहीं गया। मुझे भी तो तभी पता चला जब मैंने

इतनी माथा-पच्ची की। उठकर मैं बताऊं ? लेकिन फिर सब लोग मेरी और वास्या की तरफ घूरने लगेंगे। खैर, कोई परवाह नहीं। यह इन बातों की परवाह करने का वक्त नहीं। कह देने से छाती का बोझ उतर जायेगा। गोशाला की ही नहीं, सभी बातें कहूंगी।"

अवदोत्या ने बोलने की इजाज़त मांगी तो वासिली को फिर बुरा लगा। "यों ही लोग काफ़ी घूर चुके हैं ! अभी बोलना बाकी था ?" वह सोच रहा था। "ऐसी क्या ज़रूरी बात आ पड़ी ?"

आदत के मुताबिक अवदोत्या ने धीरे-धीरे और सोच-सोचकर बोलना शुरू किया :

"बिल में बैठा चूहा सोचता है कि दुनिया उतनी ही बड़ी है जितना बड़ा उसका बिल। बिल के बाहर जाकर ही उसकी आंखें खुलती हैं !" अवदोत्या का ढंग दूसरे बोलने वालों की तरह लेक्चरबाज़ी का नहीं था। बोल रही थी वह बहुत धीरे-धीरे, फिर भी लोग उसकी बात को बड़े ध्यान से सुन रहे थे। "यही हालत मेरी थी। जब तक मैं पशुशाला में थी मैं सोचती थी कि सब काम ठीक हो रहा है। लेकिन शहर जाकर जब मुझे दूसरों से मिलने का और उनकी बातें समझने का मौक़ा मिला तब समझ में आया कि मैंने कुछ भी नहीं किया है !"

वासिली को अवदोत्या की बातों से विस्मय हुआ। उसका मन भर आया।

"यही तो मैं कहना चाहता था, पर कह नहीं पा रहा था ! यह तो मेरे मन की बातें कह रही है !"

अवदोत्या ने अपनी नोट-बुक खोलकर समझाना शुरू किया :

"हमारी पंच-वर्षीय योजना में पशुओं की संख्या बढ़ाने की बात है। इस योजना के हिसाब से चारे की मात्रा साढ़े तीन गुनी बढ़ेगी। यह है हमारी योजना। लेकिन योजना बनाते वक्त हमने एक ग़लती की। हमने चारे की मात्रा कम कूती। चाहे जैसे देखो—घास, जई वग़ैरा मिलाकर १६५० तक तो हम किसी तरह निपटा ले जायेंगे, लेकिन १६५१ के लिए हमारी योजना में कोई बन्दोबस्त नहीं है। चारे की कमी की वजह से हम पशुओं की संख्या नहीं बढ़ा पायेंगे !"

"पांच बरस बहुत होते हैं जी," सर्गी सार्जेंट बोले, "पांच बरस में हम कोई न कोई रास्ता निकाल ही लेंगे !"

"नहीं ! इस बाबत हमें अभी सोचना होगा। १६५१ बहुत दूर नहीं है !" अवदोत्या ने कहा। "यह कोई ऐसा मसला नहीं जिसे तुम साल भर में तै कर सकते हो ! इस मीटिंग में फ़ार्म के भविष्य के बारे में बहस हो रही है और उसी के बारे में मैं भी कह रही हूं। या तो हमें दलदल का पानी

खींचकर उस जगह चरान बनानी पड़ेगी या कोई और उपाय करना होगा। चारे की व्यवस्था के लिए हमें तुरंत एक अलग दल नियुक्त कर देना चाहिए जिसकी अपनी योजनाएं और अपनी ज़िम्मेदारियां हों।"

"अवदोत्या ने जिस प्रश्न की ओर ध्यान दिलाया है, वह बहुत महत्व-पूर्ण है।" वालेंतिना ने खड़ी होकर समर्थन किया। "चारे की समस्या तो आज भी हमारे सामने है। कोई उपाय नहीं किया गया तो यह तूल पकड़ती जायेगी। इसलिए अपनी पंच-वर्षीय योजना में हमें चारे की व्यवस्था बढ़ानी होगी और इसके लिए एक दल नियुक्त करना होगा।"

"हां हां, दूसरे टीले के पीछे कितना बड़ा दलदल पड़ा है," पिमेन ने भी समर्थन किया, "वहां न घास होती है, न पेड़ हैं। यों ही जगह बरबाद हो रही है। वहां घास का इंतज़ाम क्यों न किया जाये?"

"पहाड़ी पर जंगल साफ़ किया गया है—पशुओं के लिए उससे अच्छी जगह और कौन सी हो सकती है।" अल्योशा ने कहा। "चरान की चरान और नदी का किनारा। ज़मीन सरकारी है। हम उसे किराये पर ले सकते हैं!"

"जगह अच्छी है, लेकिन दूर है। पशुओं को बीस किलोमीटर कौन हांक कर ले जायेगा!" लुबावा ने कहा।

उत्तेजना से अवदोत्या का चेहरा लाल हो रहा था। वह बहुत सुन्दर लग रही थी।

"हां अल्योशा, तू ठीक कहता है। गर्मियों में पशुओं को वहां ही रखा जाये! हम लोग भी वहीं रहें। बड़ा अच्छा विचार है। उतने दिन चारे की समस्या दूर हो जायेगी! अरे, वास्या"—अनायास उसके मुंह से 'वासिली' की जगह 'वास्या' निकल गया—"हम लोग वह जगह किराये पर क्यों न ले लें? दलदल को सुखाकर चरान बना लें और वह जगह मिल जाये —तो हम लोग पशुशाला में चमत्कार करके दिखा दें!"

अवदोत्या ने बिना किसी संकोच के वासिली की आंखों में देखा। वह भूल गयी थी कि वह अपने पुराने पति से बातें कर रही है। इस समय वह सिर्फ ऐसे आदमी को देख रही थी जो कठिन परिस्थिति से बाहर निकलने का रास्ता खोज सकता था!

"इस पर सोचेंगे!" वासिली ने उत्तर दिया।

कटे हुए जंगल वाली जगह सरकार से ले लेने की बात उसे भी जंची थी।

"तुमने वह चरान खुद देखी है?" वासिली ने अवदोत्या से पूछा।

"हां, हां, भई देखी है ! पिछले साल हम लोग वहां रसभरियां तोड़ने गये थे। मैं तो उन चरानों को देखकर पागल हो उठी थी। मिल जाये, तो तो मज़ा आ जाय !"

"इस काम में ज़िला पार्टी कमिटी और प्रान्तीय पार्टी कमिटी हमारी मदद कर सकती हैं।" बुयानोव बोला। "हम लोग अपने पार्टी संगठन की तरफ़ से एक पत्र लिख देंगे और ज़रूरत हुई तो अखबारों में छपवा देंगे।"

"कहां है यह जगह ?...किस तरफ़ ? मैं भी देखूंगी।" क्सेन्या ने उत्सुकता से पूछा।

अवदोत्या के भाषण से बहस में जान पड़ गयी थी। पिमेन यासनेव बोलने के लिए खड़ा हुआ :

"हम लोग पांच वर्ष आगे की बात सोच रहे हैं। इस समय हमें मिट्टी के बारे में भी सोचना चाहिए। दलदल वाली चरानों के पीछे जैसी मिट्टी है वैसी ज़िले भर में कहीं नहीं है। उस मिट्टी से हम लोग ईंटों और मिट्टी के बर्तनों का काम क्यों न शुरू कर दें—इससे फ़ार्म की आमदनी भी बढ़ेगी। काम भी मुश्किल नहीं है।"

आधी रात होने को थी। वालेंतिना ने मीटिंग समाप्त करते हुए कहा :

"साथियो ! वासिली, बुयानोव और मेरा खयाल था कि हम लोगों ने जो कार्यक्रम बनाया था उसमें सभी बातें आ गयी थीं। पर आप लोगों ने बहुत सी नयी बातें सुझायी हैं। हम लोगों का काम अब और भी बढ़ गया है और उसे पूरा करने के लिए हमें और अधिक परिश्रम करना पड़ेगा।"

"अरे, करने वाले के लिए कुछ मुश्किल नहीं !" लुबावा ने बहस समाप्त की।

३. वसंत

पहली मई फ़ार्म में अनाज, पशुओं और चारे की व्यवस्था खास अच्छी नहीं थी। युद्ध के पहले की अपेक्षा हालत काफ़ी खराब थी। फिर भी उस वर्ष बोवाई के लिए जैसे उत्साह से किसानों ने तैयारी की वैसा पहले कभी नहीं देखा गया था।

इस उत्साह और तैयारी में बहुत कुछ हाथ था वालेंतिना का। वालेंतिना फर का क़ीमती कोट बहुत पहले ही उक्रेन में छोड़ आई थी। अब वह भेड़ की खाल का मोटा कोट और मोटे कपड़े की पतलून पहने, कमर पर कसी पेटी बांधे, घूमती फिरती थी। ठीक देहाती काम-काजी लोगों जैसी पोशाक। इससे खेतों, झाड़-झंखाड़ और बर्फ़ीले खेतों में घूमने तथा टट्टू पर बैठ कर इधर-उधर जाने में सुविधा होती थी। दुबले-पतले शरीर, चंचल स्वभाव, 'उड़ती' भौंहों और तेज़ आवाज़—जो कभी हल्की और कभी गम्भीर हो जाती थी—वाली इस महिला से आसपास के पांचों सामूहिक फ़ार्मों के लोग अरसे से परिचित थे और हमेशा उसके स्वागत को तैयार रहते थे। वालेंतिना उन दिनों की याद आने पर मुस्करा उठती जब बरफ़ से ढंके, दृष्टि की सीमा तक फैले, खेतों को देखकर उसका मन आतंकित हो उठता था। उसे उस दिन की याद हो आती जब वह टीले पर बैठी बर्फ़ानी हवा में कांपती अकेली असहाय फुनगी को देख रही थी और स्लावका की बांसुरी की दूर से आती उदासी भरी धुन सुन रही थी। उस दिन उस अन्धड़ में वह उतनी ही असहाय और एकाकी थी जितनी वह फुनगी; उसकी हालत उतनी ही दयनीय थी जितनी उस 'कूकी' की आवाज़!

दूर-दूर तक फैले खेत अब उसके लिए 'अनपढ़ी, नयी पुस्तक के पृष्ठ' नहीं थे। बरफ़ से ढंकी इस निस्सीम धरती में वह अपने को नन्हीं सी और खोयी-खोयी अनुभव नहीं करती थी। अब वह एक-एक खेत से परिचित थी। उसे लगता जैसे उसकी मुट्ठी में कोई चीज़ आ गयी है।

उसे खूब मालूम था कि सांपोंवाले दलदल की धरती में अम्ल ज़्यादा है और सबसे अच्छे खेत टीले की तलहटी में हैं। टीले पर से आते-जाते समय कल्पना में उसे समीप के बंजर में बोये गेहूं के अंकुर दिखायी देने लगते। उसे वे उर्वरक भी दिखायी देने लगते जो इन अंकुरों पर छिड़काव करने के लिए इकट्ठे किये गये थे।

टीले के नीचे अल्योशा और उसके दल ने बीजों के लिए खास बढ़िया खेत तैयार किये थे। वालेंतिना की आंखों के सामने इस धरती के लिए आवश्यक मनों चूने के ढेले और खनिज उर्वरक, जो दल के गोदाम में रखे थे, नाच जाते थे।

इस धरती का चप्पा-चप्पा मूक भाषा में उसे अपनी बात समझा देता! वह बता देता कि वह क्या चाहता है, उसकी क्या शिकायत है!

वालेंतिना ने सभी खेतों की धरती की वैज्ञानिक परीक्षा करके चार्ट बना दिये थे कि किस खेत में क्या अधिक है और क्या कम, किसमें कौनसा पदार्थ मिलाना होगा, किसमें कौन सा नहीं। पहले तो किसानों को यह सब मज़ाक सा

लगा। परन्तु बाद में वे इन चार्टों की क़दर करने लगे और उनका महत्व समझने लगे। इन चार्टों से टीम-लीडर अपने-अपने खेतों से सम्बंधित बातें नोट कर लेते। फ़ार्म में अब एक नया मुहावरा सुनाई पड़ता था, जिसका मतलब बाहर वालों के लिए तो अगम्य था, लेकिन वालेंतिना का मन इसे सुनकर खुशी से नाच उठता था। मुहावरा था: "आजकल हम चार्ट पूरा करने में जुटे हैं!"

चार्टों के अलावा पांचों फ़ार्मों के दफ्तरों में खेतों के लिए उपयोगी फसलों की अदला-बदली की तालिकायें भी लटकी रहती थीं। हर काम की ताकीद इतने विस्तार से थी जितनी फ़ौजी हुक्मनामों में होती है।

ये सब बातें आन्द्रेई ने कुबान में अपने अनुभव से शुरू की थीं। वालेंतिना ने इन्हें आन्द्रेई से सीख लिया था।

चार्टों और तालिकाओं के मुताबिक काम मुश्किल से ही पूरा होता था। पर वालेंतिना इससे निरुत्साहित नहीं हुई। उसके अनुभव ने सिखा दिया था कि हर नये काम में शुरू में रुकावटें आती हैं! राख जैसी मामूली चीज़ इकट्ठी करने और खाद की जगह डालने में भी शुरू-शुरू में बड़ी कठिनाइयां पैदा हुईं। उसने हुक्म लिखे। हिदायतें जारी कीं। राख इकट्ठी करने के नाम पर मीटिंगों में भाषण दिये। खुद घर-घर चक्कर लगाये। लेकिन कोई फ़ायदा न हुआ। निराश होकर उसने खेती की शिक्षा वाले चक्र में राख पर विशेष भाषण दिया।

उसके भाषण का विषय था—राख! विस्तार से उसने राख के तत्वों के बारे में समझाया। उसने बताया कि सामूहिक खेतों की ज़मीन में उसकी ज़रूरत क्यों है। मिसालें देकर उसने बताया कि किस तरह राख की खाद से ज़्यादा अच्छी फसलें पैदा होती हैं। अपनी बात समझाने के लिए वह पहले से ही चुनकर गेहूं की बालें, आलू और गाजरें ले आई थी।

"यह देखो," दो गाजरें दिखाते हुए उसने कहा, "यह है औसत वजन की गाजर जो बिना राख वाले खेत में हुई है और यह है राख वाले खेत की गाजर!"

जो गाजरें उसने दिखायीं थीं वे पहले से चुनी हुई थीं। लेकिन सीधे-सादे किसानों पर इसका गहरा असर पड़ा। किसानों के दिमाग में यह पैठ गया कि राख बेकार चीज़ नहीं, बल्कि बड़ी क़ीमती और काम की चीज़ है। अब लोग खुद राख इकट्ठा करने लगे और यह बोझ उसके सिर से उतरा।

छोटी-मोटी कठिनाइयां और असफलताएं तो थीं पर फ़ार्म की योजनाओं का कार्यक्रम पूरा हो रहा था। वासिली की तरह वालेंतिना को भी लगता कि

बहुत भारी गाड़ी, जो बोझ के कारण दलदल में फंसी खड़ी थी, अब फिर चल पड़ी है; उसे लगता कि काफी धक्का-धुक्की के बाद आखिरी झटके ने उसे सड़क पर ला दिया है और अब वह चलती ही जा रही है।

वालेंतिना के प्रति लोगों के व्यवहार में भी कुछ महीनों में परिवर्तन आ गया था।

पहले वालेंतिना किसी फ़ार्म में जाती थी तो फ़ार्म के प्रधान या दलों के नायकों को ढूंढ़ने में ही उसका बहुत वक्त बरबाद हो जाता था। वे लोग उसकी बातों का उत्तर जम्हाई लेते हुए देते थे मानो उस पर मेहरबानी कर रहे हों। लेकिन अब वालेंतिना किसी फ़ार्म में जाती तो लोग खुद आकर उसे घेर लेते, उसका हाल-चाल पूछते और उससे अपने घर चलने का अनुरोध करते। लोग अब हमेशा उससे सलाह-मशविरा करने, उससे मदद मांगने और उससे हिदायतें लेने के लिए उसे घेरे रहते थे। वालेंतिना काम में चुस्त, फुर्तीली और ज़बान की तेज़ थी। पहले जब वह किसी को डाटती थी तो लोग बड़े बेमन होकर उसकी बातें सुनते थे। लेकिन अब उसकी डाट-फटकार से उन्हें तसल्ली होती थी। जिनको वह डाटती वे भी कहे बिना नहीं मानते :

"क्या समझते हो हमारी वालेंतिना को ... ? उसे कोई बेतुकी बात बरदाश्त नहीं ! वह तुम्हें मनमानी नहीं करने दे सकती !"

सैकड़ों लोग उस पर भरोसा करते थे और हज़ारों एकड़ ज़मीन की ज़िम्मेदारी उस पर थी। वालेंतिना का जीवन इन बातों से इतना भरा-पूरा था कि घर और पति की याद भी पहले जैसी नहीं रह गयी थी। अब यह याद उनके मिलन की कभी-कभी ही आनेवाली घड़ियों का आनन्द और मधुरता बढ़ाने में सहायक होती। कभी-कभी अचानक रात में वालेंतिना की खिड़की मोटर की बत्तियों से जगमगा उठती और मोटर दरवाज़े पर आकर रुकती। नींद से अलसाती, बिस्तरों की गरमी से निकल, वालेंतिना जैसे-तैसे हड़बड़ा कर दरवाज़ा खोलती। अंधेरे में उसे पति का चेहरा न दीखता। पर बाहर सर्दी में से आने के कारण वासिली के ठंडे-ठंडे हाथों का स्पर्श, कोहरे की गंध और बरफ़ से अकड़ा हुआ उसका कोट वालेंतिना को खुशी से पागल बना देते। ऐसे मिलन की मिठास उसके सपनों में भी समायी रहती। सपने में उसे वही ताज़गी, कोहरे की गंध और अकड़े हुए कोट का स्पर्श दिखायी देता। उसके हृदय की धड़कन बढ़ जाती ! उत्तेजना और खुशी से वह पागल हो उठती ! उसकी आंखें खुल जातीं !

"तुम्हारी याद ने परेशान कर दिया।" वासिली कहता। "ड्राइवर भी नहीं था। खुद ही मोटर लाया हूं। अंधाधुंध तेज़ी से गाड़ी चलायी है।"

कभी वह वालेंतिना से पूछता :

"कहो ! यहां भेज देने की बात से अब तो नाराज़ नहीं हो ?"

"दस हज़ार हेक्टर ज़मीन सम्भाल रही हूं," वालेंतिना उत्तर देती, "यह कोई मामूली बात है ? मज़ा तो मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में है, आन्द्रेई ! अगर हमारे पास पचास हज़ार हेक्टर जमीन होती, मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में अच्छी मशीनें होतीं और कुशल ट्रैक्टर-ड्राइवर होते तो हम लोग क्या न करके दिखा देते !"

"ज़रा सब्र करो ! सब होगा ! मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन पर मशीनें ठीक से लग जायें तो हम तुम्हें तीस ट्रैक्टर और पांच कम्बाइनें और भेज दें ! बस तभी ज़िले के काम में गर्मी आयेगी !"

आन्द्रेई के दिमाग़ में नये मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन की बात समायी हुई थी। वालेंतिना यह जानती थी और इसका महत्व समझती थी।

एक दूसरे से वे बहुत कम मिल पाते थे। फिर भी दोनों के जीवन का ध्येय एक ही था और यह एकता विछोह के कारण कम होने के बजाय और भी दृढ़ होती जाती थी।

"हमारा ब्याह हुए इतने बरस हो गये," वालेंतिना कहती, "लेकिन हाल ऐसा है जैसे कल ही ब्याह हुआ हो।"

"शायद हम लोग हमेशा नव-विवाहित रहेंगे।" आन्द्रेई कहता।

सवेरा होते ही आन्द्रेई वापिस चला जाता। पर, रात के अंधेरे और बरफ़ में उसके दौड़े चले आने का उन्माद वालेंतिना के मन में समाया रहता। विरह या एकाकीपन के लिए उसके मन में अब कोई स्थान नहीं था।

अप्रैल का महीना शुरू हो गया था। बोवाई का दिन आ पहुंचा।

वालेंतिना नींद में ही छत पर गिरती वर्षा की बौछारों की आवाज़ सुन रही थी। जंगल के वृक्षों का मरमर शब्द भी सुनाई पड़ रहा था।

"यह क्या !" आंखें खोलने के पहले वालेंतिना के दिमाग़ में ख़याल आया। "सवेरे-सवेरे से पानी पड़ने लगा ? आज तो खेतों की बोवाई शुरू होनी थी !" उसने आंखें खोल दीं। खिड़की के कांच पर पानी की तिरछी बौछारें पड़ रही थीं। खिड़की से बाहर पानी में भीगे मकान सिकुड़े खड़े थे। सभी चीज़ें सिकुड़ी-सिमटी जान पड़ती थीं। पास की तलैया में बूंदे पड़ने से वैसे ही नन्हें गड़े बन रहे थे जैसे शिशुओं के गालों पर हंसते समय बन जाते हैं।

वालेंतिना की पिंडलियां पिछले दिन की थकान के कारण दुख रही थीं। बड़ी मुश्किल से बिस्तर से पैर निकाल कर वह फ़र्श पर खड़ी हुई और पुकारा :

"अल्योशा ! ओ दादी !"

कोई उत्तर न मिला। सब लोग पहले ही बाहर जा चुके थे। वालेंतिना को उन्होंने इसलिए नहीं जगाया था कि पिछली रात वह बहुत देर से लौटी थी। दिन भर घोड़े पर सवार घूमती रहने के कारण उसकी पीठ और पिंडलियां बुरी तरह दुख रही थीं।

पांवों को नरम करने के लिए वालेंतिना ने दो-तीन बार घुटने मोड़े और सीधे किये। फिर, रात के कपड़े उतारे और पतलून चढ़ा ली। भीगकर सिकुड़े ऊंचे बूट भी पहने। यह देखकर उसे आश्चर्य हो रहा था कि अब वह आसानी से चल-फिर सकती थी।

अल्योशा एक कागज़ पर कुछ लिखकर मेज़ पर रख गया था। वालेंतिना ने उसे पढ़ा :

"वाल्या—मुझे डर है कि कहीं बीज खराब न हो जायें! आज बो देने चाहिए थे, लेकिन कैसे बो सकेंगे? तुम बीज-गोदाम चली आओ।"

वालेंतिना के चपरासी का काम करने वाला लड़का, जो बगल के ही मकान में रहता था, बाहर जाता दिखाई दिया।

वालेंतिना ने उसे पुकारा :

"अलेक! मेरा घोड़ा तो ले आ जल्दी से।"

वालेंतिना ने हवाई जहाज़ के सिपाही जैसी एक टोपी पहनी जिससे सिर कानों तक ढंक गया। ऊपर से उसने काले चमड़े का कोट पहन लिया।

अलेक एक बुढ़िया-सी बादामी घोड़ी ले आया। घोड़ी अब गाड़ी खींचने लायक नहीं रही थी। हां, सवारी दे सकती थी। देखने में फैली-फैली और कमज़ोर हड्डी की थी लेकिन 'सवारी लायक' ज़रूर थी। वालेंतिना उछल कर जीन पर जा बैठी। मुंह पर तड़ातड़ पानी की बूंदें पड़ने लगीं और कोट पर से धारें बह निकलीं। वह चल दी। घोड़ी के पैरों से छप-छप कीचड़ उछल रहा था।

तीन सामूहिक फ़ार्मों का चक्कर लगाकर वालेंतिना को बोवाई की तैयारी की जांच करनी थी। पहले वह अपने ही फ़ार्म के खेतों की ओर गयी। कौमसोमोल की टीम 'बीज और प्रयोगिक कामों के खेतों' पर काम कर रही थी। इसमें वियात्का का राई के दानों का, और जाड़ों में सबसे जल्दी पकनेवाली राई का अल्योशा का, छोटा सा खेत था।

उक्रेन के लोगों के लिए शरत के आरम्भ की वर्षा मुसीबत की जड़ थी। अगस्त और सितम्बर में बरसात से फसल कटाई में अड़चन पैदा होती थी और कभी-कभी खड़ी फसल बरबाद हो जाती थी। इसलिए जल्दी पकने वाली राई का बीज तैयार कर लेना ज़िले भर के लिए बहुत आवश्यक था।

अल्योशा ने दो वर्ष पूर्व पत्रों में एक लेख पढ़ा था कि प्रान्तीय कृषि-विभाग इस सम्बध में खोज कर रहा है। उसने एक पत्र प्रान्तीय कृषि-विभाग के कार्यालय को लिखा। उत्तर में उसे जल्दी पकने वाली राई के बीजों का एक छोटा सा पार्सल मिला। इन बीजों को बोकर अल्योशा ने काफी अनाज पैदा कर लिया था और पिछले वर्ष एक पूरा खेत इन्हीं बीजों से बो दिया था। वालेंतिना को अल्योशा के खेत से खास दिलचस्पी थी। उसने कौमसोमोल की टीम वाले खेत जाने का फैसला किया।

वर्षा की धुन्द में से खेतों में काम करनेवाले लोग संगीतमय गति से झुकते और सीधे खड़े होते दिखाई दे रहे थे। वालेंतिना ज्यों-ज्यों नज़दीक पहुंचती उनके काम की लगन और तत्परता और भी स्पष्ट दिखाई देती। खेत के किनारे पहुंचकर वालेंतिना ने घोड़ी की लगाम खींच ली। आंखों के सामने बिछे सौन्दर्य को देखकर वह अवाक रह गयी।

पहाड़ी ढलवान के खेतों पर नालियों का जाल सा बिछ गया था। ऊपरी ढलवानों से पानी बह जाने के कारण राई के कल्लों से ढकी काली मिट्टी स्पष्ट दिखाई दे रही थी। ढलवान का पानी अनेक धाराओं में बहता हुआ नीचे के खड्ड में इकट्ठा हो रहा था। पानी का वेग ढलवान और खड्ड के बीच की जगह सबसे तेज़ था। कहीं-कहीं चट्टानों से टकराकर भंवरें पड़ रही थीं और इन जगहों से अनेक छोटी-छोटी धाराओं में बहता पानी आगे का मार्ग ढूंढ़ रहा था। काले मटियाले बादल धरती पर झुकते चले आ रहे थे। वर्षा की बौछारों से चमकती एक उजली सी दीवार पृथ्वी से आकाश तक फैली थी। यह दृश्य अपने में ही अत्यंत मनोरम था! श्रम में लगे मनुष्यों की छायाओं ने इसकी चित्रमयता और सौन्दर्य को और भी बढ़ा दिया था। फावड़े चलाते लड़के-लड़कियां सिर्फ धरती को खोदते नहीं जान पड़ते थे—उनकी गति में ऐसी तेज़ी, एकरूपता और दृढ़ता थी मानो वे धरती को, गहरे कुहासे को, यहां तक कि स्वयं आकाश को चीरते चले जा रहे हों!

धुन्द और वर्षा के पर्दे में से युवकों और युवतियों के चेहरे परिश्रम से लाल दिखाई दे रहे थे और उनकी आंखें चमक रही थीं। उनके चेहरों पर छाई मुस्कान में एक अद्‌भुत जादू था। या तो कोहासे के बीच फटती लाली का यह अनोखा सौन्दर्य था या ठंड ने ही उनके चेहरों और आंखों में चमक पैदा कर दी थी, या फिर यह उनके हृदयों में उबलते उत्साह की ज्योति थी—वालेंतिना को इस समय वे बहुत प्यारे लग रहे थे।

अल्योशा वालेंतिना की ओर बढ़ आया। उसके बूट कीचड़ में धंसे जा रहे थे। वह इतना भीग चुका था कि वर्षा का अब उस पर कोई असर नहीं हो रहा था।

"कोट के बटन तो बंद कर ले !" वालेंतिना बोली।

"अब इससे ज्यादा क्या भीगूंगा !" उसकी नीली पुतलियों में अनोखी चमक थी। उसका चेहरा गुलाबी, भीगा हुआ और कुछ-कुछ परेशान था। "इधर देखो, वाल्या !" मेड़ पर बैठकर अपनी अंजुलियों से उसने पानी उलीचा। राई के अंकुर दिखाई देने लगे। अंकुर कुछ झुके-झुके से और हल्के रंग के थे : "यह है हमारी जल्दी पकने वाली राई !"

अल्योशा की आंखों में चिन्ता और व्यग्रता थी। उसकी चिन्ता दूर करना वालेंतिना का फर्ज था। वह कहना चाह रही थी—"भैया मैं तो खुद परेशान हूं।" पर वह थी कृषि-विशेषज्ञ और उसका चिन्ता प्रकट करना नवयुवकों के लिए निराशा का कारण बन जाता। अस्तु, वह बोली :

"अच्छा यह करो कि इस खेत से एक नाली निकाल दो। पानी बह जायेगा। बस सब ठीक हो जायेगा। बाद में पौधों पर खाद का छिड़काव कर दिया जायेगा। इसकी तैयारी रखना।"

घोड़ी पर सवार, काले चमड़े का गीला कोट पहने वह अफसराना ढंग से बातें कर रही थी। अल्योशा ने संतोष की सांस ली !

"बीजों का क्या होगा, वाल्या ?"

"गोदाम जाऊंगी, तब वहीं देखकर बताऊंगी।" वालेंतिना खुद ही नहीं जानती थी कि बीजों का क्या होगा। पर उसने अपनी परेशानी अल्योशा पर नहीं प्रकट होने दी।

अल्योशा उठ खड़ा हुआ। आंखें सिकोड़कर मुस्कराता हुआ खड्ड की ओर इशारा करके बोला : "अभी दो मिनट में खेत का सारा पानी बहाये देता हूं। ज़रा रुककर देखती जाओ। देखना पानी कितनी तेज़ी से बहता है।"

फ्रोस्या की सहायता से अल्योशा टीले पर नाली खोदने लगा। ज़मीन कड़ी और झाड़ियों की जड़ों से पटी थी। खोदने के बजाय ज़मीन को काटना पड़ रहा था।

फ्रोस्या नीचे का होंठ दांतों से दाबे, नीचे आंखें गड़ाये, ज़मीन खोदने में जुटी थी। कमर सीधी करने के लिए एक बार भी वह खड़ी नहीं हुई। बड़ी नपी-तुली चोट मार कर वह फावड़े को ज़मीन में घुसेड़ देती फिर एक झटका देकर मिट्टी का ढेर निकालती और एक ओर फेंक देती।

अल्योशा का फावड़ा फ्रोस्या के फावड़े से बड़ा था। वह निशाना बांध-बांध कर फावड़ा चला रहा था और बड़ी मुस्तैदी से ढेरों मिट्टी निकाल-निकाल कर एक ओर फेंकता जा रहा था।

काफी बड़ी नाली बन गयी थी और अब खड्ड और टीले के बीच सिर्फ़ ज़रा सी ज़मीन बाकी थी। फ्रोस्या कमर सीधी करने को खड़ी हुई। वालेंतिना

पर नज़र पड़ी (अभी तक उसने उसे देखा नहीं था) तो मुस्करा दी। फिर घूमकर लड़कियों को पुकारने लगी :

"अरी आओ री! देखो पानी कितनी तेज़ी से गिरता है!"

अल्योशा को छोड़ सभी अपना काम रोककर तमाशा देखने के लिए खड़े हो गये। पहाड़ी की दूसरी ओर से दूसरी टीम के लड़कों का दल भी आ पहुंचा।

"हटो, हटो! आखिरी मिट्टी मैं काटूंगी।"

अल्योशा की बांह पकड़कर फ्रोस्या ने उसे एक ओर हटा दिया और अपने शरीर का पूरा बोझ डालकर फावड़ा मिट्टी में धंसा दिया। एक ही बार में उसने मिट्टी का भारी सा ढेर काट कर फेंक दिया।

पानी की धारा खड्ड की तरफ़ बह चली। बाकी मिट्टी को पानी के वेग ने काट गिराया। पूरे वेग से पानी खड्ड में गिरने लगा। ऊपर ज्यों-ज्यों पानी कम होता जाता था, नन्हें-नन्हें ढीहे और गढ़े, काली गीली मिट्टी और उस पर फैले राई के नन्हें-नन्हें पौधे दिखाई दे रहे थे। खड्ड में पानी गिरने की अर्राहट के साथ ही लड़के-लड़कियां हंसते, कूदते, किलकारियां भरते दौड़ते हुए आ पहुंचे।

उत्साह बढ़ता ही जा रहा था। इन लोगों के उत्साह का प्रभाव वालेंतिना की घोड़ी पर भी पड़ रहा था। वालेंतिना की उत्तेजना को भांप कर वह भी बार-बार सुम पटक रही थी। फ्रोस्या कीचड़ में खड़ी थी। उसके मुंह से निकला —"हो-हो!"—और एक गोल पत्थर पर चढ़कर वह फिरकी की तरह नाचने लगी। उसकी दुरंगी आंखें—एक पीली, एक नीली—बिल्लियों की आंखों की तरह चमक रही थीं। पानी मूसलाधार बरस रहा था। लेकिन इसका किसे ध्यान था?

वालेंतिना का मन वहां से जाने को नहीं हो रहा था। वह कौमसोमोल के इन लड़के-लड़कियों के पास ही खड़ी रहना चाहती थी। पर उसे दूसरे फ़ार्मों में भी जाना था। उसे देखना था कि दूसरे फ़ार्मों की टीमें कैसे पानी निकाल रही हैं।

घोड़ी ने दो-तीन बार सुम पटके, गर्दन ऊंची-नीची की और वालेंतिना को लेकर कीचड़ में छप-छप करती चल दी।

रास्ते में मातवेयेविच मिला। बोला :

"बारिश ज़ोर की हो रही है!"

"हां बहुत ज़ोर की।"

आधे घंटे बाद दूसरे फ़ार्म के नज़दीक वालेंतिना को एक और किसान मिला। वालेंतिना इसे पहचान नहीं सकी। किसान उसकी ओर देखकर

मुस्कराता हुआ हाथ हिला रहा था। चिल्लाकर उसने कुछ कहा भी। पर हवा के तेज़ झोंकों के साथ उसकी बात भी उड़ गयी।

"अजीब आदमी है। क्या चाहता है?" वह सोच रही थी। नज़दीक पहुंचने पर उसने देखा कि वह आकाश में पश्चिम की ओर इशारा कर रहा था और कह रहा था: "आसमान देखो आसमान!" वालेंतिना ने उस ओर आंखें उठाकर देखा तो चकित रह गयी। पश्चिम की ओर बादल फट चले थे। नीले आकाश की फांक दिखाई दे रही थी।

तेज़ हवा बादलों को उड़ाये लिये जा रही थी। आकाश की नीली फांक चौड़ी होती जा रही थी। वालेंतिना और अपरिचित किसान, दोनों ही मुंह पर पड़ती जल की धाराओं की चिन्ता किये बिना आकाश की ओर आंखें उठाये जल से भरे विस्तार में खड़े मुस्करा रहे थे।

कुछ ही देर में सूर्य निकल आया। बादलों के रहे-सहे टुकड़े नीले विस्तार में भागे चले जा रहे थे। धूप में चमकते खेतों पर उनकी छायाएं भी दौड़ी चली जा रही थीं।

गीली धरती तेज़ हवा और तेज़ धूप से जल्दी ही अठर गयी। वालेंतिना की बुढ़िया घोड़ी भी अपनी तेज़ी दिखाने के लिए व्याकुल होने लगी।

वालेंतिना को पड़ोस के फ़ार्म का प्रधान दूर पर दिखाई दिया। वहीं से पुकारकर उसने उससे दुआ-सलाम की और बोली:

"अच्छे खेतों में आज दोपहर से ही जोताई करवा दो। पहले ढालू खेतों से शुरू करवाना।"

वालेंतिना का यह हुक्म एक के बाद दूसरी टीम में फैल गया। सभी एक-दूसरे को सुनाकर कहने लगे:

"दोपहर बाद ढालू खेतों की जोताई शुरू कर दो।"

दोपहर बाद नास्त्या ओगोरोद्निकोवा अपने सहायक विक्टर यासनेव को साथ लिये ट्रैक्टर पर खेत में आ पहुंची। पहली मई फ़ार्म के सभी लोग, जो काम पूरा करके खाली हो गये थे, ट्रैक्टर के पीछे हो लिये।

रास्ते में लेना और स्कूल के बच्चे भी इस भीड़ में आ मिले। बच्चे पांत बांधे फ़ौजी ढंग से चल रहे थे। उनके हाथों में लाल झंडियां और भेंट के लिए जिरेनियम के गुलदस्ते थे। नास्त्या ने बच्चों से फूलों की भेंट बहुत उत्साह से ली। अपने रूई के कोट में उसने फूलों का एक गुच्छा लगा लिया।

ट्रैक्टर के पीछे-पीछे झंडियां और फूलों के गुलदस्ते लिए चलने वाला अच्छा-खासा जलूस बन गया था। ट्रैक्टर की गरज सुनकर घरों में बैठे लोग भी

खिड़कियों से झांक-झांक कर देखने लगे। "ओहो, यह तो नास्त्या है," कहते हुए वे बाहर निकल आते और जलूस में शामिल हो जाते।

धूप की तेज़ी के कारण भीगी धरती से भाप उठ रही थी। वृक्षों की टहनियां खूब जल पीकर वसंत में लौट आये जोबन से फटी जा रही थीं। हवा में मिट्टी और भीगी शाखाओं की सोंधी गंध भरी हुई थी—तेज़ और मादक! लेना सिर को ऊंचा कर ज़ोर से गा उठी:

हम सब नास्त्या के हमजोली,
चले हैं साथ बना कर टोली!

बहुत से लोग मनमाने ढंग से गाने लगे:

मुझे बिठालो इस गाड़ी पर,
इसी गांव में है मेरा घर!

ढलवान के किनारे पहुंच कर नास्त्या ने जोताई के लिए खेतों में निशान देखे। चकित सी खड़ी वह मुस्कराती हुई सामने देख रही थी। फिर वासिली से बोली:

"शुरू करूं, कुज़मिच?"

वासिली और मातवेयेविच ने खेत से एक-एक मुट्ठी मिट्टी उठाई, उसे उंगलियों में पीसा और फिर न जाने क्यों माथे से छुलाकर फेंक दिया।

"चलूं?" नास्त्या ने फिर पूछा।

मातवेयेविच ने अपनी टोपी उतार कर कहा: "चलो!"

"बच्चो, चुप रहो," लेना बोली, "बोलना नहीं! पहला चक्कर पूरा हो लेने दो।" लेना को यह समारोह बहुत ही अनुपम, कवित्वमय और रोमांचकारी लग रहा था। बच्चे भोली-भोली आंखें फैलाये चुपचाप देख रहे थे।

गुर्राता-गरजता ट्रैक्टर एक ही झटके में सड़क पर से खेत में हो गया। नास्त्या का धूप से पका रंग, सफेद दांत और कोट में लगे फूल आंखों के सामने तेज़ी से उड़ चले।

"बधाई नास्त्या!" वासिली ने हाथ उठा कर कहा।

"बधाई!"

"मुबारक!" और भी बहुत सी आवाज़ें सुनाई दीं।

सभी लोग नास्त्या की ओर आशा भरी आंखों से देख रहे थे। इस समय सामूहिक खेत का भविष्य, सामूहिक खेत की फसलों का भविष्य, सामूहिक किसानों की हंसी-खुशी उसी के हाथों में थी। लोगों को उस पर पूरा भरोसा भी था।

सभी जानते थे कि उस दृश्य से नास्त्या के दिन और रातें उसी मशीन पर कटेंगी। उसी मशीन पर उसका खाना-पीना होगा! उसका शक्तिशाली ट्रैक्टर गांव का आखिरी चिराग बुझ जाने पर घुप्प अंधेरी रात में धरती और पास के जंगलों को कंपाता रहेगा! काली रात में काली धरती को बेधती दैत्याकार मशीन की आंखें जल उठेंगी! और इस मशीन पर बैठी होगी काली धरती और काले अंधकार से जूझती एक लम्बी, सांवली सी औरत—लौह सदृश्य अडिग और स्थिर, मशीन की तरह शक्तिशाली और अपराजेय!

"बधाई नास्त्या!"

"मुबारक नास्त्या!"

मशीन के खेत में उतरते ही मुबारकबादी की आवाज़ों से वातावरण गूंज उठा। ट्रैक्टर आगे बढ़ रहा था और अपने पीछे ज़मीन की खिली पट्टी छोड़ता जा रहा था—जैसे जहाज़ अपने पीछे फेन की धार छोड़ता जाता है।

ट्रैक्टर बढ़ता जा रहा था। सबकी आंखें उसी पर लगी थी। बाहें फैलाये धरती उसे बुला रही थी। आकाश पीछे हटता जा रहा था।

४. ढलवान पर फ्रोस्या के खेत

अप्रैल की वर्षा से भीगे खेत नास्त्या ने जोत डाले। इसके बाद बादलों ने आकाश में आने का नाम नहीं लिया। धरती एक-एक बूंद को तरस गयी। बड़े-बूढ़े भी कहते कि ऐसी गरमी उन्होंने अपनी उम्र में नहीं देखी। लू के अंधड़ों से जगह-जगह चटखकर धरती फट रही थी।

सुबह उठते ही लोग आंगन में निकल आते और आकाश की ओर आंखें उठाकर बादलों के नन्हें-नन्हें फीहों को गिनने लगते।

किसानों को आशा थी कि अप्रैल में हुई वर्षा की नमी बहुत दिन तक फसल को सम्भाले रहेगी, तब तक वर्षा हो ही जायगी। जो थोड़ा बहुत नुकसान फसल को हुआ होगा वह वर्षा हो जाने पर पूरा हो जायेगा।

"पानी का छींटा पड़ते ही फसल उछल पड़ेगी। तभी हमारे किये का फल सामने आयेगा!" वे एक-दूसरे को सान्त्वना देते।

लेकिन दिनों-दिन यह आशा मुरझाती जा रही थी। आशा भरे सपनों का स्थान चिंतापूर्ण आशंकाएं लेती जा रही थीं:

"अब भी वर्षा हो जाय तो कुछ तो बच ही जायेगा!"

किसानों के चेहरे उतर गये थे। निराशा से उनके होठ भिंचे रहते। एक ही बात सुनायी देती: "किया कराया सब खाक हो जायेगा...!"

गरमी की गेहूं की फसल चौपट हो गयी थी। पर यह फसल बोयी भी कम गयी थी। जाड़ों में पकने वाले गेहूं की निराई जल्दी करके मिट्टी चढ़ा दी गयी थी, इसलिए अभी तक खड़ी थी। आलू और दूसरी चीज़ों का और भी बुरा हाल था। आलू के खेतों की ओर उदास नज़रों से देखते हुए पहली मई फ़ार्म के किसान कहते: "बिपत में ये ही कुछ सहारा दे जाते थे, सो ये भी गये।"

वालेंतिना का चेहरा भी पीला और खुश्क पड़ गया था।

वह बराबर यही कहे जाती: "खेतों की सिंचाई करो! ज़मीन को नम बनाये रखो!"

किसानो को इकट्ठा करके वह समझाती:

"मिट्टी चढ़ाने को सूखी सिंचाई समझो। बिन-उलटी मिट्टी में बारीक नलियों से, जो दिखाई नहीं देतीं, पानी ऊपरी सतह पर आ जाता है। इससे मिट्टी की निचली सतह सूख जाती है। इसीलिए गोड़ाई करके इन नलियों को तोड़ देना चाहिए।"

इन नसीहतों और सीखों से किसानों को विशेष सान्त्वना नहीं मिली।

वासिली किसानों पर बिगड़ता, उन्हें डांटता-फटकारता। पर इसका कोई खास असर न होता। वालेंतिना आकर उससे बार-बार शिकायत करती:

"किसानों ने कल फिर निराई नहीं की। जाने क्यों, मानते ही नहीं?"

"मानें क्या," वासिली उत्तर देता, "उन्हें भरोसा हो तब न?" और मन ही मन कहता: "मुझे ही क्या आशा है?"

वह अपना सन्देह प्रकट न होने देता और जैसा वालेंतिना कहती किये जाता। पर, मन ही मन सोचता: "ये नलियां क्या बला हैं? भला इस भयानक सूखे और लू में निराई और जड़ों पर मिट्टी चढ़ाने से क्या होगा?"

वासिली को नलियों वाली बात पर यकीन नहीं था, न ही वह यह मानता था कि मिट्टी चढ़ा देना सूखी सिंचाई होती है। लेकिन वह इसे सरासर झूठ भी नहीं मानता था। वह सोचता—शायद दूसरी जगह निराई और जड़ों पर मिट्टी चढ़ाने से सिंचाई की कमी पूरी हो जाती हो। पर यहां, उग्रेन ज़िले और पहली मई क्षेत्र में, यह सब नहीं होने का।

अपनी आंखों से देखे और हाथों से छुये बिना किसी बात पर विश्वास कर लेना वासिली के लिए सम्भव नहीं था।

वासिली बचपन में एक बार एक प्रदर्शनी देखने गया था। वहां उसने एक मकान देखा—नमक का बना हुआ। वासिली को विश्वास न हुआ कि

यह नमक का बना है। उसने उसे ज़बान से चाट कर देखा। तब यकीन हुआ। प्रदर्शनी के निर्देशक ने उसे डाटा, "सभी लोग तुम्हारी तरह चाट-चाट कर देखेंगे तो मकान बचेगा?"

वासिली ने चुपचाप फटकार सुन ली। पर मन ही मन संतोष हो गया कि उसने सचमुच नमक का बना मकान देखा है। चाट कर देख लिया तो गांव वालों से जाकर दावे से कह तो सकेगा—मैंने सचमुच नमक का बना मकान देखा है। जब उसका स्वभाव ही ऐसा था तो वालेंतिना की वैज्ञानिक बातों का परिणाम अपनी आंखों से देखे बिना उन पर कैसे विश्वास कर लेता?

निराई और जड़ों पर मिट्टी चढ़ाई के चमत्कार में खुद का विश्वास न होते हुए भी किसानों से इस काम के लिए उसे बार-बार कहना पड़ता था। उसे बड़ी उलझन होती। काम से थक कर बैठे किसानों से जब उसे कोई ऐसी बात कहनी पड़ती जिस पर खुद उसे यकीन न होता तो उसकी ज़बान तालू से चिपक जाती और छाती पर भारी बोझ मालूम होने लगता। जिस भावना के लिए उसने एक बार वालेंतिना से डाट कर कहा था—"तुम बैठ कर 'कूकी' बनाओ", और जिसके लिए उसने दादी वासिलिसा को डाटा था, वही अब अधिकाधिक उसे दबा रही थी। वह इस भावना से दबा जा रहा था।

प्रायः ही, जहां उसे दृढ़ता से काम लेना चाहिए था, वह ढीला पड़ जाता और ऐसी बातों को तरह देता जिन्हें खत्म कर देना चाहिए था।

फ़ार्म की स्त्रियां अक्सर काम से कतरा कर सब्ज़ी-तरकारी बेचने बाज़ार चली जातीं। वासिली जानता था कि ऐसे मामले उसे फ़ार्म की सभा में पेश करने चाहिए थे। पर उसे ख़याल आ जाता—बेचारी कैसी मुसीबत के दिन काट रही हैं। वह ऐसे मामलों को टाले रहता या उन पर ख़ास ज़ोर न देता—बस, कभी कोई बात कह दी तो कह दी। इससे दिन-दिन काम में लापरवाही और अनुशासन की उपेक्षा बढ़ने लगी। वासिली सोचता—यह सब ठीक नहीं है, यह रवैया बदलना चाहिए। लेकिन वह इस रवैये को बदल न पाता, क्योंकि तब्दीली पहले उसे अपने में करनी थी।

इन उलझनों से रात में नींद न आती। वह कमरे में चहलक़दमी करता रहता। बार-बार सिगरेट पीता और शराब पीकर ध्यान बंटाने की कोशिश करता। परन्तु मन से चिन्ता हटाये न हटती।

दया और सहानुभूति? लोगों के प्रति दया और सहानुभूति कैसे प्रकट की जाय? इस दया और सहानुभूति के दो रूप हो सकते थे। एक तो यह कि सब को अपने-अपने बागीचों को सींचने और जंगल से छाल लाकर रस्सी बटने आदि की छूट दे दी जाय। दूसरा यह था कि अपने सन्देह को निकाल फेंका जाय, वैज्ञानिकों की सलाह पर भरोसा किया जाय, किसानों को उसी के अनुसार

चलने के लिए समझाया जाय, उनसे झगड़ा जाय, उन्हें मजबूर किया जाय, उनकी दो-चार कड़वी बातें सुन ली जायें, और फिर दो-एक तीखे शब्द कह कर उन्हें अपनी राह पर ले आया जाय। वासिली की बुद्धि कहती, उचित तो दूसरा ही रास्ता है। पर वह उस पर चल नहीं पाता था।

दोपहर का समय था। सड़क धूल से भरी हुई थी। वासिली चला जा रहा था। पांव धूल में धंस-धंस जाते थे। धूल खुश्की से इतनी महीन हो गयी थी कि एक बार उड़ कर हवा में ही थम जाती थी। हवा भी बादलों की तरह धुंधली हो रही थी। सूर्य की किरणों में चमक कर धूल के कण हवा में प्रकाश के चक्कर बना रहे थे—जैसे हवा में अबरक फैल रहा हो। गरमी और धूल से हवा भारी हो रही थी। तमतमाती धूप का सफेद कफ़न ओढ़े सारा वातावरण डरावना लग रहा था, मानो कोई धातु तीव्र प्रकाश करती हुई जल रही हो।

सड़क के दोनों ओर गेहूं के सूखे खेत खड़े थे। सूखे पौधों पर पतली-पतली सूखी बालें ऐंठी हुई थीं। गरमी में उग आने वाली झाड़ियां फूल रही थीं। झाड़ियों के फूल और पत्ते धूल से ढंके थे। फूलों की धूल मिली मीठी गरम गंध हवा में भरी हुई थी। खड्ड के किनारे की घनी झाड़ियों में कभी कोई पक्षी महीन सी आवाज़ में चिऊं-चिऊं पुकार उठता, मानो प्यास से व्याकुल पानी मांग रहा हो।

वासिली के सिर का पसीना गर्दन से होकर सीने और पीठ पर बह रहा था। उसने कमीज़ के बटन खोल लिए, पर इससे कुछ फरक न पड़ा।

"बुरा हो इस कमबख्त गरमी का! कैसी-कैसी योजनाएं बनायी थीं! कैसी बोवाई की थी! कितना परिश्रम किया था! कैसी-कैसी आशाएं बांधी थीं! सब इसी तरह बरबाद होने के लिए?"

सड़क से वासिली एक खेत में उतर गया। सूखी फसल में से रास्ता बना कर खेत के बीचोबीच जा पहुंचा। बालें और पौधे सूख कर ऐंठ गये थे, न मोड़ने से मुड़ते थे, न झुकाने से झुकते थे।

"यह खेत तो हाथ से गया!" वासिली ने सोचा। "राई का कुछ बच सकता है। पता नहीं आलुओं में भी कुछ बच पायेगा या नहीं। कुछ उनका ही भरोसा था।"

गेहूं के खेतों के पास ही आलू का बड़ा खेत था। सड़क के किनारे-किनारे निराई करके पौधों पर मिट्टी चढ़ा दी गयी थी। पर ज्यों-ज्यों वासिली खेत में आगे बढ़ता था, हालत बदतर दिखायी देती थी; निराई ठीक से नहीं

हुई थी। खेत के बीच में और जंगल की तरफ़ ज़मीन कड़ी पड़ कर पक्की ईंट की तरह हो गयी थी।

"लोगों ने निराई पूरी नहीं की! कोई करे तो क्या करे? इन लोगों को समझाया कैसे जाय? फ़ोस्या के दल की करतूत है। यह लड़की तो आफ़त है! परसों मुझसे कह रही थी कि सब काम पूरा हो गया है।"

कुछ खाली ज़मीन छोड़ कर नवयुवक टीम के दूसरे दल के खेत थे। इस दल की लीडर थी वीरा। वीरा यासनेव की लड़की थी। उम्र में छोटी और अनुभव में कम होने के कारण वह फ़ोस्या की तरह लोगों पर हुक्म नहीं चला पाती थी। वह कभी अपने टीम-लीडर से लड़ती-झगड़ती नहीं थी, कभी मनमानी नहीं करती थी। अल्योशा को बताये बिना, उसकी राय लिये बिना, वह कभी कोई काम नहीं करती थी। वीरा नाम को ही लीडर थी। वास्तव में उसके दल को अल्योशा ही संभालता था। इससे काम भी अच्छा होता था।

इन खेतों में आकर वासिली फसल को विशेष ध्यान से देखने लगा।

यहां निराई और मिट्टी चढ़ाई का काम बहुत अच्छी तरह किया गया था।

एक दो सप्ताह पहले तो वासिली को इन खेतों और पहले दल के खेतों में कोई फ़र्क़ नज़रनहीं आया था। इन खेतों की आलुओं और दूसरे खेतों की आलुओं में कोई खास अन्तर नहीं दिखायी दिया था। वासिली सोचने लगा था: "चाहे जितनी निराई और मिट्टी चढ़ाई किये जाओ—ऐसे सूखे में कुछ होने-हवाने का नहीं।" पर ज्यों-ज्यों दिन बीत रहे थे दोनों खेतों का अन्तर साफ़ दिखाई देने लगा था।

वासिली करीब एक हफ्ते बाद यहां आया था। जब वह नजदीक पहुंचा तो खेत को देख कर चकित रह गया। दूसरी बार निराई करने और मिट्टी चढ़ाने से हालत काफी बदल गयी थी। लगता था गरमी से पौधों का कुछ भी नहीं बिगड़ा है। पत्तों का रंग तक नहीं फीका पड़ा था। गहरे हरे हो रहे थे। वासिली को मानना पड़ा:

"किये का फल न हो, यह कैसे हो सकता है। आखिर वालेंतिना और उसकी वैज्ञानिक पुस्तकों की बात ही ठीक निकली।"

अब वासिली को वालेंतिना की बात पर विश्वास न करने और निराई के सम्बंध में अनुशासन ढीला करने पर पश्चाताप हो रहा था। सूखे के प्रभाव को रोक सकने में अपनी लापरवाही पर उसे दुःख हो रहा था। "घंटे भर की लापरवाही में इतना ज्यादा नुकसान," मन ही मन खीझता हुआ वह कह रहा था, "सभी खेतों को ऐसे सम्भलवा दिया होता तो क्या था? फ़ार्म के

एक-एक आदमी को खदेड़ कर भेजूंगा कि यह खेत देख कर आओ। फ्रोस्या की तो ऐसी खबर लूंगा कि याद रखें!"

वासिली सड़क पर आ गया। तमतमाती गरमी में पानी के लिए व्याकुल ऐंठे खड़े गेहूं के ठूंठों के बीच से सड़क कभी दाहिने कभी बायें घूमती हुई आगे निकल गयी थी। खेत बीरान था। सड़क के किनारे-किनारे झाड़ियां थीं जो कहीं-कहीं झुक कर सड़क की धूल में फैल गयी थीं।

गांव के पास वासिली को एक और खेत दिखाई दिया। खेत में नमी देख कर वासिली की आंखें सिरा गयीं। यह तातिआना का गोभी का खेत था। इससे अभी हाल में गोभियां उतारी गयी थीं। गोभी को गमलों में लगाकर, बार-बार निराकर और पानी देकर तातिआना ने गोभी की फसल इतनी जल्दी और इतनी घनी तैयार कर ली थी जितनी पहले कभी नहीं हुई थी। गोभी को लारी में भर कर वह स्वयं बाज़ार ले गयी थी। लारी में लदी गोभी के ढेर पर वह ऐसे बैठी थी जैसे कोई महारानी अपने सिंहासन पर बैठी हो। गोभियों को इतनी जल्दी बाज़ार में देख कर उक्रेन वाले अचम्भे में पड़ गये थे। लारी के आस-पास लोगों की भीड़ जमा हो गयी थी। हाथों-हाथ गोभी बिक गयी। कई अस्पतालों, सैनेटोरियमों और तरुण पायनियर कैम्पों से गोभी की मांग आई। खनाखन पैसा हाथ आया। गोभी के इस खेत के पास से आते-जाते वासिली अपने साथियों से कहता:

"देख लो भाई! किये से क्या नहीं हो सकता! गोभी की हम लोगों ने कभी परवाह की थी? तातिआना ने इस गोभी से फ़ार्म के लिए हज़ारों कमा लिये।"

इस खेत के पास से जाते हुए वासिली का चेहरा एक बार फिर खिल उठा।

दूर पर गांव के मकान दिखाई दे रहे थे।

फ़ार्म का दफ्तर इस समय सुनसान था। मोटी-मोटी मक्खियां खिड़कियों के पास भन्न-भन्न कर रही थीं। वासिली ने दफ्तर की चपरासिन से फ्रोस्या को बुला लाने के लिए कहा। उसका मकान पास ही था। हवा आने देने के लिए वासिली ने खिड़कियां खोल दीं।

खिड़की खोलते ही उसे क्सेनोफोन्तोवना की आवाज़ सुनाई दी—जैसे कान में कोई मक्खी भनभना रही हो। सामने के बाग में बच्चों को छाया में लिये बैठी वह कहानी सुना रही थी। क्सेनोफोन्तोवना की बुढ़ापे से कांपती आवाज़, मकानों की एक सी कतार, धूल से ढंकी सुनसान सड़क की लम्बी पट्टी और गांव पर बरसती गरमी, सब एक दूसरे से घुले-मिले मालूम होते थे। बुढ़िया उन भूतों की कहानी कह रही थी जो पृथ्वी को जला कर भस्म कर देते थे।

"तब सब फूल-पत्ते मुरझा जायेंगे, सूख जायेंगे। फिर डरावना भूत ज़मेई गोरिनिच अपने साथ वालों से पूछेगा : 'गीली धरती को साफ़ कर दिया ?' भूत-पिशाच चिल्ला कर कहेंगे : 'साफ़, जैसी सोलह बरस की कुआंरी !' बस, आग की लपट जल उठेगी। ज़मेई गोरिनिच फिर पूछेगा : 'गीली धरती को साफ़ कर दिया ?' भूत-पिशाच चिल्ला कर कहेंगे : 'ऐसी साफ़ जैसी रांड !' बस सब चीज़ें जल जायेंगी, राख हो जायेंगी। धरती फट जायेगी, दो टुकड़े हो जायेंगे।"

वासिली को ऐसी कहानियां अच्छी नहीं लगती थीं। सोचा : "बक्की बुढ़िया फिर बच्चों में ज़हर फैला रही है।"

चिढ़ कर उसने खिड़की से पुकारा :

"क्यों री बुढ़िया ! क्यों ख़ामख़ा बच्चों को डरा रही है ?"

"क्यों ? क्या मैं परियों की कहानी भी नहीं सुना सकती ?"

"यही है परियों की कहानी ? बहुत हो गया ! बस कर !"

भड़कीले कपड़े पहने मैंगी फ़ोस्या दरवाज़े पर आ खड़ी हुई। हरे रंग की कुर्ती ! गले में नारंगी मनकों की माला। नीला लहंगा ! दोनों आंखों का रंग भी अलग-अलग ! एक पीली और दूसरी नीली ! बड़ा स्वाभाविक लग रहा था, उसके स्वभाव और व्यवहार के अनुकूल ही।

"फ़ोस्या, तूने ढलवान वाले खेत को क्यों नहीं निराया ?"

"क्या होता निराने से ?"

"निराने से क्या होता है यह वालेंतिना ने सबको साफ़-साफ़ समझाया था। तूने क्या कान बन्द कर लिये थे ? सुना नहीं था कि निराने और जड़ों पर मिट्टी चढ़ाने से पानी देने के बराबर असर होता है ? यह बात तो कृषि-विज्ञान बताता है।"

"रहने दो ! किसी और को ये बातें सुनाना !" फ़ोस्या ने तेहे से कहा।

"पर तूने मुझे और अल्योशा को बेवकूफ़ क्यों बनाया ? तूने कहा था कि निराई पूरे खेत की कर दी है और की थी सिर्फ़ सड़क के किनारे-किनारे, दिखाने भर को ! बीच का सब हिस्सा ज्यों का त्यों छोड़ दिया ?"

"नीचे-नीचे निराई कर दी। ढलवान पर निराई करने से क्या फ़ायदा ? कहीं छलनी में पानी रुकता है ? ऊपर की फसल तो जल ही जाती। फरक क्या पड़ता ?"

"फरक पड़ता है। हम लोग वैज्ञानिक उपाय करें तो सूखा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जा, लड़कियों को इकट्ठा कर। जाकर अपने खेत की निराई कर।"

"और कुछ !"

"बदज़बानी मत कर, फ़ोस्या ! तुम लोग कोई नाचने वालियों की टोली नहीं हो, न मैं तुम्हारा यार हूं। मैं कहता हूं, लड़कियों को इकट्ठा कर और खेत जाकर निराई कर !"

"लेकिन निराई से होगा क्या ? ऐसे खेत की निराई करना और मुर्दे के उबटन मलना---एक बराबर है। हमें क्या कुछ मालूम ही नहीं ? तुम और वालेंतिना ज़िला अधिकारियों की वाहवाही लूटना चाहते हो ! तुम तो चाहते हो कि ज़िला अफ़सरों को लिख भेजा जाय : 'सब काम पूरा हो गया !' जो तुम्हारे मन में आये लिख भेजो, लेकिन हमें बख्शो ! लोगों को बेकार सताने से क्या फ़ायदा ? पास-पड़ोस के किसी फ़ार्म में निराई हो नहीं रही। अपनी और वालेंतिना की खुशी के लिए हमारे पीछे पड़े हो !"

"तेरा दिमाग़ ठिकाने है ? दूसरे दल के खेत देखे हैं तूने ? उन खेतों से उनका मिलान किया जिनमें निराई और मिट्टी चढ़ाई का काम नहीं हुआ ?"

"मिलान किया तो क्या !"

"कौन से अच्छे हैं ?"

"सब एक-जैसे हैं !"

"सब एक जैसे नहीं हैं। जाकर ज़रा वीरा के आलू वाले खेत देख !"

"अरे, होगा उन्नीस-बीस फरक। क्या उतने के लिए गरमियों भर मरते-खपते रहें ? हम नहीं जाने के। लड़कियां भी नहीं हैं। बेरी चुनने सब जंगल गयी हैं।"

"किसने जाने दिया उन्हें ?"

"मैंने !"

"तुझको दल की लीडरी से हटाना होगा।"

"और कुछ !"

गुस्से से वासिली का सिर भन्ना उठा। मन में तो आया कि चुन-चुन कर गालियां सुनाये। पर उसे आन्द्रेई की बात याद आ गयी और उसने अपने आप को रोक लिया। आन्द्रेई ने कहा था कि वह—वासिली—काम करवा सकने के उत्साह में काम करवाने के ढंग का खयाल नहीं रखता। यह उसकी खास कमज़ोरी थी। आदमी को समझाना चाहिए। उसकी चेतना को जगाना चाहिए।

वासिली ने क्रोध को बस में किया और समझाने का उपाय शुरू किया।

"पिछली मीटिंग में अल्योशा ने कहा था कि तुमसे दल-नायक का काम नहीं हो सकेगा। हम लोगों ने उसकी बात नहीं मानी। हम सबने तुम पर भरोसा किया। सोचा, समझदार लड़की है। तुम्हारी बात पर यकीन कर बैठे !"

"तो क्या मैंने बसंत भर काम नहीं किया? सबसे ज्यादा खाद किसने ढोयी? मेरे दल ने! पहली निराई किसने की? मेरे दल ने! जब तक कुछ करने से फायदा था, हमारे दल ने बराबर काम किया। अब करने से क्या फायदा? ज़रा उसे देखो," खिड़की के बाहर फैली धूप की ओर संकेत कर बोली, "ऐसे तप रही है जैसे भट्ठी हो।"

बहुत समझाने-बुझाने के बाद फ्रोस्या राजी हुई कि अगले दिन लड़कियों को लेकर ढलवान वाले खेत में निराई करने जायेगी। फ्रोस्या जा ही रही थी कि अल्योशा दफ्तर में आ पहुंचा। अपनी टोपी उतार कर अल्योशा ने बेंच पर फेंकी और क्रोध मे फ्रोस्या की ओर देखता हुआ बोला:

"अब तुम्हीं बताओ, वासिली कुज़मिच, इससे हमें क्या फायदा?"

"क्यों, क्या किया इसने?"

"उस दिन इसे निराई के लिए भेजा, बस थोड़ी सी मिट्टी खुरच कर चली आई। कल मुझे पूरी टीम को अगेती राई के खेत और बीजों के खेत की निराई-सिंचाई पर लगाना है, तो इसने यह पुर्जा लिख कर भेजा है।"

वासिली ने अल्योशा के हाथ मे पुर्जा ले लिया और पढ़ा। इसमें लिखा था:

"बीजों वाले खेत की सिंचाई करनी है तो खुद करो! हमको समझ क्या रखा है—खैरानी टट्टू? क्यों तुम्हारे लिए अपनी पीठ तोड़ें?"

फ्रोस्या अपने माथे की जुल्फें झटक कर बोली:

"क्यों करें हम किसी के खेत का काम? और कुछ! ये लोग तो हमारा काम नहीं कर देते!"

"तू तो जानती है कि यह बीज के खेत का मामला है। आगे राई की फसल का दारोमदार इसी पर है।" वासिली ने समझाया।

"खेत इनका है। पानी देना है, तो खुद दें।"

"तेरा मतलब है कि दस आदमी तो दिन-रात काम में पिले रहें और बाकी दस जंगलों में मौज करें? तुझसे कह रहा हूं कि बीज के खेत की ज़िम्मे-दारी सारे फ़ार्म पर है।"

"बड़े होशियार हो न!" फ्रोस्या ने जवाब दिया। "एक तरफ तो कहते हो, देखें किसके खेत अच्छे होते हैं। दूसरी तरफ, हमीं से काम कराकर उनका खेत अच्छा बनवाना चाहते हो? अपना भी काम करें, इनका भी? बाद में वाह-वाही लूटें ये लोग? ज्यादा काम की मज़दूरी मारें ये लोग? क्या कहने हैं! बड़े होशियार हो न? मुझे बुद्धू नहीं बना सकते। समझे?"

"सुन लीं इसकी बातें?" वासिली के पास ही बेंच पर बैठता हुआ अल्योशा बोला। "इसे समझाने से क्या फ़ायदा?"

"मैं जानता हूं, भाई! मैं खुद मगज़ मार चुका हूं!"

वासिली और अल्योशा फ्रोस्या पर आंखें जमाये बेंच पर बैठे थे। और उनके सामने दीवार से टिकी, कमर में बल दिये, फ्रोस्या ऐसी लापरवाही से खड़ी थी जैसे कह रही हो: "लो, यह खड़ी हूं। देख लो जी भर के! क्या बिगाड़ लोगे मेरा?"

"ऐसे दलों और दल-नायकों से फ़ायदा क्या है?" अल्योशा ने कहा। "वीरा यासनेवा मेरे काम में झंझट नहीं डालती। लेकिन, यह फ्रोस्या? यह तो मुसीबत है! जब तक अपने-अपने अलग-अलग खेतों पर काम होता है, जैसे-तैसे निभ जाती है—कुछ भी कहते रहो, कुछ भी बकते रहो। पर किसी बड़े काम के लिए ज़्यादा आदमियों की ज़रूरत हुई, कि बस वहीं बखेड़ा शुरू हो जाता है। टीम का लीडर जहां कमज़ोर हो वहां तो दल वाला तरीक़ा ठीक है। लेकिन अपनी टीम मैं खुद संभाल सकता हूं।"

"फिर क्यों दलों में होड़ की चखचख मचा रखी है", बिगड़कर फ्रोस्या बोली, "क्यों इतना गुल-गपाड़ा मचा रखा है? साझे का काम करना हो, चलो साझे का काम करो। दलों में होड़ करवानी है, तो हो जाने दो होड़! अब तुम्हीं सच-सच बताओ—हम इनसे होड़ कर रहे हैं, ये हमें हरा रहे हैं। हम क्यों जाकर इनके खेत में कमर तोड़ें? इनके खेत में काम तो हम करें और ज़्यादा पैदावार की मज़दूरी लें ये! कहां का न्याय है? हमारी लड़कियां दूसरों के खेत में जाकर क्यों काम करें?"

"तुम्हें कितनी बार समझाया कि बीज के खेत की ज़िम्मेदारी पूरे फ़ार्म पर है।"

"तो फिर खेत दलों को क्यों बांटे गये? इनके खेत में हम नहीं जाने के! हमें जो खेत मिले हैं, हम उनका काम करेंगे।"

"ये तो अपने खेतों से चिपकी हैं," अल्योशा फिर बोला, "ये नहीं हिलने की। इस तरीके से फ़ायदा नहीं होने का, वासिली कुज़मिच! बहुत सी ज़मीन हो और बहुत से काम करने वाले हों तब तो काम में जी लगता है! लेकिन यह कैसा काम है? मेरे तो हाथ बंध गये हैं!"

"तो तुमने दल बनाये ही क्यों? पहले तो जो धुन सवार हो गयी, सो सवार हो गयी। बाद में सारा कसूर फ्रोस्या का! सारा दोष मढ़ा जाता है मेरे असहाय सिर पर!"

"क्या कहने हैं तेरे 'असहाय' सिर के!"

"क्यों? क्या झूठ कहती हूं? बेकार में ढेले तो फिंकते हैं मेरे सिर पर! मैंने साफ़ कह दिया कि मेरी लड़कियां किसी दूसरे का खेत सींचने नहीं

जायेंगी। दल तोड़ दो, साझा कर दो, हम सबके साथ जायेंगे। यही मेरा फैसला है।"

फ्रोस्या दफ्तर से चली गयी। जाते हुए किवाड़ों को खूब ज़ोर से बंद करती गयी।

"आफत की पुड़िया है यह लड़की !" वासिली ने कहा।

"ठीक कहते हो," अल्योशा बोला, "लेकिन असल में बात सिर्फ फ्रोस्या की नहीं है। तुम खुद सोचो, वास्या चाचा ! खेती सम्बंधी कोई भी बड़ा काम उठाने पर बहुत से आदमियों की ज़रूरत पड़ती है। लेकिन हमने उन्हें छोटे-छोटे दलों में बांट दिया है, उन्हें अलग-अलग खेतों में कर दिया है। काम के हिसाब से मज़दूरी वाला तरीक़ा लागू कर दिया है। इस तरह काम नहीं होने का। और, मज़दूरी कैसे नापोगे ?"

कुछ देर बाद वासिली की ओर देख कर अल्योशा ने फिर पूछा: "बोलो क्या कहते हो ?"

"सोचने की ज़रूरत है...!"

उस रात वासिली ने अद्‌भुत स्वप्न देखा। उसे लगा जैसे झाड़ियां उसके कंधों पर उग आई हैं, गालों पर फैल गयी हैं और पत्ते उसके कान में गुदगुदी पैदा कर रहे हैं।

"उठो वास्या ! अब उठ जाओ न !" बुढ़िया अगाफ्या वासिली की चारपाई पर झुककर उसे जगा रही थी। बुढ़िया की सामने लटकी चोटी वासिली के गालों को छू रही थी।

"उठो भले आदमी ! ज़रा खिड़की की तरफ तो देखो।"

रात खतम हो रही थी, लेकिन पूरी तरह सवेरा नहीं हुआ था। रात और प्रभात के बीच का यह वह समय था जब कहना कठिन होता है कि बाहर फैला प्रकाश चांद का है या उषा का ! दो तरह के प्रकाशों का अद्‌भुत संगम ! तारे निस्तेज होकर अब भी क्षितिज पर टिमटिमा रहे थे। आकाश के एक छोर पर काली छाया सी दिखाई दे रही थी। कहीं दूर बिजली कड़कने की आवाज़ सुनाई दी।

"बादल ?" वासिली चारपाई से कूदकर खड़ा हो गया।

कपड़े पहनकर वह गली में निकल आया। यहां विचित्र ही दृश्य दिखाई दिया। सभी किसान घरों से निकल आये थे। गली आदमियों से भरी हुई थी। कोहरे भरे वातावरण में लोग चुपचाप इधर-उधर घूम रहे थे। लगता था आकाश से परछाइयां उतर आई हैं। सभी की आंखें क्षितिज पर उमड़ते

बादल की ओर उठी थीं। ऊपर उठे चेहरों और पोपलार के वृक्षों की हिलती शाखाओं में उत्कट प्रतीक्षा का कम्पन था।

पौ फटने से पहले की इस स्तब्धता में एक गहरायी थी, एक स्पन्दन था। लोग चुप्पी तोड़ने से डर रहे थे, मानो उनके बोलने से बादल लौट जायेगा। वे फुसफुसाकर बातें कर रहे थे। उनकी दबी उत्तेजना में, पूरब की ओर उठे उनके चेहरों की उत्सुकता में एक विचित्र प्रकार की श्रद्धा और उत्साह था। प्रभात की इस मनोहर वेला में नींद की स्तब्धता से निकलकर लोग प्रतीक्षा की स्तब्धता में खो गये थे।

कभी किसी दरवाज़े के खुलने या बन्द होने की आहट सुनाई दे जाती।

"किसी के यहां रोटी है?" शायद यह क्सेनोफोन्तोवना की आवाज़ थी। "रोटी गोल और पूरी चाहिए।"

किसी दूसरी स्त्री की आशंका भरी बारीक आवाज़ सुनाई दी:

"बादल उड़कर कहीं पोचिन्कोवो की तरफ़ न चला जाये? बड़ा ज़ुल्म हो जायगा। हम लोगों के मुकाबले उन्होंने आधी मेहनत भी नहीं की है?"

चुप्पी भरी गली में फ़ोस्या बिजली की तरह तड़पती हुई आई।

"अरे भाई, कोई मेरी मदद करो!" फ़ोस्या रुआसे स्वर में चिल्ला रही थी। "हमारे ढलवान वाले खेत बिना निराये पड़े हैं। पानी ऐसे बह जायेगा, जैसे कांच पर से बह जाता है। धरती पानी पी नहीं पायेगी। भैया मदद करो। हमारी निराई करा दो। एवज में हम तुम्हारा काम कर देंगे।"

वासिली दफ्तर की ड्योढ़ी पर चढ़ गया। उसने अपना हाथ ऊपर उठाया। उसे इस आवेगमय प्रतीक्षा को शक्तिपूर्ण क्रियाशीलता में बदलना था।

"साथियो!" वासिली गरजकर बोला। "सब लोग खेतों को! टीम लीडरो! जहां भी बे-निराई धरती हो, फौरन निरा डालो! जो कोई फालतू हो, फौरन फ़ोस्या के खेत पहुंचे! एक बूंद भी बेकार न जाने पाये! एक भी बूंद बरबाद न होने पाये!"

वासिली को अपने शब्द दोहराने नहीं पड़े। स्त्री और पुरुष बेलचे और कुदालें ले-लेकर खेतों को दौड़ पड़े। अल्योशा, लेना और वालेंतिना दौड़ती हुई सामने से गुज़रीं। अवदोत्या के सलोने चेहरे की झलक भी पल भर को दिखाई दी। ताड़ जैसा मातवेयेविच लम्बे डग भरता निकल गया। खटाखट किंवाड़े बन्द होने लगे। कोई घर में नहीं ठहरना चाहता था।

सबसे बाद में आने वाला तातिआना का दल था। खुरपे और कुदालें लेने उन्हें तरकारी के बग़ीचे जाना पड़ा था। इसीलिए उन्हें कुछ देर हो गयी थी।

"जल्दी लड़कियो! डग बढ़ा के! हम लोग पीछे न छूटने पायें!" तातिआना लड़कियों को ललकार रही थी। यकायक वह क्सेनोफोन्तोवना से

टकरा गयी। सुनसान गली के बीचोबीच एक रोटी पर झुकी क्सेनोफोन्तोवना बैठी थी। लड़कियां ठिठक गयीं।

"आग्रा रे! गली के बीचोबीच बैठी क्या कर रही हो? जी ठीक नहीं है क्या?" हड़बड़ाकर तातिआना ने पूछा।

"बादल को मना रही हूं"—वह कहना चाहती थी पर ज़बान ने साथ न दिया। लड़कियां समझ गयीं।

"अरी लड़कियो! रोटी से बादल को मना रही है!" किसी लड़की की तेज़ आवाज़ सुनाई दी। सारी गली हंसी से गूंज उठी।

"भूख लगेगी तो खेत में काम आयेगी!"

तातिआने ने झपटकर रोटी उठायी और भाग चली। मुंह घुमाकर क्सेनोफोन्तोवना से कहती जा रही थी:

"एक रोटी उधार रही। डरना नहीं, वापिस कर दूंगी।"

बादल अब तक आकाश के एक-तिहाई भाग में फैल चुका था।

"कहीं दूसरी तरफ न निकल जाये!" मुंह ऊपर उठाये वासिली सोच रहा था।

वासिली की सीध में ही वालेंतिना खड़ी थी। दौड़ कर वह वासिली से पहले आ पहुंची थी। दौड़ते समय मुस्कराती हुई मुड़-मुड़ कर वह वासिली को देखती जाती थी।

"सभी तो आ गये हैं!" वह सोच रही थी। "कोई नहीं छूटा। हम लोगों में कितना एका है! कितनी मित्रता है! अरे, लेना भी आई है! कुज़मा बोतनिकोव भी है! प्रास्कोव्या भी! फ्रोस्या सबसे आगे है, उसके पीछे अवदोत्या! दोनों कितनी तेज़ और मेहनती हैं। ओ हो, अवदोत्या मुझे देख कर हंस रही है! ठहर मैं अभी बताती हूं!"

वालेंतिना फावड़े से ज़मीन खोदने में जुट गयी। फावड़ा पहले तो सूखी ज़मीन से टकराकर उछल आया, पर ऊपरी परत टूट जाने के बाद मिट्टी आसानी से कट-कट कर गिरने लगी।

सवेरा होते-होते वर्षा शुरू हो गयी।

हवा अपना ज़ोर आजमाती हुई खेतों पर लहरें लेने लगी। फिर, खड्ड के किनारे खड़े एकाकी भूर्ज वृक्ष को दोहरा करके धूल के अम्बार उठाने लगी। फिर, उसने भूर्ज वृक्ष को छोड़ दिया और फसल को रौंदने लगी। तभी पड़-पड़ करती हुई पानी की बड़ी-बड़ी बूंदें धूल में गिरने लगीं। लोगों के मुंह-हाथ भीगने लगे।

बूंदों का वेग तेज़ होता गया, फिर पूरी अर्राहट से तूफ़ान फट पड़ा।

खुदी हुई ज़मीन पानी पी-पी कर फूलती और काली पड़ती जा रही थी। मूसलाधार पानी बरस रहा था। लोग खूब भीग गये। पर, कोई पीछे नहीं लौटा। भीग कर भी उनके चेहरे प्रसन्नता में चमक रहे थे। वर्षा की एक बूंद भी वे व्यर्थ न जाने देना चाहते थे।

बारिश कुछ धीमी हुई ही थी कि बंजर की तरफ़ बड़े ज़ोर से बिजली कड़की।

"भागो खड्ड की तरफ़!" वासिली चिल्लाया।

वासिली को डर था कि लोग टीले पर कहीं बिजली की चपेट में न आ जायें। बिजली बहुत ज़ोर से कड़की थी, जैसे सिर पर ही आ रही हो। सब तरफ़ चकाचौंध हो गयी। ऐसा लगा जैसे किसी ने टेढ़ी बरछी आकाश के कलेजे में भोंक दी हो।

सब लोग खड्ड में झाड़ियों के पास सिकुड़े-सिमटे खड़े थे। अकेली फ्रोस्या अभी खड्ड के बाहर खड़ी थी।

"अब देखना! खूब गछ कर आलू होंगे मेरे ढलवान पर।"

"हां, अब सब ठीक हो जायेगा।" अल्योशा ने सहमति प्रकट की। "आड़े वक्त निराई करके और मिट्टी चढ़ा कर हम लोगों ने खेतों को बचा लिया। अब पानी भी बरस गया। गरमी के गेहूं की फसल तो पूरी नहीं बचेगी, पर जाड़ों की राई और आलू की फसल खूब गहगही होगी।"

सब लोग एक साथ बोल उठे :

"क्या मौके से बारिश हुई है—आलुओं की निराई पूरी की थी कि..."

"हां! इससे अच्छा दूसरा मौका नहीं हो सकता था। अब तो मज़ा आ गया! वासिली को मालूम था, तभी तो इतना तूफ़ान मचाये था। क्यों, वासिली कुज़मिच?"

पल भर को वासिली की आंख अवदोत्या से चार हो गयीं। अवदोत्या की आंखों में कुछ लज्जा, कुछ प्रशंसा और कृतज्ञता थी।

वासिली को विस्मय हुआ। पर, इस समय तो सभी किसानों की आंखों और उनके मुस्कराते चेहरों में प्रसन्नतामय कृतज्ञता का भाव था। उसके प्रति सभी में कोई चीज़ नयी, स्नेहपूर्ण और कृतज्ञतापूर्ण दिखाई देती थी।

वासिली ने अनुभव किया कि शायद उस दिन पहली बार उन्होंने दिल से और पूरी तरह उसे अपना योग्य नेता स्वीकार किया है। वे उसके अडिग विश्वास और उसकी लगन के प्रति मौन प्रशंसा प्रकट कर रहे थे।

किसान मानो वासिली को धन्यवाद दे रहे थे कि उसने उनकी आशाएं पूरी कीं, जिसे उन्होंने प्रधान चुना था वह कठिन घड़ियों में झुका नहीं, उसने आगे बढ़ कर उनका नेतृत्व किया, उनसे अधिक दूरदर्शी और मज़बूत सिद्ध हुआ, ज़रूरत पड़ने पर उसने उनसे मोर्चा लिया और उनके पिछड़ेपन को ख़तम किया। किसानों पर यह वासिली की जीत थी जो उसने उनके सहयोग से ही प्राप्त की थी।

और अब फ्रोस्या के ढलवान पर वासिली ने एक और जीत हासिल की, अपने ऊपर जीत!

"कितनी बार मैं नाउम्मीद हो चुका था?" वह सोच रहा था। "कितनी बार मैंने निराशा के सामने सिर झुका दिया था कि सब व्यर्थ है, फसल नहीं हो सकती!"

तातिआना ने क्सेनोफोन्तोवना से छीनी रोटी सब लोगों में बांट दी।

"खाओ भाई, खाओ।" उसने कहा। "सब को भूख लगी होगी।"

"शक्कर वाला टुकड़ा वासिली को दो!" फ्रोस्या ने चापलूसी भरे स्वर में कहा। "मैं सच कहती हूं, हमारा प्रधान बड़ा समझदार आदमी है! इसे खुश रखने को तो हम कुछ भी करने को तैयार हैं!"

सबको भूख लगी थी। सूखी रोटी भी मीठी लग रही थी। मिनट भर में रोटी खतम हो गयी। एक टुकड़ा भी नहीं बचा। वर्षा थम गयी। बादल छंटने लगे। धुले नीले आकाश में सूरज चमक उठा। घास की पत्तियों में अटकी बूंदों में सूरज के करोड़ों प्रतिबिम्ब दमक रहे थे। किसान घरों की तरफ लौट चले।

बादल के इक्के-दुक्के टुकड़े अब भी आसमान में दौड़ लगा रहे थे।

"बारिश अभी कई दिन चलेगी!" मातवेयेविच ने अपनी अनुभवी आंखें ऊपर उठाकर कहा। "तुम्हें शाबासी है, वासिली कुज़मिच! तुमने पीछे पड़कर निराई और मिट्टी चढ़वाई करा ही ली। इस साल की फसल तो बस तुम्हारी बदौलत ही समझो। सच्ची बात है।"

"हां सच्ची बात है, चाचा।" किसी ने समर्थन किया। "फसल पकने का मौका भी आ ही गया समझो। बड़े मौके से बारिश हुई है। कई दिन चलेगी। देख न लो आसमान को!"

"तीन दिन में सब कसर पूरी हो जायेगी।"

"इसमें क्या शक है!"

"चलो जी मुसीबत टली।"

"अभी कहां !" वासिली ने कहा। "धरती फिर कड़ी पड़ जायेगी। इसे फिर निराना पड़ेगा।"

फ्रोस्या ने अपना सिर जरा ऊपर उठाया, भौंहें चढ़ाईं और अधिकारपूर्ण स्वर में बोली :

"कोई मुझसे शर्त बदता है ? मैं कहती हूं, निराई और सूखी सिंचाई—एक बराबर। यह बात कृषि-विज्ञान ने बरसों पहले बता दी थी।"

५. जीवन की राह

कुछ बरस पहले स्तेपनिदा के लिए वेतलुगा से कोई साइबेरियन बिल्ली का एक बच्चा ले आया था। बच्चा देखने में सुन्दर था, पर था बहुत सुस्त। हमेशा पड़ा सोता रहता था।

एक दिन कुछ बच्चे खेल के लिए उसे जंगल उठा ले गये। टोकरी से निकाल कर बच्चों ने उसे जंगल की पगडंडी पर खड़ा किया तो बिलौटे ने भय से रोंगटे फुला लिये और पल भर को स्तम्भित खड़ा रह गया।

हवा से हिलती घास की सांय-सांय। पत्तों से छन-छनकर धरती पर नाचती धूप। आस-पास दौड़ते कीड़े-मकौड़े। टिड्डों और पक्षियों की चींचीं-चिऊं-चिऊं। बिलौटा घबरा गया।

पहले तो बिलौटा कुछ क़दम धीरे-धीरे चला। फिर, सिकुड़कर बैठ गया। शरीर कांप रहा था। दुम हिल रही थी। सदा सोये से उसके सुस्त चेहरे पर भय की सतर्कता छा गयी।

फिर बिलौटे ने अपनी पीठ को कमान की तरह ताना, पूंछ को उठाया और आठ-दस ऐसी छलांगें भरीं जैसी उसने ज़िन्दगी में पहले कभी नहीं भरी थीं। इस तरह की कुछ छलांगें भरने के बाद सहसा वह बड़ी तेज़ी से एक झाड़ी में कूद पड़ा।

बिल्ले के रक्त में समायी न जाने कौन सी प्रवृत्तियां सहसा जाग उठी थीं ? न जाने किस अदम्य शक्ति ने इस सुस्त जानवर को इतना साहसी और निडर बना दिया था।

बिलौटे को देखकर स्तेपनिदा ने कहा था :

"यह तो बिलकुल प्योत्र जैसा है !"

प्योत्र को बचपन से ही जंगलों से प्रेम था। दो-दो, चार-चार दिन के लिए जंगलों में निकल जाना और वहीं घूमते रहना उसके लिए बड़ी बात न थी। दिन भर के बाद वह घर लौटता तो बिलकुल चुप्पा सा और आंखें खोयी-खोयी। लोग पूछते कि जंगल में क्या कर रहा था, तो उत्तर देता : "यों ही घूम रहा था।" इसके अलावा वह और कुछ न कह पाता! जो उसने देखा और अनुभव किया था उसे व्यक्त करने के लिए उसे शब्द न मिलते। बड़ा होकर प्योत्र शिकारी बन गया। लेकिन उसे शिकार के पीछे दौड़ने में उतना आनन्द नहीं आता था जितना एकान्त में निश्चिंत होकर घूमने में। उसे एक अजीब बेफिक्री और मस्ती महसूस होती।

जंगल की हरियाली में क़दम रखते ही वह दुनिया को भूल जाता। उसके आंख-कान जंगल के हो जाते। संसार की चिन्ताओं और व्यथाओं से उसे मुक्ति मिलती, तो वहीं जाकर।

प्योत्र अपनी बन्दूक भर रहा था।

"क्या मारेगा?" मां ने पूछा।

"जो मिल जाये..." उसने उत्तर दिया।

वह कभी अपने साथ कुत्ता नहीं ले जाता था। उसे इस समय शिकार की चिन्ता भी नहीं थी। पिछले दिन कुछ ऐसी बात हो गयी थी कि जंगल के एकांत में जाकर वह अपने मन को शान्ति देना चाहता था।

इस महीने प्योत्र की पीने की आदत कुछ बढ़ गयी थी।

अल्योशा ने एक दिन पूछा था : "ऐसा क्या जश्न मन रहा है आज-कल?"

"कुछ मन उदास रहता है। तुम मेरा मन बहलाते नहीं, सोचा खुद ही बहला लूं।" हंस कर प्योत्र ने अल्योशा की बात टाल दी थी।

उस रात की बरसात के बाद सामूहिक फ़ार्म का जीवन फिर सधी-बधी गति से बढ़ चला था। लोग फिर गांव की क्लब और दफ्तर के सामने वाली फुलवाड़ी में इकट्ठा होने लगे थे। प्योत्र भी वहां जाता। सबके साथ गाने का अभ्यास करता। नाटक की रिहर्सल में हिस्सा लेता। वाली-बॉल के खेल में शामिल होता। लेकिन पीने की लत ऐसी सवार हुई थी कि छुड़ाये न छूटती।

"प्योत्र, यह बहुत बुरी आदत है!" तातिआना ने एक दिन डांटा।

"तुझे क्या मतलब?" प्योत्र ने जवाब दिया। "मेरी तबीयत। जो मन में आयेगा करूंगा। बूढ़ा हो जाऊंगा तब तेरी राय ले लिया करूंगा।"

"नतीजा अच्छा नहीं होगा, प्योत्र!"

अल्योशा प्योत्र को क्लब के कामों में घसीटने की कोशिश करता, युवक दल के कामों में उसकी रुचि बढ़ाने की कोशिश करता। लेकिन प्योत्र हंस कर उसकी बातें टाल देता।

पिछली सांझ की बात है। प्योत्र ख़ूब पिये था। फ्रोस्या बहकाकर उसे घर के पिछवाड़े की बगिया में ले गयी थी। उसने बहाना किया कि गुसलखाने की खिड़की का कांच टूट गया है, उसे लगवाना है। गुसलखाने में अब भी गरम पानी और चूल्हे में ईंधन की गंध थी। कोई अभी-अभी गरम पानी से नहाया था।

"मैं अभी नहाई थी। बाल भी नहीं सूखे हैं। देख कैसे गीले और चिकने हो रहे हैं। रेशम जैसे!" प्योत्र से सटकर खड़ी होती फ्रोस्या बोली।

"देख फ्रोस्या, खतरनाक खेल खेल रही है तू!" प्योत्र ने चेतावनी के स्वर में कहा।

"हट! मैं क्या डरती हूं?" अपनी रंग-बिरंगी आंखें अधमुंदी करके हंसती हुई वह बोली। "क्या मैं डरती हूं?"

आधे घंटे बाद दोनों एक बेंच पर पास-पास बैठे हुए थे। प्योत्र कह रहा था:

"मुझे क्या मालूम था कि तू कुआंरी है। तू ने क्यों छेड़ा था मुझे? मैं जानता कि तू कुआंरी है तो तेरे हाथ न लगाता। देखने में तो ऐसी है कि कोई समझे तू दुनिया के तजुर्बे किये बैठी है!"

फ्रोस्या हत-बुद्धि बैठी थी। दोनों हाथ नीचे झूल रहे थे। भय से आंखें फैली हुई थीं। वह सामने देख रही थी।

पीले पड़े चेहरे पर बाल बिखरे हुए थे। उसने उन्हें ऐसे ही बिखरे रहने दिया। ऐसी दबी और हारी हुई वह कभी नहीं दिखाई दी थी। उसका यह रूप उसके नारीत्व को और भी आकर्षक बना रहा था।

प्योत्र को पछतावा हो रहा था। अपना हाथ फ्रोस्या के सिर पर रख कर बोला:

"दूर से देखने में तू इतनी चंचल लगती है! तेरी इसी चंचलता ने यह नौबत ला दी। मैं तो अच्छे-खासे झंझट में फंस गया।"

फ्रोस्या ने प्योत्र की बात का दूसरा ही अर्थ लगाया। तुनक कर बेंच से उठ खड़ी हुई और बोली:

"मैं तुझे दोष नहीं दे रही! तेरे माथे ज़िम्मेदारी नहीं मढ़ रही!...और ...और मैंने तुझसे यह नहीं कहा कि मुझसे ब्याह कर ले! क्यों डरता है तू?"

फ्रोस्या की आंखों से दो बड़े-बड़े आंसू टपक पड़े। उसने सिर झटका और दरवाज़े की तरफ़ चल दी।

"फ्रोस्या ! सुन तो ! फ्रोस्या ! मेरा यह मतलब नहीं था। कुछ अचानक ऐसा हो गया। आ, दोनों बैठ कर सोचें कि क्या करना चाहिए !"

दोनों फिर बेंच पर बैठ गये। प्योत्र ने फ्रोस्या के गले में बांह डाल ली। सिसकियां भरते हुए फ्रोस्या ने अपना सिर प्योत्र के कंधे पर टिका दिया।

आकाश से सूर्यास्त बेला की लाली छंट चुकी थी। सांझ का अंधेरा घिर आया था। दोनों मौन और भयभीत, अब भी वहीं बैठे थे।

इस घटना ने प्योत्र के जीवन को खलबला दिया था। वासिली के समान प्योत्र भी लोगों की नज़रों में साफ और ईमानदार आदमी बना रहना चाहता था। वह चित्त को स्थिर करना चाहता था, इस समस्या पर विचार करना चाहता था और इस सबके लिए एकमात्र स्थान था—जंगल।

घास से ढंकी पगडंडी झाड़ियों और झुरमुटों से होती चली जा रही थी। प्योत्र घास की कोमलता का आनंद ले रहा था। हर क़दम पर उसे नयी और अनोखी चीज़ें दिखाई पड़ती थीं।

तालाब के किनारे फर का एक बहुत पुराना वृक्ष था। वृक्ष का तना और टहनियां, सब काई से ढंके थे। लम्बी-लम्बी शाखाएं तालाब के काले पानी को चूम रही थी।

झरबेरी की एक झाड़ी में दो खूब पकी बेरी दिखाई पड़ीं और फिर तुरंत किसी पत्ते की ओट में लोप हो गयीं। जंगली गुलाब की घनी बेलें नन्हें-नन्हें लाल पत्तों से लदी थीं, जैसे घनी पत्तियों के बीच अंगारे दमक रहे हों।

आंधी से गिरा एक पेड़ रास्ते में पड़ा था। हवा में बांहें फैलाये उसकी जड़ें ऐसी लग रही थीं जैसे कोई भालू पिछले पांवों पर खड़ा हो। जड़ों के साथ अभी तक मिट्टी के ढेले चिपके हुए थे जिन पर उगी घास की पत्तियां हवा में लहरा रही थीं। ढेलों पर फैली चटकीले जामुनी रंग की जंगली फूलों की बेल रहस्यमय ढंग से दमक रही थीं। सांस की तरह हल्का नीले फूलों का एक गुच्छा था। किसी कोमल अदृश्य टहनी से लटका जंगल के कोहासे में घुला-मिला वह हवा में सिर हिला रहा था।

प्योत्र एक पगडंडी पर आ गया।

देवदार के वृक्षों के झुरमुट अधिकाधिक घने और रहस्यमय होते जा रहे थे। सामने काले पानी का छोटा सा दरिया दिखाई दिया जिसके दलदली कगारों पर हवा से उखड़े पेड़ सड़ रहे थे। दरिया के किनारे पहुंचना या उसे पार करना असम्भव था। ऊपर हवा तेज़ थी, पर नीचे इतनी स्तब्धता थी कि पत्ता भी नहीं हिल रहा था।

गरमियों में दिखाई देनेवाली लाल रंग की गिलहरी ने एक वृक्ष की टहनी से खुम्बों का गुच्छा लटका रखा था।

"ओह! बड़ी होशियारी से गृहस्थी चला रही है!" प्योत्र ने मन ही मन कहा।

पगडंडी पहाड़ी पर चढ़ती जा रही थी। नीचे की अपेक्षा ऊपर की जगह सूखी थी। चीड़ की सूखी सींकें पांवों के नीचे गद्दे की तरह दब-दब जाती थीं। चीड़ों से छन-छन कर आती धूप में बेरी की झाड़ियों के सुनहले पत्तों पर नन्हीं किरणों के सहस्त्रों प्रतिबिम्ब नाच रहे थे। ऊपर जाकर झाड़ियां भी खत्म हो गयी थीं। धरती पर सूखी काई रह गयी थी।

रास्ता ऊपर चढ़ता गया था। यहां पहाड़ी के शिखर पर देवदार के वृक्ष इतने लम्बे, सुन्दर और स्वच्छ थे कि आदमी देखता ही रह जाये। तनों पर टहनियां नहीं थीं। सूर्य की किरणों से पीत-रक्त आभा वाले लम्बे वृक्षों की हरी चोटियां नीलम आकाश में झूम रही थीं। जहाज़ों में काम आने वाली लकड़ी का यही प्रसिद्ध जंगल था। क्या यह स्थिर खड़ा था? अथवा, अपने भविष्य की कल्पना में लीन आकाश की अथाह गहराइयों में धीरे-धीरे तैरता चला जा रहा था?

रास्ता दूसरी ओर नीचे उतर गया था। जंगल का रूप-रंग भी बदल गया था। प्योत्र को न समय का ध्यान था और न आंखों के सामने फैले दृश्य के अतिरिक्त किसी और चीज़ का।

प्योत्र घर में सबसे छोटा था। देखने में सुन्दर, दिमाग़ का तेज़—वह मां का लाड़ला था। बचपन से ही मनमानी करने और दुलार पाने की आदत थी। किसी तरह का बंधन या अवरोध—अपने द्वारा लागू किया जाने वाला या किसी और किस्म का—उसे सह्य न था। भविष्य का विचार या कल की चिन्ता उसे समय की व्यर्थ बरबादी जान पड़ती थी! उम्र उसकी कम ही थी। उसके निरंकुश स्वभाव का कारण उसके यौवन की पशु-तुल्य उत्तेजना थी। पीने की आदत उसमें अपने मानसिक विकारों के कारण पड़ी थी और उद्दंडता उसे इसलिए प्रिय थी कि इससे माता-पिता तथा जान-पहचान की लड़कियों को संताप होता था।

अल्योशा के बार-बार समझाने-बुझाने, तातिआना के लानत-मलामत करने और वालेंतिना के क्रोध के कारण उसमें पहले से ही उत्पन्न आत्म-ग्लानि का अस्पष्ट सा भाव अब दिन-दिन बढ़ता और स्पष्ट होता जा रहा था।

जंगल पहुंच कर इन अनुभूतियों से मुक्ति मिल जाती थी। सब कुछ सरल और सीधा-सादा मालूम होने लगता था। अपने से क्रुद्ध लोगों के प्रति उपहासमय उपेक्षा जाग्रत हो जाती थी।

"इसी को ये लोग ज़िन्दगी कहते हैं?" वह सोचता। "हुंः! यही है ज़िन्दगी? ऐसा हो, ऐसा न हो! ऐसे बनो, ऐसे न बनो! सौ साल पहले

ही पोथा बना कर रख लिया ! ज़िन्दगी भी ऐसे चलाना चाहते हैं जैसे रेल की पटरी पर इंजन ! छिः ! बड़े काबिल बने फिरते हैं !... ज़िन्दगी ? ज़िन्दगी है यह !" जंगल की शीतल और स्फ़ूर्तिदायक हवा में लम्बी-लम्बी सांसें लेता हुआ वह सोचता। "यहां मैं जो चाहे करूं ! सब कुछ मेरा है ! इससे किसी का क्या बिगड़ता है !"

सब काम-धाम छोड़ प्योत्र जंगल की चढ़ाइयों और ढलवानों पर स्वच्छन्द घूमता फिरता। उसके आंख-कान पैने हो जाते। दीन-दुनिया की उसे खबर न रहती। कुंजों की झिलमिल, वृक्षों की मरमर और कहीं-कहीं से आनेवाली आवाज़ों में वह खो जाता। पूरी तरह स्वच्छन्द, अपने तन-मन को नियंत्रण-विहीन कर वह कब तक घूमता रहता उसे खुद याद न रहता। जो कुछ वह देखता उसकी छाया मात्र उसके मानस पटल पर रह जाती। उसके मन में बहुत से विचार उठते, क्षण भर को ठहरते और फिर बह जाते—जंगल की किसी छोटी नदी के जल पर पड़ती छायाओं की तरह।

"कोई कठफोड़ा खुट-खुट कर रहा है। शायद किसी पुरानी टहनी पर ! छिप तो नहीं जायेगा ? शायद नहीं ! चिरौंजी पक चली हैं। मीठी हो गयी होंगी ! यह रास्ता 'बारहसिंगों वाले जंगल' को जाता है। बारहसिंगा दिख भर जाय ! लेकिन ऐसी किस्मत कहां ! शिकार पर रोक लगने से बहुत से बारह-सिंगे हो गये हैं। जगह-जगह उनकी लीद मिलती है। लेकिन बारहसिंगा एक भी दिखाई नहीं देता। कुछ लोग किस्मत वाले होते हैं। उन्हें दीख जाता है। वह क्या है ? सामने क्या चमक रहा था उस ठूंठ के पास ? कोई जानवर ? बड़ी तेज़ी से निकल गया ! ऊदबिलाव था ? नहीं, ऊदबिलाव तो बड़ा होता है। आंधी सी आ रही है ! कब शुरू हुई ? जंगल में कुछ पता नहीं चलता !"

टीले पर हवा बहुत तेज़ थी।

आंधी से वृक्षों के तने चरचरा कर टूट रहे थे। जंगली फलों की वर्षा हो रही थी।

प्योत्र एक दूसरी घाटी में उतर गया। हरी-हरी तरंगों में जंगल चारों तरफ लहरें मार रहा था। मालूम होता था कि हवा में मचलती और उफनती हरियाली घाटी के किनारों को छाप लेगी और थोड़ी देर में रास्ते और घाटी को डुबा देगी।

काला बादल वृक्षों के तनों से अटका मालूम हो रहा था। वायु के प्रचंड वेग की डरावनी और खौफ़नाक हुंकार रह-रह कर सुनाई पड़ती थी। प्योत्र जितना ही आगे बढ़ता वायु की प्रचंडता भी बढ़ती जाती। जैसे ही वह खुली जगह में आया, आंधी ने उसे समेट लिया।

कुछ दूर आगे दलदली ज़मीन पर जंगली झाड़ियों की कतार थी। हवा के बगूले क्रोध से पागल होकर इन झाड़ियों से टकरा रहे थे। ज़रा और आगे चीड़ के वृक्षों का झुरमुट था। चीड़ के वृक्ष क्षण भर को खड़े रहते फिर हवा का वेग न संभाल पाने पर सिर पटकने लगते। लाल-लाल बेरियों के गुच्छे रह-रह कर ऐसे दिखाई दे जाते जैसे लपटें दहक उठी हों। वृक्षों की पत्तियां थर-थर कांपती हुई सीत्कार कर रही थीं।

हवा के बवण्डर उठते और वृक्षों तथा झाड़ियों को निर्दयता से झकझोर देते। वृक्षों को काटकर जहां जंगल साफ किया गया था वहां से कुछ ही आगे सूखा दलदल था जिस पर काली-काली काई जम गयी थी। सारी जगह आंधी से गिरे वृक्षों और सड़ती लकड़ियों से पटी थी। काले उमड़ते बादलों के नीचे यह दलदल डरावना लग रहा था। प्योत्र यहां पहुंचा ही था कि ठगा सा जहां का तहां खड़ा रह गया।

सामने ही कुछ दूर पर बारहसिंगा खड़ा था।

भूरा सा रंग, खूब घना रोंया! लम्बा-चौड़ा, भारी शरीर! शक्ति का पुंज!

सामने खड़े जीव को देखकर प्योत्र पर सबसे पहले उसकी विशालता और शक्ति की छाप पड़ी। अच्छी तरह देखने पर ही उसने पहचाना कि यह बारहसिंगा है।

घोड़े की अपेक्षा कहीं अधिक सुडौल, गोल-मटोल शरीर, टांगें खूब लम्बी और पतली। चौड़े सीने पर मोटी सी गर्दन। छोटा सा सिर, भारी सींगों की शाखाओं-प्रशाखाओं के बोझ से पीछे को झुका हुआ।

बारहसिंगा अचल खड़ा था। छोटा सा सिर ही कभी थोड़ा सा हिल जाता था। उसके खड़े होने के ढंग से आतंक और चौकसी बरस रही थी।

बेचारा बूढ़ा बारहसिंगा अकेला भटक गया था। वह दौड़ता या चुपचाप खड़ा हो जाता तो उसके भाई-बन्द आकर उसकी गर्दन अपने सिर से न सहलाते। कई दिन से अकेला घूम-घूम कर अपने साथ वालों को ढूंढ़ रहा था। उसकी दौड़-धूप सफल नहीं हुई थी। पिछली रात भटक कर वह घोड़ों के एक झुंड में जा पहुंचा था। घोड़े एक घाटी में चुपचाप घास चर रहे थे। दूर से वे भी उसी जैसे लगते थे। उनकी गंध भी बारहसिंगे को अच्छी लगी। घोड़े उसे देखकर डरे नहीं, उन्होंने उसे अपनी जमात में शामिल कर लिया। रात भर वह उनके साथ रहा। वह अपने एकाकीपन को भूला रहा। दिन चढ़े कुछ आदमी आ गये। घोड़े चुपचाप उनके पीछे चल दिये। घोड़ों की यह दीनता देख कर वह आश्चर्य में पड़ गया था। पर करता भी क्या। निदान वह भी एक ओर को चल दिया और फिर अकेला भटकने लगा।

शाम को आंधी आ गयी। आंधी से बारहसिंगों को बहुत भय लगता है।

बारहसिंगे की नज़र दूर तक नहीं देख पाती! पर उनके नाक और कान मीलों तक की ख़बर रखते हैं।

भले ही कोई आदमी कहीं दूर पेड़ों के पीछे छिप-छिप कर जा रहा हो या कोई लोमड़ी झाड़ियों में चक्कर काट रही हो, बारहसिंगे को मानुस या लोमड़ी की गंध तुरत पहुंच जायेगी। उसके कान आदमी के पैरों की चाप या लोमड़ी के पंजों की खरखराहट फौरन सुन लेंगे।

बारहसिंगे की सुन और सूंघ सकने की शक्ति ही वन की असंख्य विपदाओं से उसकी रक्षा करती है। पर जहां अंधड़ शुरू हुआ कि बारहसिंगा असहाय हो जाता है। भिन्न-भिन्न परिचित शब्द और गंधें इतने अधिक परिमाण में एक साथ आने लगती हैं कि बेचारा कुछ समझ नहीं पाता। उसके कोमल स्नायु थक जाते हैं, घायल हो जाते हैं और शिथिल पड़ जाते हैं। चारों तरफ़ से शब्द और गंधें उसे घेर लेती हैं। वह कुछ नहीं समझ पाता कि वे कहां से आ रही हैं और कहां जा रही हैं।

अपरिचित, भिन्न और प्रतिकूल वातावरण में वह घबराया हुआ असहाय खड़ा रह जाता है।

प्योत्र के सामने का बारहसिंगा चौकस और अडिग खड़ा था। बस, अपना छोटा सा सिर घुमाकर इधर-उधर देख लेता था। सहसा वायु के झोंके से उसे मनुष्य की गंध मिली। उसके नथुने फड़क उठे।

प्योत्र ने देखा कि क्षण भर को बारहसिंगे का शरीर कांपा। पलक झपकते उसने सिर ऊंचा उठाया, सींग पीठ से छुलाये, कुलांच भरी और सड़ी लकड़ियों को लांघता, लम्बी कुलांचें भरता भाग चला। वह ऐसे भाग रहा था जैसे उसके पर निकल आये हों और वह ऊबड़-खाबड़ दलदल पर से उड़ा जा रहा हो। इतने भारी पशु की ऐसी उड़ान देख कर विश्वास नहीं होता था कि यह वही पशु है जो अभी सामने खड़ा था।

बारहसिंगा निकला जा रहा था...! प्योत्र सुध-बुध खो बैठा। बिना सोचे-विचारे कि क्या कर रहा है उसने गोली दाग दी। जानवर की सामने की दोनों टांगें मुड़ीं। घुटनों के बल वह ज़मीन पर आ गिरा। उसने फिर उछलने का यत्न किया, पर बन नहीं पड़ा। वह करवट के बल गिर पड़ा। टांगें हवा में छटपटाने लगीं। सींग धरती पर फैल गये।

प्योत्र दौड़कर उसके पास जा पहुंचा। उसे मालूम था कि ज़ख्मी बारहसिंगा बड़ा ख़तरनाक होता है, उसकी एक दुलत्ती से रीछ भी गुलांट खा जाता है। लेकिन उसने इसकी चिन्ता नहीं की।

उसका दिल दया से भर आया। उसका इरादा बारहसिंगे को मारने का नहीं था।

जिस समय बारहसिंगा दलदल पर कुलांचें भर रहा था, प्योत्र के मन में एक ही विचार था—इसे रोका जाय, किसी भी तरह रोका जाय और इसके सौन्दर्य से आंखों की भूख मिटायी जाय!

प्योत्र की इच्छा तो यह थी कि वह छिपकर इस दलदल आया करे और बारहसिंगे से उसकी मित्रता हो जाय। अपने हाथ से वह उसके मुंह में रोटी खिलाया करे। इतना हो पाता तो प्योत्र के सुख की सीमा न रहती। उसके मन की सबसे बड़ी मुराद पूरी हो जाती।

बारहसिंगे से वह मित्रता करना चाहता था, उसकी रक्षा करना चाहता था, उसकी देख-भाल करना चाहता था। पर वाह रे प्योत्र! अपनी इस इच्छा की पूर्ति में उसकी जान तक ले बैठा! अब यदि वह मरे बारहसिंगे के पास पाया जाता, यदि यह पता लग पाता कि उसने पशु को मारा है तो उसे जेल की हवा खानी पड़ती। परन्तु इस समय प्योत्र को जेल की चिन्ता नहीं थी।

इस समय तो उसका हृदय फटा जा रहा था।... इतने सुन्दर पशु की हत्या!

रीछ को पछाड़ सकने की दैत्य सदृश शक्ति वाला वह बारहसिंगा कितना निरीह था! उसने कभी किसी का नुकसान नहीं किया था। अपने असाधारण बल से कभी किसी को हानि नहीं पहुंचायी थी। भूरे-भूरे कोमल होठों से वृक्षों की कोपलों और घास के तिनकों को छोड़ उसने और कुछ नहीं तोड़ा था। मनोविनोद के लिए वह कभी धूप में, कभी बादलों की घनी छांव में स्वच्छन्द कुलांचें भर लिया करता था। ऐसा निरीह जीव बिना किसी कारण के, बिना किसी प्रयोजन मार डाला गया!

मन में खिन्नता और परिताप भरे प्योत्र बारहसिंगे के निस्पन्द शरीर, पतली टांगों और खुरदरे सींगों को थपथपा रहा था।

वह किसी से बता भी नहीं सकता था कि उसने बारहसिंगा देखा था और उसकी हत्या कर डाली थी। वह बताना तो इसका परिणाम होता, गिरफ्तारी और जेल। यदि वह इतना ही कह देता कि उसने बारहसिंगा देखा था? यदि वह केवल आधी बात कहता? पर ऐसा झूठ वह बोल नहीं सकता था। यह सोच कर प्योत्र का मन और भी अधीर हो रहा था कि दूसरे हिंसक जीव इस सुन्दर शरीर को चीर-फाड़ डालेंगे। उसने आसपास से घास और लकड़ियां इकट्ठी कीं और बारहसिंगे का शरीर ढंक दिया। फिर वह घर लौट चला।

वह बहुत उदास और खिन्न था।

"यह ज़िन्दगी भी क्या है?" प्योत्र चलता-चलता सोच रहा था। "ऐसी बातें क्यों हो जाती हैं? सीधा निरापद रास्ता देखकर आदमी चलता जाता है कि अचानक गढ़े में गिर जाता है। यह क्यों होता है कि करना चाहते कुछ, और हो जाता है कुछ और। आखिर आदमी करे क्या कि उसे शर्मिंदा न होना पड़े, उसकी आंख किसी के सामने झुके नहीं? अल्योशा ऐसा ही है। तीर की तरह सीधा और साफ़! न कोई दिशा-भ्रम, न रास्ते में रुकावट। सीधा अपने लक्ष्य पर!"

अभी कुछ दिन पहले अल्योशा से हुई बातचीत उसे याद आ गयी :

"प्योत्र भैया," अल्योशा ने कहा था, "तुम आदमी तो अच्छे हो। पर जब तक तुम्हें अपनी राह ही नहीं मालूम, उस पर चलोगे कैसे?"

"'राह'? यह 'राह' क्या बला है? मुझे राह-बाह की कोई परवाह नहीं। ज़िन्दगी ऐसे ही कटेगी!"

"लेकिन, लोग ऐसे ही तो ज़िन्दगी नहीं काटते...! हर आदमी अपनी राह बना लेता है।"

"तो और भी अच्छा है। फ़िक्र क्या है राह ढूंढ़ने की? अपने आप बन जायेगी। उसे ढूंढ़ने में क्यों सिर खपाऊं?"

"अपने आप नहीं बनेगी। बनेगी भी तो सीधी नहीं बनेगी। कहीं का कहीं ले जायेगी। तुम उसे नहीं बनाओगे, तो वह ग़लत बन जायेगी।"

"अपनी किस्मत का भरोसा है, यार! सीधी ही बनेगी!"

"इतना भरोसा है?"

"हां जितना इस बात पर कि अभी दिन है!"

"यहां लाकर पटका है इस राह ने मुझे!" प्योत्र खिन्नता से सोच रहा था। "अल्योशा की बात ठीक थी। राह तो मेरी ज़िन्दगी की भी बनती जा रही है, लेकिन इस राह को मैं नहीं चाहता! सब तरफ़ यही हो रहा है। बिना सोचे चलने से और होगा क्या? सामूहिक खेत की बात ले लो। वालकिन ने सामूहिक खेत के मामले में लापरवाही की। नतीजा क्या हुआ? सामूहिक खेत चौपट हो गया। अब भी वक्त है रास्ता सीधा करने का...। समझ में नहीं आता, यह सब हो कैसे गया! सब ठीक-ठाक था कि बस फ्रोस्या के साथ झंझट में फंस गया। आज चोरी का अपराध लगा। सीधा गढ़े की तरफ़ जा रहा हूं।...राह? लेकिन मुझे क्या मालूम था कि यह यहां ले आयेगी?"

प्योत्र जंगल के रास्ते लम्बा चक्कर देकर घर की ओर चला। दो घंटे वह लगातार वे ही सब बातें सोचता रहा जो उसने पहले कभी नहीं सोची थीं।

प्योत्र सीधा घर न जाकर अल्योशा के यहां पहुंचा। उसने उसकी खिड़की खटखटायी।

"अल्योशा! तू कह रहा था कि कोमसोमोल के लिए आलमारियां बनानी हैं?"

अल्योशा यह देख-देखकर परेशान हो रहा था कि आज इतनी लगन से और इतनी रात गये प्योत्र चुपचाप आलमारियां बनाने में क्यों जुटा है!

६. जल्दी पकनेवाली राई

लेना बैठी सोच रही थी कि यह बात कब शुरू हुई, कैसे शुरू हुई? कभी-कभी उसे खयाल आता कि शायद यह बहुत पहले शुरू हो गयी थी—शायद उस पहली सांझ को जब अल्योशा मेज़ पर बैठा कापी के पृष्ठों पर नज़र गड़ाये धीमे-धीमे पढ़ रहा था "...यदि किसी त्रिकोण का एक कोण...!" फिर सोचती, नहीं, ऐसी बात नहीं है। अभी कुछ दिन पहले तक कोई बात नहीं थी। हां, उस दिन सांझ को ज़रूर वह अल्योशा के साथ बैठी बहुत देर तक बातें करती रही थी। लेकिन, उस सांझ को भी कोई ऐसी बात नहीं हुई थी।

वह उस सांझ की मिनट-दर-मिनट बातें और घटनाएं याद करती रही। लेकिन उसे एक भी शब्द ऐसा याद न आया, एक भी घटना ऐसी याद न आई जिसका कोई खास महत्व हो। वह सांझ भी और सांझों जैसी थी। सैकड़ों दूसरी सांझों जैसी ही।

स्कूल की छुट्टी के बाद कात्या वासिली को स्कूल घसीट ले गयी थी।

"भई मैं तुम्हारा 'इमारती काम' देखने आया हूं" वासिली ने लेना से कहा था। "इन बच्चों ने तो जान खा ली, 'देखने चलो', 'देखने चलो'!"

लेना ने दिखाया, बच्चों ने पहली मई फ़ार्म का एक नमूना मिट्टी, कांच और रंगीन कागज़ों से बनाया था।

इस नमूने का प्रमुख आकर्षण यह था कि इसमें हर रोज़ नये परिवर्तन होते थे। जब फ़ार्म में खलिहान, मशीन-गोदाम, चौकीदार की कोठरी आदि इमारतें बननी शुरू हुईं तो इस नमूने में भी इनका निर्माण शुरू हो गया। जितने इमारती लट्ठे असली खलिहान के बाहर पड़े होते, उतने ही नमूने में

खलिहान के पास मिलते। जितनी खिड़कियां असली खलिहान और गोदाम में बनाई जातीं, उतनी ही स्कूल के "कारीगर लोग" नमूने में बना देते।

एक दिन लेना किसी काम से बाहर गयी थी। लौटकर देखा तो दुन्या की अगुवाई में छोटे-छोटे बच्चे नमूने को घेरे किसी काम में व्यस्त थे। उनके हाथ और फ्राकें लेई में सने थे। लेना ने शहर से लाकर सफेद चमकनी पन्नी रखी थी। सोचा था कि बड़े दिन के मौके पर बच्चों के लिए 'बड़े दिन का वृक्ष' सजायेगी, लेकिन बच्चे इसी पन्नी के टुकड़े काट-काटकर नमूने के खलिहान और लट्ठों पर चिपका रहे थे।

"तुम लोगों ने खलिहान को चांदी का क्यों बना दिया?" लेना ने पूछा।

"अच्छा लगता है..."

लेना मुस्कराकर रह गयी। उसने बात आगे नहीं बढ़ायी। इसके बाद से फ़ार्म में जब भी कोई नयी इमारत बनती, उसके जोड़ की, चांदी से मढ़ी नमूने में बन जाती।

नमूने को सजाने के लिए यह भी सोचा गया कि इसमें शरद का दृश्य दिखाया जाय। अस्तु, सब ओर रुई बिछाकर कुछ घास वग़ैरा छिड़क दी गयी थी ताकि बरफ़ का आभास हो। अल्योशा ने बिजली का तार लगाकर मकानों और कमरों में नन्हें-नन्हें बल्ब लगा दिये थे। शाम को अंधेरा हो जाने पर बिजली जला दी जाती। नन्हा सामूहिक फ़ार्म जगमगा उठता। बच्चों को ही नहीं, जवानों और बूढ़ों को भी यह नमूना बहुत अच्छा लगता था। पास-पड़ोस के सामूहिक खेतों के लड़के-लड़कियां इसे देखने आते।

वासिली की बेटियां भी अरसे से उसके पीछे पड़ी थीं कि वह इसे देखने चले। पर वासिली को फ़ुर्सत नहीं मिलती थी। आखिर उस दिन कात्या पीछे पड़कर उसे खींच ही लायी।

"लेना मौसी! बापू को जरा बिजली जलाकर दिखा दो न।" कात्या ने अनुरोध किया।

लेना ने बिजली जला दी। खिलौना जगमगा उठा। जगह-जगह रंगीन बत्तियां जल उठीं। वासिली मंत्र-मुग्ध सा खड़ा देखता रहा। वह खिलौने की सजावट से इतना प्रभावित नहीं था जितना इस बात से कि नन्हें-नन्हें हाथों ने सफेद पन्नी मढ़े लट्ठों को जोड़-जोड़कर ऐसा खलिहान बना दिया था जैसा वासिली ने सपनों में देखा था। अब तक वासिली यही समझता था कि बच्चों के खेल-खिलौने सिर्फ़ उनके मनबहलाव का साधन होते हैं। पर यहां उसने देखा कि दूसरों के हृदय में भी वैसा ही स्पन्दन है जैसा उसके हृदय में, उसके सुख-दुख के भागी दूसरे लोग भी हैं।

चांदी का खलिहान देखकर वासिली का मन उमड़ आया! पहली बार उसने ध्यान से स्कूल की अध्यापिका की ओर देखा।

वासिली के सामने एक लम्बी सी लड़की खड़ी हुई थी। छोटे-छोटे कंधे! ठोड़ी ज़रा ऊपर उठी हुई! गोरी-गोरी गर्दन पर नसों की महीन धारियां साफ़ दिखाई दे रही थीं। भूरे-भूरे, मुलायम, फूले-फूले बाल—चौड़े चेहरे को घेरे हुए। ऊंचा माथा। नाक ज़रा छोटी, पर सीधी और उभरी हुई! ऊपर चढ़कर माथे के उभार में समा गयी थी। आंखों की बरौनियां इतनी लम्बी और घनी थीं कि बड़ी-बड़ी नीली आंखें उनके बोझ से आधी ढंकी रहतीं।

आंखों को प्रायः ही "मन का दर्पण" कहा जाता है। परन्तु वासिली के सामने खड़ी लड़की के छोटे और पतले होंठ भी "मन के दर्पण" का काम करते थे। होंठों की धनुषाकार रेखा बहुत ही भाव-व्यंजक थी। कभी उत्सुकता, कभी हर्षातिरेक और कभी आश्चर्य की छाया उस पर नाच जाती। होंठों के एक कोने में तुरंत उड़ चलने को तैयार पक्षी की तरह मुस्कराहट छिपी रहती। उत्सुकता, विश्वास और तत्परता का भाव चेहरे से टपका पड़ता। मानो वह कह रही हो: "बोलो, तुम्हें क्या चाहिए? जो तुम कहोगे मैं खुशी से करूंगी क्योंकि तुम बुरी बात नहीं कहोगे?"

"इस लड़की की ओर मैंने पहले ध्यान क्यों नहीं दिया?" वासिली सोच रहा था। "ऐसी अध्यापिका पहले हमारे गांव में कभी आई नहीं। पहले के अध्यापक तो स्कूल का समय पूरा होते ही घर की राह लेते थे। यह सुबह से रात तक स्कूल में बनी रहती है। स्कूल के चारों तरफ़ फुलवाड़ी लगा ली है। बच्चों के लिए एक छोटा सा चिड़ियाघर बना लिया है। इसमें मेंढक और सेई, न जाने क्या-क्या रख रखे हैं। बच्चे गलियों में मारे-मारे फिरने के बजाय कुछ सीखते तो हैं। सामूहिक खेत का कोई भी काम हो, बच्चों को साथ लिये हुए यह ज़रूर वहां पहुंच जाती है। लगता है बच्चे धरती फाड़कर निकल आये हों।"

वासिली को याद आ रहा था कि फ़ार्म का जब भी कोई काम होता इस लड़की का उत्सुकतापूर्ण चेहरा सदा उसे दिखाई देता था।

एक-दो बार लेना वासिली के दफ्तर भी गयी थी—स्कूल के चारों तरफ बाड़ लगवाने के सिलसिले में। वासिली ने कह दिया था कि यह अभी असम्भव है और वह लौट गयी थी। पहले के अध्यापक ऐसे मौकों पर प्रधान के खिलाफ तूफ़ान खड़ा कर देते थे। वे ज़िला अधिकारियों तक पहुंचते थे और जब तक उनका काम न हो जाय, चैन न लेते थे। "यह लड़की क्या कर सकती है!" वासिली ने लेना के प्रति उपेक्षा से सोचा था। "इससे तो बत्तख भी नहीं हुसकाई जायेगी...!"

अब उसकी समझ में आया कि लेना इसलिए नहीं लौट गयी थी कि उसे बात करते डर लगता था बल्कि इसलिए कि लेना ने वासिली की बात सच मानकर उसका विश्वास कर लिया था। उसे भरोसा था कि अभी कठिनाई है तो आगे चलकर काम पूरा हो जायेगा।

असल में वासिली ने सोचा था : "ऐसी क्या ज़रूरत पड़ी है बाड़ की। बिना बाड़ के ही काम चल जायेगा।"

अब उसे अपने व्यवहार पर लज्जा आ रही थी।

लेना पर से आंखें हटाकर वासिली फिर नमूने को देखने लगा। नमूने में स्कूल के चारों ओर बाड़ भी थी। बाड़ के फाटक पर लाल झंडा लहरा रहा था।

"तुमने तो मुझे पीछे छोड़ दिया।" वासिली ने कहा। "यह तो ठीक नहीं है। जैसा है, नमूना भी वैसा ही होना चाहिए।... अच्छा जाने दो। अगले हफ्ते आदमी भेजकर स्कूल के चारों तरफ बाड़ बनवा दूंगा।"

वासिली चुपचाप शर्मिंदा वापस लौट आया। थोड़ी देर बाद, जब लेना घर जाने की तैयारी कर रही थी, अल्योशा वहां आ पहुंचा।

"वास्या चाचा पर क्या जादू कर दिया तुमने, एलेना स्नेपनोवना? स्कूल की बाड़ बनवाने को कह रहे थे। बोले : 'दरवाज़ा नक्काशीदार होना चाहिए. और फाटक पर झंडा भी।' स्कूल की खिड़कियों पर रोगन कराने का हुक्म दे गये हैं। कौमसोमोल के लड़के-लड़कियां पिछले वसंत से उनके पीछे पड़े थे कि खेल के मैदान को ठीक करवा दो। हां-हूं करके टालते रहे। आज खुद बोले, 'भई खेल का मैदान ठीक करा लो न। उसी जगह बनाओ जहां नमूने में स्टेडियम बनाया गया है। और मैदान के चारों तरफ़ बेंचें भी होनी चाहिएं—जैसी नमूने में हैं!' तुम्हारी बड़ी तारीफ़ कर रहे थे : 'बड़ी अच्छी लड़की है ...!' बोले : 'उससे कहना जिस चीज़ की ज़रूरत हो, आकर मुझसे निस्संकोच कह दे।' तुमने क्या जादू कर दिया है?"

"जादू मैंने नहीं, नमूने ने किया है।" लेना ने मुस्कराकर उत्तर दिया। "मेरा खयाल है नमूने में हमने जो खलिहान बनाया है, वह उन्हें बहुत पसन्द आया है।"

अल्योशा और लेना नमूने के सामने पास-पास बेंच पर बैठ गये।

खिड़की से चांदनी भीतर आ रही थी। रुपहले कागज़ से मढ़ा नमूना जुगनुओं के झुंड की तरह चमक रहा था।

कुछ देर दोनों इधर-उधर की बातें करते रहे। फिर चुप हो गये।

लेना की आंखें उठीं तो देखा कि अल्योशा उसकी ओर बड़े ध्यान से और बड़ी कोमल दृष्टि से देख रहा है। वह कुछ हकबका गयी।

प्रश्नसूचक दृष्टि से उसने अल्योशा की ओर देखा, मानो पूछ रहा है—क्यों ? क्या है ?

अल्योशा चुप था। लेना की नज़र उसके घुंघराले बालों और कनपटी पर गयी। उसका कान कुछ-कुछ सुर्ख़ हो रहा था।

"यह चुप क्यों है ? बोलता क्यों नहीं ?" लेना की पलकें खुद लाज से झुकी जा रही थीं।

"आज स्लावका ने मिट्टी से बड़ा सुन्दर बारहसिंगा बनाया है..." जल्दी से लेना बोली। अब तो उसकी गर्दन और गाल भी सुर्ख हो गये थे। "मैं उसे बच्चों की कला प्रदर्शनी में भेजूंगी।"

लेना बातचीत से अपनी लाज छिपाना चाहती थी। पर बातचीत चल नहीं पा रही थी। लेना उठकर घर चली गयी, अल्योशा फ़ार्म के दफ्तर।

"इसका मतलब क्या है ?" लेना सोचती रही। "मुझे हो क्या रहा है ?"

उस सांझ लेना का मन किसी काम में नहीं लगा। पढ़ाई-लिखाई या सिलाई का भी कोई काम न करते बना। रात का खाना खाने भी वह नहीं गयी, अल्योशा की बगल में बैठते संकोच होता था।

"यह शुरू कब हुआ ?" लेना सोच रही थी। "कई दिन पहले ? या सिर्फ़ आज ? शायद मुझे यों ही लग रहा है। शायद वह मेरी बाबत सोचता भी न हो ? या मैं कल्पना में ही उसका यह रूप बनाये हूं ?"

लेना जानती थी कि उसमें लोगों का 'काल्पनिक रूप' खड़ा कर लेने की आदत है, जैसे वे हैं उससे अच्छा समझ बैठने की आदत है। "लेकिन नहीं। सचमुच वह ऐसा ही है जैसा मैं सोचती हूं ! फ़ार्म के सभी लोग उस पर जान देते हैं !"

लेना में लोगों का काल्पनिक रूप बनाने की आदत तो ज़रूर थी परन्तु उसकी समझदारी में संतुलन भी था और स्वभावगत विनोद-प्रियता भी। उसमें भांप भी गहरी थी। कभी किसी को गलत समझ बैठती तो पहचान लेने में बहुत देर न लगती। पहचान लेने पर वह अपनी भूल पर खुद हंस कर बात उड़ा देती थी। अपनी पहचान में धोखा खा जाने पर वह चिढ़ती नहीं थी। बस, ऐसे लोगों की ओर से उसका ध्यान हट जाता। वह उन्हें अपने खयाल से उतार देती, जैसे कोई मामूली सी पुस्तक पढ़कर उसे भूल जाता है। लेकिन अल्योशा को पहचानने में भूल-चूक की गुंजायश कहां थी ? महीनों से रात-दिन का साथ था। दिन-दिन उसे अल्योशा में नये गुणों के दर्शन होते थे। दिन-दिन उसका यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा था कि वह बहुत ही योग्य और सुशील व्यक्ति है।

अल्योशा से एक तरह का साथ और आत्मीयता हो गयी थी। कुछ दिन के लिए अल्योशा ज़िला-केन्द्र चला गया तो लेना को लगता जैसे उसकी चैन और मस्ती कहीं चली गयी है। वह दिन गिनती रहती थी, उसकी राह पर आंखें बिछाये रही थी।

वह अपने अन्य साथियों और परिचितों की अल्योशा से तुलना करती तो कोई उसके बराबर न बैठता। रात को सोने के लिए बिस्तर पर जाती तो और सुबह सोकर उठती तो अल्योशा का नाम उसके लबों पर होता। पर इस सांझ से पहले वह यह कभी न सोच पायी थी कि इसकी वजह क्या है।

उस रात लेना को ठीक से नींद नहीं आई। "हट, ऐसा भी क्या है?" मन ही मन वह कहती रही, "शायद उसे तेरा खयाल भी न हो! क्या करूं? खैर, सुबह तक रुकूं! सुबह उसे देखूंगी, बात समझ में आ जायेगी!"

अगले दिन तड़के ही अल्योशा खेतों पर चला गया। लेना से सुबह उसकी मुलाकात न हो सकी। दोपहर तक लेना खोयी-खोयी सी उसकी राह देखती रही। अल्योशा दोपहर में भी नहीं आया। अब लेना के लिए छिन-छिन पहाड़ हो चला। प्रतीक्षा से थक कर सांझ को वह अपने बिस्तर पर जा लेटी। आंखें लग गयीं। दादी वासिलिसा की आवाज़ सुनकर ही, लगभग आधे घंटे बाद, उसकी नींद खुली। दादी कह रही थी:

"हाय, आज इतनी बढ़िया कमीज़ क्यों पहन ली? इसे भी खराब कर डालेगा?"

लेना उठ बैठी। "हां, अभी जाऊंगी। उसे देखूंगी। सब समझ में आ जायेगा।" उसका कलेजा मुंह को आ रहा था। बड़ी कोशिश से उठकर खड़ी हुई। दरवाज़ा खोला। दूसरे कमरे में पैर रखे। सामने अल्योशा था। मेज़ पर बैठा वह आलू खा रहा था। बाल अच्छी तरह संवारे हुए, बदन पर खूब-सूरत नीली रेशमी कमीज़।

लेना को देखते ही उसका चेहरा लाल हो गया।

लेना फ़ौरन भांप गयी। ये संवारे बाल, यह भड़कीली कमीज़, खुशी का यह आलम—सब उसी के लिए था।

उसका रोम-रोम सिहर उठा। पलकें उठाये न उठती थीं। झटपट बाहर आ गयी। धम्म से ड्योढ़ी की सीढ़ियों पर बैठ गयी। सामने हरी घास पर सुहावने फूल खिले थे। दाने की तलाश में मुर्गियां इधर-उधर फुदक रही थीं। पर लेना को यह सब नहीं दिखाई दे रहा था। सुबह-सुबह खिड़कियां खोलने पर जिस तरह कमरा धूप से भर उठता है उसी तरह लेना का मन इस समय एक ही विचार से भरा था: "अल्योशा मुझे प्यार करता है... !"

नदी किनारे की चरानों में बाढ़ का पानी भर जाता था और खूब अच्छी घास होती थी। गरमियों में पानी सूख जाता। घास भी पक जाती। वहीं घास की कटाई हो रही थी। खूब गरमी होती। बीच-बीच में बादल पानी का छींटा भी दे जाते। धूप और हवा से घास जल्दी ही सूख जाती। घास और भी फरफरी हो जाती। सोंधी-सोंधी गंध आने लगती। घास काटने वाले रात को खुले आकाश के नीचे यों ही, या कुछ ओढ़कर, सो जाते—या, नदी किनारे की पुरानी झोंपड़ी में चले जाते। दिन भर की थकान के बावजूद सांझ को अलाव जलाया जाता। उसके चारों तरफ बैठकर गाना-बजाना होता। सभी के मन उत्साह से भर उठते। अनाज और आलू की फसल खूब अच्छी हो रही थी। जंगलों और चरानों में घास भी खूब अच्छी हुई थी।

"सन १६४१ के बाद से ऐसे दिन कहां देखने को मिले हैं?" अल्योशा सोचता।

कुछ तो काम की बढ़ती से और कुछ खुशी की खुमारी से अल्योशा दुबला हो गया था। कभी-कभी घास ढोने वाली गाड़ियों पर बैठकर लेना भी यहां चली आती थी। अल्योशा उसे घास काटना सिखाता। लेना के नरम-नरम, गोरे-गोरे हाथों में हंसिया बड़ा अजीब सा लगता था।

हंसी-खुशी के इन रुपहले दिनों में एक ही बात परेशानी की हुई थी। शनिवार के दिन कुछ लड़के-लड़कियां बेरी चुनने जंगल गये थे। वहां उन्होंने कटे जंगल में बारहसिंगे को मरा पड़ा देखा। बारहसिंगे के पास ही दो दिन पहले के अखबार का एक टुकड़ा पड़ा था जिस पर पहली मई फ़ार्म का पता था और वहां की मोहर लगी थी। इससे पता चलता था कि पहली मई फ़ार्म के ही किसी आदमी ने बारहसिंगे को गोली मारी है। ताज्जुब की बात यह थी कि शिकार करने वाले ने न तो बारहसिंगे के सींग, न कीमती खाल और न उसका बढ़िया मांस लेने की कोशिश की थी।

सामूहिक किसान इस घटना से बहुत चिन्तित थे। पहले तो सन्देह पावका कोनोपातोव और उसके पिता तथा शराबी तोशा पर ही गया। परन्तु उन लोगों ने जंगल न जाने का अकाट्य प्रमाण दे दिया।

ऐसे वक्त में जब फ़ार्म के लोगों में एकता और मित्रता बढ़ रही थी, जब फ़ार्म की प्रतिष्ठा बूंद-बूंद करके फिर लौट रही थी, किसी आदमी का ऐसा अपराध कर बैठना सभी को खल रहा था।

"अरे, अभी कुछ आगे बढ़ना शुरू किया था कि यह लो," वासिली कहता, "फिर हमारे नाम पर धब्बा लगेगा! एक मछली सारे तालाब को गंदा कर रही है। मुझे मालूम हो जाय कि यह करतूत किसकी है तो बच्चू की अकल ठिकाने कर दूं।" वासिली को बहुत गुस्सा आ रहा था। वह कहता,

"हम लोग किसी तरह अपना कलंक धोने की कोशिश रहे थे कि जाने किसने यह करतूत कर दी ! मेरे हाथ लग जाय तो बताऊं।"

"यही तो सवाल है—किसने की थी ?" वालेंतिना कहती, "हम में से ही कोई झूंठ बोल रहा है। पता तो चले। इस वक्त भी साथ बैठा एक बर्तन में खा रहा होगा। सभी पर शक होने लगता है। सभी पर शक की नज़र उठती है। यह और भी बुरा है।"

सब लोग एक झाड़ की छाया में बैठ कर दोपहर का खाना खाते थे। अल्योशा दोनों हाथों का तकिया बनाये वालेंतिना के पास ही, आकाश की ओर मुंह किये, लेटा था। धूप के कारण उसका चेहरा तांबे जैसा हो रहा था। गाल तप रहे थे। चेहरे पर से लड़कपन की गोलाइयां दूर हो गयी थीं, मर्दानगी की कड़ाई आ गयी थी। लेकिन आंखों में अब भी पहले जैसी मुस्कान भरी हुई थी। उसके चेहरे और मजबूत बाहों पर हिलती पत्तियों की परछाइयां नाच रही थीं।

वालेंतिना की नज़र अल्योशा पर पड़ी तो बिगड़ उठी : "इसे तो बस मुस्कराना आता है। इसके लिए जैसे कुछ हुआ ही नहीं! क्यों हंस रहा है रे ? बता क्यों मुस्करा रहा है ? क्या खुशी हो रही है तुझे ?"

"बताता हूं न!" अल्योशा ने मुस्कराकर भर्राई हुई आवाज़ में उत्तर दिया। "सोचो, एक साल पहले फ़ार्म की क्या हालत थी। लोग जंगल से चुराकर छाल लाते थे और रस्सियां बटा करते थे। प्रधान था सो वोदका पीकर पड़ा रहता था। किसी को कोई फिक्र नहीं थी।...और अब ? अब जंगल में किसी ने एक बारहसिंगा मार गिराया तो सारे फ़ार्म में सनसनी फैल गयी है। अब समझीं क्यों मुस्करा रहा हूं ?"

"कहता तो तू ठीक है, अल्योशा।" वालेंतिना बोली। "हम लोगों में समझदारी बढ़ी है, लेकिन हम जान नहीं पाये।"

"तो फिर अगेती राई के बारे में क्या फैसला है ?" बातचीत को आगे बढ़ाते हुए अल्योशा ने कहा। "उसे काटने का वक्त आ गया है। फसल तैयार है। दूसरों को खाली होने में तो बहुत वक्त लगेगा। मैं तो चाहता हूं कि परसों से कुछ लोगों को उस पर लगा दिया जाय।"

"मैं भी यही सोचता हूं।" वासिली ने समर्थन किया। "किसे भेजोगे ?"

"अपने दल की लड़कियों को भेज दूंगा!"

"यह तूने खूब कही!" स्तेपनिदा बोल उठी। बुढ़िया पास ही घास पर लेटी हुई थी। "हम बूढ़ी लोग तो गांव से इतनी दूर यहां हड्डियां घिसें, घास बिछाकर सोयें और जवान छोकरियां घर के दरवाज़े काम करें!"

"छः दिन हो गये अपनी गैया को देखे बिना। जाने क्या हाल हो बेचारी का?" पोल्यूश्का ने कहा।

"इसे गाय की पड़ी है। यहां कई दिन से अपने बच्चों को नहीं देखा।" घास में जाने कहां से प्रकट होती हुई मलानिया बुज़िकिना बोली।

"अरे, यहां तो सभी बुढ़िया इकट्ठी हैं!" वासिली ने मज़ाक में बात टालने की कोशिश की।

"इकट्ठी हैं तो क्या हुआ?" स्तेपनिदा ने चुनौती के स्वर में कहा। "पूरा हफ्ता हो गया यहां हड्डियां रगड़ते। दो दिन खाट पर आराम की नींद ले लेने दें तो क्या हो जाय!"

"कल मेरी लड़की दौड़ती हुई आई थी," कोई दूसरी बोल उठी, "कह रही थी मेरे छोटे बच्चे के पांव में फोड़ा उठ आया है।"

"देखा? अब तो सभी के यहां कोई न कोई बात निकल आयेगी।" वासिली ने चिढ़ कर कहा। "तीन दिन सब लोग यहीं काम करेंगे। सब लोग साथ लौटेंगे। बवंडर खड़ा करने की कोई ज़रूरत नहीं।"

"लड़के के पांव का फोड़ा बिगड़ गया तो? अपना पांव दे दोगे उसे?"

"हां, हां, ऐसी कोई मुसीबत नहीं आ गयी। बच्चों का डाक्टर मौजूद है उनकी फिक्र करने के लिए।"

"डाक्टर टीके लगाता घूम रहा है। बच्चों के लिए फुर्सत कहां है!"

"इन्हें उसी तरफ भेज दिया जाय तो क्या हरज़ है?" वालेंतिना ने दुविधा से कहा। "घर के पास भी रहेंगी। कटाई भी अच्छी कर सकती हैं। तेरा क्या खयाल है, अल्योशा?"

"काम पूरा करेंगी ये लोग?"

"क्या कहना! जैसे पहली मर्तबा हम लोग फसल काट रही हैं!"

"एक दाना भी नहीं छूटने पायेगा।"

"अच्छा वास्या चाचा," अल्योशा ने भर्राये गले से कहा, "ठीक है! घास का काम तो इनसे ज्यादा हो नहीं पाता। वहां काम कर लेंगी। खुद ही जाना भी चाहती हैं। चलो, जाने दो इन्हें। मैं जाकर देख आया करूंगा। ठेले पर चला जाऊंगा या लारी पर। देख आऊंगा ज़रूर।"

"अच्छी बात। तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो ऐसा ही सही।" अनिच्छा से वासिली ने कहा। "तुम परसों जाकर देख आना।"

"तेरे गले को क्या हुआ है, अल्योशा?" वालेंतिना ने पूछा।

"ज़रा दर्द है। रात में राई के खेत देखने गया था। सोचा, सुबह काम के वक्त लौट आऊंगा। रात को बूंदा-बांदी हो गयी। सर्दी लग गयी।"

अल्योशा का गला कई दिन से खराब था। पहले उसने ज़्यादा ध्यान नहीं दिया। सोचा, एक-दो दिन में ठीक हो जायेगा। लेकिन गला बिगड़ता ही जा रहा था। अल्योशा को दर्द की उतनी परवाह नहीं थी जितनी शरीर में भारीपन की। लेट जाता तो मालूम होता कि शरीर निढाल हो गया है, ज़मीन से चिपक गया है। बड़ी मुश्किल से ही वह हाथ, पैर या सिर हिला पाता। अल्योशा कभी बीमार नहीं हुआ था। वह सोचता, शरीर का यह भारीपन सुस्ती की वजह से है। उसे बड़ी शर्म मालूम होती।

"यह बुरी बात है," अल्योशा ने निश्चय किया। "ज़रा अपने को काबू में करना होगा, कुछ कसरत भी करनी होगी...!"

लिहाज़ा अल्योशा ने 'अपने को काबू में किया' और 'कुछ कसरत की।' शरीर सचमुच कुछ हलका मालूम होने लगा। दूसरे लोगों की तरह वह दिन भर काम भी करता रहा। लेकिन बाद में शरीर और भी गिरने लगा। अब उसकी समझ में आया कि तबियत खराब है। लेकिन घास की कटाई छोड़कर घर जाने की बात उसके मन में न पैठती।

"सभी को कुछ न कुछ तकलीफ़ है! किसी का गला खराब है, किसी का दांत, किसी की उंगली, किसी को कोई और तकलीफ है...। काम छोड़कर जाया कैसे जाय?"

दोपहर के खाने के बाद वालेंतिना और वासिली दूसरे काम से चले गये। अल्योशा फिर घास काटने के लिए जा पहुंचा। हाथ में हंसिया बहुत भारी लग रहा था। कई बार देखा, किसी से बदल तो नहीं गया, मिट्टी तो नहीं चिपकी? यों तो वह और दिनों के मुकाबले ज़्यादा ज़ोर लगाकर और ज़्यादा फुर्ती से कटाई कर रहा था, पर बार-बार दूसरों से पिछड़ जाता था।

"अरे ओ अल्योशा! तेरी तबियत ठीक नहीं लग रही!" फ्रोस्या ने आवाज़ दी। "चेहरा लाल हो रहा है, आंखें गढ़े में धंस रही हैं।"

"हां हां, अल्योशा! मुझे भी ऐसा ही लग रहा है।" लुबावा बोली। "तेरी तबियत ठीक नहीं मालूम होती। तू घर जाकर डाक्टर को दिखा।"

"अरे हो जायगी, तबियत ठीक..." वह काम करता रहा।

रात को अल्योशा की नींद खुली तो समझ में नहीं आया कि कहां पड़ा है। लग रहा था कि आकाश के तारे नीचे उतर आये हैं और उसके शरीर में बर्फ की बर्छियां कोंच रहे हैं। वह थोड़ा सा हिला। लगा जैसे रीढ़ में किसी ने बर्छियां भोंक दी हों। अल्योशा ने सिर उठाया तो उस पर झुके तारे पीछे हट गये। उसने देखा, चारों ओर चांदनी खिली है। वह हरी घास पर लेटा था। उसने पास लेटे यासनेव और प्योत्र को पहचाना। उसने फिर सिर नीचा कर

लिया। तारे फिर उस पर टूट पड़े और उसके शरीर में बर्फ की बर्छियां कोंचने लगे।

सुबह गाड़ी में डालकर मातवेयेविच उसे गांव ले आया।

घर में कोई नहीं था। स्कूल में छुट्टियां थीं इसलिए लेना शहर चली गयी थी। वालेंतिना खेत पर थी। दादी वासिलिसा भेड़ों को लेकर चरागाह पर चली गयी थी।

अल्योशा लेना के कमरे में चला गया। दीवार के पास छोटा सा बिस्तर, बिस्तर के पास छोटी सी मेज़, मेज़ पर ढंग से रखी पुस्तकें, खिड़की पर लगा मलमल का परदा—लेना की मधुर स्मृति से अल्योशा का हृदय भर आया।

कुछ देर वह लेना के कमरे में बैठा रहा, फिर डाक्टर के यहां चला गया। डाक्टर फ़ार्म के मरीज़ों को सुबह ही देख चुका था और अब दूसरे फ़ार्म में टीके लगाने चला गया था। अल्योशा स्तेपनिदा के घर गया। सोचा, राई की कटाई की खबर लग जायेगी। लेकिन बुढ़िया अभी खेतों से लौटी ही नहीं थी।

"शायद रात तक कटाई खतम कर डालना चाहती हैं।" अल्योशा ने सोचा। "और हम लोग इन पर सन्देह कर रहे थे...!" वह घर लौट आया।

कई घंटे बाद मातवेयेविच उसकी खबर लेने आया। अल्योशा अपने दोनों हाथ पीठ पीछे टिकाये बैठा था। सांस भारी चल रही थी।

"डाक्टर से मिले, अल्योशा?"

"नहीं। डाक्टर चला गया है। टीके लगाने।"

"चल तुझे अस्पताल ले चलूं। तेरी हालत बिगड़ती जा रही है..."

"राई के खेत से औरतें नहीं लौटतीं...तब तक नहीं जाऊंगा।"

"मालूम पड़ता है, काम खतम करके लौटेंगी। जंगल के पीछे बादल भी उठ रहा है। अभी नहीं आयेंगी। उनके लिए इन्तज़ार करना बेकार है। तू तो चल, अल्योशा। बारिश शुरू हो गयी तो हम लोग भीग जायेंगे।"

"तो चलो, राई के खेत की तरफ से चलें। मैं देख भी लूंगा।"

"अच्छी बात है। चलो। राई का खेत कौन दूर है।"

दोनों गाड़ी पर बैठे और चल दिये।

सूर्यास्त के प्रकाश में गुलाबी बादल आकाश में तैर रहे थे। जंगल के पीछे से काली घटा उठ रही थी जिसका सिर रीछ जैसा लग रहा था। घटा जंगल पर अटकी मालूम हो रही थी। उसकी मौजूदगी हवा की ठंडक और तेज़ी से स्पष्ट हो रही थी।

"बारिश से पहले औरतें खेत खतम कर पायेंगी?" अल्योशा भर्राये गले से बुदबुदाया। "अगेती राई बड़ी मेहनत से तैयार की गयी है। पड़ोस के किसान कई दिन से बीज मांगने आ रहे हैं।"

"खतम कर लेंगी भई! काम ही कितना है!"

मातवेयेविच ने घोड़े के चाबुक लगायी। अभी वे झाड़ियों का एक बड़ा झुरमुट लांघे ही थे कि पकी राई के खेत दिखाई देने लगे। राई कट तो चुकी थी, पर खेतों में ही पड़ी थी। आधे खेतों में तो पूले तक नहीं बंधे थे। हवा राई को इधर-उधर बिखेर रही थी। खेत में कोई नहीं था—न आदमी, न आदमजाद!

"यह क्या तमाशा है?" अल्योशा उठ बैठा। "ये औरतें कहां चली गयीं?"

"मेरा खयाल है यहीं कहीं होंगी...झाड़ियों में। आराम कर रही होंगी।"

मातवेयेविच ने ज़ोर से हांक लगायी:

"अरी ओ-ओ-ओ स्तेशा-आ-आ ...! मलानिया हो-ओ-ओ...।"

"...ओ-ओ-ओ!" उसी की प्रतिध्वनि सुनाई दी। फिर मौन।

न खेत में कोई था, न झाड़ियों में।

"अरे भई कहां चली गयीं ये लोग?" गर्दन उठा कर चारों तरफ देखते हुए व्यथित और खिन्न स्वर में अल्योशा ने पूछा।

"और कहां जायेंगी? कल बाज़ार का दिन है," मातवेयेविच ने कहा, "बेरी बीनने जंगल चली गयी होंगी।"

मातवेयेविच का अनुमान ठीक ही था।

दो घन्टे पहले फिनोगेन की औरत अनफीसा खेतों के पास से गुजरी थी। अनफीसा और उसका पति, दोनों ही, सामूहिक खेत में शामिल नहीं थे। अनफीसा जंगलों में जाकर दिन भर बेरी बीना करती थी।

वह जंगल से लौटी तो एक बेंहगी में दो भारी-भारी टोकरियां जंगली फलों की लादे थी।

"बकरी की टेकरी पर खूब फल पक रहे हैं। झाड़ी के नीचे टोकरी रख कर हिला दो तो टोकरी भर जाये।" स्तेपनिदा से उसने कहा था। "दूसरी जगह अभी कच्चे हैं, पर टेकरी पर तो पक-पक कर चू रहे हैं। मैं रात की गाड़ी से बाज़ार जा रही हूं। इस वक्त अच्छे दाम मिल जायेंगे। बाज़ार में अभी नये फल आये कहां हैं?"

पोल्यूखा के लिए यों आते पैसों की उपेक्षा करना सम्भव नहीं था। सोचा, चन्द घन्टों का काम है, मुफ्त पैसा आ जायेगा। वक्त बरबाद करना

बेकार है। कल-परसों तक बच्चों को पता लग जायेगा तो एक फल नहीं बचेगा। आगे फल सस्ते हो जाने का डर भी था।

पोल्यूखा को फैसला करते देर न लगी। लेकिन अकेली खेत छोड़ कर कैसे चल देती?

"अरी चलो न," साथ वालियों से उसने कहा, "घंटे भर बेरी बीन लें! कल अनफीसा के साथ बाज़ार भेज देंगी। मदद के लिए साथ में बुज़िकिन की लड़कियां भी चली जायेंगी। राई का क्या बिगड़ा जाता है? सुबह ख़तम कर लेंगी। तड़के मैं सबको जगा दूंगी। क्या हरज़ है? किसी को पता भी नहीं चलने का। रात भर में राई उड़ थोड़े ही जायेगी।"

औरतों ने राई के खेतों की कटाई के लिए खुद ही कहा था। पर उनके मन से यह ख़याल नहीं उतरता था कि ये खेत 'किसी दूसरी' टीम के हैं। कल के लिए मामला टाल देने में किसी का क्या नुकसान था? अस्तु, पोल्यूखा की बात का किसी ने विरोध नहीं किया।

सब की सब खेत छोड़ कर जंगल चल दीं। खेत सुनसान पड़ा रह गया।

मातवेयेविच ने दो-तीन हांकें और लगायीं, फिर दो-चार गालियां बककर आगे बढ़ चला।

अल्योशा मातवेयेविच के कंधे पर हाथ रख कर बोला:

"मातवेयेविच चाचा...! बड़ी क़ीमती राई है! प्रयोग के लिए नयी चीज़ पैदा की गयी है। इसका दाना-दाना क़ीमती है। इसे तो संभालकर अभी खलिहान में रखना होगा।"

मातवेयेविच ने घूमकर अल्योशा की ओर देखा। राई की उपेक्षा कर सकना मातवेयेविच के लिए भी संभव न था।

"चलो गांव लौट चलें। कुछ औरतों को घेर-घार लायें।"

"गांव में इस वक्त मिलेगा कौन? कुछ लोग घास काटने गये हैं, कुछ गाय-भेड़ों को चराने गये हैं। जब तक हम लौट कर आयेंगे, तब तक बारिश शुरू हो जायेगी!"

"अल्योशा! तू कुछ कर पायेगा इस हालत में?"

"क्यों नहीं चाचा? मैं तो बिलकुल ठीक हूं! बस गले में ज़रा दर्द है।"

मातवेयेविच खुद तगड़ा-तन्दुरुस्त आदमी था। उसकी तबीयत कभी खराब होती तो तीन इलाज थे—गरम पानी से स्नान किया, वोद्का चढ़ा ली और काम में जुट गये।

"आ जाओ तो फिर!" वह तैयार हो गया। "बस, घंटे भर का काम है।"

दोनों राई के पूले बांध-बांधकर गाड़ी पर लादने और खलिहान पहुंचाने लगे।

खलिहान का बूढ़ा चौकीदार मेफोदी खलिहान के पास ही झोंपड़ी में रहता था। वह भी मदद के लिए आ पहुंचा। फिर भी काम एक घंटे में ख़तम नहीं हुआ। अल्योशा ज्यादा मदद नहीं कर पा रहा था। बार-बार उसके पांव लड़खड़ा जाते, हंफनी चढ़ आती और खांसी आने लगती। दर्द के मारे उसका चेहरा नीला पड़ गया था। दो-चार फेरे तो उसने बूंदा-बांदी में ही किये। मातवेयेविच ने अल्योशा से छप्पर के नीचे बैठ जाने के लिए कहा। पर अल्योशा माना नहीं, काम जल्दी ख़तम करना था। बुखार से भारी सिर भीग जाने पर कुछ हल्का मालूम हो रहा था। होंठ भी नरम पड़ गये थे। उसे कुछ शान्ति भी महसूस हो रही थी। जब पानी मूसलाधार बरसने लगा तभी उसने मातवेयेविच की बात मानी। वह छप्पर के नीचे चला गया। आखिरी बोझ अकेला मातवेयेविच ही गाड़ी में लादकर लाया।

अल्योशा को सांस लेने में कष्ट हो रहा था, फिर भी वह झोंपड़ी के भीतर नहीं गया। छप्पर के नीचे भीगी राई के ढेर का सहारा लेकर बैठ गया। उसे बेहद थकावट महसूस हो रही थी। राई के भीग जाने का उसे इतना दुःख हो रहा था कि रोने को जी चाहता था। लोगों ने कितनी मेहनत की थी! कितनी आशाएं बांधी थीं! खेतों में इसका सौन्दर्य देखते उनकी आंखें नहीं थकती थीं! आखिर वही भीगकर छप्पर के नीचे इस बुरी तरह ठुंस दी गयी थी। उसका मन हो रहा था कि फूट-फूट कर रोये। वह भूल गया कि अब वह जवान मर्द था। उसे लग रहा था जैसे वह अब भी नन्हा बच्चा है और घर की बगिया में बैठा बिसूर-बिसूर कर रो रहा है।

"लो, काम तो हो गया!" मातवेयेविच की आवाज़ कानों में पड़ी। उसे कुछ होश आया।

उसके गाल आंसुओं से भीग गये थे। उसे बड़ी शर्म मालूम हुई।

"मुझे हो क्या गया है? औरतों की तरह रो रहा हूं? गनीमत है कि अंधेरा है, कोई देख नहीं रहा। अस्पताल पहुंच गया होता तो अच्छा था। इस वक्त लेना यहां होती तो कितना अच्छा होता!"

मेफोदी ने कुछ सूखे कपड़े दिये। अल्योशा अपने भीगे कपड़े बदलकर गाड़ी में बैठ गया। मातवेयेविच ने उसे बोरियों से ढककर एक मोमजामा ओढ़ा दिया और अस्पताल ले चला।

सांझ को लेना शहर से लौटी। वह अपने छोटे भाई को भी साथ ले गयी थी। सोचा था कि छुट्टियों भर वहीं रहेगी। लेकिन मन न लगा। उसे

अल्योशा की, स्कूल के बच्चों की और सामूहिक फ़ार्म की याद आती। इसीलिए वह जल्दी लौट आई थी।

लेना ने बाड़ का छोटा फाटक खोला और भीतर आई। सहन में खूब घास उगी हुई थी। घास में सुन्दर फूल खिले थे। साफ़ करके चमकाये हुए खिड़कियों के शीशे अस्त होते सूर्य की किरणों में गुलाबी चकाचौंध पैदा कर रहे थे। लेना को यहां बहुत शांति मालूम हुई। यह घर उसका अपना घर बन चुका था।

"यहां तो मां के घर से भी ज्यादा अच्छा लगने लगा है," लेना ड्योढ़ी की सीढ़ियां चढ़ती सोचती जा रही थी। "शायद मुझे ऐसा अल्योशा की वजह से लगता है। यहां वाल्या है, दादी वासिलिसा है और स्कूल के नन्हें बच्चे हैं। बिना इस हरी-हरी घास और इन फूलों को देखे, बिना इस जंगली पवन की महक के कोई कैसे ज़िन्दा रह सकता है।"

लेना को चाबी रखने की जगह मालूम थी। उठाकर दरवाज़ा खोला और भीतर चली गयी।

घर में इधर-उधर सामान बिखरा देखकर उसे ताज्जुब हुआ। मेज़ पर दूध से आधा भरा कटोरा रखा था जिसमें मक्खियां तैर रही थीं। पास ही दो गंदे गिलास रखे थे। एक कुर्सी पर वालेंतिना का सिलेटी रंग का ब्लाउज़ पड़ा था। लेना की खुशी गायब हो गयी। वह घबरा गयी। ज़रूर कुछ गड़बड़ है! लेकिन हुआ क्या? वह भागकर पड़ोसियों के यहां गयी। प्रास्कोव्या ने बताया कि अल्योशा बीमार हो गया है। कई दिन से उसके गले में दर्द था। वह अस्पताल के वार्ड नं० ५ में भरती कर लिया गया है। सुबह वालेंतिना और वासिलिसा उसे देखने गयी थीं। अभी लौटती ही होंगी।

लेना दौड़ती हुई फ़ार्म के दफ्तर पहुंची। सोचा, अस्पताल को फोन करके पता लगाये। पर टेलीफोन बिगड़ा हुआ था।

निदान, लेना घर लौट आई और वासिलिसा तथा वालेंतिना का इंतज़ार करने लगी।

कई घंटे बीत गये। अस्पताल से कोई न लौटा। रात की गाड़ी के मुसाफिरों को लेकर एक मोटर गांव के पास से गुज़रती थी। लेना सोच रही थी, वालेंतिना और वासिलिसा दोनों उसी मोटर से आयेंगी। खिड़की खोलकर वह सड़क पर नज़र जमाये बैठी रही। धीरे-धीरे सुनसान सड़क अंधेरे में छिप गयी। आया कोई नहीं।

आखिर सड़क पर मोटर की रोशनी दिखाई दी। दौड़कर लेना ड्योढ़ी के बाहर जा पहुंची। मोटर बिना रुके निकल गयी।

कोई न आया। अंधेरी गली में राह पर आंखे गड़ाये लेना अकेली खड़ी थी।

वालेंतिना और दादी वासिलिसा अस्पताल में ही रुक गयी थीं। वे लौट आना चाहती थीं, पर लौट न सकीं। फ़ार्म में इस समय काम का बहुत ज़ोर था, एक-एक मिनट कीमती था। फिर भी वे लौट न सकी थीं।

लेना का दिल बैठा जा रहा था। दूर पर एक कुत्ता सड़क पर जाती मोटर को देखकर भौंक उठा। फिर सब तरफ़ सन्नाटा। दूर टीले के पास मोटर की रोशनी एक बार फिर दिखाई दी और गायब हो गयी।

"मैं यहां क्यों खड़ी हूं? मुझे अल्योशा के पास जाना चाहिए। मैं अस्पताल जाऊंगी। शहर में मां को फोन करके बड़े डाक्टर को बुलवाती हूं। वालेंतिना और दादी से क्या होगा? यह काम मेरा है। मैं ही अल्योशा को ठीक कर पाऊंगी। मुझे देर नहीं करनी चाहिए।"

लेना भीतर गयी। दादी का बड़ा वाला भूरा शॉल कंधों पर लपेटा। बिजली बुझायी। बाहर आकर ताला लगा दिया। लेना सब काम निश्चय से और बिना उतावली के कर रही थी। उसमें एक बार फिर साहस का ज्वार आ गया था। इतनी मानसिक और शारीरिक शक्ति उसमें आ गयी थी कि क्षण भर में ही यह भावुक लड़की एक दृढ़-निश्चय प्रौढ़ा बन गयी थी।

"अस्तबल में जाकर गाड़ी लेती हूं। दो घंटे में अल्योशा के पास पहुंची जाती हूं।"

आकाश की कोरों पर पौ फटने के चिन्ह दिखाई दे रहे थे। प्रभात की शीतल वायु से वृक्षों की चोटियां हिल रही थीं। हवा सर्द और नम थी।

अस्तबल में कोई न था। फाटक पर बड़ा सा ताला लटका था। सब घोड़े दस किलोमीटर दूर चरानों पर थे।

"जाकर वासिली कुज़मिच से कहूं? लेकिन घोड़े हैं ही नहीं तो वह करेगा क्या? वक्त बरबाद करना बेवकूफी है। पैदल ही क्यों न चलूं?"

अस्त होते चांद की चांदनी में सड़क झाड़ियों में विलीन हो गयी थी।

लेना ने शॉल को कंधों पर कसकर लपेटा। मन पक्का करके सड़क से खेतों पर आ गयी। खेत और झाड़ियां लेना की परिचित थीं। पत्तों और घास का मरमर शब्द भी उसे परिचित लग रहा था।

खेतों में कहीं-कहीं कोहासे के बादल से मंडरा रहे थे। बादलों का कोई-कोई टुकड़ा बांहें ऊपर उठाये सड़क पर भी मिल जाता। लेना इन बादलों को चीरती चली जा रही थी। उसकी नंगी पिंडलियों में ठंडक मकरजाले की तरह लिपटती जा ही थी।

लेना सोचती जा रही थी : "धूप चढ़ते तक अस्पताल पहुंच जाऊंगी। उसकी हालत ज़्यादा खराब हुई तो सीधी डाक्टर के पास जाऊंगी। पर वह ठीक ही होगा। बस आंखें खोलते ही मुझे देखेगा। जाकर उसके पलंग के पैताने बैठ जाऊंगी। अस्पताल का सफेद चोगा मेरे बदन पर होगा। पहले तो चकित रह जायगा। फिर कितना खुश होगा। तब बताऊंगी कि अंधेरे में इतनी दूर पैदल चलकर आई हूं। कहेगा, 'पागल है तू! पैदल क्यों आई?' मुझे देख कर बहुत खुश होगा। हम दोनों बहुत खुश होंगे!"

पहली मई फ़ार्म के परिचित खेत पीछे छूट गये थे। लेना नये खेतों और झाड़ियों को मुश्किल से ही पहचान पा रही थी। कोहरे में वे बदले-बदले से लग रहे थे। कोहरा घना होता जा रहा था। अब वह हवा में उड़ नहीं रहा था बल्कि भारी परतों में धरती पर बैठता जा रहा था। आकाश में एक हल्के बादल ने चांद को ढंक लिया था।

"देखें मैं तेज़ चलती हूं कि बादल?" लेना ने सोचा। "मुझे और तेज़ चलना चाहिए। नहीं, अपने को धोखा देना ठीक नहीं। तबियत ज़्यादा खराब न होती तो उसे अस्पताल ले ही क्यों जाते? दादी और बाल्या वहां इतनी देर ठहरतीं ही क्यों?"

सड़क के दोनों ओर जंगल था। लेना दौड़ती चली जा रही थी। जंगल घना और अंधेरा था। लगता था अंधेरे में से सैकड़ों आंखें उसकी ओर देख रही हैं। पत्ते-पत्ते और डाल-डाल के पीछे खतरा छिपा मालूम होता था। किन्तु स्वभाव से भीरु लेना को इस समय कोई भय न था।

"तेज़! और तेज़...! कहीं उसे कुछ हो न जाय!"

जंगल से निकलता कोहरा सड़क पर छा गया था। वह उसमें घुटनों तक धंसती जा रही थी। सड़क दीख नहीं रही थी। अन्दाज़ से ही वह बढ़ रही थी।

"अभी पहुंचती हूं...हां, अभी!..."

सड़क नीचे उतर गयी थी और एक घाटी में से गुज़र रही थी। कोहरे में लेना कंधों तक डूब गयी। कोहरे से ऊपर कभी-कभी झाड़ियों की चोटियां दिखाई दे जाती थीं। सड़क कहीं खो गयी थी। कोहरे के ऊपर स्वच्छ, निर्मल, तारों मढ़ा आकाश था।

लेना के पैरों के नीचे क्या है, उसे नहीं मालूम था। वह नहीं जानती थी कि उसके पैर धरती पर पड़ रहे हैं या बादलों पर। धुनी हुई रुई की तरह घना कोहरा उसे चारों तरफ से घेरे था। ऊपर नीला आकाश था और दिल में एक आग—"तेज़! और तेज़!"

घाटी के बाद एक पहाड़ी आ गयी। लेना की सांस फूल गयी थी। पर वह चढ़ाई पर भी दौड़ी जा रही थी। मालूम होता था चोटी पर पहुंचते ही

उसे सब कुछ दीख जायेगा। लेना ने कोहरे से पीछा छुड़ाया। अब उसे सामने सड़क दिखाई दे रही थी।

"तेज़! और तेज़! इस चोटी पर पहुंची कि आधा रास्ता पार हो जायेगा। आगे उतराई है। चलने में और भी आसानी होगी।"

चोटी पर पहुंचते-पहुंचते लेना बुरी तरह हांफ गयी थी। दम लेने के लिए वह एक पेड़ के नीचे खड़ी हो गयी। सामने खूब लम्बा-चौड़ा मैदान दिखाई दे रहा था। मैदान में कोहरा नहीं था। हवा थमी हुई थी। पत्ता भी नहीं हिल रहा था। झाड़ियों को चूमता बड़ा सा पीला चांद डूब रहा था। लेना जिस पेड़ के नीचे खड़ी थी उसकी पत्तियां धूमिल प्रकाश में टिमटिमा रही थीं। सामने फैला लम्बा-चौड़ा मैदान कफ़न जैसी फीकी चांदनी से ढंका था। आसमान की नीली गहराइयों से भी चारों तरफ़ ऐसी ही फीकी सफेदी फैल रही थी।

"नहीं, नहीं...!" लेना कांप उठी।

सहारे के लिए उसने पेड़ के तने को थाम लिया। उसके पैर लड़खड़ा रहे थे।

लेना अस्पताल में पहुंची तो धूप फैल चुकी थी। हाते में ओस से भीगे बहुत पुराने और बड़े-बड़े वृक्ष खड़े थे। प्रातःकालीन समीर उन्हें धीरे-धीरे सहला रहा था। वृक्षों से छन-छन कर आती सूर्य की किरणें घास पर अठखेलियां कर रही थीं।

दो नर्सें सफेद चोगे पहने लेना के आगे-आगे जा रही थीं।

"कितना अच्छा लड़का था! उम्र ही क्या थी अभी!" एक कह रही थी।

"डाक्टर कहते हैं एक दिन पहले ले आते तो बच जाता...!" दूसरी बोली।

"नहीं, नहीं...!" लेना के होंठ फड़क उठे। वह सिर से पैर तक कांप गयी। फिर उसने मन को समझाया: "यह कैसे मालूम कि अस्पताल में जिनसे पहले मुलाकात हुई वे अल्योशा की ही बातें कर रही हैं? अस्पताल में सैकड़ों मरीज़ होते हैं। अल्योशा की बाबत ऐसा क्यों सोचा? नहीं, नहीं!"

लेना अस्पताल के रास्तों से परिचित थी। स्कूल के बच्चों को देखने कई बार वह यहां आ चुकी थी।

धक्का देकर उसने अस्पताल का दरवाज़ा खोला और बरांडे से होती हुई वार्ड नं० ५ में पहुंची। उसे किसी ने रोका-टोका नहीं। वार्ड खाली था। तीन खाली सफेद बिस्तर लगे हुए थे।

"इसमें नहीं, अल्योशा दूसरे वार्ड में होगा," लेना ने सोचा। अचानक उसकी आंख एक बिस्तर के साथ की छोटी मेज़ पर गयी। मेज़ पर अल्योशा की छोटी लाल नोट-बुक पड़ी थी जिसमें अल्योशा खादों के नुसखे लिखा करता था और जिसमें लेना के शहर के मकान का पता लिखा था।

लेना पथराई आंखों से नोट-बुक को देखती रह गयी। अल्योशा की नोट-बुक खाली बिस्तर के पास! लेना की आंखों के सामने कमरा गोल चक्करों में घूमने लगा। कमरे का पलंग और आलमारियां घूमती-घूमती छोटी होकर अदृश्य हो गयीं। सिर्फ़ वही लाल नोट-बुक उसे घूर रही थी और अदृश्य होने का नाम नहीं लेती थी।

"उसे वहां पहुंचा दिया गया है...आओ, तुम्हें रास्ता बता दूं..." लेना को पीछे से परिचित आवाज़ सुनाई दी। पीछे वही नर्स खड़ी थी जो उसे बाहर हाते में मिली थी। लेना उसके पीछे हो ली। अपने नये सफ़ेद रूमाल से नर्स आंखें पोंछ रही थी।

"मैंने कई मौतें देखी हैं...पर यह मौत तो ... क्या लड़का था... फोड़ा अन्दर ही फट गया और मवाद अंतड़ियों में फैल गया... अगर एक घंटे पहले आ गया होता तो ...!"

लेना चुपचाप नर्स के पीछे चली जा रही थी।

बड़ा सुहावना प्रभात था। सुन्दर वृक्ष सुनहरे प्रकाश में धीरे-धीरे झूम रहे थे। कोई विश्वास नहीं कर सकता था कि ऐसे प्रभात में कोई मर सकता है, कि अब वह इन वृक्षों को कभी नहीं देखेगा।

नर्स लेना को मुर्दाघर में ले गयी।

अंधेरी सी गली में कुछ बाल्टियां रखी थीं। एक बेंच पर वासिलिसा अपने खुरदरे, झुर्रियों पड़े, भूरे-भूरे हाथों पर नज़र गड़ाये बैठी थी।

नर्स ने दरवाज़ा खोल दिया।

लेना ने देखा — बड़ी-बड़ी खुली खिड़कियां! बाहर उज्वल नीला आकाश! हरे-भरे वृक्ष। पक्षियों के चहचहाने की आवाजें। फिर उसकी नज़र वालेंतिना और आन्द्रेई पर पड़ी। दोनों की पीठ दरवाज़े की ओर थी। उन्होंने लेना को आते नहीं देखा, न आहट सुनी। वह एक कदम और बढ़ी। सहसा लेना की दृष्टि अल्योशा पर पड़ी।

वह एक मेज़ पर लेटा था, शरीर सफ़ेद चादर से ढंका हुआ। एक हाथ की मुट्ठी बंद, दूसरा यों ही ढीला पड़ा हुआ। लगता था थक कर आराम कर रहा है। खिड़की से आती सूर्य की किरणें और पत्तियों की छाया उसकी बांहों पर खेल रही थीं।

अल्योशा का मुंह खिड़की की तरफ था। हवा से उसके घुंघराले बाल धीरे-धीरे थिरक रहे थे। लेना को दिखाई देता गर्दन और गाल का हिस्सा सूजा हुआ था। भौंहें अब भी पहले जैसी—कोमल और हलकी, धनुषाकार, उसके माथे पर मढ़ी थीं।

सहसा मुर्दाघर की सफ़ेद दीवारें घूम गयीं। विशाल वृक्ष चरचराते हुए गिरने लगे। काले पत्तियों सहित सुन्दर नीला आकाश फट पड़ा। एक धमाका हुआ। आन्द्रेई ने घूमकर पीछे देखा। रक्तहीन सफ़ेद चेहरे और पथराई आंखोंवाली एक मासूम लड़की उसके पैरों के पास पड़ी थी।

७. फसल

फ़सल कटाई का वक्त आ गया।

अगस्त माह के स्वच्छ आकाश और स्थिर वातावरण में पकी हुई फसल के खेत चुपचाप खड़े थे। मीठी धूप में मुस्कराते समृद्ध, शांत खेतों को देखकर कल्पना करना कठिन था कि पहले इन खेतों पर से पाले, कोहरे, आंधियों, वर्षा और कड़ी गरमी का समय बीत चुका है।

फसल बहुत अच्छी हुई थी। दाने से बोझिल बालों को देखने और हाथ में लेने से संतोष होता था। दानों को चाब कर देखा जा सकता था कि फसल पक गयी है।

सुबह तड़के ओस से भीगी अनाज की फसल की दिवारों के बीच से काम पर जाते बड़ा अच्छा लगता था। गौधूलि के समय जब खेतों पर कोहरा उतर आता था, इन खेतों में से होकर घर लौटते बड़ा संतोष होता था।

फ़ार्म के सभी काम ढंग से चल रहे थे। सब ओर संतोष और आशा थी। केवल अल्योशा की अप्रत्याशित—इसलिए भयंकर—मृत्यु का दुख था।

यदि अल्योशा की मृत्यु एक वर्ष पहले हो गयी होती तो लोग शोक तो मना लेते परन्तु वे यह महसूस न करते कि उसकी मृत्यु ने उनके जीवन में कोई कमी पैदा कर दी है। किन्तु अब फ़ार्म के सभी लोग इस युवक नेता की मृत्यु के लिए अपने को ज़िम्मेदार समझते थे। फ़ार्म का कोई भी व्यक्ति ऐसा न था जो यह न सोचता हो कि फ़ार्म में उसका और उसके काम का महत्व क्या है?

"ऊपर चढ़ने में सावधानी की आवश्यकता होती है..." एक बार आन्द्रेई ने वालेंतिना से कहा था। "आदमी जितना ही ऊपर चढ़े, उतना ही सतर्क होकर उसे अगला क़दम रखना चाहिए। जो जितना ही सभ्य, सहृदय और निस्वार्थ हो उसकी ओर उतना ही अधिक ध्यान देना चाहिए। जो समाज अल्योशा जैसे युवकों को पैदा कर सकता है उसमें व्यक्ति और सामूहिक समुदाय के बीच नये सम्बंध पैदा होने चाहिएं। अल्योशा समूचे सामूहिक फ़ार्म के हित की चिन्ता करता था। परन्तु वह अपना ध्यान भूल गया। इसका मतलब यह है कि तुम सबको उसकी चिन्ता करनी चाहिए थी। तुम लोगों ने बीमारी के शुरू में ही उसकी खबरदारी क्यों नहीं की? उसे ठीक वक्त पर खेत से छुट्टी क्यों नहीं दी गयी? ठीक वक्त पर अस्पताल क्यों नहीं भेजा गया? उसके प्रति जितनी सावधानी और चिन्ता की ज़रूरत थी, तुम लोगों ने नहीं बरती। तुम लोग समझ ही नहीं पाये कि पहली मई फ़ार्म की सबसे अनमोल वस्तु वह युवक था...।"

आन्द्रेई की तरह वासिली अपने भाव व्यक्त करने में समर्थ नहीं था। परन्तु वह भी ठीक यही सोचता था।

किसी ने वासिली पर दोषारोपण नहीं किया था। परन्तु वह खुद अनुभव कर रहा था कि फ़ार्म के सबसे अच्छे दल-नायक के जीवन के प्रति उसने "लापरवाही" बरती है। इस घटना के बाद से वह किसानों के स्वास्थ्य और उनकी भावनाओं के प्रति अधिक सतर्क रहने लगा। नवयुवकों और बूढ़ों के प्रति उससे जो बन पड़ता, वह करता। अधिक सन्तानों वाले परिवारों की अवस्था की उसे और भी चिन्ता रहती।

मालूम होता था जैसे अल्योशा की मृत्यु के लिए अप्रत्यक्ष रूप से ज़िम्मेदार लोगों और बाक़ी सामूहिक किसानों के बीच दरार पड़ गयी है। उस दिन जंगली फल तोड़ने के लिए जो औरतें चली गयी थीं उन्हें ख़ास तौर से अपराधी ठहराया गया। अल्योशा की मृत्यु पर शोक प्रकट करने के लिए हुई सभा में स्तेपनिदा, पोल्यूखा और मलानिया की कठोर निन्दा हुई। इससे भी बड़ी बात यह कि सभी लोगों के पूर्ण समर्थन से वासिली ने आज्ञा दे दी कि ये तीनों स्त्रियां अल्योशा को दफ़न करने के लिए ले जाते समय उसकी अर्थी के साथ न जा सकेंगी।

अल्योशा की मृत्यु से प्योत्र को बहुत धक्का पहुंचा। अल्योशा प्योत्र की चेतना, उसका शिक्षक और मित्र—सभी कुछ था। अस्पताल जाते समय अल्योशा कुछ समय के लिए दल का नायक भी उसी को बना गया था।

अल्योशा को समाधि देने के तीसरे रोज फ़ार्म-बोर्ड में दल के लिए नेता चुनने के प्रश्न पर बहस हुई।

"देखा जाय प्योत्र कैसे चलाता है," वासिली ने प्रस्ताव रखा, "लोगों से काम लेने में होशियार भी है।"

"भई, प्योत्र तो मनमौजी आदमी है!" यासनेव ने विरोध किया।

"शराब-वराब तो बहुत दिन से छोड़ दी है उसने..."

"उसे बुलाते हैं और पूछे लेते हैं," वासिली ने सुझाव रखा। "मैं उसे जानता हूं। ज़बरदस्ती तो उससे कुछ कराया नहीं जा सकता। हां, अगर उसकी अपनी समझ में आ जाय तो निभा भी देगा।"

प्योत्र को बुलाया गया। अभी परसों इसी कमरे में अल्योशा की अर्थी रखी हुई थी। नीचे बिछे लाल कपड़े पर अर्थी के पायों के दबाव से बने चिन्ह अब तक दिखाई दे रहे थे। दीवार पर काले चौखटे में मढ़ी अल्योशा की तसवीर लटकी थी। तसवीर पर फर और चीड़ की पत्तियों की सूखती मालाओं से तीव्र सुगंध आ रही थी।

"देखो प्योत्र," वासिली बोला, "न तो हम तुमसे मिन्नत करने जा रहे हैं और न जोर-ज़बरदस्ती! तुम यह बताओ कि अल्योशा के काम की ज़िम्मेदारी सम्भालने को तैयार हो?"

"मैं तैयार हूं...!" प्योत्र ने रुंधे गले से संक्षिप्त सा उत्तर दिया। अपने मन में वह पहले ही फैसला कर चुका था।

खुद दल का नेता बनने पर भी प्योत्र सभी बातों में अल्योशा के कायदों पर चल रहा था, जैसे असली नेता अब भी अल्योशा ही हो और प्योत्र उसका सहायक मात्र। अल्योशा की तरह सांझ को दिन भर के काम की नाप-जोख करना और टूटी-फूटी चीज़ों या औज़ारों की मरम्मत भी उसी समय करवा लेना प्योत्र के काम का दैनिक नियम बन गया!

लोग एक साथ बोलने लगते तो शांत रहने का इशारा करता हुआ वह कहता: "भैया, इतनी जल्दी-जल्दी बोलने की ज़रूरत क्या है। जैसे पहले बारी-बारी से बोलते थे वैसे ही बोलो न...।" बिना जाने ही बोलचाल में भी उसने अल्योशा का ही ढंग अपना लिया था—उसका ही जैसा आवाज़ का उतार-चढ़ाव, उसकी ही जैसी भाव-भंगिमा। दूसरों से व्यवहार में भी वह उसी की तरह गम्भीरता बरतने की कोशिश करता।

दल का काम बिलकुल ठीक चल रहा था, यहां तक कि यासनेव को भी—जिसे पहले प्योत्र पर भरोसा नहीं था—वासिली से कहना पड़ा:

"तुम्हारा अन्दाज़ ठीक था, वासिली कुज़मिच। प्योत्र अल्योशा के काम को ठीक निभा रहा है!"

प्योत्र के जीवन का यह अत्यन्त महत्वपूर्ण काल था।

एक समय था कि प्योत्र को फ़ार्म में सबसे उद्धत और मनमौजी कहलाने पर फ़ख्र था। अब उसे शान्त और सहृदय समझे जाने में ही संतोष होता था। फ्रोस्या अब भी फ़ार्म के सबसे शरारती लड़के-लड़कियों की नेता थी। प्योत्र उन लोगों में जाकर भी शान्त बना रहता। लड़कियों की बोली-ठोली और छेड़खानी के जवाब में वह चुप रहता। कभी-कभी एक आध बात कह देता और जो काम करवाना होता करवा लेता।

प्योत्र को अब एक नया चस्का लगा था—खेतों पर अपने दल को सबसे पहले ले जाने का। गांव में जब सब सोये होते, वह अपने दलवालों को उठाकर गाने गाता हुआ गलियों में से निकलता। किसान खिड़कियों से झांक कर कहते : "अरे, कौमसोमोलवाले चल दिये!" प्योत्र खुद कभी-कभी सोचता : "क्या अल्योशा की मृत्यु का मुझ पर यह असर है? या इस साल के पतझड़ में ही कोई खास बात है?"

उस वर्ष के पतझड़ में दूसरे किसानों को भी 'कोई खास बात' महसूस हो रही थी। हवा में जैसे नये परिवर्तनों की सुगंध हो।

कभी-कभी सांझ को फ्रोस्या वालेंतिना के कंधे से चिपक कर कहती :

"ओरी वाल्या! क्या बताऊं, बड़ा अजीब सा लग रहा है..."

"क्या बात है री? शरीर ठीक नहीं है क्या?"

"शरीर? देख, ब्लाउज़ सीवनों पर से उधड़ा जा रहा है।"

"तो फिर क्या बात है?"

"फ़ार्म के दफ्तर में काम का सूचक जो तख्ता लटका है न, उसमें मिशा बुयानोव ने सबसे अच्छी कार्यकर्ता के रूप में मेरा चित्र हवाई जहाज़ पर बनाया है। मेरा तो मन करता है कि हवाई जहाज़ पर उड़ूं।"

"यह कौन बड़ी बात है!" वालेंतिना कहती। "कितनी ही लड़कियां हवाई जहाज़ चला रही हैं। लेकिन पहले तो तुझे यह साबित करना है कि जो काम तू कर रही है उसे तुझसे अच्छा और कोई नहीं कर सकता।"

कुछ दिन बाद तख्ते पर बने हवाई जहाज़ पर फ्रोस्या की जगह लुबावा और उसके दल का नाम आ गया।

"हम क्या करें?" फ्रोस्या ने जाकर वालेंतिना से शिकायत की। "लुबावा के दल में फ़ार्म के सबसे अच्छे हंसिया चलाने वाले हैं। अगले हफ्ते तक हमारे यहां कम्बाइन मशीनें आने की नहीं। तब तक लुबावा का दल बाज़ी मारे रहेगा।"

"जरा अपने दिमाग़ से और हाथों से भी काम ले।" वालेंतिना ने समझाया।

"कैसे?"

"जब अखबार पढ़ा जाता है तो क्या कानों में रुई भरे रहती है? तेरे पास कटाई की मशीनों के पीछे कितनी लड़कियां रहती हैं? छः न? तीन से काम नहीं चल सकता?"

"पर कैसे?"

"कैसे क्या? मैं बताती हूं। जब अखबार पढ़ा जाय तो ध्यान से सुना कर।" वालेंतिना ने चिढ़ाते हुए कहा। "कटाई की मशीन से लड़कियों को हटाकर पूले बंधाई के काम पर लगा दे। फिर देख कि तू लुबावा से आगे निकल जाती है या नहीं।"

अगले दिन मिखाइल ने फसल की पूले बंधाई करनेवालों को एक लेख पढ़कर सुनाया जिसमें काम को तीन हिस्सों में बांटने को बताया गया था।

फ्रोस्या ने अखबार मिखाइल के हाथ से छीन लिया और पूरे लेख को दुबारा पढ़ा। उसकी भेंगी आंखें प्रसन्नता से चमक उठीं।

"ओ री लड़कियो!" फ्रोस्या ने चिल्लाकर अपने दल की लड़कियों से कहा। "अगर लुबावा को मात न दी तो मेरा नाम फ्रोस्या नहीं। हम पूले बांधने की रस्सी पहले ही तैयार कर लेंगी। लिपा, तेरा नम्बर पहला है! तू रस्सी बटती जाना। कात्या, तेरा नम्बर दूसरा है! तू टुकड़े जमीन पर फैलाती जाना। मेरा नम्बर तीसरा है! मैं बांध-बांध कर फेंकती जाऊंगी। छः लड़कियां फिजूल में लगी रहती हैं। हम तीन मिलकर काम पूरा कर लेंगी। काम जल्दी कैसे होता है, यह मैं दिखाऊंगी! क्या हम उन लोगों से कुछ कम हैं जिनके बारे में अखबारों में लिखा जाता है।"

"अभी से क्यों बता रही है। हम लोग कर लें तब बताना।" लड़कियों ने कहा।

"मैं तो अभी ऐलान कर दूंगी!" फ्रोस्या ने उत्तर दिया, हालांकि मन में अब वह कुछ ढीली पड़ गयी थी।

"अगर हम से न बन पड़ा तो?"

"बन क्यों नहीं पड़ेगा? हम लोग दो-तीन दिन चुपचाप प्रैक्टिस कर लेंगी। फिर बतायेंगी सबको झमाके से!" उसने कहा। फ्रोस्या के सभी काम झमाके से होते थे। "पेत्रो! हो जा तू भी तैयार! अब हमारा काम तेज़ी से होगा!"

"और कुछ!" प्योत्र ने उत्तर दिया।

किसी दूसरे ने ऐसी बात कही होती तो प्योत्र को बड़ी खुशी होती और वह सोचता कि उसे क्या करना चाहिए। पर फ्रोस्या तो उसे कांटे की तरह चुभती थी। अल्योशा के समय भी वह कोई न कोई बखेड़ा खड़ा किये रहती थी। प्योत्र की तो हर बात की वह काट करती थी।

फ्रोस्या ने अपनी बात दोहराई नहीं। जाते-जाते घूम कर कहती गयी :

"तेरी मदद की ऐसी मोहताज नहीं हूं।"

लड़कियां दो-दिन चुपचाप पूले बांधने की प्रैक्टिस करती रहीं।

तीसरे दिन फ्रोस्या ने खुली घोषणा कर दी :

"आज से हमारा काम तेज़ी से होगा।"

बुयानोव ने सुना तो पूरे फ़ार्म में खबर फैला दी।

दोपहर को वासिली और वालेंतिना भी फ्रोस्या का काम देखने खेतों की ओर चल दिये।

अगस्त की शान्त और उजली धूप में अंखफोड़े और टिड्डियां बड़ी सधी और धीमी गति से फसल पर उड़ रही थीं। कहीं-कहीं आक की रुई के गाले धूप में तारों की तरह चमक कर छाया में जाकर सफ़ेद दिखाई देने लगते। कहीं शहद की मक्खियां जंगली फूलों पर चमकीले पर फैलाये नाच रही थीं। देर से तैयार होने वाली आलू के पत्तों के बीच पीले डंठलों वाले फूल खिले थे।

"ज़रा आलुओं को तो देखो! कैसे अच्छे लगते हैं! निराई और खाद का ऐसा असर होता है।" वासिली गर्व से वालेंतिना से कह रहा था, हालांकि ये ही शब्द गर्मियों से पहले वालेंतिना उसे सुनाती थी। "लोग तो सूखे से डरकर ऐसे निराश हो गये थे...!"

एक बड़े झाड़ के बाद पगडंडी के दोनों ओर पकी फसल के खेत शुरू हो गये थे। खड़ी फसल मोटे दानों से भरी बालों के बोझ से झुकी जा रही थी।

वासिली ने प्रसन्न होकर अपनी मूंछ और दाढ़ी पर हाथ फेरा। दाढ़ी तो वह नहीं रखता था, परन्तु पिता की यह आदत उसमें भी थी कि प्रसन्न होने पर ठोडी खुजाने लगता।

"देखो तो फसल को!" वासिली का चेहरा चमक रहा था।

"अल्योशा के खेत हैं!" वालेंतिना ने धीरे से कहा।

सड़क किनारे एक बल्ली गाड़कर एक तख्ता लटकाया हुआ था। तख्ते पर अल्योशा ने साफ़-साफ़ अक्षरों में लिखा था :

"कौमसोमोल का प्रयोगिक खेत। कृपया खेतों में से होकर न जाइए। किनारे के रास्ते से चलिए।"

नीचे प्योत्र की लिखी एक पंक्ति थी : "हमारे दल का नाम अल्योशा के नाम पर रहेगा। साथियो, अल्योशा की तैयार की हुई फसल का एक भी दाना बरबाद न होने पाये!"

वालेंतिना का हृदय उमड़ आया। उसका गला रुंध गया। वह अपने मन को यह समझा ही न पाती थी कि अल्योशा की मृत्यु हो गयी है और इस

सत्य को मानना पड़ेगा। उसके अन्तर की पीड़ा, दुःख और विरोध अभी तक कम न हुए थे। उसकी आंखों के सामने वसंत के आरम्भ का वह दिन फिर सजीव हो उठा जब भारी वर्षा हुई थी। वह खेत के किनारे घोड़े की पीठ पर बैठी थी। सामने अल्योशा खड़ा था। उसका वर्षा से भीगा गुलाबी चेहरा और बड़ी-बड़ी नीली आंखें उत्साह और दृढ़ निश्चय से चमक रही थीं।

उसके सामने उसका गुलाबी चेहरा और आंखें इतनी सजीव हो उठी थीं, उनमें इतनी जीवनी शक्ति थी कि वालेंतिना को और सब कुछ धुंधला, अस्पष्ट, असत्य और झूठा मालूम हो रहा था। हवा का एक झोंका आया। फसल में लहरें उठने लगीं, खेत जैसे जाग उठे हों।

"मालूम होता है अल्योशा बोल रहा है। कहता है: देखो आदमी क्या नहीं कर सकता है?" वासिली ने कहा।

हवा शांत हुई। खेतों पर फिर शान्ति छा गयी।

वालेंतिना और वासिली दोनों ओर खड़ी राई की दीवारों के बीच से चुपचाप आगे बढ़ चले।

लड़कियों के सिरों पर बंधे रंगीन रूमाल दूर से ही दिखाई दे रहे थे।

फ्रोस्या के खेतों में काम ज़ोरों से चल रहा था। फसल कटाई की मशीन पर बैठे प्योत्र का चेहरा किसी फोटो के निगेटिव की तरह लग रहा था—काला-काला, सिर के बाल और भौंहें भूरी। कमीज़ के बटन खुले हुए थे। आस्तीनें ऊपर चढ़ी थीं।

छोटी सी सशक्त मशीन राई की ऊंची दीवार पर भरपूर हमला कर रही थी और फसल की दीवार लहरों की तरह गिरकर बिछती जा रही थी। कटी हुई राई की दरी सी बिछती जा रही थी। मशीन के पीछे-पीछे पूले बांधने वाली लड़कियां थीं। इस धूप में लड़कियों की बांहें ही फसल में उठती-झुकती दिखाई देती थीं। बीच-बीच में फ्रोस्या की पुकार सुनाई दे जाती:

"अरी, दो नम्बर! जल्दी रस्सी फेंक!"

"अच्छा! इनके तो नम्बर बंध गये हैं।" हंसता हुआ वासिली बोला। "खेत में काम करने वाला नहीं, यह तो मशीनगन चलाने वाला दल हो गया!"

मशीन खींचने वाला छोटा सा टट्टू पसीने से भीग गया था। फसल पर मशीन का हमला तेज़ होता जा रहा था। वासिली और वालेंतिना खड़े देख रहे थे। पूले बांधने वालियों की फ़ुर्ती देखते उनकी आंखें नहीं अघाती थीं।

"अरे ओ प्योत्र !" फ़ोस्या चीखी। "जल्दी कर, नहीं तो लड़कियां तुझी को बांध डालेंगी !"

प्योत्र ने माथे से बहता पसीना पोछते हुए मुस्कराकर पीछे देखा।

"ये लड़कियां तो घोड़े की जान ले लेंगी।" वासिली को सम्बोधित करके उसने कहा। "मैं आधा खेत काट चुका था तब आकर इन्होंने शुरू किया। फिर भी मुझे आ पकड़ा !"

"बातें कम, काम ज्यादा !" फ़ोस्या फिर चिल्लाई। "ज़रा तेज़ी से मशीन चला !"

फ़ोस्या के माथे पर से बह कर पसीने की नन्हीं-नन्हीं बूंदें भैंगी आंखों की भौंहों पर आ रही थीं। नीला ब्लाउज़ पसीने से भीग कर, पीठ से चिपक कर, काला पड़ गया था। वह न कुछ देख रही थी, न सुन रही थी। वालेंतिना और वासिली की ओर तो उसने नज़र उठा कर देखा भी नहीं। उसके हाथ मशीन की तरह चल रहे थे, जैसे कोई कलाकार बड़ी तत्परता से अभिनय कर रहा हो, या कोई सिपाही दुश्मन से जूझ रहा हो। आज पहली बार उसने समूचे फ़ार्म और समूचे ज़िले को भी, दिखा दिया कि फ़ोस्या किस धातु की बनी है।

फ़ोस्या प्योत्र को बार-बार कोंच रही थी : "आगे बढ़, आगे !" और पीछे घूम कर लड़कियों को ललकारती जाती थी : "अरी जल्दी करो न। क्या घिसिर-घिसिर कर रही हो !"

उसे देखकर वासिली अपनी हंसी न रोक सका। वह कह ही बैठा :

"क्या बला है यह लड़की भी !"

पूले बांधने वालियों के पीछे-पीछे गट्ठर इकट्ठे होते जा रहे थे। ऐसा लगता था जैसे कोई जादू हो रहा हो।

वासिली और वालेंतिना न जाने कितनी देर तक खड़े-खड़े कटाई की मशीन और पूले बांधने वालियों की होड़ देखते रहे।

आखिर प्योत्र की आवाज़ सुनाई दी :

"खाने का वक्त हो गया भाई !"

दोपहर के खाने का इंतज़ाम खेतों में ही था। प्योत्र अपनी मशीन को ठोक-बजा कर देख रहा था। लड़कियों ने अंगड़ाइयां लेकर अपनी पीठें सीधी कीं और खेत के किनारे की झाड़ियों की छांव में बैठ गयीं। वालेंतिना और वासिली भी उनके पास ही जा बैठे।

"शाबाश लड़कियो !" वालेंतिना ने प्रशंसा करते हुए कहा। "इसे कहते हैं काम ! असली होड़ तो आज शुरू हुई है।"

"हां, सचमुच।" वासिली ने संतोष से कहा। "अब हमारे फ़ार्म में भी ऊंची रफ्तार वाले हो गये हैं !" फिर ज़रा गर्व से बोला : "ऐसी तेज़ी से

पूले बांधने वाले ज़िले में कभी नहीं हुए। अखबार वालों को टेलीफोन कर दूं कि अखबार में छापने के लिए आकर फ्रोस्या की फोटो ले लें?"

"तुम ज़रूरी समझते हो, तो मुझे कोई एतराज़ नहीं है।" फ्रोस्या ने स्वीकृति दी।

"अरी बहुत मिजाज़ न दिखा!" प्योत्र ने उसे चिढ़ाते हुए कहा। "तेरे ये हौंसले तभी तक हैं जब तक कम्बाइन मशीन नहीं आती। दो दिन की देर है—फिर देखेंगे ज़रा तेरी रफ्तार!"

"कम्बाइन तो दस आना भर खेतों में काम करेगी। बाकी छः आना तो हमारे दम पर रहेगा!"

लुबावा खेतों के पार से भागती चली आ रही थी। फ्रोस्या के काम की भनक उसके कान में भी पड़ी थी। उससे रहा नहीं गया। दोपहर के खाने के वक्त वह यह देखने चली आई कि फ्रोस्या ने क्या और कितना काम कर डाला है।

"देख लो लुबावा, और ज़रा अपने यहां की लड़कियों को बुला कर भी दिखा दो कि यहां कैसा काम हो रहा है!" वालेंतिना ने कहा।

"अब तुम्हारी बारी है कि हम से सीखो!" फ्रोस्या कहकहा लगा कर हंस पड़ी।

"कोई बात नहीं; अभी क्या है? आगे चल कर जीत हमारी ही होगी। अभी से मन के लड्डू खाने से क्या फ़ायदा?" लुबावा ने भी हंस कर उत्तर दिया। पर मन में वह चिन्तित थी।

"आओ! आज हमारे यहां का दलिया चखो।"

"ना भई! हमारे यहां ज्यादा अच्छा है।" लुबाव ने उत्तर दिया।

"ज़रा चख के तो देखो... तुम्हारे दल वालों ने ऐसा दलिया जनम भर में नहीं खाया होगा।"

लुबावा चली गयी और लड़कियां खाना खाने में जुट गयीं।

कई छोटी-छोटी लड़कियां खेतों में भागी हुई चली आ रही थीं। वासिली ने दूर से ही पहचाना—इनमें कात्या भी थी।

"बापू, बापू!" वह चिल्ला रही थी। "हम लोग बालें बीन रही हैं। मैंने सबसे ज्यादा बीनी हैं, बापू!"

कात्या की छोटी-छोटी बाहों और पिंडलियों पर कई जगह खरोंचें लगी हुई थीं। उसके गुलाबी गालों पर धूप से लाल-लाल चट्टे से पड़ गये थे। कात्या को देखते ही वासिली को नन्हीं गिरगिट की—उस अवदोत्या की जिसे उसने पहले पहल देखा था—याद हो आई। कात्या बाप को देख कर बहुत

प्रसन्न थी। बाप के गले से लिपटी अबाध गति से वह कुछ कहे जा रही थी। अपने इकट्ठे किये तिनके, पत्तियां और अनाज की बालें धरती पर रख कर वह बाप के पास बैठ गयी।

"बापू, हमारे साथ खेलो!"

बहुत गम्भीर चेहरा बनाकर अवदोत्या के से महीन स्वर में वह गाने लगी:

"भरी भरी बालें,
कान में बोलें,
मन में मिसरी घोलें!"

वासिली ने एक बड़ी सी बाल उठाकर कात्या की गर्दन के पीछे छुला कर गुदगुदी कर दी। कात्या हंसी से लोट-पोट हो गयी।

"राई है! राई!" कात्या प्रसन्नता से चिल्लाती हुई बोली। "अच्छा बापू, अब तुम आंखें बन्द करो!" वह ज़िद करने लगी।

वासिली को कुछ हंसी आ गयी। फिर बुलन्द आवाज़ में गाने लगा:

"भरी भरी बालें,
कान में बोलें,
मन में मिसरी घोलें!"

कान के पास उसे पत्तियों की कुरकुराहट सुनाई दी।

"पत्तियां!" उसने बूझ लिया।

कई दिन बाद ज़िले के समाचार पत्र में फ्रोस्या के काम पर एक लेख और उसकी तसवीर छपी। उस दिन शाम को प्योत्र फ्रोस्या से मिलने उसके घर पहुंचा।

प्योत्र को अपने दरवाज़े आया देख फ्रोस्या ने नाक सिकोड़ कर पूछा: "क्यों रे, क्या है?"

उस शाम की गुसलखाने वाली अविस्मरणीय घटना के बाद से प्योत्र और फ्रोस्या के सम्बंधों में कुछ विचित्रता सी आ गयी थी। दूसरी सुबह फ्रोस्या सो कर उठी थी तो मन में पिछली सांझ की घटना के लिए पश्चाताप और प्योत्र से विरक्ति सी जान पड़ी। प्योत्र के प्रति फ्रोस्या के मन में कोई अनुरक्ति तो थी नहीं। फ्रोस्या स्वभाव से ही शैतान, चंचल और चुहलबाज थी। अपने इस स्वभाव के कारण ही वह प्योत्र से छेड़छाड़ किया करती थी। दरअसल अपने लिए वह एक दूसरी ही तरह के आदमी के सपने देखती थी। उसके

सपनों का आदमी यह बुद्धू प्योत्र नहीं, बल्कि कड़े स्वभाव वाला कोई नौजवान पट्ठा था जिसे उसने अभी तक देखा भी नहीं था। उसकी आंखें तीर कीतरह पैनी होंगी, आवाज़ बुलन्द होगी और सीना फ़ौजी तमगों से सजा हुआ होगा। फ़ोस्या ऐसे ही आदमी की बाट जोहे बैठी थी। और, यह देखकर फ़ोस्या और भी चिढ़ती थी कि ऐसे आदमी के पद पर प्योत्र बैठना चाहता है। न तो प्योत्र का लड़कों जैसा चेहरा और न एक आंख दबाकर ऐंठकर बातें करने का उसका ढंग उसे अच्छा लगता। प्योत्र की जैसी शोहरत थी, उससे भी उसे नफरत थी। उससे उसे इस कारण और भी घृणा हो गयी थी कि उसने उसकी क्षणिक कमज़ोरी का फ़ायदा उठाकर उसके शरीर को छूने का साहस किया था—जब कि वह उस आदमी के पासंग बराबर भी नहीं था जिसके फ़ोस्या सपने देखती थी। प्योत्र का दम टूटते देख शायद फ़ोस्या को ही सबसे ज़्यादा खुशी होती।

फ़ोस्या के दिमाग को प्योत्र नहीं समझ पाया।

"कैसी चालाक और चालबाज़ है! बिलकुल चुड़ैल जैसी!" वह सोचता।

फ़ोस्या को प्योत्र के साथ काम न करना पड़ता तो वह उससे दूर ही दूर रहती—ठीक वैसे ही जैसे वह उस दिन की स्मृति से दूर रहना चाहती थी जिस दिन दोनों को पागलपन ने धर दबोचा था। लेकिन दोनों को साथ काम करना पड़ता था और दोनों में बातचीत भी होती थी। प्योत्र जब से दल-नायक बन गया था तब से दोनों के सम्बंधों में एक नयापन आ गया था—दोनों को सहयोगियों की तरह काम करना पड़ता था।

फ़ोस्या चाहे जितना झुंझलाती और हाथ-पैर पटकती, उसे सब कामों का बन्दोबस्त प्योत्र से मिलकर ही करना पड़ता। और हर बार यह जानकर उसे ताज्जुब और परेशानी होती कि वह कुछ ऐसा बुरा भी नहीं था। दरअसल, वह काफ़ी अच्छा टीम-लीडर था।

प्योत्र को खुद भी मालूम होता कि फ़ोस्या के प्रति उसके रुख में कोई नयापन आ गया है।

वह उसे अब केवल एक शरारती लड़की भर नहीं, बल्कि अपना सहायक समझता था—ऐसी सहायक जो मनमौजी और सिरफिरी तो ज़रूर थी, पर जो मन में आने पर "पहाड़ तक हिला सकती थी"।

काम-काज में कठिनाई आने पर प्योत्र को सदा फ़ोस्या याद हो आती। "फ़ोस्या ही इस काम को पार लगवा सकती थी। इस काम को कोई पूरा कर सकता है तो फ़ोस्या और उसके दल की लड़कियां!"

झगड़ा दोनों में चाहे जितना होता रहता हो, प्योत्र इससे इनकार नहीं कर सकता था कि काम के मामले में वह फ्रोस्या पर पूरा भरोसा कर सकता है। और फ्रोस्या भी जानती थी कि किसी काम का अच्छी तरह संगठन और उसकी योग्यता और सामर्थ्य का पूरा-पूरा उपयोग कोई कर सकता था तो प्योत्र।

काम के नाते दोनों में अच्छे साथियों की भावना घर कर गयी थी। अन्य दूसरी बातों के बावजूद यह भावना बढ़ती जाती थी।

फ्रोस्या अब भी प्योत्र से तू-तड़ाक किया करती, उसे चिढ़ाती रहती और जब देखो तब उसकी नाक में दम किये रहती। प्योत्र भी एक के बदले दो सुनाता। लेकिन अब इन बातों ने सीधी-सादी नोंक-झोंक का रूप धारण कर लिया था। इन पर उन्हें गुस्सा न आता था। उल्टे, थोड़ा मनोरंजन हो जाता था।

"झगड़ा करती है सो बात अलग, उससे जी तो नहीं ऊबता!" प्योत्र सोचता। "फिर, उससे बढ़िया सलाह भी कौन लड़की दे सकती है? दूसरी कोई उसके मुकाबले की है नहीं! अपने ढंग की एक ही अनोखी लड़की है। बिलकुल मेरे माफिक ...!"

दूसरी लड़कियां उसे नीरस और बोदी लगतीं।

"बिना नमक की चटनी जैसी ...!" वह मन ही मन कहता।

फ्रोस्या को भी प्रायः प्योत्र का ध्यान आ जाता था और वह उसके विषय में सोचने लगती थी। अपने कल्पना के प्रेमी से तुलना करने पर उसे प्योत्र में कई अच्छे गुण दिखाई पड़ते। एक विशेष लाभ की बात तो थी ही। प्योत्र उसकी ज़िद, मनमौजीपन और तौर-तरीक़ों को जानता था। वह उसके स्वभाव और काम, दोनों में, उसकी "दिलेरी" को जानता था। इतनी अच्छी तरह उसे दूसरा कोई नहीं समझता था। कौन जाने उसकी कल्पना का अपरिचित प्रेमी उसकी शैतानियों और खुराफ़ातों का क्या मतलब लगाये? शायद उसके रंग-ढंग से चिढ़ कर बौखला जाये! शायद उसे सुधारने और काबू में लाने के लिए उसे उपदेश देना शुरू करे! वह बौखला उठा तो निभेगी कैसे? उपदेश देने शुरू किये तो फ्रोस्या ऊब कर भाग खड़ी होगी। प्योत्र न तो उसे उपदेश देने की कोशिश करता था और न बौखलाता था। फ्रोस्या तू-तड़ाक शुरू करती तो प्योत्र चुप बैठा रहता, या हंस कर टाल देता, नहीं तो दो के बदले चार सुना देता। और सच पूछो तो प्योत्र की यही बात फ्रोस्या को सबसे ज्यादा पसन्द भी थी। पर वह अपना यह भाव ज़रा भी प्रकट न होने देती थी और पहले से भी ज्यादा ज़ोरों से बड़बड़ाने लगती थी। लेकिन प्योत्र अब उसके मन में और भी घर करता जाता था और दूसरे लड़कों की संगत उसे बेमज़ा लगती थी।

फ्रोस्या की मां क्सेनोफोन्तोवना अपनी पागल लड़की की बात समझ ही न पाती।

पहले फ्रोस्या गांव भर के लड़कों के साथ घूमती-फिरती थी। पर, किसी के प्रति उसमें गम्भीरता न थी। मां पूछती तो कह देती :

"मुझे इनमें से किसी की फिकर नहीं! यों ही ज़रा दिल बहला लेती हूं। दिल बहलता है तो ठीक, नहीं तो मेरे बुत्ते से!"

कभी शैतानी भरी आंखें चमकाती हुई वह बेशर्मी से कह ही बैठती :

"मुझे कगार पर चलने में मज़ा आता है, मां! रोयें खड़े हो जाते हैं! मैं जानना चाहती हूं कि मेरा मन कितना मज़बूत है, वह कितना पागल हो सकता है?"

"हे भगवान!" क्सेनोफोन्तोवना घबरा कर कहती। "लड़की तो पागल हो गयी है। ज़रा संभाल कर! कहीं अपने पर न जला बैठना!"

"कौन मैं? आग मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकती, अम्मा! जलती भट्ठी में झोंक दो तब भी नहीं झुलसने की! ऐसी लड़कियां मुझे फूटी आंखों नहीं सोहातीं जो ज़रा सी आंच लगते मोमबत्ती की तरह पिघलने लगती हैं।"

अब कुछ दिनों से फ्रोस्या के व्यवहार में परिवर्तन आ गया था। ज्यादा समय वह घर में ही रहती। लड़कों के साथ इधर-उधर अधिक घूमना उसने बन्द कर दिया था। कभी कोई लड़का उससे मिलने आता तो ड्योढ़ी में ही बातें कर उसे टाल देती। पहले की तरह लड़कों के साथ खेल-खिलवाड़ न करती फिरती। बातें करते समय अब उसके कहकहे और चटखारे न सुनाई देते। अब बड़ी गम्भीर बनी बैठी रहती थी।

कभी मां पूछती : "अरी शाम को इतनी देर तक क्या बातें करती रही थी?"

"ज़िन्दगी के बारे में अम्मा...।" विचारों में लीन फ्रोस्या उत्तर देती।

क्सेनोफोन्तोवना अपनी इस मेंगी लड़की को न समझ पाती। वह उससे कुछ डरी-सहमी सी रहती थी। क्सेनोफोन्तोवना का व्याह बहुत छोटी उम्र में हो गया था। अपनी ज़िन्दगी में उसने दो ही बातें सीखी थीं—एक तो यह कि स्त्री को पतिव्रता होना चाहिए; दूसरी यह कि जितना पैसा बचाकर जोड़ा जा सके, जोड़ना चाहिए। ज़िन्दगी में उसने ये ही दो महामंत्र सीखे थे और इन्हें ही वह फ्रोस्या के दिमाग में पैठाना चाहती थी।

बेटी का व्यवहार उसे विचित्र लगता था। दो-चार लड़के हमेशा उसके इर्द-गिर्द मंडराया करते, वह उन्हें चिढ़ाया करती, अपने प्रेमियों की हंसी उड़ाया करती और व्याह के बारे में कभी न सोचती।

कई महीने बाद प्योत्र जब फ्रोस्या की ड्योढ़ी पर पहुंचा तो आदत के मुताबिक फ्रोस्या तुरन्त सतर्क हो गयी।

"क्यों रे, क्या चाहिए!" तेज़ी से उसने पूछा।

"चाहिए क्या? कुछ नहीं!" प्योत्र ने मुस्कराकर कहा और फ्रोस्या की बिल्लियों जैसी गुर्राहट और जलती आंखों की फिकर किये बिना कमरे में घुस गया, जैसे खुद वहां का मालिक हो।

उसके मुंह से कुछ-कुछ शराब की बू आ रही थी। हाथ में कागज़ में लिपटा मिठाई का छोटा सा बंडल था। उसका व्यवहार ऐसा लग रहा था जैसे अपने घर में सगी ब्याही के यहां आया हो। फ्रोस्या ने मिठाई का बंडल देखा, कुछ समझी, फिर फुफकारती हुई बोली:

"आहा! अखबार पढ़कर मुझे बधाई देने आया है!"

"शायद!" प्योत्र ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

"बड़ा आया बधाई देने वाला! जब मैंने मदद मांगी थी तब मदद दी थी? जब अखबार में मेरा नाम छप गया है तो चला मुझे बधाई देने!"

प्योत्र मुंह बाये देखता रह गया।

"तूने मदद मांगी कब?"

"जब मैं तेज़ी से पूले बंधाई का काम कर रही थी और कब!"

"मदद मांगने का यही तरीक़ा होता है? नाक चढ़ाकर हुक्म दे दिया—एक, दो; ऐसा करो! ढंग से मांगी होती तो क्या मैं मदद देता नहीं?"

"क्या कहने हैं तेरे! मैं तुझ से भीख मांगूं?" आपे से बाहर होती हुई फ्रोस्या बोली। "क्या गर्ज पड़ी थी मुझे तेरी! बिना तेरी मदद के मैंने सब कर लिया!"

गुस्से में भरी फ्रोस्या कमरे में चहलक़दमी करने लगी। फिर आलमारी में रखे बर्तनों को इधर उधर पटकने लगी। फिर नये जोश से प्योत्र पर झपटी।

"क्यों आया है यहां? मैं पूछती हूं क्यों आया है? गांव की और छोकरियां तेरे लिए काफ़ी नहीं हैं? क्या मतलब है तेरे यहां आने का? बुलाने गयी थी मैं तुझे?"

"दूसरी छोकरियों से मुझे क्या मतलब? उनसे तो जी ऊब जाता है।" प्योत्र ने कुर्सी पर झूलते हुए उत्तर दिया। "वे बड़ी दब्बू हैं—न लड़ाई-झगड़ा, न शोर-गुल...! कुछ मज़ा नहीं आता।"

"तो तू झगड़ने आया है? तेरे मुंह से फिर शराब की बू आ रही है! पीकर आया है न धूर्त! आज हमारे दल को गल्ला ढोने के लिए पूरी बोरियां नहीं मिलीं; कोंछ में भर-भर कर गल्ला ढोया है—और तू नशा किये बैठा है! बेशरम कहीं का!"

प्योत्र हंस दिया।

"वाह, वाह! शाबास, फ्रोस्या! यही सुनने तो मैं आया था। दिन भर इधर-उधर घूमता रहा। मन उचाट हो रहा था। तब समझ में आया—कोई कमी महसूस हो रही है। क्या हो सकती है? यकायक याद आया—हफ्ता भर हो गया फ्रोस्या से लड़ाई नहीं हुई। बस, मैंने सोचा, चलो फ्रोस्या के यहां थोड़ा मज़ा ले आयें! अब चालू हो जा! शुरू कर दे! मैं इसी के लिए तो आया हूं!"

"क्या कहने हैं तेरे! इसी में मज़ा आता है तुझे—झगड़ा करने में..." फ्रोस्या की फुफकार में अब पहले जैसा ज़ोर नहीं था। फिर वह मुस्करा दी और मिठाई खाने के लिए पास ही बैठ गयी।

कनखियों से प्योत्र की ओर देखते हुए उसने दो मिठाइयां उड़ा लीं! उसे प्योत्र के चेहरे पर छाया निर्भयता और हंसी का भाव बहुत प्यारा लग रहा था। उसकी ओर घूम कर उसने पूछा :

"खुम्ब के पकौड़े खायेगा?"

क्सेनोफोन्तोवना शाम को घर लौटी तो देखा कि दोनों बड़े शान्तिपूर्ण वातावरण में चाय पी रहे हैं।

सितम्बर का महीना था। फसल कटाई के दिन थे। शाम को वासिली फ़ार्म के दफ्तर लौटा। उसका दिल उत्साह और उमंगों से भरा था। फसल बहुत भर कर हुई थी। खलिहानों में काम ज़ोरों से चल रहा था। सरकार को भेजे जाने वाले अनाज की गाड़ियों का एक तांता बड़ी धूमधाम और समारोह से ज़िले को भेज दिया जा चुका था। मौसम बड़ा सुहावना था। किसानों के हौंसले ऊंचे थे। सब काम नियमित रूप से चल रहा था—या, बकौल वासिली के, "तैर" रहा था।

दफ्तर में आते ही, आदत के मुताबिक, वासिली की नजर बैरोमीटर पर पड़ी। वासिली का उत्साह लोप हो गया। चेहरे पर चिन्ता की छाया दौड़ गयी। बैरोमीटर की सुई "तूफ़ान" के चिन्ह पर थी।

वासिली का शान्त वातावरण वाला छोटा सा दफ्तर, जिसमें लाल कपड़ा बिछी मेज़ के चारों ओर कुर्सियां और बेंचें पड़ी थीं, दीवारों पर क्षेत्र के काम की सूचियां, नक्शे और रिपोर्टें लटकी हुई थीं, सहसा युद्ध के मोर्चे के केन्द्र में परिणत हो गया।

वासिली की भौहें सिकुड़ी हुई थीं और आंखें बैरोमीटर पर थीं। वह परिस्थिति को तौल रहा था। अंधड़ का मुक़ाबला करने के लिए सबको फौरन

संगठित करना था। पुरानी कार्य-सूची को रद्द करना था और फ़ौरन नयी कार्य-सूची बनानी थी। उसे तुर्त-फुर्त फैसला कर डालना था कि काम की नयी व्यवस्था क्या और कैसे बनायी जाय। बैरोमीटर की सुई ने सहसा पूरे फ़ार्म के जीवन को झकझोर दिया था। लेकिन वासिली घबराया नहीं।

ऐसे मौक़ों पर वासिली दिमाग़ काबू में रखता था। उसमें न जाने कहां की शक्ति और क्षमता आ जाती थी। उसके चेहरे की रंगत भी बदल जाती थी। लम्बी भौहों और काली सिकुड़ी आंखों के कारण उसके चेहरे पर परेशानी का भाव झलकता था, लेकिन कठिनाई की घड़ियों में उसका चेहरा नौजवानों जैसा हो जाता था और उसमें नयी आभा आ जाती थी। आन्द्रेई के शब्दों में उसका चेहरा 'अतामान' जैसा लगने लगता था।

परिस्थिति को जांचने पर वासिली को याद आया कि सबसे ज्यादा खतरा अल्योशा के खेतों को है। उन खेतों में अनाज की बालें भारी होने के कारण यों भी झुकी हुई थीं। अनाज खूब पक गया था; झड़ने वाला था।

वासिली ने खिड़की से बाहर देखा। कुछ दूरी पर लुबावा दिखाई दी। उसने लुबावा को बुलाया।

"देखो लुबावा, सुई बता रही है कि ज़ोर का आंधी-पानी आने वाला है। सबको दो नम्बर सेक्शन—अल्योशा के खेत पर—भेजो। वहां फसल खूब अच्छी हुई है और पक भी गयी है। मुझे डर है कि पानी में कहीं सत्यानाश न हो जाय। खलिहानों और गोशाला के सब लोगों को और गांव से बच्चों को भी बुलाकर उस खेत पर तुरंत भेज दो! रात भर में, आंधी-पानी आने से पहले, दो नम्बर और पांच नम्बर के खेत समेट लेना ज़रूरी हैं। पहले अल्योशा के खेत पर काम शुरू कर दो।"

लुबावा के रूखे चेहरे पर चमक आ गयी। हालांकि उसके दल को उसकी प्रतिद्वन्दी फ्रोस्या की मदद के लिए भेजा जा रहा था, पर उसने कोई आपत्ति नहीं की। सिर्फ़ इतना बोली :

"अंधेरे में काम कैसे होगा, वासिली कुज़मिच?"

"लालटेनें हैं हमारे पास। जला लेंगे। तुम चलो। वक्त बरबाद मत करो। दस मिनट में मैं भी पहुंचता हूं।"

लुबावा चली गयी।

सर्गी-सार्जेंट सामने से जा रहा था।

"सर्गी!" वासिली ने खिड़की से पुकारा।

दफ्तर में आ, फौजी ढंग से एड़ियां खटकाकर मुस्कराते हुए सर्गी ने कहा :

"हुकुम कप्तान?"

"देखो, दोस्त ! ज़ोर का आंधी-पानी आने वाला है। बैरोमीटर की सुई यही बता रही है। मालूम होता है, फिर ज़ोर का पानी पड़ेगा। भयानक गर्मी है ! है न ? दिन में फसल की कटाई और पूले बंधाई होगी, रात में ढो-ढोकर खलिहान पहुंचानी होगी। तुम अपना दल लेकर फ़ौरन पहुंच जाओ।"

"मुझे कोई उजर नहीं," सर्गी बोला, "लेकिन अवदोत्या तिखोनोवना क्या कहेंगी ?"

थोड़ी देर तो वासिली की समझ में ही न आया कि सर्गी किसका ज़िक्र कर रहा है।

फिर यकायक उसे याद आया कि यह "अवदोत्या तिखोनोवना" और कोई नहीं, उसकी पत्नी—अवदोत्या—ही थी। अवदोत्या के प्रति इस तरह की अनुभूति उसके लिए कोई नयी चीज़ न थी। लेकिन उसकी आवृत्ति से उसका विचार बदलता न था। अवदोत्या के प्रति अपने पुराने विचार उखाड़ फेंकने में वह सफल न हुआ था।

सर्गी के विचार में अवदोत्या, जो किसी ज़माने में वासिली की पत्नी थी और जो अब पशुशाला की मैनेजर थी, वासिली से अधिक योग्य और कार्य-कुशल थी।

वासिली को सर्गी की बात अच्छी नहीं लगी। भौहें चढ़ाकर उसने पूछा : "मैं तुम्हारा प्रधान हूं कि नहीं ?"

"अरे मैं इससे इनकार थोड़े ही कर रहा हूं, वासिली कुज़मिच। बात सिर्फ़ यह है कि अवदोत्या की तदबीज कुछ और है। हमारे दल को उन्होंने घास के खेत पर लगाया है।"

अवदोत्या ने पशुशाला को मिली ज़मीन पर घास का खेत भी तैयार कर लिया था।

"भाड़ में जाय तुम्हारा घास का खेत।" वासिली झल्ला उठा।

सर्गी-सार्जेंट वासिली की झल्लाहट पर मुस्करा दिया, पर अपनी जगह से डिगा नहीं।

"अवदोत्या ही बता सकती हैं कि हमें क्या करना चाहिए !"

"वह होगी घास के खेतों में। मैं उसके आने का इन्तज़ार नहीं करने का। तुमसे मैं जो कह रहा हूं, सो करना है ! तुम अल्योशा के खेत पर जाओ ! समझे ? एक-दो-तीन ! चल दो !"

सर्गी तो चला गया पर वासिली के मन में उलझन पैदा हो गयी। अवदोत्या को वह सदा अपना ही एक हिस्सा समझता था, जैसे वह उसी के शरीर का कोई अंग हो। इस विचार ने उसके मन में ऐसा घर कर लिया था कि अब, जब वे दोनों अलग-अलग रहने लगे थे, तब भी वह इस विचार से पूरी तरह

छुटकारा न पा सका था। किसी आदमी की कोई बांह "खराब हो जाय", काम न दे, या काटकर बिलकुल अलग कर दी जाय तो दुख तो होता है पर बात समझ में आती है। पर यह बांह शरीर से कटकर अपना अलग, स्वतंत्र, अस्तित्व जताने लगे—यह बात अस्वाभाविक और समझ से परे लगती थी।

समझ से परे वासिली को उन लोगों का अंधापन भी लगता था जो समझते ही न थे कि अवदोत्या खुद उसकी ही थी, उसकी पत्नी थी—अलबत्ता अब अलग हो गयी थी, लेकिन थी तो उसी का एक तरह से दूषित अंग। वासिली को ताज्जुब था कि लोग इस सचाई को नहीं समझते, वे उसकी पत्नी को अवदोत्या तिखोनोवना कह कर पुकारते हैं, और उसे अलग—वासिली से अलग—महत्व देते हैं।

सबसे ज़्यादा ताज्जुब की बात तो यह थी कि गोशाला में काम करने वाले अवदोत्या का वासिली से ज़्यादा अनुशासन मानते थे और वासिली से ज़्यादा उसकी इज़्ज़त करते थे।

अवदोत्या के अलग हो जाने के बाद से वासिली को कई अनोखी बातें मालूम हुई थीं। मिसाल के लिए, उसे पहली बार मालूम हुआ कि अवदोत्या बहुत कुशल मैनेजर है और फ़ार्म की गोशाला के सभी पशुओं की देख-भाल बड़ी अच्छी तरह करती है। वासिली यह तो पहले भी जानता था कि अवदोत्या काम-काज में चुस्त है। पर उसमें कोई विशेष योग्यता है, यह वासिली ने कभी सोचा भी नहीं था। अवदोत्या अच्छा काम करती थी तो—वासिली के अनुसार—इसका कारण यह था कि वह वासिली की पत्नी थी और इसलिए उसे काम बिगाड़ने का कोई अधिकार नहीं था। इसे वह एक स्वयं-सिद्ध बात मानता था।

"मैं दूसरे प्रधानों जैसा नहीं हूं कि मेरी बीवी मौज मारे," बड़े घमंड से वह कहता था, "मेरी अवदोत्या सबसे पहले काम पर जाती है और कभी मसक्कत से जी नहीं चुराती।"

अवदोत्या के परिश्रम और सुघड़ता का श्रेय वासिली अपने को देता था, न कि उसको। और इसके लिए उत्तरदायी वह अपने अद्‌भुत गुणों को समझता था, न अवदोत्या के। इसलिए अवदोत्या के काम की ओर न तो कभी उसका ध्यान जाता था और न उसने कभी उसकी प्रशंसा की थी।

वासिली से अलग हो जाने के बाद अवदोत्या का काम बिगड़ा नहीं। दरअसल, पहले की अपेक्षा वह और अच्छी तरह काम करने लगी। वासिली से यह बात छिपी न रही। हां, अब वह यह नहीं कह सकता था कि अवदोत्या की योग्यता का कारण यह है कि वह वासिली की पत्नी है। उसकी समझ ही में न आता था कि यह बात क्या है। परेशानी की इस भावना के साथ ही

अब वासिली को उसके काम की ओर ध्यान देना पड़ता और इच्छा न होने पर भी उसकी सराहना करनी पड़ती।

"लोगों से जाने कैसे काम कराती है?" वह सोचता। "इसे न तो कभी किसी पर चिल्लाते देखा है, न बिगड़ते। फिर भी इसके यहां काम सबसे ज़्यादा चुस्ती और सुघराई से होता है। सारे फ़ार्म में इसके जैसा अच्छा काम करने वाला शायद ही कोई हो!"

फ़ार्म के लोगों को अवदोत्या का आदर करते देख, जो उसने बिना लोगों को डाटे-धमकाये, बहुत चुपके-चुपके और मज़बूती से हासिल कर लिया था, वासिली को मन ही मन एक विचित्र प्रकार की ईर्षा का अनुभव होता।

वासिली चुपचाप अवदोत्या का अध्ययन किया करता। वह खोज निकालना चाहता था कि अवदोत्या की सफलता का रहस्य क्या है, ताकि वह खुद सफलता प्राप्त कर सके।

अक्सर वह अवदोत्या के बारे में सोचता रहता। अपने को इस दशा में पाकर उसे कुछ परेशानी और उलझन भी होती।

सर्गी-सार्जेंट की बातों से ये ही विचार उसके मन में फिर उभर आये थे। पर इस समय बैठकर किसी बात पर सोचने का उसके पास समय नहीं था—उसे तुरंत ही काम का संगठन करना था और अलग-अलग खेतों के लिए अलग-अलग टीमें भेजनी थीं।

वासिली खलिहान के मंड़ाई विभाग से फोन मिलाने की कोशिश कर रहा था। तभी अवदोत्या दफ्तर में आई और मेज़ के पास चुपचाप खड़ी हो गयी। वासिली के बातें समाप्त कर लेने तक वह चुपचाप खड़ी रही। फिर सीने पर दोनों हाथ बांधकर बोली:

"यह क्या तरीका है, वासिली कुज़्मिच? मैं गोशाला की मैनेजर हूं या नहीं?"

"कौन कहता है, तुम मैनेजर नहीं हो?"

"तुम और कौन! अपने आदमियों को मैं एक जगह भेजती हूं, तुम उन्हें दूसरी जगह भेज देते हो—बिना मुझसे पूछे! यह कैसा तरीक़ा है?"

"पर मैं तुम्हें कहां ढूंढ़ने जाता? मुझे बताया गया कि तुम घास के खेत पर हो। तुम्हारे आने तक बैठे रहने का मेरे पास वक्त नहीं था। देखो न, बड़े ज़ोर का आंधी-पानी आने वाला है! पल भर की देर से हज़ारों पर पानी फिर जायगा। अपने हरे चारे वाले और घास खेतों के आदमी हटाकर फ़ौरन दूसरे खेतों पर भेज दो।"

"हरे चारे वालों को तो मैं भेज सकती हूं, लेकिन घास के खेतों से मैं

आदमियों को हटाने के लिए तैयार नहीं हूं।" अवदोत्या के खड़े होने के ढंग से और उसके भोले-भाले धूप से तपे चेहरे से दृढ़ता का भाव झलक रहा था।

वासिली अवदोत्या के चेहरे की ओर देखता रह गया; कुछ उत्तर नहीं दे पाया। कुछ दिन पहले तक, जब कभी कोई कहता कि अवदोत्या के चेहरे पर रौनक आ रही है या यह कि अवदोत्या का चेहरा उतरा हुआ है, तो वासिली की कुछ समझ में न आता। उसके लिए वह न तो सुन्दर थी, न बदसूरत। वह तो बस उसकी दुन्या थी, जिसके शरीर के प्रत्येक तिल-मस्से से उसका परिचय और प्यार था।

अब भी वासिली यह नहीं सोच पाया था कि अवदोत्या सुन्दर है या नहीं—वह सिर्फ़ यह जानता था कि उसका चेहरा बहुत प्यारा है। अब अवदोत्या के चेहरे से, पिछले कई महीनों तक बना रहने वाला, भय और कातरता का भाव मिट चुका था।

अब उसका चेहरा निर्भीक और निश्चिन्त दिखाई देता था। सहसा अवदोत्या के शान्त चेहरे पर दुख की मलिनता छा गयी! लगता था कि गोशाला के बारे में वह सब कुछ भूल गयी है। उसकी आंखें वासिली के सीने पर थीं और इन आंखों में आर्द्रता थी।

"क्या देख रही है?" वासिली ने गले के पास हाथ फेरा। तब समझ में आया कि एक टूटा हुआ बटन धागे से लटक रहा है। हालांकि अवदोत्या के मन में वासिली से अलग हो जाने का कोई दुख नहीं था और वह अपने निर्णय को उचित मानती थी, फिर भी वासिली की "अस्तव्यस्तता" देखकर उसके दिल को चोट लगी।

दोनों की आंखें चार हुईं। एक लहमें में वे एक-दूसरे के मन की बात भी भांप गये। एक-दूसरे के प्रति दोनों के हृदय क्षण भर को उमग उठे। लेकिन, यह केवल क्षण भर को ही हुआ।

वासिली ने बटन को तोड़कर जेब में रख लिया। अवदोत्या ने बच्चों की तरह हकबका कर बातें करने के लिए मुंह खोला। क्षण भर के लिए रुक गयी। बातचीत फिर शुरू हो गयी।

"नहीं, यह नहीं होगा। तुम हरे चारे और घास के खेतों के आदमियों को तुरंत भेज दो। इसमें बहस की ज़रूरत नहीं। हफ्ते भर बारिश हो गयी तो फसल चौपट हो जायगी। यह बात तुम्हारी समझ में नहीं आती?"

"वास्या ..." अवदोत्या के मुंह से निकल गया, पर तुरंत अपने आपको सम्भालकर बोली, "वासिली कुज़्मिच, इससे तो घास का खेत बरबाद हो जायगा। उसका भी तो दाना पक चुका है। खेत काला पड़ रहा है। तुम चाहे

जो कहो, मैं घास के खेतों से आदमी नहीं हटाऊंगी। ये खेत मेरे लिए सोने से भी ज़्यादा कीमती हैं।"

"अभी कहां पके हैं तुम्हारे खेत? बारिश से उनका कुछ नहीं बिगड़ने का। यहां तो अनाज बरबाद हो जायगा, और तुम...।"

"कौन कहता है नहीं पके हैं? मैं कहती हूं पक कर दाना काला पड़ रहा है।"

वालेंतिना भी आ पहुंची। उसने भी अवदोत्या का समर्थन किया।

"फिर वही!" वालेंतिना ने परेशानी से हाथ फैलाते हुए कहा। "मैं तो जानती थी। सब जगह वही। बातें, बातें, बातें! समय की व्यर्थ बरबादी। फ़रवरी की प्लेनम का फ़ैसला पढ़ा था तुमने?"

"हां पढ़ा था।"

वासिली को अब सूझा कि उससे जल्दबाज़ी हो गयी थी। घास के खेतों को नजरन्दाज़ कर जाने और तुर्त-फुर्त हिदायतें जारी कर देने पर उसे अपने ऊपर खीझ आ रही थी। अल्योशा के खेत उसके दिमाग़ में इतने छा गये थे कि वह और सब कुछ भूल गया था।

चारे का महत्व वह जानता तो था, पर इसके लिए उतनी चिन्ता और दर्द उसके दिल में नहीं था जितना अनाज की फसल के लिए।

राई से वासिली को खास प्यार था। बचपन से ही वह राई के अनाज की मीठी गंध और उसके खेतों की मधुर सरसराहट से परिचित था। यह अनाज ही उसके प्रान्त की मुख्य खुराक, उसके प्रान्त की समृद्धि की रीढ़, था। इसके मुकाबले चारा नयी चीज़ थी। चारे के महत्व के बारे में उसने पढ़ा तो ज़रूर था पर इसके महत्व की बात उसके मन में समायी नहीं थी। यह वह चीज़ नहीं थी जिसे उसने स्पर्श के द्वारा अपनाया हो, देखकर अपनाया हो।"

"चारे की नजरन्दाज़ी करके फिर मैंने मुसीबत में पैर फंसा लिया।" वह सोच रहा था। "जो भी हो, चारे के महत्व की बात मेरे मन में पैठती नहीं है। कब गया था चारे के खेत देखने? कई दिन हुए। तब तक तो पका नहीं था।"

ख़ैर, भूल तो उससे हुई थी पर इसे सबके सामने मानना—और खास कर अवदोत्या के सामने मानना—उसे बहुत नागवार लग रहा था।

"वालेंतिना भला मेरी गर्दन दबाने का मौक़ा क्यों छोड़ने लगी?" वह सोच रहा था।

सचमुच ही वालेंतिना ने मौक़ा छोड़ा नहीं।

"प्लेनम के फ़ैसलों में घास-चारे के बारे में क्या कहा गया है? उसमें कहा गया है कि खेती-बारी के लिए चारे का बहुत बड़ा महत्व है—हर तरह

से बहुत बड़ा महत्व है। ढेलुवा ज़मीन के लिए यही सब कुछ है। हमारी फसलों की यह जान है। राई हमारा वर्तमान है, तो चारा हमारा भविष्य।"

वह वासिली के पीछे ही पड़ गयी थी, मानो उससे निपटने का फैसला कर लिया हो। गुस्सा आने पर वह बेमुरौवत हो जाती थी। और भी भन्ना कर बोली :

"मालूम है, राई की अपेक्षा चारे का महत्व पंचगुना अधिक है? लेकिन तुम चाहते हो कि पहले राई काटी जाय, चारा भाड़-चूल्हे में जाय। राई तो रोटी है, चारा—कूड़ा-करकट! यही बात है न? यह है तुम्हारी समझ, वासिली कुज़मिच! और अपने को तुम फ़ार्म का प्रधान कहते हो! बुद्योनी फ़ार्म में भी हालत यही है। खैर, वहां का प्रधान बेचारा कम्युनिस्ट तो नहीं है। तुम तो जेब में पार्टी कार्ड डाले फिरते हो!"

"फिर वही पार्टी कार्ड वाली बात?" वासिली आपे से बाहर हो गया। "जब देखो तो पार्टी कार्ड, पार्टी कार्ड! खूब आदत बना ली है तुमने! लकड़ी कटाई की बात हो, तो पार्टी कार्ड! चारे का सवाल हो, तो पार्टी कार्ड! सरकारी गल्ला भेजने की बात हो, तो पार्टी कार्ड! पार्टी कार्ड, पार्टी कार्ड—रटना छोड़ो। मेरे पार्टी कार्ड से तुम्हें कोई वास्ता नहीं! मेरा पार्टी कार्ड, मैं जानूं!"

"फिर मेरा वास्ता काहे से है, ज़रा सुनू तो?" वालेंतिना ने सचमुच ही विस्मय से आंखें फैलाकर पूछा। "सच पूछो तो तुम्हें रास्ते पर लाने का और कोई तरीक़ा है भी नहीं! कोई तरीक़ा है तो यही पार्टी कार्ड वाला। मैं इसे छोड़ने की नहीं। चारे की बात हो, अनाज पहुंचाने की बात हो, या खाद की बात हो—कोई भी काम हो, उसके प्रति तुम्हारा पहला उत्तरदायित्व पार्टी मेम्बर के तौर पर है। मैं तुमसे चौगुनी कृषि-विद्या की उम्मीद करती हूं—एक गुनी प्रधान की हैसियत से, और तीन गुनी कम्युनिस्ट की हैसियत से!"

वासिली क्रोध में बड़बड़ाता हुआ मेज़ का खाना खींचकर उसमें पड़ी पेंसिल, रबड़, कैंची, पैमाने खड़खड़ाने लगा। फिर उसने अपने ऊपर काबू किया और झटककर सिर ऊपर उठाया।

"घास के खेत की कितनी कटाई बाक़ी है?"

अवदोत्या की जीत हुई थी। वासिली की बौखलाहट और भी बढ़ गयी थी। पर अवदोत्या ने अपनी जीत पर गर्व नहीं प्रकट किया। धीरे से, कोमल स्वर में बोली :

"थोड़ी ही बाकी है, वासिली कुज़मिच! मुश्किल से दो घंटे का काम होगा।"

गांव के सभी लोग खेतों पर जा पहुंचे। फसल पर काम करने वाले दल, गोशाला के आदमी, तरकारी के खेतों को सम्भालने वाले, सभी पहुंच गये। स्कूल के बच्चों को लिए लेना भी खेतों पर जा पहुंची।

"मेफोदी! देख गांव को तेरे भरोसे छोड़े जा रहा हूं!" वासिली ने बूढ़े चौकीदार मेफोदी को बुला कर कहा। "गांव में और कोई नहीं है। तू अकेला आदमी है। तू दूरबीन लेकर बुर्जी पर चढ़ जा और वहां से सब ओर नज़र रखना, मौसम का भी खयाल रखना।"

मेफोदी ने वासिली का हुक्म पूरा किया। तोशा से दूरबीन लेकर वह आग से चौकसी करने के लिए बनायी गयी बुर्जी पर चढ़ गया। बुर्जी की ऊंची चोटी से नीचे सुनसान गांव फैला दिखाई देता था—जो गर्मी की धूल से ढंका हुआ था। दूर-दूर काम करती स्त्रियों की रंगीन कुर्तियां और सिरों पर बंधे रंगीन रूमाल झलक रहे थे। सूर्य डूबने को था। पर, अब भी गर्मी कम न थी। धूल भरी हवा ऐसे सन्नाटा खींचे थी कि कहीं पत्ता तक नहीं हिल रहा था। श्वास में भी धूल की गंध जान पड़ती थी। पसीना चिपचिपा रहा था। बड़ी उमस हो रही थी। वृक्षों की नीचे झुकी डालें धूल से काली हो रही थीं। आस्पन के पेड़ों के महीन-महीन पत्ते भी हवा की स्थिरता में ऐसे चुप थे मानो सो गये हों।

धीरे-धीरे एक पारदर्शी सफ़ेद पर्दे ने पूरे आकाश को ढंक लिया। अस्त होते सूर्य की ललाई और भी गहरी हो गयी।

जंगल में अंधेरा हो गया। खलिहान में बिजली की बत्तियां जल गयीं और धुंधले तारों की तरह चमकने लगीं। जंगल की ओर से आती लारियों ने भी अपनी रोशनियां जला लीं। आस्पन और चीड़ के झुरमुट अंधेरे में बदन सिकोड़े खड़े थे। केवल फर की नुकीली पत्तियां घनीभूत हवा को भालों और बर्छियों की तरह छेद रही थीं। पूर्व की ओर आकाश में एक काली पट्टी दिखाई दे रही थी। बादल चढ़ा आ रहा था। सब लोगों को खेतों में भेज कर, उनका काम अलग-अलग मुकर्रर करके, वासिली फ़ार्म के दफ्तर लौट आया था।

दफ्तर के कमरे में वासिली दोनों टांगें फैलाये और गर्दन एक ओर झुकाये खड़ा था। वह सोच रहा था कि क्या-क्या कर लिया है और क्या-क्या रह गया है। एक-एक चीज़ को याद कर वह अपनी धूप से तपी उंगलियां एक के बाद एक मोड़ता जा रहा था और कह रहा था:

"अल्योशा के खेतों में घोड़े वाली दो मशीनें कटाई पर हैं—एक बात।" उसने अपना अंगूठा मोड़ दिया। "तरकारी के खेतों वाले दल और पशुशाला के आदमियों को भी भेज दिया। अवदोत्या के साथ वे हाथों से

लुनाई कर रहे हैं।" उसने अपनी दूसरी उंगली मोड़ ली। "मातवेयेविच मंड़ाई करवा रहा है। वहां वह सम्भाल लेगा। यासनेव पूलों की ढेरी लगवा रहा है। बहुत खूब। चार फालतू गाड़ियां कटी फसल ढोने के लिए भेज दी हैं। अब तो काम पूरा कर ले जायेंगे।" उसकी पांचों उंगलियां मुड़ गयीं। उसने मुक्का ऊपर उठाया। कुछ देर तक उसे देखता रहा। फिर बादल को मुक्का दिखाकर बोला : "आजा, देखूं क्या बिगाड़ लेता है।"

लेकिन अब भी उसका मस्तिष्क शांत न हुआ था। कमरे का एक चक्कर लगाकर उसने टेलीफोन उठा कर पुकारा :

"हलो ! केन्द्रीय ! केन्द्रीय ! हद हो गयी ! अरे सो रहे हो क्या ? हलो केन्द्रीय ! ..मशीन ट्रैक्टर स्टेशन ! मुझे मशीन ट्रैक्टर स्टेशन से मिलाओ भई ! ..."

रिसीवर में प्रोखारचेंको की आवाज़ सुनाई दी।

"कामरेड प्रोखारचेंको ? तुम बोल रहे हो ? यहां मैं वासिली बोर्तनिकोव बोल रहा हूं...पहली मई फ़ार्म से ! मेरी आवाज़ ठीक सुनाई पड़ रही है ? हलो ! हां ! हमारी तरफ़ बहुत ज़ोर का बादल उठ रहा है, कामरेड ! बैरोमीटर की सुई 'तूफान' पर पहुंच गयी है। हलो ! कामरेड प्रोखारचेन्को ! मैंने सब आदमियों को खेत पर भेज दिया है। मैं चाहता हूं कि तुम कुछ भारी मशीनें भेज दो ! हलो ! हलो ! मुझे सुनाई नहीं देता ! हां...मुझे मालूम है ! योजना में इसका नम्बर पहला है...मुझे मालूम है, तीन दिन में आ रहे हो। लेकिन हमारी तो मुसीबत हो जायगी। अड़ोस-पड़ोस में अल्योशा के खेतों जैसी फसल कहीं नहीं है। तुम्हें वह खेत देखना चाहिए...! हां...! एक कम्बाइन मशीन फालतू खड़ी है ? रात में कटाई के लिए ? बस तो काम बन गया। क्या कहा ? मरम्मत होनी है ? नहीं हो सकती ? कम्बाइन चलाने वाले ट्रैक्टर ड्राइवर हैं वहां ? सिर्फ़ एक ? क्या ? तीन रात से नहीं सोया ? कोई बात नहीं ! एक रात और नहीं सोयेगा ! क्या कहा, मेहमान है तुम्हारा ? तो क्या हुआ ? अरे मेहमानी गयी भाड़ में ! मैं खुद बात कर लूं ? ठीक है। उसे टेलीफोन दो। मैं उससे बात करता हूं। कौन है वह ? क्या नाम है ?" दूसरे सिरे पर बात करने वाला चुप हो गया। फिर अस्पष्ट स्वर में कुछ बुदबुदाया। "क्या नाम है उसका ? मैं नाम पूछता हूं।" वासिली चीखा। "स्तेपान मोखोव...! अच्छा...! हां..." वासिली की ज़बान लड़खड़ा गयी। "क्या और कोई नहीं है ? अच्छा खैर ! उसी को भेज दो !"

वासिली ने टेलीफोन रख दिया। फिर उठते बादल पर नज़र गड़ाये सोचने लगा :

"क्या मुसीबत है ! फसल बोकर हम पानी के लिए आंखें बिछाये रहे तो एक बूंद पानी नहीं गिरा। अब फसल पककर तैयार खड़ी है तो न जाने कहां से यह बादल उमड़ आया। इधर आंधी-पानी आने को है, फसल जहां की तहां है, उधर मशीन-ट्रैक्टर-स्टेशन में बस एक आदमी रह गया है स्तेपान, वह भी मेहमान बना बैठा है ! बड़ा अच्छा मौक़ा मिला मेहमानी करने का ! उससे कैसे बातें करूंगा ? वह नहीं आयेगा ... ! खेतों पर नहीं जायेगा। लेकिन इनकार भी तो नहीं कर सकता ! उसे सब हालत समझा दूंगा। जायेगा क्यों नहीं ? ज़रूर जायेगा !"

टेलीफोन की घंटी बजी। वासिली ने उठाकर सुना। परिचित आवाज़ सुनाई दी : "हलो !"

वासिली एक बार खांसा और परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार होकर बोला :

"हलो ! स्तेपान निकितिच ... ?"

"हलो ! वासिली कुज़मिच ! क्या हाल है ... ?"

वासिली चुप रह गया। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहे।

"कैसे बातें शुरू करूं ? उसके ऊपर बरस पड़ूं ? मदद के लिए गिड़-गिड़ाऊं ? यह सब क्यों ? सीधी बात कहूंगा !"

"सुनो, स्तेपान निकितिच ! बात यह है कि हमारे इधर बड़े ज़ोरों का बादल उठ रहा है। बैरोमीटर की सुई बता रही है कि तूफ़ान आने वाला है। हमारे यहां फसल की कटाई पूरे ज़ोरों पर है। अल्योशा के खेत की कटाई आधो-आध पर है। राई बिलकुल झड़ने को है। हम जल्दी न करते, लेकिन डर है कि कहीं झड़ी लग गयी तो सब चौपट हो जायगा। खास तौर से अल्योशा के खेतों की चिन्ता है। क्या आज रात आकर कुछ मदद कर सकते हो ?"

कुछ देर तक चुप्पी रही। वासिली रिसीवर को मुट्ठी में जकड़े खड़ा था। आखिर स्तेपान की आवाज़ सुनाई दी :

"कम्बाइन मशीन बिगड़ी हुई है। कोई बड़ा नुक्स नहीं है ! मैं अभी देखता हूं। ठीक करने में घंटे भर के करीब लग जायगा। रास्ता भी एक घंटे से कम का नहीं है। दो घंटे बाद ही पहुंच सकूंगा !"

"खैर, ठीक है। मैं तुम्हारा इन्तज़ार करूंगा, स्तेपान निकितिच !"

दो घंटे बाद वासिली दफ्तर से उठकर खेतों की ओर चल दिया। वह पास के टीले की चोटी पर चढ़ गया और वहां से चारों तरफ़ नज़र दौड़ायी। काले बादल से ढंके आकाश के नीचे जगह-जगह रोशनी दिखाई दे रही थी। पहली मई फ़ार्म के खलिहान में और पड़ोस के एक दूसरे फ़ार्म के

खलिहाल में काफ़ी तेज़ रोशनी थी। लालटेनों के प्रकाश में पूलों के ऊंचे-ऊंचे तिकोने ढेर दिखाई दे रहे थे। कटाई की मशीनों में लटकी और पूले बांधने वालों के हाथों में हिलती-डुलती लालटेनें इस अंधेरे में इधर-उधर उड़ते जुगनुओं जैसी लग रही थीं। तेज़ रोशनियों वाली लारियां दौड़ती हुई निकल जातीं थीं।

खेतों में बत्तियां इधर-उधर चमक रहीं थीं। ऐसा लगता था जैसे कोई उत्सव मनाया जा रहा हो। पूरब से गर्दभरी, तेज़ हवा के झोंके आने लगे! आस-पास के जंगल सरसराहट से गूंज उठे। वासिली को दूर से आती एक कम्बाइन मशीन की रोशनी दिखाई दी। वह संभल गया। कम्बाइन तो अभी दिखाई नहीं दे रही थी, पर उसकी तेज़ बत्तियों और बल्बों का प्रकाश अंधेरे को बेधता, लहलहाती फसल और सड़क की सफेद पट्टी को उजाले से नहलाता, आगे बढ़ रहा था।

"मशीन आ रही है!" गहरी सांस खींचकर वासिली ने सोचा।

सहसा आगे बढ़ती बत्तियां रुक गयीं। वासिली तेज़ कदमों से उन्हीं की ओर चल पड़ा। कम्बाइन के पास पहुंचा तो उसने देखा कि स्तेपान सड़क के किनारे की झाड़ियों की तरफ से उसके पास आ रहा है।

अंधेरे में भी वासिली उसे तुरन्त पहिचान गया। स्तेपान के झुके कंधों और गढ़े में धंसे गालों को देखकर नहीं, बल्कि अपने हृदय की तेज़ धड़कन सुनकर!

"कौन है?" स्तेपान ने पूछा।

"ओहो! स्तेपान निकितिच?"

"कौन? वासिली कुज़मिच?"

उस पुरानी घटना के बाद आज पहली बार वे फिर एक-दूसरे से अंधेरे में मिले थे। स्तेपान ही पहले बोला:

"मैंने सोचा कि रास्ते से तुम्हारे आदमियों को भी लेता चलूं। मेरे साथ तो कोई आदमी आया नहीं। मैं अकेला ही चला आया हूं!"

"हमारे आदमी भी काम दे जायेंगे। यहीं उस टीले के पीछे कहीं हैं!"

"मैं उनसे आने को कह आया हूं। सुन रहे हो न? शायद वे ही लोग आ रहे हैं।"

अंधेरे में से लोगों के समीप आने की आवाज़ें आ रही थीं। स्तेपान फिर कम्बाइन पर जाकर बैठ गया। उसने स्टियरिंग चक्का सम्भाल लिया। लालटेन के उजाले में उसका शांत और गम्भीर चेहरा स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

स्तेपान की ओर देखता वासिली सोच रहा था: "फिर मुलाकात हो गयी!" परेशानी के उन दिनों में जब वासिली अकेलेपन से घबराकर शराब

पी-पीकर सो जाने की कोशिश किया करता था तब स्तेपान के प्रति घृणा उसे रह-रहकर कुरेदती थी और वह क्रोध से पागल हो उठता था :

"उस धूर्त, अपाहिज आदमी ने तो हमारा जीवन बरबाद कर दिया है। कौन सा गुण दिखाई पड़ता है अवदोत्या को उसमें ? एक ही घूंसा पड़ जाय तो काम तमाम हो जाय। कोई आदमी में आदमी है ! कहीं सूने में ले जाकर कह दूं : दो के लिए इस दुनिया में जगह नहीं है। या तो तू रहेगा या मैं !"

धीरे-धीरे गुस्सा शांत हो जाने पर उसके मन के ये गुबार भी बैठ गये थे। फिर भी स्तेपान से दुबारा मुलाकात का खयाल आने पर वासिली के मुंह से उसके लिए जली-कटी निकलने लगती थीं।

अब दोनों फिर आमने-सामने खड़े थे ! अंधेरे में ! इस सुनसान खेत में ! जो मन में आये वासिली कह सकता था। कोई सुननेवाला नहीं था। यही मौक़ा था कि वह मन की पूरी कर ले ! दिल के गुबार निकाल ले ! स्तेपान ने उसकी ज़िन्दगी में जो आग लगायी थी उसकी उसे उचित सज़ा दे दी जाय ! कोई देखने वाला नहीं था !

"मेरा खयाल है, बारिश शुरू होने से पहले फसल काट लेंगे।" स्तेपान बोला।

"हां कट जायगी !" हवा के झोंके से टोपी के नीचे दबे वासिली के बाल लहरा उठे। "तुम चले आये, बड़ा अच्छा हुआ। शुक्रिया !"

" शुक्रिया की क्या ज़रूरत ! ऐसी अच्छी राई की तरफ लापरवाही थोड़े ही की जा सकती है !"

"हां, बड़ी अच्छी फसल हुई है !"

फ़ार्म के किसान आ पहुंचे। स्तेपान ने उन्हें कम्बाइन मशीन पर बैठा लिया। मशीन धीरे-धीरे चल पड़ी। वासिली पैदल ही साथ चल दिया। मशीन की बत्तियों के प्रकाश के इधर-उधर छाया अंधेरा और भी घना मालूम हो रहा था।

"पानी की ज़रूरत पड़ेगी !" वासिली को स्तेपान की आवाज़ सुनाई दी।

"अभी कुछ पानी पहुंचाये देता हूं। तेल तो कम नहीं पड़ेगा ?"

"तेल काफ़ी है।"

"क्या कोयला गिराते जाओगे ?"

"घोड़े बिदकेंगे तो नहीं ?"

"कुछ तो नहीं बिदकेंगे। ज़रा दियासलाई दोगे ?"

स्तेपान बैठने की गद्दी से उतर आया और नीचे झुक कर जेब से माचिस

निकाल कर वासिली को दे दी। पल भर के लिए दोनों की आंखें चार हो गयीं। दोनों में थोड़ी सी ही दूरी थी।

"अच्छा तो मैं पानी का इन्तज़ाम करता हूं, स्तेपान निकितिच! कुछ घोड़े भी ऐसे ले आऊंगा जो बिदकें नहीं। कुछ और चाहिए?"

"नहीं! और कुछ नहीं चाहिए!"

"अच्छा! तो मैं जाता हूं, स्तेपान निकितिच!"

"अच्छा, वासिली कुज़मिच!"

वासिली ने चाहा कि चलते समय स्तेपान से हाथ मिलाये। लेकिन स्तेपान उचक कर अपनी जगह पर जा बैठा था और उसके दोनो हाथ स्टियरिंग चक्के पर थे।

मशीन अपनी जलती आंखों से अंधकार को बेधती हुई धीरे-धीरे आगे बढ़ चली।

खेतों में रात भर काम होता रहा। बादल ने एक छींटा दिया। फिर हवा के ज़ोर से उड़ गया। बादलों के कुछ हलके टुकड़े आकाश में इधर-उधर छाये रहे। लेकिन किसान बिना उनकी चिन्ता किये काम पर जुटे रहे।

वासिली अंधेरे में मुस्कराता हुआ सड़क पर चला जा रहा था।

तीन दिन का काम एक दिन में पूरा हो गया था। पकी राई और जौ की फसल काट कर खलिहान में लगा दी गयी थी। अब वर्षा होती भी तो कोई डर नहीं था। झूठे शोर-गुल ने नुकसान की जगह फ़ायदा ही किया। किसानों ने सब काम तुरन्त पूरा कर डाला। मैनेजर अच्छा हो तो फसल की मड़ाई के वक्त वह उमड़ते बादलों का भी फ़ायदा उठा सकता है। वासिली को लग रहा था मानो उसने आकाश से आती विपत्ति को भी पराजित कर दिया है।

सिर उठाकर वासिली ने खलिहान की ओर देखा। तेज़ कदमों से वह उस ओर चल पड़ा। खलिहान ही वासिली के सुख और गौरव का स्रोत था। उसे इस पर इतना गर्व था कि लोगों के सामने इसकी प्रशंसा में वह कुछ कह न पाता। इसका प्रसंग आते ही उसका स्वर गदगद हो जाता था। फ़ार्म में कोई भी मेहमान आता तो वासिली उसे सबसे पहले यह खलिहान ही दिखाता। यों तो फ़ार्म में गर्व करने लायक बहुत सी बातें थीं—खेतों में पैदावार की बढ़ती, गोशाला के खूब स्वस्थ पशु, अधिक काम कर सकने की प्रतियोगिता, "काम के नये रेकार्ड"। लेकिन उनके बारे में शायद कहीं कुछ सन्देह हो। हां, नया खलिहान ज़रूर एक चमत्कार था। वह एक ऐसी चीज़ था जिसके बारे में शंका और सन्देह की गुंजाइश नहीं थी। काले घटाटोप आकाश के नीचे बिजलियों के प्रकाश में जगमगाता, मशीनों की गूंज में डूबा, मन को

सहसा मोह लेने वाला खलिहान मानो वासिली से कह रहा था : "यह देखो ! यह हूं मैं !" वासिली के कदम और भी तेज़ हो गये।

वासिली खलिहान के भीतर आया तो देखा कि सब काम ठीक और पूरी रफ्तार से चल रहा है। मड़ाई की मशीनें, गल्ले को छानकर मोटा और महीन गल्ला छांट देने वाली मशीनें, तेज़ी से चल रही थीं और साफ-सुथरे गल्ले के दाने प्रकाश में चमकते हुए गिर रहे थे। बिजली की रोशनी में मशीनों के पुर्जे और दीवार पर संगमरमर का स्विच-बोर्ड खूब चमक रहे थे। खूब तेज़ घूमते पहियों पर पट्टे झूल-झूलकर चल रहे थे और मशीनों के नीचे लगी बोरियों में गल्ला पानी के झरने की तरह गिर रहा था।

वासिली को याद आया—अभी कुछ दिन पहले पुराने ढंग के खलिहान में ज़रा से गल्ले की मड़ाई कितनी कठिनाई से हो पाती थी, गल्ले की छोटी-छोटी ढेरियां लगा-लगाकर उसे समेटा जाता था और उस गल्ले में भी जैसे जान नहीं थी। उपेक्षा की मुस्कान से उसके होंठ फैल गये। उसे यह याद करके ही ऊब लगती थी कि अनाज कितने धीरे-धीरे, कितनी सुस्ती से गिरता था। लेकिन, अब तो यहां बिजली से काम होता था। अनाज में सहसा जैसे जान आ गयी हो, उसमें अपूर्व गति और उल्लास आ गया हो। मंड़ाई की मशीन—जो बिजली से चलती थी—बड़ी अच्छी लगती थी। उसकी गूंज इतनी गहरी थी कि पास खड़े होकर बात नहीं सुनी जा सकती थी। ऐसा लगता था जैसे पानी में पत्थर गिराये जा रहे हों। उस पर काम करने वाले लोग केवल मुस्कान और आंखों के संकेतों से ही बातें कर रहे थे। बीच-बीच में उनके होंठ भी हिलते थे। पर उनकी बातें नहीं सुनाई देती थीं।

बुयानोव बारी-बारी से सब मशीनों पर सरसरी नज़र डालता हुआ इस तरह घूम रहा था जैसे कोई कमांडर अपनी सेना की शक्ति को देखकर संतोष प्रकट करता है। बुयानोव का चेहरा और कपड़े गर्द और भूसी से ढंके थे, पर कमीज़ खूब अच्छी तरह लोहा की हुई थी और नकटाई की गांठ भी चुस्त थी। उसकी ओर देख वासिली ने सोचा : "इस आदमी को अपने महत्व का ज्ञान है !" दोनों एक-दूसरे के पास आकर रुक गये। किसी ने एक शब्द नहीं कहा। दोनों प्रसन्न थे। दोनों एक-दूसरे को समझते थे।

अनाज की मोटी धार झरने की तरह गिर रही थी। गल्ले के गुलाबी-सुनहरे दाने बिजली के प्रकाश में खिलखिलाते जान पड़ते थे। भूसे के छिलकों की कैद से छूटकर खुशी से हंसते हुए वे मशीन पर काम करने वालों के हाथों और बेल्चों से निकल कर तेजी से भागे जा रहे थे। वासिली खड़ा इन सजीव दानों की ढेरी को देखता रहा। फिर खुशी से उतावले होकर उसने

पुट्ठे तक अपना हाथ ढेरी में धंसा दिया। फिर वह मशीन के मुंह की तरफ गया। बड़े ज़ोर की भभकी लगी और चुभती भूसी उसके मुंह पर आ गिरी, साथ ही राई की रोटी का थोड़ा जायका भी आ गया। सभी लोग बड़ी लगन और उत्साह से काम कर रहे थे। मशीन के ऊपर मातवेयेविच खड़ा था। उसके सामने पूले आते जा रहे थे और वह पूलों को दोनों हाथों से उठाकर मशीन के मुंह में डालता जा रहा था। गरजती-चीखती मशीन के होंठ सब कुछ समेटते जा रहे थे। मातवेयेविच बड़ी सधी गति से काम कर रहा था। पहले दायीं ओर बाहें पसारकर वह पूले लेता, फिर बायीं ओर घूमकर उन्हें मशीन के मुंह में डालता। दायें से बायें, बायें से दायें—उसकी मज़बूत, कसी हुई, चुस्त बाहें अथक गति से काम कर रही थीं। दाहिनी ओर से लगातार अनाज के पूले उड़-उड़कर ऊपर आते, फिर बायें, मशीन के मुंह में, चले जाते।

मातवेयेविच के पास ही मशीन के निचले हिस्से पर वालेंतिना खड़ी थी। उसकी बड़ी-बड़ी आंखें चमक रही थीं। बालों में राई की बालें उलझी हुई थीं। मुस्कान को दबाये रखने के लिए उसके होंठ भिंचे हुए थे। वासिली को देखकर वालेंतिना अपने घुटनों को झूल देकर नीचे कूद आई। फिर अपने हाथ और भौंहें हिलाते हुए छोटा सा मुंह खोलकर उसने खूब ऊंचे स्वर में वासिली से कुछ कहा। वासिली समझ नहीं पाया। अपनी बात मशीन की गड़गड़ाहट में डूब जाने पर उसे बड़ी खीझ हुई। उलझन से हाथ हिलाकर, सिर झटक कर रह गयी। खीझ में सिकुड़ती हुई भौंहें मुस्कान से फिर फैल गयीं। राई की एक बाल उसके कान के पास ऐसे झूल रही थी जैसे कान की बाली हो। वासिली उसे दरवाज़े की ओर ले गया। यहां दोनों एक-दूसरे की बात समझ सकते थे।

"ढाई टन!... ढाई टन!" वालेंतिना ने गल्ले की धूल से सना हुआ हाथ वासिली की आंखों के सामने उठाकर बताया। "ढाई टन! अल्योशा के खेत की सारी फसल की कटाई हो गयी है। ढाई टन गल्ला निकला है। भला सोच सकते थे? अब लगता है कि सब कुछ हो सकता है। ज़रा अल्योशा की राई के दाने तो देखो—कैसे मोटे-मोटे हैं, जैसे सेम के बीज! देख लिया न? सूखा भी पड़ा। अंधड़ और बेमौसम की वर्षा भी आई। पर हमारा क्या बिगाड़ सके? ढंग मालूम हो तो आदमी का क्या बिगड़ सकता है!"

दूसरे लोग भी आ गये और वासिली और वालेंतिना को घेरकर खड़े हो गये। सब एक साथ बोल रहे थे, एक साथ चिल्ला रहे थे! गल्ले के दाने हाथ में लेकर पुलक से वे एक-दूसरे को दिखा रहे थे और दानों को दांतों से दाब कर कुटक रहे थे।

लेना भी एक ओर खड़ी थी। लड़कियों जैसे कपड़े न पहने होने के कारण वह दुबली लग रही थी। इस समय उसके होठों पर मुस्कान थी। अनाज

के इन अम्बारों के बीच, जहां लोगों के लबों पर अल्योशा का नाम था और जहां लोग अल्योशा की फसल की बड़ाई करते नहीं अघाते थे—लेना के हृदय में आल्हाद भी था और पीड़ा भी। लोगों को लगता जैसे अल्योशा की मुस्कराती आंखें, सफ़ेद कोयों में भूरी चमकदार पुतलियां और लाल होठ—इन्हीं मशीनों और अनाज के ढेरों के पीछे चमकने वाले हैं।

यह खुशी भरा शोर-गुल! अनाज के दानों की यह धारा जिसे अल्योशा ने अपने हाथों बोया था!—लेना के दिल में एक अजीब गुदगुदी पैदा हो गयी। उसे लगा जैसे अल्योशा ही उसे मिल गया है। यह मिलन कोई और नहीं देख पा रहा था।

लेना के उदास चेहरे और मुस्कराते होठों की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। सभी उससे कोई न कोई बात कह कर, मुस्करा कर, उसका दिल बहलाने की कोशिश कर रहे थे। वालेंतिना उसके पास आकर बोली:

"लेनोच्का! लारी में गल्ला लद गया है। गाड़ी गांव जा रही है। तू जायेगी उसमें?"

"नहीं, अभी नहीं। अभी कुछ देर और यहां रुकूंगी।"

"यह मेरे साथ मशीन में पूले डालेगी।"

मातवेयेविच ने झुककर लेना का हाथ पकड़ा और उसे ऐसे ऊपर खींच लिया मानो उसमें कुछ बोझ ही न हो।

फ्रोस्या अंधेरे से दौड़ी हुई वासिली के पास आई और हांफती हुई बोली:

"वासिली कुज़मिच...ओ वासिली कुज़मिच! अल्योशा का दूसरा खेत भी आधा हो गया। स्तेपा चाचा वीरा के खेत में जाने को तैयार हैं। तुम कहीं और भेजना चाहो तो दूसरी बात है।"

"वीरा वाले खेत चलो। मैं अभी आ रहा हूं।"

फ्रोस्या एक ही छलांग में खलिहान के दरवाजे से बाहर होकर अंधेरे में विलीन हो गयी। वासिली और बुयानोव अब भी अनाज की धारा को देख रहे थे—यही उनका श्रम और उसका पुरस्कार था, उनका भूत और भविष्य था, उनकी शक्ति और उनका संगीत था। इसे देखते उनकी आंखें नहीं अघाती थीं।

*

तीसरा भाग

१. "पुरानी बातें नये सिरे से"

अक्तूबर में सब ओर दूसरा ही रंग था। कभी सूर्य की गरमी से नंगे खेत तप उठते। कभी उत्तरी हवा के झोंकों से नीले आकाश में बादल भागते फिरते। रात में खूब ओस और पाला पड़ता। पेड़ों से झड़े सूखे पत्ते पाले से ढंक कर ऐंठ जाते। तेज़ धूप हो या बादलों की छांह, धरती आराम करती रहती। नास्त्या ने शरद की फ़सल के लिए ज़मीन जोत डाली थी। जुते हुए खेत काली मखमल से लगते थे। उन पर शरत की फसल के अंकुवे ऐसे लगते थे जैसे मखमल पर रेशम का काम किया गया हो। इस हरियाली में वसंत की ताज़गी थी। जंगलों और चरानों में घास पीली पड़कर मुरझा गयी थी। सूरज की गरमी में झुलस कर घास इतनी लाल पड़ गयी थी जितनी पहले कभी नहीं हुई थी। धूप और बरसात में, समय की मार से मुरझा कर, वह काली पड़ गयी थी और अब धरती पर इस तरह झुकी जा रही थी मानो उसी में मिल जाना चाहती हो, उसी में समा जाना चाहती हो, उसे ही समृद्ध बनाना चाहती हो।

पतझड़ और पाले से झाड़-झंखाड़ जल जाने के कारण जंगल अब विरल हो गये थे। बादल न होने पर पत्ते-झड़ी शाखाओं के बीच से नीला आकाश दिखाई देता था। शाखाओं से लटके पीले पत्तों की कोरें सूख कर ऐंठ गयी थीं। पत्तों का रंग सुनहला हो गया था। डंठलों से लटके वे नन्हीं-नन्हीं नावों जैसे लगते थे। अपने स्थान से टूट कर हवा में लहराते हुए वे धरती पर आ टिकते। फिर हवा का एक झोंका उन्हें जंगलों और खेतों की ओर उड़ा ले जाता। सूखे पत्तों का मरमर ऐसा लगता मानो मातम मना रहे हों। कभी कोई सूखा पत्ता हरे अंकुरों से भरे खेतों में पहुंच जाता। हरियाली के बीच उसका

सुनहरा रंग और भी निखर उठता। मृत्यु के गौरव से, अधिक नये जीवन की अजेयता मुखर हो उठती।

अक्तूबर के शुरू में ही किसानों को गल्ला बांट दिया गया। बरसों से किसानों को इतना गल्ला नहीं मिला था। वासिली ने बड़ी धूम-धाम से यह समारोह मनाने की व्यवस्था की थी। वित्तीय वर्ष समाप्त होने से पहले ही अलग-अलग सब हिसाब कर लिया गया था। सरकारी हिसाब चुकता करने के बाद सामूहिक किसानों को उनका हिस्सा मिलना शुरू हुआ। गल्ले और दूसरे माल से लदी गाड़ियों का तांता लग गया। खलिहान से घर की बखारों तक गाड़ियां ही गाड़ियां! रसोइयों से दिन भर धुआं उठा करता। गांव से गुजरने पर किसी घर से परौठों की, तो कहीं से भुने मांस की और कहीं से ताज़े शहद की महक आती। यही गांव में सगाइयों और ब्याहों का मौसम था। सर्गी और क्सेन्या का अरसे से साथ हो गया था। लेकिन लोगों के सामने मिलने-जुलने में उन्हें शर्म आती। दूसरों के सामने वे एक-दूसरे से बोलते तक नहीं, एक दूसरे को नज़र उठाकर देखते तक नहीं। अब, जब उनकी सगाई की घोषणा कर दी गयी थी, तो दोनों और भी शरमाने लगे थे।

मज़दूरी के हिसाब से जिसका जितना बनता था, उतना दे दिया जाने के बाद अधिक परिश्रम करने वाले दलों को विशेष मज़दूरी देने का दिन निश्चित किया गया। किसानों को युद्ध से पहले तो बढ़िया मज़दूरी मिली थी, लेकिन योजना से अधिक पैदावार के कारण बढ़ती मज़दूरी पाने का यही पहला मौक़ा था। वासिली ने इतवार के दिन जलसे का आयोजन किया।

उस दिन सुबह से ही खलिहान और गोशाला के मैदान में फ़ार्म की गाड़ियों की पांत लग गयी थी। गाड़ियां जंगल से लाये पत्तों और फूलों से सजी थीं। नये कपड़ों से लैस गाड़ीवान अपनी-अपनी गाड़ियों में अकड़े बैठे थे। नये जूते और रेशमी मोज़े पहने लड़कियां कड़ी धरती पर खटखट करती नाच रही थीं। बूढ़े आस-पास टहलते तम्बाकू पी रहे थे। बाल-बच्चों वाली औरतें बेंचों पर बैठी भुनी मूंगफली और सूरजमुखी के बीज छील रही थीं। पास-पड़ोस के फ़ार्मों से मेहमान भी आये थे। वासिली भी काफी उत्तेजित और कुछ-कुछ घबड़ाया हुआ सा था। "अभी बहुत सी मुश्किलें बाकी हैं; बड़ी मसक्कत करनी होगी; व्यावसायिक साल अभी पूरा नहीं हुआ है।"—वह मन ही मन कह रहा था। फिर भी उसके मन से यह भावना दूर न होती थी कि जिस लक्ष्य की ओर वह बढ़ रहा था, उसे उसने जल्द ही प्राप्त कर लिया है। उसे कुछ क्षणों के लिए परेशानी भी हुई। "अब आगे?"

वासिली ने एक छोटा सा भाषण दिया। फ़ार्म के अगुवा किसानों को धन्यवाद दिया। फिर, अकार्डियन बाजे बज उठे और गाड़ियों पर गल्ले और

तरकारियों की लदाई शुरू हो गयी। लुबावा, क्सेन्या और लुबावा का बड़ा लड़का एक साथ काम करते थे। उन्हें पांच गाड़ी बढ़ती सामान मिला। बुयानोव सामान तुलवाकर गाड़ियों में लदवा रहा था। सर्गी सार्जेंट का नम्बर आया तो क्सेन्या की गाड़ी की तरफ इशारा करके बुयानोव ने कहा :

"तुम्हारा सामान भी उसी में लदवा दें न?"

क्सेन्या का चेहरा शरम से लाल हो गया। दूसरी लड़कियां ताली बजा-बजा कर चिल्लाने लगीं :

"हां, हां! उसी गाड़ी में लाद दो! अब तो दोनों का हिस्सा एक है!"

दोनों का सामान एक ही गाड़ी में लाद दिया गया। दोनों को एक ही गाड़ी में बैठाया गया। सर्गी की शर्म दूर हो गयी। उसने झेंपती-शरमाती क्सेन्या के पास जाकर उसकी कमर में बांह डाल दी।

अन्त में दादी वासिलिसा का हिस्सा गाड़ी में लादा गया।

"वासिलिसा मिखाइलोवना! एक बरस का मेमना भी तुम्हारे हिस्से में है। कोई चुन लो!" बुयानोव बोला।

वासिलिसा हक्की-बक्की रह गयी।

"चुन लूं? वे तो सभी मेरे हैं। चाहे कहीं रहें।"

अवदोत्या आगे बढ़कर दादी के लिए मेमना चुनने लगी। सर्गी और क्सेन्या भी सहायता देने के लिए गाड़ी से कूद आये। अपनी-अपनी गोद में रुई के गालों जैसे मेमने लेकर वे आये तो चारों तरफ से मज़ाक की बौछारें होने लगीं। सभी हंस रहे थे। दादी वासिलिसा के लिए मेमना चुनने सारा फ़ार्म सिमट आया था। सब उसे घेरे खड़े थे। सभी की ज़बान पर दादी की प्रशंसा थी। दादी नया काला शॉल और भूरा लहंगा पहन कर आई थी। वह चुप-चाप गाड़ी के पास दबी-सिकुड़ी खड़ी थी। सहसा उसकी आंखों से आंसू बह चले।

"क्यों? क्या बात है, वासिलिसा मिखाइलोवना?" वासिली ने विस्मय से पूछा। "क्या तुम्हें खुशी नहीं है?"

दादी को अल्योशा की याद आ गयी थी। वह रो पड़ी थी। पर इस जलसे-मेले में दुख की बातें करके वह दूसरों को दुखी नहीं करना चाहती थी। अपने ऊपर खीझती हुई बोली :

"अरे कुछ नहीं...! मेरी तो आदत है बिसूरने की...! सोचती हूं पचास बरस देर से जनम होता तो कितना अच्छा होता! अब मेरे लिए क्या है? पिछड़ी खुशी, पिछड़ी बरसात की तरह होती है; उससे कहीं खेत लहलहाते हैं?"

"तुम्हारी ज़िन्दगी क्या ऐसी गयी-गुज़री है, वासिलिसा मिखाइलोवना? हम तो मनाते हैं कि सबको तुम्हारा जैसा बुढ़ापा मिले!"

दादी मुस्कराने का प्रयत्न करने लगी, मानो वासिली की बात से सहमति प्रकट करना चाहती हो। पर उसके चेहरे की झुर्रियों से आंसू बहे आ रहे थे। दादी शॉल के छोर से आंसू पोंछती हुई खिन्न स्वर में बोली :

"मुझ बुढ़िया का क्या है...! बुढ़िया जो ठहरी...!"

सहसा वासिलिसा ने देखा कि अवदोत्या एक खूब मोटे मेमने के गले में रस्सी बांधे खींचे लिए आ रही है। दादी का रोना-धोना गायब हो गया। उसके चेहरे पर परेशानी और व्यग्रता छा गयी।

"यह क्या कर रही है? इसे कहां ले जा रही है? यह तो 'सफेदा' है री। तू तो कहती थी यह हमारे यहां के सबसे बढ़िया मेमनों में से है!"

"इसीलिए तो तेरे लिए लायी हूं दादी।" अवदोत्या ने मुस्करा कर कहा। "तुमने काम अच्छा किया है! क्या हम लोग तुम्हें ऐसा-वैसा मेमना देंगे!...सफेदा! सफेदा! उधर क्यों भाग रहा है?"

बुढ़िया को खुश करने के लिए अवदोत्या सबसे बढ़िया मेमना निकाल लायी थी। लेकिन खुश होने के बजाय वासिलिसा बिगड़ उठी :

"खबरदार! मैं मेमने को हाथ नहीं लगाने दूंगी।" मानो मेमना किसी और को दिया जा रहा हो। "सफेदा को अपने से जुदा नहीं होने दूंगी! मेरी लेहड़ी बिगाड़ने चली है। किसी ने ऐसा सुना था?"

दादी ने दुश्मन की तरह घूरकर अवदोत्या को देखा। उसने मेमने की रस्सी उसके हाथ से छीन ली और मेमने को बाड़े की तरफ धकेल कर ललकारा :

"छूः! भाग जा अपने घर! खबरदार जो इधर आया!"

शोर-गुल और भीड़-भम्भड़ से डरकर मेमना मिमियाता और रस्सी घसीटता हुआ बाड़े की ओर भाग चला।

"यह खूब रही! सबसे अच्छे मेमने बांटे दे रही है!" वासिलिसा बड़-बड़ाती रही। "जैसे मैं मान जाऊंगी! समझ क्या रखा है मुझे?"

अवदोत्या हक्की-बक्की रह गयी।

"लेकिन, दादी वासिलिसा, हम मेमना किसी ऐरे-गैरे को नहीं दिये दे रहे हैं, तुम्हारे बाड़े ही तो ले जा रहे थे।"

"यह रहा मेरा बाड़ा!" वासिलिसा ने और भी क्रुद्ध होकर गोशाला की ओर हाथ उठाकर दिखाया।

सब लोगों ने बड़ी मुश्किल से दादी को मनाकर शांत किया।

गाड़ियों का तांता गांव की ओर चल दिया। लड़कियां गोल बांधे गीत गाती पीछे-पीछे चल रही थीं। उनके पीछे आपस में बातचीत करती औरतें थीं। सबसे पीछे मर्द लोग खरामा-खरामा चले जा रहे थे।

"ज़रा वासिलिसा को देखो!" कोई कह रहा था। "इस उम्र में भी बरस भर में पांच सौ दिन की मज़दूरी मार ली और मेमनों की तादाद योजना ड्योढ़ी बढ़ा ली। बड़ी वाजिब कमाई मिली है इसे!"

"लुबावा और यासनेव ने भी डटकर मेहनत की है। सबसे पहले खेतों में पहुंचते थे और सबसे बाद में लौटते थे।"

"कौमसोमोल के लड़कों में सिरमौर तो अल्योशा ही था। लेकिन भई, यह तो मानना पड़ेगा कि लड़कों ने भी मेहनत की है। चाहे काम का दिन हो, चाहे छुट्टी का, सब एक साथ खेत पर दिखाई देते थे। कभी-कभी तो हांके-हांके भी घर नहीं जाते थे।"

फ़ार्म के आगे बढ़े किसानों की सफलता से किसी को ईर्षा नहीं थी। दरअसल, टनों अनाज और तरकारियों को देखकर हरेक की छाती फूल रही थी—मानो इतना माल उसी को मिला हो।

वासिलिसा के मेमनों के साथ आखिरी गाड़ी आंखों से ओझल हो गयी। लड़कियों का गाता-नाचता झुंड मोड़ के उस ओर गायब हो गया। बुजुर्ग किसानों ने अपने-अपने घरों का रास्ता लिया। सबसे पीछे बुढ़ौ मेफ़ोदी, अपनी ही जैसी धीमी चाल वालों के साथ, कदम तौलते चले आ रहे थे!

अकेला वासिली खड़ा रह गया। उसे अपने चारों ओर की चीज़ें विशेष स्पष्टता से दिखाई दे रही थीं। तिपाइयों के नीचे भूसी पड़ी थी। खलिहान के इधर-उधर आटे की सफेदी फैली हुई थी। भेड़ों के बाड़े की खिड़की में पत्तियों की झालर टंगी थी। गाड़ियों को सजाने के लिए लायी गयी नारंगी रंग की पत्तियों का एक ढेर दरवाज़े के पास पड़ा था। हवा के झोंके उससे खिलवाड़ कर रहे थे और दूर फैले जुते खेतों तक पत्तियों को उड़ा ले जाते—जहां वे नारंगी-लाल बत्तियों जैसी लगती थीं। सड़क के सुदूर छोर पर आखिरी गाड़ी की धूमिल छाया गत वर्ष की समाप्ति रेखा सी लग रही थी।

वासिली ने खलिहान के दरवाज़ों के तालों को झटक कर देखा। फिर सुनसान अस्तबल का एक चक्कर लगाकर इधर-उधर नज़र डाली और घर की ओर चल दिया।

ऐसे सुखद अवसर के लिए वह कितने दिनों से प्रतीक्षा किये बैठा था, कितने उत्साह से इसके लिए लालायित था, कितनी लगन से इसके लिए प्रयत्न किया था—मानो किसी सुदूर लक्ष्य की ओर बढ़ रहा हो। वह सोचता था:

"काश मैं यह रफ्तार जारी रख सकूं, अगले साल फसल कटाई तक इन ज़िम्मेदारियों का बोझ संभाल सकूं — तो हालत सुधर जायेगी, आराम की सांस लेने का मौक़ा मिलेगा।" अब फसल की कटाई हो चुकी थी, आगे के लिए खेत जोत डाले गये थे, फ़ार्म का काम ढंग से चल रहा था — बोझा ढोया जा चुका था। लेकिन इससे वासिली को आराम के बजाय खालीपन ज्यादा महसूस हो रहा था। उसने अभी बोझा उतार कर फेंका ही था कि फिर उसके लिए ललकने लगा। वह सोच रहा था कि अब कौन सा नया बोझा उठाये जिससे कि उसके पुट्ठे ढीले न पड़ें और सुस्ती की थकावट न आने पाये।

"एक साल पूरा हुआ; एक साल शुरू हुआ!"

उसे बीते साल के आरम्भ की याद हो आई। पिछले साल की शुरुआत हुई थी पहली पार्टी मीटिंग से, उस ठिठुरन और कोहरे भरे भोर से जब वह चौराहे के बीचोबीच खड़ा था। अब इस नये साल की शुरुआत कैसे की जाय? इस समय उसे अन्त और आरम्भ के बीच की पतली खाई की बड़ी तीव्रता से अनुभूति हो रही थी। उसे एक विचित्र प्रकार का हल्कापन, जो कुछ-कुछ खोखलापन जैसा था, लग रहा था। क्षण भर के लिए वह सोच में पड़ गया कि अब क्या करे। कठिनाइयों भरे बीते दिनों के विछोह का विचित्र प्रकार का संताप मन पर छा गया था।

यकायक वासिली की नज़र एक ओर लगे तख्ते पर चिपके एक पीले कागज़ पर पड़ी जो फाड़ डाला गया था। थोड़ा सा हिस्सा, जो अब भी चिपका था, उस पर दस्तखत थे: "वा. बोर्तनिकोव!"

वासिली ने उसे गौर से पढ़ा:

"...व, ब्लिनोव और कोनोप्लेव खाद ढोयेंगे। काम सुबह ठीक सात बजे शुरू हो जाना चाहिए। गैर-हाज़िर होने या देर से आने पर मामला फ़ार्म की सभा के सामने पेश किया जायेगा।"

वासिली को हंसी आ गयी। उसने जेब से चाकू निकाला। मुस्कराता हुआ वह उस कागज़ को खुरचने लगा।

बहुत अरसे पहले वासिली को इसी तरह नामों की सूची लगानी पड़ती थी और देर से आने वालों को सभा में पेश करने की धमकी देनी पड़ती थी। अब आपस में काम बांटने का काम दलों के नायक खुद कर लेते थे और पिछले कई महीनों से बिना किसी खास कारण के कोई देर से नहीं आया था। नोटिस को खुरच डालने के बाद वासिली अस्तबल में गया। उसने एक मेज़ का खाना खींच कर देखा। इसमें बहुत से मुड़े हुए कागज़ पड़े थे जिनमें नामों की फेहरिस्त थी और काम की उपेक्षा करने वालों को डाट-फटकार लिखी हुई थी।

आठ-नौ महीने पहले यह रवैया था कि काम पर जाने से पहले विभिन्न दलों को हुक्मनामे पढ़कर सुना दिये जाते थे।

वासिली ने कागज़ निकाले और खिड़की से बाहर फेंक दिये। हवा का झोंका सूखे पत्तों के साथ इन कागज़ों को भी उड़ा ले गया और खेतों पर, जहां शरत के गेहुओं के हरे-हरे अंकुवे फूट रहे थे, बखेर दिया।

अक्तूबर माह के अन्तिम दिन थे। वासिली पर एक नयी आफत का पहाड़ टूटा। उसके पिता ने खाट पकड़ ली थी। गले में कैन्सर हो गया था। हालत काफ़ी दिन पहले से खराब थी, लेकिन डाक्टर ने कैन्सर अभी हाल में बताया था। कैन्सर बड़ी तेज़ी से बढ़ा था और पिता की हालत बहुत चिन्ताजनक हो गयी थी।

पिछले दो ही महीनों में उनकी काली भौहें सफेद हो गयी थीं और चेहरे का रंग मटमैला हो गया था।

"भई इस पाले ने तो मुझे भी जकड़ लिया। मेरे भी ठंडे होने के दिन आ गये।" पहले दिन के ही जाड़े को देखकर उन्होंने कहा था। "वास्या, आज कौन सी तारीख़ है?"

"बीस नवम्बर।"

"अभी तो कुछ जल्दी है," बुढ़ौ ने कहा। यह समझना मुश्किल था कि यह जल्दी वह अपने लिए बता रहे हैं, या जाड़े के लिए।

बुढ़ौ तकिये का सहारा लिये बिस्तर पर अध-लेटे रहते। उनका शरीर सिकुड़ता जा रहा था, त्वचा पतली और विरूप होती जा रही थी। सिर, भौहों, और दाढ़ी-मूंछ के सफेद बालों से जान पड़ता था कि कपास की छोटी सी गठरी पड़ी है।

"क्या भरोसा कब इनका दम टूट जाये?" वासिली सोचता और उसका दिल कचोट उठता।

इन दिनों पिता का स्वभाव बदल सा गया था। वह बोलते बहुत कम थे और बोलते थे तो बड़ी नरमाई से। स्तेपनिदा की ओर से उनका मन विरक्त सा हो गया था और वह बड़ी तेज़ी से वासिली की ओर खिंच आये थे। पढ़ने का भी उन्हें अब बहुत शौक हो गया था। जो अखबार या पत्रिका हाथ लग जाती, बिस्तर पर लेटे-लेटे पढ़ते रहते। अपने देश के सामूहिक खेतों के अगुवा लोगों के बारे में तो वह बड़े चाव से पढ़ते थे। एक दिन उन्होंने पत्र में सुप्रसिद्ध ट्रैक्टर ड्राइवर और सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत की सदस्या पाशा अंजेलिना की जीवनी पढ़ी, तो घंटों चुपचाप न जाने किस

ध्यान में डूबे रहे। स्तेपनिदा और फिनोगेन के कई बार पुकारने-बुलाने पर भी कुछ नहीं बोले। पीड़ा और उत्साह के विचित्र सम्मिश्रण की छाया उनके चेहरे पर थी।

सांझ के समय जब तक वासिली नहीं आया, बुढ़ऊ गुमसुम पड़े रहे। वासिली आया तो उसका चेहरा नवम्बर की बर्फ़ानी हवा से सुर्ख हो रहा था; भौंहें गीली थीं, आंखों में चिन्ता और परेशानी थी। इस छोटी सी कोठरी में उसे अपना बड़ा फ़ौजी कोट और घुटनों तक भारी-भारी बूट बड़े बेतुके लग रहे थे।

वासिली ने अपने कपड़े ठीक किये और पंजों के बल खाट के पास पहुंचा। लगता था बुढ़ो सो गये हैं। आंखें बन्द थीं। सफेद सा चेहरा एक ओर को टिका था, उस पर दुःख की छाया थी—किसी बीमार बच्चे का सा चेहरा।

आहट न होने देने के लिए वासिली पंजों के बल वापिस लौटना ही चाहता था कि बुढ़ो ने आंखें खोल दीं। उनके होठों पर मुस्कान छा गयी, जो कमज़ोरी की वजह से बड़ी दयनीय लग रही थी।

रजाई से हाथ निकाल कर कुर्सी की ओर संकेत करते हुए वह बोले :

"बैठो न !"

वासिली बैठ गया। बुढ़ो ने अपना सूखा हल्का हाथ उसकी बड़ी सी गदोली में रख दिया। हाथ गरम और बहुत हल्का था। वासिली के मन में टीस उठी :

"हाथ नहीं लगता: मालूम होता है भट्टी में से आंच आ रही है। ओफ़्, कितना काम किया है इन्हीं हाथों ने !"

वासिली ने पिता का हाथ अपने हाथों में दबा लिया। दोनों चुप रहे। वासिली ने सोचा, पिता सो गये हैं। वासिली के हाथ में हाथ दिये झपकी लेने में बुढ़ो को संतोष होता था।

सहसा बुढ़ो ने आंखें खोलीं। सफेदी छाये उनके चेहरे पर आंखें बत्तियों की तरह जल रही थीं।

"इन सब की क्या जरूरत थी ?..." बुढ़ो बुदबुदाये, मानो कोई अधूरी बात पूरी कर रहे हों। "ये आलमारियां !... ये सन्दूकें !... क्या मैं इन्हीं के लिए ज़िन्दा था !"

"क्या कह रहे हो बापू ?" वासिली कुछ समझ नहीं पाया था।

बुढ़ो फिर चुप हो गये। अपनी गर्म उंगलियों से वासिली का हाथ उन्होंने कस कर जकड़ लिया। वासिली ने सोचा, बुढ़ो सन्निपात में बड़बड़ा रहे हैं। लेकिन बात ऐसी नहीं थी। पास ही पड़ी पुस्तिका के मुखपृष्ठ पर बने पाशा अंजेलिना के चित्र की ओर बुढ़ो ने आंखों से संकेत किया।

"इसे देखो..." बुढ़ों ने फिर बुदबुदाना शुरू किया, "क्या मैंने इससे कम मेहनत की है? मुझे क्या मेहनत का इससे कम शौक था? लेकिन मेरी मेहनत बेप्रयोजन हुई...!" उन्होंने वासिली का हाथ और भी कसकर जकड़ लिया और बड़ी कटुता से जल्दी-जल्दी बड़बड़ाने लगे: "ज़रा देखो इनको... इन हाथों को...। क्या इन्होंने इन्हीं सबके लिए काम किया था —इन आइनों, सोफों, अलमारियों के लिए? क्या मुझे इन्हीं सबकी ज़रूरत थी? अरे, मुझे तो ज़रूरत थी मसरफ़ के काम की जिससे लोगों में मेरी इज़्ज़त बढ़ती... ज़िन्दगी सुकारथ होती... मौत आसानी से आ जाती... इतना घुट-घुट कर मरना न होता...। बेटा वास्या! औरतों की बातों में कभी न आना। हमेशा अपने दिल की बात मानना।"

बुढ़ो चुप हो गये। वासिली हिला तक नहीं। उसे डर था, कहीं पिता के विचारों का प्रवाह न टूट जाय। लेकिन बुढ़ो को झपकी आ गयी थी।

वासिली आहट किये बिना रसोई में चला गया।

"मां! आज बापू की हालत ज्यादा खराब है।" उसने स्तेपनिदा से कहा। "आज रात मैं यहीं सोऊंगा।" स्तेपनिदा ने रात के लिए पिता के पलंग के ही पास वासिली की खाट भी डाल दी।

स्तेपनिदा ने काले कपड़े पहन रखे थे। रो-रो कर उसने अपना हाल बुरा कर लिया था। रात भर वह पास की कोठरी में बैठी भगवान से प्रार्थना करती रही। वासिली भी सो नहीं सका। ईसा के चित्र के समीप टिमटिमाते लैम्प का प्रकाश जिरेनियम की बत्तियों पर, बुढ़ो के माथे पर और रंग-बिरंगी रज़ाई पर पड़ रहा था। बुढ़ो रात भर निर्वाक और निश्चल लेटे रहे। पौ फटने के वक्त उन्होंने आंखें खोलीं और अचानक पूछ बैठे:

"वास्या, तू यहीं है न?"

वासिली झपाटे से उठ कर खड़ा हो गया।

"हां बापू! कहो, क्या है?"

"सुनो! तुम्हारी मां... वह तो औरत ठहरी..." बुढ़ो ने कहा, मानो पिछली सांझ की बाकी बात पूरी कर रहे हों, "फिनोगेन अपनी मां के इशारे पर चलता है...बिलकुल उसी पर गया है। प्योत्र अभी बच्चा है। मेरा कोई है, तो तू है वास्या...तू ठीक काम कर रहा है...ऐसे ही किये जा बेटा। मेरी ज़िन्दगी में जो कमी रह गयी है, वह तुझे अपनी ज़िन्दगी में पूरी करनी है। और सुन बेटा!...अवदोत्या को तू घर लौटा ला...उसका क्या दोष था बेचारी का...! भगवान की मरज़ी थी...।"

बात करते-करते बुढ़ो हांफने लगे थे। थककर चुप हो गये। वासिली ने पिता के चेहरे को देखा। चेहरा सिकुड़कर छोटा हो गया था। उस पर

सफेदी छा गयी थी। गालों की खाल पर्तों में सिकुड़ गयी थी। चेहरे की निश्चलता में मृत्यु की स्थिरता का आभास हो रहा था। कभी कोई अंग फड़क उठता, तभी जीवन का आभास होता—मानो तालाब के स्थिर जल में किसी ने कंकड़ी फेंक दी हो। कभी होंठ, कभी पीले नथुने, और कभी भौहें फड़क उठतीं। जीवन का ऐसा प्रत्येक आभास वासिली को इस समय बहुत मूल्यवान लग रहा था। वह जानता था कि बुढ़ौ की पलकों की यह झपकन आखिरी है और चंद घन्टों बाद ये सूखे होंठ और ये भौहें फिर नहीं हिलेंगी।

बुढ़ौ की ठोढ़ी कांपी। माथे पर बल पड़ गये। लगता था वह कुछ कहना चाहते हैं। वासिली ने अपना सिर और पास झुका लिया।

"मौत से मुझे घबराहट नहीं बेटा...मेरी ज़िन्दगी सिमट कर छाती पर आ गयी है...मैं बच-बच कर किनारे-किनारे चला ..बीच रास्ते से दूर...... लेकिन पाशा अंजेलिना......वह मर्द नहीं, लड़की है बेटा... खूब रास्ता बनाया उसने ज़िन्दगी का ... मेरी तरह बुढ़ापे में उसे कलख तो नहीं होगी..."

वह चुप हो गये और एक लम्बी सांस ली। वासिली बिना एक शब्द बोले चुपचाप पास बैठा रहा। बुढ़ौ की तन्द्रा टूटी। आंखें खोलीं और बोले :

"सोचता हूं, ज़रा झपकी ले लूं। लेकिन हां...ध्यान रखना बेटा...कहीं ऐसे ही न चला जाऊं।...पादरी अभी तक नहीं आया। जाने कहां चला गया।"

वासिली बिलकुल पिता की खाट से लगा बैठा रहा। उसके कान पिता की सांसों पर लगे थे। पिता के जीवन की इन आखिरी घड़ियों में पल भर को भी वह अपनी आंखें उनके मुंह पर से नहीं हटाना चाहता था। सुबह बुढ़ौ की नींद टूटी। आंखें खिड़की की तरफ गयीं। खिड़की से बाहर बादल का छोटा सा सफेद टुकड़ा दिखाई दे रहा था। खिड़की की छोटी छत से कांच की तरह उजली बरफ की छड़ियां लटक रही थीं। स्वच्छ और निर्मल—खिड़की के नीले प्रकाश में बादल का यह टुकड़ा ज्योति का पुंज लग रहा था। बुढ़ौ के चेहरे पर अबोध बच्चों जैसी भोली मुस्कान दौड़ गयी।

"बादल.. !"

बड़ी देर तक वह उसी तरफ देखते रहे और मुस्कराते रहे। फिर पूछा :

"स्तेशा ! पादरी अभी तक नहीं आया ?"

"पादरी उग्रेन गया है। कह गया था कि सुबह ज़रूर आ जाऊंगा।" स्तेपनिदा ने उत्तर दिया।

"...देर न हो जाय...।"

कुछ पल के लिए बुढ़ौ ने फिर आंखें मूंद लीं। फिर धीरे से बोले :

"वास्या। मुझे ज़रा करवट लिवा दे...।"

आगे बढ़कर वासिली पिता को करवट बदलवाने लगा। बुढ़े ने बेटे का हाथ थाम लिया और उसकी आंखों में बड़ी मर्मान्तक दृष्टि से देखा। तभी एक झटके के साथ उनका सिर लुढ़क गया।

"बापू! बापू!"

वासिली ने अपने सीने से पिता को ढंक लिया, पिता के चेहरे से अपना चेहरा चिपका दिया। वह अपने शरीर का समूचा जीवन और पौरुष उनमें भर देना चाहता था। बुढ़े की सांस बन्द हो चुकी थी। वासिली सिसक-सिसक कर रोने लगा। जीवन में वह पहले कभी नहीं रोया था।

वासिली बाहर आ गया। स्तेपनिदा के करुण विलाप की चीखें उसके कानों को फाड़े दे रही थीं। सुन्दर प्रभात बकाइन के फूल जैसा खिला था। खेतों पर बरफ की चकाचौंध थी। गांव के घरों की चिमनियों से उठते धुएं की सीढ़ियां बर्फानी हवा में लाल-लाल दीख पड़ रही थीं। स्वच्छ नीले आकाश में बादल का वही टुकड़ा उड़ रहा था! हल्का-हल्का! ज्योति के शीतल पुंज के समान! सबसे दूर और तटस्थ वह धीरे-धीरे अपने रास्ते पर बढ़ा चला जा रहा था।

"आखिरी बार बापू ने इसी बादल को देखा था।" वासिली के मन में चोट सी लगी। "यह बापू का बादल है......!"

वासिली को प्रकृति की यह उपेक्षा, मनुष्य के प्रति यह अवहेलना, बहुत क्रूर लगी। बादल का टुकड़ा खिलवाड़ करता हुआ अब भी बढ़ता जा रहा था। आकाश की ओर बढ़ती धुएं की रंगीन सीढ़ियां अब भी ऊपर की ओर बढ़ रही थीं। बरफ अब भी पहले की तरह चमक रही थी। केवल एक चीज़, जीवन की सबसे बहुमूल्य चीज़—एक मनुष्य का धड़कता हुआ हृदय—स्थिर हो गया था। उस मनुष्य के कितने ही काम अधूरे रह गये थे, कितनी ही बातें वह नहीं कह पाया था, उसकी कितनी ही उमंगे अपूर्ण रह गयी थीं! सब कुछ हमेशा, हमेशा के लिए खत्म हो गया था!

"हमेशा के लिए......!" वासिली को पहली बार इन शब्दों की शक्ति का आभास हुआ। पृथ्वी करोड़ों वर्ष तक बनी रहेगी, अरबों मनुष्य इस पर जन्म लेंगे और मरेंगे—परन्तु बापू अब नहीं लौटेंगे! कोई पुकार, कोई गुहार, कोई प्रार्थना उन्हें एक पल के लिए भी वहां से वापिस नहीं बुला सकेगी जहां वह चले गये हैं।

वासिली चला जा रहा था! बिना सोचे-समझे! बस, उसके पांव उठते जा रहे थे। अचेतन मन से वह अवदोत्या को ढूंढ़ रहा था। वह गोशाला पहुंचा तभी उसे याद आया कि अवदोत्या फ़ार्म में नहीं है। वह पशु-विशेषज्ञों की एक कान्फ्रेंस में भाग लेने के लिए उक्रेन गयी थी।

बुढ़ी की मृत्यु की बात गोशाला में किसी को नहीं मालूम थी। लोगों ने वासिली को घेर लिया और गोशाला से सम्बंधित बीसियों बातें और शिकायतें होने लगीं।

वासिली का मन उचाट था। फिर भी वह यथा-सम्भव प्रश्नों और शिकायतों के उत्तर दे रहा था। फ़ार्म के प्रधान के नाते अपने कर्तव्य को वह एक क्षण के लिए भी नहीं भूल सकता था—भूल सकने का साहस भी नहीं कर सकता था।

पिछले कुछ दिनों में, जब अवदोत्या गोशाला में नहीं थी, तभी वासिली को उसके काम के महत्व का पता चला था। पशु-विभाग और गोशाला में अवदोत्या के रहने पर वासिली को कोई परेशान नहीं करता था। लगता था सब कुछ अपने-आप बड़े अच्छे ढंग से हो रहा है। लेकिन अवदोत्या के शहर जाते ही वह गोशाला से सम्बंधित तरह-तरह के प्रश्नों में उलझ गया। पशुशाला के काम की पूरी ज़िम्मेदारी उसके कंधों पर आ पड़ी। तभी उसकी समझ में आया कि गोशाला के काम में निश्चिंतता का कारण क्या था और इसका कितना बड़ा श्रेय अवदोत्या को था।

सर्गी-सार्जेंट ने शिकायत की : "वासिली कुज़मिच ! मालूम होता है नयी सुअरिया बीमार हो रही है। कबरी और दूसरी सुअरियों को भी बीमारी होने लगी है। समझ में नहीं आता क्या करें ? तम्बाकू के पानी से नहला दें ? या अवदोत्या तिखोनोवना के लौट आने का इन्तज़ार करें ? या सलोत्री के आने तक कुछ न करें ?"

"सलोत्री को बुला लो।"

"सलोत्री के बारे में पता चला है कि वह किसी काम से शहर गया है।"

"तो एक दिन और ठहर जाओ। न आये तब कुछ करना। यह तो देखा नहीं जा सकता कि फ़ार्म के सभी पशुओं को बीमारी लग जाय। दवा का गहरा घोल तैयार कर लो, जगह अच्छी तरह गरम रखो और सभी जानवरों को नहलवा दो।" वासिली ने किसी तरह सोच-साचकर उत्तर दिया।

क्सेनोफोन्तोवना भी चेहरे पर चालाकी भरी मुस्कराहट लिये आ धमकी।

"मैं भी तुम्हें कुछ तकलीफ दूंगी, वासिली कुज़मिच।" बुदबुदाते हुए उसने कहा।

"क्या ?"

"मेरे लिये दूध की पर्ची लिख दोगे ? मेरे पेट में दर्द रहता है। दूध के सिवा और कुछ खा-पी नहीं सकती।"

"तुम्हारे घर तो खुद दुधारू गैया है।"

"वाह भैया, वाह! किसने तुमसे कह दिया कि दुधारू है? वह तो बकरी से भी गयी-बीती है। कौन कहेगा उसे गाय! और जब तक ब्याती नहीं, दूध कहां से देगी?"

"गोशाला में दूध नहीं है!"

"नहीं है? गोशाला के लोग तो यह कहते नहीं अघाते हैं कि दूध खूब बढ़ रहा है! दूध जाता कहां है? कहीं बह जाता है क्या?"

"तुम कहना क्या चाहती हो? साफ-साफ कहो।"

यह पहला मौका नहीं था जब उसने क्सेनोफोन्तोवना से सब कुछ साफ-साफ कह डालने के लिए कहा था। लेकिन उसने उसकी बात से कतराकर शक भरे शिगूफे छोड़ने के अलावा और कुछ न किया।

"मैं थोड़े ही कुछ कह रही हूं। तुम खुद सब कुछ जानते हो। मुझे तो बस थोड़ा दूध चाहिए सो उसके लिए क्या जवाब है, वासिली कुज़मिच?"

"कह तो दिया कि दूध नहीं है।"

"तो जाता कहां है? दूध इतना होता है पर किसी किसान के पल्ले नहीं पड़ता।"

"क्या मतलब? किसान गरमियों में खेतों पर काम कर रहे थे, तब उन्हें रोज दूध, मक्खन और मलाई नहीं मिल रही थी? अब लकड़ी कटाई वालों के लिए दूध जाता है।"

"क्या सारा का सारा चला जाता है? गोशाला में बूंद भर नहीं बचता?"

"सारा का सारा चला जाय तो बछड़े कैसे पलें? बछड़े भी दूध पीते हैं। पीते हैं न? क्या मैं सब इधर-उधर बांट दूं और बछड़ों को भूखा मारूं? यही चाहती हो तुम?"

बुढ़िया की मीठी मुस्कराहट में स्पष्ट घृणा घुली-मिली थी। उसकी आंखें वासिली को बेधे डाल रही थीं। बुढ़िया अपने मन में कोई मन्सूबा बांध लेती तो आसानी से उससे हटती नहीं थी।

"तो मैं क्या समझूं, वासिली कुज़मिच? मुझ अपढ़ औरत से नासमझी हो जाय तो माफ करना। क्या मैं यह समझूं कि तुम्हें बछड़ों पर तो दया आती है, लेकिन किसानों की फिकर नहीं है? क्या मैं किसी बछड़े से भी गयी-बीती हूं?"

"और तुम समझती क्या थीं? तुम्हें मुर्गीखाने का काम सौंपा गया तो तुमने सालाना फ़ी मुर्गी तेरह अंडे जमा किये। तुम्हें गोशाला में गायें दुहने के काम पर रखा गया, लेकिन वहां से भी हटाना पड़ा। खेतों में तुम्हारा ही काम

सबसे गया-बीता होता है। तुम्हें दूध नहीं मिलने का। तुम्हारे घर खुद की गैया है—दूध दुहो और पियो।"

"तुम्हारा मतलब क्या है भलेमानुस? क्या तुम यह कहना चाहते हो कि हम सामूहिक किसान बछियों-बछड़ों से भी गये-बीते हैं? क्या हमारी तरफ-दारी करनेवाला कोई नहीं है?" क्सेनोफोन्तोवना की चीख उसके कानों के पर्दों को फाड़े दे रही थी।

"क्या मुसीबत है यह औरत भी! दूध दे दूं और पिंड छुड़ाऊं!" वासिली ने सोचा।

वासिली उससे जान छुड़ाना चाहता था। वह एकान्त में अपने पिता के बारे में—जिस शोक ने उसे धर दबाया था उसके बारे में—सोचना चाहता था।

"लिख ही दूं इसे दूध की पर्ची। इसकी चखचख तो बन्द हो। पर इसे दूध दिया तो दूसरों को भी देना पड़ेगा; इसका मतलब है कि सभी को देना पड़ेगा।"

"हम लोग क्या बेज़बान जानवरों से भी गये-बीते हैं?" क्सेनोफोन्तो-वना रोने लगी।

"डरो नहीं, मां! तुम्हारे ऊपर कोई जुल्म नहीं होने पायेगा।" पीछे से मर्दानी आवाज़ सुनाई दी। चमड़ा लगी बिर्चिस पहने त्राबनित्सकी आ खड़ा हुआ।

त्राबनित्सकी के साथ गांव-सोवियत का प्रधान वोल्कोव भी था। त्राबनित्सकी ने वासिली की ओर आंख उठाकर देखा भी नहीं। चुस्त कदमों से दरवाज़े की ओर बढ़ता हुआ वोल्कोव से बोला :

"कामरेड वोल्कोव! मैं कहता हूं कि तुम फ़ार्म के इस प्रधान को किसी तरह काबू में लाओ। ज़िले के अधिकारी ऐसे भारी अन्याय की उपेक्षा नहीं कर सकते। और माता जी! तुम ग्राम सोवियत के दफ्तर में आकर मुझसे मिलो। मैं वहां सब कुछ साफ-साफ मालूम करूंगा!"

वासिली कुछ न बोला। उसकी आंखों के सामने उसके पिता का पीला चेहरा, उसके सूखे-सूखे हाथ, उसके चेहरे पर दयनीयता और याचना की भावना—नाच रहे थे। इस समय उसे और कुछ नहीं दिखाई दे रहा था। वासिली कंधे झुकाये मौन खड़ा था—उदास और एकाकी।

वासिली के मौन ने त्राबनित्सकी को आश्चर्य में डाल दिया। उसे उससे दूसरी ही आशा थी। उसने वासिली की ओर तिरछी नज़रों से देखा। वासिली के मौन और उसके खड़े होने के ढंग से उसने सोचा कि वासिली दब गया है और डर गया है।

"सुनो बोर्तनिकोव ! फ़ार्म के सदस्यों से तुम्हारा व्यवहार बहुत लज्जाजनक है। पार्टी नियमों के मुताबिक तुम्हें इसकी जवाबदेही करनी होगी ! मैं खुद गवाही दूंगा। इस तरह का अनाचार फ़ौरन बन्द किया जाना चाहिए।"

वासिली हिला तक नहीं। वह अब भी अपने ही दुःख में डूबा हुआ था। त्रावनित्सकी की धमकियों का मानो उस पर कोई असर ही न हुआ था।

कुज़मा की अन्त्येष्टिक्रिया के तीसरे दिन शाम को जब फ़ार्म की कुछ बूढ़ी औरतें काले कपड़े पहने स्तेपनिदा की कोठरी में बैठी विलाप कर रही थीं, सर्गी-सार्जेंट कमरे में दाखिल हुआ।

"माफ़ करना, वासिली कुज़मिच ! मैं इस वक्त न आता ! मगर बात कुछ ज़रूरी है। सुअरों वाले बाड़े में आफत मची है। एक सुअर दम तोड़ रहा है। कबरी का पेट गिर गया है। दो और सुअर छटपटा रहे हैं...!"

दूसरे दिन सुबह अवदोत्या उग्रेन से लौट आई। ज़िला कार्यकारिणी के किसी काम से उसे उग्रेन में रुक जाना पड़ा था।

शहर में कुछ समय बिताने और नये लोगों से मिलने-जुलने के बाद उसे नयी स्फूर्ति मालूम होती थी। एक से एक नयी योजनाएं उसके दिमाग में उठ रही थीं।

अवदोत्या की निश्छलता, नम्रता, लगन और परिश्रमी स्वभाव के कारण उससे मिलने वालों और उसके सहयोगियों को उससे अपनापन मालूम होने लगता था। पास के इलाक़ों के पशुपालकों में, प्रान्तीय कृषि विभाग में और वैज्ञानिक अनुसंधान विभाग में बीसियों उसके नये मित्र और परिचित थे।

अवदोत्या को शहर की पिछली यात्रा से बहुत कुछ हासिल हुआ था। ज़िला कार्यकारिणी के दफ्तर के अंधेरे बराण्डे में वह सिर उठाकर निर्भीकता और प्रसन्नता से जा सकी थी। वह सफेद नमदे के ऊंचे देहाती बूट पहने थी। बर्फ़ानी हवाओं से लाल उसके गालों में ऊनी शॉल का स्पर्श गुदगुदी पैदा कर रहा था। ज़िला कमिटी के दफ्तर में दोनों ओर के कमरों के बीच के बराण्डे में वह मुस्कराती और आंखें मिचमिचाती हुइ चली जा रही थी—धूप की चकाचौंध से आने के बाद उसे यह बराण्डा अंधेरा लग रहा था।

एक कमरे के आधे खुले दरवाज़े से उसे ऊंचे स्वर में सुनाई दिया : "बोर्तनिकोव"। वह ठिठक कर रुक गयी। उसके कान खड़े हो गये। कोई टेलीफोन पर बातें कर रहा था।

"हां हां ! सुअरों के बाड़े में बहुत ज़ोर की बीमारी फूट निकली है। वजह साफ़ है। फ़ार्म के प्रधान बोर्तनिकोव ने या तो गज़ब की लापरवाही की है या उसके इरादे नापाक हैं। ज़िले का सरकारी वकील मामले की जांच के लिए मौके पर पहुंच गया है। हां, हां ! मैं तो खुद कह रहा हूं। बोर्तनिकोव को फौरन मुकामी गिरफ्तारी में ले लिया जाय। हां हां ! अरे और तो और, उसने मेरी मोजूदगी में किसानों की तौहीन की।"

अवदोत्या ने दरवाज़ा खोला और भीतर चली गयी। चावनित्सकी मेज़ के पास खड़ा टेलीफोन पर बातें कर रहा था।

"क्या हो क्या गया है हमारे फ़ार्म में ?" बिना दुआ-सलाम के अवदोत्या ने सीधे-सीधे पूछ ही डाला।

"श्रीमती जी, इस समय मैं किसी से नहीं मिल सकता !"

"पहले आप बताइये कि मेरे फ़ार्म में हो क्या गया है ?"

"हो तो बहुत कुछ गया है लेकिन और बातों के अलावा खास बात यह है कि आपके फ़ार्म के सुअर एक-एक करके मर रहे हैं। आप बाहर जाइए श्रीमती जी और दरवाज़ा बन्द कर दीजिए।"

क्रोध और असमर्थता से जलती अवदोत्या दरवाज़े पर आ खड़ी हुई। इस आदमी से कुछ जान सकने की कोशिश करना बेकार था। उसने ज़ोर से दरवाज़ा बन्द किया और सड़क पर आ गयी। दफ्तर की ड्योढ़ी से उसने देखा कि सामने एक गाड़ी चली जा रही है। मातवेयेविच गाड़ी हांक रहा था। अवदोत्या सामने के मैदान को पार करती हुई उसकी ओर दौड़ी। उसके पांव बरफ में धंसे जा रहे थे। गिरती-पड़ती, बाहें ऊपर उठाये, चीखती-चिल्लाती वह मातवेयेविच की ओर बढ़ी जा रही थी।

अवदोत्या को देख कर मातवेयेविच ने गाड़ी रोक दी। पांच मिनट की बातचीत से ही अवदोत्या को मालूम हो गया कि सुअर क्यों मर रहे थे और वासिली की हालत क्या थी। बुढ़ो की मृत्यु की खबर से अवदोत्या के दिल को गहरी चोट पहुंची। वह कुज़मा का बहुत आदर करती थी। पति पर क्या बीत रही होगी—यह सोच कर उसका मन उमड़ा आ रहा था। मन ही मन वह कल्पना कर रही थी—कैसे वह भारी कदमों से टहल रहा होगा, उसकी आंखों में कैसी परेशानी होगी ! उसके एकाकीपन को सोचकर उसका मन दुखी हो उठा।

एक मिनट की भी देर किये बिना अवदोत्या सीधी ज़िला पार्टी कमिटी के दफ्तर पहुंची।

उसने सोचा—"आन्द्रेई पेत्रोविच मुझे जानता है। वह वास्या को भी जानता है। मेरी बातों पर उसे सन्देह नहीं होगा।"

ज़िला पार्टी कमिटी के दफ्तर की एक-मंजिली इमारत के शांत और स्वच्छ वातावरण तथा कमरों में छायी खामोशी से अवदोत्या के मन को सांत्वना मिली।

"इस वक्त आन्द्रेई पेत्रोविच किसी से नहीं मिलेंगे।" आन्द्रेई की सेक्रेटरी ने कहा। "वह बस पांच मिनिट में बाहर जा रहे हैं।"

अवदोत्या एक क्षण तो चुपचाप कुछ सोचती रही, फिर सेक्रेटरी की ओर देखे बिना मेहमानों के कमरे से निकल कर आगे बढ़ी और आन्द्रेई के निजी दफ्तर का दरवाज़ा खोल दिया।

"मुझे अपने को काबू में रखना है। कुछ भी हो, मुझे रोना-गिड़गिड़ाना नहीं है!" दांतों में होंठ दबाये उसने सोचा। पर आन्द्रेई के दयालु चेहरे पर नज़र पड़ते ही उसके आंसू छलक आये।

"कामरेड, कामरेड! आप क्या कर रही हैं?" सेक्रेटरी पीछे-पीछे भागी आई। "मैंने इन्हें मना कर दिया था, आन्द्रेई पेत्रोविच! लेकिन यह बिना इजाज़त घुसती चली आई।"

"मुझे परेशान न कीजिए, देवी जी! मामला बहुत नाजुक है।" अवदोत्या ने कहा और सेक्रेटरी को धकेल कर एक तरफ कर दिया। फिर लड़की की बड़बड़ाहट के बावजूद अपने होश संभालती हुई वह खड़ी हो गयी।

आन्द्रेई दोनों हाथ बढ़ाये उसकी ओर आया।

"अवदोत्या तिखोनोवना! ...तुम?... क्यों? बात क्या हुई?"

आन्द्रेई के आत्मीयता भरे शब्द सुनते ही अवदोत्या के आंसू फिर बह निकले। आन्द्रेई ने उसे आराम कुर्सी पर बैठाया और एक गिलास पानी लाकर दिया। अवदोत्या अपनी आस्तीनों से आंसू पोंछ रही थी पर आंसू थम ही नहीं रहे थे। वह अपने को काबू में लाने का निरर्थक प्रयत्न कर रही थी।

वियोग और एकाकी जीवन का भार वह बहुत दिनों तक वहन कर चुकी थी! और अब—वर्ष भर से संचित आंसू उसके हृदय की कगारों को तोड़ कर अजस्र धारा में बह निकले थे!

वह उन्हें अपने होंठों में रोकने, उन्हें नन्हें सफेद दस्तानों से पोंछने, अपने शॉल और छोटे-छोटे हाथों से उनके प्रवाह को रोकने का असफल प्रयत्न कर रही थी।

"अच्छा, अब शांत हो जाओ न! आखिर ऐसी क्या बात हो गयी है?"

अवदोत्या हिचकियां लेती हुई बोली :

"बापू...मेरे ससुर...वासिली के पिता का देहान्त हो गया है...और अब ये सुअर...हम और खरीद लेंगे...! बछड़े बेच देंगे...सुअर खरीद लेंगे...और भी अच्छे... उसने ऐसा कर क्या डाला है कि ज़िले का वकील तहकीकात

के लिए पहुंचे ?... और वह क्सेनाफोन्तोवना ? ...वह बड़ी मक्कार औरत है। खुद तो चलती बनी मगर चमेली गैया को बरबाद करती गयी। आखिर उनकी हिम्मत कैसे हुई ! और बापू . जरा सोचो तो...बापू की मौत न हुई होती...तो फ़ार्म के काम में ढील आती क्यों...वकील को उनके पीछे लगा देने से पहले उनसे पूछ तो लेना था कि ऐसा क्यों हुआ ! यह अच्छा नहीं हो रहा...इसे रोक देना चाहिए...!"

आन्द्रेई उसके विचारों के तारतम्य को समझने का प्रयत्न कर रहा था।

"क्या कह रही हो तुम ? मेरी कुछ समझ में नहीं आया। कुज़मा बोर्तनिकोव की मौत की बात तो मैंने सुनी थी। पर इससे वकील का क्या ताल्लुक ? फ़ार्म में क्या हो गया है ? तुम मन को काबू में करो और सब कुछ सिलसिलेवार बताओ !"

अवदोत्या ने अपने को कुछ सम्भाला और बोली :

"यह सब उस त्रावनित्सकी की शरारत है। उसने एक कराकुली मेमना मांगा था। वास्या ने देने से इन्कार कर दिया। तभी से उस पर खार खाये है।"

आन्द्रेई को अवदोत्या पर पूरा विश्वास था। वह जानता था कि अवदोत्या किसी पर झूठा आरोप नहीं लगा सकती। फिर भी, उसने सोचा, शायद अवदोत्या ग़लती पर हो।

"वास्या ने उसे धकेल कर ड्योढ़ी से नीचे कर दिया था," अवदोत्या कहती गयी, "उसे बाहर भगाकर उसका फर का कोट बरफ में फेंक दिया था।"

"बाहर भगा कर उसका कोट बरफ में फेंक दिया था ?"

इस घटना से मसले पर एक नया प्रकाश पड़ा। कोई निर्दोष व्यक्ति चुपचाप ऐसा अपमान बर्दाश्त नहीं कर सकता था। त्रावनित्सकी ने यों तो वासिली की बहुत सी शिकायतें की थीं लेकिन इस घटना का कभी ज़िक्र नहीं किया था।

"त्रावनित्सकी से झगड़े वाली इस घटना की रिपोर्ट तुमने पहले क्यों नहीं दी ?"

"हम क्या शिकायत करते ? दूसरे बीसो काम थे हमें। फ़ार्म के दर्जनों झंझट अलग। तुमको भी तब हम लोग इतनी अच्छी तरह नहीं जानते थे, आन्द्रेई पेत्रोविच ! और जब तुम्हें जाना तब मामला पुराना पड़ गया था। हमने सोचा, बात आयी-गयी।"

"अच्छा, ठीक है। त्रावनित्सकी वाली बात तो साफ हो गयी। लेकिन यह बताओ, अवदोत्या तिखोनोवना, कि सुअर क्यों मर रहे हैं ?"

"बात यह है, आन्द्रेई पेत्रोविच, कि गोशाला की लड़कियां अपने खयाल से तो सुअरों की खाज का इलाज कर रही थीं। उन्होंने खूब गाढ़े तम्बाकू

का गरम-गरम घोल बनाया और उससे सुअरों को नहला दिया। उन्हें जितना कुछ करना चाहिए था उससे ज्यादा कर बैठीं। उन्होंने घोल बहुत गाढ़ा कर दिया। शरीर-विज्ञान बताता है कि सुअरों की खाल खास तरह की होती है—स्पन्ज की तरह—जो सब कुछ सोख लेती है। बस, सुअरों को ज़हर चढ़ गया—तम्बाकू का ज़हर! वास्या का इसमें बहुत ज्यादा कसूर नहीं है। यह पहला मौक़ा नहीं था जब सुअरों की खाज का इलाज किया गया हो। कौन जानता था कि लड़कियां ऐसी बेवकूफी कर बैठेंगी। उन्होंने सोचा, पानी में तम्बाकू खूब डाल दो, सुअर जल्दी ठीक हो जायेंगे। जो नुकसान हुआ है उसे भरने से हम लोग इनकार थोड़े ही कर रहे हैं। एक ही छोटा सा सुअर तो मरा है और कबरी का पेट गिरा है। हम अपने पास से और सुअर खरीद लेंगे। एक नई सुअरिया और कुछ बच्चे खरीद लेंगे। वास्या और मैं नये सुअर खरीदने से इनकार तो नहीं कर रहे। या कर रहे हैं? इसमें मुकदमे की क्या बात है? ऊपर से यह परेशानी! उसी दिन बापू की मृत्यु हुई थी। वास्या को खुद होश नहीं होगा कि वह क्या कह रहा है! बापू की गमी का सदमा न होता तो ऐसी लापरवाही नहीं होती। लेकिन नुकसान हम भर देंगे, आन्द्रेई पेत्रोविच! हम पूरा-पूरा हर्जाना देंगे!"

"अच्छा अब तुम मन को शांत करो, अवदोत्या तिखोनोवना! तुम तसल्ली रखो और घर जाओ। मुझे पूरा यकीन है कि तुम जो कुछ करोगी ठीक करोगी और फ़ार्म के नुकसान को पूरा कर दोगी। वासिली कुज़मिच का कुछ नहीं बिगड़ेगा, इस बात का विश्वास रखो। तुम घर जाओ और अपने पति को तसल्ली दो। समझीं? तुम किसी बात की फिकर न करो।...तो अब तुम लोग इकट्ठे रह रहे हो?"

"नहीं तो!..." अवदोत्या ने हड़बड़ा कर उत्तर दिया।

"नहीं? तो फिर क्यों वासिली के लिए इतना घबरा रही हो?—'हम और वास्या, हम और वास्या' की रट लगाये हो?"

"वह कोई दूसरा या पराया आदमी तो है नहीं!..." अवदोत्या ने सिर झुका लिया।

"दूसरा या पराया नहीं है तो तुम उसके साथ रहतीं क्यों नहीं? वह अकेला रहता है—तुम अकेली रहती हो! तुम दोनों से एक साथ क्यों नहीं रहा जाता? क्या वासिली बहुत खराब आदमी है?"

"कौन? वास्या? नहीं तो। वह बहुत अच्छा आदमी है! हज़ारों में एक है वह, आन्द्रेई पेत्रोविच! उस जैसा कोई बिरला ही होगा!"

"फिर तुम उसके साथ क्यों नहीं रहतीं? तुम कहती हो, वह बहुत अच्छा आदमी है। तुम उसे बहुत चाहती हो, यह मैं खुद देख रहा हूं!" अवदोत्या

सिर झुकाये चुप रह गयी। आन्द्रेई ने कमरे का एक चक्कर लगाया। फिर बोला : "यह दुनिया भी बड़ी अजीब है। इन दीवालों ने एक से एक अचम्भे देखे हैं। सच कह रहा हूं। अभी एक घंटे पहले सामूहिक फ़ार्म की एक औरत आई थी। बोली : 'मेरे मर्द को समझाओ कि वह मेरे साथ रहे।' कह रही थी : 'आदमी बहुत खराब है, शराबी है, बड़ा कंजूस है। मुझे अकेला छोड़ कर चलता बना है। उसे मेरे पास लौटा दो।' पर रहेगी उसी के साथ। मैंने पूछा : 'तेरा आदमी इतना खराब है, शराबी है, कंजूस है तो फिर तू उसके साथ क्यों रहना चाहती है?' कहने लगी : 'नहीं, नहीं। तुम उसे ज़रूर लौटा दो! मैं रहूंगी उसी के साथ—उसी कंजूस के साथ!' तुम उससे ठीक उलटी हो! तुम कहती हो तुम्हारा पति अच्छा आदमी है। हज़ारों में एक बताती हो उसे! फिर भी उसके साथ रहने के लिए तैयार नहीं हो! बाबा तुम औरतों को समझना बड़ा मुश्किल है।" आन्द्रेई ने हंसते हुए कहा।

अवदोत्या की आंखों में आंसू भरे थे, फिर भी चेहरे पर हल्की सी मुस्कान दौड़ गयी।

आन्द्रेई फिर गम्भीर हो गया।

"तुम कहोगी मैं खामखा तुम्हारे मामले में दखल दे रहा हूं, अवदोत्या तिखोनोवना। लेकिन मैं बेकार टोह नहीं ले रहा हूं। मैं तुम दोनों के मित्र के नाते कहता हूं! जब मैंने सुना कि तुम दोनों अलग हो गये हो तो मैंने वासिली को दोषी ठहराया, तुम्हें नहीं। मैं सोचता था—इस औरत से उम्मीद ही क्या की जा सकती है। कोने में दबी भीगी बिल्ली सी रहती है—खामोश और सहमी हुई। और तुम? पति पर विपत आई तो धड़धड़ाती हुई दरवाज़ा खोलकर चली आई। तुमने फ़ार्म के पशु-विभाग का काम सम्हाल लिया है और अब जल्दी ही ज़िले के अग्रणी कार्यकर्ताओं में तुम्हारी गिनती होनेवाली है। तुम काम में चतुर हो, तुममें चरित्र का बल है—और चूंकि बात ऐसी है इसलिए तुम्हारा भी दोष उतना ही है जितना वासिली का। तुम लोग अपना मामला निपटा क्यों नहीं सके? वासिली सही राह पर नहीं था तो तुमने उसकी ग़लती बताने के लिए क्या किया? मैं यह मानने को तैयार नहीं कि तुम लोगों जैसे दो समझदार, भले, मज़बूत इन्सान अपना मामला नहीं निपटा सकते। पारिवारिक जीवन का सुख, अवदोत्या तिखोनोवना, किसी कार्य में सफलता की तरह अपने-आप नहीं प्राप्त होता! उसके लिए मेहनत करनी होती है!"

अवदोत्या गांव पहुंची तो दोपहर हो गयी थी। वह सीधी वासिली के घर की ओर चल दी। वासिली की परेशानी दूर करने के लिए वह उसे आन्द्रेई का संदेश दे देना चाहती थी।

अवदोत्या का कलेजा मुंह को आ रहा था। वासिली के मकान की ड्योढ़ी की सीढ़ियां पार कर—जिन्हें कितनी ही बार उसने अपने हाथों से धोया था और जिनकी हर खुरचन और दाग से वह परिचित थी—उसने किवाड़ की मूठ पर हाथ रखा और धक्का दिया।

जिन कमरों में किसी समय बच्चों की किलकारियों की गूंज समाई रहती थी वे इस समय मौन और उजाड़ लग रहे थे। खिड़की में रखे गमलों में जिरेनियम के फूल कुम्हला गये थे। किसी ने मुरझाई पत्तियों को तोड़ कर अलग भी नहीं किया था। पलंग पर एक कम्बल लापरवाही से फैलाया गया था लेकिन उससे फटी चादर छिपती नहीं थी। वासिली कुर्सी पर बैठा सामने की मेज़ पर पड़े कुछ कागज़ों को देख रहा था। घने काले बालों वाला उसका सिर नीचे को झुका था। उसके पतलून की पेटी गायब थी। कोट के बटन खुले थे। चेहरा उतरा हुआ था। दो दिन से हजामत नहीं बनी थी।

उसने आंखें उठाकर देखा। यक़ीन न आने पर वह फटी-फटी आंखों देखता रह गया।

अवदोत्या तेज़ कदमों से उसके पास पहुंची। उसने उसके गले में बाहें डाल दीं और अपने निकट समेट लिया।

"वास्या, मेरे...! हाय तुम कितने दुबले हो गये हो! और ऐसे में मैं यहां नहीं थी? बापू को अन्तिम समय देख भी न पायी। यह है हालत—हम ज़िन्दा रहते हैं लेकिन ज़िन्दगी की क़ीमत नहीं समझ पाते! और तभी यकायक कोई चल बसता है!"

अवदोत्या वासिली के काले रूखे बालों को थपथपाने लगी। वासिली सिहर उठा। उसने अपना माथा अवदोत्या के कंधे में गाड़ दिया। अपनी रुलाई छिपाने के लिए वह अपना मुंह उसके शरीर में छिपा रहा था।

नारी के हृदय में प्रेम और दया के भाव प्रायः साथ-साथ ही उठते हैं। यह आकस्मात ही नहीं था कि अवदोत्या बहुधा एक शब्द के स्थान पर दूसरे शब्द का प्रयोग कर बैठती थी और जहां "प्रेम" की बात कहनी चाहिए थी, वहां "दया" की बात कहती थी। वासिली के प्रति उसकी पुरानी प्रेम भावना को कोई भी दूसरी चीज़ इतनी तेज़ी से और पूरी तरह नहीं जगा सकती थी जितनी उसकी यह निस्सहाय दयनीय दशा! अवदोत्या ने उसे बाहों में भर लिया। फिर उसके चेहरे को, बालों को और कंधे को थपथपाने लगी।

"वासेन्का ! मेरे प्यारे ! अब बैठे रहने का काम नहीं। तुम अभी घोड़ा लेकर ज़िला कमिटी के दफ्तर जाओ। आन्द्रेई ने तुम्हें आज शाम को आठ बजे बुलाया है। टीम-लीडर सर्गी को भी अपने साथ लेते जाओ। मैंने तुम्हारे मामले के बारे में सुना तो मैं सीधी आन्द्रेई पेत्रोविच के पास पहुंची। बड़ा भला आदमी है। तुम्हें खूब अच्छी तरह जानता है। मेरी भी उससे यह पहली मुलाकात नहीं थी," अवदोत्या ने अभिमान से कहा, "मैं जानती थी कि वह मेरी बात पर अविश्वास नहीं करेगा। मैंने उसे सब कुछ बता दिया है। तुम्हारा और त्रावनित्सकी का झगड़ा भी। उसने कहा : 'वासिली का कुछ नहीं बिगड़ेगा।' सुअर का क्या है, हम दूसरा खरीद लेंगे। बछड़े को बेच देंगे, सुअर खरीद लेंगे। तुम उसे समझा देना। समझे ? फ़ार्म के लोगों के सामने हमें आईने की तरह साफ और बेदाग होना चाहिए। अगर तुमसे लापरवाही हुई है तो तुम्हें उसका अच्छी तरह भुगतान भी करना होगा। तुम पेत्रोविच को सब अच्छी तरह समझा देना ! सुना तुमने ?" अवदोत्या ने उसे आदेश दिया। "अब उठ खड़े हो। जल्दी तैयार हो जाओ !"

ढूंढ़ कर अवदोत्या ने वासिली को टोपी दी, अपने हाथ से उसके गले में गुलूबंद बांधा और दरवाज़े तक उसे छोड़ने आई।

"मैं खुद तुम्हारे साथ चलती ! लेकिन इस वक्त मैं जल्दी ही पशु-विभाग पहुंचना चाहती हूं। वैसे, अब तुम्हारे साथ वहां जाने की ज़रूरत नहीं—मैं आन्द्रेई से सब कुछ कह आई हूं...। बस, अब तुम चले जाओ जल्दी !"

दूसरे दिन वासिली शहर से लौटा तो अपना मकान उसकी पहचान में नहीं आ रहा था। मकान को मांजकर चमका दिया गया था। आल्मारियों के खानों में झालरदार कटाव वाले सफ़ेद कागज़ बिछे थे। बिस्तरों पर बरफ़ जैसे सफेद गिलाफों से ढंके तकिये रखे थे।

"बापू ! अब हम तुम्हारे साथ रहेंगी ! अब हम यहां से नहीं जायेंगी !" नन्हीं दुन्या ने ऐलान किया।

कात्या एक कोने में अपना "पायनियर कक्ष" सजाने में व्यस्त थी। वह दीवार पर नेताओं की तसवीरें और स्कूल से मिले सर्टिफिकेट लटका रही थी तथा अपनी नन्हीं मेज़ पर पुस्तकें सजा रही थी।

प्रस्कोव्या की आंखों में खुशी के आंसू छलक रहे थे।

वासिली की ओर देखकर अवदोत्या मुस्करा दी।

"परौठे अभी तैयार होते हैं बेटी, तू जल्दी से लाकर साबुन और तौलिया दे बापू को।"

परौंठे लाने के बाद अवदोत्या ने फौरन खाना परसा नहीं। वह आकर अपने पति के पास बैठ गयी और उसके गले में बांह डाल कर कहा :

"पहले सब शुरू से बताओ। वहां पहुंचकर तुम सीधे पेत्रोविच के पास गये?"

"हां, हां! सीधे! और उसके कमरे के सामने मुठभेड़ हो गयी, मालूम है किससे? त्रावनित्सकी से!"

"नहीं?... सच?... फिर क्या हुआ?"

"कुछ नहीं! चुपचाप खिसक गया! चुप्पा और मौकिया है। मालूम होता है, पेट उसके है ही नहीं।"

"पेत्रोविच ने क्या कहा?"

"पेत्रोविच ने? वाह! उसकी न पूछो! सच अवदोत्या, बड़ा भला आदमी है। उससे बातें करो तो मालूम होता है ताज़ी हवा में आ गये हो।"

"तुमने कहा नहीं कि हम लोग हर्जाना भर देंगे?"

"ज़रूर! वह तो मैंने जाते ही कह दिया था—ठीक जैसे तुमने बताया था।"

अवदोत्या को वासिली से अलग हुए सिर्फ नौ महीने हुए थे! किन्तु इस अल्प-काल में ही दोनों के सम्बंधों में बुनियादी परिवर्तन आ गया था।

उनके बीच की यह दरार पटना कब शुरू हुई?

क्या उस रात फ्रोस्या के ढलवान पर? या उस शाम जब पार्टी मीटिंग में अवदोत्या ने अपना पहला भाषण दिया था और वासिली के विचारों को उससे भी अच्छी तरह व्यक्त किया था? या उस दिन जब घास के खेतों के बारे में दोनों में बहस हो गयी थी? या शायद इन नौ महीनों में कोई ऐसे विशेष क्षण आये ही नहीं और जैसे-जैसे उनमें समझदारी बढ़ी वैसे-वैसे ही उनकी भावनाएं भी परिपक्व हुईं।

रात को सोते-सोते दुन्या ज़ोर से रो पड़ी। अवदोत्या उठकर उसके पास जाने लगी तो वासिली ने उसे अपनी बाहों में जकड़ कर रोक लिया:

"तुम्हें छोड़ने में डर लगता है......क्या भरोसा, आंख खुले तो देखूं तुम्हारा पता ही नहीं है।"

"मैं क्या अब कभी तुम्हें छोड़कर जा सकती हूं, वास्या? इतने दिनों से हम लोग एक दूसरे के लिए तड़प रहे थे...घुल रहे थे...! वास्या...अबकी तो लड़का जान पड़ता है।...इस बार बेटा होना चाहिए...हम उसका नाम कुज़मा रखेंगे — उसके बाबा के नाम पर।"

वासिली ने अवदोत्या की भौहों पर से उसके बाल हटाये और फिर लापरवाही से उसका माथा और कनपटी थपथपाने लगा !

"मेरी जान ! क्या है आदमी की ज़िन्दगी भी ?...तेरह बरस पत्नी के साथ गुज़ार दो तब कहीं जाकर चौदहवें बरस में पता चलता है कि असली प्यार क्या होता है !..."

जीवन में पहली बार अवदोत्या ने वासिली के मुंह से प्यार की चर्चा सुनी थी। वासिली के शब्द उसके हृदय में उसी तरह समाये जा रहे थे जैसे धूप से तपी प्यासी धरती में बरसात की पहली बूंदें समा जाती हैं।

२. परिवर्तन

मार्च की उस सुबह वासिली और अवदोत्या में हंसी-मज़ाक का वैसा ही एक झगड़ा उठ खड़ा हुआ था जैसे इन दिनों उनमें बढ़ गये थे।

सुबह कलेवा करने के वक्त अवदोत्या को चक्कर आ गया था। तबियत खराब होने के कारण वह जाकर पलंग पर लेट गयी। वासिली आकर पलंग की पटिया पर बैठ गया।

"कोई खास बात नहीं है, वास्या !" अवदोत्या ने कहा। "अब ठीक हो गयी हूं। अब कोई तकलीफ नहीं !" उसके चेहरे पर छाया पीलापन दूर हो चला था।

"शहद खाने से तुझे चक्कर आया। मैंने पहले भी देखा है। जब तू शहद खाती है, तभी तेरी तबियत खराब हो जाती है।"

"ओहो ! तब तो बड़ा मिजाज़ी होगा तुम्हारा बेटा," अवदोत्या ने मुस्कराकर कहा। "फलां चीज़ उसे खाने को नहीं दी जायगी, फलां चीज़ उसे नहीं पचेगी ! लड़का हुआ तब तो कुज़मा नाम रखेंगे। लेकिन लड़की हुई तो ? किसी फूल पर नाम रखेंगे—जैसे मार्गरीटा, या किसी पौधे पर— जैसे विक्टोरिया।"

"वाह, सबसे बड़ा फूल तो होता है गोभी का फूल..." वासिली ने मुस्करा कर बुलन्द आवाज़ में कहा ! शिशु की कल्पना से उसके मन में जो उमंगें उठ रही थीं उन्हें वह ऊपरी रुखाई से छिपाने का प्रयत्न कर रहा था।

"हट्ट !...मेरा बेटा गोभी का फूल होगा ? नन्हीं-मुन्नी सी चीज़ ! अभी जनम भी नहीं लिया ! तुम लगे उसका मज़ाक बनाने ! चलो हटो ! मैं तुमसे नहीं बोलती।" अवादोत्या ने उसकी ओर पीठ फेर ली।

"प्यारी !"

"मैंने कह दिया न—मैं नहीं बोलती।"

"तुम भी कैसी बीवी हो !" वासिली ने ठंडी सांस ली। "समझ में नहीं आता तुम्हें कैसे मनाऊं।"

"मेरे चारों तरफ़ चक्कर लगाओ। ब्याह से पहले तुमने बीवी के चक्कर नहीं लगाये थे, सो अब लगाओ।"

दरवाज़े पर खट-खट सुनाई दी। नाटा सा गठीले शरीर का आदमी दाखिल हुआ। वैसे ही आन्द्रेई की आवाज़ सुनाई दी :

"अरे बाबा ! मैं कैसे ग़लत मौके में आ गया !"

शरम की मारी अवदोत्या झट पलंग से कूद कर खड़ी हो गयी। वासिली भी झेंप रहा था—इस समय फ़ार्म के दफ्तर में होने के बजाय वह घर पर बैठा बातें कर रहा था।

"आओ आन्द्रेई ! तुम्हारा घर है। तुम्हारा तो हमेशा यहां स्वागत है !" उसने कहा। फिर सफ़ाई देने लगा : "हम लोग अभी कलेवा करने के लिए आये हैं। तुम्हें तो हमारा नियम मालूम ही है—तड़के पांच बजे उठते हैं और काम पर निकल जाते हैं, फिर नाश्ता करने के लिए दस बजे आते हैं। कोट-टोपी उतारो और आकर तुम भी थोड़ा नाश्ता कर लो।"

आन्द्रेई वासिली की बात नहीं सुन रहा था। उत्सुकता और उत्साह से चारों तरफ़ नज़र दौड़ा कर मकान को देख रहा था। अब भी वह बात नहीं थी जो उसने बरस भर पहले देखी थी। फिर भी अब इतना तो लगता था कि यह घर है और यहां आदमी रह सकते हैं। उसने वासिली और अवदोत्या से कुछ कहा नहीं, केवल उनकी ओर देखा भर। उसकी आंखों में ऐसी सहृदयता, ऐसा परिहास और ऐसा विवेक था कि दोनों के चेहरे सुर्ख़ हो गये।

"मैं नाश्ता नहीं करूंगा। तुम लोग जल्दी खतम करलो। फिर एक चक्कर फ़ार्म का लगायेंगे। आज मैं दिन भर के लिए आया हूं। अगले हफ्ते ज़िला कमिटी के सामने तुम्हारे पार्टी संगठन पर वालेंतिना रिपोर्ट पेश करेगी। मैंने सोचा ज़रा खुद देख-भाल लूं, तुम लोगों से दो एक मसलों पर बातें कर लूं। वालेंतिना कहां है, कुछ मालूम है ?"

"वह बुद्योनी सामूहिक फ़ार्म गयी हैं ! दो-तीन घंटे में लौट आयेंगी।"

"उससे मुलाकात नहीं हुई—यह बुरा हुआ। ख़ैर, कोई बात नहीं ! चलो !"

वासिली को मालूम था कि आन्द्रेई सामूहिक फ़ार्म जीवन की मामूली से मामूली बात को भी बहुत ध्यान और गहराई से देखने की चेष्टा करता है। किन्तु उसने इतना सचेत उसे पहले कभी नहीं देखा था जितना आज। सिलेटी गरम कोट पहने—जिसमें वह ज्यादा स्वस्थ और भारी-भरकम लगता था—आन्द्रेई फ़ार्म में एक जगह से दूसरी जगह ऐसी तेज़ी से पहुंचता था कि लम्बी टांगों वाले वासिली को भी उसका साथ पकड़ना मुश्किल हो रहा था।

आन्द्रेई ने पशुशाला, गोदामों, बिजली घर और लकड़ी कटाई की जगहों का चक्कर लगाया। सभी जगह काम व्यवस्थित ढंग से चल रहा था। वासिली प्रति क्षण प्रोत्साहन और प्रशंसा के शब्द सुनने की प्रतीक्षा कर रहा था। किन्तु सेक्रेटरी अधिकाधिक मौन तथा चिन्तित होता जाता था।

"अब क्या गड़बड़ है?" वासिली ने मन ही मन सोचा। "जब फ़ार्म में सब तरफ गड़बड़ी थी तब तो पट्ठा खूब खुश नज़र आता था। बातें करते नहीं थकता था। अब ऐसे चल रहा है जैसे कोई इसके साथ है ही नहीं। अब खाईयों को देख रहा है? वहां क्या रखा है? क्या दिखाई दे रहा है इसे? ऐसे हाथ हिला रहा है जैसे अपने से ही बातें कर रहा हो! लो, फिर भागा! उफ़, कैसा पागलों जैसा दौड़ रहा है! मुझसे साथ नहीं चला जाता। चुप्पी भी कैसी साधे है! कभी-कभी तो यह आदमी मेरी समझ में नहीं आता!"

फ़ार्म का चक्कर पूरा कर चुका तो आन्द्रेई फ़ार्म के दफ्तर लौटा। देखा, वालेंतिना आ गयी है। उससे दुआ-सलाम की। पड़ोस के फ़ार्म से वह अभी लौटी थी। आन्द्रेई ने वासिली और वालेंतिना से १६४८ के उत्पादन की वह योजना मांगी, जो इन लोगों ने कुछ दिनों पहले तैयार की थी। साथ के कमरे में काफी शोर और गुल-गपाड़ा हो रहा था। पर आन्द्रेई योजना के कागज़ों पर ध्यान गड़ाये बैठा था। कभी-कभी अपने छोटे से हाथ से वह सिर खुजा लेता था, कभी अपनी नोट-बुक में कुछ लिख लेता था।

पार्टी की खुली सभा शुरू होने से पहले ही आन्द्रेई ने सब कागज़ों को देख लिया और एक तरफ रख दिया। फ़ार्म के दफ्तर में एक-एक कर कम्युनिस्ट इकट्ठा होने लगे थे।

"क्या राय है हमारी योजना के बारे में?" वासिली पूछ ही बैठा। नये वर्ष की यह योजना उसने बहुत दिनों के परिश्रम के बाद तैयार की थी और इस योजना पर उसे गर्व था।

"पार्टी संगठन में इस पर बहस हो चुकी है?"

"नहीं, अभी नहीं," वालेंतिना ने उत्तर दिया।

"सो तो दीख रहा है।"

आन्द्रेई चुप हो गया और अपनी जेब में सिगरेट और माचिस ढूंढ़ने लगा।

माचिस की डिबिया दब गयी थी। तीलियां टूट गयी थीं। सिगरेट सुलगाने में दिक्कत हो रही थी। अपने पास खड़े लोगों की उत्सुकता भरी निगाहों पर ध्यान दिये बिना वह सिगरेट सुलगाने में लगा रहा।

"मतलब क्या है तुम्हारा?" वालेंतिना ने उतावली से पूछा।

मुंह से धुएं के कई लच्छे निकालने के बाद उसने नपा-तुला उत्तर दिया :

"तुम्हारी योजना पार्टी-योजना नहीं है।"

"पार्टी-योजना नहीं है?"

"हां! यह योजना किस उद्देश्य पर पहुंचाती है? तुमने क्या लक्ष्य निश्चित किया है? किन बुनियादी समस्याओं को सामने रखा है?"

आन्द्रेई ने न तो वालेंतिना की ओर देखा, न वासिली की ओर! दूर सामने दीवार पर ही उसकी दृष्टि थी। अपने पास खड़े उलझन में पड़े लोगों की उसे कोई परवाह नहीं थी। उसके माथे की रेखाएं उभर आई थीं। वासिली मन ही मन कुढ़ उठा। कभी-कभी उसे लगता कि आन्द्रेई में "जुझारू मेंढ़े" जैसी शक्ति आ जाती है और वह डिगाये नहीं डिगता।

"यह चाहता क्या है? लोगों ने इतने परिश्रम से इतना कुछ किया है, इतनी अच्छी फसल तैयार की है! क्या इनकी प्रशंसा कर देना पाप होगा?"

आन्द्रेई वासिली की निराशा और व्यग्रता की ओर ज़रा भी ध्यान दिये बिना उसकी ओर घूम कर बोला :

"वासिली कुज़मिच! तुम्हें याद है हम लोगों में पहली बातचीत क्या हुई थी? तुमने कहा था : 'हमें जुताई में और बीजों में आपकी सहायता मिल जाय तो हम पहली फसल के समय ही यह झंझट की हालत खतम कर देंगे, दूसरी फसल तक हम दूसरे औसत फ़ार्मों जैसे हो जायेंगे और तीसरी फसल के बाद अगर किसी से पीछे रह जायें तो नाम बदल देना।' हमने तुम्हें बीजों की, मशीनों की, विशेषज्ञों की, कर्ज़े की—सभी तरह की मदद दी। तुमने भी वादा पूरा किया—फ़ार्म की हालत अब पहले जैसी नहीं है। लेकिन अब तो फ़ार्म को पहली श्रेणी के फ़ार्मों में होना चाहिए!"

"पहली श्रेणी के फ़ार्मों में!..." वासिली ने निराशापूर्ण मुस्कराहट से उत्तर दिया। "कहना तो आसान होता है, करना मुश्किल। कोशिश तो कर ही रहे हैं, लेकिन पिछड़े फ़ार्म से अच्छे फ़ार्म और अच्छे फ़ार्म से पहली श्रेणी के फ़ार्म तक पहुंचने का काम एक ही छलांग में तो नहीं किया जा सकता। यह काम रेल पर बैठ कर उग्रेन से शहर और शहर से मास्को पहुंच जाने जैसा

आसान तो नहीं है। यह तो रेल से एकदम हवाई जहाज़ पर उड़ने जैसी बात हो गयी। हमें पहले रेल का जंकशन बदलना होगा!"

"बिलकुल ठीक!" आन्द्रेई बोला। "लेकिन तुम्हारी योजना में मुझे ये जंकशन दिखाई तो नहीं देते। इसे तुम क्या कहोगे," आन्द्रेई ने योजना के कागज़ों को घृणा से दिखाते हुए पूछा, "इतने टन खाद फलानी तारीख तक इकट्ठा की जाये! इतने टन गल्ला साफ किया जाय! ठीक है! लेकिन यही सब तो पिछले साल की तुम्हारी योजना में था।"

"क्या तुमने पिछले साल की योजना की तारीफ़ नहीं की थी, आन्द्रेई पेत्रोविच?" बुयानोव बोला। "क्या तुमने उसे ठीक करवाने में मदद नहीं की थी?"

"की थी, लेकिन वह पिछले साल की बात थी मेरे दोस्त! पिछले साल तुम्हारे सामने तीन बुनियादी काम थे: फ़ार्म के किसानों को बांट कर दलों में संगठित करना, फसलों की पारी बांधना और बिजली घर की ताकत बढ़ाना। ये काम तो तुमने कर लिये। लेकिन अब? कोल्हू के बैल की तरह उसी जगह चक्कर लगाते रहोगे? फिर से वही सब तो शुरू नहीं कर सकते? कहां", उसने कागज़ों को दिखाते हुए कहा, "कहां है इस योजना में आगे कदम उठाने की बात? आगे विकास की गारन्टी कहां है? तुम्हारे शब्दों को इस्तेमाल किया जाय, वासिली कुज़मिच, तो इसमें नये जंकशन कहां हैं? वे बुनियादी कर्तव्य कौन से हैं जिनको देखकर हम कह सकते हैं— हां, इन्हें पूरा कर लिया तो हमारा फ़ार्म उन्नति के मार्ग पर बढ़ चलेगा! तुम्हारी इस योजना में कोई उद्देश्य ही नहीं है, इसमें पार्टी भावना नहीं है!"

"यह तो सिर्फ मोटी-मोटी रूपरेखा है योजना की।" वालेंतिना ने झुंझलाते हुए उत्तर दिया। "अभी इस पर न तो पार्टी मीटिंग में बहस हुई है, न किसानों की आम सभा में।"

"लेकिन ऐसी बेजान चीज़ तुमने बनाई ही क्यों?"

वालेंतिना को अपने पति पर गुस्सा आ रहा था। लगभग पंद्रह दिनों से दोनों की मुलाकात नहीं हुई थी। दोनों अपने-अपने काम में व्यस्त थे। अब दोनों में मुलाकात हुई भी तो आन्द्रेई सबके सामने उसकी बनायी योजना को भला-बुरा कह रहा था। कोई भूल दिखाई दी थी तो क्या चुपचाप अलग सुधार की सलाह नहीं दे सकता था?

"यही हालत रही तो पार्टी संगठन की मंत्री की हैसियत से मेरी मट्टी-पलीत होते देर न लगेगी!" उसने सोचा। "क्या इस बाबत बाद में मुझसे घर पर बातें नहीं कर सकता था?"

वालेंतिना के सम्मान को "पारिवारिक" ढंग से सुरक्षित रखना आन्द्रेई को कतई मंजूर नहीं था! और भी उग्र स्वर में वह बोला :

"जैसे बिना गूदे का आम, जैसे बिना फलीते की बारूद—ऐसी है तुम्हारी योजना!"

पहली मई फ़ार्म पार्टी संगठन के लोग पहले काफ़ी संतुष्ट और उत्साहित थे। इस नाटे कद, किन्तु बड़ी-बड़ी योजनाओं वाले, आदमी ने आते ही उन्हें झकझोर दिया। इसके आने से पहले सभी कुछ संतोषप्रद और शांत दिखाई देता था। लेकिन यह आया नहीं कि इसके साथ ही असंतोष और क्षोभ भी फैल गया। आन्द्रेई की नज़र न तो वालेंतिना के क्रोध भरे चेहरे पर गयी और न दूसरे लोगों के माथों पर पड़ी त्योरियों पर। वालेंतिना उसकी इस आदत से परिचित थी—आन्द्रेई जब एक बार लक्ष्य निर्धारित कर लेता था तो और सब कुछ भूलकर उसी की ओर बढ़ता था। आन्द्रेई उठकर खड़ा हुआ और कमरे में चहल-कदमी करने लगा! नाटा, क्रुद्ध—वह उड़ने को उद्विग्न गौरैया जैसा लग रहा था।

"दूसरों को रास्ता दिखाना आसान है। यह तो कोई भी कर सकता है।" बुयानोव झुंझलाकर सोच रहा था। "मैं तो यह जानना चाहता हूं कि ज़िला पार्टी कमिटी में तुम क्या करते हो?" उसने सोचा, ज़रा पार्टी सेक्रेटरी से एक "पेचीदा" सवाल पूछा जाय।

"आन्द्रेई पेत्रोविच! तुम बुनियादी समस्याओं, नयी मंज़िलों, नये जंक-शनों वग़ैरा-वग़ैरा की बातें तो करते रहते हो। अब ज़रा यह बताओ : हमारे सामने अपने पिछड़े फ़ार्म की अवस्था सुधारने का सवाल था और तुम्हारे सामने पिछड़े हुए ज़िले की अवस्था सुधारने का। तुम्हारे इस ज़िले में आखिर वे कौन सी बुनियादी बातें और नये जंकशन हैं जिनकी तुम हमसे इतनी मांग कर रहे हो। या इन बुनियादी बातों और जंकशनों की दरकार सिर्फ़ हमें है; पूरे ज़िले को इनकी कोई ज़रूरत नहीं?"

आन्द्रेई खड़ा हो गया। उसने बुयानोव के विनम्र चेहरे पर नज़र डाली, फिर उसके प्रश्न में छिपी शरारत को भांपते ही खुश होकर बोला :

"क्यों नहीं? इनकी ज़रूरत है मेरे लिए, मिखाइल ओसिपोविच!"

"तो फिर ज़िले की योजना में ये कौन सी बुनियादी बातें हैं?"

"है बुनियाद बात। ज़रूर है।"

सेक्रेटरी के चेहरे पर एक साथ ही चिंता और दृढ़ता का भाव छा गया। चुपचाप वह खिड़की के पास जा खड़ा हुआ। उसके पिछले शब्दों और इस खामोशी ने कमरे में छाये उत्सुकतापूर्ण मौन को और भी गहरा बना दिया।

"यह बुनियादी बात है—हमारा नया मशीन ट्रैक्टर स्टेशन !" आन्द्रेई ने शांत स्वर में कहा।

उसके शब्दों ने पहली मई फ़ार्म के किसानों को निराश ही किया।

"नया मशीन ट्रैक्टर स्टेशन ! तो फिर ?" बुयानोव मन ही मन कह रहा था। "मान लिया कि नया मशीन ट्रैक्टर स्टेशन बन गया है। प्रोखारचेन्को ने बड़ा काम किया है। ज़िले की कार्यकारणी कमिटी ने बड़ा काम किया है ! बेशक पेत्रोविच ने भी मदद की है। लेकिन उसके बारे में ऐसे बातें क्यों कर रहा है जैसे ज़िले को सोने का खज़ाना मिल गया हो ?"

आन्द्रेई अपनी बातों से पैदा हुई आम निराशा को भांप तो गया, पर घबराया नहीं।

"मशीन ट्रैक्टर स्टेशन से क्या होगा, इस सम्बंध में हम जल्दी ही सक्रिय पार्टी कार्यकर्ताओं की सभा में बात करेंगे। जल्दी ही आप सबको मालूम हो जायगा कि मैं नये मशीन ट्रैक्टर स्टेशन को पूरे ज़िले के लिए एक नयी ऊंची मंज़िल क्यों कहता हूं। लेकिन यहां तो पहले इस फ़ार्म की समस्याओं पर विचार होना चाहिए। सबसे पहला और मुख्य प्रश्न फ़ार्म में पार्टी के संगठन के विकास का है !"

"हमारे दो नये मेम्बर बने हैं,—यासनेव और सर्गी।" वालेंतिना ने कहा।

"ये तो बहुत ज्यादा नहीं हुए! लेकिन खैर, इसकी वजह भी है। पिछले साल तुमने लोगों का अध्ययन किया। लेकिन अब वक्त आ गया है कि फ़ार्म के प्रभावशाली और अग्रणी किसानों को पार्टी की ओर लाने के लिए जुट कर काम किया जाय।" आन्द्रेई उंगलियां उठा-उठा कर गिनाने लगा : "कौमसो-मोल की लड़कियां तातिआना ग्रिबोवा, क्सेन्या बोल्शाकोवा, टीम-लीडर लुबावा बोल्शाकोवा और अवदोत्या बोतेनिकोवा—पार्टी मेम्बर बनने लायक हैं।"

आन्द्रेई ने अवदोत्या का नाम लिया ही था कि अवदोत्या ने दफ्तर के दरवाजे में क़दम रखा। सब लोग हंस पड़े। अवदोत्या घबरा गयी। "क्या मेरी ही बात हो रही थी ? मेरी बुराई तो नहीं की जा रही थी ?" उसके मन में प्रश्न उठे।

"तुम्हारी उम्र बहुत लम्बी है, अवदोत्या तिखोनोवना !" आन्द्रेई ने हंसकर कहा। "अब वहां दरवाज़े पर मेहमान बनी क्यों खड़ी हो। मालकिन की तरह भीतर आओ न !"

अवदोत्या को विश्वास हो गया कि उसकी निन्दा या आलोचना नहीं हो रही थी। वह चुपचाप एक कोने में जा बैठी, हाथ आंचल पर मोड़ लिये और बैठे हुए लोगों की ओर मुस्कराकर देखा। अवदोत्या पहली बार खुली पार्टी

मीटिंग में नहीं आई थी। फ़ार्म के समझदार और ज़िम्मेदार लोगों और उसके बीच जो नये, अनभ्यस्त, किन्तु आवश्यक सम्बंध स्थापित हो गये थे, उन्हें वह बहुत महत्वपूर्ण समझती थी। शुरू में इन सम्बंधों का महत्व पूरी तरह उसकी समझ में नहीं आया था। उसकी सहज बुद्धि को यही लगा कि यह सब स्वाभाविक है। किन्तु जब उसने देखा कि जिन लोगों को वह सबसे ज़्यादा चाहती है वे उसे अपने दायरे में खींचने की कोशिश कर रहे हैं तब, हर भली चीज़ के लिए लालायित, उसने भी उनके आह्वान का स्वागत किया। धीरे-धीरे उसके मन में यह इच्छा जड़ें पकड़ने लगी कि वह भी पार्टी मेम्बर बन जाये। उक्रेन में या शहर में, जब कभी किसी कान्फ्रेंस में व्यवहार-कुशल और अनुभवी स्त्रियों से उसकी मुलाकात होती तो वह सोचती : "अवश्य ये पार्टी मेम्बर हैं!" और उसका अनुमान प्रायः ठीक ही निकलता। मिलने वाले भी प्रायः उसे कम्युनिस्ट ही समझते। जब उसे यह स्वीकार करना पड़ता कि वह पार्टी मेम्बर नहीं है, तो उसे बड़ी लज्जा मालूम होती। उसे लगता, वह दूसरों के दिल को ठेस पहुंचा रही है।

वालेंतिना ने जब एक बार उसे सुझाया कि वह पार्टी मेम्बर बन जाये तो अवदोत्या को यह बात अप्रत्याशित नहीं लगी। कुछ सोचते हुए उसने कहा :

"चाहती तो मैं भी हूं। लेकिन मैं सोचती हूं कि अभी मुझमें राजनीतिक समझ नहीं आई है।"

"हम लोग अपना एक दल बना लेंगे और अध्ययन शुरू कर देंगे। अकेली तुम्हीं तो नहीं हो। लुबावा है, यासनेव है, सर्गी-सार्जेंट है, तातिआना है, क्सेन्या है। हम सब मिलकर अध्ययन किया करेंगे।"

"हां," आन्द्रेई ने फिर अपनी बात शुरू की, "हम लोग बात कर रहे थे उन्नीस सौ अड़तालिस की आर्थिक योजना के बारे में। पिछले साल हमारे सामने मुख्य कर्तव्य था—पार्टी संगठन स्थापित करना। फिर दलों के संगठन का प्रश्न था और फसल में सुधार वग़ैरा की कुछ आम बातें थीं। लेकिन अब वक्त का तकाज़ा है कि फ़ार्म की अलग-अलग शाखाओं पर अलग-अलग ध्यान दिया जाय। फ़ार्म की हर शाखा के लिए एक-एक धुरी-केन्द्र की आवश्यकता होगी। फसलों को और अधिक सुधार सकने के लिए ज़रूरी है कि एक ऐसा केन्द्र बने जिसके चारों ओर कृषि-विज्ञान का विकास हो सके। आपके पास एक सुसज्जित प्रयोगशाला होनी चाहिए। पशुओं के लिए नयी पशुशाला और काफी मात्रा में पानी की ज़रूरत होगी। आप लोगों की योजना में पशुओं को चराने के लिए बाहर ले जाने और चारे के प्रबंध के लिए एक दल बनाने का भी सुझाव है। यह ठीक ही है। तरकारी के बाग की जगह

बदलकर उसे अब ऐसी जगह देनी चाहिए जहां काफी सिंचाई हो सके। आज सुबह मैं खड्ड की तरफ से आया हूं। जून महीने तक उसमें पानी ही पानी रहता है, पोलियांका नदी की एक पतली शाखा भी उधर है। वहां तालाब बांधा जा सकता है।"

आन्द्रेई की बातों से शुरू में जो निराशा और चिन्ता पैदा हुई थी वह उत्सुकता में बदल गयी। कमरे में और लोग भी आ रहे थे। आन्द्रेई बीच में बोल उठा :

"ओ हो! आपके यहां तो अच्छी खासी फ़ौज मौजूद है, साथियो! सभी पुराने परखे-पहचाने लोग हैं!"

नये आने वाले प्रत्येक व्यक्ति से हाथ मिलाता हुआ आन्द्रेई हरेक से कोई न कोई हंसी-मज़ाक या तसल्ली की बात कह रहा था।

"कहो, क्सेन्या? अबकी जाड़ों में आगे अध्ययन के लिए शहर जाओगी न?"

क्सेन्या शरमा गयी।

"तुम वह बात भूले नहीं, आन्द्रेई पेत्रोविच?"

"कौन? मैं? अरे नहीं! ज़िला पार्टी सेक्रेटरी को भूलने का कोई हक नहीं! जाड़ों में तुम आगे पढ़ाई के लिए जाओगी।"

क्सेन्या ने कुछ परेशानी से सर्गी की ओर देखा। क्सेन्या का उद्देश्य आन्द्रेई से छिपा न रहा। मुस्कराकर बोला :

"हां, हां! इनका भी इंतज़ाम हो गया है। दोनों साथ जाओगे। और तुम पिमेन इवानोविच! तुम ज़िले के स्वास्थ्य विभाग के दफ्तर चले जाओ। सैनेटोरियम तक मुफ्त पहुंचाने के लिए एक टिकट तुम्हारा इंतज़ार कर रहा है। बोवाई के वक्त तक तुम्हें तगड़ा-तन्दुरुस्त हो जाना है!"

नाटे से ज़िला सेक्रेटरी का जादू जैसे-जैसे असर कर रहा था, वैसे-वैसे ही वासिली का क्रोध भी काफ़ूर होता जा रहा था।

"कभी-कभी तो ऐसा लगता है जैसे इसे अपने आस-पास के लोगों का ध्यान ही नहीं है, जैसे यह टैंक है और अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए सब-कुछ रौंदता-कुचलता चला जा रहा है, लेकिन गहराई से देखो तब मालूम होता है कि इसे हरेक का ध्यान है। मुसीबत में फंसे हर आदमी की मदद करने को तैयार है—जैसे मेरी। रही योजना की बात, सो बात तो इसने बड़ी कड़ी कही है, लेकिन कही है बड़ी मौजूं बात!"

कमरा भर चुका था। हंसी-मज़ाक के फौव्वारों के बीच गम्भीर बातचीत भी चल रही थी।

"आज से नया साल शुरू होता है।" वासिली ने वालेंतिना की ओर झुककर धीरे से कहा। "पिछले साल का काम हम लोगों ने पहली पार्टी मीटिंग से शुरू किया था। सिर्फ तीन आदमी थे हम! याद है? तुमने मेरे हंसकर बातें न करने की शिकायत की थी?"

वालेंतिना को भी पुरानी बातें याद हो आई। उसने सिर हिलाकर कहा :

"जी हां! और आपने मुझसे कहा था—तू जाकर बांसरी बजा!... लगता है उस बात को हुए पूरा युग बीत गया है!"

"अरे, अब हम लोग बड़े हो गये हैं।" वासिली ने मुस्कराकर कहा। फिर अपनी छुटी दाढ़ी सूतते हुए ऊंची आवाज़ में बोला : "अच्छा साथियो! अब सभा की कार्रवाई शुरू होती है।"

ज़िला पार्टी कमिटी में वालेंतिना की रिपोर्ट पर विचार हो जाने के बाद पहली मई सामूहिक फ़ार्म के लिए नये वर्ष के काम की योजना निश्चित हो गयी। फ़ार्म के जीवन में उत्साह की एक नयी लहर दौड़ गयी।

सभा के अगले दिन बुयानोव ने वासिली से पूछा : "इतनी बड़ी-बड़ी इमारतों की योजना तो तुमने बना डाली है, लेकिन यह काम करेगा कौन?"

"तुम मिखाइल ओसिपोविच, और कौन!" वासिली ने दृढ़ता से उत्तर दिया।

बुयानोव कुर्सी से उछल पड़ा।

"दिमाग़ तो ठीक है तुम्हारा, वासिली कुज़मिच?"

"दिमाग़ मेरा बिलकुल ठीक है, मिखाइल ओसिपोविच!" वासिली ने गम्भीरता से उत्तर दिया। "इंजीनियर किराये पर तो लाये नहीं जा सकते, न उन्हें इस तरह लाने की ज़रूरत है! काम हमीं लोगों को संभालना होगा—ज़िले की मदद से। तुमने इंजीनियर का कुछ काम सीखा भी है, तुम हो भी योग्य आदमी! इमारती काम की जिम्मेदारी तुम्हारी होगी।"

"तुम बात गम्भीरता से कर रहे हो, या सिर्फ मेरा मज़ाक बना रहे हो?"

"मैं पूरी गम्भीरता से बात कर रहा हूं। बिजली घर तुमने ठीक से चालू कर ही दिया है। छः महीने के लिए हम लोग तुम्हें सब कामों से छुट्टी दे देंगे। तुम किरोव ज़िले के 'लाल अक्तूबर' फ़ार्म चले जाना। वहां इमारती काम ज़ोरों से चल रहा है—वह भी बिना किसी बाहरी मदद के। तुम्हें मालूम हो जायगा कि वे लोग कैसे काम करते हैं। हम ज़िला इंजीनियर से कहेंगे कि तुम्हें अपनी मातहती में ले ले। किताबें? किताबों का बन्दोबस्त

हम लोग करेंगे। नक्शे बनाने का सामान? हम लोग खरीद देंगे। नक्शों का कागज़? हम ला देंगे। नक्शे बनाने की मेज़? हम लोग बना देंगे।"

"क्या मुझे फालतू आदमी समझ रखा है? जो नया काम देखा जोत दिया। तुम्हारे कह देने भर से मैं इमारती इंजीनियर नहीं बनने का।" बुयानोव ने विरोध किया।

"तुम बनोगे!" गम्भीरता से वासिली ने बातचीत समाप्त की।

कई सप्ताह बाद पहली मई फ़ार्म का अपना "इमारती विभाग" भी खुल गया। एक अलग कमरे में नक्शे बनाने की मेज़ पर ड्राइंग का सामान, परकालें, पैमाने, सेट-स्क्वेयर और टी-स्क्वेयर, कितने ही नक्शे—जैसे पशु-विभाग, पानी की टंकी, गांव की क्लब, अस्पताल, शिशुशालाओं आदि के—लदे थे। और इस मेज़ के पीछे कुर्सी पर बैठे थे—मिखाइल बुयानोव।

बुयानोव रोज़ कोई न कोई नयी मांग वासिली के सामने पेश करता रहता—कभी सामान की, कभी आदमियों की, कभी गाड़ियों की। हर मांग के साथ भूमिका रूप में यह प्रश्न जुड़ा रहता:

"तुम्हीं ने मुझे इमारती विभाग का मुखिया बनाया था न? अब क्या मैं बैठे-बैठे अंगूठा चूसूं? ईंटें और टीन कब मिलेंगी? ज़रा हाथ-पांव हिलाओ, वासिली कुज़मिच! इमारती काम का मौसम आ ही गया समझो।"

और वासिली ने हाथ-पैर हिलाने शुरू भी कर दिये थे। कटे हुए जंगल-वाली जगह लेने में उसे कम दिक्कत नहीं उठानी पड़ी। लड़-झगड़ कर उसने लिखा-पढ़ी करा ली और ग़ैर-मुस्तकिल तौर पर दस साल के लिए यह जगह फ़ार्म को मिल गयी। शर्त यह थी कि ज़मीन को खेती लायक बनाने और पास के दलदलों को सुखाने की ज़िम्मेदारी फ़ार्म की होगी। कटे जंगल लेकर खेत बनाने का सुझाव सबसे पहले अल्योशा ने दिया था इसलिए उसकी स्मृति में फ़ार्म वालों ने इस जगह का नाम 'अल्योशा का टीला' रख लिया। ज़मीन की नाप करनेवाले सरकारी आदमियों ने भी अपने नक्शों में इस जगह का नाम 'अल्योशा का टीला' रखा था। इस तरह यह नाम क़ानूनी हो गया। यहां भी बारी-बारी से फसल उगाने और इमारती काम शुरू करने की व्यवस्था करनी थी। अस्तु, यहां काम करने के लिए एक खास दल भेजा गया। इतवार को फ़ार्म भर के लोग, स्कूल के बच्चे, बूढ़े और बुढ़ियां काम के लिए टीले पर पहुंच जाते। यहां वे बड़ा मन लगाकर काम करते। पिछले साल नियत काम से अधिक मेहनत के लिए अतिरिक्त मज़दूरी भी मिली थी। इसलिए

अब पोल्यूखा, मलानिया और क्सेनोफोन्तोवना जैसी कामचोर भी बिना बुलाये टीले पर जा पहुंचतीं।

जो लोग सामूहिक फ़ार्म से बरसों से अलग थे वे भी अब फ़ार्म के दफ्तर पहुंच कर वासिली से 'कुछ काम' देने की मांग करते। काम की भला क्या कमी थी?

सांझ को फ़ार्म के दफ्तर और गांव की क्लब में भीड़ सी जमा रहती। कृषि शिक्षा केन्द्र, राजनीतिक शिक्षा केन्द्र और शौकिया कला केन्द्र—सभी में आदमियों की भरमार थी। कभी-कभी तो जगह के लिए लोगों में कहा-सुनी तक हो जाती थी।

लेना ने भी—जो अल्योशा की मृत्यु के बाद सभी चीज़ों से विरक्त सी हो गयी थी—अपने को इस भंवर में खिंचते पाया।

लेना का मन बहलाने के लिए वालेंतिना एक अरसे से उसे किसी न किसी काम में घसीटने का असफल प्रयत्न करती रही थी।

"रहने भी दो मुझे!" लेना यही उत्तर देती। "मेरे लिए स्कूल का काम और बच्चे बहुत हैं! मैं उन्हीं में खुश हूं। जवानों के भीड़-भड़क्के में मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"तुम तो सिमट कर बिलकुल अपने अन्दर जा बैठी हो। यह ठीक नहीं। जवानों के भीड़-भड़क्के में अच्छा नहीं लगता तो हम बड़ों के बीच आओ। हम कम्युनिस्ट और पार्टी सदस्यता के उम्मीदवार शाम को एक साथ बैठ कर लेनिन, स्तालिन और मार्क्स की पुस्तकों का अध्ययन करते हैं। इस काम को हम लोग बहुत ज़रूरी समझते हैं। वहां तो एक बार आओ न। ज़रूर तुम्हारा मन लगेगा!"

"मुझे ऐसे ही रहने दे, वाल्या!"

वालेंतिना ने लुबावा से उसके यहां जाने को कहा।

"तुम ज़रा उसके यहां हो आओ न, लुबावा। तुम तो खुद सब दुख झेले पड़ी हो। तुमसे ज्यादा उसे और कौन समझा सकेगा! तुम्हारी बात वह मानेगी भी।"

"हां। मैं तो खुद सोच रही थी उसके यहां जाने को।"

एक सांझ की बात है। दादी वासिलिसा के सूने घर में बैठी लेना कुछ पुराने कागज़ पलट रही थी। अल्योशा की कापियां उसके हाथ पड़ गयीं। लेना किताबों की आलमारी के पास ज़मीन पर ही बैठ गयी। अल्योशा के हाथों की लिखाई देखते-देखते उसकी आंखों से आंसू बह चले। पुरानी बातें उसे फिर याद हो आईं। पहले दिन दोनों का एक मेज़ पर आमने-सामने पढ़ने बैठना! अल्योशा की लम्बी-लम्बी पलकें! अल्योशा का बोल-बोलकर

अपना पाठ याद करना—"...यदि किसी त्रिकोण का एक कोण सम हो...!" क्या मालूम था कि ऐसा हो जायगा? बरस भर से कुछ ही ऊपर के काल में सब कुछ सामने आ गया—प्रेम भी, सुख की उमंगें भी और मौत भी।

लुबावा बिना किवाड़ खटखटाये भीतर चली आई। लेना न उठकर खड़ी हुई, न आंसू ही पोंछे। लुबावा से उसने अपना दुख नहीं छिपाया। एक कुर्सी खींचकर लुबावा चुपचाप लेना के पास बैठ गयी और उसके बालों पर अपना खुरदरा हाथ फेरने लगी।

"दुख भी तभी दुख जान पड़ता है जब आदमी ने सुख देखा हो।"

"क्या?" लेना ने पूछा। लुबावा की बात पूरी तरह उसकी समझ में नहीं आई थी।

"जिसने असली सुख जाना नहीं वह थोड़े सुख से संतुष्ट हो जायगा। लेकिन जिसने असली सुख जाना है और उसे खो दिया है, उसी को गहरी पीर होती है। तेरी हालत बुरी है, लेनोच्का! मैं जानती हूं। पर मेरी हालत तो और भी बुरी थी।"

"क्यों?"

"बहुत सी वजहें हैं, लेनू! तू तो अभी जवान है, खूबसूरत है, पढ़ी-लिखी है। किताबों से भी मन बहला सकती है। तेरी पूरी ज़िन्दगी सामने पड़ी है। तेरी ज़िन्दगी में अभी फिर सुख के अंकुवे फूटेंगे।"

"मुझे नहीं चाहिए...मुझे और कोई सुख नहीं चाहिए..."

"सुख के लिए अभी से दरवाज़े-खिड़कियां बन्द करने मत भाग। ज़िन्दगी को गारत मत कर। सुख अभी भी लौटेगा। मैं उम्र में तुझसे बड़ी, बेपढ़ी-लिखी, बाल-बच्चों वाली औरत थी! खूबसूरती में तेरा पासंग भी नहीं थी! फिर भी दो बार सुख ने मेरे दरवाज़े खटखटाये।"

"कैसे? मुझे बताओ न!" लेना ने पूछा नहीं, आग्रह किया।

दोनों की समान पीड़ा और दोनों के समान दुख ने ही लेना से यह प्रश्न करवाया था। विस्मय से फैली उसकी आंखें लुबावा के विषादपूर्ण चेहरे पर गड़ी थीं। फ़ार्म में कभी किसी ने नहीं सुना था कि सुख ने दुबारा लुबावा का दरवाज़ा खटखटाया था। सभी उसे दुखी और एकाकी विधवा मानते थे। "मैं नहीं जानती थी कि इनकी ज़िन्दगी में भी कोई राज़ है!" लेना ने मन ही मन कहा। उसने फिर आग्रह किया।

"बताओ न लुबावा!"

"अच्छा तो सुन! यह बात मैंने पहले कभी किसी से नहीं बताई, पर तुझे बताती हूं।" इतना कह कर लुबावा चुप हो गयी और अपनी कड़ी-कड़ी उंगलियों पर शॉल का छोर लपेटनी लगी। उसकी काली आंखें एक जगह जमी थीं

मानो अपने अन्दर वह कुछ ऐसा देख रही हो जिसे और किसी ने न देखा था।
"मेरा पति मरा तो मुझे बहुत भारी सदमा पहुंचा। लेना तू तो अभी कली है, खिल ही रही है। मेरी तो तब चढ़ी नदी सी जवानी थी। मैं दूसरी औरतों के साथ नहाने जाती तो उनकी आंखें फटी की फटी रह जातीं। मेरे सामने दूसरी ऐसी लगतीं जैसे मरीज़ हों, हड्डियों का ढांचा हों। मेरा बदन ऐसा था जैसे किसी बड़े पेड़ को तराश कर बनाया गया हो! मांस-पेशियां जैसे धरती से उगी हों। रेशा-रेशा सुख की मौज-बहार के लिए तड़प रहा था! साधारण स्त्री के सुख के लिए—छातियों से लगा नन्हा-मुन्ना हो, कंधे पर किसी भले आदमी की बांह हो! पाशा के मरने की खबर आई तो शुरू-शुरू में तो मैं जैसे सुन्न हो गयी। लेकिन साल भर बीता तब बेचैनी लगने लगी। लोग भी मेरे आस-पास चक्कर लगाने लगे। बच्चे तो थे, पर क्या हुआ! एक साथ तीन आदमी पीछे पड़े थे। मैं सोचने लगी—इनमें से किसे चुनूं। फिर सोचा, अब पहले जैसा आलम तो होगा नहीं; कतई नहीं। इनमें से किसी के लिए दिल में खास जगह नहीं थी। फिर क्या फिकर कि चाहनेवाला एक है, दो हैं या तीन...। मैं ऐसी नहीं हूं कि पाप की तरफ से आंखें बन्द कर लूं। कुछ ऐसी होती हैं जो अपने को बेदाग कहती हैं। लेकिन वे पाप करती हैं छिप-छिप कर। मैं जो कुछ करती हूं खुले आम करती हूं, पूरे मन से करती हूं! फ़ार्म पर काम की बात लो—मैंने कभी अपने पर मुरौवत नहीं की। पति के लिए प्यार की बात लो—मैं अपने खून का आखिरी कतरा तक देने को तैयार थी। पाप करने की बात होती तो पाप की तरफ बढ़ने में मेरे पैर लड़खड़ाते नहीं। यह बात दिमाग में बिलकुल साफ थी। सो मैंने अपने सभी चाहने-वालों से इनकार कर दिया। मन भी बस में होने लगा। तभी सौभाग्य समझो या दुर्भाग्य—उससे मुलाकात हो गयी।" लेना ने देखा कि लुश्रावा की आवाज़ और उसका चेहरा तो शान्त था, पर उंगलियां थर-थर कांप रही थीं।
"पाशा के बाद दुनिया में मैं किसी से प्यार कर सकती थी तो उसी एक आदमी से! और उसी से मुलाकात हो गयी। जानती हो कौन था वह? पाशा का भाई। मैं उन दिनों अपनी सास से मिलने उक्रेन गयी थी। वह अल्ताई से आया था। मैंने उसे पहले कभी नहीं देखा था। मैं मकान में घुसी तो हक्की-बक्की रह गयी—सामने मेज़ के पास हू-ब-हू पाशा बैठा था। मेरे मुंह से बोल तक न फूटा। मैं तन्दूर का सहारा लेकर खड़ी हो गयी और उसे देखती रह गयी। उसने भी मुझे देखा। उसका भी वही हाल! आंखें चार हुईं। प्यार हो गया। हां, पहली झलक में ही! जल्दी ही मुझे उसके बारे में सब कुछ मालूम हो गया। उसकी घरवाली निरी अपाहिज थी, किसी काम की नहीं। न तो उससे बाहर का काम होता था, न घर का। आटा तक तो माड़ा नहीं जाता था—इससे

आसान काम और क्या होगा। मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन से लौटता तो सबसे पहले वह दोनों के लिए रोटी सेकने बैठता। बच्चे—मैले-कुचैले। फटे-पुराने कपड़े पहने। बेचारा बच्चों की खातिर ही अल्ताई से यहां आया था, जिससे घर के नज़दीक रहे। मां को भी इसीलिए यहां लाया था। पास-पड़ोस के लोगों को उस पर बड़ी दया आती थी। वे मुझसे कहते, 'तेरे ही लायक है यह आदमी। तुम दोनों मिलकर घर बसा लो। उसके बच्चों की भी ज़िन्दगी सुधर जायेगी।' उसने भी मुझसे कहा, 'घरवाली के खाने-खर्चे का इन्तज़ाम हो जायगा। बच्चों के लिए उसे कोई रंज नहीं होगा। बच्चे उससे सम्भलते नहीं हैं; वह परेशान हो उठती है।' सो मैंने हामी भर दी। लेकिन आगे कदम बढ़ाने से पहले सोचा—एक बार उस औरत से भी तो मिल लूं जिसका सुख छीनने जा रही हूं!... काश मैं उसके यहां गयी ही न होती, उसे देखा न होता। लेकिन मैं अपने को रोक न सकी। सब कुछ साफ-साफ देखना-समझना मुझे पसन्द है। देवर से तो मैंने कुछ नहीं कहा पर पड़ोस के गांव पहुंची जहां उन्होंने अपने लिए घर खरीदा था। मैं घर में घुसी। घर क्या था; मेरे यहां सुअरों का बाड़ा भी वैसा गंदा नहीं। बच्चे एक कोने में खेल रहे थे। एक मेज़ के पास बैठी एक औरत पानी में भिगोये मटर खा रही थी। पानी में डूबे मटर उंगलियों से निकाल-निकाल कर मुंह में भरती जा रही थी। मैंने उससे यह नहीं बताया कि मैं कौन हूं और क्यों आई हूं। सिर्फ इतना कहा कि मैं उसके पति के रिश्ते की हूं। उससे बातें हुईं तो मैंने देखा कि औरत दिल की बुरी नहीं है, उसे किसी से जलन-कुढ़न भी नहीं है, बस वह कमज़ोर औरत है। शरीर से भी कमज़ोर, दिमाग से भी कमज़ोर। अपने पति से उसे प्यार था। बच्चों पर वह जान देती थी। बच्चों के बारे में बातें करती-करती बेचारी रोने लगती थी। 'मेरी ज़िन्दगी में सुख कहां?' वह कहती। 'मेरा आदमी न जाने क्यों मुझे चाहता ही नहीं। वही मेरे लिए सब कुछ है। काश, वह मेरा खयाल करता। मैं तो पहाड़ तक सरका देती।' वह कहती। 'लेकिन क्या करूं। मैं तो देखती हूं कि हमारी ज़िन्दगी अकारथ हो गयी है।' कैसे उन लोगों ने अपनी हालत ऐसी कर ली—मैं नहीं कह सकती। शायद उसके आदमी ने दुत्कार दिया, दिल ही टूट गया उसका या कोई दूसरी ऐसी बात हो गयी, कह सकना मुश्किल है। बहरहाल, उन्होंने अपनी ज़िन्दगी सत्यानाश कर ली थी। तभी मैंने देखा कि वह औरत बुरी नहीं है, केवल तिरस्कृत है। वह भी—बच्चों की मां! नन्हीं बच्चियां उसे बहुत प्यार करती थीं। और, इससे बड़ा दूसरा पाप नहीं कि बच्चों को उनके मां-बाप से जुदा कर दिया जाय।"

लुबावा चुप हो गयी।

"फिर ?" लेना ने लुबावा का हाथ झटकते हुए आग्रह किया।

"फिर !... मैंने चूने से उसका घर पोता। उसके और बच्चों के कपड़े धोये। लड़कियों के लिए कुछ फ्राकें सी दीं। मित्या के (उसका नाम मित्या था) फटे-पुराने कपड़ों को टांक-टूंक कर ठीक किया। उसकी औरत से बातें कीं और उसे समझाया कि घर को सम्भाल कर रखे ... फिर चली आई।...काश, मैं उससे मिली ही न होती—कभी वहां गयी ही न होती...।"

"उस आदमी का क्या हुआ, लुबावा ?"

"मैं फिर उसके यहां गयी ही नहीं। सास को मैंने चिट्ठी लिखवा दी कि बच्चों का बुरा हाल है, तुम वहां जाकर रहो। पाशा के भाई से फिर मिलने की हिम्मत न पड़ी...! मैंने सोचा, कहीं उसने मेरा हाथ पकड़ लिया, मुझे छूने-पकड़ने लगा, तो बस ! प्यार न हो तो कोई बात नहीं—मन में आया मिल लिए, मन नहीं किया तो दुतकार दिया। प्यार में थोड़े ही ऐसे चल सकता है ? कुछ दिन बाद वह खुद ही मेरे पास आया। लेकिन तब तक मैं अपने ऊपर काबू पा चुकी थी। मैंने अपनी भावनाओं पर अंकुश लगा लिया था। तब से तो मन ही मर गया। देखो न," लुबावा अपनी हथेली में आंखें गड़ाये रही फिर धीरे से बोली, "हाथ नीबू जैसे पीले हो गये हैं। कितने गोरे और नरम थे...! लेकिन् अब तो उमंगें ठंडी पड़ गयी हैं। अब क्या है, लेनोच्का ! सब कुछ भुगत लिया ! सुख-दुख आते हैं और चले जाते हैं, लेकिन ज़िन्दगी की धारा बहती रहती है। ईश्वर जानता है लेना, मैंने बहुत बुरे दिन देखे हैं—फिर भी ज़िन्दगी से अलग होने को तैयार नहीं हूं। तू क्यों ज़िन्दगी से कतरा रही है ?" लुबावा के चेहरे पर मुस्कराहट छा गयी। "मेरी उमर तुझसे दुगनी है, फिर भी मैं पार्टी मेम्बर बनने की तैयारी कर रही हूं। कृषि विज्ञान सीखना शुरू किया है, दूसरी किताबें पढ़ रही हूं..."

सांवले चेहरे वाली इस अधेड़ औरत की कहानी सुनकर लेना हैरान थी। इस औरत ने क्या नहीं सहा ? अपने प्यारे पति की मौत ! पांच बच्चों का बोझ सम्भाल कर वैधव्य का जीवन ! जीवन में दुबारा आये प्रबल प्रणय के अवसर का परित्याग ! लेकिन अब भी उसमें कितनी जीवट, कितना साहस था, ज़िन्दगी से कितना प्यार था ? उसमें अब भी इतनी शक्ति और सहृदयता थी कि लेना को सांत्वना देने, अपनी मुस्कान से उसके हृदय को शांत करने चली आई ! अपनी पतली-पतली, सूखी, गरम उंगलियों से उसके बालों पर हाथ फेरा !

लेना को जीवन की ऐसी रोमांचकारी गहराई और शक्ति का परिचय मिला कि वह लुबावा से प्रश्न पूछना भूल गयी। उससे कुछ बता सकना भी उसके लिए सम्भव न हुआ। वह केवल यही कहती रही :

"अभी मत जाओ, लुबावा ! ज़रा तो और ठहरो !"

"तू बुढ़ियों की तरह काले कपड़े क्यों पहने रहती है !" लुबावा ने प्यार से डांटा। "पहले जो सफेद ब्लाउज़ पहनती थी, वही पहना कर।"

लेना उस दिन राजनीतिक शिक्षा की कक्षा के लिए चली तो उसने कई महीने बाद फिर वही रेशमी ब्लाउज़ पहना जो अल्योशा को बहुत पसंद था। वह जाकर आईने के सामने खड़ी हुई। चुस्त सफेद ब्लाउज़ में लेना को उसी दुबली-पतली लड़की का रूप दिखाई दिया जो अल्योशा को इतनी प्यारी थी। यही थी 'अल्योशा की लेना'। सहसा उसके सामने अपने आगामी जीवन की झांकी नाच गयी—एक अनुभवी, दृढ़ और साहसी महिला, लुबावा की ही तरह ! अभी भी कितना सीखने को था, कितना देखने को था ! लेकिन, यह लेना कितनी ही क्यों न बदल जाय, वह दुबली-पतली 'अल्योशा की लेना' सदा उसके अन्दर बनी रहेगी; अल्योशा की स्मृति भी उसके जीवन की सबसे बहुमूल्य और अभिन्न वस्तु के रूप में उसके साथ रहेगी।

वालेंतिना पार्टी सदस्यों और उम्मीदवारों की राजनीतिक शिक्षा की जो कक्षा चलाती थी लेना और लुबावा भी उसी में पहुंचीं। लेना का खयाल था कि वालेंतिना कोई पुस्तक पढ़कर या पत्रों में से कोई लेख पढ़कर लोगों को समझाया करती होगी। पर वहां बात दूसरी ही थी। सब लोग एक साथ बैठे घुलमिल कर बातचीत कर रहे थे, जैसे उनमें विशेष अपनत्व हो ! उसे यह समझते देर न लगी कि ये लोग यहां पहली बार एकत्रित नहीं हुए, कि उनके बीच घनिष्ट सम्बंध स्थापित हो चुके हैं—ऐसे सम्बंध जो यकायक किसी नवागन्तुक की समझ में नहीं आ सकते। इस घनिष्टता की विशेषता यह थी कि ये लोग एक-दूसरे की आलोचना करने से चूकते नहीं थे, फिर भी उनके अपनत्व में शिथिलता नहीं आने पाती थी।

लेना को आया देख सभी बहुत खुश हुए। सबसे अधिक प्रसन्नता वालेंतिना को हुई। वालेंतिना की आंखों से लेना की पोशाक में परिवर्तन और उसके होंठों पर छाई हल्की — किन्तु पीड़ा-रहित — मुस्कान भी छिपी न रही। उसने आंखों ही आंखों में लुबावा से कह दिया : "अब यह धीरे-धीरे सभल रही है।"

"आओ बैठो, लेनोच्का ! बड़ा अच्छा किया तुम आ गयीं। अच्छी तरह बैठो। आज से हम लोग *कम्युनिस्ट घोषणापत्र* पढ़ना शुरू कर रहे हैं।"

अध्ययन का विषय सुनकर लेना को अधिक उत्साह नहीं हुआ। कम्यु-

निस्ट घोषणापत्र को वह स्कूल में पढ़ चुकी थी और उसके दिमाग में उसकी प्रारम्भिक बचकानी स्मृति मौजूद थी।

वालेंतिना ने पुस्तक के बारे में दो-चार शब्द कह कर पुस्तक अवदोत्या की ओर बढ़ा दी।

"अवदोत्या, आज तुम्हारी बारी है पढ़ने की।"

"'आज योरोप को एक हौआ आतंकित कर रहा है—कम्युनिज्म का हौआ'"—अवदोत्या ने पढ़ा। फिर इन शब्दों में निहित सौन्दर्य और शक्ति से स्तंभित होकर चुप हो गयी। उसने वाक्य को फिर दोहराया।

लेना को लगा कि इस वाक्य का आविर्भाव अभी हुआ है। ये शब्द सुने तो उसने पहले भी थे किन्तु उनमें जीवन का आभास उसे अभी पहली बार हुआ। लुबावा की गम्भीर मुख-मुद्रा ने, पिमेन इवानोविच के चेहरे पर छाई उत्सुकता ने, अवदोत्या की आंखों में उत्साह और प्रसन्नता की ज्योति ने इन शब्दों में नया जीवन डाल दिया था। अब उसकी समझ आया कि क्यों लुबावा यहां पहुंचने के लिए इतनी उतावली हो रही थी, क्यों यासनेव, अवदोत्या, बुयानोव, वासिली तथा नवयुवक संघ के लड़के-लड़कियां इस अवसर की इतनी उत्सुकता से प्रतीक्षा करते थे।

मानसिक भूख सोवियत लोगों की विशेष प्रवृत्ति है। उसी से खिंचकर ये लोग ऐसे अध्ययन और विचारों के आदान-प्रदान के लिए यहां आ जमा होते थे। मानवता के विषद, उदार और भव्य ज्ञान की धारा—समय और स्थान के प्रतिबंधों को तोड़कर—इस छोटे से कमरे में भर जाती थी और अध्ययन के ये क्षण असीम पवित्रता और साहचर्य के क्षण बन जाते थे।

"'इस हौए को भगाने के लिए बूढ़े योरोप के सत्ताधारी एक हो गये हैं'"—अवदोत्या पढ़ रही थी। लेना का हृदय इन शब्दों को सुन कर आन्दोलित हो रहा था। वह सोच रही थी: "एक सौ वर्ष पहले लिखे इन शब्दों में आखिर कौन सी शक्ति है जो अवदोत्या, लुबावा, क्सेन्या और तातिआना को द्रवित कर रही है। यह न तो कविता है, न गीत, न परियों की मोहक कहानी...! सीधे-सादे कठोर सत्य को व्यक्त करने वाले सीधे-सादे कठोर शब्द! फिर क्यों इनमें गीत का माधुर्य भी है और लौह अनुशासन की दृढ़ता भी?"

पहला पैराग्राफ पढ़ा जाने के बाद वालेंतिना ने पूछा:

"अच्छा साथियो, इसे सुनकर आपको कौन सी बात याद आती है? 'इस हौवे को भगाने के लिए...सारे सत्ताधारी एक हो गये हैं' शब्दों से इन पिछले दिनों में पढ़ा कौन सा वक्तव्य आपको याद आता है?"

"हमें याद आता है पिछले सितम्बर में कम्युनिस्ट पार्टी के प्रतिनिधियों की कान्फ्रेंस का वक्तव्य," यासनेव बोल उठा। "*कम्युनिस्ट घोषणापत्र* में

बूढ़े योरोप की शक्तियों के कम्युनिज़्म-विरोधी जेहाद में एक हो जाने की बात कही गयी है और कम्युनिस्ट-प्रतिनिधियों के वक्तव्य में अमरीका और इंगलैंड के साम्राज्यवादियों द्वारा सोवियत संघ और जनवादी जनतंत्रों के विरुद्ध धर्मयुद्ध की, यानी एक नया युद्ध छेड़ने की धमकी की, बात कही गयी है।"

यासनेव फ़ार्म सम्बंधी बातचीत में बहुत कम—और वह भी बहुत मुश्किल से—बोलता था। परन्तु इस समय जिस उत्साह से वह बोल रहा था उससे मालूम होता था मानो फ़ार्म के मामलों में उसके लिए परेशान होने लायक कोई बात न थी और अब अन्त में उसे अवसर मिला था कि वह अपने छिपे गुणों और योग्यता का प्रदर्शन कर सके।

लेना बहस सुनती हुई अपने पुराने साथी बूढ़े कुज़मा की याद कर रही थी। वह सोच रही थी, "इस समय बुढ़ऊ होते तो असली मज़ा उन्हें आता। बुढ़ौ को राजनीतिक बातों से बड़ा चाव था।" अल्योशा तो उसके ध्यान से कभी उतरता ही नहीं था, किन्तु इस समय यहां उसकी उपस्थिति की कल्पना करना बहुत पीड़ाजनक था।

उस शाम के बाद से लेना राजनीतिक शिक्षा की बैठकों में नियमित रूप से आने लगी।

राजनीतिक शिक्षा चक्र को भी सहसा एक नया सदस्य मिल गया।

प्योत्र एक बार गांव की क्लब में बैठा दीवाल-पत्र के लिए मुख्य शीर्षक बना रहा था।

"यहां पर मेरे बैठने से तुम्हें कोई अड़चन तो नहीं?" उसने वालेंतिना से पूछा।

"नहीं, कतई नहीं!"

वह ज़रा एक ओर को सरक कर बैठ गया और फिर अपने विचारों में डूबा हुआ पत्र का शीर्षक बनाने लगा। सहसा अवदोत्या के मुख से एक वाक्य सुनकर वह चौंक पड़ा :

"'मज़दूरों के पास खोने के लिए अपनी बेड़ियों के सिवा और क्या है? जीतने के लिए उनके सामने पूरी दुनिया पड़ी है!'"

सदा गायों, दूध, भूसे और सुअरों का हिसाब रखनेवाली इस परिचित अधेड़ स्त्री के मुंह से ये शब्द उसे इतने अजीब—बल्कि इतने असंगत—लगे कि उसने पेंसिल रख दी और चुपचाप अवदोत्या की ओर देखने लगा। अवदोत्या के चेहरे पर छाई गम्भीरता और तेज ने उसे और भी विस्मित कर दिया।

"क्या सचमुच यह अवदोत्या बोल रही है," प्योत्र सोच रहा था, "या मैं सिनेमा देख रहा हूं..."

प्योत्र और ध्यान से सुनने लगा। वह इस वार्ता को यों ही, धोखे से सुन रहा था—इस भावना ने प्योत्र में और भी उत्साह जाग्रत कर दिया। प्योत्र शिक्षा की ऐसी बैठकों या मंडलियों आदि में पहले भी गया था पर वहां उसे अच्छा न लगता था। लगातार दो-तीन घंटे बैठे रहने के लिए 'मजबूर हो जाना' प्योत्र जैसी उद्धति प्रकृति के व्यक्ति के लिए असह्य था। जहां ज़रा भी मजबूरी वाली बात होती, प्योत्र का उत्साह ठंडा हो जाता।

लेकिन इस सभा में उसे बैठने की मजबूरी नहीं थी। यहां जब भी उसका मन चाहे वह आ सकता था और जब जी चाहे—शिष्टाचार को भंग करने का खतरा मोल लिये बिना—जा सकता था। संभवतः यही कारण था कि उस दिन प्योत्र अंत तक बैठा रहा।

बैठक समाप्त होने के बाद घर लौटते हुए वह खिन्न मन से सोच रहा था: "हूं। ये लोग खुद तो बैठ कर ऐसी-ऐसी बातें करते हैं और मुझे बताते भी नहीं; सब कुछ गुप्त रखते हैं!" उसे इस बात पर क्रोध आ रहा था कि इन लोगों के कौन से ऐसे सुरखाब के पर लगे हैं कि ये बातें सुनने का अधिकार फ़ार्म मेम्बरों के थोड़े से लोगों को ही है!

अगले हफ्ते राजनीतिक शिक्षा की बैठक का दिन आया तो प्योत्र ने भी वहां कोई दूसरा काम निकाल लिया और वहीं आकर बैठ गया। बाद में तो उसका यह नियम हो गया कि जब भी गांव-क्लब में ऐसी बैठकें होतीं वह कोई न कोई बहाना निकाल कर वहां आ धमकता।

बैठक में इस 'स्वतंत्र सदस्य' को उपस्थित देखकर वालेंतिना उसे भी बहस में खींचने लगी। पर प्योत्र अपनी भौंहें सिकोड़ कर कुछ ऐसा मुंह बना लेता जैसे उसे इन सब बातों से कोई दिलचस्पी न हो, वह चुप रह जाता। वालेंतिना उसकी तो उपेक्षा कर गयी, पर एक बार मौका पाकर वासिली से बोली:

"तुम खुद तो कम्युनिस्ट हो, लेकिन तुम्हारा भाई कौमसोमोल का सदस्य भी नहीं है। यह क्यों?"

वासिली ने प्योत्र से बातचीत करने की कोशिश की। परन्तु प्योत्र ने कुछ ऐसा रहस्यमय मौन धारण किया कि वासिली ने झुंझला कर कोशिश छोड़ दी।

"तू मेरी समझ में नहीं आता!" कहकर वासिली रह गया।

प्योत्र के इस रहस्यमय मौन का कारण भी था। कौमसोमोल में शामिल होने के लिए वह स्वयं बहुत पहले सोच चुका था और जानता था कि जो रास्ता उसने पकड़ा है वह उसे वहीं पहुंचायेगा। पर कौमसोमोल में वह शामिल होना चाहता था—निष्कपट मन से। और उसका मन निष्कपट था नहीं।

वह कौमसोमोल में भरती होने की सोचता नहीं कि उसे बारहसिंगे की बात याद हो आती।

वह सोचता : "अच्छा लड़का समझकर वे लोग मुझे भरती तो कर लेंगे, लेकिन मैं खड़ा बारहसिंगे के बारे में सोचता रह जाऊंगा। उनसे झूठ बोलना पड़ेगा, अपनी आंखें नीची रखनी पड़ेंगी। न! छोड़ो कौमसोमोल को! मैं जैसा हूं, भला हूं।"

दूसरे लोग तो बारहसिंगे के रहस्यमय ढंग से जंगल में मिलने की बात भूल चुके थे, पर प्योत्र को बारहसिंगे की निर्मम हत्या की याद से रातों नींद न आती। बिस्तर पर लेटा वह करवटें बदलता और अपने ऊपर दांत पीसता रह जाता।

"एक बार सब कुछ साफ-साफ कह दूं और मन का बोझ उतार दूं। फिर भले आदमी की तरह मैं भी रह सकूंगा।" वह कभी-कभी सोचता।

अल्योशा जीवित होता तो प्योत्र ने उससे कभी का अपना पाप कबूल दिया होता। लेकिन अल्योशा अब नहीं था और कौमसोमोल की नायक तातिआना थी। प्योत्र सोचता—भला लड़की से जाकर ऐसी बात कैसे कही जा सकती है। कोई लड़की कैसे समझ सकती है कि गोली उससे यों ही चल गयी थी!

एक दिन प्योत्र सांझ को फ्रोस्या के घर पहुंचा। अंगीठी जल रही थी। फ्रोस्या बेंच पर बैठी कुछ कात रही थी। क्सेनोफोन्तोवना रोज़ की तरह आज भी इस वक्त बाहर गयी थी। ऐसा अवसर देखकर फ्रोस्या और प्योत्र कुछ देर एक दूसरे के पास बैठ लिया करते थे।

"मैंने तो सोच लिया है कि मैं कम्बाइन-चालक बनूंगी।" फ्रोस्या बोली। "दल में तुम मुझे मशीन का काम समझने का मौका देते नहीं। जब देखो तब टांग अड़ा देते हो! खाद ढोते-ढोते और निराई करते-करते मैं तंग आ गयी। यह भी कोई काम है? मुझे इसमें अब कोई दिलचस्पी नहीं। तुम लोग तो फिसड्डी हो। भला मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन से तुम लोगों का क्या मुकाबला? अगले हफ्ते मैं कौमसोमोल की सदस्य भी बन जाऊंगी। तू अभी जानता नहीं मुझे पेत्रो—जब तक आगे नहीं बढ़ती, नहीं बढ़ती! लेकिन जब बढ़ने का फैसला कर लेती हूं तो ऐसी बढ़ती हूं कि आंखें फाड़े देखता रह जाय। अब बड़ी भी तो इतनी हो गयी हूं। अपने जीवन के भविष्य के बारे में सोचना चाहिए। तान्या, क्सेन्या तो पार्टी मेम्बर बनने जा रही हैं। मुझ से उनकी उमर बहुत ज्यादा थोड़े ही है। और तू पेत्रो! तू तो मेरी समझ में ही नहीं आता। पीना तू ने छोड़ दिया है! दल में काम भी तू अच्छा कर रहा है। अब कौमसोमोल का मेम्बर क्यों नहीं बन जाता?......कौमसोमोल से कोई नाराजगी है क्या? या मां मना करती है?"

"नाराज़गी कोई नहीं है! न मां से पूछने की ज़रूरत है!"

"फिर क्या बात है?" फ्रोस्या को यह समझते देर न लगी कि ज़रूर प्योत्र के मन में कोई खटका है। हाथ में थमा तकुआ गोद में रखकर प्योत्र से आंखें मिलाकर फ्रोस्या ने आग्रह किया: "फिर क्या बात है, पेत्रुन्का? बोल न!"

फ्रोस्या जब चाहती तो बहुत स्नेहमयी और सहिष्णु बन जाती थी। उसकी मीठी वाणी सुनकर प्योत्र पिघल गया।

"सुन फ्रोस्या!" प्योत्र ने कहना शुरू किया! "तुझसे एक बात बताना चाहता हूं! वह बारहसिंगा... तुझे याद है न... वह जो जंगल में मरा मिला था...! हां... तो उसे मैंने ही मारा था!"

"हाय राम! सच?" फ्रोस्या ने खुले होठों पर हाथ रखकर विस्मय से पूछा। "तू ने यह किया कैसे, पेत्रुन्का?" फ्रोस्या की गोद से तकुआ गिर गया, पर उसे उठाने के लिए वह नीचे झुकी नहीं।

"क्या बताऊं ..मैं खुद नहीं समझ पाया...मारना तो नहीं चाहता था... लेकिन वह भागने लगा तो हाथ से गोली चल गयी... बस! .. मैं चाहता था ... वह खड़ा रहे... मुझे बहुत अफ़सोस हुआ, बहुत ज़्यादा अफ़सोस हुआ।"

"अफ़सोस?" फ्रोस्या के माथे पर चिंता की रेखाएं बन गयीं। वह प्योत्र की मानसिक स्थिति समझने की कोशिश कर रही थी। प्योत्र की उस समय की स्थिति की कल्पना में वह डूब गयी।

"हूं! मेरा मन कर रहा था कि धाड़ मारकर रो पड़ूं। क्या बताऊं कितना सुन्दर था बारहसिंगा! खूब भरा हुआ गोल शरीर! पतली-पतली टांगें! ज़रा पीछे को झुका सिर! पीठ को छूते सींग! उफ़!..." बारहसिंगे के सौन्दर्य की स्मृति ने उस मूर्खताभरे हिंसक निशाने की याद को और भी पीड़ाजनक बना दिया था। "अब मैं कौमसोमोल में क्या मुंह लेकर जाऊं?" उसने कहा। "कई बार सोचा जाकर सबके सामने कह दूं: जो सजा देनी हो दे लें; जो जुर्माना करना हो, कर लें... मन से यह बोझ तो दूर हो... अब तू ही बता क्या करूं?"

फ्रोस्या की आंखें प्योत्र के चेहरे पर गड़ी थीं। वह सोच रही थी कि प्योत्र के लिए क्या करना अच्छा होगा, वह उसकी जगह होती तो क्या करती। अस्तु, मन में फ़ैसला कर लेने के बाद, बड़े दृढ़ निश्चय के साथ—जो उसकी अपनी विशेषता थी—वह बोली:

"हां, बेशक! जाकर कह दे! मैं समझती हूं तू अपना कसूर मान लेगा और सब कुछ साफ़-साफ़ समझा देगा तो तुझ पर मुक़दमा नहीं चलाया जायगा! बस, जुर्माना कर देंगे! लेकिन जुर्माने का क्या डर? हम लोग भर देंगे।

मानसिक बोझ से तो छुटकारा मिलेगा। बोझ भी कैसा, ओफ़ ! जुर्माने की मुझे फिकर नहीं ! तेरे मन को चैन तो मिलेगा। खुद जाकर सच्ची बात कह देगा तो लोगों में तेरी इज्जत घटेगी नहीं ! उल्टे, तुझमें उनका विश्वास बढ़ेगा। जुर्माने की तू फिकर मत कर। ज़रूरत आ पड़ी तो मैं अपनी आलमारी बेच डालूंगी ! न होगा, सिलाई की मशीन बेच दूंगी। तेरी मदद मैं करूंगी—तू जुर्माने की फिकर मत कर !"

प्योत्र के दुख में फ्रोस्या पिघली जा रही थी। उसे खुद पता न था कि प्योत्र उसके मन में कितना गहरा पैठ चुका है। प्योत्र कुछ दिन न आता तो फ्रोस्या को उसका अभाव खटकने लगता। अपनी सभी बातें वह उससे बता देती थी। पर प्योत्र के प्रति अपनी वास्तविक भावना का पता उसे तभी लगा जब उसने प्योत्र पर विपत्ति आती देखी। इस भावना से परिचित होते ही वह सजग हो गयी।

प्योत्र के वह और भी समीप आ गयी।

"तू परेशान न हो, पेत्रुन्का ! सब ठीक हो जायेगा।"

प्योत्र को यह देख बड़ी प्रसन्नता हुई कि फ्रोस्या ने उसकी बात ठीक समझ ली और उसे वही बात सुझाई जो प्योत्र खुद सोच रहा था लेकिन जिसे करने का उसे साहस न हो रहा था। अपने-आप यह काम करना उसे बहुत कठिन मालूम हो रहा था। अब फ्रोस्या का समर्थन पाकर उसका साहस बढ़ गया था। यह काम उसे अब बहुत आसान मालूम होने लगा था। फ्रोस्या के चरित्र में एक विशेष गुण था। संसार की बड़ी से बड़ी समस्याएं भी उसे हल्की मालूम होती थीं। कोई चाहे कितनी ही मुसीबत में हो, वह चाहे स्वयं आपत्ति में फंसी हो, फ्रोस्या हंसे-हंसाये बिना नहीं रह सकती थी। इसीलिए संकट के समय फ्रोस्या का साथ पाकर लोगों को सांत्वना मिलती थी।

फ्रोस्या ने प्योत्र पर आती आपत्ति को अपने पर आती आपत्ति समझा। अपना सामान बेचने के लिए वह ऐसे तैयार हो गयी जैसे इसमें कुछ सोचने-विचारने की बात ही न हो। यही देखकर प्योत्र का हृदय उसके प्रति कृतज्ञता से भर उठा था, उसके हृदय में फिर आशा की ज्योति जागी। "क्या सचमुच यह मुझसे प्यार करती है ? या यूं ही बन रही है ? ब्याह कर लेगी मुझसे ! नहीं, मुझसे प्यार नहीं करती ! यह तो बस आंख-मिचौनी खेल रही है ! बड़ी मनमौजी लड़की है। इसको समझ पाना बड़ा मुश्किल काम है !"

दोनों बड़ी देर तक बैठे ताल-मेल बैठाते रहे कि प्योत्र अपना अपराध कैसे क़बूल करेगा।

घर जाने से पहले प्योत्र ने फिर 'उसी सवाल' को उठाने का साहस किया।

"तो फ्रोस्या ! कब करेंगे हम लोग ब्याह ? करना ही है, तो टालते रहने से फ़ायदा ?"

फ्रोस्या गम्भीर हो गयी। कई क्षणों तक वह निश्चल बैठी निहारती रही। फिर एक समझदार और सम्भ्रान्त महिला की तरह बोली :

"अच्छी बात है...नये वर्ष के शुरू में सही !"

उस शाम गुसलखाने वाली घटना के बाद प्योत्र ने पहली बार फ्रोस्या के गुदगुदे गले में अपनी बांह डाली।

३. "उड़ने को तैयार !"

फ़ार्म में जब खबर आई कि मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन वालों ने चरानों को ठीक करने के लिए एक विभाग खोल दिया है तो अवदोत्या ने ठंडी सांस ली :

"अब आया है असली मौका काम करने का।"

अवदोत्या को अब तक ऐसा जान पड़ता था कि उसे हाथ-पांव बांधकर काम करना पड़ता है। नयी योजना के मुताबिक काम के लिए बहुत अधिक आदमियों की आवश्यकता थी। और आदमियों की थी कमी। कभी-कभी अवदोत्या का भी सब्र छूट जाता था और वह कह उठती :

"वसंत में काम कैसे होगा यह सोचकर रोना आ जाता है। यह करो, वह करो ! सौ काम हैं। बदल-बदलकर चारे की फसलें तैयार करनी हैं। भूसे के खेत सुधारने हैं। दलदली ज़मीन साफ करनी है। हरे चारे और गर्मियों की चरानों का इंतज़ाम करना है ! सौ काम हैं। और, आदमी ? आदमी कहां हैं ? आदमी ढूंढ़े नहीं मिलते—जैसे आकाशबेल के फूल हो गये हों।"

अवदोत्या एक दिन मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन जाने को तैयार हुई। सोचा नयी मशीनें देख आयेगी और आगे काम की योजना ठीक कर आयेगी।

"कहां भागती-फिरती हो यहां से वहां ? तुम्हें जैसे अपनी फिकर ही नहीं।" वासिली ने चिन्तित स्वर में कहा। "कुछ गड़बड़ हो गयी तो ?"

वासिली ने बात पेट के बच्चे के लिए कही थी, पर असली चिन्ता उसे यह थी कि मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन पर अवदोत्या की स्तेपान से मुलाकात हो गयी तो क्या होगा। उन दिनों स्तेपान वहीं काम करता था।

अवदोत्या को वासिली के मन के भाव भांपते देर न लगी। कोमल दृष्टि से एकटक उसकी ओर देखती हुई बोली :

"आज या कल जाना तो है ही। दोनों साथ ही क्यों न चलें?"

"नहीं, तुम अकेली ही चली जाओ! तुम तो बिलकुल तैयार खड़ी हो!"

वासिली को तो अवदोत्या ने शांत मन से उत्तर दे दिया था, पर स्तेपान से मुलाकात का भय उसे भी था।

"न जाने मुलाकात कैसी हो, क्या भावना लिये हुए हम लोग अलग हों! अब कैसा होगा स्तेपा? नहीं! मुलाकात नहीं होगी! क्यों हो मुलाकात? मुझे कारखाने में जाकर लेना क्या है। सीधे दफ्तर जाऊंगी और काम की बातें करके लौट आऊंगी। जाना भी ज़रूरी है। बिना जाये काम बनेगा नहीं!"

अवदोत्या ने एक बड़े शॉल से शरीर को अच्छी तरह ढांका—जिससे उसके आकार का किसी को आभास न हो—और मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन जानेवाली एक लारी पर बैठकर चल दी।

मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन पहुंचते ही अवदोत्या ने प्रोखारचेन्को और मुख्य कृषि विशारद निसोत्स्की से मुलाकात का इन्तजाम कर लिया और जल्दी ही उनसे बातचीत खतम करके फारिग हो गयी।

स्तेपान न कहीं दिखाई दिया, न किसी ने उसकी चर्चा की। अवदोत्या की हिम्मत बढ़ी। बाहर मैदान में आकर उसने पूछा:

"चरानों के लिए कौन सी मशीनें हैं भई?"

स्टेशन का राजनीतिक सहायक रुबानोव—एक दुबला-पतला सा आदमी, जिसकी एक बांह चमड़े की थी—अवदोत्या को चरानों की मशीनें, दलदल में चलनेवाले हल, नालियां खोदने वाली और घास छांटने वाली मशीनें दिखाने लगा। अवदोत्या मशीनों को वैसे ही थपथपा रही थी जैसे वह गायों और भेड़ों को थपथपाती थी। उसने पूछा:

"भैया, इन मशीनों के लिए किसकी बलैयां लें?"

"बलैयां लो पांच-साला योजना की!" मुस्कराकर रुबानोव ने उत्तर दिया।

अवदोत्या का काम हो चुका था। अब घर लौटने का वक्त था।

"चलो सब काम ठीक-ठाक हो गया! स्तेपान से भी सामना नहीं हुआ।" वह सोच रही थी। सहसा मन में उसे एक विचित्र शून्यता और विरक्ति का आभास हुआ।

मन मारे हुए वह चुपचाप फाटक की ओर लौट रही थी। तभी सामने से एक दुबला-पतला, रोगी सा आदमी आता दिखाई दिया। अवदोत्या को उसे जानने—उसके चुस्त कदमों और दुबले-पतले चेहरे को पहचानने में देर नहीं लगी। उसको देखते ही अवदोत्या का चेहरा पीला पड़ गया। रुबानोव,

जो पास-पड़ोस के दूसरे आदमियों की तरह अवदोत्या और स्तेपान की कहानी जानता था, चुपचाप रफूचक्कर हो गया। अवदोत्या देख भी न पायी कि वह कब और कहां लोप हो गया है।

अवदोत्या की आंखें सामने आते स्तेपान पर थीं। क्या वह भाग जाये और मशीनों के पीछे छिप जाये? आगे बढ़कर मिले? या जहां की तहां खड़ी रहे? आखिर पास की एक कम्बाइन मशीन का सहारा लेकर अवदोत्या खड़ी हो गयी। मार्च महीने की इस गरमी में बरफ पिघल रही थी। बरामदों और खिड़कियों के पटावों से बरफ की छड़ियां सी लटक रही थीं। कहीं-कहीं धूप में चमकती बूंदें गिर रही थीं। बरफ़ के अलग-अलग कण क्षण भर को चमक कर बिखर जाते थे। किन्तु सबको मिलाकर देखने पर मालूम होता था जैसे समूचे मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन पर नन्हीं-नन्हीं घण्टियां टांग दी गयी हैं। फाटक के पटाव से बर्फ की एक नोकीली छड़ी लटकी थी। उससे टपकती बूंदें तुषार और पिघलती बरफ पर गिर रही थीं। पानी के बहाव से कहीं नन्हीं नालियां बनती थीं, कहीं दीवारें और दरवाजे बनते थे, और टूट जाते थे।

स्तेपान और नज़दीक आ गया था। अवदोत्या उसके पैरों के नीचे दबती पिघलती बरफ देख रही थी। बर्फीले रास्ते पर उसके बूटों के काले चिन्ह बन रहे थे।

इस दिन के बाद अनेकों दिन आये और चले गये, लेकिन मार्च महीने की पिघलती बरफ के पहले बूंद अवदोत्या के हृदय में अंकित वसंत सुषमा के बीच स्तेपान की छवि को, स्मृति की रहस्यमय प्रक्रिया द्वारा, फिर-फिर जीवित करते रहे। बातें करती-करती अवदोत्या सहसा रुक जाती थी और अपने आस-पास के वातावरण को भूल स्तेपान के ध्यान में डूब जाती थी।

स्तेपान की नज़र बहुत कमज़ोर थी। दूर से वह अवदोत्या को पहचान न सका था। पास आकर उसने ध्यान से उसके चेहरे पर नज़र डाली। दोनों की आंखें चार हुईं। अवदोत्या ने देखा—स्तेपान अचकचा गया था, उसका चेहरा पीला पड़ गया था। और स्तेपान? वह बिना पलक झपकाये, अवदोत्या की आंखों में आंखें गड़ाये, उसकी ओर बढ़ रहा था—जैसे किसी ने उस पर जादू कर दिया हो!

अवदोत्या घबरा गयी। उसे डर लगा कि कहीं स्तेपान उसकी ओर झपटे नहीं। कहीं कुछ कर न बैठे! कहीं कोई अनहोनी न हो जाय! उसने कम्बाइन का सहारा लिया और कातर नेत्रों से स्तेपान की ओर देखती खड़ी हो गयी।

स्तेपान ने अब तक अपने आप को सम्भाल लिया था। दो कदम अवदोत्या की ओर बढ़कर बहुत शांत स्वर में बोला :

"कैसी हो, दुन्या?"

"कैसे हो, स्तेपान?"

स्तेपान ने अपना हाथ अवदोत्या की ओर बढ़ा दिया। उसकी हथेली पर बर्फीले पानी की एक बूंद टपक पड़ी। अवदोत्या ने अपना हाथ उसके हाथ में दे दिया। स्तेपान की हथेली की उष्णता और बसंत की बर्फीली बूंद की शीतलता—दोनों के स्पर्श से अवदोत्या का शरीर सिहर उठा।

"चरानों की मशीनें देखने आई हो?"

"हां, स्तेपान!"

"मशीनें अच्छी हैं।"

"हां, इनसे बहुत मदद मिलेगी!"

दोनों चुप हो गये। फिर स्तेपान ने भर्राये स्वर में पूछा:

"और सब तो ठीक है न?"

"सब ठीक है, स्तेपा! कोई शिकायत करना पाप होगा। तुम्हारा क्या हाल है?"

"ठीक ही है।"

दोनों की आंखें एक दूसरे के चेहरे पर गड़ी थीं। वे आंखें हटाते ही न थे। पलकों का भी झपकाना बन्द कर दिया था—मानो दोनों को डर था कि इन अनमोल क्षणों की कोई बात अनदेखी न रह जाय।

"बिलकुल वैसा ही है। जरा भी नहीं बदला।" अवदोत्या सोच रही थी।

"कुछ दुबली हो गयी है! कुछ-कुछ अधेड़ भी। लेकिन है बिलकुल वही।" स्तेपान सोच रहा था।

"अरे कहां हो अवदोत्या तिखोनोवना? आओ न! देर हो रही है।" फाटक के बाहर लारी पर बैठे लोगों ने पुकारा।

स्तेपान के चेहरे पर आंखें गड़ाये अवदोत्या ने अपना हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया।

"अच्छा! चलूं स्तेपा...! लोग पुकार रहे हैं...! अच्छा...!"

स्तेपान अवदोत्या का हाथ थामे रहा। उसकी आंखें पूछ रही थीं:

"तुम मुझे भूली तो नहीं हो? भूलोगी तो नहीं?"

और स्तेपान की आंखों में गड़ी अवदोत्या की आंखें दृढ़ता और स्पष्टता से कह रही थीं: "नहीं!...कभी नहीं!...आखिर तुम्हें भुलाया भी कैसे जा सकता है?"

अवदोत्या की आंखों के भाव को पढ़कर वासिली ने उसका हाथ दबाया और मुस्करा दिया।

स्तेपान ने अपने मन में न तो कोई आशा संजोकर रखी थी, न उसे किसी वांछित वस्तु की प्रतीक्षा थी। उसके बचपन के अनुभव बड़े कटु थे। माता-पिता में प्रायः ही झगड़ा हो जाता था। वे कभी अलग हो जाते, कभी साथ रहते, कभी फिर अलग हो जाते। स्तेपान कभी पिता के साथ रहता, कभी माता के साथ। कभी वह माता के लिए ललकता रहता तो कभी पिता के लिए। न यहां संतोष मिलता, न वहां। घर के झगड़े देखता तो था ही, कभी-कभी उनमें भाग लेने के लिए भी वह विवश हो जाता था। उसे अपना परिवार ऐसा लगता जैसे कोई लज्जाजनक बीमारी हो—जिसे दूसरों की आंखों से छिपाने की ज़रूरत थी। उसके भावुक हृदय पर अपने कटु बाल्यकाल के अमिट चिन्ह बन गये थे। बचपन का दुर्भाग्य उसकी स्मृति में सदा बना रहता। इसीलिए बच्चों के भविष्य की चिन्ता किये बिना लड़-झगड़ कर अलग हो जाने वाले स्त्री-पुरुषों से उसे बचपन से ही घृणा हो गयी थी। वह उन दृढ़-निश्चय एवं कर्मठ व्यक्तियों में से था जो अपने सिद्धान्तों से विचलित होने पर कभी अपने को क्षमा नहीं करते। यही कारण था कि अवदोत्या की बेटियों के पिता, वासिली, के आ जाने पर उसने अवदोत्या पर अपना अधिकार जताने की कोई कोशिश नहीं की। वह अवदोत्या को कम प्यार नहीं करता था। वासिली से डरने का भी कोई कारण नहीं था। किन्तु वह समझ गया था कि अवदोत्या और उसके बीच सुख के सम्बंधों का काल अब समाप्त हो गया है।

और अब—अवदोत्या से दुबारा भेंट होने पर—उसमें फिर अपने पुराने सम्बंधों को जगाने की इच्छा पैदा नहीं हुई। वह केवल इतना देखना और जानना चाहता था कि अवदोत्या उसे भूली तो नहीं है। इस बात से उसे इनकार नहीं था कि अवदोत्या वासिली की पत्नी है। पर वह उसकी भी तो कुछ थी! अवदोत्या के चेहरे और आंखों से वह यही जानना चाहता था कि जीवन की उन कुछ घड़ियों को जो उन दोनों ने साथ बिताई थीं, अवदोत्या भूली तो नहीं है, उन्हें भूलेगी तो नहीं। और यह उसने जान लिया था।

अवदोत्या चली गयी। स्तेपान वहीं खड़ा बहुत देर तक दूर जाती गाड़ी को देखता रहा।

रास्ते भर अवदोत्या खयालों में डूबी रही। बिना पहियों की बरफ पर फिसलनेवाली गाड़ी में छोटा सा टट्टू जुता था। बरफ नरम पड़ चुकी थी। इसलिए गाड़ी को टट्टू धीरे-धीरे ही खींच पा रहा था। गाड़ी की धीमी चाल के साथ ही अवदोत्या की स्मृति में बीते जीवन की घटनाएं भी एक-एक कर आ रही थीं।

स्तेपान एकाकी था और उसकी आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी। वासिली खूब स्वस्थ था और उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी। किन्तु इस समय अवदोत्या के मन में स्तेपान की उदारता के लिए कृतज्ञता थी और वासिली के प्रति दया का भाव। स्तेपान ने मुक्त हृदय से उसे जीवन के बहुत सुखद क्षण दिये थे; इस मुलाकात में भी उसने बड़े संयम से काम लिया था; कितनी ही देर तक वह वहीं खड़ा उसे देखता रहा था:—इसी सबके लिए उसका मन कृतज्ञता से भर उठा था। स्तेपान ने कभी कोई अनुचित बात नहीं की थी। उदारता और समझ-बूझ की दृष्टि से स्तेपान अवदोत्या के लिए आदर्श था। उसके दुबले-पतले शरीर और झुके हुए कंधों में कितना बल और कितनी गरिमा थी!

वासिली से जब अवदोत्या का परिचय हुआ था तब वह निरी लड़की थी। प्रेम और अनुभूति की मादकता से पूर्ण उसके सच्चे यौवन को जगाया था स्तेपान ने—न कि वासिली ने: और वही उसका भागीदार भी बना था। "वह बात स्वप्न की तरह आई और चली गयी! लेकिन थी कितनी यथार्थ!" वह सोचती, और इसी में उसे सुख मिलता।

स्तेपान के साथ बिताये क्षण उसकी स्मृति में नाच रहे थे। जाड़ों में अंगीठी के सामने घंटों बैठे रहना! नदी किनारे वह डरी हुई तीतरी! प्रकाश की क्षणिक रेख खींचते हुए उस तारे का टूटना! पतझड़ के लम्बे शांत दिवस!

"कितनी यथार्थ! भाग्य में यही लिखा था—मिलना और बिछुड़ जाना! क्या है ज़िन्दगी भी! पर इसकी याद कर हमें—स्तेपान को और मुझे—दुखी नहीं होना चाहिए! हमें तो इस बात की खुशी होनी चाहिए कि हम लोग कभी मिले। शायद उसी समय की स्फूर्ति जीवन में शक्ति का स्रोत बन गयी है। स्तेपा को भी कोई अच्छी संगिनी मिल जायेगी! उसका जीवन भी सुखी होगा! पर वह मुझे भूल नहीं सकेगा।"

अवदोत्या की आंखों के सामने एक-एक कर जंगलों और घाटियों के दृश्य आते जा रहे थे—वैसे ही एक विचार का स्थान दूसरा विचार ले रहा था। उसे वासिली की याद आई—काले बालों से भरा सिर, कद्दावर शरीर! अवदोत्या के मन में एक टीस उठी :

"इतना तगड़ा-तन्दुरुस्त आदमी! लेकिन है निरा बच्चा। शायद इसीलिए वह मुझे इतना प्यारा है! मेरे लिए वह बड़ा सा आदमी भी है, नन्हा सा बच्चा भी! ज़िन्दगी में उसका कोई था या है, तो मैं। स्तेपा ज्यादा मज़बूत है। स्तेपा मेरे बिना आसानी से ज़िन्दगी बसर कर सकता है—वास्या नहीं। वास्या घर में बैठा मेरे लिए छटपटा रहा होगा; जितनी देर मैं बाहर रही हूं उसे चैन न मिला होगा। छिः! क्या मैं उसे कभी छोड़ सकती

हूं। होना था सो हो गया। वे सब अब गुज़रे ज़माने की बातें हो गयीं। उन दिनों की याद मैं दिल में संजोकर रखूंगी; दिल से दूर नहीं करूंगी। लेकिन वे दिन अब फिर नहीं लौट सकते।"

अवदोत्या घर आई तो उसने वासिली को सचमुच बहुत परेशान देखा। अवदोत्या के चेहरे पर आंखें गड़ाये वह मानो भांपने की कोशिश कर रहा था कि स्तेपान से इसकी मुलाकात हुई है या नहीं! हुई है तो उसका क्या असर हुआ है! क्या उसके परिवारिक जीवन पर कोई खतरा आ रहा है? यह कौन सा खतरा है? अवदोत्या आज उसे और दिनों से ज़्यादा सहृदय, उल्लसित तथा उदार लग रही थी। वह उसका पति, उसकी सन्तानों का पिता, उसका एकमात्र अपना था! और अवदोत्या भी उसका चैन उसे फिर लौटाने के लिए, अपनी आत्मा की समूची दौलत का भंडार उसके सामने खोल देने के लिए, बेचैन हो उठी थी।

अवदोत्या के व्यवहार से सांत्वना पाकर वासिली ने पूछ ही लिया :

"क्या उससे...स्तेपान...से मुलाकात हुई थी?"

"हां, हुई थी!" शांत स्वर में अवदोत्या ने उत्तर दिया। "चरानों की मशीनें उसी ने दिखाई थीं मुझे। तुम इतने परेशान क्यों दीख रहे हो, वास्या?" वह वासिली का सिर थपथपाने लगी। "परेशान मत हो, वास्या।" यह देखकर कि वासिली के चेहरे से चिन्ता की छाया अब भी दूर नहीं हुई उसने वे एकमात्र शब्द खोज ही निकाले जिनसे वासिली को सांत्वना मिल सकती थी : "लारी में जा रही थी तब पेट में नन्हे ने ऐसी उछल-कूद मचाई कि बस! सफर तो उसे ज़रा भी पसन्द नहीं! अबकी ज़रूर लड़का होगा, वास्या। है बड़ा ज़िद्दी! लच्छन तो सब यही हैं कि लड़का है।"

अवदोत्या की बातें सुनते-सुनते वासिली की आंखें अवदोत्या की स्वच्छ निर्मल आंखों में खो गयीं! धीरे-धीरे उसके चेहरे पर छाई चिन्ता की मलिन छाया भी दूर हो गयी।

वालेंतिना घर आई थी। बड़े चाव से आज उसने खाना बनाया था। आग पर रखा शोरबा गाढ़ा हो चला था, कबाब काला पड़ने लगा था—लेकिन आन्द्रेई का अब तक पता न था। वालेंतिना चिढ़ उठी थी। समय नहीं कट रहा था। बराबर घड़ी देखती हुई कभी एक कमरे से दूसरे कमरे में और कभी दूसरे कमरे से तीसरे कमरे में टहल रही थी।

पहले दोनों का स्वप्न यह था कि इस साल वे लोग प्रायः एक-दूसरे से मिलते रहेंगे। लेकिन दोनों ही साल भर इतने व्यस्त रहे थे कि मिलने के

कम ही अवसर आये थे। कभी-कभी तो ऐसा होता कि वालेंतिना की याद से व्याकुल होकर आन्द्रेई रात में मोटर दौड़ाता हुआ पहली मई फ़ार्म पहुंचता लेकिन वहां जाकर देखता कि वालेंतिना किसी दूसरे फ़ार्म में गयी हुई है। रात में मोटर भगाता हुआ वह गांव-गांव उसे ढूंढ़ता फिरता—तब कहीं जाकर वह मिलती। आन्द्रेई किसी टीम-लीडर के घर में रात बिता देता। कभी-कभी यह भी होता कि वालेंतिना ही समय निकालकर शाम को पति के पास आती किन्तु घर के पास पहुंचकर देखती कि आन्द्रेई उसी वक्त किसी बहुत ज़रूरी काम से बाहर जा रहा है। दोनों ही अपनी बंजारों जैसी ज़िन्दगी को कोसते और उन पलों और घड़ियों को गिनते रह जाते जिनमें उन्हें साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

"क्या आन्द्रेई नहीं आयेगा और मुझे यों ही लौट जाना पड़ेगा?"—वालेंतिना कमरों का चक्कर लगाती हुई मन ही मन सोच रही थी। "पिछली बार भी ऐसा ही हुआ था। हमारे लिए तो साथ बैठकर खाना खाना भी दूर का सपना हो गया है।"

वालेंतिना के वापिस जाने को जब सिर्फ आधा घंटा रह गया तब आन्द्रेई आया। वह बहुत प्रसन्न दिखाई दे रहा था; चेहरा और आंखें चमक रही थीं।

"वाल्या! मेरी प्यारी," कमरे में घुसने से पहले ही वह बोला, "सुना तूने? तीन कृषि विशारद और आ गये हैं। एक तो तेरे पड़ोस के गांव का है। अच्छा समझदार नौजवान है। तेरी जगह सम्भाल लेगा। और सुना तूने? ज़िले का कृषि विशारद पावलीचेंको दो महीने में जा रहा है। उग्रेन में कृषि-विशारद की जगह खाली होगी। बस, अब हम लोग साथ रहेंगे!"

वालेंतिना को प्रसन्नता भी हुई और आश्चर्य भी।

"अहा! यह हो जाय तो क्या कहना! लेकिन पार्टी संगठन का क्या होगा? अल्योशा की अगेती राई पर मैं कुछ खोज कर रही हूं, उसका क्या होगा? राजनीतिक शिक्षा का काम भी जारी है। उसका क्या होगा?"

"पार्टी संगठन की ज़िम्मेदारी बुयानोव सम्भाल सकता है। राजनीतिक शिक्षा के दिन तू चली जाया करना। रही अगेती राई की बात, सो नया कृषि विशारद उसकी देखभाल कर लेगा। मालूम होता है मेरे प्रस्ताव से तुझे कोई खुशी नहीं हुई।"

"अरे, खुशी! खुशी तो मुझे ऐसी है कि...ख़ैर! लेकिन... यह सब इतनी जल्दी और यकायक..."

"वाल्या, अब हम लोगों का अलग-अलग रहना ज़रूरी नहीं ! फ़ार्म राह-रस्ते पर आ गया है । पार्टी संगठन बड़ा और मज़बूत हुआ है ! नया कृषि-विशारद भी आ गया है । तुम्हें और चाहिए क्या ? बहुत दिन बिता लीं बंजारों जैसी ज़िन्दगी !"

"हां, ठीक है ! मेरी तो जान पर बनी रहती है । पर मेरा ख़याल है कि इस फसल की बोवाई हो जाने दो । सोचती हूं... ।"

आन्द्रेई वालेंतिना की परेशानी भांप गया । हंस कर मज़ाकिया ढंग से बोला :

"तू तो जानती ही है वाल्या कि अब मैं बूढ़ा हो चला हूं ! देख ज़रा..." आन्द्रेई ने अपना सिर झुका कर दो-चार सफ़ेद बाल दिखाये, "बिलकुल बूढ़ा हो चला । अब तो कुछ दिन अपनी घरवाली के पास बैठ कर बातें करने का मौक़ा मिलना चाहिए । वह दिन अब दूर भी नहीं है । हम लोग अच्छे-खासे गृहस्थों की तरह साथ बैठ कर जाड़ों में ताश खेला करेंगे और गरमियों में गमलों में पानी दिया करेंगे ।"

जब तक वालेंतिना वहां रही आन्द्रेई हंसी और मज़ाक करता रहा । लेकिन उसके जाते ही उसकी सारी प्रसन्नता लोप हो गयी ।

आन्द्रेई ने खाली कमरों का एक चक्कर लगाया । वालेंतिना घर को खूब झाड़-बुहार कर चमका गयी थी । घर साफ़ तो खूब था लेकिन खाली-खाली सा । रहने वालों की प्रतीक्षा करता लग रहा था । किसी सोफे पर लापरवाही से फेंकी कोई अध-खुली पुस्तक, किसी कुर्सी की पीठ से लटकता नरम शॉल, हंसी के फव्वारे, बातों का शोर-गुल—कितनी कमी थी घरेलू जीवन के इन आवश्यक चिन्हों की !

"अभी तो वाल्या थी यहां ।" आन्द्रेई ने अपने मन को सांत्वना देने का प्रयत्न किया । किन्तु मन को सांत्वना मिली नहीं । "हम लोग अच्छी तरह बातें भी नहीं कर सके । जल्दी ! हमेशा जल्दी ! बातें करनी थीं इतनी—लेकिन ज़रा सी देर में कैसे हो सकती थीं । कब वह दिन आयेगा कि वाल्या साथ रहेगी ।"

आन्द्रेई चहलकदमी करता हुआ अपने सिर के पीछे खुजाता जा रहा था । पिछले कुछ दिनों से उसके सिर के पिछले भाग में दर्द रहने लगा था । इस दर्द के कारण कभी-कभी उसे नींद भी नहीं आती थी और काम में भी परेशानी होती थी । डाक्टरों ने बताया था कि यह अधिक काम की थकावट के कारण है ।

"फिर शुरू हो गया कम्बख्त ।" दुखते सिर को कोसता हुआ वह बोला । फिर मन ही मन सोचा : "नहीं । यह बीमार पड़ने का वक्त नहीं है ।

छुट्टी के लिए भी मौक़ा नहीं है। फसल की बोवाई और कटाई हो जाय फिर चाहे बीस अस्पतालों में चक्कर लगाओ।"

यह साल उसके जीवन का सबसे कठिन साल था।

पिछले साल प्रान्तीय पार्टी कमिटी में कही गयी बातें उसे फिर याद हो आई।

उग्रेन के बड़े मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन की इमारत के लिए रकम देने से प्रान्तीय अधिकारियों ने जब साफ-साफ इनकार कर दिया तो आन्द्रेई सीधा प्रान्तीय पार्टी कमिटी के मंत्री के पास पहुंचा। प्रान्तीय कमिटी के मंत्री ने प्रान्तीय कृषि-विभाग के अध्यक्ष और आन्द्रेई को साथ-साथ ही अपने दफ्तर में बुलाया था। आन्द्रेई झुंझलाया हुआ, क्रुद्ध, मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन की इमारत के लिए रकम लेने पर तुला हुआ! प्रान्तीय कृषि-विभाग का अध्यक्ष अलेक्सेयेव बहुत शांत और गम्भीर! दोनों प्रान्तीय सेक्रेटरी के निजी दफ्तर में जमे हुए थे।

"तुम्हारी दलीलें क्या हैं?" मंत्री की शांत और गम्भीर दृष्टि आन्द्रेई की ओर घूमी।

"मेरी दलीलें?"

आन्द्रेई जानता था कि रकम मिलने-न-मिलने का फैसला इस बात पर निर्भर है कि वह अपनी बातें अच्छी तरह समझा पाता है या नहीं? अपने-आपको वश में कर, बड़ी दृढ़ता और गम्भीरता से—जो उसके सुर्ख चेहरे और जलती आंखों के ठीक विपरीत थी—आन्द्रेई बोला :

"मेरा विश्वास है कि इस समय उग्रेन में ही एक नये ढंग के बड़े मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन की आवश्यकता है और उसके निर्माण की पूरी सम्भावनाएं भी हैं। पिछले कई वर्षों से उग्रेन ज़िला प्रांत में सबसे पिछड़ा गिना जाता रहा है। कमज़ोर हिस्से पर ही सबसे अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। इन सब बातों को ध्यान में रख कर ही मैं उग्रेन में एक आदर्श मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन खड़ा करने के लिए दूसरों से ज्यादा सहायता मांग रहा हूँ। मैंने माना कि हमारा ज़िला कई सालों से पिछड़ा रहने के कारण बदनाम रहा है। लेकिन अब उग्रेन में प्रगति के काफ़ी चिन्ह दिखाई दे रहे हैं। कुछ मामलों में तो वह आगे बड़े ज़िलों से होड़ लेने लगा है। इन्हीं बातों के आधार पर मैं कहता हूं कि हमारे यहां मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन का बनना सम्भव है और हम उसका पूरा लाभ उठाते हुए ज़िले की माली हालत को उन्नत बना सकेंगे।"

"और आपकी दलीलें क्या हैं?" मंत्री ने उतनी ही गम्भीरता से अलेक्सेयेव की ओर घूमते हुए पूछा।

"निर्माण के लिए जितना धन निर्धारित किया गया था उसे हमने योजना के अनुसार सभी ज़िलों में समान रूप से बांट दिया है।" अलेक्सेयेव ने कहा। "सभी ज़िलों की अपनी खास ज़रूरतें और विशेषताएं होती हैं। कामरेड स्त्रेलतसोव तथ्यों को राज्य के दृष्टिकोण से पेश करने में असमर्थ रहे हैं। उनकी दृष्टि समूचे प्रांत पर नहीं है। उनकी दृष्टि केवल उग्रेन ज़िले पर ही है।"

"पार्टी की ओर से मुझे उग्रेन ज़िले का उत्तरदायित्व दिया गया था और मैं उसी उत्तरदायित्व को पूरा कर रहा हूं।" उत्तेजित होकर आन्द्रेई ने कहा। "मेरी समझ में नहीं आता कि पिछड़े हुए ज़िले को ज्यादा सहायता देकर—उसकी कमज़ोरी दूर करने से—राज्य का अहित कैसे होगा।"

आधे घंटे तक दोनों ओर से तर्क-वितर्क होते रहे। अन्त में प्रान्तीय मंत्री ने कहा :

"मामला मैंने समझ लिया है। उत्तर कल दूंगा।"

दूसरे दिन आन्द्रेई प्रान्तीय मंत्री के कमरे में खड़ा था! मंत्री शांत स्वर में कह रहा था :

"हां, तुम आदर्श मशीन ट्रैक्टर स्टेशन बना लोगे। एक आदर्श मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन बना सकने की तुम्हारी योग्यता में हमें विश्वास भी है। लेकिन क्या तुम जानते हो कि यह उत्तरदायित्व कितना बड़ा है? तुम्हारा स्टेशन इस इलाक़े का सबसे अच्छा और सबसे बड़ा मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन होगा। आगे आने वाले कई सालों तक—जब तक दूसरे ज़िलों में ऐसे बड़े और नये ढंग के स्टेशन नहीं बन जाते तब तक—बड़े पैमाने पर फ़ार्म-मशीन केन्द्र के सुव्यवस्थित संचालन के तुम्हारे अनुभवों से ही यह इलाका लाभ उठायेगा। तुम्हें जो काम सौंपा जा रहा है उसका महत्व सिर्फ़ ज़िले तक सीमत नहीं है। अगर तुम इतना बड़ा बोझ उठा सकते हो तो आगे बढ़ो। अगर तुम समझते हो कि इतना बड़ा बोझ उठा सकने की शक्ति तुम्हारे ज़िले में नहीं है तो साफ-साफ इनकार कर दो।"

आन्द्रेई क्षण भर सोचता रहा। फिर बोला : "हम इस बोझ को उठा लेंगे।"

प्रान्तीय मंत्री से हुई बातें ज्यों-ज्यों आन्द्रेई को याद आतीं कमरे में उसकी चहलकदमी तेज़ होती जाती। सहसा खड़े होकर उसने अपने-आपसे तर्क किया : "इस तरह यहां चक्कर काटने से फायदा? मुश्किल है? ऊं? हां!

किया जा सकता है ? हां तो फिर दिमाग लगा। साफ-साफ, स्पष्ट ढंग से, ठोस तरीके से सोच। दिमाग की सारी ताकत को बटोर कर लगा!"

कठिनाइयां और उलझनें इतनी थीं कि कभी-कभी आन्द्रेई को लगता वे उसके पैर उखाड़ देंगी। भविष्य को वह और साफ-साफ देखना चाहता था: किन्तु समस्याओं और उलझनों के बादल सब कुछ धुंधला कर देते थे। उसके दिमाग में उथल-पुथल मच जाती थी।

"कम से कम आधे ट्रैक्टरों की दुबारा पूरी तरह मरम्मत की ज़रूरत है। विसोत्सकी ने तीन साल में ट्रैक्टरों के खराब होने और दूसरे कारणों से काम न कर सकने का हिसाब लगाया था। उस संख्या को देखकर घबराहट होती है। मशीनें चलाने वालों का भी सवाल उठता है...! ट्रैक्टर चालकों की जो जगहें खाली हुई थीं उनमें सिर्फ सत्तर फ़ी सदी भरी हैं। जो लोग मिले हैं उनमें से ज़्यादातर नौजवान हैं और उन्हें काम का अनुभव नहीं है। हमारे मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन को दूसरों के लिए नमूना और आदर्श बनना है, जिसमें टूट-फूट और नुकसान कम से कम हो और काम की मात्रा अधिक से अधिक निकाली जा सके, साथ ही तेल-ईंधन भी सबसे कम खर्च हो...! अरे! फिर वही। फिर कमरे का चक्कर लगाना शुरू कर दिया। मैं तो जैसे बदहवास हो गया हूं! काश, वालेंतिना इस वक्त यहां होती!... कोल्हू के बैल की तरह कमरे का चक्कर काटने से क्या फायदा। दफ्तर चलूं। वहां ज़्यादा अच्छी तरह काम कर सकूंगा।"

उसने कमरे के किवाड़ बन्द किये और दफ्तर के लिए चल पड़ा।

एक पखवाड़े बाद!

वालेंतिना ने नये कृषि-विशारद को अपना काम समझाया, पहली मई फ़ार्म के किसानों से विदा ली और अपना सामान गाड़ी में लादकर शहर की ओर चल दी।

"अब जा रही हूं अपने घर!" वालेंतिना का हृदय उमंग रहा था। "आखिर यह दिन भी आ ही गया।"

पहली मई फ़ार्म के काम और वहां के लोगों से वालेंतिना को गहरा अनुराग हो गया था। उन्हें छोड़ते उसे पीड़ा हो रही थी। किन्तु यह सोचकर उसे प्रसन्नता भी थी कि पति से वियोग और बिछोह के दिन अब समाप्त हुए और साधारण पारिवारिक जीवन बिता सकने का उसका स्वप्न साकार होने जा रहा है।

"दो महीने तो मैं घर से निकलूंगी भी नहीं। उसके लिए खाना बनाऊंगी, उसकी देख-रेख करूंगी, दिन-रात उसके साथ रहूंगी।"

"अब तो तुम हमेशा के लिए आन्द्रेई पेत्रोविच के यहां चल रही हो!" गाड़ी के ड्राइवर ने वालेंतिना से कहा। "ज़िले भर के लोग आन्द्रेई को चाहते हैं। मशीन की तरह काम करता है बेचारा! घर लौटता है तो बिलकुल अकेला! जैसे खंडहर में दुबका उल्लू हो। कितनी शर्म की बात है! मैं तो सिर्फ ड्राइवर हूं, सेक्रेटरी नहीं, लेकिन ऐसी ज़िन्दगी मुझसे भी नहीं निभ सकती। थका हुआ घर लौटता हूं तो घरवाली खिलाती-पिलाती है, दांये-बांये फुदकती फिरती है! 'वान्या प्यारे, यह बात! वान्या प्यारे, वह बात'—यही सुन लो। तुम लोगों की ज़िन्दगी भी कोई ज़िन्दगी है? एक उठा, मोटर में बैठकर पूरब को चल दिया; दूसरा उठा घोड़े पर चढ़ कर पश्चिम चल दिया।"

"हम लोग खुद उस घड़ी के इंतज़ार में थे जब साथ रह सकें, वान्या! शादी के पहले दिन से ही ज़िन्दगी ऐसी बीती है—मैं कहीं और वह कहीं। और·····! खैर, अब तो घर जा ही रही हूं। ज़रा मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन होते चलो। प्रोखारचेन्को को मुझसे कुछ काम था।"

मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन की इमारत हमेशा की तरह आज भी सहसा सुनसान खेतों में से दृष्टि के सामने उठ खड़ी हुई। लोगों की आवाज़ों और चहल-पहल से इमारत गूंज रही है।

प्रोखारचेन्को फाटक के सामने ही मिल गया।

"आओ! आओ, वाल्या!" प्रोखारचेन्को ने रहस्यमय ढंग से कहा। "आओ, ज़रा देखो तो!"

"क्या है, चाचा! कहां लिये जा रहे हो मुझे?"

प्रोखारचेन्को बिना कोई उत्तर दिये चलता रहा। वालेंतिना को साथ लिए वह कारखाने के पीछे पहुंचा। टीन के एक बड़े शेड के नीचे पन्द्रह नये ट्रैक्टर खड़े थे। ट्रैक्टर बराबर की दूरी पर ऐसे खड़े थे, जैसे परेड के लिए तैयार हों। नज़र पड़ते ही पता चल जाता था कि बहुत सजा कर खड़े किये गये हैं। ट्रैक्टरों के मुंह खेत की तरफ थे। लगता था हुक्म देने की देर है, बस वे चल पड़ेंगे।

"अब तो मामला कुछ जंचता है न?" प्रोखारचेन्को ने पूछा।

"बहुत सुन्दर!" वालेंतिना ने उत्तर दिया। "कितने अच्छे लग रहे हैं!"

"आओ!"

"ज़रा अच्छी तरह देख लेने दो, चाचा!"

"आओ भी!"

प्रोखारचेन्को वालेंतिना को फिटिंग-शॉप में ले गया।

यहां के चौड़े बरामदे में दोनों ओर लोहे में छेद करने और काटने-पीटने की कुछ बड़ी-बड़ी मशीनें रखी हुई थीं।

"ऐसा मालूम होता है जैसे यह कारखाना नहीं, चमेली का फूल है!" प्रोखारचेन्को ने कहा। "वाल्या तू ही बता—प्रोखारचेन्को है क्या बला? मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन का मैनेजर? या औद्योगिक कारखाने का मालिक? मुझ से पूछो तो मैं खुद नहीं जानता।" मशीनों की तरफ हाथ फैलाकर उसने कहा: "धातु उद्योग।"

प्रोखारचेन्को वालेंतिना को अब मशीनें ठीक करनेवाले हॉल में ले गया। एक जगह कुछ ट्रैक्टर-चालक या मिस्त्री एक बड़ी मशीन को घेरे खड़े थे।

"शाबास, मेरे बहादुरो!" प्रोखारचेन्को ने कहा। "कहो, क्या बात है?"

"इस मशीन की पंखे की गरारी कुछ बिगड़ी हुई है। इसका हिसाब समझ में नहीं आ रहा।" मिस्त्री ने उत्तर दिया।

वालेंतिना के हाथ खुजलाने लगे। मिस्त्री का काम वालेंतिना ने नहीं सीखा था पर थोड़ा-बहुत प्राविधिक ज्ञान उसे था और उस पर उसे गर्व भी था। स्कूल में औद्योगिक शिक्षा की पढ़ाई के अन्तरगत उसने कई बार चकरियों और गरारियों को ठीक किये जाते देखा था। सहसा उसके मन में इच्छा जागी कि आगे बढ़कर अपने ज्ञान का चमत्कार दिखाये। ये 'मिस्त्री' उसे फिर 'अपने में से ही एक' समझेंगे।

"लुबलिनो के मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में मैंने देखा था कि इन गरारियों की मरम्मत कैसे की जाती है।" वह बड़े आत्म-विश्वास से बोली और कुछ समझाने लगी।

"क्या कहा, क्या कहा?" मिस्त्री ने वालेंतिना की ओर घूमकर पूछा।

वालेंतिना ने फिर समझाया।

"यह खूब बताया···!" एक दूसरे मिस्त्री ने कहा। "ऐसे ही करके क्यों न देखें?"

वालेंतिना कुछ देर वहीं रुककर अपने सुझाव का परिणाम देख लेना चाहती थी, पर प्रोखारचेन्को उसे खींच ले गया।

"अब आओ भी!" रास्ते में ट्रैक्टरों की एक दूसरी कतार दिखाते हुए उसने कहा, "कितने अच्छे लग रहे हैं!"

"बिलकुल चिड़ियों जैसे लगते हैं।" वालेंतिना बोली। "लोग कहते हैं बड़े भारी-भरकम होते हैं। मुझे तो ऐसे लगते हैं जैसे इशारा पाते ही उड़ चलेंगे!"

प्रोखारचेन्को ने एक आंख झपका कर मुस्कराते हुए कहा :

"यही तो! लो मैं हुक्म देता हूं : 'अब उड़ने के लिए तैयार हो जाओ!'"

वालेंतिना उसके शब्दों के गूढ़ अर्थ को नहीं समझ सकी।

प्रोखारचेन्को वालेंतिना को स्टेशन के मुख्य कृषि-विशारद के कमरे में ले गया, उसे एक आराम कुर्सी पर बैठाया और फिर इस लहजे में बोला जैसे उसे कोई उपहार भेंट कर रहा हो :

"लो! यह है तुम्हारी कुर्सी, वाल्या!"

"क्या मतलब?" वालेंतिना ने चौंक कर पूछा।

"मतलब यह कि स्टेशन में हमें एक बीज-विशेषज्ञ रखने की इजाज़त मिल गयी। हम लोगों ने आपस में बातचीत की और तै पाया कि इस जगह के लिए सबसे अच्छी तू ही है। तेरी उम्र कम है, और तू मेरी भतीजी है—फिर भी मैं कहता हूं कि तू ही यह काम ठीक से कर सकेगी। हम लोगों को तुझ पर भरोसा है। उम्र का क्या है। साल भर हम लोगों ने तेरा काम देखा है। हमें तुझ पर पूरा यकीन है।"

वालेंतिना भौंचक सी हंस पड़ी।

"अरे चाचा, इतनी जल्दी! कुछ सोचने तो…"

प्रोखारचेन्को ने उसे बात पूरी नहीं करने दी :

"तूने देखा कितनी ताकत है हमारे पीछे? यहां काम करने वालों को तू पहले से जानती है। तू और हम मिलकर इस मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन को अव्वल नम्बर का स्टेशन बना देंगे! ऐसी फसलें पैदा करेंगे जैसी किसी ने देखी-सुनी न हों।"

वालेंतिना उसे रोकना चाहती थी—"ठहरो चाचा! मुझे दुविधा में मत डालो। मैं जहां जा रही हूं, जाने दो! मैं फैसला कर चुकी हूं!"—पर प्रोखारचेन्को ने उसे बोलने का मौका नहीं दिया। प्रोखारचेन्को समझता था कि अपनी भतीजी को मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में बुलाकर वह उसकी उन्नति का मार्ग खोल रहा था। उसे विश्वास था कि इसमें वालेंतिना को कोई आपत्ति नहीं होगी। वालेंतिना के गद्गद हो जाने और कृतज्ञता प्रकट करने की आशा में प्रोखार उसकी ओर स्नेह से देख रहा था। लेकिन, वालेंतिना सकपका गयी थी। दर्जनों ट्रैक्टरों, सैकड़ों काम करने वालों और हजारों एकड़ जमीन की देख-भाल का भार! प्रोखारचेन्को को वह जानती थी। वह जानती थी कि उसके नेतृत्व में स्टेशन उन्नति और सफलता प्राप्त किये बिना नहीं रह सकता। प्रोखारचेन्को ने वालेंतिना को सहसा उन्नति के इतने ऊंचे मीनार पर ला

खड़ा किया था कि उसका सिर चकरा जाना स्वाभाविक था। वालेंतिना से न 'हां' करते बना था, न 'ना' करते।

"चाचा .." किसी तरह उसने कहना शुरू किया, "मैं उक्रेन में ही काम करूंगी..."

"वहां तू क्या काम करेगी ?"

इस प्रश्न ने वालेंतिना को निरुत्तर कर दिया।

"सचमुच मैं वहां क्या करूंगी ? यहां तो सैकड़ों ट्रैक्टर और कम्बाइनें हैं। इतनी बड़ी ताक़त है ! लेकिन मैं जवाब क्या दूं ? समझ में नहीं आता क्या कहूं !"

"बता न, तू वहां क्या करेगी ?" पोखारचेन्को ने प्रश्न को फिर दोहराया।

"वहां जो ज़िले का भूमि-विभाग है..." उसने किसी तरह जवाब दिया।

"ज़िले का भूमि-विभाग ! निरीक्षण का काम ! क्या तूने ही 'पुराने दर्ज़े' वाली बात नहीं कही थी ? अब बता ?"

वालेंतिना खिड़की से बाहर देख रही थी। ट्रैक्टरों की चमचमाती पांत पर आंखें ठहर नहीं रही थीं।

"यहां से जल्दी खिसकूं," उसने हड़बड़ाकर सोचा, "नहीं तो मामला गोल है। ज़्यादा देर बैठी नहीं कि बुद्धू की तरह हां कह बैठूंगी—यह तै है। आन्द्रेई क्या कहेगा ? हमारा घर ? फिर वही वियोग और आवारागर्दी ! अच्छा-भला सब कुछ तय हो गया था ! आखिर मैं यहां आई क्यों ? अपने राम को अब फौरन चलते बनना चाहिए ! कैसी सीधी-सादी बुद्धू हूं मैं ! मुंह से 'हां' निकले इससे पहले ही भाग जाने में भलाई है !"

वालेंतिना उठने को ही थी कि बड़े मिस्त्री साहब दफ्तर में आकर बोले :

"वालेंतिना अलेक्सेयेवना ! तुम्हारी बात ठीक निकली। गरारी चल रही है। अभी जाओ मत ! चलकर ज़रा देख लो।"

वालेंतिना मिस्त्री से बातों में लग गयी। प्रोखारचेन्को इसी बीच बाहर खिसक गया और पड़ोस के सामूहिक फ़ार्म का प्रधान, विसोत्सकी तथा कुछ ट्रैक्टर-ड्राइवर कमरे में आ गये।

"वाह ! यह खूब है ! बेलाविन नया ट्रैक्टर ले और मुझे पुराना दिया जाय ?" एक दुबला-पतला नाटा सा ट्रैक्टर-ड्राइवर उलाहना दे रहा था। "हम दोनों को एक साथ, एक माडल के ट्रैक्टर मिले थे। उसने अपना ट्रैक्टर तोड़-फोड़ कर बराबर किया। मैंने सम्भालकर रखा। उसे इनाम में नया ट्रैक्टर मिल रहा है और मुझे पुराना ? इसीलिए न कि वह ज़्यादा चिल्ला लेता है ?"

"तू अपने आपको बड़ा भारी तीसमार खां समझने लगा है! अखबार में नाम क्या निकल गया, मिज़ाज आसमान पर चढ़ गया है।" बेलाविन और भी क्रोध से बोला। वालेंतिना उसे जानती थी। बेलाविन फिर गरजा: "बहुत ऐंठो-अकड़ो नहीं। सब नये ट्रैक्टर तुम्हारे लिए नहीं बने हैं!"

"क्या? बेलाविन को नया ट्रैक्टर?" वाल्या बिगड़ उठी। अपने ऊपर झुंझलाहट और क्रोध इस रूप में फूट निकला। वह बेलाविन के सामने जा खड़ी हुई। "नया ट्रैक्टर इसे? इसे तो ट्रैक्टर में तेल देने तक की तमीज़ नहीं। थोड़ी दूर ट्रैक्टर चलाया नहीं कि बियरिंग खतम। बियरिंग भी छोड़ो। पेट्रोल डालता है तो छानता तक नहीं। तुमने कभी इसके ट्रैक्टर के इंजन की हालत देखी है?" वालेंतिना ने कृषि-विशेषज्ञ से पूछा। "नहीं देखी न! मैंने देखी है। इसके इंजन के नीचे तालाब बन जाय—तो भी इसे होश नहीं आता! पिछली गरमियों में मैंने इसे समझाने की कोशिश की तो जवाब देता है: 'कोई ऐसी बात बताओ जो मुझे मालूम न हो।' अड़ोस-पड़ोस तक इसकी बदनामी फैली है। ऐसे आदमी को नया ट्रैक्टर दे रहे हो?"

"जरा ज़बान संभाल कर बात करो देवी जी!" बेलाविन ने धमकी दी।

लेकिन वालेंतिना उसकी धमकी में कब आने वाली थी। बेलाविन की अकल ठिकाने करने का उसने फैसला जो कर लिया था! उत्तेजना में बालों की एक लट आंखों के सामने लटक आई थी, लेकिन उसे सम्भालने की चिन्ता किये बिना वह सिर झटककर बोली:

"मैं कहती हूं—जो लोग बेलाविन की तरह ट्रैक्टर खराब करते हैं उन्हें नया ट्रैक्टर देने के बजाय उन पर मुकदमा चलाया जाना चाहिए! उन्हें सजा देनी चाहिए!"

"ठीक! बिलकुल ठीक!" फ़ार्म का प्रधान बोल उठा। "देखो तो अन्धेर! इसी बेलाविन को लोग हमारे खेत जोतने भेज रहे हैं। मैं सौ बार कह चुका: 'हमारे यहां नास्त्या ओगोरोद्निकोवा या किसेलेव को भेजो।' ये लोग जवाब देते हैं: 'भई वे तुम्हारे यहां जाना नहीं चाहते।' 'जाना नहीं चाहते' का क्या मतलब साहब? यही होता है अनुशासन?"

"तुम तो बड़े भले हो न!" वालेंतिना ने प्रधान को भी नहीं बख्शा! "तुम्हारे यहां जाने से ट्रैक्टर-ड्राइवर इनकार करते हैं तो क्या बेजा करते हैं? पिछले साल मैं तुम्हारे फ़ार्म होती हुई निकली। मैं एक झोंपड़ी में पहुंची। देखती क्या हूं कि एक आदमी मेज़ के नीचे टांगें पसारे पड़ा सो रहा है। 'ये किसकी टांगें हैं भई?' मैंने पूछा। जवाब मिलता है—'ट्रैक्टर ड्राइवर की। रात की पाली वाला है। मेज़ के नीचे जरा झपकी ले रहा है।' ऐसे दिया

जाता है तुम्हारे यहां आराम ! ज़रा सी झोंपड़ी में ट्रैक्टर ड्राइवरों को ठूंस दिया—वहां बिल्ली के दुबकने को भी जगह नहीं। बेचारे ट्रैक्टर ड्राइवरों के न खाने का इन्तज़ाम, न सोने का ! तब मैं पहुंची तुम्हारे घर—तुम से बातें करने। देखती क्या हूं कि जनाब पीकर बेहोश पड़े हैं। पांव खटिया पर, सिर ज़मीन पर। याद है, या भूल गये ? मन में तो आया तुम्हारे पैर घसीटती हुई ले जाऊं और मेज़ के नीचे डाल दूं और बेचारे ट्रैक्टर ड्राइवर को खाट पर सुला दूं। लेकिन मुझे जल्दी थी।"

"फिर जंग शुरू कर दी, वालेंतिना अलेक्सेयेवना ?" प्रोखारेन्को की आवाज़ सुनाई दी। "सब पर बरस रही हो ! चल कर ज़रा देखो तो कि गरारी कैसे चल रही है।"

"मैं क्यों चीख रही हूं ? बिलकुल झक्की बुढ़िया की तरह !" वालेंतिना को ध्यान आया। "मुझे क्या लेना-देना इस सबसे ? यही तरीक़ा होता है कहीं काम शुरू करने का, चीखना-चिल्लाना ? कौन कहता है मैं यहां काम करूंगी ? मेरा तो कतई इरादा नहीं ! लेकिन क्या करूं ? मैं तो पागल हो गयी हूं !" वालेंतिना को और अधिक सोचने का मौक़ा नहीं मिला।

फ़ार्म के मुख्य कृषि-विशेषज्ञ ने वालेंतिना को सम्बोधित किया : "तुम खड़ी क्यों हो ? बैठो न अपनी कुर्सी पर।"

विशेषज्ञ की आज्ञा पाकर वालेंतिना उसके सामने की कुर्सी पर चुपचाप ऐसे बैठ गयी जैसे उसकी आज्ञा मानने का अभ्यास हो, जैसे कोई बालिका अपने अध्यापक की आज्ञा पूरी करती हो। और सचमुच वालेंतिना तब निरी बालिका ही थी जब बेंजामिन इवानोविच विसोत्सकी कृषि-विशेषज्ञ हुआ था और ज़िले भर में उसकी ख्याति थी। उग्रेन में एक सुन्दर बगीचे से घिरा उसका मकान था। बाग में खूब फल और फ़ूल थे। अलूचे तो इतने बड़े होते थे जितने बड़े किसी ने उग्रेन में देखे-सुने नहीं थे। इनके अलावा तरह-तरह के फ़ूल थे। अंगूरों जैसे छोटे-छोटे टमाटर। वालेंतिना स्कूल के दूसरे लड़के-लड़कियों के साथ विसोत्सकी के बाग की चारदिवारी फांद कर फ़ूलों-फलों के इस सुन्दर खजाने को देखने जा पहुंचती थी। कभी-कभी विसोत्सकी उन्हें घर में बुलाकर खूब अलूचे और टमाटर खिलाता। तब भी विसोत्सकी के सिर के बाल इतने ही सफ़ेद थे। आंखों में ऐसी ही थकावट और गम्भीरता थी। मिलनसार भी वह तब इतना ही था। बचपन में वालेंतिना उसे दार्शनिक और जादूगर समझती थी। अब भी उसमें बच्चों वाला डर समाया था।

"तब से बीस बरस बीत गये," वालेंतिना सोच रही थी, "लेकिन यह नहीं बदले। अब भी इनका सिर वैसा ही है। वही महीन छंटे हुए बाल, वैसी ही नीली धारीदार नेकटाई। इनके बंगले की चारदिवारी फांदते वक्त क्या मैं

कभी सोच सकती थी कि एक दिन इनके साथ काम करना होगा? बाप रे! ...फिर वही! नहीं, मैं यहां काम नहीं करूंगी!"

"आपको याद है कि हम स्कूल के लड़के-लड़कियां आपके बंगले की दीवार फांदकर बाग में घुस आते थे और आप हमें अलूचे खिलाते थे?" वालेंतिना ने पूछा।

"हां हां! मुझे खूब याद है। तू बड़ी शैतान थी। कांटों और झाड़ियों से तेरी टांगों पर खरोंचें बन जाती थीं।"

"मुझे आपकी पत्नी से बड़ा डर लगता था! वह पकड़ कर मेरी टांगों में टिंचर लगा देती थीं। बड़ा दर्द होता था। लेकिन आप मुझे अच्छे लगते थे।"

"चलो यह सुन कर खुशी हुई।" विसोत्सकी बोला। "काम की शुरूआत अच्छी हो रही है। ठीक है न?"

वालेंतिना को लगा जैसे कोई ताक़त उसे अपनी ओर खींच रही है। उसने हाथ-पैर पटकने शुरू कर दिये :

"नहीं नहीं! मैं मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में काम नहीं करूंगी। मैं यहां काम नहीं कर सकती···" वालेंतिना ने कहना शुरू किया। पर फ़ार्म के प्रधान ने बीच ही में टोक दिया :

"हमारे यहां की निराई और जुताई के लिए क्या हो रहा है, बेंजामिन इवानोविच?"

"वालेंतिना अलेक्सेयेवना, तुम भी देखो यह सब व्यवस्था कैसे होगी। नये ट्रैक्टर आ जाने से परिस्थिति को दुबारा समझने की ज़रूरत है।"

वालेंतिना को विरोध में सिर हिलाते देख विसोत्सकी ने ज़ोर देते हुए कहा :

"ख़ैर, काम तुम्हें जहां भी करना हो वहां करना। यहां इस वक़्त हम दो कृषि-विशारद हैं। आओ दोनों मिलकर इस पर नज़र डालें।"

विसोत्सकी ने कागज़ उठाकर वालेंतिना के सामने रख दिये।

"यह देखो! हमारे ज़िले के दक्खिनी भागों में उत्तरी भागों के मुकाबले ज़मीन जल्दी तैयार हो जाती है। बड़ी-बड़ी ट्रैक्टर यूनिटों के हमले की—शायद इस तरह बात कहना ग़लत न होगा—मैंने एक नयी योजना बनाई है।" इन शब्दों के साथ ही उसके चेहरे पर हल्की मुस्कान दौड़ गयी। "वसंत के शुरू में ट्रैक्टर फ़ौज का मुख्य भाग दक्षिणी भाग में हमला करे और फिर धीरे-धीरे उत्तर की ओर बढ़े। जब तक ट्रैक्टर उत्तरी भाग में पहुंचेंगे, वहां भी ज़मीन तैयार मिलेगी। इससे ट्रैक्टरों की आगे-पीछे की दौड़-भाग बच जायगी, रास्ते में उनकी मरम्मत हो जायेगी। यह है इनके हमले का रास्ता।"

उन्होंने कागज़ वालेंतिना को दे दिये। वालेंतिना अपने सामने बने नक्शे पर ट्रैक्टरों के लिए निश्चित मार्ग देख रही थी। विसोत्सकी को स्पष्ट ही अपनी योजना पर गर्व हो रहा था। वालेंतिना ट्रैक्टरों की पूरी पांत के दक्षिण से उत्तर की ओर प्रयाण की कल्पना करके विसोत्सकी की भावनाओं को समझ रही थी।

"बिलकुल ऐसा लगेगा जैसे टैंकों की सेना बढ़ रही हो, बेंजामिन इवानोविच !"

विसोत्सकी को यह देखकर खुशी हुई कि वालेंतिना को योजना पसन्द आई है। वह मुस्कराया। उसके गड्ढे में धंसे गालों पर दो भारी पर्तें पड़ गयीं।

योजना वाली बात खतम कर चुकने के बाद उसने कहा :

"देखो एक और चीज़ दिखाऊं तुम्हें।" विसोत्सकी यूं कभी जल्दबाज़ी नहीं करता था। पर इस समय उसने झटपट दो नीली फाइलें मेज़ से निकालीं जिन पर फीता बंधा था। "देखो, इसमें स्टेशन के पिछले तीन वर्षों के काम का लेखा-जोखा है। बिना अतिशयोक्ति के मैं कह सकता हूं कि ऐसा लेखा-जोखा तुम्हें किसी मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में नहीं मिलेगा।"

वालेंतिना देख रही थी। आंकड़ों के कालम के कालम चमकदार कागजों पर नाच रहे थे। इन आंकड़ों को देखकर, इन्हें तैयार करने में लगी मेहनत को सोचकर, उनकी एकसूत्रता को समझकर वालेंतिना चकित रह गयी।

"कामबन्दी के आंकड़े और वजहें !" विसोत्सकी बोला। "मशीन-ट्रैक्टर स्टेशनों और सामूहिक फ़ार्मों की वजह से कामबन्दी ! कामबन्दी के आधार पर अलग-अलग माडेल के ट्रैक्टरों की जांच ! ट्रैक्टरों में टूट-फूट और बियरिंग खराब होने की वजह से कामबन्दी !"

विसोत्सकी बहुत उत्साहित था। वह मुस्कुरा रहा था और बार-बार भौंहें सिकोड़ रहा था। उत्तेजना से उसके सिर के सफेद बाल ब्रुश के रेशों की तरह खड़े से होने लगे थे। वालेंतिना बचपन से जानती थी कि विसोत्सकी जब बहुत उत्तेजित होता है तो बार-बार भौंहें सिकोड़ने लगता है। उसकी यह आदत इस समय उसे विशेष आकर्षक लग रही थी। उसे उसकी मुस्कराहट भी अच्छी लग रही थी—उस आदमी की संकोच भरी मुस्कराहट जो बहुत कम मुस्कराता था। ये कागज़ निस्संदेह उसी के परिश्रम का परिणाम थे, और उन्हें दिखाते हुए उसे गर्व हो रहा था।

"देखो वालेंतिना ! ट्रैक्टरों के काम की इस तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि अमुक-अमुक ट्रैक्टरों में क्या कमजोरियां और क्या अच्छाइयां हैं। ट्रैक्टर बनाते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए और उनकी मरम्मत के लिए कैसे इन्तज़ाम की आवश्यकता है—यह भी इससे साफ़ हो जाता है।"

"है बड़ी दिलचस्प चीज़। लेकिन कामबन्दी ट्रैक्टर-ड्राइवरों के किसी खास दल की लापरवाही से हुई है या सब जगह एक ही हाल है।"

"इसके लिए गणित की मदद की ज़रूरत नहीं।" बिसोत्सकी बोला। "कोई भी बता देगा कि ट्रैक्टर ड्राइवर अच्छे भी होते हैं, बुरे भी।"

वालेंतिना काफी देर तक बिसोत्सकी के आंकड़ों को ध्यान से देखती रही। फिर बड़े मिस्त्री के साथ जाकर उसने देखा कि गरारियां ठीक हो गयीं या अभी कुछ ऐब है। ट्रैक्टर-ड्राइवरों से भी बातचीत करती रही। सब लोग उससे ऐसे बातें कर रहे थे जैसे वह स्टेशन पर काम करने वाली सहयोगी हो।

वालेंतिना को खयाल भी नहीं था कि कितनी देर हो गयी है। मोटर ड्राइवर ने ही आकर शिकायत की :

"वालेंतिना अलेक्सेयेवना ! मुझे तीन बजे वापिस पहुंच जाना था। कार्यकारिणी कमिटी के दफ्तरवालों को मोटर की ज़रूरत थी। तुमने यहीं पांच बजा दिये।"

"हां हां वाल्या ! अब जाओ। लेकिन, दो दिन में आकर अपना काम सम्भाल लेना।" प्रोखारचेन्को बोला, मानो सब कुछ अन्तिम रूप से तै हो गया हो।

"ये लोग तो मान बैठे हैं कि सब तै हो गया। आन्द्रेई से मैं क्या कहूंगी ?" वालेंतिना मन ही मन सोचती आ रही थी, लेकिन उसकी आंखें शेड के नीचे रखे ट्रैक्टरों की सुन्दर पांत पर गड़ी थीं।

वालेंतिना गाड़ी में बैठी। गाड़ी चल पड़ी।

"पांच बजा दिये आपने तो।" ड्राइवर वालेंतिना पर बड़बड़ा रहा था। "आन्द्रेई पेत्रोविच भी मुझ से बिगड़ेंगे। उन्होंने कहा था, तुम्हें जल्दी पहुंचा दूं जिससे दोपहर का खाना तुम दोनों साथ-साथ खा सको।"

"अब जा रही हूं घर ! इस तरह जाती है स्त्री अपने पति के पास··" वालेंतिना निराशा से सोच रही थी, "घर जाना भी क्या है; दो दिन के लिए ? आन्द्रेई क्या कहेगा ? मैं मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन गयी ही क्यों ? वैसे बेंजामिन इवानोविच ने जो हिसाब तैयार किया है वह है बहुत दिलचस्प। ज़रूर उस पर सोच-विचार करना चाहिए... दूसरी गरारी अब तक चल निकली होगी ? पहली तो ठीक चली नहीं... लेकिन मुझे इससे क्या !"

आन्द्रेई घर पर उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने आकर वालेंतिना का असबाब गाड़ी से उतारा। फिर तुरंत मेज़ पर खाना लगाया।

"आओ वाल्या। बैठो ! अब तो हम लोग रोज सामने बैठकर खाना खाया करेंगे।"

वालेंतिना की समझ में नहीं आ रहा था कि वह बातचीत कैसे शुरू करे।

"इसे कैसे बताऊं ? खाना कौन खाये ? गले में कौर अटकता है। सीधे मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन के बारे में बात शुरू करूं।"

"मालूम है मुझे रास्ते में कहां देर हुई ?" वालेंतिना ने बहुत चलते ढंग से बात शुरू की। "मशीन ट्रैक्टर स्टेशन पर ! ओफ, कितनी बड़ी चीज़ है वह भी ! कितनी अच्छी !... है न अच्छी ?"

"बेशक।" आन्द्रेई ने गर्व से स्वीकार किया।

"हां... मेरा मतलब... असल में जिस कृषि-विशारद ने ऐसे मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन पर काम न किया हो वह ठीक ढंग से समझ ही नहीं सकता ! उसे तो फिसड्डी समझो... बिलकुल पुराने दर्ज़े का आदमी.. !"

"नहीं, खैर ऐसी बात तो नहीं !"

"तुम देखना, साल दो साल में प्रोखारचेन्को इस स्टेशन को पहली श्रेणी का मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन बना देगा।"

"इसमें क्या शक है। प्रोखारचेन्को तो साल दो साल में पुरस्कार भी हासिल कर लेगा। वह 'सामाजिक श्रम का वीर' बन जायेगा।"

"ज़रूर ! अगर उसे योग्य सहायक मिल गये।"

"उसने अपने स्टाफ के लिए जो सूची दी थी वह तो मंजूर हो गयी है। अब वह अपने सहायक खुद चुन लेगा।"

"आन्द्रेई मैं भी वहीं काम करूंगी।"

"तुम ?"

"हां ! लेकिन तुम इतने चौंक क्यों रहे हो ?"

आन्द्रेई ने चम्मच तश्तरी में रख दिया। गम्भीर होकर बोला :

"लेकिन वाल्या, इसका मतलब तो है वही पुरानी ज़िन्दगी—कभी न खत्म होनेवाली बंजारों जैसी ज़िन्दगी।"

"लेकिन मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन तो फ़ार्म के मुक़ाबले काफ़ी नज़दीक है।"

"सिर्फ़ पांच किलोमीटर ही तो कम है।"

"पांच किलोमीटर तो बहुत होता है !"

दोनों खाना खाना भूल गये। वालेंतिना उठकर आन्द्रेई के पास आ गयी। आन्द्रेई का सिर बांह में लेकर उसकी कुर्सी की बांह पर बैठ गयी। आन्द्रेई ने इस ओर ध्यान तक न दिया। जीवन में पहली बार वालेंतिना ने उसे नाराज़ देखा था।

"सुन वाल्या ! मैं बेवकूफ़ नहीं हूं। काम की उपेक्षा मैं नहीं करता। जब ज़रूरी था, मैंने खुद तुझे फ़ार्म के काम पर भेज दिया था। न मैंने अपनी परवाह की थी, न तेरी। लेकिन अब किसका काम अटका है तेरे बिना ?

मशीन ट्रैक्टर का? वहां हम दूसरे योग्य कृषि-विशेषज्ञ भेज देंगे। अब तो आदमियों की कमी नहीं है। अब क्या ज़रूरत है ऐसी कुर्बानी की?"

"यह तो कुर्बानी नहीं हुई। मैं तो खुद जाना चाहती हूं।"

"खुद?"

"हां।"

"क्यों?"

"इसलिए कि इस तरह का काम मुझे पसन्द है। प्रान्त का सबसे बड़ा स्टेशन है! सैकड़ों मशीनें! प्रोखारचेन्को जैसा योग्य मैनेजर! विसोत्सकी जैसा मुख्य कृषि विशेषज्ञ! मुझ जैसी नयी कृषि-विशेषज्ञ को बुलाकर तो वे मेरी इज्ज़त बढ़ा रहे हैं। अहा हा! कितना अच्छा कारखाना है! कितनी अच्छी मशीनें हैं।"

"मशीनों का तुम्हें बड़ा खयाल है, लेकिन मेरे बारे में सोचना भी नहीं चाहतीं। आखिर मैं भी तो इन्सान..."

"इससे कौन इनकार करता है?"

आन्द्रेई ने वालेंतिना की बांह अपने कंधे से हटा दी, उठकर कमरे के दूसरे छोर पर गया और कोट के बटन बंद करने लगा। वालेंतिना समझ गयी कि आन्द्रेई चिढ़ गया है। आन्द्रेई जब भी नाराज़ होता वह ऐसे ही मौन धारण कर लेता और कोट के बटन बंद कर सिर पर कंघी करने लगता था।

"बस, अब जेब से कंघी निकालने ही वाला है।" वालेंतिना प्यार और दुलार से मन ही मन सोच रही थी। आन्द्रेई ने सचमुच ही जेब से अपना छोटा सा हरे रंग का कंघा निकाला और बालों को संवारने लगा।

"वाल्या," कंघा कर चुकने के बाद उसने कहना शुरू किया, "कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है कि तुम मुझे प्यार नहीं करतीं?... नहीं... मेरा मतलब यह नहीं कि तुम प्यार करती ही नहीं। ऐसा कहना बेहूदा होगा। हां, तुम मुझे काफी प्यार नहीं करतीं। अलग रहना मेरी समझ में आता है, लेकिन जब ज़रूरी हो। और जब ज़रूरी न हो तब? खैर मारो गोली इन बातों को! यह बताओ, क्या ब्याह के दस साल बाद भी मुझे यह हक नहीं कि काम पर से घर लौटूं तो मेरी बीवी—जिसको मैं प्यार करता हूं, जिसके लिए तरसता हूं—मुझे घर पर मिले? हो सकता है मैं ग़लत समझ रहा हूं लेकिन मुझे लगता यह है कि अब तुम स्वार्थी होती जा रही हो! तुम्हें मेरा खयाल नहीं रहता। हां, सचमुच स्वार्थी! तुम सचमुच स्वार्थी हो! इस साल मेरे सामने काफ़ी कठिनाइयां हैं! शायद यह साल मेरे लिए बहुत फ़ैसलाकुन है... इस साल या तो मुझे ज़िले को सबसे आगे ले जाने की प्रतिज्ञा पूरी करनी होगी या...या कम्युनिस्ट के नाते मेरी प्रतिज्ञा झूठी साबित होगी। क्या ऐसे कठिन

समय में भी मुझे तुमसे सहायता पाने, तुम्हारे साथ साधारण पारिवारिक जीवन बिता सकने का अधिकार नहीं है ?"

"आन्द्रेई तुम बिलकुल बेवकूफों जैसी बातें कर रहे हो।"

"ठीक है। शुक्रिया!" आन्द्रेई ने दुखित स्वर में कहा। "यह तो मालूम हुआ कि तुम मुझे बेवकूफ़ समझती हो।"

वालेंतिना एकटक उसकी ओर देखती रह गयी। आन्द्रेई की भौंहों और होठों के कोनों पर अदृश्य सी स्फुरन दौड़ गयी। आन्द्रेई का चेहरा ठस हो गया था। वह दूसरे कमरे में चला गया। क्षण भर बाद वालेंतिना भी उसी कमरे में जा पहुंची। आन्द्रेई वालेंतिना की ओर पीठ किये मेज के पास खड़ा कुछ कागज़ उलट-पलट रहा था। आन्द्रेई के चेहरे और मुद्रा से निराशा और कातरता बरस रही थी। वालेंतिना के भीतर नारी की मातृत्व भावना जाग उठी।

"निरे बच्चे हैं ये लोग। इनमें सबसे चतुर भी बच्चों की तरह हैं..."

वालेंतिना ने आगे बढ़कर आन्द्रेई के गले में बाहें डाल दीं।

"आन्द्रेई प्यारे... मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन तो बहुत पास है। हम लोग हमेशा साथ रहेंगे। मैं रोज़ घर चली आया करूंगी। हम लोग बराबर एक दूसरे से मिलते रहेंगे।"

"साल भर देख तो लिया कैसे बराबर मिलते रहते हैं।"

"साल भर यह भी तो देख लिया कि हम लोग कैसे खुश रहे हैं।" वालेंतिना के शब्दों ने आन्द्रेई को पिघला दिया। कुछ रूठते हुए उसने भी वालेंतिना के प्रेमपूर्ण व्यवहार का प्रत्युत्तर उसकी उंगलियां दबाकर दिया।

"आन्द्रेई! ज़रा सोचो तो! वहां का काम तो इतने बड़े पैमाने पर है जितना मैं सपने में भी नहीं सोचती थी। मेरे लिए काम समझने का ऐसा मौक़ा फिर कब मिलेगा?" वालेंतिना याद कर रही थी कि एक साल पहले उसे उग्रेन भेजते समय आन्द्रेई ने स्वयं क्या बातें कही थीं। मुस्कराती हुई उन्हीं को दोहराने लगी। "आन्द्रेई... तुम समझने की कोशिश क्यों नहीं करते? स्टेशन यहां से सिर्फ पंद्रह किलोमीटर ही तो है। गाड़ी हम लोगों के पास है ही। इतने दुखी और परेशान होने की क्या ज़रूरत है?"

आन्द्रेई को अपने शब्द याद आ गये। उसने वालेंतिना की आंखों में देखा। भूरी-भूरी आंखें मुस्कान से चमक रही थीं। आन्द्रेई भी मुस्कराहट रोक न सका।

उसने बड़ी नम्रता किन्तु दृढ़ता से अपने कंधे से वालेंतिना की बाहें हटा दीं और सोने के कमरे की ओर चल दिया। वालेंतिना की आंखें उसका पीछा कर रही थीं। आन्द्रेई की चाल में थकान और आलस की लड़खड़ाहट थी। वालेंतिना को ज़िन्दगी में पहली बार यह लगा कि बिलकुल ऐसी ही चाल

उसके ससुर की भी थीं। उसके मस्तिष्क में पहली बार यह विचार कौंध गया कि आन्द्रेई का यौवन—जैसा वह अब तक समझती थी—अक्षय नहीं है। आन्द्रेई के चेहरे पर बनी रहने वाली लड़कों जैसी ताजगी देखकर सभी हैरान रह जाते थे। वालेंतिना ने सोचा—यह ताज़गी सदा नहीं बनी रहेगी। मन में एक कचोट सी लगी। आन्द्रेई के पीछे-पीछे वह भी सोने के कमरे में जा पहुंची। आन्द्रेई एक सोफ़े पर अधमुंदी आंखें किये लेटा था। उसके दिल को जो चोट लगी थी उसका दर्द अब तक कम न हुआ था। पलकें झपकाये वह वालेंतिना को देख रहा था।

"देवी जी अभी चक्कर लगा रही हैं! ओ हो! किताबों की आलमारी के पास गयी हैं। अब बैठकर पढ़ेंगी। इसे ध्यान भी नहीं कि इसने मेरा दिल दुखाया है। इसे फ़िक्र है तो सिर्फ अपने काम की... मशीन ट्रैक्टर स्टेशन की... मेरी नहीं। इसकी अपनी अलग ज़िन्दगी है..."

वालेंतिना का जीवन घर की सीमाओं में कभी बंधा नहीं रहा था। उसके अपने कार्य-कलाप, उत्तरदायित्व और व्यस्तता का जीवन था। आन्द्रेई यह सब जानता और देखता था। वालेंतिना के जीवन की चहल-पहल और उल्लास से उसे भी संतोष और उत्साह मिलता था। पर अब उसे इससे खिन्नता हो रही थी।

"ऐसी स्त्रियां भी होती हैं जो अपने जीवन को अपने प्रेमी के अस्तित्व में घोल देती हैं, उसी में खो जाती हैं। वाल्या का तो 'अपना जीवन' है। लेकिन मैं उसे प्यार करता हूं तो इसमें मेरा क्या कसूर? शायद मैं उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व के कारण ही उसे इतना प्यार करता हूं। तो यह है हाल मेरे दोस्त। मैं उसे प्यार करता हूं! लेकिन मैं उससे दया की भीख दुबारा नहीं मांगूंगा। आज इतनी बात हो गयी, यही बहुत है।"

आंद्रेई की मां पास-पड़ोस वालों से कहा करती थी कि लड़के ने बोलना शुरू किया तो पहले-पहल उसने यही कहा था—"यह काम मैं अपने-आप कर लूंगा।"

इस एक वाक्य में समाहित दृढ़ता आन्द्रेई के साथ ज़िन्दगी भर रही।

वालेंतिना के व्यवहार से खिन्न होकर सोफ़ा पर लेटे-लेटे उसने मन ही मन फिर उसी वाक्य को दोहराया।

"ओह, यह कमबख्त सिर के पीछे का दर्द फिर शुरू हो गया। क्या वाल्या से कहूं कि आलमारी से सिर के दर्द की गोली निकाल दे? नहीं! उससे जल्दी तो मैं खुद ही ढूंढ़ लूंगा। अपने सिर के दर्द की बाबत बता कर उसके दिल में दया उपजाने की ज़रूरत नहीं। वह तो यही समझेगी कि दर्द की बात बताकर उससे दया की भीख मांग रहा हूं।"

आन्द्रेई उठा। आलमारी से निकाल कर एक गोली खायी और ज़रा कड़े स्वर में वालेंतिना से बोला :

"ये वालेंतिना ! तुम अपनी किताबें लो और यहां से खिसको। मैं घंटे भर सोऊंगा !"

४. "लौह पुरुष !"

वालेंतिना को सर्दी लग कर जुकाम हो गया था। सप्ताह भर घर पर ही रही। आन्द्रेई काम के कारण प्रायः बाहर ही रहता था। दोनों के साथ रह सकने का अवसर कम ही आया। मिलने पर वे पहले ही जैसे ढंग से बात-चीत करते थे पर उनके विचारों और अनुभूतियों में वह एकरूपता नहीं थी जिसने उन्हें एक बना दिया था। वालेंतिना सोचती : "देखने में तो सब ठीक ही है। हंसी-मज़ाक और प्यार पहले की ही तरह चल रहा है, लेकिन कोई कमी नज़र आती है।"

एक बार वालेंतिना की आंख आधी रात में खुल गयी। आन्द्रेई अपने पलंग पर नहीं था। रसोई घर में उजाला दिखाई दिया। वहां से कुछ खड़बड़ आवाज़ भी आ रही थी। वालेंतिना ने अपने ड्रेसिंग गाउन के लिए इधर-उधर हाथ बढ़ाया। अंधेरे में ड्रेसिंग गाउन मिला नहीं तो चादर ही शरीर पर लपेट ली और नंगे पांव रसोई घर की तरफ भागी। आन्द्रेई सोने के वक्त की कमीज़ और बिर्चिस पहने, घुटने तक रबड़ के जूते चढ़ाये, झुंझला-झुंझला कर स्टोव में हवा भरने में जुटा था।

"क्या बात है, आन्द्रेई ? तबियत खराब है क्या ?"

आन्द्रेई स्टोव की ओर ही आंखें झुकाये हवा भरता रहा।

"नींद नहीं आ रही थी। मैंने सोचा कुछ काम कर लूं। चाय बना रहा हूं। बिजली का स्टोव बिगड़ा पड़ा है।"

ठंडे फर्श पर वालेंतिना के नंगे पांव ठर रहे थे। कभी इस पैर पर कभी उस पैर पर खड़ी वालेंतिना विस्मय से आन्द्रेई की ओर देख रही थी।

आन्द्रेई की स्वस्थ गर्दन पर नसें उभर आई थीं और उनके बीच नीले चिन्ह बन गये थे। उसका चेहरा, जो हमेशा सुर्ख और खुश नज़र आता था, काला-काला और रूखा लग रहा था। गाल कुछ धंस गये थे।

"मुझे क्यों नहीं जगा दिया ?" वालेंतिना रुंधे गले से बोली। "लाओ मैं बनाऊं चाय। मैं जल्दी बना दूंगी। हटो, मुझे मदद करने दो।"

"तुम जाओ सोओ।"

आन्द्रेई वालेंतिना की आंखों से जानबूझकर अपनी आंखें बचा रहा था। वालेंतिना के दिल को ठेस लगी।

"मुझे क्यों नहीं मदद करने देते ?"

"तुमसे जो मदद मांगी थी वह तो तुमने दी नहीं, वाल्या ! चाय तो मैं अपने आप भी बना सकता हूं...।"

आन्द्रेई गुस्से में फिर ज़ोर-ज़ोर से स्टोव में हवा भरने लगा। स्टोव के हिलने से ऊपर रखे बर्तन से पानी छलक कर बर्नर पर आ गिरा। आग बुझ गयी। धुआं छत की ओर बढ़ चला। स्टोव की टोंटी से मिट्टी के तेल की बारीक फुहार निकलने लगी। आन्द्रेई गम्भीर मौन धारण किये माचिस पर माचिस रगड़ कर स्टोव जलाने की कोशिश कर रहा था।

"बड़बड़ाता भी नहीं !" वालेंतिना सोच रही थी। "आखिर बात क्या है ? क्या सचमुच भारी झगड़ा हो गया है ?" वह पांव मोड़कर एक छोटे से स्टूल पर बैठ गयी। "मुझे नहीं मालूम था इतना गुस्सेबाज है ? कैसा ऐंठा हुआ है ! मेरी तरफ देखता भी नहीं...गर्दन कितनी दुबली हो गयी है ! पैर भी लड़खड़ाते हैं। बस, अब तो इसकी गर्दन के बाल ही पुरानी निशानी रह गये हैं। बात क्या है ? लेकिन मैं इससे लड़ना नहीं चाहती, किसी सूरत में भी लड़ना नहीं चाहती।"

"भाड़ में जाय मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन का काम !" वालेंतिना दृढ़ता से बोली। "तुम कितने दुबले और सांवले हो गये हो ! हड्डियां निकल आई हैं...। आन्द्रेई ! मैं उक्रेन में ही कोई छोटा-मोटा काम ले लूंगी और तुम्हारी देख-रेख करूंगी। मैं पहली मई फ़ार्म में थी—तब मुझे नहीं मालूम था कि तुम्हारी ऐसी हालत होगी, तुम्हारी तन्दुरुस्ती इतनी गिर गयी होगी।"

आन्द्रेई ने घूमकर देखा। वालेंतिना की आंखों में झलकती पीड़ा के सामने वह न अड़ सका। स्टोव को छोड़ वह वालेंतिना की बगल में आ बैठा। उसका हाथ अपने हाथ में लेकर धीमे से बोला :

"वाल्या ! बस एक साल की ही तो बात है। तुझे याद है इस ज़िले का चार्ज लेने के बाद मैंने प्रांतीय कमिटी में क्या कहा था ? मैंने कहा था : 'ज़िले में एक बड़ा मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन बनवा दो फिर देखना मैं ज़िले को कहां पहुंचा देता हूं।' उन लोगों ने मेरी मदद की। स्टेशन बन गया। अब सवाल है इस स्टेशन से ज़िले की आर्थिक स्थिति को आगे बढ़ाने का। क्या हम ऐसा कर सकेंगे ? ऐसा करने के लिए हमें क्या करना होगा ? कठिनाइयां

हज़ारों हैं ! नींद क्या होती है यह मैं भूल गया हूं—सोने के लिए लेटता हूं तो ये ही सवाल दिमाग़ को घेर लेते हैं।"

आन्द्रेई बहुत उत्तेजित होकर जल्दी-जल्दी बोल रहा था। ऐसा मालूम होता था जैसे ये बातें उसके दिमाग़ में बहुत पहले से इकट्ठी थीं और अब, रास्ता पाकर, वह निकली हैं। वालेंतिना उसके सूखे चेहरे और विचित्र पोशाक को देख रही थी और उसकी बातें सुन रही थी। सुनने के साथ ही वह इन शब्दों के पीछे निहित तथ्य को भी समझने की कोशिश कर रही थी।

"हमारे पास तीस मशीनें थीं—वसंत तक सौ से ज्यादा हो जायेंगी। इस मात्रा को हमें गुण में बदलना होगा। इस परिवर्तन को पूरी तरह समझना होगा ! मुझे तो युद्ध के मोर्चे पर या पार्टिज़न दस्ते में भी ऐसी चिन्ता और घबड़ाहट नहीं हुई थी जैसी इस ज़िम्मेदारी से हो रही है। ढंग के आदमियों की कमी है; ज्यादातर मशीनें बिगड़ी हुई हैं। यह ज़िला तो बीसियों बरस से पिछड़ा रहा है। इसे एकदम सबसे आगे कैसे पहुंचाया जा सकता है ?"

आधी रात के समय मामूली से कपड़े लपेटे दोनों ठिठुरते रसोई घर में बैठे बातें कर रहे थे। कुछ देर बाद ही उन्हें यह खुशनसीब खयाल आया कि बातें बिस्तर में लेट कर भी की जा सकती हैं।

आन्द्रेई कुछ देर बातें कर लेने के बाद सो गया। उस हफ्ते पहली बार वह वालेंतिना के कंधे से मुंह सटा कर सोया था। वालेंतिना उसकी बातों और व्यग्रता को ही बिसूरती रही। उसे नींद नहीं आई।

वालेंतिना बिलकुल निश्चल पड़ी रही। उसे डर था कि उसके हिलने से कहीं उसके कंधे पर टिका आन्द्रेई का सिर हिल न जाये और आन्द्रेई की नींद टूट न जाय। उसका जी कर रहा था कि वह आन्द्रेई से माफ़ी मांग ले।

दूसरे दिन वालेंतिना ने मिसरानी के साथ हाथ बंटा कर बड़े ध्यान से खाना बनवाया। आन्द्रेई के शौक की खीर बनवायी—जैसी अस्पताल में कमज़ोर लोगों को खिलाई जाती है। "शहद, दूध, फलों का रस... और हां, अंडे भी। इनमें काफ़ी विटामिन और ग्लूकोज़ होगा।..." वालेंतिना सोच रही थी। "अस्पताल जाकर सिर दर्द की कोई अच्छी सी दवा भी ले आऊं। काम के ऐसे झमेले के वक्त आन्द्रेई बिस्तर पर लेट गया तो बस ! कल रात कितना कमज़ोर और पीला लग रहा था। इतना कमज़ोर मैंने उसे कभी नहीं देखा।"

आन्द्रेई के स्वास्थ की चिन्ता में वालेंतिना इतनी खोई-खोई हो रही थी कि दरवाज़ा खोलकर आन्द्रेई भीतर आया तो वालेंतिना अचकचा गयी। रात आन्द्रेई की जो अवस्था थी उससे इस समय इतना अन्तर था कि पहचान पाना मुश्किल था। आन्द्रेई के चेहरे पर वही पुरानी लाली और ताज़गी, चाल में

भी वही पुरानी चुस्ती थी। उसने खीर की तरफ़ ध्यान से देखा भी नहीं। कुर्सी पर बैठते हुए हाथ फैलाकर ऐसे बातचीत शुरू की कि सिर दर्द की दवा की पुड़ियां नीचे फर्श पर गिरकर बिखर गयीं।

"वाल्या! आज मेरे दफ्तर में बड़ा ज़ोरदार युद्ध हुआ। बस देखने लायक था। विसोत्सकी ने अपनी रिपोर्ट पेश की है कि प्रोखारचेन्को और रुबानोव ने मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन के लिए जो योजना तैयार की है वह निरी काल्पनिक है और कभी पूरी नहीं हो सकती। दोनों तरफ़ से खूब गरमा-गरमी हुई।"

"क्या इसीलिए इतने खुश नज़र आ रहे हो?"

"खुश? नहीं। सिर्फ़ खुश नहीं! ख़ैर तू तो जानती है... कैसे बताऊं?' कभी-कभी खुद विश्वास नहीं होता था कि ऐसी योजना पूरी हो सकेगी। जब तक दूसरों ने इस योजना का विरोध नहीं किया यह विश्वास जमा रहा। लेकिन जब विसोत्सकी ने अपनी दलीलें देनी शुरू कीं तो मेरा दिमाग साफ़ हो गया। योजना कैसे पूरी की जायगी यह स्पष्ट हो गया।... मैं तो कहता हूं कि विसोत्सकी अपने मन में चाहे तो समझता हो, मेरी उसने बड़ी मदद की। कैसे मदद की यह मैं नहीं कह सकता। मैं खुद नहीं जानता। लेकिन उसने मदद की है ज़रूर।"

आन्द्रेई जितनी अच्छी तरह अपने को समझता था, उससे भी अच्छी तरह वालेंतिना उसे समझती थी। आन्द्रेई में वास्तव में जुझारू आत्मा थी—विरोध के सामने आते ही वह थकावट, बीमारी, परेशानी सब कुछ भूल जाता था। वह खूब स्वस्थ, प्रसन्न, उत्साहित और उल्लसित दिखाई देने लगता था। आन्द्रेई बड़े उत्साह से बता रहा था कि विसोत्सकी ने यह आपत्ति की और प्रोखारचेन्को ने वह जवाब दिया। वालेंतिना उसमें इस परिवर्तन को देखकर ऐसी महसूस कर रही थी कि मेज़ से उठकर उसके गले में बाहें डाल दे और अपनी भावनाएं उस पर प्रकट कर दे—वे भावनाएं जिनका आन्द्रेई को रंचमात्र आभास नहीं था।

"कांटे को ऐसे मत घुमाओ आन्द्रेई! खीर फैल जायेगी।" वालेंतिना ने धीरे से कहा। "अच्छा बताओ, अब आगे क्या करोगे?"

उसकी आंखें सिमट गयीं। चेहरे पर प्रसन्नता और कठोरता का मिश्रित भाव छा गया।

"क्यों? पार्टी की मीटिंग में रखूंगा पूरे मामले को। वह अपनी बात पार्टी की सभा में कह ले। फिर मैं उत्तर दूंगा।"

"लेकिन इससे फायदा क्या होगा?" वालेंतिना ने सन्देह प्रकट किया। "तुम जानते हो कि लोगों में उसका सम्मान है और वह बोलता बहुत अच्छा

है। ग़लत दृष्टिकोण लोगों के सामने रखने का मौक़ा देने से फ़ायदा क्या? बेकार है, बेज़रूरत है।

"अच्छा?" उसने पलकें उठा कर पत्नी की ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा।

"'अच्छा' क्या? उसे बोलने का मौक़ा देने से फ़ायदा क्या होगा? मुझे बताते क्यों नहीं?"

आन्द्रेई ने सहसा वालेंतिना को अपनी ओर घसीट लिया और उसकी आंखों में देखता हुआ हंसने लगा।

"क्यों बताऊं तुझे? तू तो बड़ी चतुर है न, मुझ से भी जल्दी सब कुछ समझ लेती है!"

वालेंतिना ने लाख कोशिश की लेकिन आन्द्रेई ने उसे बताया नहीं। वह बहुत देर तक हंसता और उसे तंग करता रहा। दफ्तर लौटने के लिए जब वह उठा तो थकावट, परेशानी या सिरदर्द का नाम भी न था। उसकी चाल में वही चुस्ती और चेहरे पर वही मुस्कुराहट थी जो वालेंतिना को इतनी प्रिय थी।

दो दिन बाद पार्टी के कार्यकर्ताओं की सभा हुई। आन्द्रेई ने यह सभा पार्टी-दफ्तर में न बुलाकर मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में ही की।

वालेंतिना सभा के समय से कई घंटे पहले ही पहुंच गयी। वह चाहती थी कि योजना को एक बार खुद देख ले और उसके बारे में लोगों से बातचीत कर ले। हां, इस सम्बंध में विसोत्सकी से बात करने के विचार से ही उसे संकोच हो रहा था। विसोत्सकी के प्रति वालेंतिना के मन में बचपन से श्रद्धा थी। श्रद्धा बढ़ती ही गयी थी। किन्तु अब विसोत्सकी आन्द्रेई, प्रोखार-चेन्को और रुबानोव का विरोध कर रहा था। वालेंतिना को यकीन था कि ये लोग गलती नहीं कर सकते। पर विसोत्सकी पर भी उसे भरोसा था। वह डरती थी कि विसोत्सकी से उसकी मुलाकात पीड़ाजनक होगी। लेकिन मामला सुविधा से हल हो गया। विसोत्सकी उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे बुलाकर अपने निजी दफ्तर में ले गया। चमड़े की गद्दी वाली आराम कुर्सी पर उसे बैठाकर बोला:

"बड़ा अच्छा हुआ तुम मीटिंग शुरू होने से पहले आ गयीं। मैं चाहता हूं, अपनी रिपोर्ट तुम्हें अच्छी तरह समझा दूं। आन्द्रेई का मैं खुद बहुत आदर करता हूं। उसे प्यार भी करता हूं। पर उसमें दांव पर खेल जाने की जो आदत है वह मुझे पसन्द नहीं। उसने दूसरी जगहों पर काम किया है। इस ज़िले की

हालत उसे अच्छी तरह मालूम नहीं। उक्रेन कुबान नहीं है। यह जंगलों का इलाक़ा है, स्तपीय प्रदेश नहीं है।"

विसोत्सकी का चेहरा इतना रूखा और काला लग रहा था मानो धूप ने उसके चेहरे को हमेशा के लिए खराब कर दिया हो। उसकी भौहों के कुछ-कुछ सफेद घने बालों के नीचे उसकी अधमुंदी आंखें विशेष आकर्षक लगती थीं।

बीस वर्ष पहले जिस स्कूल में वालेंतिना पढ़ती थी उसमें विसोत्सकी प्रकृति-विज्ञान पढ़ाया करता था। वालेंतिना को याद था कि विसोत्सकी जब बच्चों से नाराज़ होता था तो उसकी भौहें सिकुड़ जाती थीं—हालांकि उसकी आंखों में हंसी समायी रहती थी। वालेंतिना को अपने पुराने अध्यापक से प्रेम था, पर उसे आन्द्रेई और प्रोखारचेन्को से भी प्रेम था।

"कुबान की धरती दूसरी तरह की है, हमारी उक्रेन की दूसरी तरह की। वहां की मिट्टी काली और चिकनी है, यहां की ढेलुवा।" विसोत्सकी के चेहरे से व्यग्रता टपक रही थी। "कुबान में गरमी का मौसम लम्बा होता है, हमारे यहां मौसम का कोई ठिकाना नहीं। कुबान के तरीके उक्रेन में आंखें बन्द करके कैसे लागू किये जा सकते हैं? मैं इस इलाक़े के हर ढूहे और टीले को जानता हूं। मुझे याद है कि पिछले तीस वर्षों में उक्रेन में कब-कब तूफ़ान फटा है। मैं कहता हूं—हम लोग ग़लत रास्ते पर जा रहे हैं। हमारी ग़लतियों से सारे ज़िले की अर्थ-व्यवस्था चौपट हो सकती है; हज़ारों इन्सानों की ज़िन्दगी खतरे में पड़ सकती है...। अगर यह सब ख़तरा न होता तो क्या मैं इतना झगड़ा-टंटा करता? क्यों लिखकर अपनी रिपोर्ट देता? तू इन कागज़ों को पढ़कर देख! इन्हें मैं यहीं छोड़े जाता हूं। तू कृषि-विशारद है और ज़िले की धरती तेरी देखी हुई है। मेरी बात तेरी समझ में आ जायेगी।"

वालेंतिना पढ़ने लगी। इन कागज़ों में पिछले तीन सालों में मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन की बातों का बड़ा विषद और विस्तृत वर्णन था। बड़ी मेहनत से आंकड़े तैयार किये गये थे—महीने में कितनी योजना पूरी हुई, कितना पेट्रोल खर्च हुआ, इत्यादि। अलग-अलग ट्रैक्टरों के टूटने और उनकी मरम्मत में ज़ाया हुए वक्त का घंटेवार अलग-अलग हिसाब था। तीन सालों में कब कैसा मौसम रहा, इसका भी ब्योरा था। जिस व्यक्ति को अपने काम से सचमुच प्यार हो वही इतनी मेहनत कर सकता था।

इस रिपोर्ट में लगे परिश्रम और उसके विस्तार को देखकर रिपोर्ट तैयार करने वाले के प्रति बरबस आदर उमड़ आता था। वालेंतिना आंकड़ों की लम्बी कतारों पर नज़र गड़ाये बड़ी सावधानी से कागज़ों को पलट रही थी। कृषि-विशारद के एकान्त दफ्तर में लगभग दो घंटे तक बैठी वह इसी रिपोर्ट

को पढ़ती रही। ज्यों ज्यों रिपोर्ट का अन्त निकट आ रहा था, वालेंतिना की चिन्ता बढ़ती जा रही थी।

रिपोर्ट की तालिकाओं, रेखाचित्रों और अंकों को देखकर चिन्ता बढ़ जाना स्वाभाविक ही था। टूटी-फूटी मशीनें, इने-गिने ट्रैक्टर ड्राइवर, वसंत में सर्दी और बारिश, पतझड़ का जल्दी शुरू हो जाना, पतझड़ में भी बारिश, खेतों में जल्दी से जल्दी काम खतम करने की आवश्यकता—रिपोर्ट के चमकीले पन्नों में यही सब कुछ ठूंस-ठूंस कर भरा गया था।

काम के दौरान में उठ खड़ी होनेवाली साधारण सी आकस्मिक कठिनाइयां भी इस रिपोर्ट के आंकड़ों के ज़रिए अवश्यंभावी और अपराजेय दिखाई दे रही थीं।

"इन तथ्यों से आंखें बन्द नहीं की जा सकतीं। इन्हें कोरी बकवास कह कर नहीं टाला जा सकता," रिपोर्ट के पन्नों को फिर से पलटती हुई वालेंतिना सोच रही थी। "और आंद्रेई? क्या उसने गम्भीरता से समस्या को समझा है? क्या वह जानता है कि वह क्या करने जा रहा है?"

आंकड़ों ने उस पर भी जादू कर दिया था। वह उठकर खड़ी हुई, मेज़ के पास से हटी और खिड़की के दरवाज़े पर जाकर बैठ गयी।

"समस्या इतनी गम्भीर है, यह मैंने भी नहीं सोचा था।"

खिड़की से बाहर वालेंतिना को मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन का बड़ा सा मैदान दिखाई दे रहा था। टीन की छत के नीचे मशीनों की पांत खड़ी थी। लोग-बाग बातें करते इधर से उधर आ जा रहे थे। इस दृश्य ने वालेंतिना के मन को और भी म्लान कर दिया। तभी नास्त्या ओगोरोद्निकोवा कारखाने की ओर जाती दिखाई दी।

"अरे, नास्त्या ओगोरोद्निकोवा भी तो है मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में।" वालेंतिना की आंखें चमक उठीं। "इसका ज़िक्र क्यों नहीं है इन आंकड़ों में? ऐसी तो कितनी ही टीमें हैं जो समय से पहले अपना काम पूरा कर लेती हैं। कितनी ही नयी कम्बाइन और ट्रैक्टर मशीनें हैं जिन्होंने पूरी गर्मियों में बिना एक भी टूट-फूट के काम किया है। मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में ये भी तो हैं। फिर रिपोर्ट में इनका ज़िक्र क्यों नहीं है? क्यों इन सबको औसत आंकड़ों के नीचे दबा दिया गया है। अगर इनको दबा दिया गया और इनकी तरफ से आंखें बन्द कर ली गयीं तो सचमुच भविष्य निराशामय दिखाई देगा। लेकिन हम इन्हें आंखों के सामने रखें और नये विचारों और नये कामों का सूत्रपात इन्हें ध्यान में रखकर करें तो..."

सुन्दर चमकीले कागज़ों पर बड़े परिश्रम तथा धैर्य से लिखी और बड़ी नफ़ासत से मोड़ कर फाइल के अन्दर सजाई रिपोर्ट सहसा वालेंतिना को बड़ी ही

संकीर्ण और नीरस जान पड़ी। इस रिपोर्ट में ऐसी भूलें थीं, जिन पर यकायक नज़र नहीं पड़ती थी, किन्तु जिन्होंने सारे परिश्रम पर पानी फेर दिया था। विसोत्सकी की याद कर वालेंतिना को इस समय दुःख हो रहा था।

स्टेशन में सबसे बड़े कारखाने के हॉल में, जिसमें पचास मशीनें रखने की जगह थी, मशीनें हटाकर सभा के लिए प्रबंध कर दिया गया था।

इमारत बिलकुल नयी थी। दीवारें—ताज़ी पुती हुई सफेद। फ़र्श चमक रहा था। दीवारों के साथ-साथ बेंचें लगा कर बैठने का प्रबंध कर दिया गया था। बाहर उजली धूप खिलखिला रही थी। दिन का तेज प्रकाश बड़ी-बड़ी खिड़कियों से भीतर आ रहा था। विस्तृत हाल में लोगों के कदमों की आहट और आवाज़ ऐसी लगती थी जैसे किसी पहाड़ी घाटी में लोग चल और बोल रहे हों। ताज़ी लकड़ी और हाल में घिसी जाने वाली धातुओं की गन्ध दीवारों से फूट रही थी। सुनहरे पुते तख्तों वाली आलमारियों में सजाये मशीनों के हिस्से निकल की पालिश से चमक रहे थे।

हाल के बीचों-बीच बेंचें लगी थीं। बेंचों के दोनों ओर ट्रैक्टरों की कतारें थीं—मानो सलामी के लिए खड़ी हों। छोटे से मंच के दोनों ओर नयी लाल रोगन की हुई खूब ऊंची कम्बाइन मशीनें थीं। सच पूछो तो इन मशीनों की जगह बाहर मैदान में थी। हॉल की छत के नीचे, मेजों और कुर्सियों के बीच, ये और भी दैत्याकार लग रही थीं।

"ओह! यह तो पूरा महल बन गया।" हॉल में नज़र दौड़ाते हुए उगारोव ने कहा। फिर कम्बाइन मशीनों की ओर संकेत कर पूछा: "ये दोनों क्या प्रिसीडियम की सदस्याएं हैं?"

"नहीं। ये तो हमारी ओर से मुख्य वक्ता हैं।" स्टेशन के राजनीतिक शिक्षक रुबानोव ने मुस्कराकर उत्तर दिया।

दुबला-पतला दक्षिणवासियों जैसे सांवले चेहरे वाला रुबानोव सभी जगह पहुंच रहा था। पल में इस ओर खड़े लोगों से बातें करता दिखाई देता तो पल में उस ओर खड़े लोगों में जा शामिल होता।

रुबानोव पहले दोनबास में फौलाद ढालने का काम करता था। उसे भारी चोट आ गयी थी। अस्पताल से लौट कर वह अपने लोगों के बीच दिल बहलाने के लिए उक्रेन चला आया था। कुछ दिन बैठे रहने के बाद उसका जी ऊब गया। तभी—जैसा कि वह दूसरों को बताया करता था—मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन उसके 'मन पर चढ़ गया।' धीरे-धीरे वह सहायक राजनीतिक शिक्षक

बन गया। रुबानोव ने ही मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में काम करने वालों का नाम 'लौह-पुरुष' रखा था। यही नाम ज़िले भर में चल पड़ा था।

"कहो कोस्त्या?" आन्द्रेई ने रुबानोव से पूछा। वह जानना चाहता था कि नये मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन की बाबत किसान क्या सोचते हैं।

रुबानोव आन्द्रेई का आशय समझ गया।

"लोगों को बहुत दिलचस्पी है।"

नवागन्तुकों को यहां की हर चीज़ बहुत आकर्षक लग रही थी। कारखाने, ट्रैक्टर, कम्बाइन मशीनें, मशीनों के हिस्से, पेट्रोल स्टेशन, सफेदी पुती टंकियां—सभी बहुत दिलचस्प चीज़ें थीं।

हॉल के वातावरण और सभा में पेश होने वाले विवादास्पद मसले—दोनों ने लोगों को काफ़ी उत्तेजित कर रखा था। विसोत्स्की और प्रोखारचेन्को के बीच मतभेद को वे जानते थे। दोनों के अलग-अलग अपने समर्थक थे। इस समय भी जगह-जगह टोलियां बांध कर बहस चल रही थी।

एक टोली के बीचों-बीच वासिली खड़ा था। उसके तगड़े शरीर और गूंजती आवाज़ की ओर लामुहाला ध्यान आकर्षित हो जाता था। पहली मई फ़ार्म की आश्चर्यजनक उन्नति और सफलता की बातें सब ओर फैल चुकी थीं। इसलिए लोग पहली मई फ़ार्म के प्रधान को कौतूहल और आदर से घेरे खड़े थे। वासिली अपनी स्थिति का महत्व खूब समझता था। इसीलिए वह बहुत सोच-सोच कर और अधिकार पूर्ण ढंग से बातें कर रहा था :

"प्रोखारचेन्को चाहता है कि पुरानी टीमों को तोड़कर नये और पुराने ट्रैक्टर ड्राइवरों को एक में मिला दिया जाय। हो सकता है इसका नतीजा अच्छा हो। लेकिन बुरा भी हो सकता है। मैंने एक टीम में आठ साल तक काम किया है। कोई हमारा दल तोड़ने की बात कहता तो हम लोग तो आसमान सिर पर उठा लेते; मंत्री तक का आसन हिला देते। इस वक्त मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में छः मज़बूत टीमें हैं। छः टीमें होना कोई बड़ी बात नहीं। लेकिन इनको तोड़ दिया और फिर कुछ न बना तो? यह काम बहुत सोच-समझ कर करना है। पुराने तरीक़ों को तोड़ना और रद्द कर देना कोई मुश्किल काम नहीं है। सारा सवाल है, हम नया क्या बनायेंगे?"

कुछ दूर ट्रैक्टर-ड्राइवरों की टोली में स्तेपान खड़ा था। स्तेपान और भी दुबला और पीला-पीला लग रहा था। वासिली की नज़र उस पर पड़ी। अपने सुख और समृद्धि की तुलना में स्तेपान की दयनीय अवस्था देख कर वासिली को अपने पराजित प्रतिद्वन्दी के प्रति दया भी आई और गर्व भी अनुभव हुआ।

"क्यों भई स्तेपान निकितिच, तुम्हारी क्या राय है?" कुछ उदारता और बड़प्पन के स्वर में वासिली ने पूछा। "मैं कह रहा था—अभी छः दल हैं। अगर इन्हें तोड़ दिया तो शायद एक भी न बचे। क्यों?"

स्तेपान ने कुछ लापरवाही और अनिच्छा से उत्तर दिया :

"छः टीमों की ही बात नहीं है। सभी पुराना ढंग बदलना ज़रूरी है।"

"तुम चाहे जो कर लो—बेलाविन नास्त्या तो बन नहीं जायगा।" वासिली ने गम्भीर स्वर में कहना शुरू किया। "मैं खुद ट्रैक्टर-ड्राइवर रह चुका हूं। मैं जानता हूं कि सवाया काम निकालने का क्या मतलब होता है। अपने वक्त में मैं भी नम्बर एक था। फिर भी हर महीने में सवाया काम थोड़े ही निकल सकता था। वादा करके उसे पूरा न कर सकने का मतलब होता है फ़ार्म को नीचे गिराना। हमें मालूम है कि दूसरों पर भरोसा करने से क्या होता है। किसान खुद कुछ करेंगे नहीं। बस मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन पर आंखें लगाये रहेंगे।"

स्तेपान ने कुछ कहा नहीं। उपेक्षा से चुप रह गया। वह वासिली के बातें करने के ढंग और उसके हाव-भाव को बड़े गौर से देख रहा था। वासिली का इस तरह बढ़-चढ़कर बातें करना स्तेपान को अच्छा नहीं लगा था। इससे भी अधिक क्षोभ उसके मन में इस बात का था कि अवदोत्या को ऐसे पति के साथ निबाह करना पड़ रहा है जो उसके योग्य नहीं है।

स्वस्थ-शरीर वासिली स्तेपान को बहुत सुखी दिखाई दिया। वह उस भाग्यशाली कुत्ते की तरह था जिसे अपने भाग्य का पता न था। वासिली की बुलन्द आवाज़ स्तेपान को कर्कश लग रही थी। "यहां खड़ा दहाड़ रहा है। अवदोत्या बेचारी इसकी प्रतीक्षा में बैठी होगी। यह घर पहुंचेगा तो इसके स्वागत के लिए दरवाज़े पर आ खड़ी होगी और यह मूर्ख..." यह विचार स्तेपान के लिए इतना असह्य हो गया कि वहां खड़े रहना सम्भव न रहा। मुंह फेर कर वह दूसरी ओर चल दिया।

स्तेपान के मुख पर वेदना का भाव और उसका यों चले जाना, मानो पीछे हट कर भाग रहा हो, वासिली से छिपा न रहा। पर उसने इस ओर ज़्यादा ध्यान न दिया और अपनी बात कहता गया :

"बेंजामिन इवानोविच से मेरा कई बार झगड़ा हो चुका है। हमारे काम में ऐसा हो जाना स्वाभाविक है। लेकिन यह मैं बता दूं—वह आदमी बहुत ठोस है, बेमतलब बात करने वाला नहीं है।"

वासिली के मन में विसोत्सकी की अच्छी सूझ-बूझ और समझदारी के लिए पहले भी बहुत आदर था। अब जब उसने देखा कि विसोत्सकी अपने विचार के अनुसार ठीक बात के लिए ज़िले भर के नेताओं के विरोध की

परवाह न कर निर्भय और निस्संकोच डटा है तो उसके प्रति वासिली की श्रद्धा और भी बढ़ गयी।

दूसरे बहुत से लोग भी वासिली की ही तरह सोचते-समझते थे। चारों ओर बहस चल रही थी और सभी लोग मीटिंग में होने वाले घनघोर युद्ध की प्रतीक्षा कर रहे थे।

विसोत्सकी हॉल में दाखिल हुआ। वह लम्बे-लम्बे भारी क़दम मज़बूती से फर्श पर जमाता हुआ चल रहा था——मानो उसे चलने की बहुत आदत हो। सभी लोगों की आंखें उसकी ओर उठ गयीं। सब ओर से उसके स्वागत में पुकारें उठने लगीं। वह मुस्करा-मुस्करा कर कृतज्ञता से उत्तर दे रहा था। मन ही मन सोच भी रहा था : "अगर मैं अपनी बात के लिए उचित दलीलें न भी दे पाया तो भी इन लोगों की सहानुभूति से इनका विश्वास तो पा ही लूंगा।"

वालेंतिना मीटिंग शुरू होने से पहले विसोत्सकी से दिल खोलकर साफ़-साफ़ बातें करना चाहती थी। पर लोगों ने विसोत्सकी को ऐसे घेर रखा था कि उससे बातें करना सम्भव न था। अस्तु, वालेंतिना चुपचाप अपनी जगह बैठी रही। हां, अन्य आवाज़ों के बीच अपने पति की आवाज़ उसके कानों में पहुंच रही थी।

जैसा कि जटिल अवसर आने पर बहुधा होता था—आन्द्रेई आज भी खूब उत्साहित और प्रसन्न था। किसी से हाल-चाल पूछा, किसी से मज़ाक किया और किसी की बात पर ज़ोर से कहकहा लगाकर हंस दिया। परन्तु आस-पास खड़े लोगों की बातें सुनने के लिए वह कान खड़े किये था और यह भांपने की कोशिश कर रहा था कि लोग क्या सोचते हैं। मन ही मन वह यह भी सोच रहा था कि मीटिंग में उसे क्या कहना है और कैसे कहना है। दूसरों की बातें सुनकर उसका मस्तिष्क और भी साफ होता जा रहा था।

"विसोत्सकी अपनी बात पर अड़ा है, उत्तेजित भी है। लोग उसे घेरे खड़े हैं। अपने भ्रम का शिकार वह अकेला ही नहीं है। ऐसा न होता तो यह मीटिंग बुलाने की ज़रूरत ही क्या थी? जब कभी परिवर्तन की बात सोची जाती है तभी विरोध सामने आता है। यही तो द्वन्द्ववाद है।"

आन्द्रेई की नज़र दूसरों से लम्ब-तड़ंग वासिली पर पड़ी। वह उसे बहुत ध्यान से देख रहा था और उसकी बातें सुनने की कोशिश कर रहा था। सभा से पहले वासिली से बातें करने का उसे मौक़ा नहीं मिला था। आन्द्रेई जानता था कि वासिली ने जिस बात को अनुभव से परख और समझ नहीं लिया उस पर हमेशा सन्देह करेगा। वह उसकी योग्यता से भी अच्छी तरह परिचित था।

सन्देह दूर हो जाने पर फिर किसी नये काम को करने में आन्द्रेई के उत्साह और लगन का अंत नहीं होता था।

"बात इसकी समझ में आ जाय और यह उसे पकड़ ले तो फिर यह हर नये काम में हमारा सबसे बड़ा सहायक बन जाय।"

आन्द्रेई भीड़ में नज़रें दौड़ाकर ज़िला पार्टी के साथियों को खोज रहा था। लुक्यानोव का मटियाला, पीला सा चेहरा और गहरी-गहरी आंखें दिखाई दीं। वोलगिन की ज़रा भेंगापन लिए फैली-फैली कातर आंखें दिखाई दीं। वोलगिन समझदार आदमी था। वह आन्द्रेई को औरों से ज्यादा अच्छी तरह जानता था। आन्द्रेई जिस व्यग्रता को स्वयं अपने से छिपाने की कोशिश कर रहा था उसे भांपते वोलगिन को देर न लगी। वह आन्द्रेई के पास पहुंचा और धीरे से बोला :

"घबराओ नहीं पेत्रोविच! सब ठीक हो जायगा। हमारे साथियों ने किसानों को अच्छी तरह समझा दिया है। तुम चिन्ता मत करो।"

"मुझे चिन्ता किस बात की?" आन्द्रेई ने हंसकर उत्तर दिया। पर मन ही मन उसने आदर से सोचा : "यह है पार्टी का पुराना आदमी। दिल तक की बात समझ लेता है।"

अब तक सब लोग आ गये थे। हॉल ठसाठस भर गया था। जिन्हें बेंचों पर जगह न मिली वे मशीनों के ऊपर, यहां-वहां, जहां भी जगह मिली, बैठ गये।

मशीन-ट्रेक्टर स्टेशन में काम करने वालों का झुंड अलग ही स्पष्ट दिखाई दे रहा था। वे अभी-अभी काम बंद करके आये थे और कारखाने में काम करते समय कपड़ों के ऊपर पहनने के तेल और कालिख लगे चोगे पहने थे। ये लोग सबसे ज्यादा आराम से जमे दिखाई देते थे—खूब खुशमिज़ाज, एक दूसरे से मज़ाक करते हुए। उनकी हंसी सबसे ज्यादा उन्मुक्त थी।

रुबानोव ने सभा आरम्भ होने की सूचना दी और आन्द्रेई से अनुरोध किया कि भूमिका रूप में वह समस्या के बारे में कुछ कहे।

"साथियो!" आन्द्रेई ने कहना शुरू किया। "इससे पहले कई मौकों पर हम लोग अलग-अलग जगहों पर सभाएं कर चुके हैं। कभी हमारी सभाएं ज़िला पार्टी के दफ्तर में हुईं, कभी फ़ार्मों के दफ्तरों में, कभी पशुशालाओं और गोशालाओं में और कभी खेतों में। ज़िले के इतिहास में पहली बार हमारे किसान और कार्यकर्ता अपनी सभा ज़िला पार्टी दफ्तर में नहीं, किसी फ़ार्म के दफ्तर या खेत में नहीं बल्कि एक बड़े कारखाने में, जो कृषि के यंत्रों को बनाने के साधनों से सम्पन्न है और जिसकी तुलना किसी भी बड़े से बड़े कारखाने से की जा सकती है, कर रहे हैं। अपनी यह सभा इस जगह करने

का एक खास प्रयोजन और महत्व है। यहां आने पर आप लोगों में से हरेक अपनी आंखों से देख सकता है और यह महसूस कर सकता है कि हमने कितनी बड़ी शक्ति हासिल कर ली है। मेरी यही कामना है कि आज का दिन हमारे ज़िले के बड़े-बड़े सामूहिक खेतों में काम करने वालों और मशीन ट्रैक्टर वालों के बीच सच्ची और दृढ़ मैत्री का दिन बन जाय और हमारे ज़िले के इतिहास में नया अध्याय जोड़े।"

आन्द्रेई ने ठसाठस भरे हॉल में नज़र दौड़ाई। लम्बे चौड़े सुडौल सशक्त व्यक्ति उत्सुक आंखें फैलाये, मेहनती हाथ ढीले छोड़े, हॉल में यहां-वहां बैठे बड़े ध्यान से उसकी बातें सुन रहे थे।

"ज़िले के लोग," वासिली ने आगे कहना शुरू किया, "मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में काम करने वालों को 'लौह-पुरुष' कहते हैं। यह नाम मज़ाक में ही दिया गया है। फिर भी इससे काफ़ी ज़िम्मेदारी बढ़ जाती है। खुले मुंह की भट्ठियों में पिघलने वाली इस्पात का हिसाब घंटे-घंटे और मिनट-मिनट रखा जाता है। बड़े-बड़े औद्योगिक कारखानों में 'कन्वेयर' की गति का हिसाब मिनटों और सेकन्डों में रखा जाता है। मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन खेतों के बीच स्थित एक कारखाना है। हमारा काम यहां की मशीनों को ठीक से संचालित करना ही नहीं है। हमारा काम है खेती के समूचे काम के संगठन में नयी प्रणाली का श्रीगणेश करना। मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन के काम के संगठन के बारे में प्रोखार-चेन्को एक रिपोर्ट आपके सामने पेश करेंगे। विसोत्सकी को इस रिपोर्ट से मत-भेद है। उन्होंने दूसरी योजना बनायी है। विसोत्सकी बहस में भाग लेंगे और आपके सामने अपने विचार प्रकट करेंगे। दोनों पक्ष आपके सामने पेश होंगे। बिना किसी जल्दबाज़ी के खूब बहस होगी और फिर मसले पर बेहिचक फैसला लिया जायगा।"

आन्द्रेई के शब्दों ने जनता को आगामी कार्यक्रम के लिए तैयार कर दिया। हॉल में उत्सुकता पूर्ण सन्नाटा छा गया। उस सन्नाटे में मंच की ओर जाते प्रोखारचेन्को के कदमों की आहट हॉल के लकड़ी के फ़र्श पर हथौड़े की चोटों की तरह गूंज रही थी।

प्रोखारचेन्को पांच-सात लोगों के बीच आपसी बातचीत में अपनी बात बहुत सरलता और आत्मविश्वास से कहने की क्षमता रखता था। बीच-बीच में हंसी की फुलझड़ियां उसकी बातों को और भी रोचक बना देती थीं। लेकिन बड़ी सभाओं में व्याख्यान देने का उसे अभ्यास नहीं था। मंच पर आते ही वह कुछ घबरा गया और बहुत गम्भीरता से दफ्तरी या सरकारी भाषा में बातें करने लगा। आन्द्रेई उसकी आदत से परिचित था। लेकिन उसे यह नहीं मालूम था कि प्रोखारचेन्को इतने शुष्क ढंग से बोलेगा।

आन्द्रेई मन ही मन कह रहा था : "कुछ जोश की बात कर भाई ! सब मामला चौपट किये दे रहा है। योजना इतनी अच्छी है। दफ्तर में तो ऐसे बातें कर रहा था जैसे वृहस्पति का अवतार हो।... यहां सबसे पहले इसे खड़ा करके बड़ी गलती की।" प्रोखारचेन्को की बातें शुष्क थीं फिर भी लोग सुन ध्यान से रहे थे। एक तो, बातें सारगर्भित थीं। दूसरे, लोग प्रोखारचेन्को को जानते थे। लोग जानते थे कि उसी ने दो बरस में इतना बड़ा स्टेशन खड़ा कर दिया है। उसके शब्द रूखे थे पर उनके पीछे बड़ी-बड़ी कामयाबियां छिपी थीं।

योजना की सब बातें एक-एक करके श्रोताओं के सामने पेश कर दी गयीं। ट्रैक्टर चलाने वाले दलों को फसल तैयार करने वाले दलों के साथ मिलाकर ज़मीन की जुताई से लेकर फसल की मड़ाई तक की पूरी ज़िम्मेदारी देने के सुझाव; फसल की पैदावार को काम के अनुपात से मजदूरी में बांटने का सुझाव; काम का घंटे-दर-घंटे हिसाब रखने का सुझाव; ट्रैक्टर चलाने वालों और किसानों में काम की प्रतियोगिता तथा सम्पर्क का सुझाव; ट्रैक्टर दलों के पुनर्संगठन और अनुभवी ट्रैक्टर ड्राइवरों को दूसरे दलों में बांट कर नौसिखियों की योग्यता बढ़ा सकने का सुझाव—सभी सुझाव पेश कर दिये गये।

प्रोखारचेन्को द्वारा प्रस्तुत वार्षिक उत्पादन योजना के आंकड़ों का कम्युनिस्टों पर गहरा असर पड़ा। प्रोखारचेन्को ने कहा था :

"प्रान्तीय कमिटी की योजना के मसौदे में खेती के सत्तर प्रतिशत काम को मशीनों से कराने का प्रस्ताव है। हमने दूसरी योजना प्रस्तुत की है। हमारी योजना के अनुसार खेतों का नब्बे प्रतिशत काम मशीनों से होगा। इसके लिए हर ट्रैक्टर ड्राइवर को अपने काम को एक सौ बीस प्रतिशत बढ़ाना होगा।"

उपस्थित जन-समुदाय में सिहरन सी दौड़ गयी। लोग उत्तेजित होकर बातें करने लगे :

"पिछले बरस तो कई-कई दिन ट्रैक्टर बेकार खड़े रहते थे। अब एकदम एक सौ बीस प्रतिशत बढ़ती ?"

"पिछले साल मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन की हालत भी तो ऐसी नहीं थी।"

"अब भी तो आधे ट्रैक्टर वही पुराने हैं। ट्रैक्टर क्या हैं—लोहे-कबाड़े के ढेर हैं।"

"लेकिन बाकी आधे तो बिलकुल नये हैं।"

"हां, कागज़ पर तो सभी कुछ आसान दिखता है।"

विसोत्सकी बिलकुल आगे ही बीचोंबीच एक बैंच पर बैठा प्रोखारचेन्को को अपनी तीव्र दृष्टि से छेदे डाल रहा था। उसके पीछे बैठे किसी आदमी ने झुक कर उसके कान में कुछ कहा। विसोत्सकी के पास बैठे लोगों ने भी बात

सुन ली। कुछ के चेहरों से जान पड़ रहा था कि वे उस बात से बहुत खुश हुए हैं, और कुछ के चेहरों से यह कि उन्हें सन्देह है।

विसोत्सकी ने पहले तो सिर हिलाया फिर एक कंधा उचका दिया मानो कह रहा हो : "मैं क्या कर सकता हूं? मैंने पहले ही कह दिया था!" सभी लोग उत्तेजित थे। केवल आन्द्रेई अपने स्थान पर शांत और निश्चल बैठा था!

मालूम होता था कि आन्द्रेई को न तो उत्तेजना है, न व्यग्रता; न ही उसके चेहरे पर विसोत्सकी के प्रति क्रोध के चिन्ह थे। इस प्रौढ़ कृषि-विशेषज्ञ की अपने विचारों के प्रति दृढ़ निष्ठा और स्पष्टवादिता के लिए आन्द्रेई को सहानुभूति थी। वह उसकी ओर बड़ी उत्साहपूर्ण दृष्टि से देख रहा था। विसोत्सकी ने भी आन्द्रेई की ओर देखा। दोनों की आंखें चार हुईं। विसोत्सकी ने सोचा : "क्या उसने मान लिया है कि मैं सही कह रहा हूं? या... या उसे मुझ पर तरस आ रहा है?"

वालेंतिना लोगों की उत्तेजिना को देख रही थी और स्वयं भी उत्तेजित हो रही थी। मन ही मन वह कह रही थी : "असली ज़रूरत तो है लोगों में योजना के लिए उत्साह पैदा करना। सो तो प्रोखारचेन्को ने किया नहीं। उसकी बातें सुनकर ऐसा लग रहा है जैसे उसने लोगों के मुंह पर गीली झाड़ू फेर दी हो।"

प्रोखारचेन्को अपना भाषण समाप्त कर प्रिसीडियम में अपनी कुर्सी पर चुपचाप बैठ गया। उसे देखने से जान पड़ता था कि अपने भाषण से खुद उसे संतोष नहीं है।

"भाई किसी के मातम में भाषण दे रहे थे क्या···?" आन्द्रेई ने झुक कर उसके कान में कहा।

रूमाल से अपने गंजे सिर का पसीना पोंछते हुए प्रोखारचेन्को कुछ बुदबुदाया मानो कह रहा हो : "मुझे खुद अपने ऊपर खीझ उठ रही है भाई! समझ में नहीं आता क्या हो गया था मुझे?" वोलगिन पास ही बैठा था। धीरे से बोला :

"भाषणों से क्या होता है? योजना अच्छी है और लोगों को पसंद है। यही बहुत है। दोपहर में खाने की छुट्टी के वक्त कारखाने में जब प्रोखारचेन्को लोगों को योजना की बातें समझा रहा था तब इसे देखते...!"

बहस शुरू हुई। बोलने के लिए सबसे पहले विसोत्सकी खड़ा हुआ।

विसोत्सकी के मंच पर पहुंचते ही हॉल में सन्नाटा छा गया। उसके गालों की हड्डियां और भी उभरी हुई तथा माथे पर पड़े बल और गालों की झुर्रियां और भी गहरी दिखाई दे रही थीं। भौंहें तो मानो आंखों पर झुक आई थीं। आवाज़ भी बहुत गम्भीर थी।

"इस ज़िले में काम करते मुझे तीस वर्ष हो गये हैं। मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में भी मैं पिछले एक वर्ष से काम कर रहा हूं। उक्रेन में पहले ट्रैक्टर से उलटी धरती की गहराई मेरी नापी हुई है। ट्रैक्टर के पीछे लगी पहली बीज बिखेरने की 'ड्रिलों' की जांच मैंने की थी। ये सब बातें मैं अपनी तारीफ़ बघारने के लिए नहीं कह रहा हूं। मैं सिर्फ यह बताना चाहता हूं कि मैं कभी मशीनों के उपयोग का विरोधी नहीं रहा हूं; नयी टेकनीकों के उपयोग से मैं कभी दूर नहीं रहा हूं। फिर क्यों प्रोखारचेन्को और ज़िला पार्टी के नेताओं की बनायी योजना का विरोध करना पड़ रहा है?"

विसोत्स्की कुछ रुका, मानो असली बात आने पर वक्तृता-क्षमता खतम हो गयी हो। हॉल में छाया सन्नाटा और भी गहरा हो गया। विसोत्स्की ने अपने को सम्भाला और बोलना शुरू किया :

"अगर मैं कहूं कि इस ज़िले और इस मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन को मेरी अपेक्षा अधिक जानने वाले लोग कम ही होंगे—तो कोई इसे कोरी आत्म-प्रशंसा न समझे। मैं इस ज़िले की धरती, जलवायु, मशीनों, ज़िले के इतिहास और इस स्टेशन के इतिहास को अच्छी तरह जानता हूं। इस ज़िले के हर सामूहिक फ़ार्म के प्रधान और हर ट्रैक्टर-ड्राइवर को मैं जानता हूं। आप कुबान की ढेलुवा ज़मीन का उक्रेन की काली ज़मीन से मुकाबला नहीं कर सकते। आप कुबान की कार्य-प्रणाली को उक्रेन में यांत्रिक रूप से लागू नहीं कर सकते। मैं दावे के साथ कहता हूं कि आज मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में जितनी मशीनें और आदमी हैं उनके बूते खेती के नव्वे फ़ीसदी काम को मशीनों से पूरा कर सकना एकदम असम्भव है। नव्वे प्रतिशत काम का वादा करना और उसे पूरा न करना सामूहिक फ़ार्मों को धोखा देना और बोवाई का काम खतरे में डालना होगा। मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन जो योजना बनायेगा किसान उसी के मुताबिक अपना काम आरम्भ करेंगे। स्टेशन अपने वायदे पूरे नहीं कर पायेगा तो बेचारे किसान आफत में फंस जायेंगे। मतलब यह कि बोवाई में देरी होगी। सैकड़ों मन फसल बरबाद हो जायेगी। ज़रा आप लोग सोचिये तो—आप में से हरेक सोचे—कि निश्चित समय पर ट्रैक्टर नहीं पहुंचता तो क्या होगा। दुविधा! दुश्चिन्ता! परेशानी! कृषि की व्यवस्था तहस-नहस हो जायेगी! फसलें बरबाद हो जायेंगी! प्रोखारचेन्को द्वारा पेश की गयी योजना की गलती के असली नतीजों को समझने वाले को यह मानते देर न लगेगी कि मैं जो कुछ कह रहा हूं वह सही कह रहा हूं।"

विसोत्स्की के बोलने का ढंग इतना विश्वासोत्पादक था कि वालेंतिना घबरा कर सोचने लगी, "इसकी बातों में तो जादू है। मुझ तक पर असर हो रहा है। लोग बहके बिना नहीं रह सकते। आन्द्रेई को सूझी क्या यह

मीटिंग करने की? क्या ज़रूरत थी इस आदमी को ग़लत विचार पेश करने और उनका प्रचार करने का मौका देने की? ज़िला पार्टी कमिटी में ही बात कर ली होती, यही बहुत था।"

आन्द्रेई को घूरती हुई वालेंतिना मन ही मन कहने लगी: "कहा न था मैंने तुमसे पहले! तुम्हें चेतावनी दी थी! लेकिन तुम किसी की सुनो तब न! हमेशा स्कूली बच्चों की तरह झगड़े में मज़ा आता है तुम्हें तो!" आन्द्रेई सभापति मण्डल में चुपचाप सिर झुकाये बैठा था।

बड़ी मुस्तैदी और बेमुरौवती से विसोत्सकी प्रोखारचेन्को की दलीलों की धज्जियां उड़ाये जा रहा था। वालेंतिना ज्यों-ज्यों उसकी बातों को सुनती उसकी बौखलाहट बढ़ती जाती।

"इस वक्त हमारे पास ट्रैक्टर ड्राइवरों के सिर्फ़ छः अच्छे दल हैं," विसोत्सकी कह रहा था। "ये दल ही हमारी मुख्य शक्ति हैं। इन दलों को मज़बूत ढंग से संगठित करने में पूरे डेढ़ बरस का समय लगा है। इन दलों को तोड़ना, कुशल ड्राइवरों को नौसिखिया ड्राइवरों में बिखेर देना, अपने हाथों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना होगा। ऐसे सुझावों का समर्थन मैं नहीं कर सकता। ऐसे सुझावों के समर्थन की मुझसे आशा करना यह आशा करना होगा कि अपने हाथों पाल-पोस कर बड़े किये पेड़ की जड़ पर मैं कुल्हाड़ी चला दूं।"

"क्या बकवास कर रहा है यह आदमी?" वालेंतिना ने मन ही मन कहा। "क्या इसे नहीं मालूम कि जो कुछ यह कह रहा है वह कितना गलत और नुकसानदेह है?"

विसोत्सकी के प्रति आदर और श्रद्धा का पुराना भाव मिट चला था और अब वालेंतिना के हृदय में क्रोध उमड़ रहा था। "आन्द्रेई क्यों इतना चुप है? पहले तो यह सब गड़बड़ किया और अब ओंठ सिये बैठा है।"

"जंगलों और पहाड़ियों से भरे हमारे ज़िले में," विसोत्सकी और भी दृढ़ता तथा आत्मविश्वास से बोला, "धरती और फसलें अलग-अलग समय पर तैयार होती हैं। बसंत देर से शुरू होता है और काफी सर्दी रहती है। पतझड़ जल्दी शुरू होता है और बरसात भी होती है। इनकी वजह से हमें मजबूर होना पड़ता है कि हम कम से कम वक्त में फसलें बोयें और उन्हें काट भी लें। यह कुबान नहीं कि फसल आज नहीं कटी तो दो दिन बाद कट जायगी। हमारे यहां तो फसल आज नहीं कटी तो समझो कल पानी ज़रूर बरसेगा और कितनी ही फसल बरबाद हो जायगी। यही वजह है कि अलग-अलग ट्रैक्टर टीमों को कुबान की तरह ज़मीन के अलग-अलग टुकड़ों में बांध देने का मतलब हमारे लिए सत्यानाश होगा। हमें इस बात का पूरा बन्दोबस्त

करना होगा कि हम जब जहां चाहें वहां अपने ट्रैक्टर दल भेज सकें; जहां सबसे ज्यादा ज़रूरत हो, जहां फसल पक चुकी हो, वहां अपने सबसे अच्छे और सबसे बड़े दस्ते रवाना कर सकें। यही ज़रूरी भी है। मेरा अब तक का तजुर्बा कहता है कि यही सही भी है।"

"ट्रैक्टर दलों को कोई खूंटे से थोड़े ही बांध देगा?" वालेंतिना चिल्ला उठी। "कोई यह तो कह नहीं देगा कि ट्रैक्टर-दलों को उन जगहों पर मत भेजो जहां ज़मीन तैयार है।"

"हां! सिद्धान्त रूप में तो कोई उन्हें खूंटे से नहीं बांधेगा! लेकिन मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन के प्रबंधकों को 'घरेलू' हिस्सों से 'बाहरी' हिस्सों में ट्रैक्टर भेजने में बड़ी परेशानी होगी और बड़ा परिश्रम लगेगा!"

"तो आपको परेशानी और परिश्रम से डर लगता है?" वालेंतिना ने फिर टोका।

आन्द्रेई ने आंखें उठा कर गौर से वालेंतिना की ओर देखा मानो सोच रहा हो कि वालेंतिना मंच पर आकर बोलेगी तो श्रोताओं पर क्या असर पड़ेगा।

विसोत्सकी के माथे पर बल पड़ गये। उसने बड़े शान्त स्वर में कहा:

"परेशानियों से मैं कभी नहीं डरा और न किसी ने मुझे परिश्रम से भागते देखा है।".

"ठीक है! ठीक है!" हॉल में से किसी की आवाज़ आई।

विसोत्सकी का स्वर और भी ऊंचा हो गया।

"हमारी मशीनों में से करीब आधी टूटी-फूटी और बिगड़ी पड़ी हैं," विसोत्सकी अपनी बात पर डटा रहा। "हमारे ट्रैक्टर ड्राइवरों में से आधे अभी स्कूलों से निकल कर आये हैं। लेकिन वे भी काफी नहीं हैं। पिछले साल मशीनों में खराबियों के कारण काम में अट्ठाइस फ़ी सदी नुक़सान हुआ था। ट्रैक्टरों के इंजन बिगड़ते रहने के कारण काम के पूरे मौसम में तीन हज़ार घंटे काम बन्द रहा। क्या ऐसी स्थिति से मैं आंखें बन्द कर लूं? इसीलिए मैं कहता हूं कि मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन की योजना बढ़ा-चढ़ा कर बनायी गयी है और काल्पनिक है—और अगर इस योजना के आधार पर सामूहिक फ़ार्म वालों का कार्यक्रम बना तो इतनी बड़ी गलती होगी कि समूचे ज़िले पर तबाही आ जायेगी।"

सुनने में विसोत्सकी के तर्क अलग-अलग और स्पष्ट मालूम होते थे। ऊपर से देखने में वे अकाट्य लगते थे। इसी से वालेंतिना को झुंझलाहट भी आ रही थी:

"कह क्या रहा है यह? क्या कह रहा है?" वालेंतिना चिंतित और क्रुद्ध थी। "इतना होशियार आदमी है। इतना अच्छा आदमी है। फिर भी इसने अच्छा काम करने वालों, नयी मशीनों या पिछली सफलताओं के बारे

में एक शब्द भी नहीं कहा। भविष्य की ओर कोई भी आशापूर्ण संकेत नहीं किया। क्या इसकी आंखें सिर के पीछे हैं? सिर्फ़ पुरानी बातें देखता है। नहीं। मैं गलती पर थी। आन्द्रेई ने अच्छा किया जो इसे बोलने और अपनी बातें कहने का मौका दिया! यह झगड़ा सिर्फ झगड़े का मज़ा लेने के लिए नहीं है! जो विचार यहां प्रकट किये जा रहे हैं वे इतने ख़तरनाक और इतनी तेज़ी से फैलने वाले हैं कि इन्हें किसी अंधेरे कोने में फलने-फूलने का मौका देना गलत होगा! इन्हें तो उजाले में खींच ला कर खतम करना ही ज़रूरी है। विचारों की जिस इमारत को विसोत्सकी ने इतनी चालाकी से खड़ा किया है उसकी अगर एक ईंट भी साबुत छोड़ दी गयी तो लोग ठोकर खाकर गिर पड़ेंगे।"

वासिली की मुद्रा से वालेंतिना को जान पड़ा कि वह विसोत्सकी से सहमत है और उसकी बातों के समर्थन में सिर हिला रहा है।

"यह आदमी भला है या बुरा, यह मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकती। पर एक बात मैं जानती हूं—यह है बहुत ख़तरनाक। मैं इसकी भलाई को लेकर क्या करूं? इस वक्त तो दुश्मन का काम कर रहा है। रह-रह कर मुझे क्रोध आ रहा है। लोगों को इसके असर से बचाना ज़रूरी है।"

विसोत्सकी ने जैसे ही भाषण समाप्त किया वालेंतिना तुरंत उठकर मंच की ओर बढ़ी और भाषण देने की जगह जा खड़ी हुई। उसके छोटे कद और उत्तेजना से लाल चेहरे पर ज़रा तिर्छी अस्तरखानी टोपी बड़ी भली लग रही थी। उसके होंठ क्रोध से फड़फड़ा रहे थे।

आन्द्रेई को अपनी आंखों पर यकीन नहीं आ रहा था। इससे पहले भी उसने वालेंतिना को क्रुद्ध देखा था, पर इतना कभी नहीं।

क्षण भर को तो वालेंतिना की आंखों के आगे अंधेरा छा गया। उसे कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। कुछ दिखाई दे रहा था तो केवल विसोत्सकी का सांवला चेहरा। उसे यह ध्यान भी न था कि वह सभा के मंच पर है। सीधे विसोत्सकी को ही सम्बोधित कर तीखे स्वर में उसने बात कहनी शुरू की। सैकड़ों लोगों के सामने मुंह-दर-मुंह बातचीत शुरू हो गयी।

"आप मेरे गुरू थे। आपने मुझे कृषि-विशारद बनने की प्रेरणा दी। कितनी ही बार विद्यालय में मैंने मन ही मन दोहराया होगा: 'काश मैं विसोत्सकी जैसी कृषि-विशेषज्ञ बन सकूं।' इसीलिए मैं आज धीरज से नहीं बोल सकती। आपने जो कुछ यहां कहा है, उसका सिर्फ़ बाहरी रूप सच है; भीतर उसके सब झूठ है। सचाई के नाम पर आपने लोगों में झूठ और भ्रम फैलाने की कोशिश की है! प्रगति के नाम पर आपने लोगों में प्रतिक्रिया का प्रचार किया है!"

विसोत्सकी की आंखें मिचमिचा गयीं—जैसे किसी ने उसके मुंह पर कोई चीज़ दे मारी हो। हॉल में प्रशंसा और विरोध की एक गूंज सी उठने लगी।

"यह मैं क्या कर रही हूं?" क्षण भर को वालेंतिना को ख़याल आया। "विसोत्सकी जैसा वृद्ध, भला आदमी...! लेकिन मैं कर ही क्या सकती हूं?"

"आदरणीय बेंजामिन इवानोविच," उसके स्वर में करुणा भी थी, दया भी, "मैं आपका बहुत आदर करती रही हूं। मैंने जीवन भर आपका सम्मान किया है। लेकिन सच्ची बात मुझे कहनी ही पड़ेगी। टीमों के पुनर्संग-ठन का आप विरोध करते हैं। आपको ट्रैक्टर-ड्राइवरों के पुराने दलों पर बहुत भरोसा है। लेकिन क्या आप यह नहीं जानते कि नास्त्या ओगोरोद्निकोवा जैसी ट्रैक्टर ड्राइवर अभी तक बिलकुल साधारण ट्रैक्टर ड्राइवरों की स्थिति में है। क्या वजह है कि नये ड्राइवरों को उसके अनुभव से सीखने का मौका न दिया जाय? क्या नास्त्या एक दल की नायक बन कर लोगों को काम सिखाने में सहायता नहीं कर सकती? ट्रैक्टर-ड्राइवर दलों की रक्षा की बात ऊपर से तो बहुत समझदारी की जान पड़ती है पर सच पूछो तो इसका अर्थ है नये योग्य दलों की बढ़ती में रुकावट डालना, मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन के विकास और विस्तार में रुकावट डालना। कितनी नुकसानदेह और प्रतिक्रियावादी नीति है यह! न जाने आप यह बात क्यों नहीं समझ पाते!"

वालेंतिना ने हॉल में बैठे लोगों पर नज़र डाली। अब उसकी आंखों के सामने अंधेरा नहीं था। सामने बैठे लोगों के चेहरे उसे स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। उसे वासिली का चेहरा दिखाई दिया। वह किसी सोच में डूबा हुआ था।

"साथियो! मैं पूछती हूं क्या मैं ग़लत कह रही हूं?" वालेंतिना ने सम्मुख बैठे लोगों से प्रश्न किया।

"नहीं, नहीं! बिलकुल ठीक है! बिलकुल ठीक है!" बहुत सी आवाज़ें सुनाई दीं।

वासिली चुपचाप बैठा रहा। हिला तक नहीं।

"बेंजामिन इवानोविच को ट्रैक्टर दलों को खेत पर काम करने वाले दलों के साथ बांध रखने पर एतराज़ है। उनका कहना है कि इससे दलों को 'इच्छानुसार काम पर लगाने' में बाधा होगी। माना कि ज़िले के दक्षिणी स्तपी स्थित सामूहिक खेतों से मशीन की एक पूरी कतार को उत्तर के जंगली हिस्सों की तरफ बढ़ते देख कर बड़ा रौब पड़ता है। लेकिन सम्बद्धता पद्धति को खत्म किये बिना भी इस तरह का स्थानान्तरण किया जा सकता है। अगर उत्तर की ज़मीन अभी काम लायक न हुई हो तो उधर के दल कुछ समय के लिए दक्षिणी दल की सहायता के लिए—जिनके खेत बोवाई के लिए बिलकुल तैयार हैं—आ सकते हैं। अगर हम अपने प्रयत्नों में कमी न रखें,

समस्या से जूझने में सकुचायें नहीं, अगर हमें जनता की बुद्धि में भरोसा है और एक-दूसरे की सहायता कर सकने की उसकी योग्यता में हमारा विश्वास अडिग है तो ऐसा संगठन कर सकना असंभव नहीं है। ज़रूरत है सिर्फ़ दो सिद्धान्तों के बीच सन्तुलन की। एक सिद्धान्त है—अपने काम की पूरी ज़िम्मेदारी संभालना। दूसरा सिद्धान्त है—एक-दूसरे की सहायता करना। मानी हुई बात है कि ट्रैक्टर दलों को बड़े इलाक़ों के साथ जोड़ना ही ठीक होगा—जहां उनके खुल कर काम कर सकने की पूरी गुंजाइश है।"

वालेंतिना सांस लेने के लिए रुकी। क्रोध का पहला उफान, अंधड़ का पहला झोंका, आ चुका था। उसे इस बात का बोध भी हो चुका था कि लोग उसकी ओर देख रहे हैं और उनकी दृष्टि में समर्थन है।

पास रखे गिलास से उसने दो घूंट पानी पिया। उसकी आंखें आन्द्रेई से मिलीं। आन्द्रेई की आंखों में प्रसन्नता और चमक थी—मानो कह रहा हो : "शाबाश, वाल्या! बहुत खूब! ऐसे ही! मैं जानता था तू चूकेगी नहीं!"

वाल्या ने फिर विसोत्सकी को सम्बोधित किया :

"आपने लगातार कम काम करने वाले लोगों—बेलाविन, लापिन और ग्रोमोव वग़ैरा—का ज़िक्र करके यह साबित करने की कोशिश की है कि योजना पूरी नहीं हो सकती। लेकिन मेरी समझ में यह नहीं आता कि आप नास्त्या, सितसोव, याब्लोनेव वग़ैरा उन 'हज़ार वालों' का ज़िक्र क्यों नहीं करते जिन्होंने हज़ार-हज़ार हेक्टर से ज़्यादा ज़मीन जोती है और तिगुना और चौगुना काम करके दूसरों के सामने अधिक काम के उदाहरण और तरीक़े पेश किये हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि यह तर्क-पद्धति कैसी है जिसमें प्रारम्भिक बिन्दु बेलाविन को बनाया जाता है, और ओगोरोद्निकोवा को ऐसे छोड़ दिया जाता है जैसे वह कुछ है ही नहीं। तीन साल के काम की रिपोर्ट आज मैंने पढ़ी। आपकी इस विस्तृत रिपोर्ट में बीसियों छोटी-छोटी बातों का ज़िक्र है। लेकिन सबसे अच्छी टीमों के तरीक़ों की सफलता से लाभ उठाने का कोई ज़िक्र नहीं है; एक शब्द भी नहीं है। यह भूल क्यों हुई? इस भूल के लिए आपके पास क्या जवाब है?"

अब तो बात ही बदल गयी। जान पड़ता था कि वालेंतिना अध्यापिका है और अपने विद्यार्थी विसोत्सकी की भूलों के लिए उसे इतने आदमियों के बीच फटकार रही है। विसोत्सकी के लिए चुप रहना सम्भव नहीं रहा। अपनी बेंच पर से ही बोला :

"मैंने न तो बेलाविन को ज़्यादा महत्त्व दिया है और न नास्त्या जैसों की उपेक्षा की है। मैंने तो कई साल के काम का औसत निकाला है।"

वालेंतिना ने तुरन्त वार बचाया :

"इसका मतलब तो यह है कि औसत बताकर और अच्छा काम करने वालों को बुरा काम करने वालों के साथ मिलाकर आप उनकी कामयाबियों पर पर्दा डालना चाहते हैं !"

" कब तक हम लोग काम बिगाड़ने वालों के साथ गालियां खाते रहेंगे ?" नास्त्या की बुलन्द आवाज़ गूंज उठी।

वालेंतिना ने बहुत शांत स्वर में फिर विसोत्सकी को सम्बोधित किया :

"कभी-कभी ऐसा होता है कि पुराना ढांचा नये तत्व के विकास में बाधक बन जाता है। कभी-कभी पुराने अनुभव नये अनुभवों के विकास का रास्ता रोक कर खड़े हो जाते हैं। ठीक ऐसा ही आपके साथ हुआ है, बेंजामिन इवानोविच ! मैं जानती हूं कि आपके लिए उन दलों को तोड़ सकना और उन पुराने तरीकों को छोड़ सकना कितना दुखदायी है जिन्हें आपने बड़े प्रेम से पाला-पोसा और विकसित किया है। आपके लिए यह और भी दुखदायी इसलिए है कि आपने यह काम बड़ी लगन और बड़े प्रेम से किया है। अब आपको अपने को ही लांघना पड़ रहा है। लेकिन मजबूरी है ! दूसरा कोई चारा भी नहीं। हमारे पुराने और सबसे अच्छे ट्रैक्टर-ड्राइवर मंच पर आयेंगे और खुद बतायेंगे कि आया वे नये दलों की ज़िम्मेदारी संभालने को तैयार हैं या नहीं। हमारे नये ट्रैक्टर-ड्राइवर भी मंच पर आयेंगे और बतायेंगे कि वे प्रथम श्रेणी के ड्राइवर बनना चाहते हैं या नहीं। हरेक को अपने बारे में फैसला करना होगा कि वह आगे बढ़ना चाहता है या नहीं, अपने मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन और ज़िले को उन्नति के मार्ग पर देखना चाहता है या नहीं !"

अपना भाषण समाप्त कर वालेंतिना अपनी जगह की ओर चली तो हॉल तालियों की गड़गड़ाहट और समर्थन की पुकारों से गूंज उठा। अब नास्त्या ओगोरोद्निकोवा उठी और मंच की ओर बढ़ी। लगातार धूप में काम करने के कारण नास्त्या का रंग सांवला हो गया था। हां, शरीर लम्बा और मज़बूत था। उसने मंच पर चढ़ने की आवश्यकता नहीं समझी और आगे की बेंच के पास ही एक कम्बाइन से सट कर बोलने लगी :

"मुझे टीम-लीडरी की तमन्ना नहीं है ..मुझे तो अपने 'स्टियरिंग' चक्के से तसल्ली है। यही काम मुझे पसंद है। लेकिन जब सवाल उठता है ज़िले की भलाई-बुराई का तब मेरी पसन्द-नापसन्द कोई माने नहीं रखती। मैं नये साथियों को वह सब कुछ सिखाने के लिए तैयार हूं जो मैंने सीखा है। सब लोग कम से कम एक सौ पचास प्रतिशत ज़्यादा काम करके न दिखायें तो मेरा नाम बदल देना।"

आन्द्रेई ने नास्त्या की प्रशंसा में उत्साह से ताली बजायी तो सारा हॉल तालियों से गूंज उठा।

तालियों का शोर थमा तो नास्त्या बहुत गम्भीर होकर कम्बाइन पर हाथ रख कर—मानो उसे अपना साक्षी बना रही हो—बोली :

"मैं जो बात कहती हूं पक्की...लोहे की तरह पक्की और मज़बूत! और मैं सबके सामने कहती हूं कि अपने नवयुवक दल से डेढ़ गुना ज्यादा काम कराके दिखाऊंगी। बस, मेरी प्रार्थना इतनी है कि मेरे दल को पहली मई फ़ार्म के साथ जोड़ दीजिए। मैंने वहां बहुत दिन काम किया है। फ़ार्म के प्रधान वासिली को भी मैं चेताये देती हूं—हम लोग चौबीसों घंटे काम करेंगे और फ़ार्म के दूसरे लोगों को भी अपने साथ रगड़ेंगे। सभी सक्रिय पार्टी कार्यकर्ताओं के सामने मैं तुम्हें पहले से चेतावनी दे रही हूं: होशियार हो जाओ, वासिली कुज़मिच! बीज, खाद और जुताई की जांच मैं खुद किया करूंगी।"

"और मैं भी तुम्हारे ट्रैक्टर के हर पेंच की जांच किया करूंगा।" वासिली ने प्रसन्नता से जवाब दिया।

वालेंतिना और नास्त्या की बातें सुनकर वासिली भी उत्तेजित हो उठा था। जीवन भर हर काम में वह सबसे आगे रहा था। किसी भी बात में 'दूसरों से पीछे रहना' वह कब सह सकता था। दलों के पुनर्संगठन और नयी योजना के अनुसार मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन के काम को बढ़ा सकने के बारे में उसका सन्देह काफ़ूर हो गया था। यह नहीं कि वह कठिनाइयों को जानता न हो, पर अब कठिनाइयों से जूझने की उमंग ही ज़ोर मार रही थी। किसी भी कीमत पर तमाम कठिनाइयों को पराजित कर एक बार स्वयं अपने तथा दूसरों से यह सिद्ध कर देने की भावना उबाल खा रही थी कि वासिली बोर्तनिकोव किस धातु का बना हुआ है! नास्त्या की चुनौती से उसका ट्रैक्टर-ड्राइवर का जोश भड़क उठा।

"मैंने भी ट्रैक्टर चलाये हैं!" उसकी बुलन्द आवाज़ गूंज उठी। "तुम हमें बेवकूफ नहीं बना सकतीं। तुम्हारे एक-एक काम की हम पड़ताल करेंगे।"

"आहा! अतामान का खून फिर खौल उठा!" आन्द्रेई मुस्कराता हुआ सोच रहा था।

"हां, हां! जितनी चाहो पड़ताल कर लेना।" नास्त्या ने जवाब दिया। "कौन डरता है? हमारे लिए तो और भी अच्छा!"

"यही तो चाहिए!" अपने खयाल में डूबे स्तेपान के मुंह से निकल गया।

आन्द्रेई ने उसकी बात सुन ली और खड़े होकर बोला :

"अब हम अपने पुराने और श्रेष्ठ ट्रैक्टर ड्राइवर, नये मिस्त्री,—साथी

स्तेपान निकितिच—से मंच पर आने की प्रार्थना करते हैं। स्टेशन का यह सौभाग्य है कि स्तेपान निकितिच फिर यहां लौट आये हैं।"

आन्द्रेई ने स्तेपान के स्वागत में तालियां बजानी शुरू कीं। सभी की तालियों से हॉल गूंज उठा। स्तेपान मंच पर आकर खड़ा हुआ तो उसका चेहरा संकोच से लाल हो रहा था। लगभग एक सप्ताह पहले—साल भर की गैरहाज़िरी के बाद—वह अपने ज़िले लौटा था। ज़िले के लोगों द्वारा अपना स्वागत देखकर उसका हृदय भर आया था। अवदोत्या से विछोह की पीड़ा ने उसे बहुत भावुक बना दिया था। जीवन के एकाकीपन ने उसे मित्रता तथा सहृदयता की भावनाओं की अभिव्यक्ति के प्रति बहुत भावुक बना दिया था।

अपने आदर में लोगों को तालियां बजाते देख हृदय में उमड़ते भावातिरेक को रोक कर उसने कहा :

"साथियो! आप जानते हैं, मैंने ट्रैक्टर पर दो सौ प्रतिशत अधिक काम किया है। लेकिन मुझे अपने में कोई खास बात नज़र नहीं आती। मैं समझता हूं कि जो मैं कर सकता हूं, वह सभी कर सकते हैं। हां, ज़रा तरीका समझाने की ज़रूरत होगी। दलों का पुनर्संगठन ज़रूरी है ही। नास्त्या ने ठीक बात कही है। मैं बेंजामिन इवानोविच को बताना चाहूंगा कि किस तरह एक जगह के ट्रैक्टर दूसरी जगहों के काम में सहायक हो सकते हैं।"

विसोत्सकी को जान पड़ा मानो उसकी दबी हुई पीठ पर और बोझ आ पड़ा है। एक लम्बी सांस लेकर उसने पीठ कुछ सीधी की। फिर घुटनों पर हाथ टिका कर स्तेपान की ओर देखने लगा।

वालेंतिना से तो विसोत्सकी को यह आशा थी ही कि वह उसका विरोध करेगी; हां, इतने कड़े शब्दों की आशा नहीं थी। उनसे उसके हृदय को सचमुच चोट लगी थी। नास्त्या जैसी भली लड़की—मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन की सबसे अच्छी ट्रैक्टर चालक—की बातों से भी उसे दुख हुआ। पर जब स्तेपान जैसा सहृदय और शांत आदमी—स्वयं कृषि विशेषज्ञ का मित्र—उसके विरुद्ध बोलने लगा तो विसोत्सकी के पांव तले से मानो धरती खिसकने लगी।

"मिसाल के लिए हम 'उज्ज्वल पथ' सामूहिक खेत को ले लें!" स्तेपान बोला। "इस साल वहां जोताई का काम एक दल ने किया, बोवाई का दूसरे दल ने और खेती का बाकी काम एक तीसरे दल ने। लेकिन खेत देखिये तो आप यही समझेंगे कि वहां किसी ने झाड़-झंखाड़ उगाये हैं। ऐसे झाड़-झंखाड़ जो बिना मशीन के, बिना गहरी खोदाई किये, उखड़ नहीं सकते। इसके लिए आप किस ट्रैक्टर-ड्राइवर को ज़िम्मेदार ठहरायेंगे? उन लोगों ने ज़िले भर के लिए झाड़-झंखाड़ों का बागीचा खड़ा कर दिया था, मानो सामूहिक खेतों के लिए वह झाड़-झंखाड़ों की थोक बिक्री का केन्द्र हो! ऐसी मनहूस लापरवाही के

लिए आप किसी का गला तो नहीं पकड़ सकते! यही होता है टीमों को एक जगह बांध न रखने का मज़ा! समझे आप? नतीजा होता है लापरवाही। मतलब यह कि सामूहिक किसानों और ट्रैक्टर-ड्राइवरों के बीच सच्ची एकता नहीं है। उसी सामूहिक खेत में बसंत के लिए जोताई हुई। इस जोताई को देखते। मैं फ़ार्म के प्रधान के पास पहुंचा और उससे दरयाफ्त किया कि ट्रैक्टरों की हालत कैसी है। बोला: 'कोई शिकायत की बात नहीं है।' मैं ताज्जुब में पड़ गया। सोचने लगा: 'यह इतनी मुलायमियत क्यों बरतता है?' दूसरे दिन ट्रैक्टर ड्राइवरों से मुलाकात हुई। तब पता चला कि प्रधान महोदय क्यों इतने रहमदिल हैं। उन्होंने अभी तक बीज ही नहीं मंगवाये थे। जो थे भी, वे किसी काम के नहीं। ट्रैक्टरों के लिए ज़रूरी तेल-पानी भी दो घंटे देरी से पहुंचा था। ट्रेलर पर काम करने वाले ने अलग ढील बरती थी। उससे भी कुछ नहीं कहा गया था। प्रधान महोदय खराब जोताई की शिकायत करते भी तो किस मुंह से? रहे ट्रैक्टर-ड्राइवर, सो वे चुप थे। उनको इन सब बातों से क्या लेना-देना? वे तो आज यहां हैं तो कल कहीं और। वे लोग भी इसी सिद्धान्त पर अमल कर रहे थे कि तू मेरे पाप ढंक, मैं तेरे, और दोनों चुप रहें! यह राज था खेतों में झाड़-झंखाड़ उगने का। लेकिन जैसी बातें अभी-अभी हमने बोर्तनिकोव और ओगोरोद्निकोवा के मुंह से सुनी हैं उनसे खेतों में अनाज पैदा होने की उम्मीद है न कि झाड़-झंखाड़!"

स्तेपान और वासिली के आपसी झगड़े की बात सभी लोगों को मालूम थी। वासिली को आश्चर्य था कि स्तेपान ने व्यक्तिगत भावनाओं को ताक पर रखकर, सभी लोगों के सामने उसका प्रशंसात्मक शब्दों में ज़िक्र किया है।

आन्द्रेई ने वासिली की ओर देखा। उसकी भौंहें सिकुड़ी हुई थीं और माथे पर बल पड़े थे। उसने मन ही मन कहा: "वाल्या और नास्त्या ने बहस को सही ढर्रे पर ला दिया है। स्तेपान अब इसे अन्तिम सीमा तक पहुंचा देगा। अभी क्या कह रहा है? खर्चे के बारे में? यह महत्वपूर्ण सवाल है। इस पर नये नज़रिये से रोशनी डाल रहा है। सुनें क्या कह रहा है! मोखोव हमेशा कुछ-न-कुछ अच्छी बात सिखा सकता है।" आन्द्रेई कुर्सी की पीठ से टिक कर बैठ गया और ध्यान से स्तेपान की शांत और गम्भीर आवाज़ सुनने लगा।

"डाक्टरों की राय है कि बीमारी का इलाज करने से अच्छा है, बीमारी होने न देना। यही बात ट्रैक्टर दलों पर लागू होती है। हमारे पास ट्रैक्टरों की बीमारी की रोक-थाम के साधन हैं: प्रति दिन ट्रैक्टरों की देख भाल और झाड़ पोंछ! पर, लोग इस बात को भूल जाते हैं। वे इसके पूरे महत्व को समझे नहीं हैं। मेरा काम है खेतों में काम करती मशीनों की मरम्मत करना। मेरे पास

इन दिनों एक गाड़ी है और मरम्मत का सामान है। मैं खुद फ़ार्मों में चक्कर लगा कर ड्राइवरों को समझाऊंगा कि किन बातों का ध्यान रखने से ट्रैक्टर के बिगड़ने का मौका नहीं आयेगा और यह भी देखूंगा कि ड्राइवर ट्रैक्टरों को चलाने से पहले देख लिया करें कि उनमें कोई ऐसा ऐब तो नहीं जो बाद में चलते ट्रैक्टर को रोक दे। हम लोग काम पर सिर्फ एकतरफ़ा ध्यान देते हैं—ट्रैक्टर के बिगड़ जाने पर ड्राइवर पर भारी जुर्माना पड़ जाता है। लेकिन हम इस बात पर कोई ध्यान नहीं देते कि ड्राइवर ट्रैक्टर की देख-भाल और झाड़-पोंछ नियम से करता है या नहीं। मैं चाहता हूं कि देख-भाल में लापरवाही एक भारी जुर्म, मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन के लिए सबसे खतरनाक और घातक अपराध, घोषित कर दिया जाय। मैं चाहता हूं कि मैनेजमेंट इस काम में कोई दखल न दें। मुझे विश्वास है कि ट्रैक्टर-ड्राइवर इस बात का गलत मतलब नहीं लगायेंगे, वे बुरा नहीं मानेंगे।"

स्तेपान के बाद और भी कई कम्युनिस्ट बोले। अब तक लोगों की भावना एकदम बदल चुकी थी।

बुयानोव ने वासिली की ओर झुककर पूछा:

"पहली मई फ़ार्म की तरफ से कौन बोलेगा?"

"इसमें क्या है! तुम भी बोल लो, मैं भी कुछ बोल दूंगा।" वासिली ने धीरे से उत्तर दिया।

"नहीं नहीं! सभी फ़ार्मों से दो-दो आदमी बोलने लगे तो मीटिंग सुबह तक खतम नहीं होगी।"

"एक ही आदमी को बोलना है तो मैं ही बोल लूंगा। मैं पहले बात ठीक से समझा नहीं था। मेरा खयाल है कि ईमानदारी के नाते थोड़ी आत्मा-लोचना भी ज़रूरी है, वर्ना अच्छा नहीं लगेगा..."

"तो ठीक है, तुम्हीं बोलो .."

बोलने का अवसर न मिलने से बुयानोव को निराशा हुई। इन दिनों फ़ार्म के पार्टी संगठन का सेक्रेटरी वही था। पार्टी सदस्यों की संख्या तो अब भी अधिक नहीं थी, पर संगठन दृढ़ था और अगुवा किसानों से उसका घनिष्ट सम्बंध था।

बुयानोव फ़ार्म में पार्टी के बढ़ते हुए प्रभाव के विषय में ज़िले के लोगों को बताना चाहता था। वह बताना चाहता था कि एक समय लोग जिसे 'घर-घुस्सू' कह कर पुकारते थे वही अब पार्टी सेक्रेटरी था। जो पहले ज़िले भर में बदनाम था वही पहली मई फ़ार्म अब प्रशंसा का पात्र बना हुआ था और अपनी प्रगति से पूरे प्रान्त का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहा था।

"वासिली सब बातें नहीं बता पायेगा।" मन ही मन बुयानोव ने कहा। "ये राजनीतिक मामले हैं। इन्हें तो पार्टी के नेता ही समझा सकते हैं।"

बुयानोव ने निश्चय कर लिया कि वह भी भाषण देगा।

वासिली की बारी आने पर उसे मंच पर पुकारा गया। वासिली ने कहना शुरू किया:

"साथियो! ईमानदारी की बात तो यह है कि मैंने पहले इस योजना के दृष्टिकोण को ठीक से समझा नहीं था। कामरेड प्रोखारचेन्को की योजना मुझे बहुत बड़ी और काल्पनिक मालूम होती थी। ऐसा क्यों हुआ? ऐसा इसलिए हुआ कि मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन की योजना को मैंने केवल ऊपर से देखा था और वह मुझे हवाई चीज़ लगी। लेकिन ध्यान देकर समझने पर मुझे अपनी भूल दिखाई दी। मुझे बहुत शर्म आई। साथियो, अगर हम नयी मशीनों की और इस स्टेशन की सहायता से भी अपनी योजना पूरी नहीं कर सकते तो यह डूब मरने की बात होगी। मैं आपको बताऊं कि मैं खुद ट्रैक्टर ड्राइवर रह चुका हूं। इसी दावे से मैंने यह बात कही भी है। अब सवाल है कि फ़ार्म के प्रधान के नाते मेरा कर्त्तव्य क्या है? मैं समझता हूं कि मैं बहुत कुछ कर सकता हूं।"

"यही तो!" आन्द्रेई ने सोचा। "इसीलिए तो मैंने मीटिंग बुलायी थी। अगर हममें से हरेक कठिनाइयों को जांचे और फिर अपने से पूछे: 'मैं क्या कर सकता हूं?' और फिर उत्तर दे: 'मैं बहुत कुछ कर सकता हूं,' तो हमारा उद्देश्य पूरा हुआ समझो।"

एक के बाद एक सामूहिक किसान और मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन के लोग मंच पर आये।

वालेंतिना ने स्पष्टवादिता और उत्साह का जो ढंग आरम्भ कर दिया था वह अंत तक चलता रहा। आन्द्रेई भी इस ओर ध्यान दिये था कि लोग विषयान्तर की बातें न करें। समय-समय पर वह कभी किसी को रोकता तो कभी किसी को उत्साहित करता रहता।

"कामरेड रुबानोव! ज़िले के सबसे अगुआ ट्रैक्टर ड्राइवर इवान इवानोविच सितसोव को तुम मंच पर क्यों नहीं बुलाते?" आन्द्रेई बोला। सितसोव के बोलने की घोषणा की गयी और हॉल उसके आदर में बजी तालियों से गूंज उठा।

कई लोगों के भाषणों के बाद आन्द्रेई ने टेबिल पर झुककर मुस्कराते हुए, पर चुनौती के स्वर में कहा:

"अच्छा काम करने वालों की घोषणाएं और विचार तो हमने सुन लिये। अब हमें उन साथियों के विचार भी मालूम होने चाहिए जो काम में पिछड़ते रहे हैं। आखिर उनकी क्या राय है?"

"साथी लुबोमुद्रोव ...! इंजन दल के नायक...!" रुबानोव ने पुकारा। "पिछले साल ट्रैक्टरों के काम में जितनी हानि हुई है उसकी ज़िम्मेदारी इंजन दल वालों की बताई जाती है। साथी लुबोमुद्रोव...! यहां आकर बताइये कि इसकी क्या वजह थी और आइन्दा क्या किया जायगा!"

"हां, हां! बड़े मिस्त्री साहब को बुलाओ! ज़रा सुनें तो क्या मामला था।" आन्द्रेई की आवाज़ हॉल में गूंज उठी।

लुबोमुद्रोव का चेहरा संकोच और लज्जा से पीला पड़ रहा था। आंखें उठ नहीं रही थीं। पर उसे मंच पर आना ही पड़ा।

"अच्छा? तो अब हमें बड़े मिस्त्री कह कर चिढ़ाया जाता है? लेकिन क्या किसी ने पता लगाने की कोशिश की कि मरम्मत का काम ठीक क्यों नहीं हो पाता? बड़े इंजीनियर सेम्योनोव ने हमें क्या मदद दी? हमारे कारीगर क्या करते रहे? सेम्योनोव ने जितने अच्छे कारीगर थे सब हमसे ले लिये और नौसिखिये हमें दे दिये।"

"सभी लोग पहले नौसिखिये होते हैं। हम लोग भी तो कभी नौसिखिये थे।" सेम्योनोव ने उत्तर दिया। "नौसिखियों को काम सिखाया जाना चाहिए कि नहीं?"

"आप बीच में क्यों बोल रहे हैं?" लुबोमुद्रोव ने एतराज़ किया। "मुझे तो बात कह लेने दीजिए। मैं कहता हूं कि बड़े इंजीनियर ने हमारे दल से सब अच्छे कारीगर छीन लिये।"

"कारीगरों पर कीचड़ मत उछालो।" एक कारीगर बीच में बोल उठा। "बड़े इंजीनियर पर झूठ-मूठ का दोष लगाया जा रहा है। पुराने अच्छे कारीगर तो सभी दलों से निकाल लिये गये हैं। स्टेशन में काम बढ़ रहा है, अच्छा काम करने वाले पुराने कारीगर फोरमैन बन रहे हैं। ज़रा ज़्हेन्या को बुलाकर पूछिये तो कि इंजन-विभाग में नौसिखियों को काम कैसे सिखाया जा रहा है! वह बतायेगा। बगल के खाते में काम करता है। हम उसे बुला दे सकते हैं।"

ज़्हेन्या को उसी समय बुलाया गया। भूरा-भूरा सिर; लड़का सा लगता था।

"हां भई, येवजेनी पेत्रोविच मित्रोफनोव! ज़रा मंच पर चले आओ।" रुबानोव ने उसे सम्बोधित करके कहा। "हमें कुछ बताओ कि तुम्हें काम कैसा सिखाया जा रहा है?"

ज़्हेन्या आकर लुब्रोमुद्रोव की बगल में खड़ा हो गया। मेज़ के पीछे खड़े होने पर उसकी गोल टोपी और उस पर लगा गोल बटन ही दिखाई दे रहा था। लेकिन वह बड़े गर्व और आत्म-सम्मान के साथ खड़ा था। उसने कहा :

"मैं इंजन-दल में काम नहीं करूंगा। तोस्या वेसेलोवा हमारे साथ ही कारखाने में आई थी। पीतल खरादने के विभाग में काम करती है। कहती है, उसने बियरिंग खरादने सीख लिये हैं। उसका टीम लीडर उसे सब कुछ समझा देता है। लेकिन हम पर तो दिन भर हुक्म चलाया जाता है। लुब्रोमुद्रोव कहते हैं : 'ज़्हेन्या, ले यह पकड़! वह ला दे! वहां खड़ा रह!' जब खूब पी लेते हैं, तो गालियां देने लगते हैं।"

लुब्रोमुद्रोव के हाथों के तोते उड़ गये। फिर भी चुनौती के स्वर में बोला :

"मैं इससे कब इनकार करता हूं?"

हॉल कहकहों से गूंज उठा। आवाज़ें सुनाई दीं :

"शाबाश ज़्हेन्या! शाबाश!"

"हां! और क्या होता है, बताओ तो!"

"गालियों के सिवा हमें और कुछ सीखने को नहीं मिलता। मां ने मुझे गालियां खाने के लिए थोड़े ही मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन भेजा था। चलते वक्त मां ने कहा था : 'वहां तू बहुत जल्दी काम सीख जायगा!' लेकिन यहां मुझे कुछ नहीं सिखाया जाता।"

"गाली नहीं देंगे तो क्या करेंगे?" लुब्रोमुद्रोव भी बिगड़ उठा। "ट्रैक्टर के इंजन बिलकुल कूड़ा करके हमारे पास भेजे जाते हैं; ऊपर से उम्मीद की जाती है कि हम उन्हें ठीक कर देंगे। बातें होती हैं बड़ी-बड़ी—काम बढ़ाओ, निश्चित योजना से ज्यादा काम करो! सब कहने की बातें हैं। कामरेड विसोत्सकी ने सच्ची-सच्ची बात कह दी है।"

विसोत्सकी लज्जा के मारे गड़ गया। उसका समर्थन करने वाला कोई निकला भी तो गालियां बकने वाला निकम्मा शराबी लुब्रोमुद्रोव। उसने आंखें नीची कर लीं।

"शाबाश ज़्हेन्या! अब तुम जा सकते हो!" रुबानोव ने कहा।

ज़्हेन्या गर्व से सिर उठाये अपने खाते की ओर लौट चला।

"अगर आप असली बात समझना चाहते हैं", लुब्रोमुद्रोव ने कहना शुरू किया, "तो आपको इस दल के काम की औसत देखनी होगी।"

"यह औसत-वौसत तुम रहने दो," आन्द्रेई ने कड़े स्वर में डांटा। "हम पूछते हैं—जो के. टी. ज़ेड. नम्बर १७ मशीन आज सुबह तुम्हारे कारखाने से गयी है, वह रास्ते में चलते-चलते क्यों टूट गयी?"

लुब्रोमुद्रोव ने ज़रा हकलाकर उत्तर दिया : "अगर सबका औसत लिया जाय..."

आन्द्रेई ने और भी कड़े स्वर में बीच ही में डाटा :

"पार्टी के कार्यकर्ता तुमसे औसत नहीं पूछ रहे हैं। वे तुमसे इस सवाल का जवाब मांग रहे हैं : १७ नम्बर मशीन रास्ते में क्यों टूटी ?"

"मुझे बोलने का मौक़ा तो दीजिये"—लुब्रोमुद्रोव कहना चाहता था, पर आन्द्रेई की आंखों और चेहरे का भाव देखकर सकपका गया। आन्द्रेई की आंखों में उसके लिए ज़रा भी समर्थन नहीं था; उल्टे सख्ती और क्रोध था। आंखें देखकर डर लगता था। कुछ डरते-डरते उसने कहा :

"उसमें कुछ ऐब रह गया था...।"

"ऐब क्यों रह गया था यही तो हम पूछ रहे हैं।"

लुब्रोमुद्रोव निरुत्तर हो कभी दांया पैर इधर, कभी बायां पैर उधर, खिसकाने लगा।

आन्द्रेई बोला : "तुम्हारे पास कोई जवाब नहीं है ? लेकिन हमारे पास जवाब है।" उसकी दोनों मुट्ठियां मेज़ पर थीं। "मुख्य इंजीनियर बीमार था। कोई तुम्हारा काम देखने वाला नहीं था। तुमने इसका फायदा उठाया। बेचारा नौसिखिया ट्रैक्टर ड्राइवर ऐब नहीं देख सकता था। तुमने मरम्मत किये बिना मशीन उसके हाथ में थमा दी। न उसे जांचा, न परखा। फिर चल दिये पीने ! ठीक है न ?"

लुब्रोमुद्रोव का चौड़ा-चकला चेहरा सफेद पड़ गया। आन्द्रेई ने उसकी ओर देखा, पर उसका क्रोध शांत नहीं हुआ।

"तुम हो किस मुगालते में ? तुम बढ़ किस तरफ रहे हो ?" उसने कड़क कर पूछा। "बोलो ? तुम्हारे पास इस नुकसान का क्या जवाब है ?"

विसोत्सकी शरम के मारे गड़ा जा रहा था। आन्द्रेई के तीखे शब्द उसे सिर पर पड़ते घूंसों जैसे लग रहे थे। यह अकस्मात ही नहीं था कि एकमात्र लुब्रोमुद्रोव ने उसका समर्थन किया था।

"हमें यह मालूम है कि ठीक उस वक्त जब कारखाने में काम का जोर होता है, तुम बोतल चढ़ाने चल देते हो। पार्टी कार्ड तुम्हारी जेब में और काम की तरफ यह रवैया !"

प्रत्येक वाक्य के बाद आन्द्रेई के पतले होंठ भिंच जाते थे। प्रत्येक पुराने और नये वाक्य के बीच की यह चुप्पी शब्दों से भी अधिक भयावनी थी।

"नुकसान पहुंचाने वालों पर हम मुकदमे चलायेंगे ! ऐसे लोगों को कोई मुरौवत की उम्मीद न बंधाये। जनता के हित पहले, मुरौवत बाद में।"

आन्द्रेई बोल चुका तो प्रोखारचेन्को उठ खड़ा हुआ। आन्द्रेई की कटु बातों से उसमें भी जोश उबल आया था। बोला :

"तुम्हारी कल की लापरवाही की उपेक्षा नहीं की जा सकती, लुबोमुद्रोव! तुम्हारा इलाज करना ही पड़ेगा। अब तुम्हारी चीं-चपड़ कोई नहीं सुनने का।"

"ऐसी हरकतें करने का लुबोमुद्रोव को अब तक मौका ही क्यों दिया गया?" एक आवाज़ सुनाई दी।

प्रोखारचेन्को ने क्रोध से सामने देखा। उसका चेहरा तमतमा उठा। सवाल करने वाले को वह मुंहतोड़ जवाब देना ही चाहता था कि कुछ सोचकर रुका और गम्भीर हो गया। फिर बोला :

"यह दोष मेरा है। मैं नयी इमारतें बनवाने और नयी मशीनें बैठाने में लगा रहा। रोजाना के मरम्मत के काम की तरफ ध्यान नहीं दे पाया। लेकिन मैं कहता हूं...ऐसी भयंकर लापरवाही मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में कभी नहीं हुई।"

"पिछले दो बरसों में साथी प्रोखारचेन्को ने बहुत काम किया है यह सभी जानते हैं।" वही आवाज़ फिर सुनाई दी। "उनका सब लोग आदर भी करते हैं। लेकिन उनके और पूरे स्टेशन के काम में गड़बड़ियां हैं। इनकी जांच-पड़ताल और आलोचना क्यों नहीं की जाती?"

"आओ यहां और करो आलोचना। डरने की क्या बात है?" रुबानोव ने कहा।

"मैं डरता नहीं!" खराद की मशीन पर काम करने वाला लोबोव आगे बढ़ आया। "घंटों के हिसाब से काम का निरख बांधने और काम को नये सिरे से संगठित करने से पहले प्रबंधकों को चारों तरफ नजर दौड़ानी चाहिए। न तो पुराने विशेषज्ञों से पूरा फायदा उठाया जाता है, न नयों को बढ़ावा दिया जा रहा है।"

लोबोव की बातों से हॉल में खलबली मच गयी। केवल बीच में खड़ी भीमकाय मशीनें चुप थीं—मानो लोगों की उत्तेजना देखकर विस्मय से चुप रह गयी थीं।

वालेंतिना की टोपी सिर के पीछे सरक गयी और बालों की लट माथे पर लटक आई। ब्लाउज का कालर भी कोट के बाहर निकल आया। लेकिन उसका ध्यान इस सब पर नहीं था। बरफ़ से ढंका मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन, जो अभी तक उसके सामने रहस्यमय स्वप्न के समान उठ खड़ा होता था, सहसा उसे यथार्थ सत्य—अपने जीवन का अभिन्न अंग—जान पड़ने लगा। वालेंतिना को लगा कि यह अनुभूति आसानी से उसका साथ नहीं छोड़ेगी। वह चाहे यहां काम करे या नहीं, पर स्टेशन की हर बात उसमें वैसा ही

उतावलापन पैदा कर देगी जैसे अपने गांव, घर या निकट सम्बंधी के बारे में कोई नई बात सुनकर होता है।"

विसोत्सकी अब भी सिर झुकाये, सबसे आंखें चुराये, चुप बैठा था। लोग जान-बूझ कर उसकी ओर नहीं देख रहे थे।

उसके दोनों सूखे हाथ घुटनों पर मुड़े थे। चेहरा इतना निस्तेज हो गया था मानो एक शाम में ही बुढ़ापे ने उसे घर दबाया हो।

पल भर को उसने आंखें ऊपर उठायीं। उनमें किसी रोगी की आंखों जैसी चमक थी। वहां उपस्थित लोगों में यद्यपि बहुत से उससे ज्यादा उम्र के थे, लेकिन दूसरों को—और खुद उसे भी—ऐसा मालूम हो रहा था जैसे इतने लोगों में वही सबसे बूढ़ा और निर्बल आदमी है।

विसोत्सकी को सदा इस बात का गर्व रहता था कि आयु अधिक होने पर भी उसका स्वास्थ्य और काम करने की शक्ति नवयुवकों से कम नहीं है। अभी कुछ ही घंटे पहले, सभा में आते समय, वह और भी अधिक उत्साह और स्फूर्ति अनुभव कर रहा था। उसे विश्वास था कि वह जो कुछ करने जा रहा है वह जनता के हित में है और उसके शब्द और भाषण बहुत महत्वपूर्ण होंगे। और अब वह सहसा मानो बूढ़ा हो गया था। "मैं आया तो जवान था, लेकिन जा रहा हूं बूढ़ा होकर," मन ही मन वह सोच रहा था। अब तक वह यह नहीं समझ पाया था कि जीवन में वह पिछड़ा इसलिए नहीं था कि बूढ़ा हो गया है, बल्कि बूढ़ा इसलिए था कि जीवन में पिछड़ गया है। यह बात सभा में साफ-साफ जाहिर हो गयी थी। जिस अदूरदर्शिता और शक्कीपन को वह बुढ़ापे के नाम पर मढ़ रहा था, वास्तव में वह प्रकट हुआ था उसके कार्यों में—उसकी बहुत बारीक और विस्तृत, लेकिन एकदम बेकार, रिपोर्ट में; उन कामों में जिन्हें कल तक उसने सर्वाधिक महत्वपूर्ण सोचा था, लेकिन जो आज एकदम अनावश्यक साबित हुए थे। छः बेहतरीन ट्रैक्टर टीमें! ट्रैक्टरों की पांत का दक्षिण की ओर प्रयाण! लगातार दो बरसों से वह इसी समस्या से सिर मार रहा था और समझता था कि बड़ा महत्वपूर्ण काम कर रहा है। लेकिन यह सब कितना व्यर्थ साबित हुआ था। और अब अस्तरखानी टोपी पहने गुलाबी चेहरे वाली एक नौजवान लड़की ने—जो उसी की शिष्या थी और कुछ दिन पहले छोटी सी घंघरिया पहने, पैरों में खरोंचें मारे, उसके सामने आ खड़ी होती थी—सहसा आगे बढ़ कर सब कुछ बिखेर दिया और तोड़-फोड़ डाला था; उस सबको जिसे उसने बड़े प्यार और बड़ी मेहनत से बनाया और संवारा था! इतना ही नहीं; उस लड़की ने जो कुछ किया था ठीक भी किया था। उसने खुद उससे भी ज्यादा कारगर तरीके पेश किये थे और दूसरों को

अपने पीछे चलने के लिए आन्दोलित कर ऐसे चली गयी थी जैसे विसोत्सकी नामक व्यक्ति की दुनिया में कोई हस्ती ही न हो...

और वही क्यों! दूसरे सब भी तो उसके अस्तित्व को भूल चले थे, उसमें दिलचस्पी खो रहे थे—जैसे खेल की किसी प्रतिद्वन्दिता में उत्तेजनापूर्ण स्थिति आने पर दर्शक पिछड़े खिलाड़ी में दिलचस्पी खो बैठते हैं।

सभा में बहस चल रही थी परन्तु विसोत्सकी के व्याख्यान की कोई चर्चा नहीं कर रहा था। योजना के सम्भव हो सकने के विषय में भी कोई संदेह नहीं प्रकट कर रहा था। चर्चा अब केवल यह थी कि योजना को कम से कम समय में कैसे सफल बनाया जा सकता है।

सभा में संगत और असंगत सभी तरह की बातें हो रही थीं। मज़ाक भी हो रहा था। अपने-अपने विश्वास के मुताबिक क्रोध और झगड़े की बातें भी हो रही थीं। लेकिन सभी में आशा और उत्साह था। मौन और निराश बैठा था तो केवल विसोत्सकी।

सांझ हो आई थी। सूर्यास्त बेला के धुंधले प्रकाश में कमरा बड़ा और गहरा लग रहा था। लोगों के चेहरे स्पष्ट नहीं दिखाई देते थे। मशीनों के पालिश किये चमकीले भाग और आदमियों की आंखें ही अंधेरे में चमक रही थीं।

सभा के अन्त में आन्द्रेई बोलने के लिए खड़ा हुआ था। हॉल के आखिरी कोने तक उसके शब्द पहुंच रहे थे और, मानो प्रत्युत्तर में, हॉल भी गूंज रहा था।

"कामरेड विसोत्सकी का कहना है कि प्रोखारचेन्को की योजना क़ुबान के लिए उपयोगी हो सकती है लेकिन उक्रेन के लिए नहीं, और मैं इसका समर्थन इसलिए करता हूं कि मैं उक्रेन की धरती और परिस्थितियों से परिचित नहीं हूं। हां! मैं उक्रेन से पूरी तरह परिचित नहीं हूं! मुझे यहां की हालतों और सम्भावनाओं का पूरा ज्ञान नहीं है। पर यह ज्ञान मुझे प्राप्त कहां से होगा? मुझे यह ज्ञान आप नहीं दे सकते, कामरेड विसोत्सकी! मुझे यह ज्ञान दे सकते हैं उक्रेन के सामूहिक किसान, उक्रेन के कृषि विशारद, ट्रैक्टर ड्राइवर, कम्बाइन-चालक और मज़दूर। मुझे भरोसा है तो इन्हीं लोगों का!"

"खूब! खूब! वाह! वाह!" की पुकारों से हॉल गूंज उठा।

"आपने आज कहा कि हमारी योजना व्यवहारिक नहीं है। लेकिन इसी योजना को पूरा करने की उक्रेन के ट्रैक्टर ड्राइवरों, कम्बाइन चालकों और मज़दूरों ने प्रतिज्ञा की है। उन्होंने योजना से भी अधिक काम कर दिखाने की प्रतिज्ञा की है। क्षमा कीजिए, प्रोफेसर विसोत्सकी! आपकी अपेक्षा मैं इन्हीं लोगों का ज्यादा विश्वास करता हूं।"

"ठीक है ! ठीक है !" की पुकारों से हॉल फिर गूंज उठा।

"हम मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में काम की मज़दूरी घंटों के हिसाब से देने का क्रम शुरू कर रहे हैं। हम स्टेशन में रेडियो की शक्ति का उपयोग आरम्भ कर रहे हैं और दूसरे सुधार कर रहे हैं। हम किसानों और ट्रैक्टर ड्राइवरों में प्रतियोगिता का आयोजन करेंगे और योजना से ऊपर काम पूरा करके दिखायेंगे। हम जानते हैं कि यह ज़िला उक्रेन है, कुबान नहीं। लेकिन हमें विश्वास है कि दो-तीन सालों में हम कुबान के अच्छे से अच्छे ज़िले को चुनौती दे सकेंगे। क्या आपको इसमें यक़ीन नहीं है, साथियो ?"

हॉल तीसरी बार उत्साह भरे नारों और पुकारों से गूंज उठा।

सभा समाप्त हुई। लेकिन लोग जाने के लिए उतावले नहीं थे !

वालेंतिना ने देखा, विसोत्सकी चुपचाप सिर झुकाये भीड़ में से रास्ता निकाल कर बाहर जा रहा था। उसके कंधे और गर्दन थकान से झुके हुए और नसें उभरी हुई थीं जो उसकी मानसिक व्यग्रता का परिचय दे रही थीं। लोग उसकी ओर देखते भी नहीं थे—मानो वह दया का पात्र, उनके बीच लज्जा की वस्तु हो। उसे उस पर तरस आ रहा था। अब, जब बहस की गरमा-गरमी खत्म हो गयी थी और जीत हासिल हो चुकी थी, वालेंतिना की इच्छा हो रही थी कि वह विसोत्सकी के पास जाये, उससे दो-चार मीठी और मैत्रीपूर्ण बातें करे, उसके उत्साह को जगाये और अपनी ग़लती समझने में उसकी सहायता करे।

शायद उस दिन अपने आंकड़ों और योजनाओं सहित विसोत्सकी ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। किसी नदी के बीच पड़ी कोई चट्टान जिस प्रकार उबलती-उफनती धारा की गति और उद्वेग को स्पष्ट कर देती है उसी प्रकार विसोत्सकी ने जनता के उत्साह को स्पष्ट कर दिया था।

सम्भवतः यह आन्द्रेई के नेतृत्व की चतुरता थी कि उसने विसोत्सकी को अपनी भूमिका —विशाल जल-धारा के बीच छोटी सी चट्टान की भूमिका —अदा करने का मौका दिया था और इस तरह जन-धारा के अदम्य प्रवाह को स्पष्ट कर दिया था।

आन्द्रेई का रवैया केवल अब वालेंतिना की समझ में आया। सभा समाप्त होने तक लोगों का नज़रिया एकदम बदल चुका था। वासिली में यह परिवर्तन विशेष रूप से उल्लेखनीय था। वह सन्देह से हट कर धीरे-धीरे आत्म-विश्वास की मंज़िल पर पहुंचा था और अब मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन के काम में पूरी तरह जुट जाने को तैयार था।

"चाचा वास्या को समझने में देर लगती है," वालेंतिना सोच रही

थी, "लेकिन काम शुरू कर दें तो फिर खतम समझो। यह और नास्त्या ओगोरोद्निकोवा—दोनों मिल कर काम की धूम बांध देंगे।"

वासिली और बुयानोव आपस में बातें करते हुए उधर से गुज़रे।

"आन्द्रेई जनता की नब्ज़ खूब पहचानता है..." बुयानोव कह रहा था।

"इसमें क्या शक है।" वासिली ने समर्थन किया। "आदमी क्या है, खमीर है, खमीर! जिस चिज़ में डाल दो, फौरन उठ आयेगी।"

वालेंतिना आधे घंटे तक मित्रों और परिचितों से हॉल में बातचीत करती रही फिर आन्द्रेई को वहां न देख ढूंढ़ने निकल पड़ी।

प्रमुख कृषि विशारद के कमरे में उसकी मुलाकात ग्रोखारचेन्को और रुबानोव से हो गयी। दोनों चिन्ता में डूबे दिखाई दे रहे थे।

"बेंजामिन इवानोविच अभी-अभी यहां से गये हैं। उन्होंने काम करने से साफ इनकार कर दिया है।"

"इनकार कर दिया है? तुमने क्या कहा?" वालेंतिना ने व्यग्रता से पूछा।

"कहते क्या?" ग्रोखारचेन्को ने उत्तर दिया। "हमने यही कहा कि आप काम कीजिए! लेकिन ज़बरदस्ती थोड़े ही कर सकते हैं! यह बड़ी ज़िम्मेदारीका काम है। जिस आदमी को इसमें विश्वास न हो उसे ज़िम्मेदारी उठाने के लिए मजबूर कैसे किया जा सकता है? मान जाय तो अच्छा है। पर हम इन्तज़ार में कब तक बैठे रहें?... मार्च का महीना खत्म होने को आया। बोवाई को अब दिन ही कितने रह गये हैं? वह बीमार भी है। बेचारे को दिल की पुरानी बीमारी है।"

"क्या? तो उसे चले जाने दोगे?" वालेंतिना ने पूछा।

"हां, कुछ दिनों के लिए। समझ लो बीमारी की लम्बी छुट्टी दे दी। तब तक वह स्वस्थ भी हो जायगा और अपने विचार भी बदलेगा। हमको इससे ज्यादा खुशी और क्या होगी कि वह फिर लौट आये। लेकिन तब तक बेटी, तुझे यहां का काम सम्भालना होगा।"

"मुझे? चाचा तुम... लेकिन ऐसे ही कैसे फैसला कर सकते हो?"

"हम तो न जाने कब से सोचे बैठे थे। योजना की बाबत यह झगड़ा बहुत पहले से चला आ रहा है।"

"क्या आन्द्रेई को मालूम है कि विसोत्स्की ने काम से इनकार कर दिया है?"

"मालूम है। बातचीत के वक्त आन्द्रेई यहीं था। अभी तो गया है तुझे ढूंढ़ने।"

गाड़ी के आगे का तीव्र प्रकाश सड़क पर भागता चला जा रहा था। दोनों ओर वृक्षों की टहनियां मानो मोटर को रोकने के लिए आगे बढ़ आना चाहती थीं, पर ठिठक कर रुक जाती थीं। आन्द्रेई और वालेंतिना गाड़ी की पिछली सीट पर एक साथ बैठे थे। वालेंतिना रह-रह कर विसोत्स्की के बारे में बिसूर रही थी :

"उसके बारे में सोच कर मुझे बड़ा तरस आ रहा है। बेचारे का दिल टूट जायगा!"

"खामखा परेशान हो रही है तू।" आन्द्रेई भौंहें सिकोड़ कर बोला। "हम लोग उसे ज़िला कमिटी के दफ्तर में बुलाकर बात करेंगे। दो-एक महीने के लिए उसे किसी काम से बड़े-बड़े मशीन-ट्रैक्टर स्टेशनों का दौरा करने भेज देंगे। कुछ देखेगा, कुछ समझेगा। अपने-आप उसकी आंखें खुल जायेंगी। लौट कर खुद ही काम सम्भाल लेगा। दिल टूटने की इसमें कौन सी बात है? हां, अपनी भूल मानना ज़रा मुश्किल होता है, लेकिन यह कोई बड़ी आफत तो नहीं है। फिर, विसोत्स्की सचमुच बूढ़ा नहीं है। घूम फिर कर आयेगा तो देखोगी कि जवान हो गया है।"

"मेरा तो खयाल है कि लोगों को जवान बनाना तुम्हारा पेशा हो गया है। ख़ैर...यह तो बताओ...क्या तुम्हें मालूम था कि सभा में उसका कोई समर्थन नहीं करेगा?"

"मालूम क्यों नहीं था। ज़िला पार्टी कमिटी के ब्यूरो में पहले बहस हुई थी, फिर लोगों को समझाया गया था, उनके सामने तमाम तथ्य पेश किये थे। क्या तुम समझती हो कि ऐसी सभाएं यों ही दौड़ते-भागते की जाती हैं?"

"इसका मतलब तो यह है कि तुमने उस गरीब को सामने खड़ा करके अपना उल्लू सीधा किया! ओफ़, कैसी निर्दयता है!"

"दूसरों से ज़्यादा उसी को ऐसी मीटिंग की ज़रूरत थी। उसकी आंखें खोल दीं; वर्ना बात उसकी समझ में आती ही नहीं। अब भी सब कुछ पूरी तरह उसकी समझ में नहीं आया है; फिर भी अब वह सोचने-समझने की कोशिश करेगा। उसके बोलने से यह फायदा हुआ कि जितनी अड़चनें आ सकती थीं, जितनी भूलें हो सकती थीं, सब सामने आ गयीं। उससे ज़्यादा कौन समझा सकता था मुश्किलों को? उसे भी सामने खड़ा किया और उसके तमाम मसाले का भी फायदा उठाया।"

दोनो चुप हो गये। आन्द्रेई ने वालेंतिना का हाथ अपने हाथ में ले लिया। वालेंतिना उसकी भावनाओं और विचारों को अच्छी तरह समझती थी। स्टेशन से चलने के बाद से वालेंतिना को आन्द्रेई की आंखों में गहरी कृतज्ञता और प्रेम की तरलता दिखाई दे रही थी। वालेंतिना चाहती थी कि

आन्द्रेई कुछ कहे, पर वह चुप था। आत्म-श्लाघा पूर्ण भाषण उसे पसन्द नहीं थे। वह सोचता था, सफाई में लम्बी-चौड़ी बातें बघारना और हाय-हाय करना अच्छा नहीं होता।

"वाल्या! विसोत्सकी की जगह तुझे ही काम करना पड़े शायद!" उसने यह बात ऐसे कही जैसे यकायक याद आ गयी हो। "प्रोखार ने तुझसे कोई बात नहीं की?"

आन्द्रेई ऐसे बात कर रहा था जैसे मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में वालेंतिना के काम करने की बाबत कोई झगड़ा हुआ ही न हो, इस सम्बंध में पहले कभी कोई बात उठी ही न हो—उस जाड़े की रात चौके वाली घटना जैसे कभी घटी ही न हो।

"अभी और देख तू!" मन ही मन वालेंतिना ने कहा।

प्रकट में गहरी सांस लेकर बोली :

"मैं तो सोच रही थी कि अब घर में बैठूंगी, खाना पकाऊंगी, और अपने गरीब पति की तीमारदारी करूंगी ..."

आन्द्रेई ने वालेंतिना की उंगलियां दबा लीं! फिर बोला :

"वाल्या! मुझे सबसे बड़ा सहारा और भरोसा तो तेरा ही है। तू ही मेरी सबसे अच्छी दोस्त, मेरा दाहिना हाथ है। नहीं, सिर्फ इतना नहीं। तेरे साथी मातवेयेविच की भाषा में असली गाड़ी खींचनेवाली तू है। तू और मैं दोनों एक ही जोत की जोड़ी हैं...! आज सभा में तो तू ने कमाल ही कर दिया! सभा का रंग ही बदल दिया।"

वालेंतिना इतने से ही संतुष्ट होने वाली नहीं थी। अपनी विजय का वह पूरा आनन्द लेना चाहती थी। अस्तु, उसने मौक़ा हाथ से नहीं जाने दिया :

"ज़रा सोचकर बात करो, आन्द्रेई! तुम पार्टी के मंत्री हो! तुम सब लोगों से कहते हो—हमें आत्मालोचना करनी चाहिए, अपनी भूलों को देखने की कोशिश करनी चाहिए, उन्हें स्वीकार करना चाहिए।... कभी खुद तुम्हें भी तो ऐसा करना चाहिए!"

"वाल्या!......अच्छा बाबा ले। मैंने तेरे साथ बड़ी ज्यादती की थी। यही मुझसे कहलाना चाहती थी न! इस आत्म-समालोचना से तो तसल्ली है?"

"अच्छा रहने दो; अभी इतना काफी है...! मुझे नहीं मालूम था तुम ऐसे ऐंठू हो...तुम्हें हो क्या गया था? चले थे रात में चुपके-चुपके स्टोव जलाने। 'देखो, लोगो! मेरी पत्नी अपने पति का ज़रा भी खयाल नहीं करती!' वाह, वाह। क्या कहने हैं।"

"वाल्या ! मैंने अपनी भूल मान ली है; तू यह नहीं कह सकती कि मैं नीच हूं। अब और क्या चाहती है ? अच्छा बता यह कौन कह रहा था कि इतनी बड़ी सभा में विसोत्सकी की रिपोर्ट पर बहस करना गलत है ?"

वालेंतिना हंस पड़ी। अपना गाल आन्द्रेई के कंधे पर रखकर बात बदलती हुई बोली :

"क्या तुम्हें मालूम है ? मैं कभी-कभी यही सपना देखती थी। बिलकुल ऐसा ही।"

"कैसा ?"

"...कि खूब ठंडी-ठंडी हवा चल रही है और मैं तुम्हारे कोट पर गाल टिकाये बैठी हूं। मैं इतनी खुश होती थी, इतनी कि..."

"सपनों में ज्यादा खुश रहती हो ?"

"नहीं। जीवन सपने से ज्यादा सुन्दर होता है। प्यार भी क्या अजीब चीज़ है, आन्द्रेई ? प्यार की धार कभी कुन्द नहीं होती। कितने बरस हो गये हम लोगों को साथ रहते लेकिन अब भी ऐसा लगता है जैसे सब कुछ नया और ताज़ा है। आन्द्रेई, क्या सभी के साथ ऐसा होता है, या हम..."

"दूसरों का हमें क्या पता ? पार्टी कमिटी के सेक्रेटरी को लोग ये बातें थोड़े ही बताते हैं।"

आन्द्रेई को निरी भावुकता कम ही अच्छी लगती थी। अक्सर जब वालेंतिना भावुकता में बहने लगती तो आन्द्रेई मज़ाक की चुटकियां लेकर उसकी कवित्वमयता का उफान खतम कर देता। साधारणतः वालेंतिना हंस कर रह जाती थी, पर आज यह बात उसे खटक गयी। नाराज़गी में वह कुछ कहना ही चाहती थी कि आन्द्रेई ने अपना गाल उसके माथे से सटा कर धीरे से कहा :

"न मैं सबसे बताता हूं कि हम दोनों कितने सुखी हैं..."

गाड़ी जंगल का रास्ता पार कर चुकी थी। सड़क के किनारे जहां-तहां रोशनियां दिखाई देने लगीं। वे अब उक्रेन आ पहुंचे थे।

"फिर चुप हो गया।" आन्द्रेई को चुप देख वालेंतिना सोचने लगी। "जाने क्या सोच रहा है ? सुख की इन घड़ियों में भी विसोत्सकी के बारे में सोचे बिना नहीं रह सकता !"

"आदमी तो भला है," वह खुद ही बोली, "लेकिन उसे हो क्या गया है ?"

"यह एक जगह बैठे रहने का नतीजा है......" आन्द्रेई ने उत्तर दिया। वह जान गया था कि वालेंतिना किसकी चर्चा कर रही है। "उक्रेन से बाहर भी दुनिया है यह उसे नहीं दिखाई देता !"

"तुम्हारा भी तो इसमें कसूर है न?"

"ज़िले की सभी भूलों की ज़िम्मेदारी ज़िला पार्टी मंत्री की होती है। यह काम ही ऐसा है!" आन्द्रेई ने कहा। जिस लहजे में आन्द्रेई ने यह बात कही उससे पता लगाना मुश्किल था कि वह अपनी भूल स्वीकार कर रहा है, अथवा जवाब देने से कतरा रहा है, या, जैसी कि उसकी आदत थी, अपनी भावना को छिपाने के लिए कुछ यों ही कह दिया है।

सामने रोशनी से जगमगातीं ज़िला पार्टी के दफ्तर की खिड़कियां दिखाई दीं।

"ज़रा एक मिनिट यहां देख लें।" आन्द्रेई बोला।

"पार्टी दफ्तर के सामने से जब भी गुजरते हो तुम्हें जरूर कोई काम याद आ जाता है! अब तो रात हो गयी है। लोग-बाग सोने की तैयारी कर रहे हैं!" वालेंतिना ने कहा। लेकिन वह भी मोटर से उतर गयी और आन्द्रेई के पीछे-पीछे दफ्तर चल दी।

५. अनाज और लोहा

वालेंतिना पहली मई फ़ार्म के अनाज गोदाम में खड़ी थी। जा रही थी वह मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन, लेकिन मिनट-दो-मिनट को यह देखने रुक गयी थी कि बीजों को बोने से पहले वैज्ञानिक ढंग से तैयार करने और नये ढंग की खाद की तैयारी का काम कैसा चल रहा है। बीसियों कामों का बोझ उसके सिर पर था। लेकिन उनके पीछे दौड़ने के बजाय वह गोदाम की गहरी खामोशी में चुपचाप निश्चल खड़ी रह गयी थी। यह खामोशी सम्भवतः वैसी ही थी जैसी किसी गहरी झील के तल में रहती है—जहां जीवन की तरंगें शांत और मौन बहती हैं। अध-खुले दरवाज़े से आती सुबह की धूप की लकीर भीतर के गहरे नीले अंधकार को बेध रही थी। सब ओर खूब सफाई और स्वच्छता थी। खूब साफ किया हुआ फर्श और रोगन किये लकड़ी के तख्ते चमचमा रहे थे। जगह-जगह गेहूं की बालें सफेद कागज़ों में लिपटी करावों जैसी लटक रही थीं। भीतर की हवा में अनाज और ताज़ी छिली लकड़ी की सोंधी गंध थी। बड़ी-बड़ी खत्तियों में गल्ला भरा हुआ था। वालेंतिना ने एक खत्ती में अपना हाथ धंसा दिया। उंगलियों के बीच में रपटता-सरकता गल्ला उसे बहुत अच्छा लग

रहा था। ललछौंहे रंग के, मोम जैसे मुलायम, और रेशम जैसे कोमल दाने, उसे प्राण-मय मालूम हो रहे थे। वालेंतिना ठगी सी उन्हें देखती रह गयी। बखारों में अनाज की शान्तिमय निद्रा, लहरियेदार अम्बारों में आबद्ध यह सोती हुई किन्तु मरणोपरि शक्ति, उसे बड़ी रहस्यमय लगती थी! जीवन-दान का अक्षय भण्डार! उसके श्रम की देन, उसकी आकांक्षाओं की पूर्ति! उसकी उंगलियां खेल रही थीं अनाज के दानों से लेकिन मस्तिष्क बीते दिनों की बातें दोहरा रहा था—मूसलाधार बरसातें, तपती धूप, चिंता और व्यग्रता, उत्साह और उमंगें। बसंत की रातों का हिम-पात, ग्रीष्म में उत्तप्त वायु के झोंके, मूसलारधार वर्षा में नालियों और खाइयों की खोदाई, फ्रोस्या के टीले पर उस रात की बातें, आंसू और मुस्कान—सब कुछ यहीं तो था, इन्हीं खत्तियों में। इन बीजों से कैसी फसल होगी? बोवाई के मौसम का काम अच्छी तरह हो जायगा? पता नहीं गर्मियों में मौसम कैसा रहे?

टिक-टिक करते मिनट बीतते जा रहे थे। वालेंतिना सब कामों की सुध भुलाये अनाज के सुखद स्पर्श का अनुभव करती आत्म-विस्मृत सी खड़ी थी।

"भीतर कौन है? दरवाज़ा खोलो।"

इस आवाज़ से वालेंतिना का ध्यान टूटा। किवाड़ को जूते की ठोकर से खोलकर प्योत्र भीतर आ गया। उसके पीछे-पीछे शोर मचाती लड़कियों का झुंड भी भीतर घुस आया। वायु के झोंकों में मिली ताज़ी जुती धरती की गंध, बड़े-बड़े काले कौओं की कौं-कौं, और पूर्व की ओर से फैलती सूर्योदय की लाली भी कमरे में समा गयी।

लड़कियां बोरियों में गल्ला भरने लगीं।

"उठ भाई उठ, अब चल!" अनाज को जगाती हुई सी वेरा बुदबुदा रही थी।

प्योत्र जल्दी-जल्दी बता रहा था: "यह गल्ला तिरपाल बिछाकर सूखने को डाल दो।...यह गल्ला सफाई की मशीन पर जायेगा।"

धूप से संवलाये चेहरे, भूरे बालों और काली भौंहों वाले प्योत्र का नाक-नक्शा यद्यपि अपने पिता के नाक-नक्शे से भिन्न था, पर आवाज़ और चाल-ढाल उन्हीं से मिलती थी। पिछले कुछ दिनों से उसका व्यवहार बहुत संयत हो गया था और उसकी आवाज़ में पिता की आवाज़ जैसी कोमलता आ गयी थी। कई लोगों का कहना था कि यह परिवर्तन ब्याह हो जाने से हुआ है। कुछ समझते थे कि मुकदमे के दिनों में चिन्ता का जो बोझ उस पर रहता था उसी का यह परिणाम है।

मुकदमे में प्योत्र का व्यवहार इतना ईमानदारी भरा और आत्म-सम्मान-पूर्ण था कि सभी लोगों को उससे गहरी सहानुभूति हो गयी थी। पश्चाताप

करने और अपना अपराध खुद कबूल देने के कारण न्यायाधीश ने उसके साथ सख्ती बरतना ठीक नहीं समझा। मामूली सा जुर्माना करके उसे छोड़ दिया।

मुकदमा खतम हुए कई सप्ताह बीत चुके थे, पर किसी ने प्योत्र को शराब पीते नहीं देखा था। अपने ब्याह में भी, रस्म-रिवाज के ठीक विपरीत, प्योत्र ने बड़ा संयम दिखाया था।

स्तेपनिदा इस परिवर्तन की व्याख्या करती हुई बड़े गर्व से कहती थी :
"पेत्रुन्का की नसों में बाप का खून हिलोरें ले रहा है !"

इतनी लड़कियों से बड़ी चालाकी, संजीदगी और होशियारी से प्योत्र को काम लेते देख वालेंतिना को स्तेपनिदा के ये ही शब्द याद हो आये थे।

वालेंतिना अनाज गोदाम से बाहर आ गयी। लड़कियां इमारत की दीवार के पास तिरपाल बिछा रही थीं। पास ही बिजली का एक इंजन गड़गड़ाने लगा, गल्ला साफ़ करने की दो मशीनें खड़खड़ा उठीं और अनाज—इस शोर-शराबे और आन्दोलन से उत्तेजित होकर—लहराता और भंवरें बनाता उफनने-कूदने लगा।

सूर्य की किरणों के प्रकाश में अनाज के दाने और भी हल्के और साफ़ दीख रहे थे।

वालेंतिना जानती थी कि वायु और प्रकाश के प्रभाव से अनाज के प्रत्येक दाने में, जहां छोटे से गढ़े में भ्रूण निहित रहता है, जीवन का प्रादुर्भाव हो रहा है। इंजनों की हवा और सूर्य का प्रकाश जीवन की गतिमय शक्ति में परिवर्तित हो रहे थे।

मशीनों की आवाज़ से भयभीत होकर कौवे हवा में उड़ चले। क्षण भर में ही आस-पास के वृक्ष उनके परों की फड़फड़ाहट और कांव-कांव से सिहर उठे।

"ओफ़ ! इन कौओं ने तो कान खा लिए !" वालेंतिना बोली। "कहो पेत्रू, बोने के लिए बीजों की तैयारी कैसी चल रही है?"

"ठीक ही चल रही है !"

"बीजों की बाबत कल फ्रोस्या से क्या झगड़ा हो गया था?"

वेरा सहसा उत्तेजित हो उठी और प्योत्र की ओर से उत्तर देने लगी :

"झगड़ा बीजों पर थोड़े ही हुआ था। बीज तो ठीक हैं। बस, उनमें खाद नहीं छिड़की गयी थी। फ्रोस्या बिगड़ उठी। बीजों की बोरियां हम लोगों से छीनने लगी। उसका तो मिजाज ही नहीं मिलता। जब से ट्रेक्टर ड्राइवर बन गयी है, ऐसी अकड़ती है जैसा सूखा झाड़ अकड़ता है।"

प्योत्र ने सूरज की ओर आंखें उठायीं और मुस्करा दिया। कहना मुश्किल था कि यह मुस्कान अपनी नवेली दूल्हन की प्रशंसा में थी या भर्त्सना में।

वालेंतिना ने अच्छी तरह जांच-पड़ताल कर देख लिया कि बोवाई के बीजों की तैयारी का काम ठीक से चल रहा है तो अपनी गाड़ी में जा बैठी और चल दी।

उग्रेन से मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन तक रास्ता कम करने के लिए जंगलों के बीच से एक छोटी सड़क बना दी गयी थी। वालेंतिना इसी सड़क से जा रही थी।

"यही है हम लोगों का रास्ता! पारिवारिक सुख का रास्ता!" वालेंतिना न चाहते हुए भी मुस्करा उठी। "पहले तो ज़िले की हालत सुधरने का काम असम्भव जान पड़ता था। नया ट्रैक्टर स्टेशन खुल गया। यह सड़क बन गयी। अब लगने लगा है कि सब काम सीधा-सादा और आसान हो गया है। ऐसा मालूम होता है जैसे किसी और ने हमारे लिए इसे आसान बना दिया है। घर से पचास मिनट में स्टेशन पहुंच जाती हूं। मास्को वालों को भी इतना वक्त अपने काम पर पहुंचने में लग ही जाता होगा। हम लोगों के जीवन का नियम भी कितना सुन्दर है। दूसरों की भलाई का प्रयत्न करो, तुम्हारी भी जरूर भलाई होगी।"

जाड़ों में नंगे हो गये पेड़ों से मोटी-मोटी कोपलें फूट रही थीं। उन्हें देखती हुई वालेंतिना सोच रही थी:

"अब तो हम लोगों के भी बच्चे हो जायें तो अच्छा है; एक नहीं, दो या तीन!... लेकिन हों आन्द्रेई जैसे! और रहें सब मेरे साथ, आन्द्रेई नम्बर एक, फिर एक नन्हा-मुन्ना आन्द्रेईका, एक घुटनों के बल सरकने वाला आन्द्रेईका, और एक और आन्द्रेईका, बड़ा सा लड़का, बिलकुल अपने बाप जैसा।"

अपनी कल्पना में खोयी वालेंतिना हंस पड़ी। ड्राइवर ने पीछे घूम कर पूछा:

"क्या है, वालेंतिना अलेक्सेयेवना?"

"कुछ नहीं! यों ही हंसी आ गयी। कैसा प्यारा वसंत है, वान्या!"

अभी आदमी तो खेतों में कहीं-कहीं ही दिखाई दे रहे थे पर सुबह के सन्नाटे में दूर-दूर तक चलते ट्रैक्टरों की गूंज स्पष्ट सुनाई दे रही थी। कभी सड़क के दायें कभी बायें, धीरी रफ्तार से, ट्रैक्टर पास से गुजर जाते। पांच नम्बर के खेत पर वालेंतिना ने एक मशीन चुपचाप खड़ी देखी। नास्त्या, फ्रोस्या और कुछ दूसरे लोग उसके इधर-उधर ताक-झांक कर रहे थे। वालेंतिना गाड़ी खड़ी करवा कर उसी तरफ लपकी।

"क्या हुआ? बिगड़ गया क्या?"

नास्त्या ने धीरे से उत्तर दिया:

"नहीं तो। जरा तेल वगैरा देने के लिए रोक लिया है।"

फ्रोस्या एड़ियों के बल ज़मीन पर बैठी नास्त्या को बड़े विश्वासपूर्ण नेत्रों से देख रही थी। यों तो फ्रोस्या किसी का आदर नहीं करती थी और सब को नीची नज़र से देखती थी लेकिन एक बार कोई उसके मन चढ़ जाय तो वह उसकी चेरी, दासी और उपासिका, न जाने क्या-क्या बन जाती थी।

नास्त्या उन्हीं इने-गिने लोगों में थी जिनका फ्रोस्या आदर करती थी। नास्त्या भी फ्रोस्या की बुद्धिमत्ता, अनुशासन-प्रियता और मीठे स्वभाव की प्रशंसा करती न अघाती थी।

"ट्रैक्टर ड्राइवर को ट्रैक्टर की बियरिंग ठीक करने की तैयारी उतनी ही सावधानी से करनी चाहिए जैसे डाक्टर आपरेशन करने से पहले तैयारी करते हैं," नास्त्या ने समझाया। फ्रोस्या और ल्योनेच्का होंठ खोले और आंखें फैलाये उसकी बातें सुन रही थीं। इसीलिए नास्त्या को निर्देश देने में आनन्द भी आ रहा था।

"याद रखो कि क्रैंकशैफ्ट का पूरा ज़ोर बियरिंग पर रहता है। और ट्रैक्टर के लिए क्रैंकशैफ्ट वही चीज़ होती है जो इन्सान के लिए दिल। साफ़ करने के लिए पुर्ज़े खोलो तो उन्हें धूल में कभी नहीं रखना। समझीं? पहले तिरपाल को खूब झाड़ कर जमीन पर बिछा लो तब पुर्ज़ों को खोल कर उस पर अहिस्ता से रखो। फिर उन्हें धोकर ऐसे चमका दो जैसे सूरज चमकता है, धूल का एक कण भी न रहे उन पर। फिर साबुन से हाथ धोओ। पुर्ज़ों को साफ करने के लिए मिट्टी का तेल जरूरी होता है। लेकिन तेल हो बिलकुल साफ—जैसे ताज़ा पानी। तेल को छान कर साफ किये बिना पुर्ज़ों में नहीं लगाना। समझी? अपने ट्रैक्टर को प्यार करो तो वह भी आदमी की तरह इशारा समझता है। ल्योनेच्का, जा एक बाल्टी पानी तो ले आ ट्रैक्टर धोने को!"

वालेंतिना चुपचाप खड़ी सुबह-सुबह खेतों में दी जाती इस शिक्षा को काफी देर सुनती रही।

वालेंतिना जांच कर रही थी कि ज़मीन को कितनी गहरायी से जोता गया है और बीजों का दाना ठीक तरह पड़ा है कि नहीं, तभी वासिली और 'अंकुर' नामक पड़ोस के सामूहिक खेत के प्रधान येफिमकिन आ पहुंचे। 'अंकुर' के खेतों की एक पट्टी पहली मई फ़ार्म के खेतों तक धंसती चली आई थी। नास्त्या ने ट्रैक्टर से आंखें उठाईं और घूम कर येफिमकिन की ओर देखा।

"चला आ रहा है नवाब जैसा! इन लोगों को देखे तो मुझे उबकाई आती है, उबकाई... खामखा इस आदमी का खेत मेरी टीम के गले मढ़ दिया, वाल्या। मुश्किल से डेढ़ सौ हेक्टर ज़मीन है, उसे भी सात जगह बांट दिया है—बारी-बारी से बोवाई के लिए। ऐसे खेतों में ट्रैक्टर घुमाने की भी तो जगह नहीं।"

वालेंतिना को इस कठिनाई का खुद पता था। मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में काम शुरू करने से पहले उसका ध्यान ऐसी बातों पर नहीं गया था। अब उसे ये छोटे-छोटे सामूहिक फ़ार्म खामखा की परेशानी लगते थे। एक खेत से दूसरे खेत तक ट्रैक्टर ले जाने में, ज़रा-ज़रा सी पट्टियों पर दौड़ लगाने में, बौने फ़ार्मों के बेगिनती मैनेजरों से मिलने-जुलने में और संगठन के मसले निबटाने में बेकार बहुत सा तेल और वक्त बरबाद हो जाता था।

"बारी बारी से फसल वाले खेतों के इर्द-गिर्द पेड़ों की कतार खड़ी करनी है, लेकिन पेड़ लगाये कहां जायें? पूरे खेत में तो अच्छे खासे दो देवदार वृक्षों के लिए भी जगह नहीं है!" चिन्ता में डूबी वालेंतिना सोच रही थी। नास्त्या की खीझ का कारण वह समझती थी और उसे उचित मानती थी। दोनों औरतें न चाहते हुए भी येफिमकिन को ऐसे देख रही थीं जैसे वह दुश्मन हो।

येफिमकिन भी जानता था कि मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में वह बहुत लोकप्रिय नहीं है। ऐसा लग रहा था जैसे किसी अपराध के लिए वह लज्जित है। धीरे स्वर में बहुत झिझकते-झिझकते वह बोला :

"नास्त्या, सुनो तो ..."

"हां, हां, सुन लिया ..." नास्त्या ने उसकी बात काटते हुए कहा। "कह तो दिया आज जोत देंगे। लेकिन यह बता दें—हम जोतना शुरू करेंगे तो एक सीध में जोतते-जोतते पहली मई फार्म के खेतों में निकल आयेंगे! बाद में तुम संभाल लेना कि कौन से खेत तुम्हारे हैं। इधर से उधर रेंगते फिरने की मुझे फ़ुर्सत नहीं है।" वासिली की ओर घूम कर बिलकुल दूसरे स्वर में बोली : "कहो वासिली कुज़मिच, बोवाई ठीक हो रही न?"

वासिली ने भी आगे बढ़कर जुताई की गहराई और बीज डालने वाले बर्मों की जांच की। ज़मीन पर बैठ कर, सिर झुकाकर वह लम्बी जुती कतारों को देखने लगा। कतारें तीर की तरह सीधी थीं।

"बोलो न!" नास्त्या ने आग्रह किया।

वासिली ने नज़र उठाकर उसकी ओर देखा। नास्त्या के धूप से तप कर पक्के पड़ गये रंग में हल्की भूरी भौंहें चमक रही थीं। धूप में काम करते रहने के कारण उसकी आंखें सुबह की धूप में चौंधिया न रही थीं; वे खूब खुली हुई थीं। चेहरे पर शान्ति और साहस की आभा थी।

वासिली फिर खेतों की ओर देखने लगा।

कभी-कभी कोई सुन्दर वस्त्र किसी स्त्री के शरीर पर ऐसा फबता है कि शरीर और कपड़े के सौन्दर्य को अलग-अलग समझ पाना कठिन होता है; ऐसे ही नास्त्या के जोते हुए खेत वासिली को लग रहे थे। उसके लिए यह

कह पाना कठिन था कि यह सौन्दर्य खेतों का है या नास्त्या का। बरबस ही उसके मुंह से निकल पड़ा : "अहा, सब कुछ कितना सुन्दर है ...!"

नास्त्या और वासिली की मित्रता पुरानी थी। जब से फ़ार्म की ज़िम्मेदारी में दोनों साझी बन गये थे, उनकी मित्रता और भी गहरी हो गयी थी। फ़ार्म के भविष्य की ज़िम्मेदारी दोनों पर थी और अपने सहयोगी के रूप में एक-दूसरे को पाकर दोनों बहुत खुश थे।

"दुन्या को छोड़ कर इस फ़ार्म में दूसरा कौन मुझे सबसे ज्यादा प्यारा है? नास्त्या ही तो!" वासिली सोच रहा था।

"अरे बोलो न क्या कहते हो?" नास्त्या ने फिर पूछा।

नास्त्या जैसी दृढ़ और शांत महिला उसकी राय जानने के लिए, उससे प्रशंसा का एक शब्द सुनने के लिए, इतनी उतावली हो रही थी यह देखकर वासिली को गर्व अनुभव हो रहा था। इसीलिए वह जल्दी उत्तर नहीं दे रहा था। मन में एक तकरार छिड़ी हुई थी : "इसे ज़रा खिझाऊं? कोई ग़लती निकालूं?" लेकिन बोवाई का काम इतने अच्छे ढंग से हुआ था कि गलती निकालने का उसे साहस ही नहीं हो रहा था।

वासिली उठ खड़ा हुआ। जेब से रूमाल निकाल कर हाथों से मिट्टी पोंछी। फिर बोला :

"बस ऐसे ही किये जाओ!"

"बड़ी अच्छी है मिट्टी यहां की।" येफिमकिन बोला। "कितना अच्छा हो कि इस ज़मीन का आधा हिस्सा हमारे फ़ार्म में कर दो जिससे ट्रैक्टर-ड्राइवर हम पर बेकार नाराज़ न हुआ करें।"

"जी हां, बादल के छोटे-छोटे टुकड़े बड़े टुकड़े से जा मिलते हैं। यह नहीं कि बड़ा टुकड़ा छोटों के पीछे दौड़े! हम तो कहते हैं—हमें कोई एतराज नहीं, आओ हमारे पीछे आ लगो।"

"'पीछे आ लगो' का क्या मतलब?"

"वही जो कह रहा हूं। अपने खेत हमारे खेतों से और चरागाह हमारी चरागाहों से मिला लो। लोग कहते हैं : बड़े जहाज़ के लिए गहरे पानी की ज़रूरत होती है। मैं कहता हूं : बड़े फ़ार्म के लिए बहुत सी जगह की ज़रूरत होती है।"

यों तो यह बात चलता मज़ाक मालूम होती थी, लेकिन नास्त्या ने देखा कि वासिली तिरछी नज़रों से येफिमकिन को देख रहा है। यद्यपि येफिमकिन ने ध्यान नहीं दिया, फिर भी वासिली की नज़र बड़ी पैनी और उसे बेध डालने वाली थी।

"कितने लालची हो गये हो तुम ?" उसकी दृष्टि अपनी ओर खींचती हुई नास्त्या बोली।

वासिली ने अपनी काली भौंहें ऊपर चढ़ाकर दूसरी ओर देखते हुए उत्तर दिया :

"लालच की बात इसमें क्या है ? इनके फ़ार्म से हमें किसी तरह का मुनाफा तो होने से रहा !"

आंखों ही आंखों में मुस्कराता हुआ नास्त्या की ओर देखकर वह फिर बोला :

"मुझे तो तुम लोगों पर तरस आता है—सच ! तुम पर और इन पर, नास्त्या ! इन ज़रा-ज़रा सी पट्टियों को जोतने में कितनी परेशानी होती है तुम लोगों को !"

वासिली अब खुलकर हंस रहा था मानो नास्त्या को जताना चाहता हो : "चली थीं मुझे बनाने ? अब दो जवाब !"

"मुझे नहीं मालूम था कि तुम ऐसे दयालु हो !" होंठ सिकोड़कर नास्त्या ने उत्तर दिया।

"तुम न देखो-समझो तो क्या इलाज ! तुम्हें तो जान कर ताज्जुब ही होगा कि मेरा हृदय कितना दयालु है ! मेरे हृदय में सबके लिए दया है, और खास तौर से तुम्हारे लिए तो और भी, नास्त्या !" वासिली उसे चिढ़ा रहा था।

नास्त्या वासिली को खूब समझती थी। वह जानती थी कि इस समय वासिली को न तो येफिमकिन का खयाल है, न नास्त्या का। इस समय उसे खयाल था पहली मई फ़ार्म का और उसके साथ लगी हुई लाल मिट्टी की उस पट्टी का जो 'अंकुर' फ़ार्म के अन्दर धंसती चली गयी थी।

यह मिट्टी बहुत बढ़िया थी। इसकी ईंटे बहुत बढ़िया बनती थीं। इसकी कच्ची ईंटें भी पजावे से निकली ईंटों का मुकाबला करती थीं। प्रदेश के विशेषज्ञ भी यहां मिट्टी का नमूना देखने आते थे। इसे मास्को भी भेजा था।

वासिली के मस्तिष्क में एक नया विचार जोर मार रहा था। वह एक नये और मुनाफेदार कारखाने की कल्पना कर रहा था—ज़मीन का यह टुकड़ा मिल जाय तो बिजली से चलने वाला ईंटों का भट्ठा यहां लग जाय और ज़िले भर को ईंटें पहुंचाई जायें। इस ज़मीन पर भट्ठा लगाने की बात कई दिन से उसके मन में घूम रही थी, पर इस बारे में उसने किसी से कुछ कहा नहीं था। हां, चुपचाप घूम-फिर कर उसने पूरी जगह को देख लिया था और मन में बैठा लिया था कि कहां से बिजली आयेगी और कहां भट्ठा बन सकेगा। यह मिट्टी उसे कैसे मिल सकेगी इसके बारे में उसके मन में धुंधला सा ही अनुमान था

लेकिन जिस वक्त वह येफिमकिन से मज़ाक कर रहा था उसकी आंखों में छोटे से खड्ड के दलदली ढलाव और बड़े लाल गढ़े के, जिसमें से सामूहिक किसान घरेलू कामों के लिए अक्सर मिट्टी निकाल ले जाते थे, दृश्य नाच रहे थे।

वालेंतिना मोटर में बैठी लौट रही थी तो वासिली के मज़ाक को मन ही मन उलटती-पुलटती जा रही थी। उस मज़ाक के पीछे कुछ गहराई है यह वह भी भांप गयी थी। "खेत से खेत मिला लो और चरागाह से चरागाह! कह तो वह यों ही बैठा था, लेकिन ऐसा करना बहुत मुश्किल काम नहीं है। खैर, कुछ दिक्कत ज़रूर है! फसलों का चक्कर बदलना पड़ेगा, पशुओं का बाड़ा नये सिरे से बनवाना पड़ेगा। है तो काम मुश्किल! लेकिन आगे चल कर शायद ज़रूरी हो जाय और मुमकिन भी।"

रास्ते में वालेंतिना को एक और ट्रैक्टर दल मिल गया। ये लोग एक फ़ार्म से दूसरे फ़ार्म की ओर जा रहे थे।

तीन ट्रैक्टर एक-दूसरे के पीछे-पीछे ठेलों में खेती की मशीनें लादे चले जा रहे थे। अगले ट्रैक्टर पर अच्छा काम करने वालों के लिए सम्मान की सूचक धातु की एक लाल पताका थी और पिछले ट्रैक्टर पर रेडियो से खबर भेजने और खबर लेने के यंत्र रखे हुए थे।

यह ट्रैक्टर-दल फ़ार्म के लिए मशीनों के अलावा यह पताका, रेडियो और नयी योजना के अनुसार काम करने के लिए परामर्श के कागज़—एक एकदम नयी चीज़—अपने साथ लिए जा रहा था। ट्रैक्टर ड्राइवरों से दुवा-सलाम होने और उनके गुजर जाने के बाद वालेंतिना सोचने लगी :

"हो सकता है कि ज़रूरत और सम्भावना हमारे अन्दाज़ से पहले ही उठ खड़ी हों। हमारा जीवन खुद हमसे तेज़ी से दौड़ रहा है; और हम लोग अपनी इच्छा-आकांक्षाओं से आगे दौड़ रहे हैं! क्या यह बात पहली मई फ़ार्म के बारे में सच नहीं है? उसने हमारी योजनाओं और उम्मीदों को भी पीछे छोड़ दिया है! कितने नये लोग सामूहिक फ़ार्म और मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में आगे की पांत में आ खड़े हुए हैं!"

लुबोमुद्रोव को अपने पद से हटा दिया गया और पार्टी से बाहर निकाल दिया गया था। इंजन-विभाग का चार्ज लोबोव नामक नौजवान को दे दिया गया था। विसोत्सकी दौरे पर गया हुआ था। लौटने में अभी महीने भर का समय था। वालेंतिना जब भी विसोत्सकी के लौटने की बात सोचती, उत्तेजित हो उठती।

प्रति दिन सुबह इस सड़क से स्टेशन की ओर जाते हुए वालेंतिना ध्यान से चारों ओर देखती और अपने काम की बाबत सोचती जाती। यही

आज भी हुआ। जब वह अपने दफ्तर के दरवाज़े पर पहुंची तो उसका मन काम के सम्बंध में नये-नये विचारों और उत्साह से उमड़ रहा था। उसकी रगों में शक्ति का प्रवाह इस समय चरम अवस्था पर था।

स्टेशन में पहुंचते ही वालेंतिना माल बाहर भेजने वाले दफ्तर में गयी। वह जानना चाहती थी कि पिछले चौबीस घंटों में कितना काम हुआ है। सुबह छः बजे दफ्तरी पिछले दिन के काम का ब्यौरा तैयार कर लेता था।

लम्बे-चौड़े दफ्तर की सफेदी पुती दीवारों पर बहुत सी तालिकायें और नक्शे लटके हुए थे। दो टेलीफोन और एक माइक्रोफोन मेज़ पर रखे थे। वहीं बैठा दफ्तरी रेडियो द्वारा कहीं दूर से बातें कर रहा था।

कमरे के बीचो-बीच एक बड़ी मेज़ थी जिस पर ज़िले का बड़ा-सा रंगीन नक्शा फूलदार मेज़पोश की तरह फैला हुआ था। वालेंतिना अपने ज़िले की इंच-इंच भूमि से परिचित थी। पहली मई फ़ार्म में वह पली और बढ़ी थी। उक्रेन के माध्यमिक स्कूल में शिक्षित हुई थी। छुट्टियां वह अपनी सहेली के साथ मोलोतोव फ़ार्म में बिताती थी। उसका एक चाचा "प्रभात" फ़ार्म में था। किशोर पायनियरों के साथ वह नदी की कछारों पर घूम चुकी थी और बर्फीले ढलावों पर 'स्की' का खेल खेल चुकी थी। कौमसोमोल सदस्यों के साथ देहात की मीलों लम्बी दौड़ में भाग ले चुकी थी। नक्शे पर आंख पड़ते ही उसे बचपन और तरुणाई के खिलवाड़ों की बातें याद हो आईं; नक्शे में बने लम्बे और चौकोर रंगीन खानों ने अतीत की सुखद स्मृतियों को फिर जगा दिया। पिछले महीने वालेंतिना ने ज़िले के कई दौरे किये थे। ज़िले के वर्तमान और भविष्य की कहानियां ने बीते वर्षों के अनुभवों को और भी रूपरंजित बना दिया था। वालेंतिना को स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि जमीन की किस पट्टी पर कैसी घास-पात, क्या-क्या तरकारियां और साग होते हैं, कहां की धरती कैसी है, किस जगह की मिट्टी में कौन से गुण हैं और उस पर कैसी फसल होती है, कहां के लोग कैसे हैं, इत्यादि। उसे मालूम होता—हरा, पीला और नीला समुद्र लहरें लेकर आगे बढ़ता है और सहसा फिर पीछे लौट जाता है। जाड़े के दिनों में खेतों में लहराती मुलायम हरी-हरी फसल, सूर्य के उत्तप्त प्रकाश में उसांसें भरते जुते हुए खेत, आकाश की ओर बाहें लपकाते देवदार वृक्ष, घने जंगलों में कलकल करती नदियों का दलदली किनारों की ओर बढ़ता केवैया जल! उसकी आंखों के सामने सभी कुछ मानो साकार हो उठा था।

नक्शे पर जगह-जगह धातु के छोटे-छोटे तिकोने गट्टे रखे थे जिनमें लकड़ी की सीकों पर झंडे लहरा रहे थे। इन गट्टों से ट्रेक्टरों का बोध होता था और पता लग जाता था कि इस समय कहां-कहां ट्रैक्टर चल रहे हैं। झंडों के

रंग से यह भी पता लग जाता था कि ट्रैक्टर ठीक काम कर रहे हैं या मरम्मत वगैरा के लिए खड़े हैं या बिगड़ गये हैं।

वालेंतिना बड़ी उतावली से देख रही थी कि कहीं कोई सफेद झंडा है या नहीं,—यानी कहीं कोई ट्रैक्टर बिगड़ा या टूटा-फूटा है या नहीं।

"सफेद झंडा एक भी नहीं है"—मुस्कराकर वह संतोष से कहना ही चाहती थी कि नक्शे के बिलकुल किनारे एक सफेद झंडा दिखाई दे गया। वालेंतिना ने झटपट रिपोर्ट का "रजिस्टर" उठा कर देखा। ताज़ी स्याही में लिखा था :

"प्रातः ६–४०। दल नम्बर ४ में ट्रैक्टर के कनेक्टिंग-राड बियरिंग ज़रूरत से ज्यादा गरम हो गये हैं।"

"प्रातः ६–५५। मरम्मत गाड़ी भेज दी गयी है।"

मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन की मरम्मत की गाड़ी को लोग मज़ाक में 'एम्बुलेंस गाड़ी' कहा करते थे और वालेंतिना मरम्मत करने वाले मिस्त्री को प्रोफेसर स्किलोफोसोवस्की (सुप्रसिद्ध रूसी सर्जन; मास्को के एक अस्पताल का नाम इन्हीं के नाम पर रखा गया है) कहती थी। यही नाम उसका पड़ भी गया। बहुत से ट्रैक्टर-ड्राइवर तो समझते कि मिस्त्री का नाम ही स्किलोफोसोवस्की है। दूर-दूर के फ़ार्मों से भी कभी-कभी टेलीफोन या रेडियो पर संदेश आते कि मेहरबानी करके "स्किलोफोसोवस्की" को जल्दी भेजो।

रजिस्टर देख लेने के बाद वालेंतिना दीवार पर लगी तालिकाओं की ओर बढ़ी। इन तालिकाओं की ऊपर उठती और नीचे गिरती रेखाओं को देखकर तुरंत पता लग जाता था कि कितने घंटे में किस विभाग में कितना काम हुआ, कितना कोयला और तेल जला और काम की रफ्तार क्या है। दफ्तरी बड़ी मेहनत से इन्हें रोज बनाता था। इन तालिकाओं के बारे में वालेंतिना मज़ाक किया करती थी :

"हमारी तालिकायें बीमारों की हालत दिखाने वाली तालिकाओं से ठीक उलटी हैं। उनमें ज्यों-ज्यों बीमार की हालत खराब होती है, रेखायें ऊपर उठती हैं, हमारे यहां ज्यों-ज्यों ट्रैक्टर स्टेशन की हालत सुधरती है रेखायें ऊपर उठती हैं।"

यहां हर चीज़ बिलकुल साफ और स्पष्ट रहती थी और वालेंतिना दफ्तर की ड्योढ़ी नांघते ही मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन के उस दिन के काम की हालत समझ लेती थी। यही वह स्थान था जहां तमाम सूत्र एक-दूसरे से जुड़ते थे। हर मशीन की हरकत यहां उसी सच्चाई से प्रतिबिम्बित होती थी जैसे आईने में। हर चीज़ यहां अपनी रोमांचकारी पूर्णता में दिखाई देती थी। वालेंतिना को लगता जैसे मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन खेतों के बीच स्थित एक औद्योगिक

कारखाना है। एक ही समय में दर्जनों मशीनें हज़ारों हेक्टर भूमि पर एक पूर्व-निर्धारित योजना के अनुसार आगे बढ़तीं, निश्चित समय पर ही सफाई और तेल-पानी के लिए रुकतीं, और जुते हुए खेतों पर एकदम नपे-तुले फासले पर बीज बोतीं—उनकी हर हरकत योजना-बद्ध, पूर्व-निर्धारित और नपी-तुली होती। वालेंतिना को मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में सबसे प्यारा दफ्तरी का कमरा था। इस पर उसे नाज़ था। इसे देखकर उसका मन खिल उठता था। उसकी इन भावनाओं का कोई सच्चा भागीदार था तो खुद विक्टर रेब्रोव—बड़ा दफ्तरी।

विक्टर रेब्रोव ने युद्ध से पहले एक नौसैनिक स्कूल में शिक्षा प्राप्त की थी किन्तु युद्ध में एक गहरा घाव लग जाने के कारण समुद्र-तल पर विचरने के उसके सभी स्वप्न टूट कर बिखर गये। यहां दफ्तरी के काम में उसके अन्दर का खोया हुआ उत्साही युवक उसे फिर मिल गया था। अपने काम को वह इतनी कुशलता से निभा रहा था कि शीघ्र ही वह मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन का स्नायु-केन्द्र बन गया। कभी-कभी तो वह सहायक मैनेजर मालूम होता था—न कि सिर्फ दफ्तरी, जिसका काम अपने अफसरों के लिए तथ्य और आंकड़े इकट्ठा करना होता है। प्रोखारचेन्को, रुबानोव या वालेंतिना बाहर जाते तो विक्टर को बताकर कि कहां जा रहे हैं। कैसी भी पूछ-ताछ करनी हो—तेल-पैट्रोल के खर्चे की, काम में प्रगति की या किसी ट्रैक्टर की हालत की, विक्टर से की जा सकती थी। मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में जो कुछ होता उसकी खबर सबसे पहले विक्टर को मिलती और बहुधा वह प्रारम्भिक आवश्यकता के निर्देश भी जारी कर दिया करता था। उसके आदेश इतने जंचते हुए और उचित होते कि प्रोखारचेन्को, रुबानोव और वालेंतिना अक्सर ही दूसरों से कह दिया करते थे: "आपका यह काम विक्टर पूरा कर देगा!" या "विक्टर इस काम को देख लेगा!"

मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन से दूर के खेतों में काम करने वाली ट्रैक्टर टीमों के लिए विक्टर की आवाज़ मैनेजमेंट की आवाज़ थी। ज़िले में उसका नाम विजय का प्रतीक-सा बन गया था। जिन सामूहिक किसानों ने ज़िन्दगी में विक्टर को कभी नहीं देखा था और जो यह भी नहीं जानते थे कि विक्टर का पूरा नाम क्या है, वे किसी भी सांसत में फंसने पर यही कहते: "भैया, अब तो विक्टर को ही टेलीफोन करना पड़ेगा।" और उनका टेलीफोन पाते ही विक्टर आवश्यक लोगों से बातचीत करता और उनके जटिल मसलों को हल करने में जुट जाता। फिर तुरन्त ही किसानों को सूचित करता कि उनका काम पूरा हो गया है। उसकी कार्यकुशलता, फुर्ती और होशियारी से सामूहिक किसान इतने प्रभावित थे कि लम्बा रास्ता तै करके वे मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन पहुंचते और पूछते:

"यह विक्टर कौन है, भाई ? ज़िले भर में नाम फैला हुआ है। जिसके मुंह से सुनो : 'विक्टर, मशीन ट्रैक्टर स्टेशन वाला विक्टर!' बड़े गाढ़े में हमारी मदद की है, लेकिन हमने उसे देखा तक नहीं! कैसा है नाक-नक्शा उसका?"

विक्टर वालेंतिना का बचपन का साथी था और वह उसे बहुत मानती थी।

"हलो, नम्बर छः! हलो, नम्बर छः!" विक्टर पुकार रहा था।

लाउड-स्पीकर खड़का।

"हलो, नम्बर छः।"

"हलो, दफ्तरी!"

"मरम्मत की गाड़ी रवाना कर दी गयी है। बीस मिनट में पहुंच जायेगी। फालतू पुर्जे भी भेज दिये गये हैं। इधर का नुकसान अगली पारी में पूरा कर लो। शाम को खबर करो कि काम पूरा कर लिया है या नहीं!"

"ओ हो! तुम हो वालेंतिना अलेक्सेयेवना?" रुबानोव हंसता हुआ कमरे में दाखिल हुआ। "ज़रा सोचो तो—ये अकलमन्दों की दुम क्या कर रहे हैं! अभी-अभी प्रान्तीय केन्द्र से हमें बोवाई की योजना मिली है। अगर हम देहाती सोवियतों के हिसाब से अलग-अलग टुकड़ों में ज़मीन बांटें तो अकेली चेर्नुखिन ग्राम सोवियत के लिए हमें आठ हज़ार छः सौ हेक्टर परती ज़मीन जोतनी पड़ेगी। और है उनके पास सिर्फ सात हज़ार हेक्टर परती ज़मीन। समझ में नहीं आता यह एक हज़ार छः सौ हेक्टर फालतू ज़मीन कहां से मिल गयी। मालूम है उन्होंने क्या किया है? उन्होंने बारहमासी घास कि पट्टियों को भी परती ज़मीन में गिन लिया है!" रुबानोव हंस दिया, लेकिन उसकी बंजारों जैसी आंखों से क्रोध झलक रहा था। "और उनकी पूरी योजना बदल-बदल कर फसलें उगाने की योजना से मेल नहीं खाती। लेकिन इसकी उन्हें रत्ती भर चिन्ता नहीं! उन्होंने इसका भी हल निकाल लिया है! बड़े होशियार बनते हैं! उन्होने योजना के साथ एक हुक्मनामा भी नत्थी कर दिया है—कि फसलों की अदला-बदली की योजना में कोई गड़बड़ी न होने पाये। इसी को कहते हैं—घोड़ा निकल गया, लगाम हाथ में रह गयी! चले हैं बड़े होशियार बनने!"

"यह पहला मौका थोड़े ही है!" वालेंतिना बोली। पानी से भरी कांच की सुराही को झटके से उसने ऐसे सरकाया कि पानी छलक उठा। "प्रान्तीय दफ्तर इसका दोष मढ़ता है मंत्रालय पर! मैं तो इन लोगों से ऊब गयी हूं, रुबानोव!" उसके बात करने के लहज़े से मालूम होता था कि दुनिया में जितनी असंगतियां और भूलें होती हैं सबको तुरंत ठीक करने का पट्टा उसी के नाम लिखा है। रुबानोव और विक्टर आंखें फैलाये उसे देखते रह गये।

"मैं *प्रावदा* में खत लिखूंगी। लम्बा-चौड़ा खत होगा—मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन की कृषि-विशेषज्ञ का मंत्रालय और योजना बनानेवालों के बारे में पत्र।"

इसी वक्त रुबानोव की सेक्रेटरी-लड़की एक कागज़ लिए हुए आई। इसमें ट्रैक्टर दलों के बीच साप्ताहिक प्रचार इश्तहार का मसौदा था। वालेंतिना ने सरसरी नज़र से उसे पढ़ा।

"कहो कैसा है?" रुबानोव ने पूछा।

"हूं! यह शीर्षक, 'किसानों और ट्रैक्टर-ड्राइवरों के हित एक हैं, उनकी फसलें एक हैं, उनके विचार एक हैं' तो ठीक है। लेख भी ठीक है। लेकिन यह 'ट्रैक्टर दलों और फ़ार्म दलों की फ़ार्म के औज़ारों की मरम्मत में पारस्परिक सहायता'—बड़ा भौंड़ा लगता है।"

"मुझे भी अच्छा नहीं लगता।" रुबानोव ने उत्तर दिया। "इसे यों बदल दें: 'खेती के औज़ारों की मरम्मत में ट्रैक्टर ड्राइवर किस प्रकार मदद करते हैं?'"

"हां! यह बेहतर है!"

"तुम लोग दिन भर यहीं बैठे रहोगे क्या?" रेब्रेव ने पूछा। "तुम्हारा अपना दफ्तर नहीं है?"

मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन के सभी लोगों से विक्टर को जो अत्यधिक प्यार मिलता था उससे उसे अपना पीछा छुड़ाना मुश्किल हो गया था।

खूब खुला और हवादार कमरा सब प्रकार की सूचना और काम की नयी गति का केन्द्र था। लोग कोई न कोई बहाना ढूंढकर, रेब्रेव की सुविधा-असुविधा की ज़रा भी चिन्ता किये बिना, आ धमकते थे। उन्हें भगाते रहना भी रेब्रेव के लिए एक समस्या थी।

रुबानोव और सेक्रेटरी-लड़की चुपचाप खिसक गये। वालेंतिना दैनिक रिपोर्ट के कागज़ लेकर एक कुर्सी पर जम गयी। दिन भर के कामों की जो चिन्ता उसके दिमाग में छाई थी उसने उसे रिपोर्ट पर ध्यान केन्द्रित नहीं करने दिया।

वालेंतिना का कार्यक्षेत्र इतना व्यापक था और उसमें इतने प्रकार की समस्याएं थीं कि ज़िले के सुदूर क्षेत्रों और खेतों की पूरी जानकारी उसे रखनी पड़ती थी। खेतों का निरीक्षण, बसंत की फसल की बोवाई की तैयारी और सामूहिक फ़ार्मों के लिए निरख और शर्तें बनाना ही पर्याप्त नहीं था; किसानों को संगठित करना भी उसी का काम था। किसी अनजाने और दूर के क्षेत्र में यदि कोई नया आविष्कार होता तो उसे आगे बढ़ाना और मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में लोकप्रिय बनाना भी वालेंतिना का काम था। उसे स्टेशन के साप्ताहिक पत्र में प्रति सप्ताह एक लेख लिखना पड़ता। *प्रावदा* को पत्र लिखना

भी उसी का काम था। साथ ही, जुताई की उचित गहराई और प्रति वर्गफुट में डालने के लिए बीजों की संख्या भी उसे बतानी पड़ती।

दैनिक रिपोर्ट पढ़ते-पढ़ते उसे याद हो आया कि नास्त्या सुबह ट्रैक्टर की मरम्मत की बातें कैसे अपने सहायकों को समझा रही थी। सभी पुराने ट्रैक्टर ड्राइवर अपने नये साथियों को ऐसे ही प्रेम और लगन से नहीं सिखाते थे। उसके तजुर्बों से फायदा उठाने का दूसरों को अवसर कैसे दिया जाय? यह अवसर देना बहुत आवश्यक था और इससे लाभ की भी बहुत आशा थी। लेकिन सभी ट्रैक्टर ड्राइवरों को इकट्ठा कर पाना असम्भव था—खासकर इसलिए कि फसल के लिए जुताई का काम ज़ोरों पर था। और इसका मतलब यह था कि वह प्रचार के इश्तहार से ही यह काम ले, दूसरे प्रचारकों को समझाये और ज़िले के समाचार पत्र से सम्पर्क स्थापित करे...इश्तहार के लिए आज का लेख भी...!

ट्रैक्टर ड्राइवरों ने हाल में ही घोड़े से खींची जानेवाली बीज डालने की एक पुरानी मशीन की मरम्मत की थी। बात थी तो मामूली सी, लेकिन एक गम्भीर और महत्वपूर्ण प्रक्रिया की द्योतक थी। इससे मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन और सामूहिक खेतों में बढ़ते सहयोग पर प्रकाश पड़ता था। ऐसी भावना उत्पन्न करना और बड़ी योग्यता से तथा ठोस रूप में दिन-प्रति-दिन उसे बढ़ाना वालेंतिना का काम था। एक दूसरी ही बात ले ली जाय—ट्रैक्टर ड्राइवरों के लिए छोटी, मकानों जैसी, गाड़ियां बनवाने की ज़रूरत थी जिन्हें वे ट्रैक्टरों के पीछे बांधकर जहां चाहें ले जा सकें। इसके लिए प्रोखारचेन्को को राजी करना ज़रूरी था। वालेंतिना का ध्यान एक बात से हटकर दूसरी पर चला जाता। उसे अपने आप पर खीझ आने लगी: "सोचती तो हूं मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन में गति और संगठन लाने की बातें, लेकिन यहां अपने दिमाग पर ही काबू नहीं है। नहीं, सब काम वक्त से... छः से साढ़े छः तक पूरा ध्यान लगाकर मुझे रिपोर्ट पढ़नी है।"

वालेंतिना रिपोर्ट में दिये आंकड़ों में डूब गयी।

दफ्तरी के कमरे में एकदम सन्नाटा था। यहां शांति और सन्नाटे का मतलब यह था कि ज़िले में सब काम ठीक और सधी-बधी गति से चल रहा है—ट्रैक्टर ठीक-ठीक काम कर रहे हैं, किसानों और ट्रैक्टर ड्राइवरों में झगड़े की कोई बात नहीं है और सब काम पूर्व-निश्चित व्यवस्था के अनुसार हो रहा है।

ज़िले के खेतों में सुसंगठित और सधी-बधी गति से चलते कार्य की कल्पना में वालेंतिना अधिक देर डूबी न रह सकी। किसी लड़की की क्रोध भरी आवाज़ ने कमरे की शांति भंग कर दी।

"दफ्तरी ! दफ्तरी ! दफ्तरी !" मालूम होता था लाउड-स्पीकर फट जायगा। "कहां चला गया है कमबख्त !...दफ्तरी ! वो विक्टर !"...इतनी उतावली से कोई बोल सकती थी तो फ्रोस्या।

"हलो ! मैं रेब्रेव बोल रहा हूं। कौन है ?"

"मैं नौ नम्बर बोल रही हूं। विक्टर...यहां बेकार खड़े मुझे सात मिनट हो गये हैं। फ़ार्म वालों ने अभी तक बीज नहीं भेजे। विक्टर...तुम फ़ार्म के दफ्तर फौरन फोन करो और कहो कि यह क्या तमाशा है! ट्रैक्टर खेत में बेकार खड़ा है।...और सुनो ! अपनी जबान में उन्हें साफ-साफ समझा देना कि पांच मिनट के भीतर उन्होंने बीज नहीं भेजे तो मैं उन्हें ट्रैक्टर के नीचे रौंद डालूंगी। सच कहती हूं मैं। ये विक्टर—"

"अच्छा, सुन लिया...तुम ठहरो। मैं उन्हें फोन करता हूं।"

रेब्रेव ने फोन का रिसीवर उठाया। "मुझे पहली मई फ़ार्म दो।" तुरंत ही फोन मिल गया। टेलीफोन दफ्तर को आन्द्रेई की खास हिदायत थी कि रेब्रेव के दफ्तर का काम एक मिनट भी नहीं रुकना चाहिए। "कामरेड बोर्तनिकोव !...कामरेड बोर्तनिकोव ! खेतों में एक ट्रैक्टर बेकार खड़ा है क्योंकि अब तक वहां बीज नहीं पहुंचे। बीज तुरंत भेजो। दस मिनट के भीतर ! यह तुम्हारी ज़िम्मेदारी है।...क्या कहा ? दस मिनट में नहीं भेज सकते ? तो ? बीस मिनट में ? अच्छी बात है। मैं गिन रहा हूं। जांच करूंगा ! भूलना मत कि ट्रैक्टर बेकार खड़ा है।"

रेब्रेव ने फ्रोस्या को फोन किया।

"नौ नम्बर ! नौ नम्बर !"

"हां, मैं नौ नम्बर हूं", गुस्से भरी रोआंसी आवाज़ ने उत्तर दिया।

"मैंने अभी-अभी बोर्तनिकोव से बात की है। तुम्हें पन्द्रह मिनट में बीज मिल जायेंगे।"

"विक्टर ! ये विक्टर ! तुम जांच करना। उन लोगों पर यक़ीन मत करो ! विक्टर ! ओ विक्टर ! अरे दफ्तरी ! .. उनसे कहो कि ट्रैक्टर बेकार खड़ा है !"

"अच्छा, अच्छा ! अब बस करो। मुझे भी मालूम है !"

"ट्रैक्टर बेकार खड़ा है"—ये शब्द वालेंतिना के मस्तिष्क में घुस गये। अभी कुछ ही दिनों पहले ट्रैक्टर पहरों बेकार खड़े रहते थे। घास पर लेटे ड्राइवर धूप का मजा लिया करते थे और 'एम्बुलेंस गाड़ी' की प्रतीक्षा किया करते थे। और अब ट्रैक्टर के दस मिनट बेकार खड़े रहने से यह लड़की इतनी परेशान हो गयी थी ! "ट्रैक्टर बेकार खड़ा है" की चीख-पुकार ऐसे मच गयी थी—जैसे कोई जहाज़ डूब रहा हो।

वालेंतिना के होठों पर मुस्कान दौड़ गयी। विक्टर के गले में हाथ डाल कर उसके बालों को सहलाती हुई बोली :

"देख तो वित्या! पूरा ज़िला ऐसा हो गया जैसे कारख़ाना।"

वित्या को एक दूसरी ही तुलना पसन्द थी :

"ऊं हूं! नौसैनिक दफ्तर जैसा मालूम होता है, वाल्या!" मुस्करा कर वह बोला।

इधर वालेंतिना दफ्तरी के कमरे में बैठी विक्टर की कार्य-तत्परता पर मोहित हो रही थी, उधर फ्रोस्या क्रोध में अपने ट्रैक्टर के चक्कर लगाती हुई पहली मई फ़ार्म दल के नायक, अपने पति प्योत्र बोर्तनिकोव पर गाज, खाज, खुजली—सभी को आमंत्रित कर रही थी।

"इसकी दाढ़ी में आग लगा दूं! इसकी गर्दन सड़ जाय, निगोड़े की! यहां तो काम के मारे छींक तक रोके रहती हूं, और उसे बीज तक भेजने का होश नहीं। खसम है तो घर में! मैं वह खबर लूंगी कि बच्चू को छठी का दूध याद आ जाय। अरी ओ, ल्योनेच्का! ला एक कागज़ तो दे मुझे। मैं अभी बताती हूं इसे!"

फ्रोस्या की ट्रैक्टर क्लीनर ल्योनेच्का एक कागज़ ले आई। कागज़ को ट्रैक्टर की गद्दी पर रखकर फ्रोस्या ने लिख डाला :

"रिपोर्ट। निवेदन है कि पहली मई फ़ार्म में खेतों के दल के नायक प्योत्र बोर्तनिकोव की लापरवाही की वजह से ट्रैक्टर को बेकार खड़ा रहना पड़ा है। फ़ार्म-बोर्ड से मेरी प्रार्थना है कि उसे मुनासिब सजा दी जाय जिससे दूसरे लोगों को सबक मिले।

हस्ताक्षर

ट्रैक्टर ड्राइवर

येफ्रोसीनिया बोर्तनिकोवा"

सामने सड़क पर से एक लारी जा रही थी। गुस्से से बेचैन फ्रोस्या ने ड्राइवर को पुकार कर कहा कि वह उसे बिठाल ले।

"बीजों की गाड़ी रास्ते में मिल गयी तो मैं लौट आऊंगी, नहीं तो सीधे फ़ार्म के दफ्तर जाकर उन लोगों से निपटूंगी।"

फ्रोस्या जिस वक्त गुस्से से झल्लाई फ़ार्म के गल्ला गोदाम में पहुंची उस वक्त बीज का गल्ला गाड़ी में लादा जा रहा था।

"कहां है तुम्हारा टीम लीडर!... प्योत्र बोर्तनिकोव? वही! जरा सामने तो लाना मेरे! हां, मेरी आंखों के सामने!"

"अजी सुनो तो, देखो बात..." घबरा कर हकलाता हुआ प्योत्र बोला।

"मुझ से 'अजी-ओजी' मत कर! मेरी टीम की टांग घसीटना चाहता है? हम ट्रैक्टर ड्राइवर तो भूख, प्यास और नींद हराम किये सुबह से रात तक खेतों में जुटे रहें और तुझे बीज पहुंचाने का भी होश नहीं?"

प्योत्र का चेहरा पीला पड़ गया। दांत पीसकर चुप रह गया।

"चुप ही रहना चाहिए! बोला तो मुंह से वो गालियां निकलेंगी कि लोगों को कान बन्द करने पड़ जायें... या कहीं चुड़ैल पर हाथ न छूट जाय..."

प्योत्र के चेहरे की गम्भीरता देखकर फ्रोस्या के होश भी ठिकाने आ गये।

"हम लोग पागलों की तरह काम में जुटे रहते हैं..." वह जरा गम्भीरता से बोली। "तू तो जानता है कि घंटे-वार योजना से जरा काम पिछड़ा नहीं कि वालेंतिना आपे से बाहर हो जाती हैं। तेरी गलतियों से मरन होगा तो मेरा।"

प्योत्र ने जेब से चुपचाप घड़ी निकाली और फ्रोस्या की आंखों के सामने कर दी।

"पौने सात बजा है।"

"तो इससे क्या?"

"तूने कहा था कि दूसरे खेत की बोवाई सात बजे शुरू होगी। ठीक सात बजे तेरे पास बीज पहुंच जायेंगे।"

"लेकिन ट्रैक्टर ड्राइवरों ने तो कल रात से ही घंटे-वार योजना को पीछे छोड़ दिया है।"

"मुझे यह क्या मालूम!"

"मालूम करना तेरा काम था! नास्त्या ने कहा नहीं था तुझसे कि बीज टाइम से कुछ पहले पहुंच जायें। नास्त्या ने साफ-साफ कह दिया था कि बीज वक्त से पहुंचने चाहिए।"

"वक्त से पहले तो हम पहुंचा ही देते थे। लेकिन कल हमारी मशीन टूट गयी। उसमें बहुत वक्त लग गया।"

"तेरी मशीन से मुझे क्या लेना-देना? मुझे चाहिए बीज! समझा? जैसे तेरी मशीन के लिए रोने के अलावा मुझे दूसरा कोई काम है ही नहीं।"

"भाड़ में जाय चुड़ैल!" प्योत्र ने सोचा। "इसे तलाक न दे दिया तो मैं प्योत्र नहीं!" पर यह गुस्सा कहने भर को ही था। फ्रोस्या के गोल-गोल गुलाबी गालों, मासूम बच्चों जैसी सुनहरी भौंहों और चपल-चंचल आंखों को देखकर इस क्रोध में भी प्योत्र फ्रोस्या पर रीझ गया। "पुराना ज़माना होता

तो लोग ज़रूर कहते कि यह चुड़ैल है। इसे पकड़ कर ओझे के पास ले जाते। लेकिन, मैं क्या करूं?"

फ्रोस्या की कभी-कभी उठने वाली चिड़चिड़ाहट के बावजूद प्योत्र का उसके अतिरिक्त और किसी स्त्री से निर्वाह होना सम्भव ही न था। फ्रोस्या की चुस्ती, उसके परिहास और हाज़िरजवाबी की बराबरी हो ही नहीं सकती थी। शैथिल्य और उदासी तो फ्रोस्या के पास नहीं फटक सकती थीं; स्वयं तो क्या वह दूसरों को भी उदास न होने देती थी।

एक बार फ्रोस्या ने हंसी-हंसी में प्योत्र को डाटा था: "ये पेत्रू! याद रखना, अगर मेरे साथ दग़ा की तो पछतायेगा।"

प्योत्र ने भी जवाब दिया था: "तू अकेली ही कइयों के लिए बहुत है। तूने और किसी के लायक मुझे छोड़ा कहां है!" लेकिन वह जानता था कि उसके हृदय में फ्रोस्या का स्थान दूसरी लड़की नहीं ले सकती।

एक दो बार प्योत्र सचमुच ही फ्रोस्या से चिढ़ गया और मन ही मन सोचने लगा कि इसकी जगह तातिआना या वेरा होती तो कैसा रहता। लेकिन उसे यह विचार जंचा नहीं। "मैं या तो पीने लगता या दूसरी छोकरियों के पीछे दौड़ने लगता, या फिर उनसे ऊब कर भाग ही जाता। मेरे लिए तो फ्रोस्या ही ठीक है। वही मुझे काबू में रख सकती है।"

फ्रोस्या जब से ट्रैक्टर ड्राइवर बन गयी, मिजाज कुछ चढ़ ही गया था। प्योत्र को अधिक परेशान करने लगी थी।

ट्रैक्टर ड्राइवरी की शिक्षा पाने से पहले ही उसने दूसरे किसानों को अशिक्षित और पिछड़े हुए समझना शुरू कर दिया था:

"किसानी? छिः! यह भी कोई धन्धा है? जिसे और कुछ न आता हो वही किसानी करे।"

फ्रोस्या शिक्षित होकर लौटी तो ट्रैक्टर ड्राइवरी और कम्बाइन मशीन चलाने का भी सार्टिफिकेट लेकर आई। वहां उसे काफी सचेत और होशियार भी समझा गया था। लौटकर उसने प्योत्र पर रोब गांठना शुरू कर दिया। प्योत्र अजीब परेशानी में पड़ गया। फ्रोस्या को तलाक भी न देते बनता और उसके साथ निबाहना भी असह्य जान पड़ता। कभी-कभी तो फ्रोस्या ऐसी नम्र और प्रेम में भीगी बन जाती कि कहना ही क्या। प्योत्र के साथ ऐसा व्यवहार कभी-कभी ही करती वह, परन्तु जिन लोगों को अपने से योग्य समझकर आदर करती उनके साथ सदा ही ऐसा व्यवहार रहता—उदाहरण के लिए वालेंतिना, नास्त्या, अवदोत्या आदि से। प्योत्र के सामने एक ही रास्ता रह गया था—फ्रोस्या पर अपनी योग्यता, बुद्धिमत्ता और कार्यपटुता का सिक्का जमाकर उसका सम्मान प्राप्त कर ले।

प्योत्र अब बहुत गम्भीरता से व्यवहार करने लगा था। फ्रोस्या के स्वभाव से तुलना करने पर वह साधुओं जैसा शांत और सौम्य-प्रकृति मालूम होता। जब भी फ्रोस्या क्रोध और पागलपन दिखाती प्योत्र दांत पीस कर अपने ऊपर काबू रखता और उसके खूंखार हमले का आश्चर्यजनक शांति और मर्यादा से मुकाबला करता।

प्योत्र के विरुद्ध लिखी अपनी रिपोर्ट उसकी नाक के सामने नचाते हुए फ्रोस्या ने पूछा :

"कहे तो भेज दूं?"

प्योत्र ने बड़ी शांति से रिपोर्ट पढ़ी फिर गम्भीरता से उत्तर दिया :

"यह रिपोर्ट ग़लत है।"

"कौन कहता है ग़लत है?" इसी समय वासिली गोदाम में आ गया। फ्रोस्या उसकी ओर घूमकर तीखे स्वर में बोली—"यह क्या तमाशा है, वासिली कुज़मिच! तुम्हारा दल नायक मनमानी करता है!"

"वासिली इसकी अक्ल ठिकाने लगा देंगे।" प्योत्र ने सोचा। "इन्हीं से कुछ डरती है—अपनी उंगलियां जला चुकी है न।"

वासिली ने रिपोर्ट फ्रोस्या के हाथ से ले ली। एक पांव बड़े तराज़ू पर टिकाये भौंहें सिकोड़े वह उसे पढ़ रहा था। प्योत्र और फ्रोस्या बोरियों से पीठ टिकाये आमने-सामने खड़े थे। गोदाम में काम करनेवाली दूसरी लड़कियां भी प्योत्र के प्रति सहानुभूति से और फ्रोस्या से चिढ़कर झगड़े के परिणाम की प्रतीक्षा कर रही थीं।

पत्र पढ़कर वासिली ने प्योत्र की ओर देखा : "यह क्या पेत्रू! ट्रैक्टर बेकार क्यों खड़ा रहा?"

प्योत्र ज़रा भी नहीं घबड़ाया। बोला :

"यह रिपोर्ट ग़लत है।"

"क्या मतलब?"

"मेरे पास ट्रैक्टरों के कार्यक्रम और समय की सूची मौजूद है। उनके हिसाब से दूसरे खेत पर इसका काम सात बजे शुरू होता है। मैं सात बजे बीज पहुंचा देता।"

"और हम लोग समय से पहले काम समाप्त करना चाहें तो? ट्रैक्टर-ड्राइवरों को समय से पहले काम समाप्त करने का हक़ नहीं है क्या?"

"लेकिन मुझे इसकी क्या खबर।"

"खबर तुम्हें रखनी चाहिए थी।" वासिली ने कहा।

प्योत्र को विश्वास था कि वासिली उसका साथ देगा। फ़ार्म के किसानों का साथ उनका प्रधान न देगा तो कौन देगा। ट्रैक्टर ड्राइवरों से ज़रा होशियार ही रहना पड़ता था। लेकिन इस समय तो प्योत्र की ग़लती नहीं थी।

प्योत्र वासिली के व्यवहार से चकित रह गया।

"तुम्हारा मतलब क्या है, भैया?" क्रोध में वह बोला। "तुमने टेली-विजन तो मुझे दिया नहीं कि मैं मीलों दूर खेतों की हालत देख लूं।"

"तुम खुद सुबह खेत देखने क्यों नहीं गये? मैं और दूसरे टीम लीडर कैसे सुबह ही खेतों को देख आते हैं? सुबह तुम देख आये होते तो मालूम रहता कि बीजों की ज़रूरत कब पड़ेगी। बीजों को पहुंचाने का काम वक्त पर हो जाता।"

"यों तो मैं तैयारी सुबह से ही रखता हूं लेकिन करता क्या... सीडर मशीन ही टूट गई थी...उसमें भी तो वक्त लगा..."

"मैं इस दलील को नहीं मानता, प्योत्र। मुझे तो इस रिपोर्ट पर दस्त-ख़त करने पड़ेंगे।"

वासिली को पार्टी कार्यकर्ताओं की पिछली सभा में नास्त्या की चुनौती और अपना जवाब याद था। और अब वह अपनी बात से पीछे नहीं हटना चाहता था।

वासिली ने रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करके फ्रोस्या को लौटा दी। फ्रोस्या की आंखें विजय के गर्व से चमक उठीं। प्योत्र ने गुस्से से पास के बोरे में ऐसी ठोकर मारी कि गल्ला बिखरने लगा। वासिली को प्योत्र पर रहम आ गया।

"पेत्रू, इसमें मेरा क्या बस है? ट्रैक्टर को बेकार खड़ा होना पड़ा—यह तो तुम्हारी ग़लती है। जो पीछे पिछड़ जाते हैं, गलती भी उन्हीं के सिर मढ़ी जाती है।"

फ्रोस्या तौलने की मशीन के पास अकड़ कर बैठ गयी और कागज़ का एक टुकड़ा निकाल कर बड़े घमंड से उस पर कुछ लिखने लगी। लिखकर उसने कागज़ वासिली की ओर बढ़ा दिया। वासिली की भौंहें सिकुड़ गयीं।

"यह क्या है?"

"दूसरी रिपोर्ट!"

फ्रोस्या मानो किसी बात का बदला लेने पर उतर आई थी। निश्चय ही उसने कुछ बाकी न रख छोड़ने का फैसला कर लिया था।

वासिली ने उससे कागज़ ले लिया।

"निवेदन है कि कल पहली मई सामूहिक खेत के कौमसोमोल दल की घोड़ों से खींची जानेवाली सीडर मशीन शाम को चार बजे बिगड़ गयी और आधे घंटे तक काम बन्द रहा।"

वासिली ने इसे पढ़ा, फिर घूरकर फ्रोस्या की ओर देखा, लेकिन कुछ कहा नहीं। उसके माथे पर एक लाल चकत्ता उभर आया।

"लेकिन यह मशीन मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन की तो नहीं है, यह तो हमारे खेत की है। तुमको या मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन को इससे क्या मतलब?"

अब तो सीधी-सादी वेरा यासनेवा को भी गुस्सा आ गया। बोली :

"आसमान पर चढ़ गये हैं मिज़ाज इसके। अपने आपको यह समझती क्या है? जैसे पूरी मिलकियत इसी की है! अपने ट्रैक्टर को देख! हमारी मशीन की फिकर रहने दे! और हां, बहुत धौंस न जमा। जा अपना काम देख!"

"तुमने हम लोगों के साथ मिलकर काम करने के इकरारनामे पर दस्तखत किये थे या नहीं।" फ्रोस्या ने सिर ऐसे झटक कर जवाब दिया कि उसके भड़कीले रूमाल, रंगीन आंखों और भौंरेदार लटों की क्षणिक झलक से वासिली चौंधिया गया। "उसमें लिखा नहीं था कि छः नम्बर के खेत में घोड़े से चलने वाली 'सीडर' से बीज बोये जायेंगे? मैं तो कोशिश कर रही हूं कि तुम्हारे फ़ार्म से कम से कम ढाई टन फसल का बन्दोबस्त हो जाय और तुम लोग सब सत्यानाश करने पर तुले हो। मुझे तुम लोग बेवकूफ नहीं बना सकते! अपनी तिकड़में किसी और पर आजमाना!"

वासिली तौलने की मशीन पर बैठ गया और कागज़ पढ़ने लगा। उसके मन में आ रहा था कि इस बदज़बान लड़की का गला पकड़कर इसे गोदाम से बाहर ढकेल दे।

"इसको ज़रा सा मौक़ा मिला नहीं कि हर बात में अपनी टांग अड़ाती है। ज़रा-ज़रा सी बात की शिकायतें लिख भेजती है। टीम-लीडर की कौन कहे, यह तो फ़ार्म के प्रधान के पीछे भी हाथ धोकर पड़ जाती है। जूते मार कर निकाल दूंगा चुड़ैल को यहां से।"

फ्रोस्या पर उसे क्रोध आ रहा था। लेकिन यह भी उसे मन ही मन स्वीकार करना पड़ा था कि बात उसकी ठीक है। "फ्रोस्या और उसकी बकवास को ताक पर रखकर काम के हिसाब से सोचो तो ट्रैक्टर-ड्राइवर फ़ार्म के काम में ध्यान दें तो इसमें बुरा क्या है। पार्टी के दृष्टिकोण से भी देखा जाय, तो जो कागज़ मेरे हाथ में है, वह काम का साबित हो सकता है।"

वासिली कुछ देर चुपचाप तराज़ू पर बैठा रहा। उसके मन में दो भावनाओं में टक्कर हो रही थी—फ्रोस्या पर क्रोध आ रहा था, साथ ही पार्टी दृष्टिकोण से मसले पर गौर करने की इच्छा भी हो रही थी। जीत फ्रोस्या की हुई। वासिली को पिछली सभा की बातें याद हो आईं। झुंझलाकर उसने

अपनी इच्छा के विरुद्ध उस कागज़ पर पेंसिल से इतने ज़ोर से दस्तखत किये कि पेंसिल टूट गयी।

"अच्छा! तुम्हारी यह रिपोर्ट भी मान ली। ये टीम-लीडर! देखो तुम्हारे खिलाफ़ कितनी शिकायतें हैं—एक तो ट्रैक्टर बेकार खड़ा है, दूसरे कल तुम्हारी सीडर बिगड़ गयी थी।"

प्योत्र तो चुप रह गया लेकिन दूसरी लड़कियां बोल उठीं :

"हमारे टीम लीडर का इसमें क्या कसूर?"

"जानवर पर भी इतना बोझ हो तो चलते-चलते ठोकर खा जाता है।"

"हम गवाही देंगे कि पेत्रो का कोई कसूर नहीं है। वह बड़ा अच्छा टीम लीडर है। क्यों खामखा उसे डाटते हो, वास्या चाचा।"

"तुम्हारा मतलब है कि जब तक वह पूरी तरह बिगड़ न जाय तब तक मैं कुछ न कहूं?" हंसकर वासिली बोला। "मैं मानता हूं कि यह अच्छा टीम लीडर है, लेकिन ग़लतियां कर बैठता है। अच्छे आदमी से ही तो तुम अच्छे काम की आशा कर सकती हो; बुरे से तो नहीं!"

विजय के उन्माद से मुस्कराती फ्रोस्या गल्ले की गाड़ी पर जा बैठी।

दोपहर तक सब काम ठीक होता रहा। ट्रैक्टर पर चौखटे में जड़ा एक सफेद कागज़ लगा था जिसमें घंटेवार काम की योजना की नकल थी। इसमें सभी आवश्यक बातें थीं : ट्रैक्टर को कहां से कहां तक जुताई करनी है, चाल कितनी रहनी चाहिए, तेल किस स्थान से लिया जायेगा और बीज कहां से मिलेंगे।

खेत में स्थान-स्थान पर बीज के गल्ले की बोरियां रखी हुई थीं। दोनों ओर दो बड़े-बड़े पीपों में पानी भरा रखा था। ट्रैक्टर के चलने के लिए ऐसा रास्ता बनाया गया था कि कोने कहीं मुश्किल से ही पड़ें। बीज बोने की दोनों मशीनें पूरी रफ्तार से काम कर रही थीं और आधे खेत में बीज डाला जा चुका था। क्यारियां इतनी सीधी और साफ-सुथरी बनी थीं, मानो धरती पर कंघी की गयी हो। फ्रोस्या बार-बार अपनी घड़ी देखती जा रही थी कि घंटों के हिसाब से काम हो रहा है या नहीं! काम की रफ्तार बिलकुल ठीक थी। उसकी नयी घड़ी धूप में खूब चमक रही थी और फ्रोस्या का मन उमंग से भरा हुआ था।

"आज भी समय से पहले ही काम पूरा कर लूंगी।" फ्रोस्या सोच रही थी। "प्रोखारचेन्को ने कहा था, 'अगर तुमने इस बूढ़े ट्रैक्टर से अच्छा काम करके दिखा दिया तो एक सप्ताह बाद तुम्हें नया ट्रैक्टर मिल जायगा।'

शीघ्र ही मिलने वाली प्रशंसा से विभोर उसकी कल्पना उड़ानें भर रही थी। "लोग कहेंगे : 'यह लड़की सबसे बाज़ी मार ले जाती है। स्टेशन में सबसे छोटी है पर किसी भी स्ताखनोवी से कम नहीं है।' कहेंगे : 'न तो इसका ट्रैक्टर बिगड़ता है, न बेकार खड़ा रहता है। जोताई का काम हो या बोवाई का, गीत गाने का काम हो या नाचने का, सभी बातों में यह लड़की आगे रहती है। यहां का सबसे अच्छा ट्रैक्टर इसी को मिलना चाहिए।'" फिर वह मस्तीभरे गानों की कड़ियां गुनगुनाने लगी। उसकी आवाज़ से कौवे इधर-उधर उड़ चले। फिर सोचने लगी कि कोनों पर रफ्तार धीमी न करने से कितना समय बच जाता होगा।

"बहुत घूमदार कोनों पर मैं बीस सेकेंड बचा सकती हूं। अगर अपनी पाली में मैं पचास चक्कर लगाऊं तो तीन हज़ार सेकेंड बच जायंगे। तीन हज़ार सेकेंड एक घंटे के बराबर हो गये। इस तरह तो एक घंटे पहले ही काम पूरा कर डालूंगी।"

फ्रोस्या के काम की चुस्ती और फुर्ती को देखकर ल्योनेच्का और वेरा हैरान रह गयी थीं। गल्ला गोदाम में फ्रोस्या ने जो झगड़ा खड़ा कर दिया था और ट्रैक्टर तथा सीडर मशीन के सम्बंध में जो रिपोर्टें लिख मारी थीं उनके लिए वेरा अब उसे क्षमा करने को तैयार थी। "फ्रोस्या जैसी ज़बान में तेज़ है, वैसी काम में भी। देखते-देखते आधा खेत बो डाला है।"

सहसा ट्रैक्टर के इंजन के बंधे हुए स्वर में खड़खड़ाहट सुनाई देने लगी। फक-फक करता इंजन धीमा पड़ने लगा।

"चलता नहीं! मालूम होता है गरारी अड़ रही है।" फ्रोस्या ने आत्म-विश्वास से अपनी सहायकों की ओर देखकर कहा। "अभी एक मिनट में ठीक किये लेती हूं। ज़्यादा देर नहीं खड़ा रहेगा।"

और सचमुच ट्रैक्टर चल निकला। लेकिन पन्द्रह मिनिट बाद वह फिर खड़ा हो गया।

फ्रोस्या कूदकर ज़मीन पर आ गयी।

"अभी दौड़ाती हूं इस बूढ़े को," मज़ाकिया लहज़े में उसने कहा, "तुम लोग देखती रहो।"

फ्रोस्या ने ट्रैक्टर को दायें से देखा, बायें से देखा, उसके ऊपर चढ़ी, नीचे झांका, लेकिन मशीन टस से मस नहीं हुई।

"एम्बुलेंस गाड़ी को बुलवा लो न," वेरा ने राय दी।

"और कुछ?" फ्रोस्या बोली। "मैं खुद ठीक कर लूंगी।"

फ्रोस्या किस मुंह से मरम्मत वाली गाड़ी को बुलवाती। अभी पिछली

सांझ ही तो उसने ट्रैक्टर-ड्राइवरों और मरम्मत करने वालों के सामने बड़े गर्व से कहा था :

"ट्रैक्टर ड्राइवरों को अक्ल हो तो मरम्मत की गाड़ी बुलवाने की ज़रूरत क्या ? मशीन की बाबत उन्हें खुद मालूम होता है। मैंने तो एम्बुलेंस गाड़ी को कभी बुलाया नहीं, न कभी बुलाऊंगी।"

"इतनी बढ़-बढ़ के बातें मत करो," दफ्तरी विक्टर ने कहा था।

"तुम देख लेना, मैं कभी नहीं बुलाऊंगी।"

"अरी, इतरा न बहुत ! उसके बिना काम नहीं चलने का !" ट्रैक्टर-ड्राइवर उसे चिढ़ाने लगे थे।

"चलेगा।"

"देखेंगे।"

"शर्त बदते हो ?"

"अरी चल ! तेरे जैसे बहुतों को देखा है !"

"देखा है ? तो एक दफा और देखो !"

दुर्भाग्य से ये बातें पिछली सांझ ही हुई थीं। फ्रोस्या जानती थी कि ट्रैक्टर-ड्राइवर बड़े उद्दंड होते हैं। वे घमंडी और तेज़-तर्रार फ्रोस्या का मज़ाक बनाये बिना नहीं मानेंगे। वह मरम्मत की गाड़ी बुलाने से पहले ट्रैक्टर के नीचे कुचलकर जान दे देना बेहतर समझती थी।

"ऐसे में नास्त्या ही मदद कर सकती है !" फ्रोस्या ने सोचा। "नास्त्या —दूसरा कोई चारा नहीं।" लेकिन नास्त्या ने पिछली रात एक बीमार ट्रैक्टर-ड्राइवर की पाली पर काम किया था। सुबह यह देखकर कि सब काम ठीक-ठाक चल रहा है वह सोने के लिए चली गयी थी। गांव खेत से पांच किलोमीटर दूर था।

"वेरा ! ओ ल्योनेच्का ! जितनी तेज़ी से दौड़ सकती हो दौड़कर नास्त्या के यहां पहुंचो।"

दोपहर के समय सीडर मशीन में घोड़ी जोतकर प्योत्र खेत की ओर जा रहा था। सोचा, ज़रा देखते चलें कि ट्रैक्टर से बोवाई कैसी चल रही है। उसकी अपनी पत्नी उसकी पहचान में नहीं आ रही थी। चेहरे, बाहों और कपड़ों में मशीन की ढेरों कालिख, मिट्टी का तेल और चिकनाई पोते वह मौन खड़े ट्रैक्टर के पास दुखी, एकाकी और असहाय सी बैठी थी। उसका भड़कीला रूमाल, जिसे वह सिर पर कलगी की तरह बांधे रहती थी, खुलकर गले में लटक आया था। बालों कि लटें पसीने और चिकनाई से माथे पर चिपक गयी थीं—वैसे फ्रोस्या के बालों में सीधे खड़े रहने का अद्‌भुत गुण था। मौन खड़े

ट्रैक्टर और उसकी बगल में बैठी उदास और एकाकी फ्रोस्या को छोड़ खेत एकदम वीरान था !

प्योत्र को आते देख फ्रोस्या ने मुंह फेर लिया। सुबह ही ट्रैक्टर दस मिनट बेकार खड़े रहने पर उसने प्योत्र की रिपोर्ट लिख डाली थी और अब वह खुद आधे घंटे से बेकार बैठी थी। वह सोच रही थी कि यदि प्योत्र की जगह वह होती तो क्या-क्या खरी-खोटी न सुनाती ! जितना ही वह यह बात सोचती उसका सिर झुकता जाता और दिल मसोसता। पर प्योत्र ने न तो माथे पर त्योरियां चढ़ाईं, न उसे भला-बुरा कहा।

"क्या बात हो गयी है ?" उसने पूछा।

प्योत्र की सहानुभूति फ्रोस्या को और भी काटती जान पड़ी।

फ्रोस्या ने कालिख पुते माथे से लटों को हटाते हुए ट्रैक्टर की ओर इशारा किया और कहा :

"चलता जाता है, चलता जाता है, रुक जाता है... चलता जाता है, चलता जाता है, रुक जाता है..." उसकी आवाज भर्राई हुई थी।

"एम्बुलेंस गाड़ी बुलाई थी ?"

"एम्बुलेंस और किसी टीम के काम से गयी है," फ्रोस्या झूठ बोलने में ज़रा नहीं हिचकिचाई। "मैंने ल्योनेच्का और वेरा को भेजा है नास्त्या को बुलाने। लेकिन उनके आते-आते बड़ी देर..." बाकी बात सिसकियों में खो गयी।

"ओरे अलेक !" प्योत्र ने हांक दी। "सीडर में से घोड़ा खोल और भागता हुआ नास्त्या के पास जा। उससे कहना कि ट्रैक्टर बिगड़ गया है, मरम्मत की गाड़ी आई नहीं है। कहना घोड़े पर बैठकर सीधी खेत चली आये।"

फ्रोस्या ने डबडबायी आंखें ऊपर उठाईं :

"फिर सीडर का क्या होगा, पेत्रुन्का ?"

"ट्रैक्टर के घंटे भर बेकार खड़े रहने से सीडर का बीस मिनट बेकार खड़े रहना अच्छा है। लेकिन तू अपनी नाक पोंछ और यह पानी का कारखाना बन्द कर। जरा पता लगाने की कोशिश कर कि इंजन में क्या गड़बड़ी है। जरा धीरज से, आहिस्ता-आहिस्ता देख।"

प्योत्र ने तिरपाल नीचे बिछा दिया। फ्रोस्या ने दबी चुहिया की तरह उसके हुक्म को मानते हुए ट्रैक्टर की जांच-पड़ताल शुरू कर दी। ट्रैक्टर के पेट में छिपी पीतल और तांबे की सैकड़ों नलियों और कांसे तथा तांबे के चमकते पुर्जों को प्योत्र आंखें फाड़े देख रहा था। तमाम छोटी-बड़ी नलियां और तार खूब साफ-सुथरे और एक-दूसरे से खूबसूरती से जोड़े और बैठाये गये थे।

इनको सदा चमकीला रखने की कला फ्रोस्या ने दफ्तरी विक्टर से सीखी थी। उसने बताया था कि जहाज़ के हिस्से भी हमेशा इसी तरह साफ़-सुथरे रखे जाते हैं।

"कितना सुन्दर है!" प्योत्र के मुंह से निकल पड़ा।

इसी सुन्दर वस्तु को, जिस पर फ्रोस्या ने सुबह-सुबह इतने गर्व और घमंड से बातें की थीं, इस अवस्था में खड़े देख कर उसकी दशा विक्षिप्तों जैसी हो रही थी। उसके तमाम प्रयत्न, उसकी आशाएं और उमंगें व्यर्थ साबित हुई थीं। टप-टप करते उसके आंसू तांबे और कांसे के पुर्जों पर चू रहे थे।

"अब क्या इनमें तेल दे रही है?" प्योत्र ने मज़ाक किया। "रोने से क्या होगा पगली? अच्छे से अच्छे ड्राइवरों से भी ट्रैक्टर बिगड़ जाता है।"

नास्त्या आ पहुंची।

उसने बताया: "'पिस्टन' के छल्ले घिस गये हैं। जब इंजन धीमा होता है तो पुर्जों पर तेल आने लगता है। अभी ठीक हो जायगा!"

फ्रोस्या का दुर्भाग्य तो देखो कि दोपहर के समय जब किसान खाना खाने के लिए जमा हो रहे थे तभी लेना आ पहुंची। लेना प्रचार का काम करती थी। उसके हाथ में मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन का एक पर्चा भी था। फ्रोस्या को इस पर्चे से भय नहीं था। उसकी गिनती अच्छा काम करने वालों में थी और आज की दुर्घटना की खबर अभी स्टेशन तक पहुंच पाने की कोई सम्भावना न थी। लेकिन लेना ने जब पर्चा पढ़कर सुनाना शुरू किया कि 'ट्रैक्टर-ड्राइवरों ने एक 'सीडर' मशीन और एक गोड़ाई की मशीन किसानों के लिए किस तरह ठीक की' तो फ्रोस्या शर्म से गड़ गयी। उसे डर था कि वेरा और प्योत्र तथा अन्य किसान लेख सुनने के बाद उसे डाटना शुरू करेंगे कि कुछ ट्रैक्टर-ड्राइवर तो ऐसे थे जो किसानों की 'सीडर' टूट जाने पर चुपके से मरम्मत कर देते थे और वह ऐसी थी कि सीडर टूटने पर शिकायत और शोर-शराबा करने के सिवा और कुछ न करती थी। लेकिन न तो किसान कुछ बोले और न वेरा। बोली नास्त्या:

"हमारे यहां बड़ी गलती हुई है। कुछ ऐसे होते हैं जो मदद देते हैं; और हम लोग ऐसे हैं कि रिपोर्टें करके रोब जमाना चाहते हैं। बड़ी भारी गलती है। हम अपने को आगे बढ़ा कार्यकर्ता समझते हैं, तो यहां भी हमें अगुवाई दिखानी चाहिए न!"

उस दिन शाम तक और कोई दुर्घटना नहीं हुई।

दिन का काम समाप्त कर शाम को फ्रोस्या घर लौटी और पनीर के पकौड़े बनाये। प्योत्र के सामने पकौड़ों का अम्बार लगाती हुई बोली:

"खा न, पेत्रुन्का! और खा! दिन-दिन सूखता जा रहा है! बड़ी मेहनत का काम है तेरा! ट्रैक्टर-ड्राइवर का काम तो उसके सामने कुछ भी नहीं।"

इस समय वह विशेष प्रसन्नता की मुद्रा में दिखाई दे रही थी।

प्योत्र खाना खा कर चुपचाप खाट पर जा लेटा। फ्रोस्या कोठरी में कभी इधर जाती, कभी उधर और प्योत्र के उनींदे चेहरे को बार-बार झांक कर देखती।

प्योत्र अधमुंदी आंखों से चुपचाप फ्रोस्या की हरकतें देख रहा था। दो वाक्य तो आज-कल जैसे उसके तकियाकलाम हो गये थे "और कुछ?" तथा "क्या कहने हैं!"

"दूसरी औरतें अपने मर्दों को लाड़-दुलार दिखाती हैं," उसने कहा था, "लेकिन तू बस नागिन की तरह फुंकारा करती है!"

किन्तु उस सांझ फ्रोस्या के मुंह से एक बार भी 'और कुछ' न निकला था।

"तेरे होश ठिकाने किये बिना न मानूंगा," प्योत्र अधमुंदी आंखें किये झुंझलाहट, उपहास और दुलार से सोच रहा था, "तुझे इन्सान बनाकर छोड़ूंगा।"

"फ्रोस्या," नींद से भर्राई आवाज़ में वह बोला, "तुझे बताना भूल गया था—उग्रेन में एक दुकान पर नयी बाइसिकिलें आई हैं। साइकिल लेने की तबियत हो तो एक खरीद ले।"

इस सीधी सी बात का एक-एक शब्द सोच-समझ कर कहा गया था और उसके पीछे एक डंक था।

बाइसिकिल के प्रश्न पर हफ्ते भर से दोनों में झगड़ा चल रहा था। प्योत्र चाहता था कि कुछ और पैसा बचाकर मोटर साइकल खरीदी जाय; लेकिन फ्रोस्या के पैरों में साइकिल चलाने की खुजली उठी हुई थी। प्योत्र ने फ्रोस्या से सुलझने का नया ढंग निश्चित कर लिया और उसी योजना के अनुसार उसने यह बात कही थी। उसका अनुमान था कि कुछ ही दिनों में केवल अपनी भलमनसाहत के सहारे वह फ्रोस्या को कायल कर लेगा।

"तू खरीद ले साइकिल। मुझे एतराज़ नहीं है।" वह बोला। "इसी इतवार को उग्रेन चली जा। अपनी पसंद की चुन ले।"

फ्रोस्या भी प्योत्र की खाटपर आ गयी और उसके गले में बाहें डालती हुई बड़े दुलार से उसके कान में बोली:

"भाड़ में जाय बाइसिकिल! तुझे अच्छी नहीं लगती तो मुझे क्या करना है। अभी रहने दे, पतझड़ आने तक मोटर-साइकिल खरीद लेंगे। सुन, उस दिन बाज़ार से जो कपड़ा लायी थी, वह भी बहुत ज्यादा है। मेरे पास तो ढेरों कपड़े हैं। इस दफे तू एक सूट बनवा ले—नये फैसन का! उभरे हुए कंधों

का कोट और चौड़ी मोहरी वाला पतलून। और...क्या नाम···वह जो घड़ी खरीदी थी मैंने, वह भी तू ले ले। तू टीम-लीडर है न। तुझे घंटेवार काम का हिसाब देखना होता है! मेरी तरफ़ से भेंट समझ ले।"

फ्रोस्या बड़ी निस्वार्थ और उदार थी, किसी को कुछ देना शुरू किया नहीं कि दोनों हाथों से लुटाने लगती थी।

"कौन कह सकता है—कहो हज़ारों में एक निकले," प्योत्र मन ही मन कह रहा था। "सच पूछो तो दिल की बुरी नहीं है। बड़ी खुशमिज़ाज लड़की है। जितनी लड़कियों को मैं जानता हूं, सबसे अच्छी है। बस, कभी-कभी पागलपन सवार हो जाता है। इस पर लगाम लगा पाऊंगा कि नहीं? लगा लूं शायद। लेकिन इसके लिए ज़रूरी है कि मुझ में दोनों के लिए समझदारी हो। बड़ी हो जायगी और बच्चे होने लगेंगे तो गृहस्थी का काम बड़ी होशियारी से चलायेगी।"

उस रात दोनों बहुत देर तक नहीं सोये। बारह के घंटे टन-टन बोले तो फ्रोस्या ने तकिये से सिर उठाया और बोली:

"देख पेत्रुन्का, खिड़की के बाहर देख! हमारा ट्रैक्टर दिखाई दे रहा है।"

प्योत्र ने खिड़की से बाहर देखा। दूर एक रोशनी अंधेरे को चीरती हुई आगे बढ़ रही थी।

"अरे यह तो जोताई कर रहा है!" फ्रोस्या किलक कर खाट से कूदी और खिड़की के पास जा पहुंची। "सच, पेत्रुन्का! आज वास्या, वाल्या और येफिमकिन खेत पर आये थे। नास्त्या ने येफिमकिन को डांटा और कहा कि उसके छोटे-छोटे, टेढ़े-मेढ़े खेतों से वह परेशान हो जाती है। येफिमकिन ने कहा: 'हमें भला-बुरा कहने से क्या फायदा? हमारे खेतों को अपने फ़ार्म में मिला लो।' वासिली बोले: 'अच्छी बात है। खेत से खेत मिला लो और चरागाह से चरागाह।' सच, पेत्रुन्का अगर सब देहाती सोवियत अपना एक फ़ार्म बना लें तो मज़ा आ जाय। खूब बड़ा फ़ार्म बन जाय! क्लब के लिए पक्का मकान बन जाय, जिसमें एक नाच का हॉल हो और एक छोटा-सा रेडियो स्टेशन भी बन जाय—जैसा शहरों में होता है। तब तो ट्रैक्टर-ड्राइवरों को मज़ा आ जाय। बेरोक अपने ट्रैक्टर दौड़ाते चले जायें।"

फ्रोस्या खिड़की के पास खड़ी फ़ार्म के उज्वल भविष्य के सपने बुन रही थी और ट्रैक्टर की तेज़ रोशनी अंधकार को चीरती हुई चौकोर खिड़की में घुसी आ रही थी।

६. पूरी रफ्तार में

बसंत आते ही अवदोत्या पशु-विभाग में काम करने वालों को साथ लेकर अल्योशा के टीले पर चली गयी। वहां पहले से सब तैयारी कर ली गयी थी। पशु और आदमी खुले आकाश के नीचे तम्बुओं में जीवन बिताने के आदी बन गये थे। पर अवदोत्या को अभी तक आराम का मौक़ा न मिला था। बहुत सी शक्ति और समय तो चारे और रातिब का ही प्रबंध करने में लग जाता। कभी-कभी हरे चारे की फ़िक्र में चारा इकट्ठा करने वाले दलों के साथ अवदोत्या दिन-दिन खेतों, चट्टानों और दलदलों में चक्कर लगाती फिरती।

वासिली भी चारे के प्रबंध पर काफी ध्यान दे रहा था। अक्सर मजाक़ में वह कहता:

"लोगों के पेट रोटी से तो गले तक भर गये। अब दूध, मक्खन और अंडे-मुर्गी चाहिए।"

अवदोत्या पिछली बार शहर गयी थी तो कुछ टर्की-मुर्गियां ले आई थी। विचार था कि फ़ार्म में पालेगी। लम्बी-लम्बी टांगों और गंजी गर्दन वाली बदशकल चिड़ियों ने फ़ार्म में अजीब खलबली पैदा कर दी थी।

वासिली को पशुओं और मुर्गियों की ओर ध्यान देते देख वसेनोफोन्तोवना ने नया अर्थ लगाया:

"वासिली को अवदोत्या ने पैर की खड़ाऊं बना लिया है, खड़ाऊं। जो कहती है, पत्थर की लकीर हो जाता है। बोली—चिड़ियों को खेतों में पहुंचाने को पहियेदार दरबे चाहिए! लो, बन गये पहियेदार दरबे। उसके दिमाग में आया—बछड़ों के लिए काठ के पलंग चाहिए। लो, बन गये काठ के पलंग। उसके हर इशारे पर नाचता है! कोई जवान छोकरा भी क्या किसी छोकरी पर ऐसा दीवाना होगा।"

वसेनोफोन्तोवना की इस बकवास का किसी पर ज्यादा असर नहीं हुआ। उसकी विश्वासपात्र स्तेपनिदा ने भी उसे डांटा:

"बकबक बन्द कर! वह दीवाना है काम के पीछे, अवदोत्या के पीछे नहीं।"

अवदोत्या अल्योशा के टीले पर चली गयी तो स्तेपनिदा को और भी सूना-सूना लगने लगा। बूढ़े कुज़मा की मृत्यु के बाद से बेचारी का जीवन और भी सूना हो गया था। पिछले जाड़ों में फिनोगेन लकड़ी-चिराई के किसी दूर के अड्डे पर मैनेजर की जगह मिल जाने के कारण अपनी पत्नी को लेकर चला गया था। फ्रोस्या भी सास की धौंस और हुकूमत सहने को तैयार नहीं थी।

उसने वहां रहने से इनकार किया तो प्योत्र भी वहां से चला आया। इतने बड़े, सजे-सजाये और आरामदेह घर में स्तेपनिदा बेचारी अकेली रह गयी। बेटे और बहुएं उसका आदर-मान तो करते थे, लेकिन सब अपना स्वतंत्र जीवन बिताते थे। बुढ़ापा ऐसा होगा यह स्तेपनिदा ने कभी सोचा भी न था। वह तो यही सोचती थी कि बुढ़ापे में बेटों और पोतों से भरे-पूरे अपने घर में राज करेगी। सब उसके इशारों पर नाचेंगे और घर की पूंजी में भी जमा-जथा जोड़ेंगे; अपनी समृद्धि के लिए उसी को श्रेय देते हुए उसका मान-आदर करेंगे। खूब बड़ा मकान, लम्बा-चौड़ा खान्दान, खूब रुपया-पैसा, दुनियादारी में होशियार, घर में सबसे सम्मानित, अपने बेटों और पोतों की भाग्य-विधाता—यही स्तेपनिदा का अपने बुढ़ापे का चित्र था।

किन्तु, हुआ उल्टा ही।

बूढ़े कुज़मा की मौत के बाद स्तेपनिदा के बेटे और भी दूर-दूर होते गये। स्तेपनिदा को इस बात पर बड़ा ताज्जुब था कि उसके बेटे और बहुएं भरे-पूरे और समृद्ध घर को छोड़कर वासिलिसा की नन्हीं सी झोंपड़ी में रहना पसन्द करते हैं।

परिवार में फिर से आदर पाने और घर के लोगों को आकर्षित करने के लिए स्तेपनिदा ने बहुओं-बेटों को बुला-बुलाकर जायदाद के बंटवारे का लालच देना शुरू किया। अवदोत्या और फ्रोस्या को बुलाकर बड़े-बड़े सन्दूक खोलकर उन्हें दिखाती हुई वह कहती:

"बहू अवदोत्या! यह लिनन का कपड़ा मैंने तेरे लिए रख छोड़ा था। यह फर का कोट फ्रोस्या के बदन पर बड़ा अच्छा सजेगा। इसमें 'स्कंक' का कालर भी लगा है।"

दोनों बहुएं एक-दूसरे को देखकर मुस्करा देतीं और कुछ और बातें करने लगतीं—जैसे सास की विरासत से उन्हें कोई मतलब न हो।

स्तेपनिदा ने जब देखा कि इतने परिश्रम से बटोरे माल-असबाब का बहुओं की नज़रों में कुछ भी मोल नहीं, तो पोतियों से बातें करके दिल हल्का करने लगी। अपनी लाड़ली दुन्या से वह कहती:

"तू बड़ी हो जायगी और तेरा ब्याह होगा दुन्या, तो मैं तुझे कपड़ों की यह आलमारी दे दूंगी। और यह कपड़ा देख। यह भी तुझे दे दूंगी। इसका जाड़ों में कोट बनवा लेना। मैं मर जाऊंगी तो सब कुछ तेरा हो जायगा, दुन्या।"

दुन्या पर न तो आलमारी का और न कपड़ों का कोई रौब पड़ता। स्तेपनिदा की बातें सुनती-सुनती वह ऊब जाती और छटपटाने लगती कि कब मौका पाकर भाग निकले और दादी वासिलिसा के घर जाकर मेमनों से खेले।

एक दिन वासिली के घर बहुत से लोग खाना खाने आये हुए थे। वालेंतिना और स्तेपनिदा भी वहीं थीं। फ़ार्म के सम्बंध में बातचीत हो रही थी। अचानक ही, बिना किसी सिर-पैर के, दुन्या ने मेज़ के दूसरे छोर पर बैठी लेना को पुकार कर पूछा:

"लेना मौसी! तुम मरोगी तो दांत मांजने वाला बुरुश मेरे लिए छोड़ जाओगी?"

लेना का प्लास्टिक का नीली डंडी वाला बुरुश दुन्या को बहुत अच्छा लगता था।

दुन्या की बेढंगी बात सुनकर पहले तो विस्मय से सब चुप रह गये। फिर ठहाका मारकर हंस पड़े। लेना बोली:

"मेरे मरने के दिन क्यों गिनती है, दुन्या? ज़िन्दा ही मैं तुझे अपना बुरुश दे दूंगी।"

दूसरों की मौत मनाने के अपराध में अवदोत्या ने तो दुन्या को चांटा रसीद किया। लेकिन वासिली ने त्योरियां चढ़ाकर स्तेपनिदा की ओर देखा:

"मां! तुम्हीं ने ये बातें इसके दिमाग में भरी हैं।"

स्तेपनिदा ने जब देखा कि ज़िन्दगी भर की मेहनत के बाद उसने जो सम्पदा जुटाई थी उसका मूल्य किसी की नज़रों में कुछ नहीं है और दुन्या भी उसके तमाम भड़कीले साज-सामान के बजाय दांत मांजने का बुरुश ही पसन्द करती है तो उसका दिल बैठ गया। उसे ज़िन्दगी बीरान मालूम होने लगी। अपने सुन्दर घर, फलों से लदे बागीचे और तरकारी की बारी से उसका जी उबिठ गया। कभी वह सांझ को वासिली के यहां चली जाती और कभी प्योत्र के यहां। दोनों जगह फ़ार्म के बारे में ही चर्चा होती रहती। लेकिन बुढ़िया को इन सब बातों से कोई दिलचस्पी न थी। बस, बैठी-बैठी लोगों के मुंह ताका करती।

एक और ऐसी ही घटना घटी जो ऊपर से देखने में तो बहुत महत्वपूर्ण नहीं थी, लेकिन जिसने उसके दिमाग पर गहरा असर डाला और उसे परेशान कर दिया।

फ़ार्म के बाग की तरकारियां बाज़ार भेजनी थीं। वासिली ने सोचा यह काम मां से अच्छा और कौन कर सकता है। बोला:

"अम्मा, फ़ार्म की कुछ तरकारियां लेकर तुम्हें उग्रेन के बाज़ार जाना होगा!"

स्तेपनिदा राजी हो गयी।

दूसरे किसानों ने सुना कि स्तेपनिदा फ़ार्म की तरकारियां लेकर उग्रेन जा रही है तो अपनी-अपनी कछियारी से तरकारी लाकर देने लगे कि इन्हें भी उग्रेन में बेच आये।

फ्रोस्या भी एक छोटे कनस्तर में पनीर ले आई। बोली:

"अम्मा हमारी तबियत ठीक नहीं है। पड़ा-पड़ा यह खराब हो जायगा। तुम जा रही हो, इसे भी लेती जाओ। मैं बाज़ार नहीं जा सकती।"

फ्रोस्या जब से ट्रैक्टर-ड्राइवर बन गयी थी बाज़ार में जाकर दही-पनीर बेचना अपनी शान के खिलाफ समझती थी।

स्तेपनिदा खुशी-खुशी तैयार हो गयी। "फ़ार्म का समान बाज़ार ले ही जा रही हूं। चलो, कुछ अपना भी धन्धा हो जायगा..." उसने सोचा।

दूसरे दिन तड़के लारी में तरकारियां लद गयीं। स्तेपनिदा भी गाड़ी में जा बैठी। वासिली ने आकर एक बंडल बुढ़िया के हाथों में दिया और बोला:

"अम्मा! ये दूकान पर पहनने के कपड़े हैं।"

स्तेपनिदा ने देखा कि बंडल में एक सफेद एप्रन, बाहों पर चढ़ाने के लिए खुली सफेद आस्तीनें, कुछ रूमाल और छोटे-छोटे अगौछे थे। पल भर तो वह इसी कल्पना में डूबी रह गयी कि बाज़ार में इन कपड़ों में वह कैसी लगेगी फिर कुछ सोचकर बंडल अपनी डलिया के हवाले किया और अस्पष्ट-सा उत्तर दिया:

"अच्छा, अच्छा! ठीक है.."

उसे ये कपड़े फिजूल मालूम होते थे, बहुरूपियों जैसे। फिर भी कोई हर्ज नहीं था।

वासिली ने अब स्तेपनिदा को काठ की एक पटिया दी जिस पर मोटे अक्षरों में लिखा था: "पहली मई फ़ार्म की दूकान" और नीचे सब चीजों का भाव लिखा था। स्तेपनिदा की आंखों के आगे चिनगारियां नाचने लगीं।

"यह क्या है?"

"फ़ार्म कमिटी ने सब चीजों के दाम तै कर दिये हैं, अम्मा! न तो मोल-भाव करने की ज़रूरत पड़ेगी, न किसी तरह की गड़बड़ी होने पायेगी। हम लोग मुनाफ़ाखोर तो हैं नहीं! यह तो फ़ार्म का व्यापार है!"

मोल-भाव नहीं! तब स्तेपनिदा के जाने की क्या ज़रूरत? दुकनदारी का मज़ा ही क्या रह गया! बिना मोल-तोल, बिना डांडी मारे, बिना खरीददारों से गरमागरम बहस, बिना यह देखे कि हाथ में कुछ आता है या नहीं— दुकनदारी में रखा ही क्या था?

बाज़ार में क्या कोई हाथ पर हाथ रखे बैठने जाता है? स्तेपनिदा ऐसी

बन गयी जैसे पटिया को देखा ही नहीं। झटपट उसे आंखों से दूर, बोरों के पीछे-फेंक दिया।

वासिली मां का स्वभाव जानता था। स्तेपनिदा के मन की बात भी भांप गया। उसने पटिया को बोरों के पीछे से निकाला और मां के हाथ में थमाता हुआ समझाकर बोला :

"खोने न पाये, अम्मा! सब चीज़ों का भाव लिखा है इसमें। किसी चीज में ज्यादा पैसे न लगाना। फ़ार्म की कमिटी का हुकुम है।"

"रुपये में आने दो आने भी नहीं बना सकती?" स्तेपनिदा ने झुंझलाकर पूछा।

"पैसा भी नहीं! सुना अम्मा? मोल-भाव बिलकुल नहीं!"

"और किसानों की अपनी चीज़ों पर?"

"जो माल फ़ार्म की दूकान पर बिकेगा, हमारे दामों बिकेगा; नहीं तो अपना माल अलग बेच लें।"

स्तेपनिदा मन ही मन कुढ़ रही थी कि कैसे मनहूस चक्कर में फंस गयी है। पर अब हाथ खींचने का मौका भी नहीं था—लारी चल पड़ी थी। मन मारकर वह चुपचाप तरकारी के बोरों के बीच बैठ गयी। उसके अगल-बगल 'चटनी' के गाजर, बढ़िया प्याज और दूसरी चीजें रखी हुई थीं। अभी घंटे भर पहले उसने सोच-समझकर तय किया था कि किस पर कितने पैसे ज्यादा बनायेगी! उनका नाम और रंग ही क्या गुल खिलायेगा!

लेकिन स्तेपनिदा को अब न तो उनके नाम से दिलचस्पी रह गयी थी, न रूप-रंग से। गाजरों का नाम 'मिट्ठुआ' हो तो क्या, प्याज का 'गुलाब जामुन' तो क्या! क्या फरक पड़ता था? सबके दाम काठ पर लिखे थे। एक भी पैसा ऊपर नहीं कमाया जा सकता था। स्तेपनिदा को लग रहा था कि बिक्री तो ख़ैर होगी नहीं, लोगों की बातें न जाने क्या-क्या सुननी पड़ें। "यह भी कोई व्योपार है? यह भी कोई दुकनदारी है? भगवान जाने यह सब क्या है! मैं वहां जाकर क्या करूंगी?"

लेकिन बाज़ार पहुंच कर जो अनुभव हुआ वह कल्पना के विपरीत था।

बाज़ार में स्तेपनिदा ने जब फ़ार्म के नाम का साइनबोर्ड दूकान पर लगाया और सफेद एप्रन पहन कर, बाहें चढ़ाकर खड़ी हुई तो कुछ और ही देखने में आया। कभी उसने अपनी दूकान पर इतनी भीड़ नहीं देखी थी।

लोग कहते, "जिस तिस से कौन मोल करता फिरे यार, अब तो फ़ार्म की दूकान से सीधे ले लो," और उसके पास चले आते।

अब बहस और झगड़े की गुंजाइश ही न थी। पहले कोई पनीर बेचने के लिए लाता तो ग्राहक कहते :

"ले आई है दही में मैदा मल कर और दाम चाहती है खरे !"

और वह उलटकर उत्तर देती :

"मैदा नहीं... मला है तेरी दादी का सिर !"

बाज़ार में पहले जैसा ही भीड़-भक्कड़ और शोर-गुल था।

"बढ़िया काली किशमिश ! लो किशमिश... उक्रेन के अंगूर ! ले लो बढ़िया अंगूर।"

"खुम्बे खाओ खुम्बे ! मसालेदार खुम्बे ! आओ ! खुम्बे खाओ, ऊपर से परौठे और वोदका चढ़ाओ !"

"पनीर लो पनीर ! ताज़ी पनीर।"

स्तेपनिदा आवाज़ें लगाने वालों की ओर उपेक्षा से देख रही थी। उसे न हांक लगाने की ज़रूरत थी, न गोहार। जो आता बहुत भलमनसाहत से बातें करता। सौदा लेकर जाते समय लोग 'शुक्रिया' कहते, और स्तेपनिदा से ऐसे विदा लेते मानो उससे बहुत पुराना परिचय हो। दो-चार बार बाज़ार हो आने के बाद स्तेपनिदा को बंधे ग्राहक मिलने लगे।

एक मुलाकात का स्तेपनिदा पर खास असर पड़ा।

एक दिन तरकारी-मंडी के दरवाज़े से नीले रंग की एक *पोबेदा* मोटर अन्दर आकर रुकी। मोटर में से उतरा उगारोव जिसका फ़ार्म इलाके भर में मशहूर था। भीड़ में उसका सिर सबसे ऊंचा दिखाई दे रहा था। बड़े आहिस्ते-आहिस्ते और आराम से भीड़ को चीरता हुआ वह आगे बढ़ रहा था।

उगारोव की तेज़ नज़र सब चीज़ों को जांच-परख रही थी। अपने फ़ार्म की दूकान की तरफ़ जाते समय सहसा स्तेपनिदा की खूब सजी दूकान पर नज़र पड़ते ही वह ठिठक गया। वह इसी दूकान की ओर बढ़ चला।

और किसी आदमी का स्तेपनिदा इतना आदर नहीं करती थी जितना उगारोव का। कितने ही वर्षों से वह उगारोव को उन्नति के मार्ग पर बढ़ते बड़ी उत्सुकता और ईर्षा से देख रही थी ! यों तो उसकी नज़रों में कुज़मा से बढ़कर ज़िले में दूसरा भला आदमी था नहीं, लेकिन उगारोव की योग्यता और बड़प्पन की बातें सोचने पर उसे सर्व-सम्मानित कुज़मा भी फीका लगने लगता था। उगारोव का रोब, उसकी प्रतिष्ठा, लोगों पर उसके असर, व्यापार-कुशलता, उसके लंब-तड़ंग डील-डौल, शांत किन्तु गंभीर आवाज़, खूबसूरत *पोबेदा* गाड़ी—स्तेपनिदा के आदर्शों का मूर्तरूप थे। जवानी में, कभी क्लब, मेले या जलसे में उगारोव से सामना हो जाता तो स्तेपनिदा के गले का स्वर बदल-सा जाता। वह और भी उत्तेजना से बातें करती, और भी जोरों से हंसती—जैसे भी हो उगारोव का ध्यान अपनी ओर खींचने का प्रयत्न करती। पर उगारोव का ध्यान कभी उसकी ओर नहीं गया। उसे यह मालूम ही नहीं

था कि उक्रेन ज़िले में स्तेपनिदा नाम की एक चतुर और होशियार औरत है जो उगारोव को छोड़ और किसी की उपेक्षा बरदाश्त करने को तैयार नहीं है।

उस दिन, स्तेपनिदा के जीवन में पहली बार खुद उगारोव ने आगे बढ़-कर स्तेनिदा से बात-चीत शुरू की।

"ओ हो! पहली मई फ़ार्म की दुकान है? आप के पास क्या-क्या बढ़िया चीज़ है?"

पिछले पचास वर्षों का दुकनदारी का अनुभव उस दिन स्तेपनिदा के काम आया। सूझ-बूझ ने ऐसे मौक़े का फ़ायदा उठाने में उसकी मदद की। बड़प्पन और गम्भीरता से कंधे उठाकर, होठों पर हल्की-सी मुस्कान लाकर उसने जवाब दिया :

"अजी यह पूछिए कि कौन सी चीज़ बढ़िया नहीं है? यह प्याज इतनी जल्दी और कहीं तैयार नहीं होता...इधर तो ऐसा प्याज होता ही नहीं। बाहर से मंगाकर इसकी खेती शुरू की है हम लोगों ने! मालूम होता है इसके बारे में अब तक आपने सुना ही नहीं था। और हां, यह बड़ा पौष्टिक भी है। अचार डालने के काम तो आता ही है, खून की कमी में भी बड़ा फायदेमन्द है। और ये गाजरें देखिए! ये भी एक खास किस्म की हैं। मीठी तो ऐसी हैं जैसे शक्कर! ले जाइए! वसंत तक पड़ी रहने दीजिए! क्या मजाल कि एक भी गाजर सड़ जाय!"

क्षण भर पहले स्तेपनिदा को खुद ही नहीं मालूम नहीं था कि प्याज और गाजर के बारे में वह इतनी बातें जानती है।

उगारोव की भूरी-भूरी आंखों में मुस्कराहट आ गयी :

"क्या कहना है! इसे कहते हैं दुकनदारी!"

उगारोव ने स्तेपनिदा को आंखों ही आंखों में तौला। उसके अधेड़, किन्तु खिले हुए, चेहरे से लेकर उसके चौड़े कंधों तक उसे परखा। और स्तेपनिदा को यह भांपते देर न लगी कि उगारोव की आंखों में सराहना है।

"तुम्हारी ये गाजरें तो बहुत ही बढ़िया चीज हैं। हम भी अपने यहां बोयेंगे। तुम्हारे यहां से कुछ बीज मिल जायेंगे?"

"कोई बात नहीं। मैं फ़ार्म-कमिटी से कहकर दिला दूंगी," स्तेपनिदा ने ऐसे लहज़े में कहा जैसे फ़ार्म-कमिटी उसके इशारों पर नाचती हो।

उगारोव चला गया और कुछ मिनट बाद अपने फ़ार्म की दूकान के आदमी को लेकर लौटा। स्तेपनिदा ने सुना कि उगारोव उस आदमी से कह रहा है :

"देखो यह कहलाती है दुकनदारी। पहली मई फ़ार्म वालों की गोभी

एक दिन में बिक गयी और तुम तीन दिन से लिये बैठे हो! ज़रा देखो और और सीखो...। ऐसे की जाती है दुकनदारी!"

फिर उगारोव अपनी गाड़ी में बैठा और चला गया।

इतने दिनों बाद ज़िन्दगी में उगारोव से इस परिचय के बाद स्तेपनिदा को प्रसन्नता के बजाय खीझ, कटुता और कुढ़न ही हुई। कुछ वर्ष पहले क्या वह भी उगारोव से बराबरी के स्तर पर, मित्र की तरह, बातें नहीं कर सकती थी? क्या वह भी उससे चुहल और मज़ाक नहीं कर सकती थी? उसी की तरह नीली पोबेदा गाड़ी में बैठकर नहीं चल सकती थी? ये ही बातें उसके मन में धुंधले रूप में उठ रही थीं! उसे याद आ रहा था अपना सजा-सजाया बीरान और बेज़रूरत मकान। सहसा उसके मन में एक आग सी भड़क उठी कि दूकान की इस मेज़ को, जिसके पीछे उसने अपनी आधी ज़िन्दगी बिता दी थी, तोड़-फोड़ डाले और अपने क्रोध और दुख को दबाने के बजाय ज़मीन पर लोट कर चीख-चीखकर रो उठे।

जैसे दुन्या की दांत के बुरुश की बात स्तेपनिदा के मर्म पर चोट कर गयी थी वैसे ही उगारोव से साक्षात्कार ने भी की। बाज़ार से लौटी तो बहुत गिरी-गिरी-सी और उदास। घर जाने के बजाय वासिली के कमरे में जाकर एक बेंच पर लेट गयी। आंखों से ज़मीन को घूरती रात गये तक वहीं पड़ी रही।

"अम्मा अब बूढ़ी हो चली हैं," वासिली ने सोचा, "बाज़ार से लौटने पर बहुत थक गयी हैं। बुढ़ापा असर दिखा रहा है न..."

किन्तु वासिली का अनुमान गलत था। स्तेपनिदा के दुख का कारण दूसरा ही था। दूसरों का सुख-चैन उसे फूटी आंखों नहीं सोहाता था। अवदोत्या और वासिली का सुख देख कर, जिनका जीवन उससे अलग ऐसे रास्तों पर जा रहा था जिन पर उसने कभी कदम नहीं रखा था, उसे कुढ़न होती थी। काफी रात गये स्तेपनिदा उठी। चुपचाप कपड़े पहने। बिना कुछ बोले दरवाज़े पर पहुंची। फिर घूम कर वासिली से बोली:

"घर में अकेले अच्छा नहीं लगता... कोई जगह चाहिए तो बताना..."

"तुम यहीं रहो न, अम्मा!" अवदोत्या ने कहा। "सूने घर में सोने क्यों जा रही हो?"

स्तेपनिदा ने कोई उत्तर न दिया। चुपचाप बाहर चली गयी।

जान पड़ता था कि फ़ार्म के अच्छे दिन आ गये हैं। सब काम मज़े में और आसानी से चल रहा था। योजना समय से पहले पूरी होती जान पड़ती थी। लेकिन अब वासिली बहुत चिंताग्रस्त और गम्भीर दिखाई देता था। कभी-कभी

उसकी कड़ी मूछों के नीचे का होंठ फड़क उठता, मानो गुस्से में वह कोई बात कहना चाहता है, पर रुक जाता है।

"क्या परेशानी घेरे है तुम्हें?" एक दिन नास्त्या ने पूछा। "क्या बात है? फ़ार्म में सब काम मज़े से चल रहा है। तुम्हारे पारिवारिक जीवन पर अड़ोसी-पड़ोसी ईर्षा करते हैं। इससे ज्यादा तो तुम पिछले बरस ही खुश दिखाई देते थे—जब चारों तरफ़ मुसीबतें थीं।"

अवदोत्या भी पति की यह दशा देखकर चिंतित थी। उसे विश्वास था कि अपने पति को वह खूब अच्छी तरह जानती है। वासिली को चिन्ताग्रस्त और गम्भीर देखकर अब वह भी पशोपेश में पड़ गयी थी। वासिली से प्रश्न पूछ-पूछ कर उसे परेशान करना उसे ठीक न जंचा। जहां तक होता वह और भी अधिक प्यार और शील से व्यवहार करती, उसका मन बहलाने के उपाय करती रहती।

स्तेपनिदा का अपना अलग अनुमान था।

"मर्दों में खून का उबाल आता है। भगवान शांति दे कुज़मा की आत्मा को—जवानी में उसको भी ऐसा ही हो जाता था। खून भीतर ही भीतर उबलता रहता, और फिर सब कचरा ऊपर उफन आता। सब ठीक-ठाक है कि यकायक उफान आ जाता—बस वह बेचैन हो उठता, दिमाग इधर-उधर दौड़ने लगता। लेकिन जहां किसी से लड़-भिड़ आया कि समझो ठीक हो गया। नदी पार के छोकरों से हमारे गांव के छोकरों की हाथा-पाई हो जाती थी। बस, मर्दों को भी यही बीमारी लग जाती। मर्द नदी पार के मर्दों से भिड़ जाते। अरे, कभी-कभी तो बूढ़ों को बोतल का नशा ज्यादा हो जाता तो उन्हें भी ज़ोर आजमाने की सूझती। हमारी तरफ तो यह एक रिवाज था, रिवाज!"

अगर स्तेपनिदा का मतलब बेचैनी से था—तो सचमुच वासिली बेचैन था। पिछले दो वर्षों से रात-दिन संघर्ष में अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति लगाये रखने की उसे आदत पड़ गयी थी। और अब, फ़ार्म का काम शान्ति से चलते जाने के कारण उतनी शक्ति खर्च करने का अवसर नहीं मिलता था। इसीलिए वह बेचैन हो उठता था।

समाचार पत्रों में वासिली और उसके फ़ार्म की प्रशंसापूर्ण रिपोर्टें छपती रहतीं। पहले तो अखबारों में अपना नाम देख कर उसे रोमांच हो आता था। पर अब उसे परेशानी होती। अपनी प्रशंसा में लम्बी-चौड़ी रिपोर्टें लिखने वाले संवाददाताओं को वह क्रोध भरी निगाहों से देखता। उससे मुलाकात करने के बाद वे चले जाते तो अपने बिस्तर पर लेट कर वह बड़बड़ाने लगता:

"तांता बांध रखा है... आते हैं, चले जाते हैं... ऐसी स्तुति लिख मारते हैं जैसी किसी के मरने के बाद लिखी जाती है ! लिखते क्या हैं ? दो साल पहले यह किया था, वह किया था ! जैसे अब मर गये हैं ! शुक्र है खुदा का कि अभी जीते-जागते हैं। कोई आज-कल के मेरे काम पर गालियां दे तो पिछले सालों के काम की बड़ाई के मुकाबले मैं ज्यादा पसंद करूंगा ! जो ज़िन्दा है उसे ज़िन्दा समझना चाहिए और वैसा ही व्यवहार करना चाहिए।"

वासिली के मन में नयी महत्वाकांक्षाएं और योजनाएं थीं। किन्तु जो बाधाएं थीं उन्हें दूर कर सकने के साधन उसकी पहुंच में नहीं थे।

बिजली से चलने वाला बड़ा भट्ठा बनाने की बात का अब क्या हो सकता था ? पड़ोसी फ़ार्म लाल मिट्टी वाली ज़मीन देने को तैयार न था। उन लोगों ने खुद एक भट्ठा बनाने की योजना बनायी थी। उसकी इच्छा यह भी थी कि उगारोव की तरह उसके फ़ार्म में पशुओं की संख्या हज़ारों तक पहुंच जाय। लेकिन इतने बड़े रेवड़ के लिए चारे की व्यवस्था न हो सकने के कारण वह निराश हो गया था। मज़ा यह कि बढ़िया लाल मिट्टी और बहुत सा चारा पड़ोस के ही फ़ार्म में था।

वासिली दृष्टि की सीमा से परे तक फैले फ़ार्म के खेतों के किनारे खड़ा सोचता रहता : "देखने को तो ये भी और खेतों की तरह ही हैं। कहीं कोई रुकावट नहीं। पर ज्यों ही कुछ करने की सोचो, पत्थर की दीवार से सिर टकरा जाता है। उगारोव और मालीश्को की बात दूसरी है—उनके पास बहुत सी जगह है, दो-दो हज़ार हैक्टर ज़मीन।"

एक दिन वासिली सोच रहा था कि एक बार फिर 'अंकुर' फ़ार्म वालों के यहां जाकर उन लोगों से लाल मिट्टी वाली ज़मीन के बाबत बातचीत करे कि तभी येफिमकिन कुछ और लोगों को साथ लिये आ पहुंचा।

दुबला-पतला येफिमकिन आंखें मिचमिचाता हुआ मुख पर विनीत भाव बनाये सबसे आगे-आगे आ रहा था। पीछे एक जवान लड़की और एक बुढ़िया थी। जवान लड़की की नन्हीं सी नाक अधबिच में ही रह गयी थी। ऊपर का होंठ मानो उसने अपनी ओर खींच लिया था। हां, आंखों में उत्सुकता भरी हुई थी। बुढ़िया का चेहरा तो मानो स्तेपनिदा, क्सेनोफोन्तोवना और वासिलिसा तीनों के चेहरों से थोड़ा-थोड़ा नमूना लेकर गढ़ा गया था। गम्भीरता और तेज स्तेपनिदा के चेहरे का था, फूले-फूले गालों से दबी आंखों में शरारत भरी चमक क्सेनोफोन्तोवना की आंखों की थी और अनायास ही दूसरे की सहृदयता का पात्र बन जानेवाली वासिलिसा की मुस्कान होठों पर थी।

वासिली तुरंत सतर्क हो गया : "क्यों आये हैं ये लोग ?"

"आइए, आइए ! बड़ी खुशी हुई आप लोगों के आने से," अपने को

काबू में रखते हुए उचित सम्मान से उसने कहा। "बैठिये न ? कहिए, आपकी क्या सेवा कर सकता हूं ?"

अतिथि आराम से बैठ गये। बुढ़िया, जो स्पष्ट ही सबकी प्रतिनिधि थी, ज़रा गुनगुनाकर बहुत कोमल स्वर में बोली :

"हम लोग आपसे एक बहुत ज़रूरी काम से मिलने आये हैं। काम ऐसा है जो दोनों के फायदे का है और दोनों मिल कर इसे कर भी सकते हैं।"

बुढ़िया जल्दी-जल्दी सुललित शब्दों में धाराप्रवाह बहुत कुछ कह गयी, हालांकि उसकी बात बहुत कम समझ में आई। येफिमकिन ने बुढ़िया की ओर कुछ सन्देहपूर्ण नेत्रों से और जवान लड़की की ओर चिन्तापूर्ण नेत्रों से देखा।

वासिली समझ गया कि बुढ़िया अपने गांव में बड़ी चतुर और होशियार मानी जाती होगी, इसीलिए बात करने के लिए साथ लायी गयी है। लेकिन बातूनीपन से साथ वालों को परेशानी हो रही थी। और वह ? वह तो बैठ अपनी सारी कला दिखाने में व्यस्त थी ही।

"पुरानी रूसी कहावत है कि ग्राहक बिना सौदा बेकार, और सौदा बिना ग्राहक बेकार!" बुढ़िया कहती गयी। "अब तो पुरानी कहावतों से नया मतलब निकाला जाता है। हम यहां लड़के की सगाई पक्की करने तो आये नहीं हैं भैया। बात यह है कि ज़मीन आपके पास भी है और हमारे पास भी। आपके पास जोताई की ज़मीन बढ़िया है, हमारे पास चरानें बढ़िया हैं। आपके पास नदी है, हमारे पास झील। आप भट्ठा बनाने की तदबीर में हैं और हमारे पास ईंटों लायक लाल मिट्टी है।"

बुढ़िया की लम्बी-चौड़ी दास्तान से येफिमकिन चिढ़ उठा और बोला :

"तुम काम की बात करो न! ये सब लच्छेदार बातें फिर कर लेना। तुम मेरी सुनो, वासिली कुज़मिच। हमारे फ़ार्म की सभा ने फैसला किया है कि इस मामले में हम लोग तुमसे बातचीत कर लें। हम लोग चाहते हैं कि तुम्हारे साथ शामिल हो जायें ..हमारा पूरा फ़ार्म तुम्हारे फ़ार्म में शामिल हो जाय। हमें अपने में शामिल कर लो .. बस, यही सीधी-सी बात है...।"

वासिली बुढ़िया की लम्बी भूमिका से ही असली बात समझ गया था। उत्तेजना और खुशी उसके अन्दर समा नहीं रही थी। मन ही मन उसने फैसला भी कर लिया था। अपनी उत्तेजना छिपाने और उपेक्षा दिखाने के लिए इस समय फोन पर खलिहान से बात करना उसे अत्यंत आवश्यक जान पड़ा।

"क्या हाल है इंजन का ? अभी तक लगाया या नहीं ?" असंतोष प्रकट करते हुए उसने कहा। "एक घंटे के भीतर जरूर लग जाना चाहिए। मैं खुद आकर इंजन की परीक्षा करूंगा।"

फोन का रिसीवर नीचे रखकर उसने संतोष की सांस ली—जैसे बहुत बड़ा काम पूरा किया हो।

"हमारी बात का क्या जवाब है, वासिली कुज़मिच? लोगे हम लोगों को अपने में या नहीं?"

"क्यों लें तुम लोगों को? हमारा फ़ार्म सुव्यवस्थित फ़ार्म है! सब काम बड़े ढंग से होता है! और तुम लोग?"

"हमारे फ़ार्म में क्या कमी है?" बुढ़िया ने बातों का चर्खा फिर चालू कर दिया। "हमारे पास जैसी चरानें हैं कभी देखी हैं कहीं? घास के पत्ते? अहा! कितने मोटे! कितने चिकने! कितने मुलायम! कितने रस भरे! जंगली घास का मुकाबला इन्सान की बोई घास क्या करेगी!"

वासिली बुढ़िया की बातें आधे कान से सुन रहा था। उसका दिमाग बड़ी तेज़ी से दौड़ रहा था: "मिला तो खैर लेंगे ही लेकिन इन पर जो बकाया है, वह भी ये लोग हम पर ठेलना चाहते हैं... इस पर सोचना पड़ेगा, दूसरों से बात-चीत करनी होगी। इन लोगों के यहां सभी मनमौजी जीव हैं। हमसे मिलेंगे तो पूरा अनुशासन इन्हें शुरू से सिखाना पड़ेगा। इन्हें नियंत्रण में कैसे लाया जायगा? बकाये का क्या होगा? बारी-बारी से फसलों की योजना कैसे बनायी जायगी? इनका टीम-लीडर किसे बनायेंगे?"

उसका दिमाग दूर-दूर की बातें सोच रहा था। बुढ़िया की आवाज़ भी उसे कहीं दूर से आती सुनाई दे रही थी:

"रही हमारी लाल मिट्टी की बात! उसमें ज़रूर कोई राज़ है। ऐसा खजाना इलाके भर में नहीं मिलेगा। मास्को के आलिम-फ़ाजिल लोग इसका नमूना जांच के लिए ले गये हैं; इसके राज़ का पता लगाना चाहते हैं...। लेकिन अब तक किसी के पल्ले कुछ पड़ा नहीं।"

वासिली ने एक नज़र बुढ़िया की ओर देखा और आंखें झुकालीं। मन ही मन वह सोच रहा था: "मुझे यह सब क्या सुना रही हो? तुम्हारी चरानों और खड्डों को मैं जितनी अच्छी तरह जानता हूं तुम भी क्या जानोगी। रही मिट्टी की बात, सो उसके बारे में भी मुझे ऐसी बातें मालूम हैं जिनका तुम्हें सपने में भी ख़याल नहीं होगा।"

"तुम्हारी चरानें तो बुरी नहीं हैं लेकिन तुम्हारे खेत किसी काम के नहीं।" वासिली ने कुछ कहने के नाम पर कह दिया।

"यही तो सारा रोना है, वासिली कुज़मिच!" जवान लड़की बोल उठी। "ज़मीनें तो हमारी भी तुम्हारी जैसी हैं, लेकिन ट्रैक्टर हमारे यहां सब से बाद में आते हैं। रही कम्बाइन! सो चाहे जो कर लो कम्बाइन मशीन आती ही

नहीं। तुम्हारे यहां तो राई की फसल कंधों-कंधों तक पहुंच गयी है। हमारे यहां मुश्किल से घुटनों तक है। शरम आती है अपनी राई देखकर।"

बुढ़िया ने लड़की को कड़ी निगाह से देखा। उसकी समझ से अपने फ़ार्म की कमियां बताना ग़लत नीति थी।

"हमारी झील की मछलियों का क्या कहना? अहा! सब तरह की मछलियां मौजूद हैं।" बुढ़िया बोली। "कृषि विशेषज्ञ जब भी आता है कहता है: 'इस झील से हज़ारों रूबल की मछलियां साल में निकाली जा सकती हैं!'"

वासिली को भी कल्पना में दिखाई देने लगा—फ़ार्म की झील के किनारे मुर्गियों और बत्तखों को पालने के दरबे बने हुए हैं और कई टन मछलियों के ढेर लगे हैं। माथे पर बल डालकर बोला:

"फ़ार्म मछलियों से थोड़े ही चलता है। आदमी चाहिएं, आदमी!"

"हमारे यहां की लड़कियां तुम्हारे फ़ार्म की लड़कियों से कम मेहनत नहीं करतीं।" जवान लड़की फिर बोली। "तुम देखते, इस साल हम लोगों ने कैसी मेहनत की है। फसल तो हमारे यहां भी अच्छी उगती है, लेकिन दाना जाने क्यों उतना नहीं पड़ता।"

लड़की की आवाज़ में कुछ ऐसी वेदना और ऐसा क्रोध था कि वासिली को उस पर तरस आ गया। उसकी आत्मा कचोट उठी: "लोग सचमुच परेशान हैं और मुझे मिट्टी के बारे में सोचने से फ़ुर्सत नहीं मिलती।"

बुढ़िया को लड़की की मूर्खता बुरी लग रही थी। वह फिर अपने फ़ार्म की प्रशंसा शुरू करने वाली थी कि येफिमकिन ने उसे रोक दिया:

"मैं किसी चीज़ की बेकार बढ़ा-चढ़ा कर तारीफ नहीं करता, न बेकार किसी चीज़ को नीचे गिराता हूं। हमारी ज़मीन तुम्हारी ज़मीन से बुरी नहीं है; हां, जगह कम है! फिर हमारे यहां अच्छा मैनेजर भी नहीं है। मैं ठहरा बीमार आदमी; सारा जिसम छलनी हो रहा है। हर साल शरीर के किसी न किसी हिस्से से 'स्प्लिंटर' निकाले जाते हैं। हफ्ते भर काम करता हूं तो महीना भर अस्पताल में बिताना पड़ता है। अच्छा मैनेजर मिले तो फौरन फ़ार्म की हालत सुधर जाय।"

"सवाल अब मिट्टी और चरागाहों का नहीं रह गया है," वासिली सोच रहा था, "दरअसल इन लोगों की हालत खराब है! इतने छोटे फ़ार्म पर इनसे कुछ करते-धरते बनेगा नहीं। मेरे दिमाग से जनता का खयाल जैसे उड़ ही गया था। यह बुढ़िया लच्छेदार बातें बनाकर मुझे मनाना चाहती है—सो शायद ठीक ही है, क्योंकि यह मुझे बड़ा हठी और ज़िद्दी समझती है। या शायद येफिमकिन और यह नकचैठी लड़की मुझसे खरी-खरी बातें ठीक ही कह

रहे हैं क्योंकि मैं कम्युनिस्ट हूं और ये लोग मुझसे साफ़-साफ़ जवाब पाना चाहते हैं?"

वासिली ने लजाते हुए येफिमकिन की ओर देखा और बोला :

"देखिए, मुझे तो कोई आपत्ति नहीं है। मैं आप के सुझाव का समर्थन करूंगा। लेकिन मैं अकेला ही तो फैसला नहीं ले सकता। मैं सारी बात फ़ार्म सभा में रख दूंगा, फिर देखो क्या होता है।"

येफिमकिन और उसके साथियों के चले जाने पर वासिली खिड़की के पास जा खड़ा हुआ। खेतों में से मुड़ती-घूमती सड़क चली जा रही थी और चिड़ियों के झुंड झाड़ियों और तारों पर फुदक रहे थे।

"यह सड़क सीधी करनी पड़ेगी। बीच की झाड़ियां साफ करनी पड़ेंगी।" वह सोच रहा था। "भट्ठे के लिए बिजली के तार सीधे जंगल में से जायेंगे। दोनों फ़ार्मों की पशु-शालाओं को एक करना होगा और 'अंकुर' फ़ार्म में बड़ी पशुशाला बनानी होगी। वहां से चरानें नज़दीक हैं। शहद की मक्खियों का ताम-झाम भी घास के मैदानों में पहुंचाना होगा।"

वासिली की आंखों के सामने सब कुछ जैसे गतिमय हो उठा—झाड़ियां कहीं छिप गयीं, सड़क सीधी हो गयी, बड़ी-बड़ी इमारतें उठ खड़ी हुईं। "यह कल्पना नहीं यथार्थ है"—जितना ही यह भ्रम वासिली के मस्तिष्क में बढ़ता, उतनी ही उसके हृदय को सांत्वना मिलती।

दोनों फ़ार्मों को एक में मिला देने की बात फ़ार्म की सभा में रखने से पहले वासिली ने इस विषय पर ज़िला पार्टी के मंत्री से बात कर लेना उचित समझा। शाम को वह सीधा ज़िला पार्टी के दफ्तर पहुंचा। अपने खयालों में वह इतना डूबा हुआ था कि बिना दरवाज़ा खटखटाये सीधा आन्द्रेई के कमरे में चला गया। आन्द्रेई अकेला ही था। एक भारी-भरकम, लम्ब-तड़ंग आदमी के सामने आ खड़े होने से आन्द्रेई ने निगाहें ऊपर उठाईं तो देखा कि वासिली खड़ा है। आन्द्रेई को याद आ गया—पहले-पहल जब वासिली दफ्तर में आया था तब भी ऐसे ही। घने काले बालों और चौड़े कंधों वाली एक आकृति जिसकी आंखें भौंहों के नीचे दब गयी थीं सहसा दरवाज़े पर आ खड़ी हुई थी!

आन्द्रेई ने खड़े होकर हाथ मिलाया और पूछा : "कहो, वासिली, अब क्या परेशानी आ गयी?"

कलमदान का तिकोना ढक्कन हरे मेज़पोश पर चमक रहा था। कागज़ दबाने के काली लाख के 'पेपर-वेट' पर लाल रंग से बना उगता सूर्य ऐसा लगता था जैसे अभी पूरा निकलने वाला है। ज़िला कमिटी के मंत्री की चमकदार आंखें उसके स्वागत में मुस्करा रही थीं। लम्बे-चौड़े हवादार कमरे की हर चीज़ परिचित थी।

वासिली लम्बे कदम बढ़ाता हुआ एक आराम कुर्सी के पास पहुंचा और उसे खींचकर उस पर धम्म से बैठ गया। कुर्सी के पाये चरचरा उठे।

पूर्व सूचना के बिना कमरे में धड़धड़ाते हुए चले आना और लापरवाही से कुर्सी घसीटकर बैठ जाना शिष्टाचार के विरुद्ध भले ही हो—लेकिन वह मानसिक संतुलन का द्योतक नहीं था। वासिली अपनी योजनाओं में इतना उलझा हुआ था कि उसे शिष्टाचार का कोई ध्यान नहीं था।

आन्द्रेई वासिली की व्यग्रता भांप गया और बड़ी उत्सुकता से इन्तज़ार करने लगा कि वह क्या कहता है।

"हां भई, परेशानी ही है।" वासिली मुस्कराता हुआ बोला। उसकी काली-काली आंखें चमक रही थीं। "तुम तो एक ही दफे में सब भांप जाते हो, पेत्रोविच!"

"बात क्या है?"

"बात यह है कि हमारे पास जगह की कमी है। हम धीरे-धीरे पैर फैलाना चाहते हैं।"

वासिली ने दोनों फ़ार्मों को मिलाने के प्रस्ताव की कहानी धीरे-धीरे सुना दी। उसने देखा कि आन्द्रेई के चेहरे का रंग बदल रहा है। अब उसके चेहरे पर सतर्कता का भाव—जो आम तौर से बना रहता था—नहीं था। मालूम होता था किसी बात से आन्द्रेई को प्रसन्नता हुई है—माथे की गहरी लकीरें हल्की पड़ती जा रही थीं और आंखों की चमक बढ़ती जा रही थी।

"क्या बात है?" वासिली मन ही मन सोच रहा था।

आन्द्रेई पूरी बात सुनकर भी कुछ नहीं बोला। उसने मेज़ की दराज़ से ज़िले का एक तह किया हुआ नक्शा निकाला। उसके छोटे-छोटे मज़बूत हाथों की छोटी, किन्तु तेज़, उंगलियों ने नक्शा खोला और उसकी सलवटें ठीक कीं।

वासिली उसके कुशल हाथों की करामात देखता रहा। वह जानता था कि ज़िला पार्टी मंत्री को दूसरों को ताज्जुब में डालने की आदत है। वह इन्तज़ार कर रहा था: "देखें अब क्या करता है?"

"यह देखो।" आन्द्रेई बोला।

नक्शे पर पहली मई फ़ार्म के चारों ओर वर्गाकार लकीरें खिंची हुई थीं।

"कुछ ही दिनों पहले मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन वालों, वालेंतिना और प्रोखारचेन्को से तुम्हारे यहां के बारे में बातें हो रही थीं। उनका कहना है कि तुम्हारे फ़ार्म के पास-पड़ोस के छोटे-छोटे फ़ार्मों के टेढ़े-मेढ़े, बंटे-छंटे, खेतों में मशीनों से काम करने में बहुत दिक्कत होती है। सवाल सिर्फ 'अंकुर' फ़ार्म का नहीं, बल्कि तुम्हारे दूसरे पड़ोसी 'उज्वल पथ' फ़ार्म का भी है।"

वासिली सीधा होकर बैठ गया।

"मैं तो सिर्फ 'अंकुर' फ़ार्म की बाबत सोच रहा था।"

"लेकिन देखो तो मामला कैसा जमकर बैठता है। यह देखो! यह रहा केन्द्र—पहली मई फ़ार्म! इसके चारों तरफ घेरे के तौर पर, जंगलों के बीच खेत हैं। देखो, ये रहे तुम्हारे बारी-बारी से बोवाई के सात खेत! यहां मशीनों के लिए जगह संकरी पड़ती है? ये रहे चरागाह! ये रहीं सिंची-सिंचाई कछिया-रियां! और यह रहा ईंटों का भट्ठा! इस नदी से लेकर यहां जंगल तक तुम्हारे विशाल सामूहिक फ़ार्म की प्राकृतिक सीमाएं हैं। देखो, सब कुछ कितना जंचता हुआ है। कृषि की सभी शाखाओं के लिए परिस्थितियां मौजूद हैं। माना कि इन सब को एक जगह कर देने से फ़ार्म बड़ा हो जायगा—शायद ज़िले में सबसे बड़ा। लेकिन खुद भौगोलिक परिस्थितियां ही इतना बड़ा फ़ार्म बनाना आवश्यक कर देती हों तब? उसमें हर्ज क्या है। उससे हमारी शक्ति और साधनों का उपयोग और अधिक फलदायक हो सकेगा! कितना बड़ा फ़ार्म बन जायगा हम लोगों का! कितना सुखमय जीवन होगा लोगों का!"

वासिली जितना ही आन्द्रेई की बातें सुनता, जितनी ही गौर से आन्द्रेई की मेज़ पर रखे नक्शे को देखता, उसे यकीन होता जाता कि सचमुच सब कुछ मानो इसी फ़ार्म के लिए है। नदी और जंगल की सीमाओं के बीच फैले खेत और चरागाह मानो खुद कह रहे थे: "यहां एक खूब बड़ा फ़ार्म बनना चाहिए।" सतर्क यद्यपि वह अब भी था और आन्द्रेई के प्रस्ताव पर मन ही मन सन्देह भी कर रहा था, फिर भी 'अंकुर' के बारे में उसने जो कुछ सोचा था उसे नाकाफी मालूम हुआ। उसकी कल्पना में कार्य का इतना विस्तृत क्षेत्र जाग उठा था जितना आध घंटे पहले उसके लिए स्वप्न में भी असंभव था।

वासिली ने नक्शे पर से आंखें हटाईं। कलमदान का चमकीला ढक्कन, कागज़ दबाने का 'पेपर-वेट', पेंसिलों का डिब्बा—हरे मेज़पोश पर ऐसे हिलते दिखाई दिये जैसे जगहें बदल रहे हों। पल भर को उसने आंखें बन्द कर लीं। जंगलों की दीवार हट गयी, बारी-बारी से फसल वाले खेत अपनी जगहों को छोड़ एक जगह आ इकट्ठे हुए, बिजली के साज-सामान से सुसज्जित पशुशालाएं उठ खड़ी हुईं, 'अंकुर' फ़ार्म की नकचैठी लड़की सहेलियों को साथ लिये आगे-आगे जाती दिखाई दी—गोल चेहरा खुशी से खिला हुआ। वासिली को लगा जैसे नसों में सुरसुराहट हो रही है, गदोलियां खुजला रही हैं। उसने आंखें खोल दीं। उसके चारों तरफ सब-कुछ बदला हुआ था। यहां अब तक वह आता था कुछ सीखने के लिए, शिष्य की भांति; आशा से आंखें फैलाये वह पेत्रोविच के उत्तर की प्रतीक्षा किया करता था। और अब? अब पेत्रोविच उसके सामने खड़ा था—प्रतीक्षा में, उसका उत्तर सुनने की उत्कंठा में! वासिली जानता था कि

वह न केवल इस बात को मान लेगा, बल्कि इस विचार को ले उड़ेगा, इसी के लिए जियेगा-मरेगा। यही तो उसका चिर-पोषित स्वप्न था!

"वासिली कुज़मिच! ऐसे फ़ार्म की सभी परिस्थितियां मौजूद हैं," आन्द्रेई बोला, "सवाल है सिर्फ नेतृत्व का... मैनेजमेंट का ... बोलो, क्या कहते हो?"

"पर यह सब एकदम कैसे हो सकता है...?" वासिली ने सन्देह प्रकट किया।

"एकदम नहीं। ऐसे काम एकदम नहीं होते। इस पर लोगों से बातचीत करेंगे। फ़ार्म सभाओं में विचार करेंगे। अगर लोग सहमत हुए तो फिर इस फसल के बाद ही कुछ करेंगे। तुम देखो तो कि इसमें फायदा कितना है!"

आन्द्रेई और वासिली फिर नक्शे पर झुक गये।

"अगर ऐसा हो तो पशुशालाओं को चरागाहों के पास ले जाना होगा," वासिली ने अपनी उत्तेजना को दबाते हुए कहा, "और सुअरों के बाड़े यहां, आलू के इन खेतों के पास बनाने होंगे। यहां जानवरों के पालन-पोषण के लिए जगह की तंगी नहीं रहेगी।"

आन्द्रेई वासिली के उत्तेजना से लाल चेहरे को देख रहा था। आन्द्रेई के हृदय में वासिली के प्रति प्रेम और गर्व उमड़ आया। वह उसे ऐसी आत्मीयता से देख रहा था जैसे कोई अपनी अत्यंत प्रिय, अपने ही हाथों गढ़ी-संवारी वस्तु को, देखता है। उसे एक बार फिर उस दिन की याद हो आई जब, दो साल पहले, एक पिछड़े हुए सामूहिक फ़ार्म का प्रधान क्रोध से धड़धड़ाता हुआ उसके कमरे में घुस आया था। वासिली ने इन दो वर्षों में काफी गलतियां भी की थीं, पर उसमें अब एक ऐसी उद्देश्य-प्रियता थी जो बरबस दूसरों को उसे अपना विश्वासभाजन बनाने पर बाध्य कर देती थी। किन्तु इन पिछले दो वर्षों में केवल इस समय ही—जब वासिली अब तक अनपरखी क्षमताओं के द्वार पर खड़ा था—आन्द्रेई को सुलगती आंखों और अतामान जैसी चाल-ढाल वाले इस लम्ब-तड़ंग और सांवले चेहरे वाले आदमी में निहित असीम कार्यशक्ति का आभास हुआ।

"हमारे ज़िले में एक और उगारोव, एक और मालीश्को तैयार हो रहा है। अगर इसे मौका दिया जाय तो यह अच्छे-अच्छों से होड़ लेगा और किसी से मात नहीं खायेगा।"

आन्द्रेई और वासिली छोटे-छोटे फ़ार्मों के एकीकरण के बारे में बड़ी देर तक बातें करते रहे। वासिली आन्द्रेई के कमरे से निकला तो दफ्तर के बाहरी कमरे में उगारोव और मालीश्को से मुलाकात हो गयी। उगारोव बड़े उत्साह से कोई बात सुना रहा था और मालीश्को आंखें सिकोड़े ध्यान से सुन

रहा था। वासिली को देख उन लोगों ने ज़रा सिर झुका कर पहचान प्रकट की, फिर बातों में लग गये। कुछ दिन पहले वासिली इन लोगों को बड़े उत्साह और ईर्ष्या से देखता था; उसकी इच्छा होती कि उनके पास जाकर उनसे मुलाकात करे, उनसे बात-चीत करे; और यदि वे उसकी ओर थोड़ा-सा भी ध्यान देते थे, उसमें थोड़ी भी दिलचस्पी ज़ाहिर करते थे—तो वह फूला नहीं समाता था।

परन्तु इस समय वासिली उगारोव और मालीश्को के पास ठहरा नहीं। उस समय आन्द्रेई से हुई बात-चीत और भविष्य में निर्माण का नशा इतने जोर पर था कि वह रुका नहीं। उसे अपने में और नयी योजनाओं की सफलता में विश्वास था और इनके सिवा उसे और किसी बात में इस समय दिलचस्पी नहीं थी।

अब वह अपने को बदला हुआ महसूस कर रहा था। ज़िला पार्टी मंत्री को छोड़, उसकी अपरिमित क्षमताओं का किसी को आभास मात्र नहीं था। वासिली जानता था कि अब वह दिन दूर नहीं जब उगारोव और मालीश्को को वह नहीं, बल्कि मालीश्को और उगारोव उसे आश्चर्य और उत्सुकता से देखेंगे—जब उसके कार्य-कलापों और क्षमताओं को देखकर उनकी आंखें फटी की फटी रह जायेंगी।

उसे अटल विश्वास था कि ऐसा ही होगा। और यह विश्वास चौबीसों घंटे उसके साथ बना रहता—उसकी रग-रग में समाया रहता। इस विश्वास ने ही उसे थोथे आत्म-सम्मान की उन चिन्ताओं और दुराशाओं से मुक्त किया था जो अब तक उसे घेरे रही थीं। उसकी चाल में ऐसा आत्म-विश्वास और दृष्टि में ऐसी शांत गंभीरता थी कि उगारोव की पैनी नज़र को वासिली में यह परिवर्तन भांपते देर नहीं लगी। अकस्मात उसका सिर वासिली की ओर घूम गया। वह उसे देखता रह गया।

वासिली घर लौटा तो ऐसा स्वस्थ और प्रसन्न, जैसा अवदोत्या ने लम्बे अरसे से उसे नहीं देखा था। अवदोत्या को पूरी योजना तो उसने बतायी नहीं। हां, उस बृहद् सामूहिक फ़ार्म की ओर इशारा मात्र कर दिया, जो उसकी कल्पना में बसा हुआ था। उसके भारी-भरकम शब्दों ने इतना नहीं, जितना युवकों जैसे उसके अदम्य उत्साह ने वह सब कुछ कह दिया जो अवदोत्या सुनना चाहती थी।

"यही है मेरा वास्या!" उसका हृदय आल्हाद से भर उठा। यही तो था वह 'लाल पताका वाला ट्रैक्टर-ड्राइवर' जिसके प्रेम बन्धन में वह बंध गयी थी। "मैं जानती थी कि यह ऐसा है। मेरा रोम-रोम कहता था कि यह ऐसा है। किसी को क्या मालूम कि इसमें कितना उत्साह, कितनी शक्ति भरी है। सिर्फ मैं जानती हूं कि यह क्या है और क्या बनेगा!"

अपने पति में नये परिवर्तन को देखकर अवदोत्या को प्रसन्नता भी हुई, भय भी। प्रसन्नता इसलिए कि इस रूप में उसका प्यार करना वास्तव में एक रोमांचकारी अनुभूति थी। भय इसलिए था कि वासिली के कदमों से कदम मिलाकर बढ़ सकना उसके लिए काफी कठिन होगा। अब उसमें वासिली के प्रति वात्सल्य भरा मां के हृदय का प्यार नहीं, वरन यौवन की पहली उमंग का निर्बंध प्यार—पति पर मर मिटने का गर्व भरा प्यार—था, जो बरसों बाद अवदोत्या में उमड़ रहा था।

खेतों में अनाज की बालें दानों से भरकर झुक गयी थीं। पकाई और उर्वरता के दिन नज़दीक आ गये थे। किसानों के लिए अब भी कड़ी मेहनत सामने थी, पर श्रम का मीठा फल भी सामने था। वही सब कुछ सामने था जिसे किसान बड़े मधुर और उल्लासमय शब्दों से पुकारते हैं: "फसल!"

धरती, किसानों की सेवा से प्रसन्न होकर, बड़ी उदारता से उन्हें पुरस्कृत करने को तैयार थी। और किसानों की आंखें इस पुरस्कार के लिए कृतज्ञता से चमक रही थीं।

फ्रोस्या निरंतर श्रम से खूब दुबली हो गयी थी और उसका रंग धूप में संवला गया था। उसके जीवन का एक नया अध्याय शुरू हुआ था। फसल कटाई के समय, वह ट्रैक्टर-चालक से कम्बाइन-चालक बन गयी थी। साधारण ट्रैक्टर-ड्राइवर के दर्जे से उठकर अब वह कम्बाइन दल की नायक थी।

कम्बाइन दल की नायक! हां, फ्रोस्या को जिस दिन इस पदवी से विभूषित किया गया उस दिन घर आकर वह आइने के सामने खड़ी हुई और अच्छी तरह अपने को जांचने-परखने लगी।

"अब ये घुंघराली ज़ुल्फें नहीं चलने कीं...न यह इतना कसा हुआ लाल चिट्टा ब्लाउज़ अच्छा लगेगा..." वह सोच रही थी। "अब तो बस एक सादा ब्लाउज़ चाहिए और सिर के लिए बड़ा सा सादा रूमाल जिससे बालों और गर्दन पर धूल न पड़े। कम्बाइन चलाने वाली जब 'ब्रिज' पर खड़ी होती है और रूमाल पीछे हवा में उड़ता है तब बड़ा प्यारा लगता है... और कानों के नीले नग वाले ये बुन्दे? इन्हें रहने दो। नीला और हरा रंग खूब मेल खाता है।"

"क्या पढ़ रही हो आईने में—जैसे नयी हिदायतों का दस्तावेज खड़ा हो?" प्योत्र ने मुस्कराकर पूछा।

"कम्बाइन दल की नायक होना कोई मज़ाक की बात नहीं है, पेत्रुन्का! तेल-पानी देने वाले, सफाई करने वाले, ड्राइवर...सब पर अपना सिक्का

बैठाना होता है।" वह मेज़ पर बैठ गयी, एक प्याले में चाय उड़ेली, लेकिन पी नहीं, और कहती गयी : "पूरे दल को सम्भालना है। मालूम, नास्त्या क्या कहती है? नास्त्या कहती है : 'आदमियों को काबू में रखना और उनसे काम लेना दिल्लगी नहीं है। मशीन को सम्भालना तो और भी मुश्किल है।' मेरी मशीन तू जानता है कैसी है? बड़ी अड़ियल! यों देखो तो बहुत अच्छी, बहुत खूबसूरत। खूब बड़ी। खूब ऊंची। आसानी से चला लो। जहां जी चाहे ले जाओ। ये सब बातें हैं। अपने आप दौड़ती है। कटाई करती है। फटकाई करती है। असली शहरी मशीन—कोई नुक्स नहीं। लेकिन सच पूछो तो अरबी घोड़ी की तरह है। ऐरा-गैरा तो उस पर सवारी कर ही नहीं सकता। सवारी करने वाला अच्छा हुआ तो कोई उससे होड़ नहीं ले सकता—पुराने रिकार्ड भी तोड़ दे। बुरा हुआ तो ज़मीन पर पटके बिना नहीं मानेगी। सच कह रही हूं। बड़ी मनमौजी है।"

"तेरे ही जोड़ की है! तू भी तो ऐसी ही है!"

फ्रोस्या ने कम्बाइन को परखने के लिए कुछ दूर तक चलाकर देखा था कि पुर्जे ठीक-ठाक हैं या नहीं।

नास्त्या उसे कम्बाइन चलाने की शिक्षा देती थी। शाम को दोनों उसे चलाने जातीं। कम्बाइन के 'ब्रिज' पर खड़ी नास्त्या मशीन की चाल और पुर्जों की आवाज़ में फ्रोस्या को समझाती जाती :

"इस मशीन के किसी पुर्जे को मामूली न समझ, फ्रोस्या!" नास्त्या कहती। "इसका हर पुर्जा अहमियत रखता है। पूरे दो-हज़ार पुर्जे हैं इसमें। कहीं एक पुर्जा टूटा या खराब हुआ तो समझो पूरी मशीन खतरे में है। आधे घंटे के लिए मशीन बेकार खड़ी हुई तो सौ किलोग्राम गल्ले का नुकसान पक्का है।"

इन दिनों नास्त्या का अधिकांश समय नवयुवकों को मशीनों का काम सिखाने में जाता था। उसे नहीं मालूम था कि वह इस काम में इतनी बह जायेगी। फ्रोस्या उसे बहुत पसन्द थी। इस तुनुकमिज़ाज लड़की की लगन नास्त्या को प्यारी लगती। फ्रोस्या भी नास्त्या पर जान देती थी। वह, जिसने अपनी मां—क्सेनोफोन्तोवना—की भी कभी न सुनी थी, वही फ्रोस्या, जीवन में पहली बार, एक ऐसी औरत की भक्त बन गयी थी जो उससे कहीं ज़्यादा अनुभवी, बड़ी, चतुर और होशियार थी। फ्रोस्या का निश्छल और सच्चा प्रेम नास्त्या में मातृत्व की भावना जगा देता था।

"मैं तुझे अपना एक किस्सा सुनाती हूं, फ्रोस्या।" नास्त्या कहती। "जब छोटी थी तो एक बार क्या हुआ कि मैं गेहूं के एक खेत में *स्तालिनेत* मशीन चला रही थी। बीजों की फसल का खेत था। दोपहर के कलेवे का

वक्त आ गया। मैं चाहती थी कि काम खत्म कर लूं लेकिन मेरे साथ का ट्रैक्टर-ड्राइवर आराम करने के पक्ष में था। असल में ट्रैक्टर चलाने वाले लड़के ने दोहरी पाली की थी। उसने कहा, 'घंटे भर सुस्ता लें, क्या हरज़ है। उठ कर जल्दी-जल्दी काम खत्म कर डालेंगे।' हम लोग खा-पीकर लेटे तो नींद आ गयी। नींद खुली तब जब पीठ और सिर पर खूब ओले पड़ने लगे। देखते क्या हैं कि सारा खेत ओलों ने चाट लिया है। किसान—सारे खेत में खड़े रो रहे थे। काम बीच में छोड़ा न होता और दो घंटे पहले शुरू किया होता तो कुछ भी बरबाद न होता। तू भी इसे वैसे ही याद रख, जैसे मैं याद रखती हूं! अब तू समझ ले कि यह काम किस ढंग का है और कितनी जिम्मेदारी का है।"

नास्त्या और स्तेपान ने फ्रोस्या के लिए एक छोटा सा कारखाना बना दिया था जिसमें वह छोटा-मोटा काम ठीक कर लिया करे। एक दिन फ्रोस्या घर लौटी तो नये 'रिंच,' पेंचों को खोलने-कसने के कुछ पेंचकस, एक थैले में डाल कर ले गयी और बड़ी शोखी से बोली :

"कम्बाइन चालक को एक ही साथ फिटर, मिस्त्री, कृषि विशारद, सब कुछ होना चाहिए। इससे बड़ा दूसरा काम नहीं है आजकल की दुनिया में! हम सोच रहे हैं कि मशीन चलाते-चलाते ही 'बिन' उलट दिया करेंगे। नाज निकालने का पम्प हटा देंगे।"

"तो कौन बड़ी बात है," प्योत्र बोला, "गल्ला फेंकने वाले पम्प का मुंह बंद कर दो और नीचे जहां बोरी लटकाई जाती है वहां बक्से रख दो।"

फ्रोस्या का मुंह खुला का खुला रह गया।

"तुझे यह सब कैसे मालूम?"

"उसमें कौन बड़ा रहस्य है!" प्योत्र ने उत्तर दिया। "आजकल हम लोग मशीनों की बाबत थोड़ा-बहुत पढ़ते रहते हैं ...!"

पति की इन उड़ानों के बारे में सुनकर विस्मय से फ्रोस्या उसकी ओर देखती रह गयी। पर, प्योत्र अपने पिता कुज़मा बोतेनिकोव की तरह बहुत साधारण ढंग से कहता गया :

"कम्बाइन चालक को बहुत सी बातें सीखनी पड़ती हैं—माना। लेकिन किसान को? किसान के दल नायक को तो ट्रैक्टर, कम्बाइन और खेती के सम्बंध की मिच्यूरिन विज्ञान की, और राजनीति की भी बातें समझनी पड़ती हैं। तुम मानो न मानो, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण काम हम लोगों का है! हमारे काम के लिए बड़ी पढ़ाई-लिखाई की ज़रूरत होती है।"

इधर के दिनों में प्योत्र काफी पढ़ता रहता था। पुस्तकों के लिए एक आलमारी अलग से ले आया था। अपनी पुस्तकों पर उसे बड़ा गर्व था।

फ्रोस्या अपने पति को पढ़ने-लिखने में लगा देख बहुत प्रभावित होती थी। वह ज़िले भर में प्योत्र की किताबों की आलमारी की चर्चा करती फिरती और घर में शाम को मां जरा ज़ोर से बोल दे तो झट डाट देती :

"ओफ़! क्या शोर कर रही हो अम्मा? देख नहीं रहीं कि पेत्रुन्का पढ़ रहा है?"

फ्रोस्या को मां को डाटते सुनकर प्योत्र मन ही मन मुस्करा देता : "अब ढर्रे पर आ रही है! ...घर सम्भालेगी तो घरवाली बन ही जायगी।"

फ़ार्म के लोग प्योत्र के स्वभाव में परिवर्तन को देख कर हैरान थे। लेकिन वासिलिसा को कोई आश्चर्य नहीं था। वह कहती :

"बोर्तनिकोव सभी ऐसे होते हैं। इनके खान्दान का ढंग ही ऐसा है। लड़कपन में ये लोग जो न करें थोड़ा है! लेकिन ब्याह होते ही आदमी बन जाते हैं। प्योत्र का बाप कुज़मा बोर्तनिकोव ही किससे कम था? मुझ से पूछो! गांव भर की नाक में दम किये रहता था। लेकिन ब्याह होते ही बदल गया! घर इन लोगों को बहुत प्यारा होता है।"

एक दिन आखिर वह सांझ भी आई जब वासिली फ्रोस्या के यहां पहुंचा और बोला :

"फ्रोस्या! अब तो फसल तैयार हो गयी...कल सबेरे कटाई शुरू कर दे।"

सुबह, अभी हवा में ओस भरी हुई थी कि फ्रोस्या खेतों में कम्बाइन ले आई। खेतों को पहले से ही 'तैयार' कर दिया गया था—ढूहों और गढ़ों को काट-पाट कर बराबर कर दिया गया था। नास्त्या ने सारे खेत में जगह-जगह खूंटे गाड़ दिए थे जिससे घंटेवार काम पूरा करने में आसानी हो। जगह-जगह लकड़ी गाड़कर बोर्ड लटका दिये गये थे कि इस स्थान पर कम्बाइन इतने बजे पहुंचनी चाहिए।

फ्रोस्या कम्बाइन मशीन कई बार चला चुकी थी परन्तु फसल से भरे-पूरे खेत में मशीन ले जाने का यह पहला ही अवसर था। ट्रेनिंग के दौरान में जो काम उसने किया था वह आज के काम के मुक़ाबले बच्चों का खिलवाड़ मालूम होता था। कम्बाइन मशीन के सामने खड़ी, बालों के बोझ से कुछ-कुछ झुकी, फसल को देख फ्रोस्या एक क्षण के लिए भयभीत हो उठी—कहीं मशीन ने काम न किया तो? शिक्षा-काल में जो उसे बहुत आसान और सीधा-सादा मालूम होता था, वही इस वक्त धोखा दे बैठा तो? कातर आंखों से उसने नास्त्या, वासिली और प्योत्र की ओर देखा।

नास्त्या बोली :

"शाबाश फ्रोस्या ! बढ़ो आगे !"

फसल की पहली लहर मशीन के आगे लगी छुरियों से कटकर बेल पर आई और मशीन ने उसे भीतर खींच लिया।

"आ हा ! यह तो काम कर निकली !" फ्रोस्या मशीन का यह काम बीसियों बार देख चुकी थी, फिर भी इस समय उसे यह एक अजूबा मालूम हो रहा था। वह मशीन के स्टियरिंग चक्के पर हाथ रखे चुपचाप खड़ी थी और मशीन फसल के समुद्र को सोकती हुई आगे बढ़ रही थी। फसल सिमट-सिमट कर मशीन के भीतर चली आ रही थी। सूर्य की किरणों से चमचमाता भूसा दूसरी तरफ इकट्ठा हो रहा था और कम्बाइन की छुरी ज़मीन के जिन हिस्सों पर चल चुकी थी वे 'कट-कट कर' अलग होते जाते थे।

मशीन की थिरकन फ्रोस्या के अंग-प्रत्यंग और मांस-पेशियों को अत्यंत सुखद लग रही थी। उसे जान पड़ता था कि मशीन उसी के प्राणों से स्पन्दित होकर चल रही है। स्टियरिंग चक्के से लेकर मशीन के आगे चलती छुरियों तक, मानों सभी कुछ उसके ही शरीर के अंग हों। फ्रोस्या ने सिर पर बंधा रूमाल उतारा और उसे झंडे की तरह हिलाती हुई मशीन की गड़गड़ाहट के बीच चिल्लाई :

"यह देखो ... यह चली ! नास्त्या ... ! ... ओ पेत्रुन्का ... ! ... वास्या चाचा ... ! ... यह चली ...!"

जब तक फसल ओस के कणों से भीगी रही, फ्रोस्या मशीन को कुछ धीरे-धीरे ही चलाती रही। लेकिन जैसे-जैसे सूरज उठने लगा उसने भी मशीन तेज़ कर दी !

कई घंटे बाद नास्त्या फिर देखने आई कि फ्रोस्या कैसा काम कर रही है। शुरू के खेतों की आधी फसल कट चुकी थी। शेष अभी सीधी खड़ी, गर्म हवा में हिलती दीवार जैसी लग रही थी। नास्त्या भी मशीन पर चढ़ आई।

फ्रोस्या चीखती हुई बोली : "मैं इसे पूरी तेज़ी से चलाना चाहती हूं नास्त्या, लेकिन इसकी रफ्तार बढ़ ही नहीं रही !"

"पूरी तेज़ी से चलाने में डर नहीं लगता तुझे ?"

"डर लगे मेरी बला को ! ये तो मेरे खेत हैं—अपने हाथों जोते हुए ! राई-रत्ती जगह जानती हूं ! डर की क्या बात है ? लेकिन रफ्तार बढ़ती ही नहीं। मैं हर कोशिश करके हार गयी हूं।"

"क्यों नहीं बढ़ती ?"

"तेज़ करती हूं तो गल्ला छिटक कर बाहर गिरने लगता है। छिः ! बड़ी शरम आती है, नास्त्या ! हाय राम, कोई तेज़ चलाना बता दे !"

"चेन वाली गरारी लगाकर देखी तूने ?"

"नहीं तो ! मुझे मालूम नहीं । तू बता दे न, मेरी नास्त्या !"

"बहुत आसान है ! देख मैं बताऊं ।"

तरीका मालूम हो जाने पर फ्रोस्या ने मशीन तेज़ी से छोड़ दी । उसके मुंह पर हवा के थपेड़े लग रहे थे । आंखों के सामने नीले क्षितिज तक फसल का सुनहरा समुद्र फैला था । अनवरोध धाराओं के रूप में गल्ला बह रहा था । उसका प्रवाह वैसा ही था जैसा किसी बड़ी झील का जल-मार्ग-द्वारों से निकलता प्रपात के समान जल ! इंजन, पंखों, गरारियों आदि की गूंज किसी झरने की गूंज जैसी ही मालूम हो रही थी । भूसे के भंवर बन रहे थे और उसका फेन धूप में सोने जैसा चमक रहा था ।

फ्रोस्या को लग रहा था कि कम्बाइन मशीन नीली सुनहली बालों को अपने में समेटे ले रही है और फिर अपनी लोहे की उंगलियों से उसे मसल कर भूसे और दानों को अलग कर रही है ।

उसे समय का खयाल न था ! वह न तो कुछ देख रही थी, न सुन रही थी । केवल मशीन की गूंज और अपार विस्तृत फसल का सागर सामने था ! इससे पूर्व जिन सफलताओं के लिए वह गर्व अनुभव किया करती थी, वे आज उसे हास्यास्पद मालूम हो रही थीं । साल भर पहले उसे पूले बांध सकने की अपनी तेज़ी पर अहंकार था ! कितनी थोथी थी वह सफलता और कितना थोथा था वह अहंकार !

"पूले-बंधाई ? तेज़ी ! छिः...! तेज़ी कहते हैं इसे ! मिनटों में किलो-मीटर पार ! टनों अनाज ! आहा ! चल मेरे इंजन, चल-चल-चल ! बहने दे गल्ला, छल-छल-छल !"

घंटेवार कार्य की पूर्ति के लिए खेतों में नास्त्या द्वारा जगह-जगह गाड़े गये चिन्ह एक-एक कर पीछे भागते जा रहे थे । फ्रोस्या को पूरा विश्वास था कि वह योजना से अधिक कार्य पूरा कर लेगी । सहसा, बिना बोई ज़मीन की एक मेड़, भागती हुई पीछे निकल गयी ।

"यह क्या ?" फ्रोस्या सोच में पड़ गयी । फिर मन ही मन बोली : "अरे, होगा कुछ ! क्या फरक पड़ता है ! आगे बढ़ । पूरी तेज़ी से आगे बढ़ और लहलहाते खेतों को मशीन में समेटती जा !"

दोपहर के समय दो लड़कियां हांफती हुई वासिली और प्योत्र से सड़क पर आ टकराई ।

"ये पेत्रुन्का! ओ वासिली कुज़मिच!" वीरा याग्नेवा हांफती हुई बोली! "फ्रोस्या ने तो सारी टीमें कुचल डालीं।"

"टीमें कुचल डालीं?" वासिली मुंह बाये रह गया।

"हां हां! अपनी कम्बाइन से! वह न खेतों के निशान देखती है, न कुछ। कम्बाइन से सपाटे भरती चली जा रही है। न तो खूंटों को गरदानती है, न मेड़ों को।" वीरा ने शिकायत की।

तेज़ कदमों से सभी खेतों की ओर बढ़ चले।

"सब दलों के हिस्से मटियामेट कर दिये। हम लोग अपने खेतों में साल भर निराई-गुड़ाई करते, खाद ढोते मर गये। और अब? फसल कटाई के वक्त? सब बराबर! पता नहीं लगता कौन सा हिस्सा किसका है।"

"क्या मुसीबत है यह लड़की भी!" वासिली मन ही मन कह रहा था। "क्या मज़ाल जो कुछ न कुछ गड़बड़ किये बिना चूके! यह नहीं तो वह सही, वह नहीं तो यह!"

तेज़ी से सड़क नापता हुआ वह आगे बढ़ चला। साथ पकड़ने के लिए लड़कियां दौड़ रही थीं।

"मैया रे! कहीं झगड़ा हो गया तो!" झगड़े की आशंका से सिहर कर वीरा सिर हिला रही थी। "तुम्हारी जान निकल जायगी, लेकिन उसकी ज़बान नहीं थमेगी! ज़रूर आज कुछ न कुछ हो कर रहेगा! हमारी टीमों की उसे कौड़ी भर फिकर नहीं। गलती मढ़ी जायगी तुम्हारे सिर! देख लेना चाहे!"

वासिली और प्योत्र आगामी वाक-युद्ध के लिए शक्ति बटोर रहे थे, इसलिए चुप थे। वे जानते थे कि ऐसे झगड़े में फ्रोस्या से जीतना आसान काम नहीं है।

खेतों में से रास्ता काटकर वे लोग अपनी ओर आती कम्बाइन की तरफ बढ़े। उन्होंने देखा कि आधी के करीब फसल कट चुकी है।

"ज़रा देखो तो!" वासिली आश्चर्य से बोला। "ऐसा लगता है जैसे कोई गाय चाट गयी है!"

कम्बाइन उन्हीं की ओर बढ़ी आ रही थी। फ्रोस्या का धूप से तपा चेहरा और सिकुड़ी भौंहें उन्हें दूर से दिखाई दे रही थीं। रंगीन रूमाल सिर के पीछे मस्तूल की तरह झूल रहा था। तालमय गति से कम्बाइन घड़घड़ाती हुई आगे बढ़ रही थी और अनाज की बालें सामने बिछाती जा रही थी। मशीन आगे बढ़ जाती और पीछे केवल भूसे के अचल ढेर पड़े रह जाते। कम्बाइन मशीन की शक्ति और गति को देखकर सभी के पैर जहां के तहां रुक गये। प्रशंसा पूर्ण नेत्रों से वे देखते रह गये।

वासिली और प्योत्र तथा लड़कियां—सब आये थे फ्रोस्या से झगड़ने की तैयारी करके, लेकिन मशीन की निर्बाध गति ने सभी को सम्मोहित कर लिया। उनकी कुढ़न गायब हो गयी और उसका स्थान ईर्ष्या-भरी प्रशंसा ने ले लिया। फ्रोस्या अब कोई मनमौजी ऐरी-गैरी लड़की नहीं थी, अब वह 'कम्बाइन दल की नेता' थी—एक ऐसी हस्ती जिसकी कार्य-कुशलता और योग्यता पर बहुत कुछ निर्भर था। फ्रोस्या में ये गुण मौजूद थे। कम्बाइन मशीन पर बैठी फ्रोस्या की शरारत भरी पुरानी चुहलबाज़ियों को मानो सभी भूल बैठे थे। उसके कार्य में सबको केवल लगन और योग्यता दिखाई देती थी और इसीलिए अब से पहले के भी उसके तमाम अपराधों को क्षमा कर दिया गया था।

वासिली, प्योत्र और लड़कियों के देखते देखते, फ्रोस्या कम्बाइन को घड़घड़ाती हुई लायी और दोनों दलों के खेतों के बीच की सीमा को कुचलती हुई फसल को एक साथ समेटती चली गयी। वासिली दौड़कर मशीन के पीछे पहुंचा और पीछे लटकती सीढ़ी से ऊपर चढ़ गया। फ्रोस्या के कान के पास मुंह ले जाकर, बिना क्रोध दिखाये, शांत स्वर में बोला :

"यह क्या कर रही हो, फ्रोस्या? सब दलों के खेतों को एक में क्यों मिलाये दे रही हो?"

"वास्या चाचा!" फ्रोस्या ने चिल्लाकर कहा, "देखो न, इस तरह दुगनी फुर्ती से काम निपट रहा है। इन खेतों में छत्तीस घंटे की योजना बनायी गयी थी। लेकिन एक सीध में पूरी तेजी से काटती चली जाऊं तो आज सांझ तक सब काम सिमट जायगा। देखो न उधर! बरसाती घटा उठ रही है। रात को कहीं पानी बरस गया तो?"

"अरी, पूछ तो लिया होता!"

"चाचा वास्या! सच कहती हूं, मैंने अपनी मरजी से ऐसा नहीं किया। मशीन ही नहीं मानी। बस चलती गयी, चलती गयी। मुझे ध्यान ही न रहा। मेड़ें रौंद गयीं। तुम समझते हो मैं झूठ कह रही हूं? चाचा, कैसे बताऊं कि सचमुच ही ऐसा हुआ!"

वासिली को उसकी बात पर यकीन था। वह खुद ट्रैक्टर ड्राइवर रह चुका था। क्या वह नहीं जानता था कि चलती मशीन के चक्के पर हाथ रखकर आदमी उसकी गति के नशे में बेकाबू हो जाता है? फ्रोस्या की बगल में खड़ा वह स्वयं अनुभव कर रहा था कि अगर वह खुद कम्बाइन चलाता तो सामने का सीधा रास्ता देख कर मशीन छोटे-छोटे टुकड़ों पर न घुमाई जाती। उसका ट्रैक्टर-ड्राइवर, मशीन प्रेमी, जाग उठा। मशीन से पूरा फ़ायदा उठाना जरूरी होता है—यह न सिर्फ एक ऐसी स्वयं-सिद्ध बात थी जिसे वह

जानता था, बल्कि एक बुनियादी आवश्यकता थी। तगड़े-तन्दुरुस्त, स्वस्थ और समझदार आदमी के लिए खुल कर सांस लेना और बेरोक चलना-फिरना जितना ज़रूरी होता है, उतना ही मशीन से पूरा फायदा उठाना भी। वह कम्बाइन से उतरा और साथ आई लड़कियों की ओर लौट चला। वे सब उस पर टूट पड़ीं।

"क्या कहा? क्या कहा उसने, चाचा?"

वासिली ने जान-बूझ कर धीरे से एक सिगरेट सुलगायी। फिर बोला:

"कह रही है कि अगर इसी तरह पूरी रफ्तार से सीध में काटे चली गयी तो दोनों खेत शाम तक खतम कर लेगी। देखो न"—आकाश की ओर देखता हुआ वह बोला, "बादल . ! शाम तक पूरी फसल कटनी ही चाहिए!"

"फिर दलों के काम का हिसाब कैसे होगा?"

"अरे हो जायगा! एक जैसी फसल तो है दोनों खेतों में! मुझसे पूछो तो दल-बल वाला मामला खेतों के लिए फायदे का नहीं है। यही टीम-लीडरों की भी राय है।"

"फिर? फिर क्या होगा?"

"यह मैं अकेले कैसे कह सकता हूं। फ़ार्म की सभा में मामला पेश कर देंगे। जैसा सब लोग कहेंगे, वैसा होगा।"

प्योत्र और वासिली लौटते समय युवक दलों के खेतों की ओर से होकर आ रहे थे। यहां घोड़े जुती मशीन से जुताई हो रही थी और लड़कियां हाथों से पूले बांध रही थीं। लुबावा उधर से गुजरी तो वासिली के पास आ पहुंची। वासिली ने उसे चिढ़ाते हुए कहा:

"यह क्या सुन रहा हूं, लुबावा? हवाई जहाज़ से फिर मोटर गाड़ी पर आ गयीं? लड़के लड़कियां आगे निकले जा रहे हैं!"

"इसी बारे में तुमसे बात करना चाहती थी—वासिली कुज़मिच," लुबावा ने शिकायत की। "काम का मुकाबला ढंग से ही तो होना चाहिए। प्योत्र को हवाई जहाज़ से उतारो न!"

"'ढंग से होना चाहिए' का क्या मतलब?" प्योत्र ने पूछा।

"मतलब वही जो मैं कह रही हूं। सुबह से दोपहर तक हमारा दल ही आगे था। लेकिन, इन्होंने एक तिकड़म की। कलेवे के वक्त ज़मीन पर बैठे तक नहीं। खड़े-खड़े मुंह में खाना ठूंसा और फिर पिल पड़े काम में।"

"इसमें क्या हरज़ है?" प्योत्र ने उत्तर दिया। "तुम्हें ऐसा करने से कौन रोकता है?"

"हम ऐसा कैसे कर लेतीं? हमारे यहां हैं बाल-बच्चेदार औरतें। उन्हें खिलाये-पिलाये बिना काम पर कैसे भेज सकती हूं?"

"तो कौन तुमसे जबर्दस्ती करता है? ऐसी छुई-मुई हो तुम लोग तो मत करो काम। तुम्हें मोटरकार ही मुबारक सही।"

"मैं तुमसे कहती हूं, वासिली, कि यह गलत है। क्या यह ठीक होगा कि लोग खाये-पिये बिना काम करते रहें?"

वासिली चुप रहा। जवाब ही क्या देता!

"क्या किया जाय," वह सोच रहा था। "एक तरफ नौजवान लड़के-लड़कियां सच्चा उत्साह और लगन दिखा रहे हैं। उनको बढ़ावा मिलना ही चाहिए। प्योत्र को हवाई जहाज़ से कैसे उतारा जा सकता है जब उसने लुबावा से ज्यादा काम किया है? यह कौमसोमोल के लड़के-लड़कियों की बड़ी भारी बेइज़्ज़ती होगी। दूसरी तरफ बिना खाये-पिये काम करने की आदत को भी आंख बंद करके बढ़ावा नहीं दिया जा सकता। सवाल सचमुच बड़ा पेचीदा है!"

"खैर कल जो हुआ—जाने दो! लेकिन आज या कल या आइन्दा और कभी खाना खाये बिना कोई काम नहीं करेगा। कलेवे के वक्त काम बन्द रहेगा।"

लड़कियां चिल्ला उठीं: "वाह वाह! हम तो अपना काम करेंगी। कौन हमें रोक सकता है?"

"मैं रोक सकता हूं। फ़ार्म की सभा की अनुमति बिना काम का समय बढ़ाने पर मैं पाबन्दी लगाता हूं। कलेवा करने की छुट्टी कलेवा करने के लिए होती है। उस समय कलेवा करना चाहिए, आराम करना चाहिए, कोई बात-चीत होनी चाहिए या अखबार पढ़ना चाहिए।"

"लेकिन हम अपनी खुशी से काम करें तो?"

"वाह जी! कैसे कोई हमें रोक सकता है?"

"क्या हम चाहें तो भी नहीं कर सकते?"

"हां, नहीं कर सकते। मैं मना करता हूं। यह कलेवे का वक्त है। काम बन्द करो। खाना खाओ और थोड़ी देर आराम करो। यही मेरा हुक्म है। तुम सात दिन बिना कलेवे के काम करोगी...फिर? तुम्हारे लिए क्या खेत में अस्पताल खोला जायगा? चलो यहां से, भागो! जाकर कलेवा करो।"

लड़कियां मुंह बनाकर कलेवा और आराम करने चल दीं। वासिली आगे बढ़ चला। मन ही मन मुस्कराता जा रहा था! एक वक्त वह भी था जब उसे जाड़ों में मुंह अंधेरे उठ कर, हाथ में लालटेन लेकर, दो-राहे पर चौकसी करनी पड़ती थी—चीड़ और खम्भे के बीच—कि लोग ठीक समय काम पर आते हैं या नहीं। घड़ी देखता हुआ वह पीछे आने वालों का इंतजार किया करता था।

वह था सामने दो-राहा...और वह दोहरा चीड़ और बिजली का खम्बा। वे यहीं से दीख रहे थे। उस दिन का पूरा दृश्य वासिली की आंखों में नाच गया। उस दिन कोल्हू के बैल की तरह वह चक्कर काटता रहा था : "खम्भा—छीलन—चीड़!" हड्डियों को काट देने वाली ठंडी हवा चल रही थी। कितनी चिन्ता, कितनी परेशानी और कितनी घबराहट थी उसे!

किन्तु अब वे सब सुदूर अतीत की बातें मालूम होती थीं। जीवन की गति अब कितनी बदल चुकी थी। दुश्चिंतापूर्ण घड़ियां, कठिनाइयां और परेशानियां अब भी आती थीं, पर उन पुरानी परेशानियों से कितनी भिन्न!

उन दिनों उसे जो चीज़ परेशान करती थी वह यह कि किसान काम पर बहुत देर से और बेमन होकर निकलते थे, पावका और पोल्यूखा सामूहिक खेत का मज़ाक़ उड़ाते थे, स्तेपनिदा पनचक्की से रामदाना चुराती थी, फ़ार्म पर काम के बजाय लोग अपने घर की कछियारी में काम करना या 'रस्सी बटना' ज्यादा पसन्द करते थे। पशुओं के बाड़े के लिए चारा नहीं था और बोने के लिए बीज नहीं थे। अब दूसरी ही परेशानी थी। लोगों का जबरदस्ती काम छुड़ाकर कलेवे और आराम के लिये भेजना पड़ता था। फ्रोस्या को डांटना पड़ता था कि खेतों की मेड़ें तोड़कर एक में क्यों मिलाये दे रही है!

उसे उस व्याख्यान की याद आई जो पिछली बार ज़िला पार्टी दफ्तर में कम्युनिस्ट समाज के बारे में उसने सुना था। व्याख्यान के बाद काफी बहस भी हुई थी कि कम्युनिस्ट समाज में कैसे-कैसे अन्तर्विरोध और कौन-कौन सी कठिनाइयां बनी रहेंगी। वासिली ने सोचा :

"इसमें शक नहीं कि ऐसे अन्तर्विरोध जैसे मुझमें और कौमसोमोलवालों में हैं या जैसे प्योत्र और फ्रोस्या में हैं, कम्युनिस्ट समाज में भी मुमकिन हैं। अफ़सोस! बहस के वक्त मुझे खयाल नहीं आया, नहीं तो बहस में इन पर ज़रूर बोलता।" सोचता हुआ वह मुस्करा रहा था। "या उस दिन जब वासिलिसा को सबसे बढ़िया मेमने दिये जा रहे थे तब का और मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन की सभा में विसोत्सकी और वाल्या के बीच का अन्तर्विरोध ले लो न! ऐसे झगड़े तो कम्युनिस्ट समाज में भी चलते रहेंगे। उस दिन सभा में ये बातें याद ही नहीं आईं। व्याख्यान के बाद मुझे इन पर ज़रूर बोलना चाहिए था। आहा! यह रहा दोहरा चीड़!"

वह उस वृक्ष के बिलकुल पास जा पहुंचा। वृक्ष की दोनों शाखाएं हवा में झूम रही थी। दो बरस पहले, कोहरे भरे सबेरे में, जिस रास्ते पर कोल्हू के बैल की तरह उसने चक्कर लगाया था—उसी से फिर गुजर रहा था।

"खम्भा—छीलन—चीड़!" बिलकुल वही! युग नहीं बीते थे, फिर

भी मालूम होता था जैसे यह किसी पुराने युग की बात हो। रही पहली मई सामूहिक खेत की बात ! उसे तो अब पहचान पाना भी मुश्किल था।

हवा का एक झोंका आया और उसके साथ ही दूर चलती कम्बाईन की गूंज सुनसान सड़क, चीड़, खेत और झाड़ियों पर बिखर गयी।

७. अल्योशा का टीला

अवदोत्या अभी उक्रेन से लौटी थी। वहां ज़िला पार्टी कमिटी के ब्यूरो ने उसे पार्टी सदस्यता के लिए उम्मीदवार बना लिया था।

उसे आते देख वासिली ड्योढ़ी पर आ गया। सांझ का धुंधलका था। बेटे को अवदोत्या की गोद से लेकर उसके चेहरे पर आंखें गड़ाये हुए पूछा :

"कहो ? मज़े में तो है ?"

वासिली को पूरा भरोसा था कि ज़िला पार्टी कमिटी, स्थानीय पार्टी संगठन के फैसले को स्वीकार कर लेगी। फिर भी उसे दिन भर इस बात की आशंका बनी रही थी कि कहीं अवदोत्या बातचीत में घबरा न जाये और उत्तर ठीक से न दे पाये।

"क्या हुआ ज़िला पार्टी में ? बताती क्यों नहीं हो ?"

बराण्डे के अंधेरे में अवदोत्या के मुंह पर मुस्कान दौड़ गयी। अपरिचित से स्वर में उसकी मद्धिम आवाज़ सुनाई दी :

"मुझे ले लिया गया है, वासेन्का ..।"

वासिली ने दूसरे हाथ से अवदोत्या को अपने निकट समेट लिया। वह उससे इस समय कुछ ऐसे शब्द कहना चाहता था जो अब तक कभी नहीं कहे थे, लेकिन ये शब्द उसे याद ही नहीं आ रहे थे। बोला :

"देखा न, मैं कहता था न दुन्या !"

दोनों कमरे में दाखिल हुए। वासिली ने देखा — उसकी पत्नी के चेहरे पर रोमांचभरी मुस्कराहट अंकित थी। आंखें स्थिर और उल्लसित थीं। वे किसी विशेष वस्तु को नहीं देख रही थीं — मालूम होता था अन्तर्मुखी होकर अपनी आत्मा की गहराइयों में डूब गयी हैं। चेहरे के भाव में ज़रा भी परिवर्तन के बिना, अपना शॉल उतारे बिना, वह मेज़ के पास एक कुर्सी पर बैठ गयी और अपने ही ढंग से अध-खुले होंठों से सांस भीतर खींचने लगी। वासिली ने गोद में सोते बच्चे को बिस्तरे पर लिटा दिया और उसकी बगल में आ बैठा।

"तू घबरायी तो नहीं थी?"

"नहीं तो!" उसने फिर सांस ली। "वास्या..."

"हां, हां! बता न क्या बात हुई?"

"वासी! इतनी बातें हैं। धीरे-धीरे बताऊंगी। अभी तो बोल नहीं पा रही हूं। ..वास्या, पशु-विभाग से पांच आदमी निर्माण-विभाग को दिये जा सकते हैं ."

"क्या मतलब?" आश्चर्य से उसने पूछा। उसके विचारों के तारतम्य को वह समझ नहीं पा रहा था।

"पेत्रोविच ने मेरे काम के बारे में पूछना शुरू किया। मैं तो शर्म से गड़ गयी..."

"क्या कोई गलती बतायी?"

"नहीं! उन्होंने तो तारीफ ही की। मुझसे बोले...वास्या," अवदोत्या ने आखिर, जो चीज़ उसे भीतर खींचे थी उससे अपने को अलगाया और वासिली की आंखों में सच्चाई भरी आंखों से देखा " मुझसे बोले: 'अवदोत्या तिखोनोवना, सच-सच बताओ कम्युनिस्ट की तरह अपने काम के लिए तुम जितना कर सकती थीं, किया है?' और सब-कुछ एकदम मेरी आंखों के सामने नाच गया—जो-जो मैंने नहीं किया था..."

वह फिर चुप हो गया। वासिली ने अवदोत्या का हाथ अपने हाथ में ले लिया।

"तो तुमने क्या जवाब दिया?"

"मैंने जवाब दिया: 'नहीं, जितना कर सकती थी नहीं किया।' फिर मैंने सभी कमियां बता दीं। बातें करते मेरा गला सूख रहा था; बोल नहीं फूटता था। पहले भी मैंने एकाध बार ये बातें सोची थीं। लेकिन उस वक्त मुझे वे तमाम बातें भी याद हो आईं जो मैंने पहले कभी नहीं सोची थीं। 'अब तक मैं कहां थी?' मैंने सोचा, 'अब मुझे कैसे लिया जा सकता है?'"

"लेकिन उन्होंने ले तो लिया।"

"हां। जितनी भी बातें मैंने बताईं उन्होंने सब पूरी कराने का मुझसे वादा करा लिया। अगस्त तक हमें अपनी आदर्श पशुशाला तैयार कर लेनी होगी। हमारे यहां लोगों के काम का ढंग अभी तक ठीक नहीं हो पाया है। पशुशाला में काम करने वाली हर औरत का खास उद्देश्य होना चाहिए। लेकिन तुम जानते ही हो कि हमारे यहां हालत क्या है—निर्माण का काम एक टीम के हाथ में सौंप दिया, बस छुट्टी! यह ठीक नहीं है। हां, उन लोगों ने यह भी पूछा, वास्या: 'स्त्रियों में तुम क्या काम कर रही हो?' मैं क्या जवाब देती। वह तो कहो वाल्या ने इशारा किया: 'स्त्रियों के आन्दोलन के

बारे में जो रिपोर्ट लिखी थी उसी का हवाला दे दो।' सो मैंने उन्हें बता दिया। लेकिन वह भी कोई काम है। हमारे यहां तो पेलागेया और मलानिया जैसी पड़ी हैं—जो न तो कभी कोई किताब पढ़ती हैं, न अखबार। रिपोर्ट से क्या होता है! जरूरत है लगकर काम करने की। वास्या, कितना पड़ा है काम करने को! लेकिन मैंने कभी सोचा ही न था।" उत्तेजना से तपा अपना चेहरा शांत करने के लिए अवदोत्या अपने ठरे हुए हाथ गालों और माथे पर फेरने लगी।

दूर नदी की ओर से हरियाली और सीलन की गंध लिए फर-फर करती हवा खिड़की से आ रही थी। पल भर को वासिली को लगा कि पहले भी उसने यह सब देखा है! नन्हा बेटा समीप ही पालने में सोया हुआ! खिड़की से दिखाई देता तारों भरा आकाश! अवदोत्या उसकी बगल में बैठी—बिलकुल इसी तरह, भावनाओं में डूबी हुई, दमित, गदोलियों से दोनो गाल दबाये! उसके हृदय में पूर्ण संतोष की गरमाई थी।

"मैंने यह...या इसी तरह...पहले कब देखा था?" वह सोच रहा था। "या शायद ऐसा कभी हुआ ही नहीं। जीवन भर यह देखने को ऐसा दिन देखने को ललकता ही रहा।"

वासिली ने अवदोत्या को चुपचाप और पास खींच लिया और अपना सिर उसके कन्धे पर टिका दिया। घने काले केशों के बीच साफ़ और लम्बी मांग खिंची थी। बालों से भीनीं सुगन्ध आ रही थी! चिर परिचित! बीते हुए अल्हड़ बचपन की सजीव स्मृति सी!

"तो अब हम दोनों कम्युनिस्ट हैं..." वासिली ने कहा, "...हम दोनों ही..."

"वासिली भैया, एक बात कहनी थी तुमसे।" वासिली के कान में भनक पड़ी। सिर उठा कर देखा तो क्सेनोफोन्तोवना दरवाज़े में खड़ी थी।

उस घड़ी सारी रौनक गायब हो गयी—मानों उसके हृदय में जा छिपी हो। वासिली भोजन के लिए झटपट कुछ बना कर मेज़ पर रखकर बैठा ही था, कि क्सेनोफोन्तोवना आ धमकी। वासिली के खाने पर नज़र गड़ाये विस्मय में हाथ फेंक कर क्सेनोफोन्तोवना बोली:

"हाय, हाय, वासिली कुज़मिच! क्या सचमुच आलू खा रहे हो?"

"क्यों? नहीं खाने चाहिए क्या?"

"अरे तू तो फ़ार्म का प्रधान है। मैं तो सोचती थी तेरे यहां कम से कम एक दर्जन अंडे रोज उबलते होंगे।"

बुढ़िया सचमुच ही विस्मित थी। "मैं प्रधान होती तो मलाई मल कर

नहाती और शहद से हाथ धोती।" वह सोच रही थी। "और इन लोगों को देखो। यह फार्म का प्रधान है, और इसकी औरत पशुशाला की मैनेजर। इस पर खा रहे हैं आलू।"

वासिली हंस दिया।

"आओ! तुम भी बैठो! कुछ खा लो!"

"नहीं नहीं भैया, मुझे तो मरने की भी फ़ुर्सत नहीं। फ्रोस्या ने कहा था कि फौरन लौट आना। कह रही थी कि बैरोमीटर की [illegible] फिर 'बरखा' के निशान पर पहुंच गयी है। बताने को भेजा है मुझे।"

"सच?... यह बुरी मुसीबत आई!"

"वासिली कुज़मिच तू माने तो एक बात कहूं," बुढ़िया अपने दोनों भारी-भरकम हाथ पेट पर मोड़ती हुई बोली।

"कहो न क्या बात है?"

"मुझे किसी दूसरे काम पर लगा दो। फ्रोस्या के साथ मुझसे नहीं निभ सकेगी। मेरे बस का नहीं।"

"आखिर कितनी दफ़े बदलोगी अपना काम? रोज तुम काम बदलती रहती हो। गोशाला तुमने छोड़ी, मुर्गीखाना छोड़ा, लुश्रावा का दल छोड़ा। तुम्हारी कहीं नहीं निभती। तुम्हीं ने कहा था कि बेटी के साथ कम्बाइन पर लगा दो। अब फिर बदली की रट लगाये हो। कहां भेज दूं तुम्हें?"

"चाहे जहां भेज दो, वासिली कुज़मिच। उससे छुटकारा मिले तो नरक जाने को तैयार हूं। वह इंच-इंच मेरी जान ले रही है। चुड़ैल है, चुड़ैल! पल भर सांस नहीं लेने देती। कम्बाइन क्या चलाने लगी है पागल हो गयी है। तमगा चाहिए उसे तो! मुझे पीसे डाल रही है, भैया। बता मेरी उमर है इस तरह दौड़ने-भागने की?"

"अच्छा मैं फ़ार्म की सभा में बात करूंगा। कल शाम आकर मिल लेना।"

क्सेनोफोन्तोवना चली गयी तो छोटा कुज़मा जाग उठा। वासिली कई दिनों से बेटे को देख नहीं पाया था। अवदोत्या उसे अपने साथ अल्योशा के टीले पर ले गयी थी। वासिली को उसका अपने निकट न होना खलता था। छोटा कुज़मा बिल्कुल बोर्तनिकोव परिवार पर गया था। हल्की-हल्की भौहों की काली लकीरें नाक के ऊपर मिली हुई थीं।

बेटे की शरारतें देखकर वासिली हैरान था। बिना दांत के जबड़ों से चुसनी को वह इतने ज़ोर से पकड़ लेता था कि छुटाये न छूटती। पतले-पतले होंठों से खूब चटकारे लेता और मां की छातियों को नन्हीं मुट्ठियों से गूंध डालता।

"पहलवान है, पहलवान!" वासिली प्रशंसापूर्ण भाव से कहता।

कुज़मा को गोद में लेकर वासिली की ओर बढ़ाते हुए अवदोत्या ने कहा : "देख तो वासेन्का, अभी से कैसा चीखता है। दुन्या तीन महीने की हो गयी थी तब ज़रा-ज़रा आवाज निकालने लगी थी।" बच्चे को सम्बोधित कर उसने ललकारा : "बेटा ! बोल तो ज़रा, मुन्ने ! बाह-ले-बाह ! देख वास्या, देख ..."

छुटका अपना बिना दांतों का मुंह खोल कर गलगलाने लगा—जैसे बोतल से पानी उलीचा जा रहा हो !

"अहा, देख तो। कैसे धमका रहा है ?" वासिली हंस दिया। "बाह मे...ले कु...ज़ ..मा ट...म्ब...क ट्र !"

छुटके का पालना अवदोत्या अल्योशा के टीले पर ही छोड़ आई थी। उसने आलमारी की एक दराज निकाली और उस पर गद्दी डालकर कुजमा को लिटा दिया। वासिली बिगड़ उठा :

"वाह रे वाह ! उसका बिस्तरा दराज़ में लगाया है ? वह भी आदमी है आदमी, कोई कपड़ा-लत्ता नहीं। आजा बेटा, मेले पाछ आजा।"

वासिली ने बच्चे को दराज़ से उठाया और अपने तथा अवदोत्या के बीच लिटा लिया।

"न, न, वासेन्का ! बच्चों को मां-बाप के बीच नहीं सुलाते। बच्चों की सेहत पर खराब असर पड़ता है।"

"रहने भी दे ! एक रात में क्या हुआ जाता है !"

अपनी बगल में बेटे के शरीर का उष्ण और कोमल स्पर्श वासिली को बड़ा सुखद लग रहा था।

"देख तो ! नींद में भी होंठ चला रहा है। अबे कुछ और भी जानता है कि बस दूध पीना ? होगा बड़ा मेहनती।"

कुछ देर पति-पत्नी दोनों ही चुप रहे।

"मक्खन निकालने की मशीन का इन्तज़ाम हो गया ?"

"उन लोगों ने भेजने का वायदा तो कर दिया है। मालूम है वास्या ! काली गाय आजकल तीस लिटर दूध दे रही है। क्सेन्या दुहती है उसे ! बहुत अच्छा काम कर रही है। बड़ी भली लड़की है। इस साल जाड़ों में आगे का काम सीखने उसे शहर भेज देना चाहिए। सर्गी से तेज़ निकलेगी। यों तो वह होशियार है, हिदायतें भी ठीक ही देता है, लेकिन जांचता नहीं कि वे पूरी की गयीं या नहीं। क्सेन्या ऐसी नहीं निकलेगी। हां, उसकी पढ़ाई ज़रूर आगे बढ़नी चाहिए।"

"मुझे कोई एतराज़ नहीं। फसल का काम हो जाने दो, उसे भेज देंगे। पेत्रोविच से बात करके इन्तज़ाम करवा दूंगा; वैसे उसने पिछले साल ही कहा

था। पढ़-लिख आये तो अच्छा ही है। हमें तो ऐसे आदमी चाहिए जो उत्तर-दायित्व निभा सकें। बड़े फ़ार्म की ज़रूरतें भी बड़ी होती हैं। दो साल में पशुओं की संख्या पांच गुनी हो जायगी। समझती हो, तब कितना काम बढ़ जायगा?" वासिली ने अवदोत्या को प्यार से अपनी ओर खींच लिया और धमकाता हुआ बोला: "कर पायेगी तू?... सम्भाल पायेगी? न सम्भाल पायी तो मैंने तेरा रिकार्ड बिगाड़ा और तुझे चलता किया।"

अवदोत्या को ऐसी हंसी बहुत भाती थी। लड़कपन से ही वह इससे परि-चित थी।

"अपनी घरवाली पर ज़ोर चलाओगे?" प्रसन्नता भरे स्वर में वह बोली: "... अच्छी बात है! मेरा लड़का निपट लेगा तुमसे!"

"घरवाली से तो और ज़्यादा उम्मीद की जा सकती है। और हां, बहुत लड़के के भरोसे न रहना। मेरे बेटे का और मेरा मिज़ाज एक जैसा है। फिर ... मैं तो घरवाली का लिहाज कर भी जाऊं, यह मां का लिहाज नहीं करने का। पूछेगा: 'मां यह सब क्या गड़बड़ कर रखी है फ़ार्म पर तुमने? हम लोगों के लिए क्या यही सब-कुछ किया है?'"

"इसकी फिकर न करो। मैं इसे जवाब दे लूंगी! मैं इसे हवाई जहाज़ पर बैठा ले जाऊंगी और ऊपर जाकर कहूंगी: 'देख बेटा, यह बनाया है हमने तेरे लिए...'"

"हां, हवाई जहाज़ ही ठीक रहेगा! सब कुछ तभी देख सकेगा।" वासिली ने हंसते हुए सहमति प्रकट की। फिर ज़रा गम्भीर आवाज़ में बोला: "कल मैं 'अंकुर' और 'उज्वल पथ' फ़ार्म गया था! मैंने तय करा लिया है कि कम्बाइन मशीन गेहूं के खेतों में से सीधी निकलेगी। भले आदमी हैं वे लोग भी!"

वह नये विशाल सामूहिक खेत के सपनों में डूब-उतरा रहा था। अवदोत्या उसके होंठों पर आंखें टिकाये सोच रही थी: "आखिर यह दिन भी आया... जिसकी इतने अरसे से प्रतीक्षा थी... उस सांझ से जब गांव में घास से ढके मैदान पर वासेन्का ने मुझे 'गिरगिट' कह कर चिढ़ाया था—तभी से...! बीच में तो बिलकुल आशा टूट गयी थी...! मैं नहीं सोचती थी कि अब कभी यह दिन आयेगा...। लेकिन आया! मेरा वास्या वैसा ही तो निकला जैसा मेरे दिल ने बताया था... जिसे पहली नजर देखते ही मैं इसकी बन बैठी थी! मेरे निश्छल दिल ने तभी सच्ची बात कह दी थी। अब इस प्रौढ़ उमर में मैं कह सकती हूं कि जिस लड़की ने उस वक्त इस पर दिल निछावर किया था, उसने धोखा नहीं खाया था।"

क्षितिज से उठकर चांद खिड़कियों के भीतर झांक रहा था; ठंडी किरणों ने फर्श पर चांदनी की चादर बिछा दी थी। लेकिन वासिली और अवदोत्या की आंखों से नींद अब भी बहुत दूर थी।

"आ दुन्याशा! अब सो जायें। ये बातें तो सौ बरस में भी खतम नहीं होंगी। सुबह तड़के उठना है। अभी तो बादल नहीं हैं लेकिन बैरोमीटर की सुई 'बारिश' आने का खतरा बता रही है! अब सो जा, दुन्याशा।"

वासिली लेटते ही सो गया। अवदोत्या सम्भलकर उठी, सोते बच्चे को गोद में उठाया, आहिस्ते से दराज़ में लिटाया और फिर झटपट वासिली के पास आ लेटी। वासिली ने नींद में ही अवदोत्या की ओर करवट ली और उसकी बांह पर अपना सिर टिका दिया। सोता-सोता भी वह मुस्करा रहा था।

रात में अवदोत्या की नींद टूट गयी। उछाह की उत्तेजना के साथ ही घुली-मिली किसी डरावनी आशंका ने उसे नींद में झकझोर दिया था।

"बात क्या है?" उनींदे में ही वह सोच रही थी। "पानी तो नहीं बरस रहा?" फौरन उसकी आंखें खुल गयीं। खिड़की के बाहर से रिम-झिम की आवाज़ आ रही थी। चांदनी कहीं खो गयी थी। घने बादलों से आकाश ढंक गया था। कमरे में भी अंधेरा था। बारिश ज़ोरों से, एकसार और अनवरत हो रही थी। उसकी नींद भाग गयी। फिर भी वह चुप लेटी रही। उसे डर था कि कहीं पति न जाग जाय।

"यही समय मिला था बरसने के लिए...?" अवदोत्या सोच रही थी... "...तब जब फसल बिलकुल पककर तैयार है!... यही बन गयी है जिन्दगी हम लोगों की—हमेशा आसमान पर आंखें टिकाये रहो। कभी 'हाय राम पानी पड़ गया' का रोना, कभी 'हाय राम पानी नहीं गिरा' का रोना! अच्छा ही है कि वास्या सो रहा है। नींद में पानी की आवाज़ नहीं सुनाई देती। हाथ सुन्न हो गया है... जी करता है ज़रा करवट बदल लूं। पर यह उठ न जाय! पानी की आवाज़ सुनी तो फिर नहीं सो पायेगा।... बांह सो गयी है। क्या करूं? सुइयां चुभ रही हैं। ज़रा सीधी कर लूं? नहीं! इसकी नींद खुल जायगी... ऐसे ही रहने दो।"

अवदोत्या को अपने कान के पास लम्बी सांस सुनाई दी।... कुछ क्षण बाद फिर वही। निश्चय ही वासिली भी जाग रहा था। पत्नी को जगाने के डर से ज्यों का त्यों पड़ा था।

"वास्या!" अवदोत्या ने धीरे से पुकारा।

"क्यों?"

"क्या बात है ?"

"बारिश हो रही है ..."

वासिली ने अपनी बांह अवदोत्या के गले में डाल दी। रिम-झिम-रिम-झिम की आवाज़ सुनते दोनों चुपचाप लेटे एक ही बात सोच रहे थे।

"ओफ़, कितने ज़ोर की बारिश हो रही है! सोचा था कि सब हो गया। अब गेहूं का क्या होगा ? बड़ी भूल हुई। पिछले हफ्ते अगर रात में काम करके सब समेट लिया होता तो यह हाल न होता। ...ने में देख रहा था कि गल्ले के गिरने की आवाज है। जल्दी ही बादल खुल जायगा। अखबार में तो था कि यह महीना सूखा जायगा।"

साथ-साथ लेटे दोनों बहुत देर तक धीमी आवाज़ में बातें करते और पानी की आवाज़ सुनते रहे। चिन्ता दोनों को ही थी, पर एक-दूसरे के सामीप्य से दोनों को सुख भी मिल रहा था।

पौ फटने से पहले ही बादल फट चुके थे। धुले नीले आकाश से आती किरणें भीगी धरती पर खिलखिला रही थीं। घनी हरियाली में पकी झलबेरियों के लाल-लाल बेर अंगारों जैसे दमक रहे थे। न चाहने पर भी आंखें उन पर टिक जाती थीं। मालूम होता था हरियाली के बीच लाल झालर लगी है।

अवदोत्या और वासिली दोपहर बाद एक गाड़ी जोत कर अल्योशा के टीले की ओर चल दिये।

दूर-दूर तक फैले खाली खेतों में शांति छाई थी। खेतों के खाली हो जाने से नीले आकाश का विस्तार और भी गहरा जान पड़ता था। जगह-जगह ऊंचे कुप्प लगे थे। भूसे भरी गाड़ियां उन्हीं की ओर चली जा रही थीं। दूर जंगल की रेखा के साथ एक अनलुना खेत फैला था। सुर्ख रोगन से पुती दैत्याकार कम्बाइन मशीन उसमें चल रही थी।

अवदोत्या इस दृश्य को देख गद्गद् हो उठी। वासिली की ओर घूम कर बोली :

"पतझड़ के दिनों में मुझे कुछ हो जाता है... मैं खुद समझ नहीं पाती कि यह क्या है। वसंत और गर्मियों भर मैं पशुशाला और गोशाला में भूली रहती हूं। दूसरा कोई खयाल नहीं आता। लेकिन फसल के दिन आये नहीं कि मन किसी काम में नहीं लगता। जी करता है, बस खेतों में भाग चलूं।"

"मुझे भी ऐसा ही लगता है।"

"फसल तो अच्छी हुई है," अवदोत्या कहती रही, "कई बरस से ऐसी फसल नहीं देखी। औसतन कम से कम दो टन अनाज होगा।"

"तो क्या अच्छा हुआ? यह बहुत थोड़े ही है!" वासिली ने मुस्करा कर कहा।

"इन्हें देखो! दो टन भी इनके लिए कम है! कितने दिन हुए जब आठ सौ किलो को तुम बहुत ज्यादा समझते थे?"

"इसी को तुम बहुत ज्यादा कहती हो? लोग तो तीन-तीन टन प्रति हेक्टर उगा रहे हैं — हमसे दूना!"

वासिली को [illegible] करना अब सम्भव नहीं रहा था।

प्रास्कोव्या कहती : "इसके हाथ में तो खुजली हो गयी है। फ़ार्म पर चाहे जितना काम करके दिखा दो, इसका मन नहीं भरता! इसे तो चुल मची रहती है।"

वासिली को जान पड़ता था कि अपनी सामर्थ्य के मुताबिक वह कुछ कर ही नहीं पाया; और अधिक करने की भूख बढ़ती ही जाती।

अवदोत्या ने वासिली की ठोड़ी पर हाथ रख उसका चेहरा अपनी ओर घुमाया :

"मैं तो समझती थी कि इस बार खूब अच्छी फसल हुई है। मेरा पति ज़रा मोटा हो जायगा, लेकिन तुम तो सूखते ही जा रहे हो। बड़े लालची हो गये हो तुम। लालच तुम्हें नहीं पनपने देता।"

"ओ हो! तो मैं लालची हो गया हूं?" वासिली ने उत्तर दिया। "अगले बरस अगर ढाई-तीन टन की फसल न तैयार की तो मैं अपनी टोपी उतार फेकूंगा। किसानों से कह दूंगा : 'भैया, तुम दूसरा प्रधान चुन लो। यह काम मेरे बस का नहीं।'"

"तेरी बातें तू जाने! लेकिन वास्या, सच्चाई तो सच्चाई ठहरी। हम लोग बीच मंज़िल पर हैं। आधा रास्ता सर कर लिया है, बाकी आधा सर कर रहे हैं। अब तो सबसे आगे पहुंचने का वक्त आ गया।"

"हां... यही बाकी आधा रास्ता सब से बीहड़ है, दुन्या। लेकिन देखो—हम लोगों की कामयाबियां मामूली नहीं हैं।"

"इसमें ताज्जुब भी नहीं! हम लोग अकेले नहीं थे। इतने लोग मदद करने वाले थे। क्या हमें कम मदद मिली है!" मुस्कराकर वह कहती गयी। "मैं तुझे बताऊं! जब मैं छोटी थी, वास्या, तो एक बार नमक की झील पर गयी थी। तब मुझे तैरना नहीं आता था। झील में पांव रखते बड़ा डर लगता। मेरी मौसी ने कहा — 'डरती क्यों है बेटी। कूद जा पानी में। हाथ-पैर चला। इस झील में कोई डूब नहीं सकता। अपने आप तैरना आ जायगा। हां, लट्ठ की तरह लेटी मत रहना।' उन्होंने सच ही कहा था, वास्या। मैं हाथ-पैर चलाने लगी तो पानी ने अपने-आप मुझे ऊपर उछाल दिया और मैं तैरने

लगी। बड़ा अच्छा लगा था मुझे! जब भी मैं अपने फ़ार्म की बाबत सोचती हूं, मुझे यही घटना याद हो आती है। किसी पिछड़े हुए फ़ार्म के किसानों से बात करती हूं तो मौसी की बात कहना नहीं भूलती: 'हाथ-पांव तो हिलाओ! अपने आप ऊपर आ जाओगे। हां, लट्ठ की तरह लेटे मत रहना!'"

खलिहान से होते हुए वे लोग आलुओं के खेतों के पास से गुज़रे। इस बार आलू नये ढंग से 'गुच्छों में' लगाये गये थे। वासिली को फ़ोस्या के ढलवान की याद हो आई। "एक जमाने में हमारे लिए खुरपियों का ही सहारा था... खुरपियों से ही सारी उम्मीद थी..." मन ही मन वह मुस्करा उठा। "कहां मशीनों से काम, कहां खुरपियों से।" खलिहान की इमारत के बारे में भी उसने इसी तरह सोचा। "उन दिनों मालूम होता था कि यह बड़ा भारी काम है! काम कितना था? बस दो-ढाई दर्जन लट्ठे ढोने पड़े जंगल से! इमारत का असली काम तो वसंत में शुरू होगा।" पुरानी मुश्किलें बहुत आसान और मामूली मालूम हो रही थीं, जैसे बड़ी कक्षा में पहुंच कर विद्यार्थी उन जोड़-बाकियों के बारे में सोचता है जो पहले बहुत मुश्किल मालूम होती थीं।

चारों तरफ जौ की बालें झूम रही थीं। दूर पीले-पीले सन के खेत बड़े सुहावने लग रहे थे।

धीरे-धीरे खेत आंखों से ओझल हो चले। सड़क जंगल के बीच से बढ़ रही थी। अवदोत्या को फिर दैनिक परेशानियों ने घर दबाया।

"जाने लिपका ब्या गयी होगी कि नहीं! दिन तो पूरे हो गये हैं। कितने मेमने दिये हैं उसने भी! अब तक तो हमेशा जोड़ा देती आई है!" वह बुदबुदा रही थी।

"याद है तुमने और वासिलिसा ने अपनी लेहड़ी दूनी करने का वादा किया है? वादा पूरा करना होगा।"

टीले के नजदीक पहुंच कर अवदोत्या सोच रही थी:

"लगता है, मैं बाहर थी तब लड़कियों ने खूब जसन मनाया है।"

सड़क बल खाती आगे बढ़ती जा रही थी। अंतिम मोड़ पार करते ही सहसा आल्योशा का टीला सामने आ गया।

एक छोटी पहाड़ी नदी टीले को घेरे हुए, उसे धोती, कल-कल करती, बह रही थी। तीन तरफ़ से जंगल घिरा हुआ था। जाड़ा शुरू हो जाने के कारण जंगल की हरियाली पक कर अब भूरी लाल हो चली थी। चौथी तरफ एक खड्ड था। खड्ड के पार दूसरा टीला था।

टीले के ऊपर ज़रा सपाट जगह में पशु-विभाग वालों के लिए मकान बने थे। बाकी जगह बाड़ों से घिरी थी।

पशुओं के खुरों से घिस कर सपाट हो गयी तीन सड़कें तीन ओर जा रही थीं। एक बाड़े में वालेंतिना की भारी पेटवाली घोड़ी खड़ी ऊंघ रही थी। अवदोत्या को बड़ी खुशी हुई। उसने अनुमान लगाया कि वाल्या भी यहीं होगी।

बछड़ों की देख-भाल करने वाली लड़की दुस्या भागी हुई उसके पास आई :

"अवदोत्या तिखोनोवना ..? अरी ओ लड़कियो! अवदोत्या तिखोनोवना आ गयीं ... !"

बहुत सी लड़कियां इधर-उधर से भागती हुई आ पहुंचीं। अवदोत्या पर सवालों की झड़ी लग गयी।

"बधाई दें तुम्हें, दुन्या?"

"हो गयीं पार्टी में?"

"मक्खन की मशीन लायीं, दुन्या?"

"फसल कटाई कैसी चल रही है?"

"मेरी अम्मा से मिली थीं, मौसी?"

"हां भई दे लो बधाई! तुम सबको भी बधाई।" अवदोत्या ने मुस्कराकर उत्तर दिया। बधाइयों का दौर पूरा हो जाने के बाद उसने दूसरे सवालों का जवाब देना शुरू किया।

"मक्खन की मशीन ले आई हूं। फ़ार्म में सब ठीक-ठाक है। राई खलिहान में आ गयी थी। आज गेहूं भी आ जायगा। जौ अभी खड़ा है। जौ बहुत अच्छा हुआ है। बालें पक कर झुक गयी हैं। देखते आंखें नहीं अघातीं। तेरी मां से मिली थी? ले, यह डिब्बा दिया है मां ने। उन्होंने कहा था कि मेरी बिटिया को बहुत घूमने न देना! बस इतवार को जाने देना। समझी?"

नन्ही कात्या और दुन्या भी भागी हुई आईं। दोनों जैकेट पहने थीं। आकर मां के गले से लटक गयीं। दोनों खूब स्वस्थ, लेकिन धूप से संवलाई, लग रही थीं। कसेन्या ने छुटके कुज़मा को अपनी गोद में ले लिया। छुटका मीठे-मीठे मुस्करा रहा था। सभी लड़कियां उसे घेरे थीं। सभी के लिए वह खिलौना था।

"मेहमान भी आये हैं, मौसी—आन्द्रेई पेत्रोविच और वालेंतिना।" कसेन्या बोली।

गाड़ी से उतरते ही अवदोत्या आवश्यक कामों में कूद पड़ी। आन्द्रेई और वालेंतिना बैलों के छप्पर की ओर गये थे। आन्द्रेई कमीज की आस्तीनें चढ़ाये फाटक पर कुछ ठोंक रहा था। सामने खड़ी वालेंतिना कह रही थी :

"जरा ऊंचे! और ऊंचे। हां, अब ठीक है।" वह पीछे घूमी तो अवदोत्या आती दिखाई दी। "लो, दुन्या भी आ गयी।" अवदोत्या को आते देख कर वालेंतिना आगे बढ़ आई। दोनों गले मिलीं। अवदोत्या ने प्रसन्न होकर कहा:

"आखिर तुम आये तो हमें देखने, आन्द्रेई!"

"मैं तो बहुत दिन से सोच रहा था कि एक बार अल्योशा का टीला देख आऊं। वालेंतिना भी बार-बार कह रही थी। ...किन क्या करूं, छुट्टी नहीं मिलती थी। आज शाम दोनों की छुट्टी है। सोचा जरा आराम करेंगे।"

"और यहां आते ही तुम्हारे हाथ में हथौड़ी थमाकर वाल्या ने काम पर जोत दिया।"

आन्द्रेई हंस दिया।

"वाह! मुझे ऐसे काम में बड़ा मजा आता है, अवदोत्या तिखोनोवना। ज़िला पार्टी का सेक्रेटरी न होता तो मैं ज़रूर बढ़ई का काम करता।"

"फाटक की पटियां ज़रूर 'अनाथ' ने ही तोड़ी होंगी।" अवदोत्या बोली।

"ठीक सोचा तुमने!" आन्द्रेई ने प्रसन्नता से जवाब दिया। "उसी की शरारत है। कात्या सामने से जा रही थी। 'अनाथ' उसे देख कर रम्भाने लगा। कात्या यहां आई नहीं, दूर से ही चली गयी। बस, यह लगा तोड़-फोड़ करने।"

घने जंगल की अंधेरी होती दीवार के पीछे सूर्य अस्त हो रहा था। चरने के लिए गये पशुओं की लेहड़ियां लौट रही थीं। उनके स्वागत के लिए सब लोग अल्योशा के टीले के ऊंचे ढूह पर आकर खड़े हो रहे थे।

आल्योशा-टीले पर यहां खड़े होना एक रिवाज बन गया था। इस घड़ी यहां इकट्ठे होना बड़ा भला लगता। पशुओं की देख-भाल करने वालों को जो सफलताएं मिली थीं वे उनकी आंखों के सामने से गुजरतीं। यहां से पशुओं को देखना बहुत अच्छा लगता। आंखें न अघातीं। छोटी-मोटी कठनाइयां, आपसी तकरारें, मुश्किलें—सभी इस समय भूल जातीं। केवल एक, सबसे महत्वपूर्ण बात याद रहती—अपनी सफलताओं पर प्रसन्नता तथा गर्व; इन सफलताओं के लिए एक-दूसरे के प्रति श्रद्धा और विश्वास!

तीन तरफ जंगलों से और चौथी तरफ पहाड़ी से घिरा टीले के नीचे का हिस्सा हरियाली का प्याला जैसा लग रहा था। वृक्षों की हरी चोटियों पर डूबते सूर्य की किरणें सोना बिखेर रही थीं। बरसात से धुली स्वच्छ हवा में धूल का एक कण भी नहीं था। बरफ पड़ने से हवा में पतझड़ के दिनों की नमी थी। हेमंत काल के हरित सौन्दर्य में बसंत के चटख रंगों का विचित्र

सम्मिश्रण था। ऐसी छटा उत्तरी भागों के पर्वतों पर ही—और वह भी निखरी धूप से दिनों में—देखने को मिलती है। सूर्यास्त बेला की लालिमा ने सभी पदार्थों को रक्ताभ कर दिया था। हरियाली के बीच टीले पर का वह स्थान जहां तीनों रास्ते मिलते थे, ऐसा लग रहा था जैसे आदमी के हाथ की गदोली हो।

और टीले पर का वह ठूंठ! लाल किरणों से सजा ऐसा लग रहा था जैसे अभी बोल उठने वाला है!

अवदोत्या ति-रस्ते के पास वाले इस ठूंठ पर बैठ गयी। वासिली उसकी बगल में बैठ गया। लड़कियां भी आसपास घास पर आ बैठीं। कुछ लड़कियां लाल आस्पबेरियों के गुच्छे बालों में खोंसे थीं, कुछ पत्तों की फुनगियां। कुछ ने जंगली फूलों की मालायें गले में पहन रखी थीं। अल्योशा के टीले पर यही रिवाज था।

वालेंतिना भी आन्द्रेई की बगल में आ बैठी। आन्द्रेई से काफी दिनों बाद उसकी मुलाकात हुई थी। आस-पास जमा लोगों की नजरों से सहमे-शरमाये बिना वह अपने पति से सटी बैठी उसके बालों और भौंहों को सहला रही थी। आन्द्रेई ने मुस्करा कर कहा :

"वाल्या, उक्रेन जैसे दृश्य तो क्रीमिया में या नीचे दक्षिण में समुद्र के किनारे भी सितम्बर के ऐसे रुपहले दिन नहीं मिल सकते। ऐसी हरियाली, ऐसे रंग और ऐसी हवा और कहां!"

"सचमुच आन्द्रेई, बिलकुल यही बात मैं भी सोच रही थी।" वालेंतिना को प्रसन्नता थी कि दोनों के विचारों का प्रवाह एक है। "यहां मालूम होता है कि पतझड़ वसंत के पीछे-पीछे ही चला आता है। अभी जरा ठहरो। जब भेड़ों की लेहड़ियां लौटेंगी तो देखना—बड़ा सुन्दर दृश्य होता है। मैं जब भी अनमनी या चिन्तित होती हूं तो यहीं चली आती हूं। तुम खुद देखना अभी।"

"आज उन्हें ज़रा देर हो गयी है!" अवदोत्या ने कुछ चिन्ता भरे स्वर में कहा। "सूरज उधर पेड़ों के पीछे छिप चला है और वे अब तक दिखाई नहीं देते।"

ठूंठ के ऊपर खड़ी होकर वह दूर तक नज़र दौड़ाने लगी। लेहड़ियों की लौटाई दूसरों को दिखाते समय उसे वैसी ही उत्तेजना होती, जैसी नाटक के निर्देशक को यवनिका उठते समय होती है। आज तो आन्द्रेई, वालेंतिना और वासिली मौजूद थे। उसकी उत्तेजना और भी बढ़ गयी थी। वह चाहती थी कि ये लोग उसके फ़ार्म के पूर्ण सौन्दर्य और समरूपता को देखें। आंखों को चौंध से बचाने के लिए उसने हाथों की छाया कर ली थी। पंजों पर उचक कर, गर्दन

उठाकर वह दूर तक देखने की कोशिश कर रही थी। कोई भी उसकी गर्दन की नसों और ललछौंही गोल ठोड़ी को देख सकता था। सहसा उसकी ठोड़ी मुस्कान से हिली।

"आ गये! आ गये! सिंगा मेढ़ा सबसे आगे है।"

सबसे पहले फैली थूथनी और सिर पर घूमे सींगों वाला मेढ़ा आगे-आगे चलता खड्ड पार कर पहाड़ी की चोटी के मोड़ पर दिखाई दिया। पहले सिर्फ थूथनी और सींगों के ऊपर का भाग दिखाई दिया, फिर ... चेहरा और फिर धीरे-धीरे पूरा शरीर! मानो चट्टानों में से बाहर निकलता चला आ रहा हो। मेढ़ा कुछ कदम तेज़ी से आगे बढ़ा! फिर रुककर उसने चारों तरफ़ नज़र दौड़ाई। इस समय उसका सौन्दर्य देखते ही बनता था।

आगे कोई भय न देख उसने बाकी भेड़ों को बढ़ आने का संकेत किया। फिर, कूदकर एक छोटी सी नाली पार की और सिर मटकाता हुआ अल्योश टीले की ओर बढ़ चला। कुछ ही पलों में टीले के नीचे की घाटी रुई जैसे गालों से ढंक गयी। भेड़ों और मेमनों के मिमियाने की गूंज चारों तरफ फैल गयी।

दुस्या ने ठोड़ी पर उंगली रखे हुए उपेक्षा दिखाई: "बाबा! कितना शोर मचाती हैं! कैसी एक दूसरे में घुसी जा रही हैं। हमारे बछड़ों को देखो! कैसे कूदते हुए चलते हैं।"

"वाह! भेड़ें अपनी जगह अच्छी हैं!" अवदोत्या ने उसे टोका।

उसके चेहरे पर संतोष और शांति, उत्सुकता और प्रसन्नता की छायाएं बारी-बारी से नाच रही थीं—आकाश में छितरे बादलों के टुकड़ों की ही तरह जो उसकी नीलिमा को और भी गहरा बना देते हैं!

"आहा! देखो दादी वासिलिसा नये ब्याए मेमने उठाये लिये चली आ रही हैं। जोड़ा हुआ है, जोड़ा!"

सबसे पीछे थीं दादी वासिलिसा। सूखकर हल्का-फुल्का शरीर, चेहरे पर मुस्कराहट। दो मेमनों के बोझ के बावजूद थकावट का नाम नहीं। उनकी गोद से दो मेमनों की थूथनियां बाहर निकली हुई थीं। मेमने सफेद ऊन के खिलौनों जैसे थे—काली-काली बूंदों जैसी आंखें। मेमनों की मां गर्दन उठाये वासिलिसा के घुटनों से उलझती-सुलझती साथ-साथ चली आ रही थी। दादी के आते ही लोगों ने उसे घेर लिया।

अवदोत्या ने मेमने को दादी से लेकर कहा: "हाय! देख तो कितने प्यारे लगते हैं।"

संध्या समय अवदोत्या यहीं रहती थी और पशुओं सम्बंधी सब रिपोर्टें उसे सुनाई जाती थीं। दादी वासिलिसा अवदोत्या के सामने खड़ी हो गयीं और अपने ही ढंग से रिपोर्ट देने लगीं:

"दुन्या, आज सुबह मैंने और अलेक्सी ने देखा कि लिपका कुछ सुस्त है। मैं इसे साथ ही रखे रही। दोपहर को मैंने देखा कि यह बार-बार बैठ रही है। सो मैं इसे एक तरफ़ झाड़ियों में ले गयी। पहले इसने एक नर दिया और फिर मादा। देख, दोनों कितने चिट्टे घुंघराले हैं। असली करा-कुली हैं!"

"मेरे छौने भी आ रहे हैं!" बछड़ों की निगरानी करने वाली दुस्या ने खड़े होते हुए कहा।

अब उसकी बारी थी। उसने सिर पर बंधे रूमाल की गांठ ठीक की और आगे बढ़कर टीले के कगार पर जा खड़ी हुई। आंखें सिकोड़े, आगे को झुकी, कगार पर खड़ी इस लड़की की आकृति—हवा से बदन में चिपके कपड़ों के कारण—बड़ी सुहानी लग रही थी।

सामने वाली पहाड़ी की चोटी के परे बछड़ों की थूथनियां और फड़फड़ाते बड़े-बड़े कान दिखाई दिये। बछड़ों के बायें कानों में छल्लों से लटकी टीन की पट्टियां चमक रही थीं।

दुस्या आगे को झुकी खड़ी बड़े गौर से बछड़ों का निरीक्षण कर रही थी। क्या सचमुच ही वे उतने सुन्दर नहीं थे, जितने वह सोचती थी? कोई सुस्त तो नहीं जान पड़ रहा था? किसी के कान से नम्बर तो नहीं गिर गया था? आगन्तुक उसके बछड़ों की सधी चाल, उनके अनुशासन और सौन्दर्य को देख प्रभावित होंगे या नहीं?

सबसे आगे कूदती चली आ रही थी—पालिश किये जूते की तरह काली चमकदार, गुलाबी थूथनी वाली—एक बछिया।

"आन्द्रेई, यह देख! यह है दारोच्का। तुझे बताया था न मैंने!" वालेंतिना बोल उठी। "यही है अनाथ और चमेली की बिटिया। इसे खास खाना मिलता है। अवदोत्या इसे तथा दूसरी कुछ और बछियों को वैज्ञानिक खूराक पर पाल रही है। वह रहा उज़ोर! उराल का बेटा, अनाथ का पोता। अवदोत्या ने इसे भी चुना है।"

वालेंतिना ने उज़ोर का कान पकड़ कर उसे अपनी ओर खींचना चाहा। लेकिन उराल के सुपुत्र उज़ोर को यह बहुत बुरा लगा। उसने इस व्यवहार का विरोध किया और खुर पटकने लगा। बछड़ों ने दुस्या को घेर लिया। कोई उसके हाथ चाट रहा था तो कोई उसके कपड़े मुंह में दाब कर खींच रहा था। दुस्या सबको पुकार कर अपने साथ लेकर चली गयी।

कहीं दूर से सिंगा बजने की आवाज़ आई! पर गायें अभी तक दिखायी नहीं दे रही थीं। हां, बछेड़ियों का एक झुंड कूदता हुआ आ पहुंचा।

"ये आ गयीं हमारी मोहनी-सोहनी !" सर्गी-सार्जेंट चिल्ला उठा और उनकी ओर दौड़ चला।

अवदोत्या ने मुस्कराते हुए आन्द्रेई की ओर देखा। वह जानना चाहती थी कि आन्द्रेई क्या कहता है ! आन्द्रेई उसका आशय समझ गया। बोला :

"अवदोत्या, तू तो रत्न है रत्न ! मैं हमेशा यही कहता था ! देख लो वासिली ! कैसी बीवी मिली है तुम्हें ! भाग खुल गये तुम्हारे।"

"अब बिगाड़ो मत उसे।" हंसते हुए वासिली [illegible]।

वासिली टीले के नीचे दूर-दूर तक फैले मैदानों और खेतों की ओर देखता हुआ अपनी ही बात सोच रहा था। उसके चारों ओर जो कुछ हो रहा था उसे वह देख भी रहा था और नहीं भी देख रहा था। चारों ओर फैले सौन्दर्य से प्रभावित वह भी सब की हंसी-खुशी में शामिल था। किन्तु उसके विचार आगे दौड़ रहे थे। इस टीले पर बैठा वह उस दिन की कल्पना कर रहा था जब ये खेत जो अब तक अलग-अलग बंटे हैं, मिल कर एक बड़ा सामूहिक फ़ार्म बन जायेंगे। वह सोच रहा था—ये लोग अभी क्यों प्रसन्न हो रहे हैं; गर्व के साथ वह उन्हें चुनौती देना चाहता था : 'अरे यह सब तो कुछ भी नहीं है ! ज़रा देखना, मैं भी आगे चल कर तुम्हें कुछ दिखाऊंगा।"

आन्द्रेई ने उसके विचार मानो भांप लिये थे। वह बोल उठा :

"वासिली ! सोचो तो ! साल दो साल बाद यहां क्या देखने को मिलेगा ! अपनी आंखों पर ही यक़ीन नहीं होगा। यह टीला तुमने अभी तो सरकार से दस बरस के लिए लिया है। इसे फ़ार्म के नाम ही करवाना होगा ! सामूहिक फ़ार्म के विस्तार के बीच ज़रा सी जगह सरकारी पट्टे पर !"

"ठीक कहते हो।" वासिली बोला। "अब इस टीले वाले मसले को भी हल कर लेना चाहिए।"

जंगल की ओर से रम्भाहट की आवाज़ आई।

"अनाथ आ रहा है।" अवदोत्या बोली। "कात्या बेटी ! जल्दी जा तू। पुचकार ले उसे, नहीं तो रम्भा-रम्भाकर आफत मचा देगा।"

कात्या उछलती हुई पहाड़ी के ढाल पर दौड़ गयी। कई सांड़ सामने के मोड़ से चले आ रहे थे। सिंगा फिर सुनाई दिया। इस बार बहुत पास ही।

"आ गये ! आ गये !" क्सेन्या खुशी से कूदने लगी। दूध दोहने वाली लड़कियां उठ खड़ी हुईं।

सबसे आगे चला आ रहा था ग्वाला वोलोद्या—सिपाही की सी चुस्त चाल से। चरान से लौटते समय वोलोद्या इसी ढंग से—रेवड़ से ज़रा आगे सिपाही की तरह—आता था। धूप से सांवले चेहरे पर सुर्ख कमीज खूब खिल

रही थी। कमर की पेटी से एक किताब खुसी हुई थी। एक न एक किताब हमेशा उसके पास रहती।

वोलोद्या जानता था कि अल्योशा के टीले की लड़कियां उसकी ओर बड़े चाव से देखती हैं इसलिए उसकी चाल में और भी अकड़ आ गयी थी। सिर को ज़रा पीछे करके वह हरा सिंगा बजा रहा था। मेफोदी चाचा ने यह सिंगा उसे भेंट किया था।

वोलोद्या के पीछे, रेवड़ से अलग, एक काली गाय गम्भीर गति से चल रही थी। दूसरी गायें मोड़ पर से झूमती चली आ रही थीं। अधिकांश का रंग काला था और थूथनियां सफेद। भोजन और दूध से वजनी, अपने महत्व और गौरव से परिचित, वे मन्थर गति से आगे बढ़ रही थीं। बीच में ज़ोर-ज़ोर से रम्भा भी देती थीं।

"तुम्हारा अभिनन्दन कर रही हैं!"—अवदोत्या ने आन्द्रेई और वालेंतिना की ओर देखकर कहा।

भूरी-भूरी भौंहों, और हल्की झुर्रियों से घिरी बड़ी बड़ी आंखों वाला उसका चेहरा उल्लसित और खिला हुआ था। ऐसा मालूम होता था मानो अपने चारों ओर के वातावरण में वह एकदम घुल-मिल गयी है। वोलोद्या का सिंगा बजता ही जा रहा था। उसका सहायक छोकरा स्लावका भी आगे बढ़ आया। स्लावका के सिर के बाल सुनहले और आंखें बड़ी-बड़ी और खूब नीली थीं। इतने दर्शकों के बीच उसने भी अपना महत्व जताना आवश्यक समझा। हाथ की चाबुक फटकार कर गायों को ललकारता हुआ बोला:

"एई! इधर-इधर! कहां चली? मारूंगा हंटर!"

वोलोद्या आया और अवदोत्या के सामने तन कर खड़ा हो गया। फिर रिपोर्ट देने लगा:

"कामरेड अवदोत्या! मैं रिपोर्ट दे रहा हूं। सब गायें आ गयी हैं। लेहड़ी ठीक-ठाक है। जिस गैया का नाम 'मनचली' रखा है न, वह रामदाने के खेत की तरफ लपक चली थी। उसका तिकड़म फौरन ताड़ लिया गया। व्याचस्लाव ओरलोव, यानी स्लावका, उसे हांक लाया। मेरी सिफारिश है कि स्लावका को इसका इनाम मिलना चाहिए। उसे एक परौठा ज्यादा दिया जाय। बर्च के झाड़ वाली चरान में घास बिलकुल साफ हो गयी है। इजाजत हो तो कल लेहड़ी को खरगोश वाली खड्ड में ले जाया जाय।"

पत्थर पर बैठी अवदोत्या मुस्कराती हुई वोलोद्या की बातें सुन रही थी।

"चमेली के थन अब कैसे हैं, वोलोद्या?" उसने पूछा।

"अब ठीक हैं। उसकी पूरी देख-भाल करते हैं। झाड़ियों में नहीं जाने देते उसे। यह सामने आ रही है।"

चमेली धीरे-धीरे सबसे पीछे आ रही थी। थन भारी होने की वजह से वह जल्दी नहीं चल पाती थी। रम्भा कर चमेली अवदोत्या की ओर ही बढ़ आई और अपनी थूथनी उसकी गोद में रख दी। अवदोत्या ने उसे नमकीन रोटी का टुकड़ा दे दिया। टुकड़ा खा लिया तो पल भर कुछ सोचने के बाद चमेली फिर धीरे से रम्भाने और रोटी मांगने लगी।

"और नहीं है अब! देख ले!" अवदोत्या ने चमेली को पुचकार कर खाली हाथ दिखा दिया। "जा!"

चमेली ने अवदोत्या का हाथ चाटा और फिर धीरे से मुड़कर गोशाला की ओर चल दी।

"और क्या चाहिए दुनिया में?" वालेंतिना धीरे से बोली, मानो अपने से ही बातें कर रही हो। "कितनी शांति और सन्तोष है यहां! ऐसा क्यों है यहां? इन जंगलों से? आकाश से? इन पशुओं से? या इस बात से कि यह अपने हाथों के श्रम का फल है? न ... सिर्फ इतना ही नहीं ... मैं लाख सोचने की कोशिश करती हूं कि यह सब हमारा नहीं, हम सबका नहीं, सिर्फ मेरा हो, सिर्फ मेरा! उफ़, इस विचार से ही कितनी नफरत होती है! जीवन का समूचा सौंदर्य लोप हो जाता है। कलह और ईर्ष्या जाग उठेगी। कुछ के मन में भय, कुछ के मन में स्पर्धा और कुछ के मन में निराशा होगी। न तो यह आनन्द होगा, न यह शांति, न यह सद्भावना! अल्योशा के टीले का जादू भी खतम हो जायगा।"

"बड़ा अच्छा हुआ तुम मुझे यहां ले आईं, वाल्या! कैसी शांति है यहां ... श्रम में कितना सुख है ... जी करता है यहीं रहूं, यहां से कहीं न जाऊं।" आन्द्रेई बुदबुदा रहा था।

लेकिन अपने ही खयालों में डूबी वालेंतिना ने पति की बातें सुनी ही नहीं।

सूर्य अस्त हुए कुछ समय बीत चुका था। पश्चिमी क्षितिज पर छाई हल्की गुलाबी लाली अब गहरी सिंदूरी हो चली थी। जहां-तहां आकाश में बादल छितरे थे, जिनकी कोरें लाल और सुनहरी हो रही थीं। अल्योशा टीले के नीचे का मैदान सजीव होकर गूंज रहा था।

बछेड़ियां पानी पीकर लौट रही थीं। मेमने दाने-चारे की टोकरियों को घेरे धक्का-मुक्की करते पेट भर रहे थे। दूध दुहने वाली लड़कियां बाल्टियां खड़कातीं, गायों के नीचे स्टूलों पर बैठ रही थीं। गायें बड़े प्यार से उनकी ओर मुंह घुमा कर देख रही थीं।

दादी वासिलिसा, नये मेमनों के लिए एक टोकरी में बिछौने लगा रही थी। मेमनों की मां उसके पास खड़ी विश्वासपूर्ण नेत्रों से उसे देख रही थी।

झाड़ियां सांझ की सुहानी हवा में धीरे-धीरे झूम रही थीं। नन्हीं चिड़ियां सांझ का मीठा गीत गा उठीं। विश्वास, संतोष, सद्भावना और फलदायक आनन्द से वातावरण भीगा हुआ था।

अवदोत्या उस तरफ जा पहुंची जहां बाल्टियों में दूध की पहली धारों की झनकार उठ रही थी। बछिया दारोन्का गुलाबी थूथनी बढ़ा कर नीले जल की ओर देख रही थी। दुन्या किलकारियां भरती, घोड़ों को पानी पिलाने वाले पोखर में झुकी थी। जल में वह संध्या के पहले तारे की परछाईं को पकड़ने की कोशिश कर रही थी।